उत्तराखण्ड का इतिहास

शिवप्रसाद डबराल 'चारण' एम० ए०, पी-एच० डी०

भाग १	— शिलालेख आदि सामग्री	१०)
भाग २	— आरम्भ से वि० पू० पाँचवीं शती तक	२०)
भाग ३	— वि०पू० पाँचवीं शती से तेरहवीं शती वि० तक	२५)
भाग ४	— गढ़वाल का इतिहास तेरहवीं शती वि० से अबतक	प्रेस में
भाग ५	-- कुमाऊं का इतिहास	,, ,,
भाग ६	-- स्रुघ्न - सिरमौर का इतिहास	,, ,,

वीर-गाथा-प्रकाशन, दोगड़ा, गढ़वाल

उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास

भाग ३

वि० पू० पाँचवीं शती से तेरहवीं शती वि० तक



चैत्य के अन्दर तथागत

(मोरध्वज से प्राप्त मृण्मूर्ति)

डा० जोशी, अधीक्षक

राज्य संग्रहालय, लखनऊ के सौजन्य से

उत्तराखंड का इतिहास

भाग ३

राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास

वि० पू० पांचवीं शती से तेरहवीं शती वि० तक

शिवप्रसाद डबराल 'चारण'
एम० ए०, पी-एच० डी०

वीर-गाथा-प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल

२०२६ * २५ रु०

वीर - गाथा प्रेस,
दोगडा, गढ़वाल

शिवप्रसाद डबराल
एम०ए०, पी-एच०डी०

वीर-गाथा-प्रकाशन,
दोगडा, गढ़वाल

उत्तराखण्ड का इतिहास

भाग ३

मेरे नवीनतम मानसपुत्र !

तुम्हें प्राप्तकरने की लालसा से दुर्गम मार्गों पर सैकड़ों मील चलकर मैंने अनेक प्राचीन मन्दिरों और मूर्तियों के, तथा राजनैतिक उथल - पुथल के विनष्ट रंगमँचों के दर्शन किए।

हिमशिखरों के पादप्रदेश में तथा भाबर के वनों में प्राचीन समाधियों से कँकालों, मृतिकापात्रों और अन्य सामग्री को खोदनिकाला !

पुस्तकालयों में आसन जमाकर मैंने स्वाध्याय - तप किया ! पूरे एक वर्ष की आय से धूप - दीप जलाकर सरस्वती का अर्चन किया !

तुम्हें उत्तराखण्ड के उन प्राचीन शासकों, यात्रियों, तपस्वियों, विद्वानों और सामान्य मानवों का आशीर्वाद प्राप्त हो, जिन्होंने अपने अभिलेखों, मुद्राओं, प्रयोज्य वस्तुओं तथा कँकालों आदि के द्वारा अमरता की अभिलाषा कीथी, और जिन्हें नवीन जीवन देकर तुमने उनकी अतृप्त कामना को सफल किया !

उत्थान और पतन के प्रवर्तक शंकर, तुम्हारे यशःकाय की जरा - मरण - भय से रक्षा करें !

तुम्हारे द्वारा जिज्ञासुओं को चिरकाल तक अतीत के अध्ययन की प्रेरणा मिलतीरहे !

डाक्टर गोविन्दराम शर्मा शास्त्री

एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच०डी०

की

पुनीत स्मृति में

सूनापरान्त के भले, बहुत भले लोग !

सूनापरान्त-निवासी भिक्षु पूर्ण ने बुद्ध के उपदेश से सन्तुष्ट हो, जब श्रावस्ती से अपनी जन्मभूमि केलिए विदा मांगी, तो बुद्ध ने पूछा –

'पूर्ण ! तू कौन से प्रान्त में विचरण करेगा ?'

'भन्ते ! सूनापरान्त नामक एक जनपद है, मैं वहां विचरण करूंगा।'

'पूर्ण ! सूनापरान्त के निवासी चण्ड और कठोर होतेहैं। यदि वे तुझ पर क्रोध या कठोर वचन का प्रहार करें तो तेरे मन में क्या होगा ?'

'…मैं समझूंगा सूनापरान्त के लोग भले हैं, बहुत भले हैं ! क्योंकि वे मुझ पर हाथ नहीं छोड़ते।'

'यदि पूर्ण ! सूनापरान्त के लोग तुझ पर हाथ छोड़ें तो तेरे मन में क्या होगा ?'

'… मैं समझूंगा सूनापरान्त के लोग भले हैं, बहुत भले हैं ! क्योंकि वे मुझे डण्डे से नहीं मारते।'

'…यदि डण्डे से मारें तो तेरे मन में क्या होगा ?'

'…मैं समझूंगा सूनापरान्त के लोग भले हैं, बहुत भले हैं ! क्योंकि वे मुझे शस्त्र से नहीं मारते।'

'… यदि शस्त्र से मारें तो …'

'…तो भी मैं समझूंगा कि सूनापरान्त के लोग भले हैं, बहुत भले हैं ! क्योंकि वे शस्त्र से मारकर मेरे प्राण नहीं लेलेते।'

'…यदि सूनापरान्त के लोग तुझे तीक्ष्ण शस्त्र से मारडालें तो …'

'तो भी भन्ते ! मैं समझूंगा कि सूनापरान्त के लोग भले हैं, बहुत भले हैं ! क्योंकि भगवान् के कोई-कोई शिष्य जीवन से तंग आकर, ऊब कर, घृणा करके, मरने केलिए शस्त्र खोजतेहैं और वह शस्त्र मुझे बिना खोजे ही मिलगया।'

'साधु, साधु पूर्ण ! तू इसप्रकार से शम-दम से युक्त होकर सूनापरान्त जनपद में काम करसकताहै।'

– संयुत्त - निकाय, ३४।४।६

विषयानुक्रमणिका

---:o:---

सहायक अभिलेख

शि० = शिलालेख — ता० = ताम्रशासन
इ० = इष्टकालेख — श० नि० = शरीरनिधानलेख
मू०पी० = मूर्तिपीठिकालेख — दे० ध० = देयधर्मलेख

अम्बरी - शिवभवानी का शि०
अयोध्या - धनदेव का तोरण-शि०
इन्द्रप्रस्थ - चन्द्र का लौहस्तम्भलेख
विग्रहराज का स्तम्भलेख
ऐहोल - पुलकेशिन का शि०
कलिंग - खारवेल का शि०
कालीमठ - भट्ट भवशर्मन् का शि०
खजुराहो - यशोवर्मन् चन्देल का शि०
गिरिनार - रुद्रदामन का शि०
गोविषाण - मातृमित्र का इ०
पृथिवीमित्र का इ०
ग्वालियर - तोरमाण का शि०
चांदपुरगढ़ी - कनकपाल का शि०
जागेश्वर - मृत्युञ्जयमन्दिर के २५ शि०
अन्य मन्दिरों के १० शि०
जूनागढ़ - पर्णदत्त का शि०
देहरादून - भद्रमित्र का मुद्रालेख
देवप्रयाग - तीर्थयात्रियों क शि०
नाला - मणदेव का शि०
अशोकचल्ल (अनेकमल्ल) का कीर्तिस्तम्भ-लेख
नृमुण्ड - सर्ववर्मन् का ता०
पलेठा - कल्याणवर्मन् के २ शि०
पाण्डुकेश्वर - पद्मट का ता०
ललितशूर के २ ता०
सुभिक्षराज का ता०
बढ़ापुर - भरथ का जैन मू० पी० लेख
बाणगढ़ - महीपाल का शि०

अफसाड़ - आदित्यसेन का शि०
इन्दौर - शर्वनाग का ता०
उदयपुर - मालवानरेशों का शि०
एरण - समुद्रगुप्त का शि०
तोरमाण का मू० पी०
कालसी - अशोक के १४ शि०
कीरग्राम - वैद्यनाथमन्दिर का शि०
खालिमपुर - धर्मपाल का ता०
गोपेश्वर - नागनरेशों का त्रिशूललेख
अशोकचल्ल के २ त्रिशूललेख
तीर्थयात्रियों के शि०
गुलण का शि०
जगतग्राम - शीलवर्मन् के २ इ०
जोशीमठ - वासुदेव का शि०
जोधपुर - बाउक का शि०
तालेश्वर - द्युतिवर्मन् का ता०
विष्णुवर्मन् का ता०
द्वाराहाट - अनन्तपालदेव का शि०
गुलण का मू० पी० लेख
गोरिलमन्दिर का शि०
लक्ष्मीमूर्ति का पी० लेख
साधुवरदेव का मू० पी० लेख
(दूनागिरि) नवग्रह मू० पी० लेख
(थारपोकर नौला) गुलण का विष्णु-मू० पी० लेख
प्रयाग - समुद्रगुप्त का स्तम्भलेख
बागेश्वर - त्रिभुवनराज का शि०
भूदेव का शि०

बाराहाट - अशोकचल्ल का त्रिशूललेख
गुह का त्रिशूललेख
नागराज का मू० पी० लेख
बैजनाथ - इन्द्रपालदेव का ता०
गणेश मू० पी० लेख
भागलपुर - नारायणपाल का ता०
भारहुत - धनभूति प्र० का तोरणलेख
वतनमार द्वार का शि०
बाधपाल का शि०
भिक्षुणी नागिला का दानलेख
नागिला और चक्रमोचिका का दानलेख
रानी नागरक्षिता का दानलेख
शिल्पियों के खरोष्ट्रीलेख
भितरी - स्कन्दगुप्त का स्तम्भलेख
मँदसौर - बन्धुवर्मन् का शि०
यशोधर्मन् का शि०
लाहौर - महेश्वरनाग का राज्य-मुद्रालेख
शिरीषपदक - प्रशान्तराग का ता०
सांची - कास्सपगोत का श० नि० लेख
गोत्तीपुत्त का श० नि० लेख
मज्झिमस्थविर का श० नि० लेख
मोग्गलिपुत्त तिस्स का श० नि० लेख
हारीतिपुत्त का श० नि० लेख
अर्हद्दत्त का देयधर्मलेख
घाटिल - माता का देयधर्मलेख
जितमित का देयधर्मलेख
थुपदास का देयधर्मलेख
देवरक्षित का देयधर्मलेख
पुस्या का देयधर्मलेख
भदँत नागिल का देयधर्मलेख
भदँत नागिल के सँबँधियों का देयधर्मलेख
सिंहगिरि का देयधर्मलेख
चुँम्ब मोरगिरि ग्राम का देयधर्मलेख
मोरगिरि ग्राम का देयधर्मलेख

बालेश्वर - आचल्लदेव का ता०
देशटदेव का ता०
बांसखेड़ा - हर्ष का ता०
बोधगया - अशोकचल्ल का शि०
छिन्दनरेशों का शि०
पुरुषोत्तमसिंह का शि०
सहणपाल का शि०
मथुरा - धनभूति द्वितीय का शि०
शिवमूर्ति पी० लेख
वरुनपति का शि०
मधुवन - हर्ष का ता०
मध्यभारत - रामगुप्तकालीन जैन मू० पी० लेख
मनहलि - मदनपाल का ता०
मुँगेर - देवपाल का ता०
मँगलवारि - गरुड़स्तम्भलेख
लाखामण्डल - ईश्वरा का शि०
गुप्तलिपि में शि०
छागलेश का शि०
नागरीलिपि में शि०
वसही - चन्द्र गहड़वाल ता०
सञ्जन - अमोघवर्ष का ता०
सारनाथ - वनस्फरकालीन मू० पी० लेख
हाड़हा - ईशानवर्मन् का शि०
हरिवर्मन् का शि०

मुद्रालेख

औदुम्बर मुद्रा का १ लेख
कुणिन्द मुद्राओं के १२ लेख
कुशाण मुद्राओं के ५ लेख
यौधेय मुद्राओं के १४ लेख

सहायक साहित्य

अग्रवाल - पाणिनिकालीन भारतवर्ष, हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन,

,, - मारकण्डेयपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन

अग्रवाल तथा मोतीचन्द्र - चतुर्भाणि

अग्निहोत्री - पतँजलिकालीन भारत

अत्रिदेव - आयुर्वेद का इतिहास

अल्तेकर - Bayana Hoard

अलबरूनी - india, Tr. साचू

अँगुत्तरनिकाय - हिन्दी अनुवाद

आश्वलायन गृहसूत्र

आर० सी० मजूमदार - Ancient India

ईलियट तथा डौसन - History of India, as told by its Own Historians

उपनिषद् - कौषीतकि, तैत्तिरीय

उपेन्द्र ठाकुर - Hunas in India

एटकिनसन - Gazetteer of Meerut Division, vol. I

,, - Himalayan Districts, vol. II

एलान - Catalogue of the coins of Ancient India

ओझा - प्राचीन लिपिमाला

ओकले - Holy Himalaya

ओकले तथा गैरोला - Himalayan Folklore

कनिंघम - Coins of Ancient India, Ancient Geography of India, Bhilsa Topes, Stup of Bharahut, Mohabodhi. Archaeological Survey Reports

कथासरित्सागर

कल्हण - राजतरँगिणी

कालिदास - अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, - रघुवँश, मेघदूत, कुमारसम्भव

कून - Races of Europe

केदारखण्ड - बम्बई सँस्करण

कौटिल्य - अर्थशास्त्र

गाइलस - Travels of Fa Hsien

गजेटियर - कांगड़ा, खनेटी, ठ्योग, धामी, नालागढ़, बघाल, भज्जी,
- मण्डी, रवांईगढ़, सुकेत, देहरादून, गढ़वाल, अलमोड़ा,
- सहारनपुर, बिजनौर
ग्रियर्सन - Linguistic Survey of India, vol. III, Part I
Twentyfive Hundred Years of Budhism in India
घृशमैन - Iran
चुल्लवग्ग - हिन्दी अनुवाद
चटर्जी - हर्षवर्द्धन
जयचन्द्र विद्यालँकार - भारतीय इतिहास की मीमांसा,
,, - प्राचीन पँजाब और उसका पास - पड़ोस
जायसवाल - हिन्दूराजतन्त्र - २ भाग, खारवेल का शिलालेख,
,, - अन्धकारयुगीन भारत
जातकग्रन्थ - अप्पणक, असँकिय, असातमँत, अट्ठान, अरञ्च,
- अट्ठसद्द, आदित्त, आयाचितभत्त, उद्दालक, कस्सप,
- कुरुधम्म, कुम्भकार, कणवेर, काक, खण्डहाल, गामिणीचण्ड,
- चम्पेक, चतुपोसथिक, चुल्लनारद, तिलमुट्ठि, तक्कपण्डित,
- दुम्मेध, निग्रोध, दस ब्राह्मण, नगलीस, निदानकथा,
- भल्लाटिय, भिक्कापरम्पर, मत्तकभत्त, महाअस्सरोह,
- महाबोधि, मँगल, महाकपि, वेदम्भ, लोमहँस, वरण,
- सतिगुम्ब, सिगाल, सोनक, सोमन्नस, हत्थिपाल
जोशी - Khas Family Law
जगदीशचन्द्र जैन - जैन आगम - साहित्य में भारतीय समाज,
- प्राकृत साहित्य का इतिहास
डबराल - उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, २,
- उत्तराखँड - यात्रा - दर्शन, अलकनन्दा - उपत्यका,
- उत्तराखँड के भोटांतिक, उत्तराखँड के पशुचारक
डी० सी० सरकार - Select Inscriptions vol. I, Shakta - Pithas
डे - Geographical Dictionary
तारीख इ-अल्फी - Tr. ईलियट तथा डौसन
तारीख - इ-सुबुकतिगिन - Tr. ईलियट तथा डौसन
ताजुल मासीर - Tr. ईलियट तथा डौसन
तारीख यामिनी - Tr. ईलियट तथा डौसन
त्रिवेद - प्राङ् मौर्य विहार
त्रिपाठी - History of Kanauj

दशरथ शर्मा - Early Chauhan Dynasties
दत्त तथा बाजपेयी - उत्तरप्रदेश में बौद्धधर्म का विकास
नीलकान्त शास्त्री - Comprehensive History of India vol. II
परजिटर - Markandeyapuran, Dynasties of Kali Age
पतंजलि - महाभाष्य
पाणिनि - अष्टाध्यायी
पातीराम - Garhwal Ancient & Modern
प्रिसेंप - Indian Antiquities, vols I, II
प्रिलुस्की - Ancient Peoples of the Panjab
पुराण - ब्रह्माण्ड, भविष्य, मारकण्डेय, स्कन्द
पुरी - India Under Kushanas
पौ - Settlement Report, Garhwal
फूरर - Monumental Antiquities of N W. P. vol. II
बरुआ तथा सिंह - Bharhut Inscriptions, Gaya & Bodha Gaya
वराहमिहिर - वृहत्संहिता
बाणभट्ट - कादम्बरी, हर्षचरित
विशाखदत्त - मुद्राराक्षस
बदरीदत्त पांडे - कुमाऊँ का इतिहास
बड़थ्वाल - योग - प्रवाह
बलदेवप्रसाद - नेपाल का इतिहास
बलदेव उपाध्याय - श्री शंकराचार्य
बील - Budhist Record of the Western World
ब्राह्मणग्रन्थ - ऐतरेय, गोपथ
भरतसिंह उपाध्याय - बुद्धकालीन भारतीय भूगोल
भगवतशरण उपाध्याय - कालिदास का भारत, प्राचीन भारत का इतिहास
मज्झिम निकाय - हिन्दी अनुवाद
महापुराण - जैनग्रन्थ
महाभारत - गीता प्रेस संस्करण
महावंश - हिन्दी अनुवाद
महावग्ग - हिन्दी अनुवाद
मजूमदार तथा अल्तेकर - Vakataka - Gupta - Age
मजूमदार तथा पुशलकर - Age of Imperial Kanauj
- Age of Imperial Unity, Classical Age,
- Struggle for Empire

मिरासी - कालिदास
मैकडोनल तथा कीथ - Vedic Index, 2 vols
मोहनलाल महता - जातककालीन भारत
मोतीचन्द्र - Geographical & Economic studies in the Mahabharat,
- सार्थवाह, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, काशी का इतिहास
मौंटेनियर - A Summar Ramble in the Himalayas
रतूड़ी - गढ़वाल का इतिहास
रमाशंकर तिवारी - कालिदास
राय कृष्णदास - भारतीय मूर्तिकला
राजवली पांडेय - कालिदास
राजशेखर - काव्य - मीमांसा
रामदास गौड़ - हिन्दुत्व
रायचौधरी - Political History of Ancient India
- Studies in Indian Antiquities
राय गोविन्दचन्द्र - प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन
राधाकुमुद मुकर्जी - Ashoka, Chandra Gupta Maurya & His Times,
- History of Indian Shipping
राहुल - बुद्धचर्या, मध्यएशिया का इतिहास, भाग १, बौद्धसंस्कृति,
- गढ़वाल, दोहाकोष, किन्नरदेश में, तिब्बत में बौद्ध धर्म,
- पुरातत्व-निबन्धावली, मेरी जीवनयात्रा, भाग २, कुमाऊँ
रिचर्डसन - Tibet & its History
रैप्सन - Cambridge History of India vol. I
रेज डेविड्स - Budhist India
रेगमि - Nepal, Ancient & Mediaeval
लतीफ - History of Panjab
वन्द्योपाध्याय - प्राचीन मुद्रा, पाषाण - कथा
वासुदेव उपाध्याय - भारतीय सिक्के, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग १, २
वाल्मीकि - रामायण
वाटर्स - On Yuan Chwang's Travels in India
विनय - पिटक - हिन्दी अनुवाद
वेट - Dictionary of Economic Products
वोगेल - Antiquities of Chamba
शाह - Ancient Foundation of Economics in India

शेरिंग - Western Tibet & British Borderland
सँयुक्त निकाय - हिन्दी अनुवाद
सीताराम - अयोध्या का इतिहास
स्वेन हेडिन - Trans Himalaya
स्मिथ - Early History of India
सँस्कृत - शब्दार्थ - कौस्तुभ
हबीब - Sultan Mahmud of Ghaznin
हरिवँश, विष्णुपर्व
हौडीवाला - Studies in Indo - Muslim History
हिन्दी विश्वकोष
हुचिसन तथा भोगेल - History of Panjab Hill States
हेनरिच हारर - Seven Years in Tibet
होर्नर - Milind's Question
Annual Report of Archaeological survey, vol. ii, x, xiv
Annual Report of Superintendent of Hindu & Budhist Monuments, 1914
Annual Report of Indian Epigraphy, 1967-68, 1968-69
Ancient India vol. ix
Epigraphia Indica vols. I, II, xii, xiii, xxi, xxxi, xxxiii
Indian Antiquary vols. v, x, xii, xviii, xix, xxi
Jr. Asiatic So, Bengal, 1880, 1891
Jr. of Indian History vol. xix, April 1951
Jr. of Numismatic So. vol x, xii, xviii, xxiv
Jr. of R. A. So. April 1947
Pioneer, December 6, 1901
Proceedings of Indian Historical Congress, vol. vii
नवभारत टाइम्स, दिसम्बर ६, फरवरी ६५, १४ मार्च ६६
त्रिपथगा, अगस्त ६४

शुद्धिपत्र

पृ०	पँक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०३	८	मन्दाकिनी	नन्दाकिनी
२७८	३, ४	कृष्णदास	गोविन्दचन्द्र
४३४	३०	वीतरा च गँगजे	पीतञ्च गाङ्गजैः
४३६	४	अभिलेख में	अभिलेख में हर्ष द्वारा
	१३	यशोवर्मन्	हर्ष
५१६	२४ - २५	उसने बालेश्वर–दीथी	कृपया इस वाक्य को हटादीजिए।

भूमिका

उत्तराखण्ड का इतिहास भाग ३ में उत्तराखण्ड की गाथा का विक्रमपूर्व पांचवीं शती से विक्रम की तेरहवीं शती तक अध्ययन कियागयाहै। विक्रम की तेरहवीं शती में अशोकचल्ल और क्राचल्ल नामक विजेताओं ने परमप्रतापी कत्यूरीनरेशों का उत्पाटन करके उत्तराखण्ड को अपने मांडलिकों में बांटदिया। क्राचल्लदेव के शासन के पश्चात् उत्तराखण्ड अनेक छोटी - छोटी ठकुराइयों में बँटगया, जिनके इतिहास का अध्ययन इस ग्रन्थ के अगले भागों में कियाजाएगा।

उत्तराखण्ड के इतिहास पर अबतक लिखेगए एटकिनसन, पातीराम, पांडे, रतूड़ी और राहुल के ग्रन्थों में उत्तराखण्ड की गाथा, आठवीं शती विक्रमी में, कत्यूरीराज्यकाल से आरम्भ कीगईहै। कत्यूरीराज्यकाल का भी उनके ग्रन्थों में विस्तृत अध्ययन नहीं मिलता। इस ग्रन्थ में पहली बार मूलस्रोतों की सहायता से विक्रमपूर्व पाचवीं शती से विक्रम की तेरहवीं शती तक उत्तराखण्ड का क्रमबद्ध इतिहास लिखने का प्रयत्न कियागयाहै।

जिस सामग्री का इस ग्रन्थ में प्रयोग कियागयाहै, उसका विस्तृत उल्लेख उत्तराखण्ड का इतिहास भाग २ के 'प्रमुख स्रोत' नामक अध्याय में कियागयाहै। तथा अधिकांश अभिलेख उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १ में दिएगएहैं। यह सामग्री तीन प्रकार कीहै। :—

(१) पुरातात्विक सामग्री — मुख्यतः अभिलेख और मुद्राएं। समकालीन होनेसे यह सामग्री प्रामाणिक और महत्वपूर्ण है। उत्तराखण्ड के अधिकांश राजवँशों की सूचना इसी सामग्री पर आधारित है। इस सामग्री की सबसे बड़ी त्रुटि उसमें सँवतादि का न होना है। उसकी तिथियों का अनुमान उसमें प्रयुक्त लिपि के आधार पर कियाजाताहै, जिसमें कभी-कभी दो - तीन शतियों तक की भूल होसकतीहै।

(२) विदेशियों के लेख — मुख्यतः यूनानी, चीनी और अरब पर्यटकों के लेख। इनमें चीनी यात्री युअन्त्च्वाङ् का यात्रावर्णन सबसे महत्वपूर्ण है। यात्री ने स्रुघ्न, मयूर (मायापुर - हरिद्वार), ब्रह्मपुर और गोविषाण का आंखों - देखा वर्णन लिखाहै। उसके लेख में सबसे बड़ी कठिनाई 'यहां से' है, जिसका आगे, 'हर्ष के साम्राज्य में' नामक अध्याय में उल्लेख कियागयाहै।

(३) साहित्यिक सामग्री—मुख्यतः अष्टाध्यायी, जातक, महाभाष्य, मुद्राराक्षस तथा कालिदास और बाण के ग्रन्थ। समकालीन आर्थिक स्थिति एवँ सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं का पता लगाने केलिए यह सामग्री अत्यन्त महत्वपूर्ण है, और पुरातात्विक सामग्री से प्राप्त सूचनाओं की पूरक है। इस सामग्री की सबसे बड़ी कठिनाई उसकी अतिव्यापकता है। पाणिनि आदि के ग्रन्थों में मिलनेवाली सूचनाएं यद्यपि समकालीन भारतीय समाज का प्रामाणिक चित्र उपस्थित करतीहैं, फिर भी उन्हें भारत के प्रत्येक भाग केलिए पूर्णरूपेण सही नहीं मानाजासकता। अन्य सामग्री के अभाव में उसका आश्रयलेना आवश्यक होनेके कारण उसके प्रयोग में विशेष सावधानी की आवश्यकता पड़ताहै।

उत्तराखण्ड के इतिहास केलिए सामग्री जुटाना सरल नहीं है। अनेक वर्षों से निरन्तर सरकार का ध्यान आकर्षित करतेरहने पर भी अभीतक माणा, केदारनाथ और

वैजनाथ आदि स्थानों के शिलालेखों का प्रकाशन नहीं होसकाहै। भारतीय इतिहास पर लिखेगए ग्रन्थों में उत्तराखण्ड-सम्बन्धी सूचनाएँ बहुत कम मिलतीहैं।

पहला प्रयत्न होनेसे इस ग्रन्थ में त्रुटियां होसकतीहैं। जब कुणिन्दमुद्राओं का लेख सर्वथा अपाठ्य था, प्रसिद्ध विद्वान् प्रिंसेप ने उसे 'महारजस राज्ञ कुणँदस अमोघ भ्रतस' पढ़ाथा। और उसका अर्थ कियाथा – 'Of the great King, the king Kunanad, the brother of Amogha'। इसमें सन्देह नहीं कि यह पाठ अशुद्ध है, फिर भी सर्वथा अपाठ्य लेख को पढ़ने केलिए इसे सराहनीय प्रयत्न कहाजासकताहै।

इस ग्रन्थ में प्रकाशित तीर्थों का मानचित्र कल्याण के तीर्थांक से, बागेश्वर और जागेश्वर मन्दिरों एवँ कुणिन्द मुद्राओं के चित्र, भारतीय पुरातत्वविभाग के प्रकाशनों से तथा एलान के ग्रन्थ Catalogue of the coins of Ancient India से लिएगएहैं। इनकेलिए मैं गीताप्रेस गोरखपुर का, भारतीय पुरातत्वविभाग का तथा ब्रिटिश सँग्रहालय के ट्रस्ट्रियों का अत्यन्त आभारी हूँ। मोरध्वज में प्राप्त मृण्मूर्ति का चित्र भेजकर राज्यसँग्रहालय लखनऊ के अधीक्षक डा० जोशी ने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह कियाहै। पुस्तक लिखते समय श्री विष्णुदत्त लखेड़ा ने अपने विद्यालय में मुझे एक मास तक आश्रय देने की कृपा कीहै।

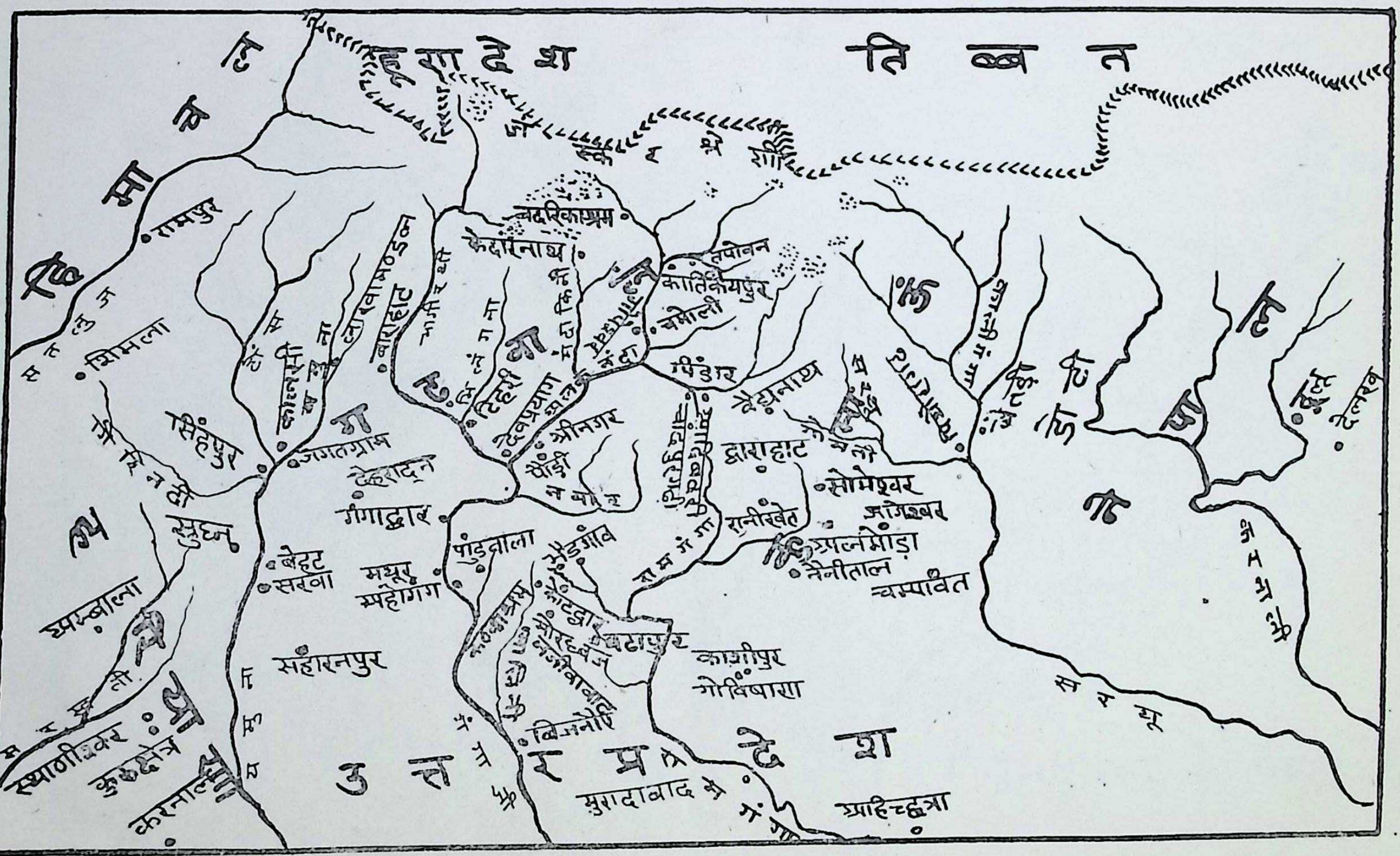
अनेक कठिनाइयों के कारण इस ग्रन्थ के प्रकाशन में पर्याप्त विलम्ब होगया। और कुछ अशुद्धियां भी रहगईं। श्री महेशचन्द्र डबराल और मेरे ऊपर अनेक सँकट आए। इसी बीच डा० गोविन्दराम शर्मा का स्वर्गवास होगया।

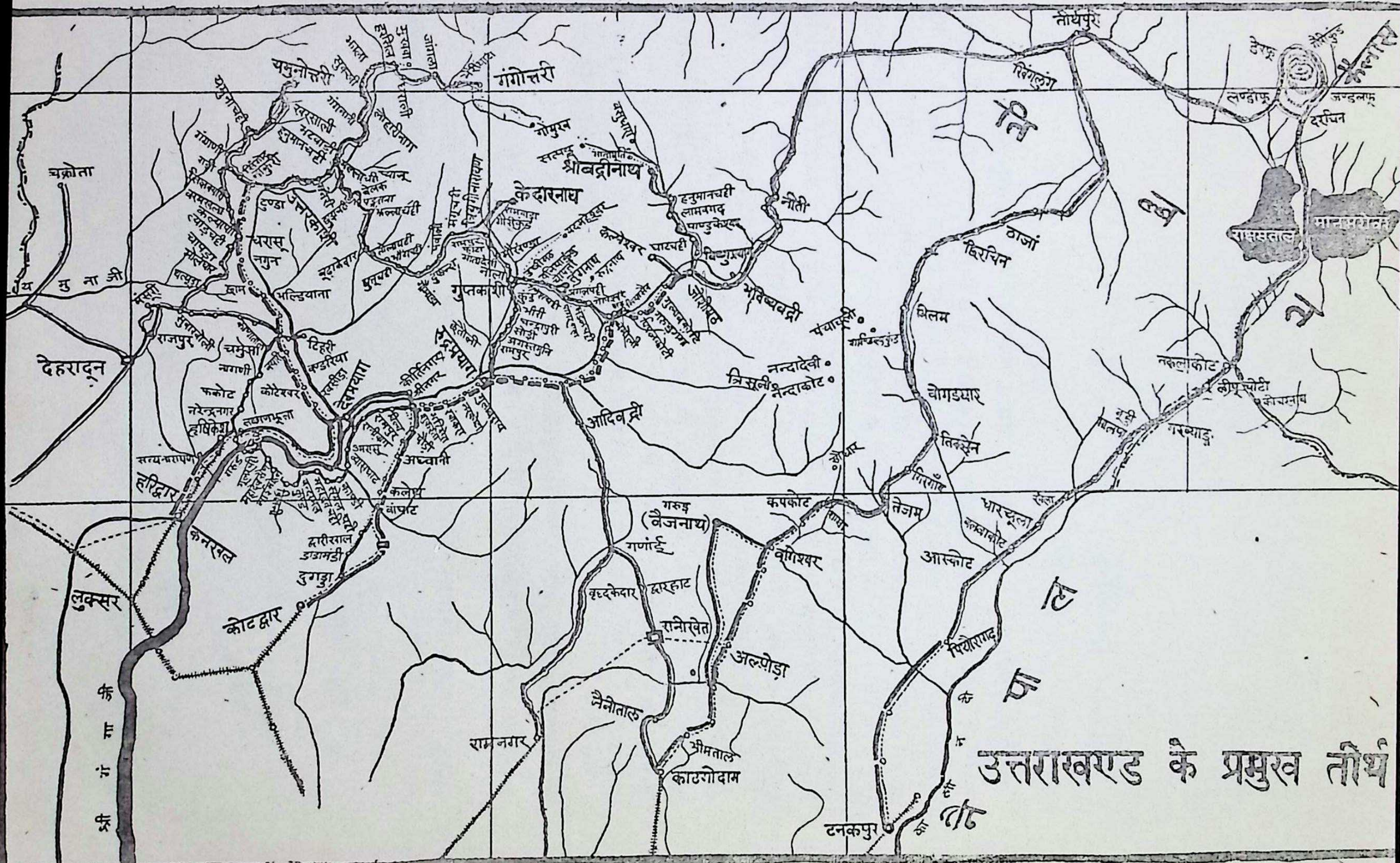
दोगडा कालेज में नए उलटफेर हुए। पूर्ण भाग्यशाली था। सूनापरान्त के चण्ड और रूखड़ उस पर, सामने आकर कटुवाक्य, हाथ, डण्डा या शस्त्र से प्रहार करसकतेथे। वे दुनापरान्त के वर्तमान सुशिक्षित सज्जनों के समान पीठ पीछे स्वयँ जघन्य कृत्य करके उसका दोषारोपण पूर्ण के ऊपर करने का षडयन्त्र नहीं रचसकतेथे।

उत्तराखण्ड की तेरहवीं शती से आगे की गाथा का अध्ययन इस इतिहास के अगले तीन भागों में कियाजाएगा। इस आयु में स्वास्थ्य और नेत्र किसी भी समय धोखा देसकतेहैं, तथा आर्थिक आदि संकटों के कारण इतने बड़े सँकल्प के पूर्ण होनेमें वाधा पड़सकतीहै। निर्धन चर्मकार भी आशा रखताहै कि उसके द्वारा आरम्भ अधूरे जूते को उसका पुत्र पूरा करलेगा। किन्तु अभागा साहित्यकार ऐसी आशा नहीं करसकता। अबतक केवल बाण ही ऐसा भाग्यशाली साहित्यकार हुआहै जिसके अधूरे कार्य को उसके सुयोग्य पुत्र ने पूर्ण किया। अजातशत्रुओं के इस युग में ऐसी आशा रखना व्यर्थ है।

सहस्राब्दियों से कृषि और पशुचारण की परम्परा में पले इस जनपद के निवासियों के हृदय में जबतक अपने साहित्यसेवियों की कृतियों को अपनाने की भावना जाग्रत नहीं होती, तबतक इस जनपद के साहित्यसेवियों को गणेशवाहनों और वाल्मीकिजनकों का कृतज्ञ रहनाहोगा, जो उनकी कृतियों का उत्साह से रसास्वादन करतेहैं!

कार्तिकपूर्णिमा, २०२६ — शिवप्रसाद डबराल


तिब्बत
रामपुर
शिमला
सिहंपुर
जगतग्राम
देहरादून
गंगाद्वार
बेहट
सरवा
मयूर
सहारनपुर
कुरुक्षेत्र
करनाल
बदरिकाश्रम
केदारनाथ
तपोवन
कार्तिकेयपुर
चमोली
पिंडार
बैजनाथ
टिहरी
श्रीनगर
पौड़ी
पांडुवाला
द्वाराहाट
सोमेश्वर
जागेश्वर
रानीखेत
अल्मोड़ा
नैनीताल
चम्पावत
काशीपुर
गोविषाण
मुरादाबाद
अहिच्छत्रा
उत्तर प्रदेश


उत्तराखण्ड के प्रमुख तीर्थ
गंगोत्तरी
यमुनोत्तरी
केदारनाथ
श्रीबद्रीनाथ
गुप्तकाशी
भविष्यबद्री
आदिबद्री
रुद्रप्रयाग
देवप्रयाग
हरिद्वार
हृषिकेश
देहरादून
चक्रोता
लुक्सर
कोटद्वार
टिहरी
धरासू
नगुन
भल्डियाना
मंसूरी
राजपुर
चमुआ
कनखल
दुगड्डा
अल्मोड़ा
रानीखेत
नैनीताल
भीमताल
काठगोदाम
रामनगर
टनकपुर
बागेश्वर
कपकोट
तेजम
गरुड़
(बैजनाथ)
आस्कोट
धारचूला
पिथौरागढ़
तिरसैन
चौगडयार
बिलम
नन्दादेवी
त्रिशूली
नन्दाकोट
पंचाचूली
ठाजां
हिरचिन
नीती
तीर्थपुरी
तकलाकोट
लीपू चोटी
मानसरोवर
राक्षसताल
कैलाश
लण्ढफू
दरचिन
अच्वानी
अगस्त्यमुनि
रामपुर
हनुमानचट्टी
लामबगड़
पाण्डुकेश्वर
जोशीमठ
कल्पेश्वर
गोमुख
जांगला
हरसिल
बसुधारा
गरुड़

कुलिन्द जनपद

वि० पू० ४५०–३५०

जनपद-युग— मगधसाम्राज्य के उत्थान से पूर्व हमारा देश अनेक छोटे-बड़े जनपदों में बँटाथा। जिनके मध्य नदी, पर्वत, वन या मरुभूमि आदि द्वारा सीमा निर्धारित होतीथी [१]। जनपदों में से कुछ एकराज थे, कुछ गण या सँघ। गण या सँघ का शासन उस जनपद के परिवारों के प्रतिनिधियों के द्वारा होताथा [२]। एकराज जनपदों के राजा अपनी जनपद-सभा और परिषद् के परामर्ष के अनुसार जनपद का शासन करतेथे [३]।

पौराणिक पुरावृत में अनेक सार्वभौम या चक्रवर्ती नरेशों का उल्लेख मिलताहै, जो हिमालय से लेकर समुद्र तक विस्तृत सारी पृथ्वी या जम्बूद्वीप को अपनी विजय का लक्ष्य बनातेथे [४]। अनेक विजेता उत्तराखण्ड की पुनीतभूमि में कैलास, गन्धमादन, विन्दुसर और गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश तक अपनी राज्यसीमा पहुँचाने की लालसा रखतेथे [५]।

प्राय:, इन नरेशों की दिग्विजय से जनपदों के अस्तित्व का लोप नहीं होताथा। युधिष्ठिर की दिग्विजय से समकालीन जनपदों के अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं आयाथा। जैसा कि उन जनपदों के द्वारा महाभारत-समर में भागलेने से स्पष्ट है। महासमर के पश्चात् भी जनपद उसीप्रकार बनेरहे। प्राय: दिग्विजयी नरेश विजित जनपद से उपायनादि लेकर ही सन्तुष्ट होजातेथे।

उत्तरभारत के प्रमुख जनपद— विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में, पाणिनि के जीवनकाल में [६], उत्तरभारत में अनेक जनपद थे। इनमें से निम्नलिखित का सम्बन्ध उत्तराखण्ड के इतिहास से है।

मद्रजनपद—तक्षशिला के दक्षिण - पूर्व में। इसकी राजधानी साकल (वर्तमान स्यालकोट) में थी [७]।

शिवि–उशीनर—मद्रजनपद के दक्षिण में [८]।

१- अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष. पृ० ५७   २- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ६०

३- अग्रवाल – पूर्वोक्त. पृ० ४३२

४- 'देश: पृथिवी। तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजन-सहस्रपरिमाणमतिर्यक् चक्रवर्तिक्षेत्रम्'।
— अर्थशास्त्र, ९।१

५- 'कुमारीपुरात्प्रभृति विन्दुसरोऽवधि योजनानां दशशती चक्रवर्तिक्षेत्रम्'।
— राजशेखर–काव्यमीमांसा, पृ० २३३

६- वि०पू० ४२३–३५३ (480-410 B. C.)

७- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ६७   ८- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ६७ - ६८

त्रिगर्तजनपद--सतलुज, व्यास और रावी, इन तीन नदियों की पर्वतीय उपत्यका में। इसके अन्तर्गत वर्तमान चम्बा से कांगड़ा तक फैला क्षेत्र था [१]।

भरतजनपद--दक्षिणपूर्वी पञ्चनद में, वर्तमान थानेसर, कैथल, करनाल, पानीपत का भूभाग भरतजनपद के अन्तर्गत था[२]। सुप्रसिद्ध यौधेयगण का सम्बन्ध इसी जनपद से था।

कुरुजनपद--दिल्ली - मेरठ का प्रदेश इस जनपद के अन्तर्गत था। इसकी राजधानी हास्तिनपुर (हस्तिनापुर) थी [३]।

प्रत्यग्रथजनपद--गङ्गाजी और रामगङ्गा की मैदानी उपत्यका में प्रत्यग्रथ या पांचाल जनपद था [४]।

कोसल-काशि और मगध--पांचाल से पूर्व की ओर कोसल और काशि जनपद थे। उसने भी पूर्व की ओर प्रसिद्ध मगधजनपद था [५]।

कुलुन (कुलिन्द) जनपद--त्रिगर्त से पूर्व की ओर सतलुज, यमुना, गङ्गाजी तथा कालीगङ्गा की पर्वतीय उपत्यका में कुलिन्द जनपद फैलाथा। इसका पाणिनि ने दो गणों में कुलुन नाम से उल्लेख कियाहै [६-७]। महाभारत [८], पुराणों [९] और बृहत्सँहिता[१०] में इस जनपद के कुलिन्द और कुणिन्द नाम मिलतेहैं। ताल्मी ने इसे कुलिन्द्राइन कहाहै [११]। विद्वानों की धारणा है कि कुलिन्द, कुलुन और कुणिन्द एक ही नाम के रूपान्तर हैं [१२]।

अष्टाध्यायी आदि प्राचीन ग्रन्थों में कुलिन्दजनपद की सीमाओं का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। ताल्मी ने कुलिन्द्राइन जनपद का विस्तार सतलुज, यमुना और गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका में बतलायाहै [१३]। कुणिन्द मुद्राओं का विस्तार पश्चिम में सतलुज से लेकर पूर्व की ओर कालीगङ्गा की उपत्यका तक मिलाहै।

कुलिन्द-उशीनर-- विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में इस प्रदेश का दूसरा नाम उशीनर भी था [१४]। यह प्रदेश मध्यमदेश (मध्यदेश) की उत्तरी सीमा पर स्थित प्रत्यन्त जनपद था [१५]। बुद्ध के समय तक यहां बौद्धमत का प्रचार कम होनेके कारण बुद्ध ने विनयधर सहित पांच भिक्षुओं के गण से उपसम्पदा करने की अनुज्ञा देदीथी [१६]।

१- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ६८-६९
२- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ४१
३- अग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ७०
४- अग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ७४
५- अग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ७४-७५
६- कच्छादिगण, ४।२।१३३; सिन्ध्वादिगण, ४।३।९३
७- सभापर्व, २६।३
८- 'शतद्रुजाः कुणिन्दाश्च' – मारकण्डेयपुराण की जनपद-सूची
९- 'शकाः हूणाः कुलिन्दाश्च' –ब्रह्माण्डपुराण की जनपद-सूची
१०- बृहत्संहिता, १४।३०-३३
११- ताल्मी, ७।१।४२; मोतीचन्द्र—जियोग्राफिकल ऐंड एकोनौमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृ० ७७
१२- अग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ६९
१३- ताल्मी, ७।१।४८
१४- द्र०, संयुत्त निकाय, मानचित्र; रायचौधरी – पौलिटिकल हिस्ट्री आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ६५-६६ तथा मानचित्र पृ० ५८; वेदिक इण्डेक्ष, जि० १, मानचित्र; एज आव इम्पीरियल यूनिटी, मानचित्र १; डबराल—उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ९४-९५
१५-१६- विनय-पिटक, ५।३।२, पृ० २१३

ऐतरेयब्राह्मण [१], कौशीतकि उपनिषद् [२] तथा गोपथब्राह्मण [३] में उल्लिखित साक्ष्यों के आधार पर इस जनपद का प्राचीन नाम उशीनर था। उशीरगिरि से सटे इस जनपद को महाभारत में भी उशीनर कहागयाहै [४]। पौराणिक पुरावृत्त के अनुसार राजा उशीनर गङ्गा - यमुना के स्रोतप्रदेश के नरेश अनु का वँशज था। उशीनर के पुत्रों ने पञ्चनद में शिवि, यौधेय, नवराष्ट्र, कृमिल और अम्बष्ट जनपदों की स्थापना कीथी। इसलिए पञ्चनद के शिवि - उशीनर से [५] पृथकता से सूचित करने केलिए उत्तराखण्ड के कुलिन्दजनपद को कुलिन्द - उशीनर कहसकतेहैं।

जनपद के अवयव (प्रदेश)—कुलिन्द जनपद छै अवयव या प्रदेशों में बँटाथा।

तामस—सतलुज और तमसा (टोंस) नदी की पर्वतीय उपत्यका [६]। इस प्रदेश में यमुना की सहायक जला और उपजला (रूपीं, सूपीं ?) के तटों पर यज्ञ करके राजा उशीनर को इन्द्र से भी उच्चपद प्राप्तहुआथा [७]।

कलकूट (कालकूट)—यमुना की दक्षिणी उपत्यका, कालसी, देहरादून, स्रुघ्न-प्रदेश। इसका अष्टाध्यायी में कलकूट [८], महाभारत में कालकूट [९] और मारकण्डेयपुराण में कालकोटि [१०] के नाम से उल्लेख मिलताहै। इस प्रदेश में काले अँजन की उत्पत्ति के कारण उसे कलकूट, कालकूट, कालशैल [११] नाम मिलेथे। जिनका वर्तमान प्रतिनिधि कालसी है [१२]।

तङ्गण—वर्तमान उत्तरकाशी और चमोली जिलों का भोटान्तिकप्रदेश। जिसे महाभारत [१३] और मारकण्डेयपुराण [१४] में तङ्गण - परतङ्गण जाति की भूमि बतायागयाहै।

भारद्वाज – जिसकी पहिचान वर्तमान टिहरी और गढ़वाल जिलों से कीजातीहै [१५]। पाणिनि ने दो बार भारद्वाज का उल्लेख कियाहै [१६]। काशिका ने भी भारद्वाज को देशवाची मानाहै [१७]। गङ्गाद्वार (हरिद्वार) के निकटप्रदेश में भारद्वाजऋषि और उनके शिष्यों के बसजाने से इस प्रदेश को ऐसा नाम मिलाहोगा [१८]।

रङ्कु – जिसकी पहिचान पिण्डारनदी की उपरली उपत्यका, वर्तमान पिथौरागढ़ के भोटान्तिकप्रदेश से कीजातीहै। पाणिनि ने रङ्कुप्रदेश के निवासियों को रांकवक बतलायाहै [१९]। काशिका ने रङ्कु प्रदेश के रांकव कम्बल और रांकवायण बैलों का उल्लेख

१- ऐतरेयब्राह्मण, ८।१४ २- कौशीतकिउपनिषद्, ४।१

३- गोपथब्राह्मण, २।९ ४- उद्योगपर्व, ११।२३ ५- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७०

६- सं० मारकण्डेयपुराण, पृ० १५५ तथा द्र० टि० ९

७- 'जलामुपजलां चैव यमुनामभितो नदीम्।
उशीनरो वै यत्रेष्ट्वा वासवादत्यरिच्यत'॥ — वनपर्व, १३०।२१

८- अष्टाध्यायी, ४।१।१७३ ९- सभापर्व, २६।३-४ १०- सं. मारकण्डेयपुराण, पृ० १५५

११- वनपर्व, १३९।१ १२- अग्रवाल—पूर्वोक्त पृ० ६९ १३- सभापर्व, २८।६ से आगे दा० पाठ

१४- 'तामसा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा'—मारकण्डेयपुराण की जनपद-सूची

१५- परजिटर—मारकण्डेयपुराण, पृ० ३२० १६- अष्टाध्यायी, ४।१।११०; ४।२।१४५

१७- अग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ७० १८- आदिपर्व, १२९।३३-३८ १९- अष्टाध्यायी—४।२।१००

कियाहै [१] । इस प्रदेश में अब भी रँका - बोली का प्रयोग होताहै [२] ।

आत्रेय या गोविषाण – जिसकी पहिचान वर्तमान अलमोड़ा - नैनीताल जिलों से होसकतीहै। पाणिनि ने आत्रेय को भारद्वाज की शाखा मानाहै [३] । काशिका ने भी अत्रि को जनपद-सूचक कहाहै [४] । मारकण्डेयपुराण की जनपदसूची के अनुसार भारद्वाज और आत्रेय जनपद पड़ोसी थे [५] । भारद्वाज की पहिचान गढ़वाल से कीजातीहै। अस्तु, आत्रेय की पहिचान कुमाऊँ से होसकतीहै ।

बस्तियाँ—जनपद का बड़ा भाग वनों से ढकाथा , जहां दूर-दूर के आखेटक मृगया खेलने आतेथे [६] । भाबरप्रदेश में साकल से कालकूट होकर पूर्व की ओर जानेवाले मार्ग पर महत्वपूर्ण बस्तियां थीं । कम - ऊँची पर्वतीय ढालों पर, जहां कृषि - पशुचारण से निर्वाह होसकताथा, बस्तियां थीं ।

कत्रिनगर—अष्टाध्यायी में इस जनपद के कत्रि [७] और कलकूट नगरों का उल्लेख है । समुद्रगुप्त ने अपनी प्रयागप्रशस्ति में कतृपुर का उल्लेख कियाहै । कत्यूरी नरेशों के अभिलेखों में उनकी राजधानी कार्तिकेयपुर का उल्लेख है । डा० अग्रवाल का अनुमान है कि पाणिनि द्वारा उल्लिखित कत्रिनगर ही कतृपुर या कार्तिकेयपुर होसकताहै [८] ।

कलकूटनगर—विक्रम की पांचवीं-चौथी शती में कलकूट (कालकूट=कालसी) नगर में कुलिन्द जनपद की राजधानी थी। संभवतः कलकूट शब्द का प्रयोग सारे कुलिन्दजनपद केलिए होताथा। अस्तु कलकूटनगर को सारे जनपद की राजधानी मानाजासकताहै। केवल दो शतियों पश्चात् कालकूट की महत्ता के कारण वहां अशोक ने अपनी अभिलेख - शिला की स्थापना कीथी ।

पाणिनि ने कलकूटजनपद की गणना एकराज अर्थात् नरेशद्वारा शासित जनपदों में कीहै [९]। इस जनपद की स्थापना कलकूटजन ने कीथी [१०] । इसलिए राजा कालकूटि कहलातेथे [११] । उनदिनों जन, जनपद तथा जनपद की राजधानी के लिए एक ही शब्द का प्रयोग होताथा ।

महाभारत में कुलिन्दजनपद के कुलिन्दनगर [१२], एकचक्रा [१३], कालकूट [१४] और स्रुघ्ननगर [१५] का उल्लेख है । दिव्यावदान के अनुसार बुद्धभगवान् स्रुघ्ननगर में गएथे [१६] ।

महाभारत के अनुसार इस जनपद के दक्षिणी भाग में भारद्वाजाश्रम [१७] और

१- अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७० २- ग्रियर्सन - लिंग्विस्टिक सर्वे आव इण्डिया, खण्ड ३, भाग १, पृ० ४७९ ३- अष्टाध्यायी, ४।१।११० ४- अग्रवाल - पूर्वोक्त, पृ० ७०
५- 'आत्रेयाश्च भरद्वाना:' -- मारकण्डेयपुराण की जनपद-सूची ६- भल्लाटियजातक
७- अष्टाध्यायी, ४।२।९५ ८- अग्रवाल -- पूर्वोक्त, पृ० ८६ ९- अष्टाध्यायी, ४।१।१७३
१०-११- अग्निहोत्री -- पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ४०६ १२- वनपर्व, १४१।२५-२६
१३- आदिपर्व, १५९।३ १४- सभापर्व, २६।३-४ १५- सभापर्व, २७।२१
१६- दत्त तथा बाजपेयी -- उत्तरप्रदेश में बौद्धधर्म का विकास पृ० २३६ १७- आदिपर्व, १२९।३३-३८

कण्वाश्रम [१] थे। उत्तरी भाग में देवलाश्रम [२], उपमन्युआश्रम [३] और नर - नारायण - आश्रम [४] थे। इन आश्रमों में तपस्वी साधक और विद्वान ब्राह्मणों का निवास था [५]। इनमें वेदिक सँहिताओं और प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन - अध्यापन का प्रबन्ध था [६]।

विक्रमपूर्व पांचवीं शती में भी भाबरप्रदेश में, विशेषकर गङ्गाद्वार के पास महत्व-पूर्ण बस्तियां थीं। हिमालय की तलहटी के मार्ग गङ्गाद्वार से शाक्य - कोलिय - जनपदों तक पहुँचतेथे। बुद्धभगवान् कोलियजनपद के सापुग निगम (नगर) से हरिद्वार के समीप उशीरध्वज पर्वत (चण्डी की पहाड़ी) तक गएथे [७]।

उशीरध्वज और ऋषिकेश के बीच कई छोटी - बड़ी बस्तियां थीं। पाणिनि के समय ऐसे स्थाननामों का बाहुल्य था, जिनके अन्त में 'अर्म' लगताथा [८]। पीछे ऊजड़-गांवों के नामान्त में भी अर्म लगनेलगा [९]। ऋषिकेश के पास कुब्जार्मक (कुब्जाम्रक) नामक स्थान अबतक चलाआरहाहै।

ग्राम—इनके अतिरिक्त अनेक छोटी-बड़ी बस्तियां रहीहोंगी, जिनका पता लगाना कठिन है। पाणिनि ने भारद्वाजजनपद (गढ़वाल) के क्रकर्ण और पर्ण नामवाले दो ग्रामों का उल्लेख कियाहै [१०]। विक्रमपूर्व पांचवीं-चौथी शती में ये दोनों महत्वपूर्ण स्थान रहेहोंगे। पतञ्जलि ने इसी जनपद के ऐणीक और सौंसुक नामक दो अन्य गांवों का उल्लेख कियाहै [११]। विक्रमपूर्व दूसरी शती में इनका भी कुछ महत्व रहाहोगा। आज इनका पता लगाना कठिन है।

गांवों के पास, बस्ती से कुछ हटकर भिक्षुओं की कुटिया, विहार या सँघाराम होतेथे। जिनमें ठहरे भिक्षु - भिक्षुणियों का भोजन गांववालों को जुटानापड़ताथा।

ग्राम के अन्तर्गत उसके आसपास के चराईक्षेत्र और नदी - नलों को भी गिना जाताथा [१२]। खेत परिवार की व्यक्तिगतसम्पत्ति समझेजातेथे। पर शेष भूमि पर सारे ग्राम का अधिकार होताथा। फसल कटजाने पर व्यक्तिगत खेत भी, तबतक सारे ग्राम की सम्पत्ति समझेजातेथे, जबतक उन पर पुनः खेती न बोईजातीथी [१३]। यह प्रथा आजतक चलीआतीहै [१४]।

गृह—विरली जनसँख्या जनभावना को प्रोत्साहन देतीथी। ग्राम में, सुरक्षित स्थान पर जन के सारे परिवारों के घर पास - पास बनेहोतेथे। झोंपड़ी या कुटीर ऊँची भूमि पर पत्थर, मिट्टी और लकड़ी से बनाई जातीथीं। उन्हें घास - फूँस, पत्तों और शिलाओं

१- आदिपर्व, ७०।२४-२९ २- आदिपर्व, ५३।८; १८२।२ ३- अनुशासनपर्व, १४।४१-६३

४- वनपर्व, २७२।२९ ५- शान्तिपर्व, ३२७।३४-३५ ६- आदिपर्व, ७०।३७-४६

७- भरतसिंह उपाध्याय -- बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ८९ ८- अष्टाध्यायी, ६।२।९०-९१

९- बौधायन श्रौतसूत्र, ६।१, ६।२; अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८१

१०- 'क्रकर्णपर्णाद् भारद्वाजे' — अष्टाध्यायी, ४।२।१४५

११- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १०६ १२- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० १४६

१३- रेज डेविड्स — बुद्धिष्ट इंडिया, पृ० २८ १४- जोशी—खश फेमिली लौ, पृ० १६६-६७

की पटालों से छायाजाताथा [१]। भाबरप्रदेश में चूना और ईंटों से भी छतें बनतीथीं [२]।

घरों के धरातल पर लाल मिट्टी से तथा दीवारों पर श्वेत मिट्टी से पुताई कीजातीथी [३]। कुटीरों में कीड़े - मकोड़ों और सर्पों का भय रहताथा [४]। उनकी निरन्तर मरोम्मत करनीपड़तीथी [५]। घर की दीवारों पर भीतर - बाहर अलपना बनाने की प्रथा थी [६]। बौद्धमत का प्रचार होने पर वैराग्य - सूचक चित्र भी बननेलगेथे [७]।

शयनासन (घरेलू सामग्री)––कुटीर में बैठने - सोने के स्थान पर पत्ते, घास - पराल या मांदरा, और होसकती तो, चारपाई बिछातेथे [८]। बेत या बांस की चौकियां तथा मूँज, बावड़ और पुयाले के पीढ़े बनालेतेथे [९]। अनेक प्रकार की रङ्ग - विरङ्गी कम्बलों का प्रयोग होताथा। उन पर एक या दोनों ओर झालरें लगतीथीं [१०]। पिण्डार की घाटी में उत्तम रांकव कम्बल बनतेथे [११]।

वनैले और पालतू पशुओं के चर्म बिछाएजातेथे। मक्खी - मच्छर का सँकट होने पर मसहरी लगातेथे [१२]। या उन्हें ताड़ के पङ्खे से भगातेथे [१३]।

पात्र मुख्यतः मिट्टी. काष्ट और पत्तों के बनतेथे। गृहस्थ और भिक्षु, दोनों मृतिकापात्रों का प्रयोग करतेथे। अन्नादि रखने के लिए बड़ी - बड़ी चाटियां बनाईजातीथीं। उनके नीचे गेंडुरी लगाईजातीथी [१४]। मिट्टी के सुनहले और रुपहले पात्र भी बनतेथे [१५]। कुछ पात्रों पर देवादि की मूर्तियां या चित्रादि बननेलगेथे [१६]।

सामग्री रखने के लिए खालों के थैलों [१७], लौकी, तूम्बी आदि के सूखे खोलों का प्रयोग होताथा [१८]। भिक्षु भी इनका प्रयोग करसकतेथे। ताम्र और कांस्य के पात्र भी प्रयुक्त होतेथे [१९]।

शृंगार – साधारण व्यक्ति लँगोटी, कच्छा या घुटनों तक पहुँचनेवाली धोती पहनतेथे, और ऊपर से एक चादर डालतेथे। बाहिरलोमी ऊनी चादर के प्रति बड़ा आकर्षण था [२०]। शिर पर पगड़ी और पैरों में जूते पहनने की प्रथा थी। केश फण (कँघी) से सँवारकर उन्हें खली या पानी-मिले तेल से चिकनातेथे [२१]।

मुख पर लेपकरने, मालिशकरने, सुगन्धित चूर्ण लगाने, मैनसिल से ओंठों को अँकित करने, शरीर पर अँगराग रगड़ने तथा चूर्ण मलकर सौन्दर्य बढ़ाने की प्रथा थी [२२]। शरीर को सजाने के पश्चात् जलभरे पात्र में, या दर्पण में अपनी छवि देखकर मुसकरातेथे [२३]।

१- अष्टाध्यायी, ५।१।१३;५।३।८८ २- चुल्लवग्ग, पृ० ४५६ ३- निदानकथा, जा० १, पृ० ६८
४- चुल्लवग्ग, पृ० ४५६ ५- निदानकथा, जा० १, पृ० ६७ ६-८- चुल्लवग्ग, पृ० ४५५
९- चुल्लवग्ग, पृ० ४५३ १०- चुल्लवग्ग, पृ० ४६६ ११- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७०
१२- चुल्लवग्ग, पृ० ४२९ १३- चुल्लवग्ग, पृ० ४३८ १४-१५- चुल्लवग्ग, पृ० ४२३
१६- चुल्लवग्ग, पृ० ४२४ १७- अष्टाध्यायी, ४।३।१६; अग्रवाल —पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १४८-५० १८- चुल्लवग्ग, पृ० ४२५ १९- चुल्लवग्ग, पृ० ४३० २०- चुल्लवग्ग, पृ० ४२१
२१- चुल्लवग्ग, पृ० ४१९ २२-२३- चुल्लवग्ग, पृ० ४२०

अँजन का व्यापक प्रयोग होताथा। यमुनाघाटी के अँजन की वेदिककाल से ही ख्याति थी [१]। भिक्षु भी अँजन का प्रयोग करतेथे। पीसेहुए अँजन को अँजनदानी में सम्भालकर रखते और सलाई से लगातेथे। अँजनदानी और सलाई को सावधानी से सम्भालकर बटुवे में रखतेथे [२]। बेहट [३] और मोरध्वजस्तूप की खुदाई में भी सलाइयां मिलीहैं [४]। अँगुलियों, कानों और ललाट पर आभूषण पहनने का बड़ा चाव था [५]। पुष्पों और पत्तों से भी शरीर सजायाजाताथा [६]। भिक्षु - भिक्षुणियां भी आभूषण पहनने केलिए उत्सुक रहतेथे [७]।

अन्न-पान—दूध, दही, घी और मांस भोजन के आवश्यक अङ्ग थे। मिर्च, अदरक, पीपल आदि मसालों से तथा नमक और गुड़ के प्रयोग से भोजन को स्वादिष्ट बनायाजाताथा [८]। क्षुद्रा या पालतू मधुमक्खियों और भ्रामर या वनैले भ्रमरों के मधु का सार्वभौम प्रयोग होताथा। इस जनपद के स्वादिष्ट मधु की मैदानी नगरों में बड़ी मांग थी [९]।

कन्द, मूल, फलों का ताजा और सुखाकर प्रयोग करतेथे [१०]। वनैले पौधों के पत्तों से तेमन (साग - भाजी) बनाने [११] तथा भिस की जड़ें खोदकर खाने का बार - बार उल्लेख मिलताहै।

यवागू या पतली खिचड़ी का विशेष प्रचलन था। जनता स्वयँ खिचड़ी पीती और भिक्षुओं को भी देतीथी। बुद्ध यवागू के बड़े प्रशँसक थे [१२]। यवागू को क्षुधा और प्यास को दूर करनेवाली, वायु को अनुकूल रखनेवाली. पेट को साफ रखनेवाली, पाचनशक्ति बढ़ानेवाली तथा आयु, वर्ण, सुख और प्रतिभा देनेवाली मानाजाताथा [१४]।

यवागू को दांतों से चबाने की आवश्यकता नहीं पड़तीथी [१४]। मांडी और छांछ में पकी लपसी - पलेऊ का भी बड़ा प्रचलन था [१५]। उनमें नमक और गुड़ भी मिला-लेतेथे [१६]। सत्तू - सेवन की तथा अन्नों की बालें या दाने भूनकर खाने की व्यापक प्रथा थी।

भात, खीर, तिलोदन या तिल-मिला भात चाव से खायाजाताथा [१७]। गुरुकुलों में पढ़नेवाले ब्रह्मचारियों को भी तिल - तण्डुल दिएजातेथे [१८]। भात को दाल, दूध, मांस-मछली या साग-सबजियों के सूप के साथ खायाजाताथा [१९]।

द्रव भोज्यों के समान द्रव पानों का प्रचार था। अनेक प्रकार के फलों का रस,

---

१- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १३८ २- विनय-पिटक, पृ० २१६
३- प्रिंसेप—इंडियन एंटिक्विटीज, चित्र १८, पृ० Liv ४- मरखाम—लेख, जौ० एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, १८६१, जि० ६०, पृ० ७ ५-६, अष्टाध्यायी, ६।३।६५ ७- चुल्लवग्ग, पृ० ४१६
८- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ११७ ९- 'हिमवत्पुष्पजं चैव स्वादु क्षौद्रं तथा बहु'—सभापर्व, ५२।५
१०- वनपर्व, १२८।४४-४७ ११- अप्पण्णकजातक, जा० १, पृ० १७६ १२-१३, महावग्ग, पृ० २३४
१४- अष्टाध्यायी, ४।२।१३६ १४-१५- अग्रवाल--पूर्वोक्त, पृ० १२२ १६- महावग्ग. पृ० २४५
१७- महावग्ग, पृ० २१५ १८- महावग्ग, पृ० २४६ १९- महावग्ग, पृ० २५१

सिरका और शरबत पीतेथे [१]। मदिरा और अन्नादि की कच्ची सुरा, दोनों का प्रचार था। भिक्षु भी उनके सेवन के लिए उत्सुक रहतेथे [२]।

जड़ी - बूटियों को कूट - पीसकर धूम्रवर्तिका बनतीथीं। बीड़ी के समान जलाकर उनका धुँआ पियाजाताथा। भिक्षुओं को धूम्रवर्तिका का सेवन अतिप्रिय था [३]।

रोग और चिकित्सा—अतिसार, अर्श, बहुमूत्र, प्रमेह, सँग्रहिणी. कुष्ट, पामन् (पामां) खांसी, ज्वर और हृद्रोग प्रमुख रोग थे [४]। चर्मरोग, फोड़ा, सूजन, घेघा, गँडमाला, मृगी, पक्षाघात, भगन्दर और विशूचिका आदि भी प्राणहारी थे [५]।

चिकित्सा जड़ी - बूटियों से कीजातीथी। प्रत्येक पेड़ - पौधे की रोगनाशक शक्ति की खोज होचुकीथी। जीवक को तक्षशिला के आसपास कोई ऐसा पेड़ - पौधा न मिलाथा, जो रोगनाश केलिए उपयोगी न होता [६]।

जड़ी - बूटियां पर्वतीय प्रदेशों से एकत्रित कीजातीथीं। ओषधियों को उपवनों में भी उत्पन्न कियाजाताथा। कुछ वन अपनी ओषधियों केलिए प्रसिद्ध थे। पाणिनि ने ओषधिवनों का उल्लेख कियाहै [७]। इन जनपद की महाहिमालय की श्रेणी प्रभावशाली जड़ी - बूटियों और विषों केलिए विख्यात थी [८]।

भगन्दर - जैसे रोगों में शस्त्रकर्म और वस्तिकर्म से चिकित्सा कीजातीथी [९]। जीवक - जैसे चतुर वैद्य, रोगी के पेट को चीर-फाड़कर अँतड़ियों की गांठ सुलझाने, तथा फिर अँतड़ियों को अन्दर डालकर सिलने की विधि जानतेथे [१०]। यदि खोपड़ी के अन्दर कोई जन्तु होता तो खोपड़ी के चमड़े को फाड़, खोपड़ी को खोल, जन्तु को निकालकर खोपड़ी को जोड़डालते तथा बाहर से चमड़ा सिलकर शीघ्र घाव भरदेनेवाली ओषधि का लेप करदेतेथे [११]।

विश्वास था कि वशीकरणमन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीनेसे रोग उत्पन्न होतेहैं [१२]। प्रेत-बाधा दूरकरने केलिए बुद्ध ने भिक्षुओं को सुअर मारने के स्थान पर जाकर कच्चा मांस खाने और ताजा रुधिर पीने की अनुमति दीथी [१३]। दुष्टग्रह से पीड़ित को अनाज जलाकर बनाया सीरा पिलायाजाताथा [१४]। जो बिष खालेता उसे विष्टा घोलकर पिलातेथे [१५]। जिसे सर्प काटता उसे चार महाविकट विष्टा, मूत्र, राख और मिट्टी घोलकर पिलातेथे। बुद्ध ने भिक्षुओं को भी ऐसा उपचार करनेकी अनुमति दीथी [१६]।

कृषि—आजीविका के चार मुख्य साधन थे; कृषि, पशुचारण, शस्त्रोपजीविका और व्यापार।

१- महावग्ग, पृ० २७ २- विनय-पिटक, पृ० २१६ ३- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १३३-३४ ४- महावग्ग, पृ० १३०, १३२; २६८ ५- विनय-पिटक, पृ० २६७ ६- अष्टाध्यायी, ८।४।६ ७- रामायण, युद्धकांड, ७४।३३ ८- विनय-पिटक, पृ० २३० ९- विनय-पिटक, पृ. २७१ १०- विनय-पिटक, पृ० २७० ११- विनय-पिटक, पृ० २२३ १२- विनय-पिटक, पृ० २१८ १३-१६- विनय-पिटक, पृ० २२२

अनेक प्रकार के मोटे अन्न कोद्रान्न (मँडुवा), श्यामाक, नीवार (कौणी-झँगोरा) उत्पन्न किएजातेथे। मूँग, माष (उड़द), अरहर तथा अनेक प्रकार के धान उत्पन्न होतेथे। तिल, जौ, गेहूँ, गन्ना और कपास का उत्पादन होताथा।

पशु - पक्षी खेती को बड़ी हानि पहुँचातेथे। मृगों को भगाने हेतु खेतों में पत्तों की झँडियां बांधीजातीथीं [१]। यदि उत्पात फिर भी कम न होता तो खेतों के बाहर गड्ढे खोदते, कांटों की बाड़ लगाते अथवा कूट - पाश (जिबाल) आदि बन्धन फैलाकर, पत्थर आदि फेंकतेहुए मृगों को जाल की ओर हांकतेथे [२]।

गठ्ठरों को डँडों से पीटकर अन्न निकालतेथे। अथवा पशुओं से मंडाई करतेथे। अन्नों की माप अञ्जुलि सूप, भार (भारा), द्रोण (दूण) तथा खारी से कीजातीथी [३]।

पशुचारण, कृषि का आवश्यक अङ्ग था। स्वतन्त्र - रूप से भी अनेक व्यक्ति पशुचारण से निर्वाह करतेथे। महाभारत में इस जनपद की पशुपालक जातियों का उल्लेख है, जो अस्थायी या गोठ - खरक - ग्वार गांवों में रहतीथीं [४]।

गाय, भेड़-बकरी, घोड़े और कुत्ते पालेजातेथे। जनपद अतिउत्तम ऊन देनेवाली रङ्कु भेड़ों और उत्तम रांकावायण बैलों केलिए प्रसिद्ध था [५]। भोटांतिक घाटियों में चमरगाएँ पालीजातीथीं। जिनके काले और श्वेत चमरों की भारत-भर में बड़ी मांग थी [६]।

शस्त्रोपजीविका— उन दिनों पर्वतीय प्रदेशों के साहसी युवक शस्त्रों से आजीविका कमातेथे [७]। वे पर्वतीय [८] तथा आयुधजीवी भी कहलातेथे [९]। पाणिनि ने मध्य और पश्चिमी हिमालय की ढालों पर रहनेवाले इन आयुधजीवी या लड़ाके कवीलों का विशेषरूप से वर्णन कियाहै [१०]। मारकण्डेयपुराण में उन्हें पर्वताश्रयी आयुधजीवी बतलाया गयाहै [११]। उनमें इस जनपद की तङ्गण, खश, किरात और तामस (टोंस - उपत्यका) की जनजातियों का विशेषरूप से उल्लेख कियागयाहै [१२]।

महाभारत में इस जनपद की दरद, तुषार, खश आदि आयुधजीवी जातियों का भाड़े के सैनिकों के रूप में कौरवों के पक्ष में लड़ने का उल्लेख है। ये आयुधजीवी पाषाण-वर्षा से शत्रुदल को विदारित करने में कुशल थे [१३]। गातियों में पाषाण - खण्ड भरे, हाथों

१- निग्रोधजातक, जा० १, पृ० २३४ २- निग्रोधजातक, जा० १, पृ० २४३
३- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २४५-४६ ४- सभापर्व, २८।६ से आगे दा० पाठ
५- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ७० ६- सभापर्व, २८।६ से आगे दा० पाठ
७- 'आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते,'—अष्टाध्यायी, ४।३।९१ ८- अष्टाध्यायी, ४।२-१४३
९-१०- अष्टाध्यायी, ४।३।९१
११-१२- 'अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
नीहाराः हसंमार्गाश्च कुरवो तङ्गणाः खशाः॥
कुन्तप्रावरणाश्चैव, ऊर्णा दार्वा सकृद् गृहाः।
त्रिगर्ताः गालवाश्चैव किराताःस्तामसैः सह'॥ — मारकण्डेयपुराण, ५७।५६-५७
१३- द्रोणपर्व, १२१।१३-१४

में लोहे के गोले और त्रिशूल लेकर जब वे शत्रुसेना पर झपटतेथे [१], तो गजारोही और अश्वारोही भी आहत होकर हाहाकार करनेलगतेथे [२]।

विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में भी आयुधजीवियों की आजीविका उसीप्रकार चली आतीथी। वे पड़ोसी जनपदों की सेना में भाड़े के सैनिक बनकर निर्वाह करतेथे।

उन दिनों उत्तरभारत के जनपदों में शान्ति और सुव्यवस्था न थी। जनपदों के बीच में यत्र - तत्र कान्तार (वन) होतेथे [३]। इन वनों में उत्सेधजीवियों (चोर-डाकू) के दल के दल छिपेरहतेथे [४]। जो मार्ग से आने - जानेवाले सार्थों पर छापा मारतेथे। अथवा अवसर पाकर ग्राम - नगरों को लूट लेतेथे [५]।

इनसे बचने केलिए सार्थ अपने साथ सुरक्षा - हेतु सुरक्षापुरुषों को रखतेथे। ग्राम - नगरों में सम्पन्न व्यक्तियों को भी अपनी सम्पत्ति की रक्षा केलिए शस्त्रोपजीवियों की आवश्यकता पड़तीथी। पर्वतीय जनपदों के साहसी युवक स्वयँ भी अवसर पाकर उत्सेधजीवी बनजातेथे [६]।

व्यापार—भाबर की मण्डियों में अनेक व्यक्ति व्यापार से निर्वाह करतेथे। अनेक व्यक्ति वनप्रदेशों से व्यापारिक सामग्री, जैसे जड़ी - बूटियां आदि एकत्रित करके मण्डियों में पहुँचातेथे। अष्टाध्यायी में वर्णित व्यापारिक सामग्री में से निम्न वस्तुएँ इस जनपद की विक्रयवस्तुओं में गिनीजासकतीहैं [७]। अँजन, लवण, गुग्गुल, उशीर, मुँज, बावड़ घास, शलालु (देवदारु का सुगन्धित पुष्प), और्ण (ऊन और ऊनीवस्त्र), भँग्य (भांग के बने वस्त्र, भँगेला, कोथला), कम्बल, प्रावार, पाण्डुकम्बल, अजिन (मृगचर्म), लाक्षा (लाख), थैले और बोरे, कुतुप (चमड़े के थैले, खालड़ू), क्षीर, दधि हैयगवीन (मक्खन - घी), रत्न, मणि और धातुएँ, मुख्यत: ताम्र और लौह, तथा पशु [८]।

इनके साथ जड़ी - बूटियां, अनेक प्रकार के विष, बांस - रिंगाल के उपकरण, भूर्जपत्र, हाथीदांत भी जोड़सकतेहैं। तङ्गणों की व्यापारिक वस्तुएँ सुवर्णचूर्ण, सुहागा, चमर, कम्बल, रत्न और उपरत्न, जड़ी - बूटियां, मधु, गङ्गाजल और नमक, पूर्ववत् चली-आरहीथीं [९]।

मार्ग—जनपद के केवल दक्षिणी भाग, भाबरप्रदेश में सुपथ थे। बुद्धकालीन शाक्य, बूलिय, कालाम, भग्ग, कोलिय, मल्ल और लिच्छिवी जनपदों के निगमों से व्यापारिक

१- द्रोणपर्व, १२१।४२-४३ २- द्रोणपर्व, १२१।२७ ३- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ५७

४- अप्पणजातक, जा० १, पृ० १७७ ५- असंकियजातक, जा० १ पृ० ४७७

६- सहिगुम्बजातक, जा० ५, पृ० १६ ७- द्र०, अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ४८

८- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० २३७

९- 'यद् वे पिपीलिकं नामं उद्धृतं यत् पिपीलिकैः। जातरूपं द्रोणमेय महार्पु पुञ्जशो नृपाः॥
कृष्णांल्ललामांश्चमरान् शुक्लांश्चान्याञ्छशिप्रभान्। हिमवत्पुष्पजं चैव स्वादु क्षौद्रं तथा वहु॥
उत्तरेभ्य: कुरुभ्यश्चाप्यपीढं माल्यमम्बुभिः। उत्तरादपि कैलासादोषधीः सुमहावलाः॥'
—— सभापर्व, ५२।२-७

मार्ग हिमालय की तलहटी में होकर अहिच्छत्रा, गोविषाण, अहोगङ्ग, कालकूट और स्रुघ्न होकर साकल पहुँचताथा। इस मार्ग पर जल, घास, तृण, ईंधन और पड़ावयोग्य स्थानों का बाहुल्य था। नदियों को पारकरने की सुविधा थी। दिनभर और सभी ऋतुओं में भारवाही पशु चलसकतेथे। बुद्ध भगवान् भी इस मार्ग पर चलकर उशीरगिरि (चण्डी की पहाड़ी) तक पहुँचेथे [१]।

जनपद के शेष मार्ग दुर्गम कुपथ थे [२]। पाणिनि ने दुर्गम पर्वतीय मार्गों में से अजपथ और शँकुपथ का उल्लेख कियाहै [३]। पालि महानिद्देस में इन कुपथों की सूची में बणुपथ, अजपथ, मेण्ड्पथ, सँकुपथ, छत्तपथ, वँसपथ, सकुणपथ, मूसिकपथ, दरीपथ तथा वेत्तचारपथ गिनेगएहैं [४]।

इन विकटपथों पर चलनेवाले तङ्गणों की रोमांचकारी गाथाओं को समकालीन सार्थवाहों ने दूर - दूर तक पहुँचादियाथा। फलतः बृहत्कथा के आधार पर बने प्राकृत ग्रन्थों में तङ्गणों के इन विकटमार्गों का रोचक वर्णन मिलताहै [५]।

इन मार्गों पर चलने का साहस करने से पूर्व पूरी तय्यारी करनीपड़तीथी। अपने साथ भोजनसामग्री, ऊन और चमड़े के वस्त्र, औषधियां, अस्त्र - शस्त्र, भूत - प्रेतों और यक्षों के प्रकोप से बचने केलिए मन्त्र- तन्त्र, लोहे की कीलें, हथोड़े, हीरे के बर्मे, तुम्बुर (टिम्मर) का चूर्ण, रस्सियां, चमड़े के थैले, लम्बे बांस आदि लेजानेपड़तेथे। अकेले व्यक्ति केलिए इन मार्गों पर चलना असम्भव था [६]।

मैदान से आगे का मार्ग बांस की घनी झाड़ियों से प्रतिवर्ष ढकजाताथा। उसे काटकर 'वँशपथ' बनानापड़ताथा। आगे पर्वतीय चढ़ाई के पथरीले, सँकीर्ण 'दरीपथों' पर सम्भल - सम्भलकर पग रखनापड़ताथा। निरन्तर चढ़ाई - उतार से भरे मार्ग पर कई अति सँकीर्ण 'मूषिकपथों' से आगे बढ़नापड़ताथा। ऊँचे डांडों के अति सँकरे मार्ग, जिनपर भेड़ - बकरियां ही चलसकतीथीं, 'मेंढ़पथ' या 'अजपथ' कहलातेथे।

हिमपात या हिमानीस्खलन से टूटे मार्गों की नङ्गी सीधीखड़ी चट्टानोंवाले 'शँकुमार्ग' पर सामग्री को थैले में रख उसे कसकर शरीर से बांधकर बानर की भांति, हाथ-पैरों से रेंकतेहुए चढनापड़ताथा। हथेलियों पर पसीना आने पर उसे टिम्मर के चूर्ण से सुखाकर आगे खिसकतेथे [७]।

१- भरतसिंह उपाध्याय — बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ८९

२- 'निराहारा हंसमार्गाः कुपथास्तंगणाः खशाः' — वामनपुराण की जनपद-सूची।

३-४- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २३९

५- वियाह पण्णति, शतक ३; सूत्र कृतांग ३।३।१८; आवश्यकचूर्णि, पृ० १२०; वसुदेवहिंडी अ० ४ आवश्यकनियुँक्ति में अयोग्य शिष्य-प्रकरण; कुवलयमाला, भवभावना, बृहत्कथाकोष, ३।२; जगदीशचन्द्र जैन — प्राकृतसाहित्य का इतिहास, पृ० ७०

६- डबराल — उत्तराखण्ड के भोटांतिक, पृ० ४५

७- मोतीचन्द्र—सार्थवाह, पृ० १३२

फिसलनेवाली चट्टानों पर हीरे के बर्मे से छेदकरके कीलें ठोककर चढ़ना - उतरना पड़ताथा [१]। सीधे भेलोंवाले 'छत्तपथ' की चट्टानों पर कीलें ठोक, कीलों से बंधी रस्सी से लटकती चमड़े की थैली में बैठकर पैराशूट की विधि से नीचे उतरनापड़ताथा [२]।

स्पर्शमात्र से शिलावत् जड़ बनानेवाली 'शैलोदा' नदियों के हिमशीतल जल को, तट के रिंगालों को झुका, उनके सहारे उछलकर पार करनापड़ताथा [३]। मार्ग में खिसककर आई हिमानियां पारकरने केलिए छाती पर तख्ता बांध हाथ-पैरों से फिसलतेहुए आगे बढ़नापड़ताथा [४]।

उन दिनों मनुष्य कष्टसहिष्णु और साहसी होतेथे। तिनके के झूलों से गङ्गाजी पारकरना साधारण बात थी।

सामाजिक परम्पराएं—कुलिन्दजनपद की स्थापना कुलिन्द, वर्तमान कनैतजाति के पूर्वजों ने कीथी। उनकी भूलमूमि कलिन्द्रेन्द्रपर्वत (बन्दरपूंछ) के पदतल में कालिन्दिनि (यमुना) के स्रोतप्रदेश में थी। यहां से कुलिन्दजाति का पूर्व की ओर कालीगङ्गा तक तथा पश्चिम की ओर सतलुज, व्यास और राबी के स्रोतप्रदेश तक हुआथा।

जनपद के अन्तर्गत अगणित छोटे-छोटे उपजनपद थे। जिनकी स्थापना करनेवाले जन के सभी परिवार अपना सम्बन्ध किसी एक मूलपुरुष से जोड़तेथे [५]। तथा उस मूलपुरुष के गांव को अपना अभिजन या मूलगांव समझतेथे [६]। अन्यत्र जाबसने पर भी अपने उस पूर्वज और उसके मूलगांव की स्मृति बनाएरखतेथे [७]। परिवारों के बढ़जाने पर जन द्वारा बसाएहुए जनपद का क्षेत्र भी बढ़ताजाताथा। पर उसका नाम मूलगांव से ही सम्बन्धित रहताथा। और उस जनपद पर उसे बसानेवाले जन की सत्ता रहतीथी [८]।

यह प्रथा आजतक उत्तराखण्ड में चलीआतीहै। उदाहरणार्थ कफोलागांव बसाने वाले व्यक्ति की सन्तान कफोलाबिष्ट कहलाई। उसके वंशजों के परिवार जिस क्षेत्र में फैले वह कफोलस्यूं कहलाया। अन्य गांवों में जाबसने पर भी मूलपुरुष के वंशज सदा कफोलाबिष्ट ही कहलातेरहे। कफोलस्यूं जनपद की शासनसत्ता (थोकदारी - सयाणाचारी) कफोलाबिष्ट-परिवार में बनीरही।

महाभारत के अनुसार कुलिन्दजनपद में, जो गङ्गाद्वार (हरिद्वार) से हिमालय तक फैला था, निम्न जातियां बसीथीं :—

एकासन या स्थिरवासी खशजाति [९],

१-२- मोतीचन्द्र — सार्थवाह, पृ० १४७ ३- भवभावना—उ० जैन —प्राकृतसाहित्य का इतिहास, पृ० ५१३ ४- द्र० शेरिंग—वेस्टर्नतिबेट ऐंड ब्रिटिश बोर्डर लैंड, पृ० १३२-३३।

५- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४२६-२७ ६- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ४२६

७- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ४२७ ८- अग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ४३० - ३१

९- 'खशा एकासना ज्योहा: प्रदरा: दीर्घवेणिका:
पशुपाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणा: परतङ्गणा: '।

तथा— 'किरातराज्ञं विषयं सुबाहो: पीनांस्तुषारान् दरदांश्च सर्वान् '।

— सभापर्व, ५२।३ (संशोधित); वनपर्व १७७।११

ज्योहा या जोहारी भोटांतिकजाति [१],
दीर्घवेणिक या लम्बी घम्मिल रखनेवाली प्रदरजाति [२],
पशुप या पशुपालक कुलिन्दजाति [३],
तङ्गण और उसकी पड़ोसी परतङ्गणजाति [४],
किरातजाति [५],
षँड भुषंड तुषार और दरदजाति [६]।

मनुस्मृति तथा महाभारत में इन जातियों की गणना म्लेच्छ, शूद्र या वृषल क्षत्रियों में कीगईहै [७]।

इनके अतिरिक्त तीर्थों और आश्रमों में कुछ ब्राह्मण भी बसेथे [८]। गङ्गा - यमुना के पुनीत तटों पर उत्तरवेदिककाल से ही विद्वान् तपस्वी ब्राह्मणों और ऋषि - मुनियों के आश्रम बननेलगेथे।

धीरे - धीरे वृषल क्षत्रिय कहलानेवाली जातियां क्षत्रियसमाज में मिलगईं। इससे क्षत्रियों में दो वर्ग होगए। नए - पुराने परिवारों के सम्मिश्रण से उत्पन्न व्यक्ति। तथा जनपद के शासन में भाग लेने के अधिकारी प्राचीन जन के वँशज। इनके लिए राजन्य (राणा या रणौत) शब्द का प्रयोग होनेलगा [९]।

ब्राह्मण और क्षत्रियों के पश्चात् तीसरा वर्ग शूद्रों का था, जिनमें तीन उपवर्ग थे:—

(१) मृतप, चांडाल आदि जातियां, जिन्हें ग्राम, नगर या घोष से बाहर, कुछ दूरी पर बसनेदियाजाताथा [१०]।

(२) तक्षा (बढ़ई), अयस्कार (लोहार), तन्तुवाय (कोली या बुनकर) तथा रजक (धोबी)। इन जातियों के शूद्र यज्ञसम्बन्धी कार्यों में सम्मिलित होसकतेथे, पर उनके साथ खाने के बरतनों में छुआछूत बरतीजातीथी [११]।

(३) इनसे भी उच्चकोटि के शूद्र, जो द्विजातियों के घर का नेवता होने पर उन्हींके बरतनों में खा - पीसकतेथे [१२]।

भाषा—विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में शिष्टसमाज की बोलचाल की भाषा सँस्कृत थी [१३]। तीर्थ, आश्रम और नगरों में बसे ब्राह्मण एवँ शिष्ट क्षत्रिय-परिवार सँस्कृत का प्रयोग करतेथे। आर्येतरजातियों एवँ ग्रामों की जनता प्राकृतभाषा का प्रयोग करनेलगीथी। किन्तु सँस्कृतभाषा को समझलेतीथी। उत्तराखण्ड की वर्तमान बोलियों में वेदिक और लौकिक सँस्कृत के अनेक तत्सम शब्द आजतक सुरक्षित हैं।

१-६- 'खशा एकासना ज्योहाः प्रदराः दीर्घवेणिकाः। पशुपाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः'॥ तथा- 'किरातराज्ञं विषयं सुबाहोः पीनांस्तुषारान् दरदांश्च सर्वान्'।
— सभापर्व, ५२।३ (संशोधित); वनपर्व १७७।११

७- वनपर्व, १४५।१३; मनुस्मृति, १०।४३-४४
८- आदिपर्व, १५६।१५
९- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ९३
१०-१२- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ९३-९४
१३- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० २७९

नाम—नाम रखने की कुछ वर्तमान प्रथाएँ विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में भी प्रचलित थीं।

देवी - देवता आदि की कृपा से प्राप्त पुत्र के नाम पर दत्त और पुत्री के नाम पर दत्ता लगाने की प्रथा थी। इसी प्रकार नामांत में गुप्त - गुप्ता, सेन - सेना और रक्षित - रक्षिता लगाने की प्रथा थी [1]।

अभिजन (मूलगांव) सूचक नाम प्रचलित थे [2]। नारियां सुसराल में भी पितृगृह के नाम से पुकारीजातीथीं [3]। प्यार से नाम छोटा करके पुकारतेथे [4]।

शिक्षा—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और प्रव्रज्या—ये तीन आश्रम प्रचलित थे। ग्राम-नगरों में छोटे - छोटे गुरुकुलों के अतिरिक्त देश में तक्षशिला और कण्वाश्रम–जैसे विशाल गुरुकुल थे। जिनमें छोटे गुरुकुलों से शिक्षा प्राप्त माणवक प्रविष्ट होसकतेथे।

प्रसिद्ध आचार्यों के गुरुकुलों में पांच-पांच सौ तक शिष्य विद्याध्ययन करतेथे [5]। आचार्यभाग (शुल्क) एक सहस्र कार्षापण होताथा [6]। आचार्यभाग लानेवाले छात्र गुरुकुल में आचार्य के ज्येष्ठपुत्र के समान रहकर शिक्षा प्राप्तकरतेथे [7]। आचार्यभाग न लानेवाले धर्मशिष्य कहलातेथे [8]। वे दिन में आचार्य के घर में या खेतों में कार्य करते और रात्रि को विद्याध्ययन करतेथे [9]।

आचार्य शुभनक्षत्र में शिक्षादेना आरम्भ करतेथे [10]। मन्दबुद्धि छात्र सेवा तो अधिक करतेथे, पर विद्याध्ययन में सन्तोषजनक सफलता नहीं प्राप्त करतेथे [11]।

छात्र सादाजीवन बितातेथे। वे एकतल्ला जूता तथा पत्तों का छाता (छांतड़ी, मुणकी) धारणकरतेथे [12]। वस्त्रों का काम एक - दो छोटी धोतियां और एक - दो उपरनों से चललेताथा। मृगछाला, तृण का बिछौना और चादर या कम्बल का ओढ़ना, मिट्टी या काष्ट के पात्र और पत्तल, यही उनकी सारी सामग्री थीं।

धर्मशिष्यों को भोजनादि की व्यवस्था स्वयँ करनीपड़तीथी। वे जङ्गल से ईंधन और जलाशय से जल लाकर स्वयँ भोजन तय्यार करतेथे। यदि लकड़ी गीली होती तो माणवक चूल्हा फूँकते - फूँकते थकजाते [13]।

जब गांवों में भोज होता तो आचार्य शिष्यों के साथ खाली पेट ही पहुँचते [14]। किन्तु यदि ग्राम गुरुकुल से दूर होता तो प्रस्थान से पूर्व गुरु - शिष्य यवागू पीलेते [15]।

१- यथा ब्रह्मदत्त, इन्द्रगुप्त, नागरक्षिता, रविसेन, वासवदत्ता आदि

२- यथा माथुर (मथुरावासी), वर्तमान डबराल (डाबरगांव - वासी)

३- यथा पांचाली, माद्री, कैकेयी, वर्तमान जियाली (जियालगांव - निवासिनी)

४- यथा नागरक्षिता केलिए नागिला, बुद्धदत्त केलिए बुधिल, वर्तमान मेखली. मेखल्या, भुपुली

५- तिलमुट्ठिजातक, जा० ३, पृ० ७

६- असातमन्तजातक, जा० १, पृ० ४१७

७- १०- तिलमुट्ठिजातक, जा० ३, पृ० ८

११- नगलीसजातक, जा० २, पृ० ७७

१२- तिलमुट्ठिजातक, जा० ३, पृ० ७

१३-१५- वरणजातक, जा० १, पृ० ४५८

गुरु शिष्यों की ताड़ना भी करतेथे। मन्दबुद्धि शिष्य की पीठ पर बांस की छड़ी का बार - बार प्रहार होताथा [१]।

गुरुकुलों में अंगों सहित तीनों वेद, पञ्चम वेद इतिहास, व्याकरण, दर्शन और अङ्ग विद्या की शिक्षा पूर्ववत् दीजातीथी [२]। जैन[३] तथा बौद्ध आदि मतों के [४] प्रचार से भी गुरुकुलों की शिक्षा-पद्धति में अन्तर नहीं आयाथा।

बौद्ध पालीसाहित्य में कण्वाश्रम का, तथा जैन आगमसाहित्य में तक्षशिला का उल्लेख नहीं मिलता [५]। किन्तु केवल इसीलिए इनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जासकता। कण्वाश्रम में चारों वेद, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, शिक्षा तथा कल्प, इन छै वेदांगों की शिक्षा[६] का तथा स्थान, करण एवं प्रयत्नसहित शुद्ध उच्चारण की शिक्षा का प्रबन्ध था [७]!

बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध घर पर या स्थानीय गुरुकुलों में होताथा। दासीपुत्र और वेश्यापुत्र भी शिक्षा प्राप्त करसकतेथे।

बिवाह—बिवाह बड़ी आयु में होतेथे। गान्धर्वबिवाह सुप्रचलित थे। धन देकर भी बिवाह होतेथे। 'सहस्रेण वर्या' चांदी के एक सहस्र कार्षापण देकर खरीदीजानेवाली 'बांद' भी होतीथीं [८]। जनपद में बहुबिवाह, द्रौपदीबिवाह तथा विधवाबिवाह, सभी प्रचलित थे। बिवाह और पारिवारिक जीवन में नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे।

मामा और बुआ की पुत्रियों से आग्रहपूर्वक बिवाह कियाजाताथा। साले को अपनी बहिन देकर उसकी बहिन से बिवाह करने की प्रथा सुप्रचलित थी। जिसके प्रमाण आजतक चलेआतेहैं [९], बिवाह के अवसर पर मांस - भात का भोज परोसाजाताथा[१०]।

पुत्र—पुत्र को बड़ा महत्व दियाजाताथा [११]। पुत्रों में भी ज्येष्ठपुत्र को सर्वोपरि समझाजाताथा [१२]। कनीन आदि सभी प्रकार के पुत्र ग्राह्य थे। जन्मदिन, नामकरण और बिवाहसँस्कार धूमधाम से मनाएजातेथे [१३]।

अन्तिम संस्कार—मृतकों के दाह की प्रथा थी। शव - दाह के पश्चात् अस्थियों को मृतिकापात्र में रखकर गाड़ने की प्रथा थी। उनके ऊपर प्रायः छोटे - बड़े स्तूप (ईंट, पत्थर या मिट्टी के थूप - थुपड़े) बनाएजातेथे। यह प्रथा चिरकाल से चलीआतीथी [१४]। सतीप्रथा के उदाहरण बिरले मिलतेहैं।

१- तिलमुट्ठिजातक, जा० २, पृ० ८
२- ब्रह्मायुसुतंत, मज्झिमनिकाय, पृ० ३७३
३- जैन—जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० २९४
४- अस्सलायणसुतंत, मज्झियमनिकाय, पृ० २६७
५- जैन — पूर्वोक्त, पृ० २९८
६- आदिपर्व, ६९।४४
७- आदिपर्व, ६९।४
८- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १०२
९- यथा—साले की पत्नी को बहिन, बुआ के पति को मामा, मामा और बुआ के पुत्रों को भाई, ननद के पति को भाई, ननद के पिता को चाचा आदि कहने की प्रथा।
१०- जातक १, पृ० ३०४
११-१२- संयुत्तनिकाय, पृ० ७
१३- खंडहालजातक, जा० ६, पृ० १९२
१४- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४८७

शासनप्रबन्ध--पाणिनि ने कलकूट को एकराज जनपदों में गिनाहै [१]। सम्भवत: कलकूट (कालकूट - कालसी) सारे कुलिन्दजनपद की राजधानी थी। जनपद का राजवँश कलकोटि या कालकोटि कहलाताथा [२]। अ्रष्टाध्यायी से या किसी अ्रन्य स्रोत से इस जनपद के समकालीन राजा के नाम का पता नहीं लगता।

मारकण्डेयपुराण से विदित होताहै कि जनपद के पूर्वीभाग में गङ्गाजी अ्रौर कोसी के मध्य शासन करनेवाला जन, जिसकी राजधानी रामगङ्गा के तट पर थी, बड़ा शक्तिशाली था। कुणिन्दजन की यह शाखा (उपजन) नन्द भी कहलातीथी [३]।

पाणिनि के अ्रनुसार एकराज जनपदों का राजा अ्रपनी मन्त्रिपरिषद् की सहायता से शासन करताथा [३]। मुख्यमन्त्री प्राय: ब्राह्मण होताथा [४]। उसके लिए त्यागी, विद्वान् तथा राजशास्त्र में पारङ्गत होना अ्रावश्यक था [५]। मन्त्रिपरिषद् यदि उचित समझती तो राजा के अ्रादेश को ठुकरासकतीथी [६]।

मन्त्रिपरिषद् के अ्रतिरिक्त जनपद की समस्याअ्रों पर विचार-हेतु एक राजसभा होतीथी [७]। उसमें सारे जनपद के मुख्य जन के प्रत्येक परिवार का एक-एक प्रतिनिधि भाग लेताथा [८]। पूर्व की अ्रोर स्थित लच्छिवि, मल्ल अ्रादि जनपदों में भी यह प्रथा थी।

राजा अ्रपने कुलपुरोहित, सेनापति, राजमहिषी तथा युवराज से भी महत्वपूर्ण समस्याअ्रों पर विचार-विमर्ष करताथा। राजकुल के व्यक्तियों को अ्रादर की दृष्टि से देखाजाताथा। वे प्रासाद में रहतेथे। उनकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखाजाताथा। राजा के शरीर की रक्षा - हेतु उसके अ्रङ्गरक्षक साथ चलतेथे [९]।

क्षेत्रकर (भूमिकर) अ्राय के मुख्य साधनों में गिनाजाताथा [११]। खेतों की नाप - जोख रस्सियों के द्वारा कीजातीथी [१२]। खनिजों तथा वनवस्तुअ्रों के विक्रय, मार्गों की चुँगी एवँ नदीपार करने के कर से भी अ्राय होतीथी [१३]।

जन-साधारण की अ्रावश्यकताएँ कम थीं। ग्रामों की व्यवस्था जन की परम्परागत रीति - नीतियों के अ्रनुसार होतीथी।

१-२- अ्रग्निहोत्री—पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ४०६ ३- रैप्सन—कैम्ब्रिज हिस्टरी, जि० १, पृ० २८०; परजिटर मारकण्डेयपुराण, पृ० २९२-३८३ ४- अ्रग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३९०
५- अ्रग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ३९१ ६- अ्रग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ३९३ ७- अ्रग्रवाल—पूर्वोक्त, पृ० ३९२
८- अ्रष्टाध्यायी, २।४।२३
९- 'सभाराजा मनुष्यपूर्वा' —अ्रष्टाध्यायी, २।४।२३
१०- अ्रग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ३९७ ११- अ्रष्टाध्यायी, ३।२।२१ १२- कुरुधम्मजातक, जा० ३, पृ० २७६
१३- अ्रग्रवाल— पूर्वोक्त, पृ० ४०१

पाषण्ड-प्लावन

पाषण्डों के तीन वर्ग—विक्रमपूर्व पांचवीं-चौथी शती में भारत में मत-मतान्तरों की भारी बाढ़ आईथी। जिससे जन-साधारण का जीवन अत्यधिक प्रभावित हुआथा। उन दिनों मत - मतान्तरों केलिए 'पाषण्ड' शब्द का प्रयोग होताथा। अशोक और याज्ञवल्क[2], दोनों ने इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग कियाहै। वर्तमान समय में पाषण्ड के साथ 'ढोंग' भी चिपकारहताहै। वास्तव में ढोंग और पाषण्ड, दोनों मित्रों का चिरकाल से साहचर्य है[3]। इन ढोंग - पाषण्डों मेंसे अनेक के अभ्यास और विकास के केन्द्र उत्तराखण्ड में थे।

पाषण्डों के तीन मुख्य वर्ग थे। आस्तिक या परलोक पर विश्वास करनेवाले[4], नास्तिक या परलोक को न माननेवाले[5]। तथा दैष्टिक या केवल भाग्य पर विश्वास करनेवाले[6]। जन-साधारण का परलोक और भाग्य, दोनों पर विश्वास था। भाग्य को इस जन्म और पिछले जन्मों के कर्मों का फल मानाजाताथा। परलोक, भाग्य, कर्म और पुनर्जन्म को बन्धन मानकर उससे मुक्ति केलिए मोक्ष या निर्वाण प्राप्तकरना जीवन का लक्ष्य समझाजानेलगा[7]।

इस लक्ष्य की प्राप्ति केलिए दो मार्ग थे। प्रवृत्तिमार्ग या सँसार में लौकिक कर्मों को निभातेहुए सत्कर्मों से मोक्ष प्राप्तकरना। निवृत्तिमार्ग या लौकिक कर्मों का उत्तर-दायित्व त्यागकर, प्रव्रजित हो, मोक्ष या निर्वाण प्राप्तकरना।

प्रवृत्तिपरक : यज्ञ—याग—प्रवृत्तिमार्ग के अन्तर्गत द्विजातियों में वेदिक यज्ञ - याग की मान्यता थी। जैन और बौद्धमतों द्वारा वेदिक यज्ञों और ब्राह्मण पुरोहितों के विरुद्ध निरन्तर प्रचार किएजाने पर भी विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में वेदिक यज्ञों का प्रचुर प्रचलन था। कुलिन्द, कुरु, पांचाल, पँचनद और गान्धार में यज्ञों की मान्यता में विशेष अन्तर न आयाथा।

१- 'देवानां पिय पियदसि लाजा सबता इछति सब पाषण्ड बसेयु'। देवप्रिय प्रियदर्शी राजा की इच्छा है कि सभी पाषण्डों (मतावलम्बियों) को सर्वत्र बसने की सुविधा हो। — कालसी अभिलेख, ७

२- याज्ञवल्क - स्मृति, २।१८६-१९२ ३- अष्टाध्यायी, ५।२।७६ ४- अग्निहोत्री—पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ५६१ ५-६- अग्निहोत्री—पूर्वोक्त, पृ० ५६२

७- 'पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
वाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः॥' — शातातपस्मृति, १।५

अष्टाध्यायी में जिस धार्मिक अवस्था का चित्रण है उसका मुख्य आधार यज्ञ, विधि और देवपूजा थी [१]। अग्नि, इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, वृषाकपि तथा सूर्यादि वैदिक देवताओं की तुष्टि केलिए यज्ञादि किएजातेथे [२]। पाणिनि ने अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, राजसूय, बाजपेय आदि यज्ञों का वर्णन कियाहै [३]। अनेक प्रमाणों से विदित होताहै कि पाणिनि के युग में, यज्ञों की जीती - जागती परम्परा थी [४]।

ओंकार, वषट्कार, सावित्री, चारों वेद, इतिहास, पुराण, खिल - उपखिल, अङ्ग तथा उपाङ्ग एवँ व्याख्याग्रन्थों के विशिष्ट अभियानी देवताओं की कल्पना होचुकीथी। और उनसे रक्षा की याचना कीजातीथी [५]। तीन अग्नि, तीन वेद और तीन विद्याओं के ज्ञाताओं का स्मरण मङ्गलसूचक समझाजाताथा [६]।

यज्ञक्रिया और कर्मकांड की प्रयोगात्मक शिक्षा ब्राह्मण - बालक गुरुकुलों में प्राप्त करतेथे। उन्हें विभिन्न यज्ञों से सम्बन्धित ऋचाओं का विधिपूर्वक पाठकरने का अभ्यास करनाहोताथा। यज्ञों के अवसर पर अनेक विद्वान् उपस्थित होकर शास्त्रीय विषयों पर बाद - विबाद करतेथे। यज्ञों में वरण किएगए द्विजों को उन बाद - विबादों का उत्तरदेने केलिए प्रस्तुत होनापड़ताथा। इसलिए द्विजबालक गुरुकुलों में अनेक वर्षों तक शिक्षा प्राप्त कर अपने विषय का गम्भीर अध्ययन करतेथे [७]।

कण्वाश्रम—कुरु-पांचाल के पास वेदों की शिक्षा का महान् केन्द्र कण्वाश्रम में था। वहां चारों वेदों और छै वेदाङ्गों के अध्ययन - अध्यापन का प्रबन्ध था [८]। वहां स्थान, करण और प्रयत्नसहित शुद्ध उच्चारण की शिक्षा दीजातीथी। यज्ञों के अनुष्ठान तथा उनसे सम्बन्धित कर्मकांड की दीक्षा का प्रबन्ध था [९]।

इन विषयों की शिक्षादेने - हेतु निम्न योग्यता - सम्पन्न विद्वान् कण्वाश्रम में उपलब्ध थे [१०] :—

(१) पद और क्रमपूर्वक ऋचाओं का पाठ करनेवाले श्रेष्ठ ऋग्वेदीय ब्राह्मण,

(२) यज्ञविद्या और उसके अँगों के सुविज्ञ यजुर्वेदीय विद्वान्,

(३) नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले तथा मधुरस्वर से सामवेद का गानकरने में दक्ष सामवेदी महर्षि,

---

१-२- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३४९ ३- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ३६१-६२
४- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ३७४ ५- विष्णुपर्व, १०९।६-८ ६- विष्णुपर्व, १०९।१५
७- अग्रवाल– पूर्वोक्त, पृ० २९० ८- आदिपर्व, ६९।४४ ९- आदिपर्व, ६९।४१
१०- 'ऋचो वह्वृचमुख्यैश्च प्रेयमाणाः पदक्रमैः। शुश्राव मनुजव्याघ्रो विततेष्विह कर्मसु ।।
यज्ञविद्याङ्गविद्भिश्च यजुर्विद्भिश्च शोभितम्। मधुरैः सामगीतैश्च ऋषिभिर्नियतव्रतैः ।।
भारुण्डसामगीताभिरथर्वशिरसोद्गतैः। यतात्मभिः सुनियतैः शुशुभे स तदाश्रमः ।।
अथर्ववेदप्रवराः पूगयज्ञियसामगाः। संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमगुतां तु ते ।।
— आदिपर्व, ७०।३७-४०

(४) मन को सँयम में रखकर नियमपूर्वक उत्तम व्रत का पालनकरनेवाले, भारुण्ड सँज्ञक साममन्त्रों के गीतगाने एवँ अथर्ववेद के मन्त्रों का उच्चारण करने में प्रवीण सामवेदी - अथर्ववेदी महर्षि,

(५) पद और क्रमसहित अपनी - अपनी सँहिताओं के पाठ में लीन श्रेष्ट अथर्ववेदीय विद्वान् ,

(६) पूगयज्ञिय नामक साम के गायक सामवेदीय महर्षि ।

इनके चरणों में बैठकर शब्द - सँस्कार से सम्पन्न द्विजातीय शिष्यसमुदाय स्थान, करण और प्रयत्न का ध्यान रखतेहुए सँहिताओं का मौखिक पाठ करताथा [१] ।

कर्मकांड, न्याय, तर्क, दर्शनशास्त्र, व्याकरण आदि वेदांग, सांख्य, पशु - पक्षियों की बोलियां, तथा पुराण आदि आर्षग्रन्थों के तत्वों की शिक्षा केलिए अधोलिखित प्रवीण विद्वान् आश्रम में थे [२] ।

(१) यज्ञवेदी की रचना के ज्ञाता,

(२) क्रम और शिक्षा में कुशल,

(३) न्याय के तत्व और आत्मानुभव से सम्पन्न वेदों के पारङ्गत विद्वान्,

(४) परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनेक वाक्यों की एकवाक्यता करने में कुशल तथा विभिन्न शाखाओं की गुणविधियों का एक शाखा में उपसँहार करने की कला में निपुण,

(५) उपासनादि विशेष कार्यों के ज्ञाता,

(६) मोक्षधर्म में तत्पर,

(७) अपने सिद्धान्तों की स्थापना करके, उसमें शङ्का उठाकर उसके परिहारपूर्वक उस सिद्धान्त के समर्थन में परम प्रवीण,

(८) व्याकरण छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, शिक्षा तथा कल्प - वेद के इन छै अङ्गों के विद्वान् ,

(९) पदार्थ, शुभाशुभ कर्म, सत्व, रज, तम आदि गुणों के तथा कार्य (दृश्यवर्ग) और कारण (मूलप्रकृति) के विशेषज्ञ,

(१०) पशु - पक्षियों की बोलियां समझनेवाले,

१- 'शब्दसंस्कारसंयुक्तै ब्रुवद्भिश्चापरैर्द्विजैः ।
नादित; स बभौ श्रीमान् ब्रह्मलोक इवापर:' ।। ——आदिपर्व, ७०।४१

२- 'यज्ञसंस्तरविद्भिश्च क्रमशिक्षाविशारदैः । न्यायतत्वात्मविज्ञानसम्पन्नैर्वेदपारगैः ॥
नानावाक्यसमाहार समवायविशारदैः । विशेषकार्यविद्भिश्च मोक्षधर्मपरायणैः ॥
स्थापनाक्षेपसिद्धांतपरमार्थज्ञतां गतैः । शब्दच्छन्दोनिरुक्तज्ञैः कालज्ञानविशारदैः ॥
द्रव्यकर्मगुणज्ञैश्च कार्यकारणवेदिभिः । पक्षिवानररुतज्ञैश्च व्यासग्रन्थसमाश्रितैः ॥
नानाशास्त्रेषु मुख्यैश्च शुश्राव स्वनमीरितम् । लोकायतिकमुख्यैश्च समन्तादनुनादितम्' ॥
— आदिपर्व, ७०।४२-४६

(११) व्यासग्रन्थ का आश्रय लेकर मन्त्रों की व्याख्या करनेवाले,

(१२) लोकायत (चार्वाक्) आदि नास्तिक मतों तथा विभिन्न शास्त्रों के मर्मज्ञ।

कण्वाश्रम में अग्निहोत्रगृह थे [१]। वहां नियमपूर्वक उत्तम एवँ कठोर व्रत का पालन करनेवाले श्रेष्ठ एवँ बुद्धिमान ब्राह्मण जप और होम में लीन रहतेथे [२]। यज्ञक्रिया और कर्मकांडादि विषयों की प्रयोगात्मक शिक्षा मिलती थी [३]। विद्वान् याज्ञिक जब जप-यज्ञ आदि करानेवाले व्यक्तियों के यहां यज्ञकरने जातेथे तो अपने शिष्यों को भी साथ लेजातेथे।

बदरिकाश्रम—बदरिकाश्रम में इसीप्रकार यज्ञादि की शिक्षा दीजातीथी। जब शिष्य गुरुकृपा से वेदाध्ययन से सम्पन्न, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय सामवेद में पारङ्गत और तपःपूत बनजाते तो गुरु का आशीर्वाद लेकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करतेथे [४]। वे द्विजातियों से यज्ञ करातेथे और वेदों की शिक्षादेने में तत्पर रहतेथे [५]।

उन दिनों उत्तरापथ, पंचनद और गांधार में जिस प्रकार वेदों की शिक्षा और कर्मकांड की ज्योति तक्षशिला के गुरुकुलों द्वारा जलरहीथी, उसीप्रकार मध्यदेश, कुरु-पांचाल में कण्वाश्रम आदि उत्तराखण्ड के आश्रमों के द्वारा भी थी। यज्ञ करवाने के इच्छुक नरेश इन आश्रमों में पहुँचकर विद्वान् ब्राह्मणों का वरण करतेथे। पांचालनरेश द्रुपद उत्तराखण्ड की एक ब्राह्मण बस्ती में गएथे, जिसमें एक भी ब्राह्मण ऐसा न था जिसने विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालनकरके वेद - वेदांग की शिक्षा न प्राप्त कीहो। यहां से वे अपने यज्ञ केलिए याज और उपयाज नामक भ्राताओं को लेगएथे [६]। सम्पूर्ण वेदों के विद्वान् श्रेष्ठ गढ़वाली ब्राह्मण धौम्य को पुरोहित - रूप में पाकर पाण्डवों ने अपने को सनाथ समझाथा [७]।

भक्ति-पूजा-परम्परा—वेदिक कर्मकांड के साथ विभिन्न वृक्षदेवों, यक्षों, नागों, मातृदेवियों आदि अनेक देवी - देवताओं की भक्ति भी लोक में प्रचलित थी। भक्ति की परम्परा सिन्धु - हिन्दु - सभ्यता के दिनों से ही चलीआतीथी। किन्तु वेदिक कर्मकांड के सन्मुख उसे शिष्ट-समाज में मान्यता न मिलीथी। छान्दोग्य उपनिषद् में तथा गीता में उसे मान्यता मिली।

वासुदेव कृष्ण ने घोषणा कीथी – ईश्वर जिन रूपों प्रकट होसकताहै, उनकी सँख्या असीम है [८]। जो व्यक्ति ईश्वर को, जिस रूप में श्रद्धापूर्वक भजताहै, उसको उसी रूप की भक्ति से सफलता प्राप्त होसकतीहै [९]।

१- आदिपर्व, ७०।१९-२०
२-३- आदिपर्व, ७०।४७
४- शान्तिपर्व, ३२७।३४-३५
५- शान्तिपर्व, ३२८।८-९
६- आदिपर्व, १६६।५-७
७- आदिपर्व, १८२।७-९

८- 'यश्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन !
न तदस्ति विना यत् स्यात् मया भूतं चराचरं ।।
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ! —गीता, १०।३९-४०

९- 'सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते' ।। —गीता, ६।३१

सभी तेजस्वियों में ईश्वर का अँश उपस्थित है[1]। वृक्षों में अश्वस्थ (पीपल)[2], सर्पों में वासुकि[3], नागों में अनन्त (शेष)[4], यक्ष - राक्षसों में वित्तेश कुबेर[5], सेनानियों में स्कन्द[6], देवताओं में इन्द्र[7], आदित्यों में विष्णु[8] तथा रुद्रों में शङ्कर[9], सभी में एक ही ईश्वर का अँश व्याप्त है।

अपना मन स्थिर करके जो ईश्वर के किसी भी रूप की भक्तिपूर्वक पूजा करताहै वह ईश्वर तक पहुँचजाताहै[10]। वेद, तपस्या, दान और यज्ञ आदि से ईश्वर उतनी सरलता से नहीं प्राप्त होता जितनी सरलता से भक्ति से[11]। प्रेमपूर्वक, शुद्ध हृदय से ईश्वर के किसी भी रूप को, जो उपहार दियाजाताहै, चाहे वह पत्र, पुष्प या जल ही हो, उसे ईश्वर अवश्य स्वीकार करताहै[12]।

इन सिद्धान्तों के प्रचार से जन - साधारण में पहले से मान्य वृक्षदेव, नाग, यक्ष, मातृदेवी आदि ग्रामदेवी - देवताओं की प्रतिष्ठा बढ़गई[13]। उन्हें शिप्टसमाज में भी मान्यता मिलगई। फलतः जटिल कर्मकांड से सन्तुष्ट होनेवाले वेदिक देवी - देवताओं के प्रति आकर्षण घटनेलगा[14]।

'यो यो यां यां तनु भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्यां तस्यांचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्'॥ — गीता, ७।२१

१- 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय! प्रभास्मि शशिसूर्ययोः। प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चामि विभावसौ। जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ! सनातनम्। बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्'॥
— गीता, ७।८।१०

२-९- 'अहमात्मा गुडाकेश! सर्वभूताशयस्थितः। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः॥
रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्। सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः॥
अश्वस्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः। अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्'॥
— गीता, १०।२०-२९

१०- मत्कर्मकृत् मत् परमो मद् गतः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव!' — गीता, ११।५५
'मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धयापरमोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः'॥ — गीता, १२।२

११- 'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं द्रष्टवानसि मां यथा'॥ — गीता, ११।५३

१२- 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः'॥ — गीता, ९।२६

१३- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३५१-५२ १४- अग्रवाल – पूर्वोक्त, पृ० ३५२

पूजा की विधि में परिवर्तन आगया। यज्ञ - हवन के स्थान पर ग्रामदेवी-देवताओं की काष्ट, शिला तथा धातु की प्रतिमाएं बनाकर उनकी पत्र, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, वाद्य, नृत्य आदि द्वारा पूजने की परम्परागत विधि सर्वमान्य होनेलगी [१]।

वृक्षदेव—वृक्षदेवों की सर्वाधिक मान्यता थी। वे सर्वत्र, घरों के पास, खेतों की मींडों पर, घाटी - पर्वतों पर, वन - उपवनों में सुलभ थे। मान्यता थी कि देव वृक्षों पर निवास करतेहैं। वृक्ष के तने के चारों ओर वेदिका बनाकर एक अनगढ़ शिला या काष्टमूर्ति तने के सहारे खड़ीकीजातीथी [२]। उसके पास लौहदीप, त्रिशूल आदि रखेजातेथे।

वृक्षदेव की सन्तुष्टि के लिए उस प्रतिमा का जल या दुग्ध से अभिषक, पुष्प, धूप-दीपादि से पूजन करके प्रदक्षिणा और नमस्कार करतेथे [३]। वृक्षदेव को भेड़ - बकरी, सुअर या कुक्कुट की वलि दीजातीथी [४]। आंतों पर बत्ती जलाने से वृक्षदेव बड़े प्रसन्न होतेथे [५]। ऐसी पूजा-प्रथा उत्तराखण्ड में आजतक प्रचलित है [६]।

दुर्गम मार्गों पर, रक्षा का भार तथा पथभ्रष्ट होने पर मार्ग प्रदर्शित करने का कार्य वृक्षदेव को सौंपाजाताथा [७]। वन में व्याघ्रादि पशुओं और चोर - डाकुओं से मनुष्यों और पालतू पशुओं की रक्षा केलिए उनकी मनौती मानतेथे [८]। जो वृक्षदेव पथिकों की रक्षा न करता उसकी पूजा छूटजातीथी [९]। वृक्ष को काटडालने की धमकीदेने पर भी वृक्षदेव कामना पूरी करदेतेथे [१०]। वृक्षदेव - पूजा इतनी अधिक प्रचलित थी कि अपने राज्य की कल्याण - कामना - हेतु इस जनपद के कुणिन्दनरेश अपनी मुद्राओं पर निरन्तर सवेदी वृक्ष की आकृतियां बनायाकरतेथे।

नाग-पूजा—सर्पों का बाहुल्य था। उन्हें नागदेवता का लौकिक - रूप समझा-जाताथा। सर्पों को देखकर लोग उनकी पूजा करतेथे। उन्हें अनेक मुखवाले कुतुपों से दूध पिलातेथे। ऐसे कुतुप मनियारगढ (राजघाट) की खुदाई से भी प्राप्त हुएहैं [११]।

नागों को असीम शक्तिसम्पन्न समझाजाताथा। कल्पना थी कि उनके नेत्र रक्त और कन्धे विशाल होतेहैं। वे अलंकार धारण करते, दाढ़ी - मूंछ घुटाते और रक्तचन्दन

१- अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३५१-५२ २- जैन–जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० २६७ ३- दुम्मेधजातक, जा० १, पृ० ३७७ ४- आयाचितभत्तजातक, जा० १, पृ० २६७ ५- दुम्मेधजातक, जा० १, पृ० ३८४

६- ' To see a Pahari family sacrificing in the forest the sheep or goat for a victim, the pastoral appearance of the people, the fire and the rude alter of rough stone, carry one back, at once to early ages of the world ' — मौन्टेनियर–ए समर रैम्बल इन दि हिमालयाज, पृ० १८७

७- वृहत्कल्पभाष्य, १।३१०८ ८-९- गामणीचण्डजातक, जा० ३, पृ० ३५

१०- हत्थिपालजातक, जा० ५, पृ० ६७ ११- राय गोविन्दचन्द–प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन, पृ० ६७

का लेप करतेथे [१] । उनके पास मणियों और स्वर्ण के ढेर होतेथे। मान्यता थी कि दबेहुए कोष के ऊपर नाग बैठारहताहै [२] ।

नाग खेतों में अन्नों की वृद्धि, गोष्ट में पशुओं के दूध की वृद्धि तथा घर में सन्तान, सुख और सम्पत्ति की वृद्धिकरने की शक्ति रखतेथे। उनकी पूजा से अनेक प्रकार के रोग और विष उतरजातेथे।

सात्विक या दूधियानाग केवल दूध और खीर की वलि ग्रहण करतेथे। राजसी - तामसी या डौंडिया नागों की तृप्ति मत्स्य, मांस और सुरा के बिना न होतीथी [३] । शेष वासुकि. विशालाक्ष, ऐलापत्र, तक्षक, कर्कोटक तथा धनञ्जय आदि नागों को सत्यधर्मा और धरती का भारवहन करनेवाला मानाजाताथा [४] । उनसे रक्षा की प्रार्थना कीजातीथी [५] । बौद्धभिक्षु भी सोने से पूर्व नागों की स्तुति करतेथे [६] ।

नागपूजा की लोकव्यापकता के कारण जैन, बौद्ध, शैव, भागवत, आदि सभी मतों के प्रचारकों ने नागों का सम्बन्ध अपने महापुरुषों या आराध्यों से जोड़कर नागों को उनका सेवक और प्रिय बतलाकर नाग - उपासकों को अपनी ओर आकर्षित करने के अनेक प्रयत्न किएथे। किन्तु इससे नागपूजा में कुछ भी अन्तर न आया [७] । कुणिन्दनरेशों की मुद्राओं पर नाग का चित्रण होताथा। आज भी इस जनपद में घर - घर नागपूजा होतीहै।

यक्ष–पूजा— यक्ष-पूजा इतनी अधिक प्रचलित थी कि सँस्कृत में यक्ष शब्द का प्रयोग ही पूजा के अर्थ में चलपड़ाथा [८] । यक्ष पुत्र, धन, सम्पत्ति, सुरक्षा और सिद्धियां देने में बड़े उदार मानेजातेथे [९] । निर्जन, वनप्रदेशों, नदी-तटों, पर्वतों और मरुस्थलों में वे आकस्मिक विपत्तियों से रक्षा करतेथे [१०] ।

शत्रु, रोग और महामारी से रक्षाहेतु प्रत्येक ग्राम-नगर में यक्षायतन बनेहोतेथे [११]। बौद्धग्रन्थ महामयूरी में भारत के छोटे - बड़े नगरों के रक्षक यक्षों की एक लम्बी सूची है।

उसके अनुसार इस जनपद के स्रुघ्ननगर में सिद्धयात्रयक्ष, स्रुघ्नप्रदेश के वनों में दुर्योधनयक्ष, अलकापुरी में अलकयक्ष, खशदेश (गढ़वाल - कुमाऊँ) में धर्मपालयक्ष तथा सारे कुलिन्ददेश में ऊष्ट्रपादयक्ष की मनौती मानीजातीथी [११]। हिमालय की तलहटी में

१- चम्पेयजातक, जा० ४. पृ० ४६ — २- गामणीचण्डजातक, जा० २, पृ० ३५

३- काकजातक, जा० २, पृ० १४३ — ४-५- विष्णुपर्व, १०६।१७-२० — ६- चुल्लवग्ग, पृ० ४२१

७- जैन — जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४३५-३७ — ८- संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुभ, पृ० ६१६

९- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १६१

१०- मोतीचन्द्र — काशी का इतिहास, पृ० ३३ — ११- जैन — पूर्वोक्त, पृ० ४३७

११- 'दुर्योधनश्च स्रुघ्नेषु अर्जुनाश्चार्जुनावने। सिद्धयात्रस्तथा स्रुघ्ने स्थूनायां स्थून एव च ।।
ऊष्ट्रपादः कुलिन्देषु मण्डलो मण्डलासने। धर्मपालश्च खशेषु वाह्लायां चैव महाभुजः ।।
अहिच्छत्रायां गोपालो अलको अलकापुरे'। — महामयूरी, श्लोक, २३, ८२, ८४, १०३

स्रुघ्न से होकर जानेवाले महामार्ग पर यात्रा की सफलता के हेतु सिद्धयात्रयक्ष की मनौती मानीजातीथी। टिहरी - गढ़वाल के मध्यवर्ती भाग में आजतक दुर्योधनयक्ष की पूजा चलीआतीहै।

यक्षों की पूजा - हेतु चौराहों और मार्गों पर मत्स्य - मांस बिखेराजाताथा। तथा खप्परों में मदिरा भरकर रखीजातीथी [1]। वे भिक्षु - भिक्षुणियों पर भी चिपकने से न चूकतेथे। उन्हें हटाने केलिए सुअर का कच्चा मांस और रुधिर अर्पित करनापड़ताथा [2]।

इस जनपद के यक्षों को अतीव शक्तिसम्पन्न मानाजाताथा। वे अनेक प्रकार के अस्त्र- शस्त्र धारण करतेथे। वे कुवेर के सचिव [3], यक्षराज माणिभद्र के अधीन थे [4]। वे वेग में वायु के तुल्य थे। वे चाहते तो देवराज इन्द्र को भी अपने स्थान से हटासकतेथे [5]। श्वेतगिरि और मन्दराचल में माणिवरयक्ष और कुवेर का निवास था। विश्वास था कि इस प्रदेश में अट्ठासी सहस्र गन्धर्व, उनसे चौगुने किन्नर तथा यक्ष रहतेथे [6]। उन यक्षों तथा रक्षों से सुरक्षित रहने के कारण कुलिन्दजनपद के पर्वत अति दुर्गम समझेजातेथे [7]।

इस जनपद के सारे राठ - पठारप्रदेश और भोटांतिकप्रदेश में आज भी यक्षों की पूजा होतीहै। बदरिकाश्रम में विशाल यक्ष और माणाद्वार पर माणिभद्रयक्ष प्रहरी हैं। घण्टाकर्ण का घण्टा प्रत्येक डांडे पर आज भी गूँजताहै। निर्जन वनप्रदेश में पशुओं की रक्षा उसीके द्वारा होतीहै।

ग्रह और गण-पूजा— ग्रह और गण नामक क्रूर मानवेतर शक्तियों की पूजा भी प्रचलित थी। आह्निकस्तोत्र के अनुसार ग्रह महाभयँकर, महापराक्रमी, दर्पयुक्त और महाबली होतेथे [8]। वे ब्रह्मा, रुद्र और कार्तिकेय के मुख से उत्पन्न हुएथे [9]। वेद - वेदांगों में कुशल थे। वे मस्तक पर जटा और मुकुट धारण करतेथे। गले में यज्ञोपवीत, माथे पर सर्पों का मुकुट, कानों में कुण्डल और भुजाओ में भुजबन्ध धारण करतेथे [10]। उनके मुख पशुओं के समान और आकृतियां बिकराल होतीथीं। वे बावड़ी, पोखरे, कूप, समुद्र, नदी श्मशानभूमि, पर्वत, वृक्ष और सूने घरों में निवास करतेथे [11]।

गण पार्वती के रोष से उत्पन्न हुएथे। उनकी सँख्या सैकड़ों - सहस्रों थी। वे मन तथा वायु के समान वेगशाली थे। वे शक्तिमान् धैर्यवान्, ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। तथा युद्ध में शत्रुओं की सम्पूर्ण कामनाओं का विनाश करनेवाले थे। रात्रि और दिन में, दुर्गम सँकट के अवसर पर, जब - जब उनका स्मरण कियाजाताथा, तब - तब वे समस्त गणपति अपने गणों के साथ पहुँचकर सहायता करतेथे [12]।

१- सिगालजातक, जा० २, पृ० ४६ २- महावग्ग, पृ० २१८ ३- वनपर्व, १३६।७
४- वनपर्व, १३९।१४ ५- वनपर्व, १३९।८ ६- वनपर्व, १३९।५-६
७- वनपर्व, १३९।९-१० ८- विष्णुपर्व, १०९।६४ ९- विष्णुपर्व, १०९।६३
१०- विष्णुपर्व, १०९।६०-६८ ११- विष्णुपर्व, १०९।६९, ७३-७४ १२- विष्णुपर्व, १०९।८२-८४

मातृदेवियों की पूजा—पाणिनि के समय पार्वती या अम्बिका के चार रूपों-भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी और मृडाणी की पूजा प्रचलित थी [1] । ह्री, श्री, लक्ष्मी, स्वधा, पुष्टि, मेधा, तुष्टि, स्मृति, धृति, देवमाता अदिति, दैत्यों की माताएँ दिति, दनु और सिंहिका से भी रक्षा की प्रार्थना कीजातीथी [2] ।

इनके अतिरिक्त अनेक मातृकाओं की पूजा कीजातीथी, जो मुखमण्डी, बिडाली, पूतना, गन्धपूतना, शीतवातोष्णवैताली तथा रेवती आदि नामों से प्रसिद्ध थीं। उन्हें बालग्रह भी कहतेथे। उन्हें हास्य और क्रोध प्रिय था। वे नाना प्रकार के आभूषण और वेश धारण करतीथीं। रात्रि में विचरतीथीं। पर्वकाल में अपने दारुण स्वभाव का परिचय देतीथीं [3] । उनकी मेद, मज्जा, मद्य मांस और वसा से पूजा कीजातीथी [4] । रुद्राणी, भद्रकाली, भद्रा आदि अनेक जनमाताओं, देवकन्याओं और देवपत्नियों की भी मनौती मानीजातीथी [5] । इस जनपद में देमाता और नन्दादेवी की पूजा सुप्रचलित थी ।

पितर-पूजा—पितरों की पूजा का व्यापक प्रचार था। मृतकों के दाह के पश्चात्, पुष्पों (अस्थियों) को मृतिका पात्रमें रखकर किसी वृक्षादि के नीचे गाड़ने की प्रथा थी। विशिष्ट पुरुषों के शरीर-निधान (अस्थि-कलस) के ऊपर चैत्य या स्तूप बनाने की प्रथा थी। महापुरुषों के स्तूपों की सहस्रों दीपक आदि जलाकर, रात्रिभर पूजा कीजातीथी [6] ।

पितरों के श्राद्ध में त्रिवेदज्ञ या विद्वान् ब्राह्मणों को निमन्त्रण दियाजाताथा [7] । पितरों के नाम पर अर्पित मेंढे को नहलाकर, गले में माला पहिनाकर, पँचांगुलियों का चिह्न लगातेथे [8] । श्राद्ध में मांसभोजन विहित था ।

अन्य उपास्य—नक्षत्र, वार, दिवा, रात्रि, मास, ऋतु, सँवत्सर, सबमें देवत्व की कल्पना होगईथी [9] । इनकी लोक में पूजा चलपड़ीथी। उनकी कृपा से प्राप्त सन्तान के, उन्हींके द्वारा प्रदत्त सूचक नाम रखेजानेलगेथे [10] । वर्तमान पुष्यदत्त, रविदत्त, वसन्ती आदि नामों की परम्परा तबसे चलीआरहीहै [11] ।

मरीचि आदि महर्षि, कष्यप आदि चौदह मुनि, धौम्य आदि ऋषियों का, मङ्गलकामना - हेतु, वन्दन कियाजाताथा [12] । गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, चारण, निशाचर, खेचर आदि में विशिष्ट शक्ति की मान्यता पूर्ववत् चलतीरही।

शैवभागवत-सम्प्रदाय—लिंगरूप में शिवजी की उपासना सिन्धु - हिन्दु - सभ्यता के दिनों से चलीआतीथी। आर्येतर जातियों के इस देवता का पीछे वेदिक रुद्र से समन्वय करदियागया। श्वेतातरउपनिषद् में शिव को महादेव और केनउपनिषद् में उमा को

१- अष्टाध्यायी, ४।१।४९ २- विष्णुपर्व, १०९।१४ ३- विष्णुपर्व, १०९।६०-६२
४- विष्णुपर्व, १०९।५४ ५- विष्णुपर्व, १०९।५०-५२ ६- निदानकथा, जा० १, पृ० ९३
७-८- मतकभत्तजातक, जा० १, पृ० २६३ ९- अष्टाध्यायी, ४।२।२१
१०- अष्टाध्यायी, ४।३।३४, ३६, ३७ ११- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३५१
१२- विष्णुपर्व, १०९।११, १२, ८५-९५

हैमवती या हिमालय की पुत्री कहागयाहै। हिमालय से शिव और उमा का सम्बन्ध अति प्राचीनकाल में जुड़चुकाथा। शिवजी की जटा से निकलनेवाली गङ्गाजी के उद्‌गमप्रदेश को शिवा - उमा की निवासभूमि मानाजाताथा।

महाभारत - सम्पादन से पूर्व उत्तराखण्ड के आश्रमों में शैवसम्प्रदाय की दीक्षा देने की परम्परा चलपड़ीथी। गङ्गाजी के तट पर, उपमन्यु के आश्रम में श्रीकृष्ण ने शैवदीक्षा लेकर तप कियाथा [१]। यहीं इन्द्रकीलपर्वत पर अर्जुन को शिवजी के दर्शन प्राप्त हुएथे [२]।

जैन आगमों के अनुसार महावीर के जीवनकाल में स्कन्द और मुकुन्द की पूजा की भांति शिवजी की पूजा भी प्रचलित थी [३]। किसी पर्वत के निर्झर में शिव की प्रतिमा वर्तमान थी, जिसकी पत्र, पुष्प और गुग्गुल से पूजा कीजातीथी। उसका सिंचन और उपलेपन कियाजाताथा तथा उसे हस्तिमद से स्नान करायाजाताथा [४]। शिव की काष्ट-प्रतिमाएँ भी प्रचलित थीं। शैवभागवत् लोहे का त्रिशूल लेकर चलतेथे [५]।

कुशाणनरेशों के समय से मुद्राओं पर शिव का चित्र बननेलगा। जिसमें नन्दी, त्रिशूल, व्याघ्रचर्म और मुण्डमाला के भी अङ्कन हैं [६]। इस जनपद के कुणिन्दनरेशों की कुछ मुद्राओं पर त्रिशूल और परशुधारी शिव के चित्र मिलतेहैं [७]।

वैष्णवभागवत—विक्रमपूर्व पांचवीं-चौथी शती से बहुत पहले ही नारायणीय सम्प्रदाय का प्रचार होचुकाथा। जिसमें नर और नारायण की पूजा को महत्व दियागयाथा। महाभारत नर और नारायण की पूजा से ही आरम्भ होताहै [८]। नर और नारायण ने कई बार दस - दस सहस्र वर्षों तक बदरिकाश्रम में तपस्या कीथी [९]। महाभारत के वासुदेव कृष्ण को नारायण का तथा अर्जुन को नर का अवतार मानाजाताथा। नर और नारायण या वासुदेव और अर्जुन, एक ही पुरुष, दो रूपों में अवतरित हुएथे [१०]। नारायण की वेदिक विष्णु के साथ एकता स्थापित होजाने पर नारायणीय सम्प्रदाय वैष्णव - भागवत सम्प्रदाय कहलानेलगा।

नारायणीय सम्प्रदाय के प्रचार के साथ बदरिकाश्रम की तीर्थयात्रा चलपड़ी। महाभारत के अनुसार त्रिगुणातीत सनातन परमात्मा के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्तकरने - हेतु नारदजी बदरिकाश्रम में पहुँचेथे [११]। वहां नारायण ने उन्हें अपने चतुर्व्यूह स्वरूपों का परिचय

१- अनुशासनपर्व, अ० १०   २- वनपर्व, २७२।५१-७०   ३-४- जैन — जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४३५   ५- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३७५

६- पुरी — इंडिया अण्डर कुषाण्स, पृ० २१८-१९   ७- कनिंघम—क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७२   ८- 'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्'। — आदिपर्व, १।१

९- 'तेषां नारायण - नरौ तपस्तेपतुरव्ययौ।
बदर्याश्रममासाद्य शकटे कनकामयो'॥ — शान्तिपर्व, ३३४।१०; वनपर्व, ४०।१

१०- 'नारायणः नरश्चैव सत्वमेकं द्विधाकृतम्' — उद्योगपर्व, ४८।२०

११- शान्तिपर्व, ३३४।२८-४५

दियाथा [1] , तथा अपने भावी अवतारों की सूचना दीथी [2] ।

तबसे लोक में यह मान्यता चलपड़ी कि जिस भगवान् के भीतर देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर और महान् नागों सहित सम्पूर्ण लोक निवास करतेहैं, वह स्थायीरूप से सदा अपने आश्रम, बदरिकाश्रम में निवास करतेहैं [3] ।

नारायण के अवतार वासुदेव कृष्ण के साथ उनके चिरसखा नर के अवतार अर्जुन की भी लोक में पूजा चलपड़ीथी । वासुदेव के भक्त वासुदेवक और अर्जुन के भक्त अर्जुनक कहलातेथे [4] । सम्भवतः उसी युग में इस जनपद में पांडव, द्रौपदी, कुन्ती और कृष्ण, की नृत्य, गीत और वाद्य द्वारा उपासना करने की प्रथा आरम्भ हुईथी ।

वासुदेव के भक्त पुरुषों को भागवत और नारियों को भागवती कहनेकी प्रथा उसी युग से चली [5] । चार शतियों पश्चात् हम इस जनपद के नरेशों को अपनी मुद्राओं पर अपना विरुद 'भागवत' अङ्कितकरतेहुए पातेहैं [6] ।

वासुदेव कृष्ण के परिवार चतुर्व्यूह या पाञ्चरात्र की कल्पना, जिसमें सँकर्षण (बलदेव), वासुदेव (कृष्ण), प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और साम्ब को मिलाकर पञ्चवृष्णिवीरों की [7] पूजा को स्थान दियागया, और भी अधिक लोकप्रिय हुई [8] ।

महावीर के जीवनकाल में मुकुन्द (बलदेव) और वासुदेव की पूजा प्रचलित थी । महावीर जब गोशाल के साथ विहार करतेहुए आवत्तग्राम में पहुँचे तो वहां बलदेवगृह में हाथ में हल (नङ्गल) लिएहुए बलदेव की प्रतिमा विराजमान थी। मद्दणागांव में भी बलदेव की प्रतिमा थी [9] ।

निवृत्तिपरक : तपस्वी— विक्रमपूर्व पांचवीं शती के बहुत पहले से ही तापस या तपस्वी सम्प्रदायों का विकास होचलाथा। पाणिनि ने तापस [10] और तपस्वी [11] — या तपकरनेवाले भिक्षाचारियों का उल्लेख कियाहै । इन साधकों केलिए क्षमी, दमी, योगी,

---

१- शान्तिपर्व, ३३७।३३-३५ २- शान्तिपर्व, ३३९।७७-७८

३- 'इदं तदास्पदं कृत्स्नं यस्मिन् लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
सदेवासुरगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ' ।। — शान्तिपर्व, ३३४।१५-१६

४- 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ' — अष्टाध्यायी, ४।३।९८

५- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३५४ ६- कनिंघम—क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७२

७- 'यो वासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः । ज्ञेयः स एव राजेन्द्र ! जीवः संकर्षणः प्रभुः ।।
संकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते । प्रद्युम्नात् योऽनिरुद्धस्तु सोऽहंकारः स ईश्वरः ।।
अनिरुद्धात् तथा ब्रह्मा तन्नाभिकमलोद्भवः । ब्रह्मणा सर्वभुतानि चराणि स्थावराणि च ' ।।
— शान्तिपर्व, ३३९।४१, ४२, ७४

८- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ३५३ ९- आवश्यकनियुक्ति, ४८१; आवश्यकचूर्णी, पृ० २९४;
उ० - जैन—जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४३३

१०- महाभाष्य, ५।२।१०३ ११- महाभाष्य, ५।२।१०२

विवेकी, त्यागी – जैसे शब्दों के प्रयोग से इनकी साधना पर प्रकाश पड़ताहै। शरीर और मन का सँयम करने के कारण ये शान्त और दान्त भी कहलातेथे[१]।

तापस वनों में आश्रम बनाकर रहतेथे। वे अपने ध्यान में सँलग्न रहते, यज्ञ - याग करते, शरीर को कष्ट देने केलिए पञ्चाग्नि तपते तथा अपने धर्मसूत्रों का अध्ययन करतेथे[२]।

वे प्राय: कन्द, मूल, फल. छाल, पत्र, पुष्प और बीजों का सेवन करतेथे। कुछ ओखली और खलिहान के आस-पास पड़ेहुए या खेती कटजाने पर खेतों में झड़ेहुए अन्नों को बटोरकर निर्वाह करतेथे[३]। कठोर तपस्या से वे अपने शरीर को सुखाडालतेथे। बुद्ध ने बोधिप्राप्ति से पूर्व उस काल में प्रचलित अनेक कठोर व्रतों का अभ्यास कियाथा।

अति कठोर तप करनेवाले तपस्वी श्मशान में रहते, शवों का आसन बनाते तथा अस्थियों का तकिया बनाकर सोतेथे[४]। कुछ लोग त्याग की पराकाष्टा तक पहुँचजाते और अपने पुत्र, पुत्री तथा भार्या को भी दूसरों के पास दास - दासी बनाने केलिए सौंपदेतेथे[५]। स्वयँ वन में जा, अपने सुअँजित नेत्रों को निकालकर देवी - देवताओं को अर्पित करदेतेथे[६]। तथा अन्त में अपने अलँकृत शीश को भी स्वयँ काटकर चढ़ादेतेथे[७]।

अनेक तपस्वी अचेलक (नग्न) रहतेथे[८]; समाज में मान्य आचार - विचार के नियमों की अवहेलना करनेवाले मुक्ताचार (सरभँग) होतेथे[९]। हाथचट्टा तपस्वी भोजन - पान केलिए पात्रादि का प्रयोग न करके केवल हाथों का प्रयोग करतेथे[१०]। कुछ, एक घर से जो भिक्षा मिलती, उस दिन उसी पर निर्वाह करतेथे, अथवा केवल एक या दो कबल ही प्रतिदिन खातेथे[११]।

वे मद्य - मांस का सेवन नहीं करतेथे[१३]। स्वादिष्ट भोजनों को त्यागकर नीवार-दँदुल (झँगोरा - कोदा) पर निर्वाह करतेथे[१३]। खेतों में छूटे अन्न के बीजों को एकत्रित करके खाते[१४], या मांड, खली, तृण, और गोबर उठाकर चबातेथे[१५]। अथवा वन में वृक्षों से गिरेहुए फलों को खाकर ही जीवन बितातेथे[१६]।

वे श्मशान में फेंकेहुए, या शव पर लपेटेहुए वस्त्रों को धारण करते, मृगचर्म, वल्कलादि को लपेटलेतेथे[१७]। वे अपने हाथों से अपनी दाढ़ी और केशों को नोचडालतेथे[१८]। वे कांटों की शय्या पर बैठते - सोते अथवा जल में लेटेरहतेथे[१९]। उनके शरीर पर मैल की पपड़ियां जमजातीथीं[२०]।

वे एकान्तसेवन के प्रेमी थे। निर्जन वनों में विचरण करतेथे[२१]। यदि मनुष्य की आहट पाते तो झट वहां से उठ, दूर के घनघोर वनों में चलेजातेथे[२२]। जब गोष्ठों (खरकों) से गोपाल और पशु चलेजाते तो वे छिपकर वहां पहुँचते और दूधपीनेवाले बछड़ों का गोबर खातेथे[२३]। वे कभी - कभी अपने ही मल - मूत्र का सेवन करलेतेथे[२४]।

१- महाभाष्य, ७।२।२७ २- जैन—जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४१२
३- व्यवहारभाष्य, १०।२३-२५; जैन—पूर्वोक्त, पृ० ४१२ ४-७- लोमहंसजातक, जा० २, पृ० १३८
८-९- मज्झिम - निकाय, पृ० ४८ १०-२४- मज्झिम-निकाय, पृ० ४९

अल्पाहार से उनके शरीर अति कृश होजातेथे। युवावस्था में ही उनके अँग-प्रत्यँग अस्सी वर्ष के बूढ़े - जैसे होजाते [1], उनके कूल्हे ऊँट के पैर - जैसे बनजाते [2], उनकी पीठ की हड्डियां बँटी रस्सी के समान ऊँची-नीची होजातीं, पसलियां पुराने साल की कड़ियों - जैसी मुड़जातीं [3], आंख की पुतलियां धँसजातीं तथा पेट और पीठ आपस में जुड़जातेथे[4]। वे उठते समय चक्कर खाकर गिरपड़ते तथा उनके शिर के केश स्वयँ ही झड़पड़तेथे [5]।

उत्तराखण्ड में—कण्वाश्रम के कुछ तपस्वी फल - मूल और सूखे पत्ते खाकर जीवनयापन करतेथे [6]। कुछ केवल जल पीकर और कुछ केवल वायु पीकर ही तपस्या करतेथे [7]। उपमन्यु - आश्रम में बसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों में से कुछ केवल अग्निहोत्र का धुँआं, कुछ प्रतप्त सूर्य की किरणें, तथा कुछ दुग्धपान करके निर्वाह करतेथे [8]। कुछ केवल किरणों और फेनों का पान करतेथे। कुछ पीपल के पत्तों का आहार करतेथे। कुछ मृगों के साथ रहते और घास चरतेथे [9]।

कुछ तपस्वी पत्थरों से, या ओखली - मूसल से कूट - पीसकर कन्द - मूलादि का सेवन करतेथे। कुछ अपने दांतों से ही ओखली - मूसल का काम लेतेथे [10]। तपस्वियों के शरीर इतने दुर्वल होजातेथे कि उनके शरीर की नस - नाड़ियां स्पष्ट दिखाईदेतीथीं [11]।

ऐसे तापसों को उत्तराखण्ड के शान्त प्रदेश और गङ्गाजी के पुनीत तट बहुप्रिय थे। यत्र-तत्र छोटे - बड़े आश्रमों के अतिरिक्त कण्वाश्रम [12], उपमन्यु-आश्रम [13] और बदरिकाश्रम [14] में ऐसी कठोर तपस्या करनेवाले तापस बड़ी सँख्या में रहतेथे [15]।

कुछ तापस पांच - पांच सौ का दल बनाकर चलतेथे। ये वर्तमान मण्डलेश्वरों के समान थे। वे प्रायः हिमवन्त में विचरण करतेथे [16]। कुछ तापस कन्द - मूल, सड़े हुए पत्र तथा शैवाल का भक्षण करतेहुए पांच - पांच सौ का दल बनाकर अष्टापद, कैलासपर्वत की यात्रा करतेथे [17]। जैनग्रन्थों में उत्तरबांचल (उत्तरपांचाल) में स्थित कनकखल (कनखल) नाम के आश्रम में पांच सौ तापसों के रहने का उल्लेख है [18]।

परिव्राजक-श्रमण पूर्णतः गङ्गाजी के भक्त थे। वे गैरिक वस्त्र और मृगछाला धारणकरतेथे, शिर मुण्डित रखतेथे तथा गायों द्वारा उखाड़ी घास से शरीर को आच्छादित करते और धरती पर सोतेथे [19]। वे चारों वेद, इतिहास, निघँटु, षष्टितन्त्र, गणित, शिक्षा,

---

१-४- मज्झिम - निकाय, पृ० ५० ५- मज्झिम - निकाय, पृ० ५१ ६-७- आदिपर्व, ७४।१२ से आगे दा० पाठ ८- अनुशासनपर्व, १४।५६ ९- अनुशासनपर्व, १४।५७-५८
१०- अनुशासनपर्व, १४।५७ ११-१२- आदिपर्व, ७४।१२ से आगे दा० पाठ
१३- अनुशासनपर्व, १४।५८ १४- वनपर्व, १४५।३२ १५- द्र०, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ३६४-६६ १६- सोमनस्सजातक, जा० ४, पृ० ३२ - ३३
१७- उत्तराध्ययन टीका, १०, पृ० १५४ अ; उ० जैन—जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ०४१५
१८- आवश्यकचूर्णी, पृ० २७८; उ० जैन—पूर्वोक्त, पृ० ४१२ १९- जैन—पूर्वोक्त, पृ० ४१५-१६

कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिषशास्त्र तथा अन्य हिन्दुशास्त्रों के विद्वान् होतेथे। वे दान, धर्म और तीर्थस्नान का उपदेश देतेथे[१]।

उनकी मान्यता थी कि अपवित्रता दूरकरने की शक्ति केवल जल और मृतिका में है। वे गङ्गाजी की मृतिका को छोड़कर अन्य किसी वस्तु का शरीर पर लेप नहीं करतेथे[२]। ऐसे परिव्राजकों को उत्तराखण्ड की भूमि अतिप्रिय रहीहोगी।

जैनमत—महावीर और बुद्ध समकालीन थे। एक ही प्रदेश में उन्होंने विचरण करतेहुए अपने मतों का लोकभाषा में प्रचार कियाथा। इसलिए दोनों ने एक ही भाषा प्रयुक्त कीहोगी। वह भाषा, जैन और बौद्ध ग्रन्थों की अर्द्धमागधी और पाली की अपेक्षा सँस्कृत के अधिक निकट रहीहोगी।

जैन और बौद्ध सिद्धांतों में कुछ अन्तर होने पर भी उनमें अनेक समानताएँ थीं। वेदों की अपौरुषेयता और ब्राह्मणों की सर्वश्रेष्ठता उन्हें मान्य न थीं। वे वेदिक यज्ञों को निरर्थक समझतेथे। वे क्षत्रियजाति को ब्राह्मणजाति से श्रेष्ठतर घोषितकरतेथे।

महावीर ने कोशल, विदेह, मगध और अँगदेश में भ्रमण करतेहुए उपदेश दिएथे। जैन-गाथा के अनुसार जैनश्रमणों को पूर्व में अँग-मगध तक, पश्चिम में स्थूणा (स्थाण्वीश्वर) तक, दक्षिण में कौशाम्बी तक, तथा उत्तर में कुणाल तक भ्रमणकरने की छूट थी[३]। स्थूणानगर कुलिन्द जनपद की राजधानी कालकूट (कालसी) से अधिक दूर न था। इसलिए जैनश्रमणों को इस जनपद में पहुँचने की सुविधा थी।

जैनमत के आदितीर्थंकर ऋषभदेव के पिता राजा नाभि तपस्याकरने बदरिकाश्रम में पहुँचेथे[४]। ऋषभदेव अनेक वर्षों तक राज्यकरने के पश्चात् अपने पुत्र भरतचक्रवर्ती को राज्य देकर अष्टापदपर्वत – कैलास पर चलेगए। यहीं उन्हें निर्वाण प्राप्तहुआथा। यहां वड़ी धूमधाम से उनकी अस्थियों पर चैत्यों और स्तूपों का निर्माण कियागयाथा[५]।

जैन आदिपुराण के अनुसार आदितीर्थंकर के पुत्र भरतचक्रवर्ती ने कैलास की ओर जातेसमय इस जनपद को जीताथा और यहां के विद्याधरनरेश नमि और विनमि की बहिन सुभद्रा से बिवाह कियाथा[६]। उन्होंने भी अष्टापदपर्वत – कैलास पर चैत्य बनाएथे[७]। इसलिए तबसे, इस जनपद में अष्टापद – कैलास जैनियों के लिए पुण्यस्थल बनगयाथा। अष्टापद-कैलास गन्धमादन की एक शाखा का नाम था।

जैन आगमग्रन्थों के अनुसार जैनमत के प्रवर्तक ऋषभदेव, उनके पुत्र भरतचक्रवर्ती तथा अन्य प्राचीन जैनमत के प्रचारकों के सँसर्ग से अष्टापद – कैलास के निवासी विद्याधर जैनमत के भक्त बनगएथे। जिन भगवान् की वन्दना केलिए वे नन्दीश्वरद्वीप या अष्टापद-

१- जैन – जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४१५ - १६

२- औपपातिकसूत्र ३८, पृ० १७२-७६; उ० जैन–पूर्वोक्त, पृ० ४१६

३- कप्पसुत्त, १।५१-५२, उ० मजूमदार तथा पुसलकर – एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४१७

४- सीताराम–अयोध्या का इतिहास, पृ० ११५   ५- जैन–जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४   ६- महापुराण, ३२।१८४   ७- जैन–पूर्वोक्त, पृ० ४९१

कैलासपर्वत की यात्रा करतेथे। तथा कुछ विद्याधरों ने श्रमणदीक्षा ग्रहण करलीथी [१]।

विद्याधरों का मुख्य निवासस्थान वैताठ्यपर्वत था [२]। यह पर्वत गङ्गाजी की किसी धारा के स्रोतप्रदेश में था [३]। नमि और विनमि इसी प्रदेश के नरेश थे [४]। कालिदास ने विद्याधरों की मूलभूमि केदारनाथ के निकट मन्दाकिनी के तट पर बतलाईहै [५]। इससे अनुमान लगताहै कि जैनमत के प्रचारकों का, आरम्भ से ही, गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश की ओर ध्यान आकर्षित हुआथा। हिन्दुधर्म की सर्वपुनीत भूमि और समकालीन शैव एवँ नारायणीय सम्प्रदायों की केन्द्रभूमि में अपना प्रचारकरना उनके लिए आवश्यक था।

बौद्धमत—बौद्धमत के प्रचारकों ने आरम्भ से ही उत्तराखण्ड की ओर ध्यान दियाथा। स्वयँ भगवान् बुद्ध उत्तराखण्ड के दक्षिण में गङ्गाजी के तट पर स्थित उशीरध्वज पर्वत तक गएथे [६]। उशीरध्वज की पहिचान कनखल के पास उशीरगिरि (चण्डी की पहाड़ी) से कीजातीहै [७]। इसे अहोगङ्ग या अधोगङ्ग भी कहतेथे।

भगवान् बुद्ध ने उत्तराखण्ड के सारे भाबरप्रदेश को, गोविषाण से लेकर गङ्गातट तक, अपने चरणों से पुनीत कियाथा। जिससे बुद्ध के जीवनकाल में ही यह भूमि बौद्धों के लिए पुण्यभूमि बनगईथी।

दिव्यावदान के अनुसार तो भगवान् बुद्ध इस जनपद के सारे भाबरप्रदेश को पार करके उसके धुर - दक्षिण - पश्चिमी कोने पर स्थित स्रुघ्ननगर तक पहुँचेथे। इस नगर को भी उन्होंने धर्मोपदेश से गौरवान्वित कियाथा। दिव्यावदान में वर्णित इस अनुश्रुति का सातवीं शती में चीनी यात्री युवान्‌चाङ् ने भी उल्लेख कियाहै [८]।

उशीरध्वज पर्वत पर बौद्धमत का प्रभावशाली केन्द्र स्थापित होगया। स्थविर साणवासी सम्भूत, जो भगवान् बुद्ध के पट्टशिष्य आनन्द के शिष्य थे [९], तथा जिन्होंने अपने बाल्यकाल में भगवान् बुद्ध के दर्शन किएथे [१०], उशीरध्वज - अहोगङ्गपर्वत पर रहतेथे [११]। स्थविर साणवासी सम्भूत ने बौद्धधर्म की द्वितीय सँगीति में महत्वपूर्ण भाग लियाथा [१२]। उस समय उनकी आयु १२० वर्ष के लगभग रहीहोगी। अशोक के समय स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स भी अहोगङ्ग पर रहतेथे। अस्तु उत्तराखण्ड के कम से कम दक्षिणी भाग में, विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में बौद्धमत के प्रचार में अवश्य सफलता मिलीहोगी। पाण्डुवाला की खुदाई में प्राप्त पात्रों से भी इसकी पुष्टि होतीहै।

वेशभूषा—बुद्ध ने नियम बनायाथा कि पन्द्रह वर्ष से कम के बालक को श्रामणेर न बनायाजाए [१३]। जिसे श्रामणेर बनायाजाता उसकी दाढ़ी - मूँछ मुँडवाकर काषायवस्त्र

१- जैन — जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ३४८ २-४- जैन—पूर्वोक्त, पृ० ४६७
५- विक्रमोर्वशी, ४।२३ ६- भरतसिंह उपाध्याय—बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ८६
७- भरतसिंह उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० ८७ ८- उ० दत्त तथा वाजपेयी—उत्तरप्रदेश में बौद्धधर्म का विकास, पृ० २३६ ९- १२- महावंश, पृ० १९ १३- विनय - पिटक, पृ० ११६

पहनातेथे। उसके एक कन्धे पर उत्तरासँग रखवाकर भिक्षुओं की चरणवन्दना करवातेथे। वह उकड़ूँ बैठकर, हाथ जोड़कर कहताथा [1] :—

बुद्धँ शरणँ गच्छामि।
धम्मँ शरणँ गच्छामि।
सघँ शरणँ गच्छामि।

भिक्षु - भिक्षुणियों के वस्त्र प्रायः एक - से होतेथे। पीले रङ्ग में रङ्गे इनके वस्त्रों की सँख्या तीन होतीथी [2]।

सँघाटी–अर्थात् कमर में लपेटने की दोहरी धोती।

अन्तरवासक – अर्थात् शरीर के ऊपरी भाग को ढकने का वस्त्र।

उत्तरासँग – अर्थात् चादर, उपरना।

इनके सिवाय बैठने केलिए आसन, प्रत्यस्तण, खुजली होनेपर पहनने केलिए चार बित्ता लम्बा और दो बित्ता चौड़ा कोपीन, या कँडूकप्रतिच्छादन तथा वर्षाकाल में पहनने केलिए एक और वस्त्र, वार्षिक साटिक। भिक्षु बैठने पर दोनों घुटनों और पीठ को जोड़ने केलिए एक पट्टी – आयोगपट्ट व्यवहार में लातेथे।

सँघाटी के ऊपर, कमर पर कायबन्ध या कमरबन्ध बांधाजाताथा जो सादी और फेरदार बुनावट की पट्टियों से बनताथा। कायबन्धों के किनारे फटने के डर से उलटकर सीदिएजातेथे [3]।

भिक्षुणियां भिक्षाहेतु गांव में जाते समय कचुँक पहनलेतीथीं [4]। शुङ्गकालीन मृण्मूर्तियों से विदित होताहै कि कँचुक छोटी अँगिया के आकार का होताथा। उस पर तनियां लगतीथीं।

बौद्ध भिक्षु अपने वस्त्र स्वयँ बुनसकतेथे। अथवा श्मशान और कूड़े के ढेर पर फेंकेहुए वस्त्रों से बनायाकरतेथे [5]। श्रद्धालु गृहपति भी सँघ और भिक्षुओं को वस्त्र दियाकरतेथे [6]।

भिक्षु अपने पास तीन वस्त्र चीवर, एक पात्र, एक छुरी, एक कुल्हाड़ी, एक सुई, एक कायबन्धन, एक पानी छानने का कपड़ा—ये आठ परिष्कार रखसकतेथे [7]। इन्हें वे कन्धे पर लटकाने की झाबी में रखतेथे। इनके साथ ही अँजनदानी, अँजन लगाने की सलाई [8], नाक में नस डालने की नली, औषधियों की धूम्रवर्तिका [9], तथा उन्हें पीने का धूम्रनेत्र भी रखथेथे। यह झाबी दुहरे कपड़े से बनतीथी, जिससे शीघ्र न फटे [10]।

भिक्षुओं को जूता पहनने की छूट थी। जूता प्रायः चमड़े का बनताथा [11]। घास-फूँस, मूँज, लकड़ी के भी जूते या खड़ाऊँ बनतेथे [12]।

१- विनय - पिटक, पृ० ११३ २- मोतीचन्द्र— प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० ३५
३- विनय - पिटक, पृ० १७ ४- विनय-पिटक, पृ० ५२९ ५- विनय-पिटक, पृ० १२-१३, १०७ आदि
६- विनय - पिटक, पृ० १७ टि० ७- कुम्भकारजातक, जा० ४, पृ० ३८; चुल्लवग्ग, पृ० ४७६
८-९- महावग्ग, पृ० २१९ १०- महावग्ग, पृ० २२० ११-१२- चुल्लवग्ग, पृ० ४७४

शिक्षा-दीक्षा—बुद्ध ने पन्द्रह वर्ष के बालकों को श्रामणेर बनाने का नियम बनायाथा। विशेष परिस्थिति में उन्हें भी श्रामणेर बनालेतेथे, जो खेत से कौआ उड़ा-सकताथा [१]। दस वर्ष तक श्रामणेर बनेरहने पर उसे उपसम्पदा दीजातीथी। तब वह स्वयँ श्रामणेर बनासकताथा [२]। उपसम्पदा प्राप्त भिक्षु एक-दो या जितने श्रामणेरों को वह उपदेश देकर उन्हें अनुशासन में रखसकता. उतने श्रामणेर मूँडसकताथा [३]।

श्रामणेर अपने उपाध्याय से बौद्ध-सिद्धान्तों की शिक्षा प्राप्तकरते और उसकी सेवा में लगेरहते। वे उपाध्याय को प्रणाम करते, उसकी कुटिया स्वच्छ रखते, उसकेलिए दातुन लाते. मुँह धोने केलिए जल देते तथा आसन बिछातेथे। वे उसके भोजन के पात्र को धोतेथे। तथा प्रत्येक समय विनीत भाव से सेवाहेतु उपस्थित रहतेथे [४]।

उन्हें प्राणिहिंसा, चोरी, अब्रह्मचर्य, असत्य, मद्य, कच्ची सुरा आदि मादक वस्तुएँ, दोपहर के पश्चात् भोजन, नृत्य, वाद्य, गीत और चित्त को चँचल करनेवाले तमाशे, माला, गन्ध, उवटन आदि मण्डन-विभूषण, ऊँची और महार्घशय्या, तथा स्वर्ण-रजत-ग्रहण का निषेध था [५]। वे किसी वस्तु का अधिक मात्रा में या भविष्य केलिए सँग्रह नहीं करसकतेथे।

भिक्षु अपने उपाध्याय के साथ भ्रमण करतेरहतेथे। केवल वर्षाऋतु में, उन्हें एक स्थान पर निवास करनाहोताथा, जो वर्षावास कहलाताथा [६]।

भिक्षु-जीवन—भिक्षु अपने लिए लगभग सात हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी कुटिया बनवातेथे [७]। कुटिया ऊँचे चबूतरे [८] पर मिट्टी, पत्थर, कच्ची ईंट, लकड़ी आदि से बनाईजाती और घास-फूँस-पत्तों से छाईजातीथी [९]। उसकी दीवारों और धरातल को लीप-पोतकर स्वच्छ रखाजाताथा [१०]। कुटिया का चबूतरा कुछ बड़ा रखाजाताथा। इस चँक्रमणभूमि पर भिक्षु टहलाकरताथा [११]।

कुटिया में प्रकाश केलिए तेल के दीपक का प्रयोग होताथा। अन्धकार में चलते समय भी तेल का दीपक लेकर चलतेथे [१२]।

भिक्षु अपना भोजन स्वयँ नहीं बनासकतेथे। उसकेलिए उन्हें ग्राम-नगर में भिक्षाचार करने जानाहोताथा। मिट्टी के पात्र, या नारियल के कटोरे पर वे भिक्षा-ग्रहण करतेथे [१३]। उनके कटोरों या थाली पर बीच में एक छोटा-सा गोला या गोलरेखाओं द्वारा वृत्त बनारहताथा, जो स्तूप का सूचक था [१४]।

संघ—बुद्ध ने भिक्षुओं के सँगठन को सँघ नाम दियाथा। सँघ में व्यवस्था केलिए समकालीन गणराज्यों की प्रजातान्त्रिक प्रणाली अपनाईगईथी। विभिन्न ग्राम-नगरों में श्रद्धालु जनता ने भिक्षुओं के निवास केलिए 'विहार' या विश्रामस्थान [१५] बनादिएथे। भ्रमण

१-२- महावग्ग, पृ० १२०   ३- महावग्ग, पृ० १२३   ४- विनय-पिटक, पृ० १०३

५- महावग्ग, पृ० १२३-२४;   ६- महावग्ग, पृ० १७१   ७- महावग्ग, पृ० ११

८- चुल्लवग्ग, पृ० ४५५   ९- चुल्लवग्ग, पृ० ४५६   १०- चुल्लवग्ग, पृ०, ४५५ टि०

११- चुल्लवग्ग, पृ० ४६२   १२- चुल्लवग्ग, पृ० ४६०   १३- महावग्ग, पृ० ८

१४-राय गोविन्दचन्द्र—प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन, पृ० ३५   १५- चुल्लवग्ग, पृ० ४६२

करतेसमय भिक्षु विहारों ठहरतेथे [१]। विहार के साथ उपस्थानशाला या उपोसथागार होताथा, जहां भिक्षु सँघ की सभा होतीथी [२]। विहार और उपोसथागार प्रायः ग्राम - नगर से कुछ दूरी पर, किसी उपवन में बनाएजातेथे। वे आराम भी कहलातेथे।

उपोसथागार को लीप - पोतकर, झाड़ू लगाकर स्वच्छ रखाजाताथा। उसके अन्दर बिछौने बिछाकर स्थविरादि केलिए आसन लगाएजातेथे। एक ओर पानी की मटकी रखीजातीथी। दीपक बालाजाताथा। पैर धोकर उपोसथागार में प्रविष्ट होतेथे। स्थविर पश्चिम की दीवार के पास पूर्वाभिमुख बैठतेथे। उपासक (गृहस्थी बौद्ध) भी पांवों को धोकर, प्रविष्ट होते और पूर्व की दीवार के पास पश्चिमाभिमुख बैठतेथे [३]।

मास की प्रत्येक कृष्णाचतुर्दशी तथा पूर्णमासी को किसी स्थान पर रहनेवाले सभी भिक्षु सँघ के उपोसथागार में एकत्रित होकर पातिमोक्ख (प्राति-मोक्ष) के नियमों की आवृत्ति करतेथे [४]। यदि किसीसे उस अवधि में नियमों के पालन में कोई त्रुटि हुईहो, तो वह उसे सँघ के सन्मुख निवेदन करके क्षमायाचना करताथा।

भिक्षुणियाँ—बुद्ध नारियों को भिक्षुणियां बनाने के पक्ष में न थे [५]। पीछे अपने पट्टशिष्य आनन्द के आग्रह पर उन्होंने नारियों को भी बौद्धमत में दीक्षादेने की स्वीकृति देदी [६]। जैन, बौद्ध और अन्य भिक्षाचारी तापस मत-मतान्तरों की प्रतिष्ठा उनके अनुयायियों के ब्रह्मचर्यपूर्ण आदर्श जीवन पर निर्भर थी। युवावस्था वाले भिक्षु - भिक्षुणियों के साहचर्य से इसमें बाधा पड़तीथी।

नारियों को बौद्धमत की दीक्षादेने की स्वीकृतिदेते समय बुद्ध को भिक्षुणियों के लिए कुछ ऐसे कठोर नियम बनानेपड़े, जिससे भिक्षुणी सदा अपनेको भिक्षुओं से तुच्छ समझतीरहे। सौ वर्ष की उपसम्पदा पाई भिक्षुणी केलिए भी उसी दिन उपसम्पदा प्राप्त भिक्षु को अभिवादन करना, उसके स्वागत केलिए उठना तथा उसे अँजलिजोड़ना आवश्यक करदिया। भिक्षुणी किसी भिक्षु पर आक्षेप नहीं करसकतीथी। किन्तु भिक्षु भिक्षुणियों पर आक्षेप करसकतेथे [७]।

भिक्षुणियों केलिए ग्राम - नगरों में भिक्षु - विहार के पास पृथक् भिक्षुणी-विहार होतेथे। जहां ऐसी सुविधा न होती वहां एक ही विहार को दो भागों में बांटदेतेथे। कुछ स्थानों में भिक्षुणियों के पृथक् उपोसथागार भी थे। फिर भी बुद्ध को अपने जीवनकाल में ही स्पष्ट आभास होगयाथा कि सँघ में नारियों के प्रवेश के कारण बौद्धमत दीर्घकाल तक न टिकसकेगा [८]।

संघ में अव्यवस्था— जैन, बौद्ध आदि तापस मत - मतान्तर वैराग्य की भावना पर आधारित थे। बुद्ध के अनुसार चक्षु, श्रोत, मन, घ्राण, काय, सब अनित्य हैं।

१- चुल्लवग्ग, पृ० ४६१ २- चुल्लवग्ग, पृ० ४६२ ३- महावग्ग, पृ० २३८
४- विनय - पिटक, पृ० ५ ५-६- विनय - पिटक, पृ० ५२० ७- चुल्लवग्ग, पृ० ५२०
८- विनय - पिटक, पृ० ५२१

उनकी अनित्यता के कारण दुःख होताहै। ये चक्षु आदि जो अनित्य और दुःखदायी हैं, वे अनात्म हैं। वे हमारे नहीं है और न हम उनके हैं। इन चक्षु आदि में वैराग्य करने से मनुष्य रागरहित होकर विमुक्त होजाताहै। इस प्रकार विमुक्त होजाने का ज्ञान उपलब्ध होजाने पर मनुष्य की जाति क्षीण होजातीहै, ब्रह्मचर्य पूरा होजाताहै। ऐसे व्यक्ति ने जो करनाथा, सो करलिया। उसे निर्वाण मिलगया। उसका पुनर्जन्म न होगा [1]।

वे कहतेथे सँसार में सभी राग की अग्नि, द्वेष की अग्नि, मोह की अग्नि, जाति, जरा, मृत्यु, शोक और परिदेव की अग्नि से तथा दुःख, दौर्मनस्य एवँ उपायासों (परेशानियों) की अग्नि से आदीप्त हैं, धधकरहेहैं [2]। इस अग्नि से परित्राण केवल विरक्ति के द्वारा ही होसकताहै।

ऐसे ही विरक्ति के उपदेश जैन, तथा अन्य तापस मत - मतान्तरों के प्रचारक भी देतेथे। किन्तु उनके द्वारा मूण्डेगए सात - आठ या पन्द्रह - बीस वर्ष के अधिकांश अनुयायियों केलिए विरक्ति के इन उपदेशों को समझना, तथा उनका पालनकरना असम्भव था। सुनेहुए या रटेहुए उपदेशों से विरक्ति उत्पन्न न होसकतीथी। अस्तु, विरक्ति की भावना से दीक्षा लेनेवाले व्यक्तियों की सँख्या अधिक न रहीहोगी।

जैन - स्थानांगसूत्र से विदित होताहै कि इच्छानुसार अथवा देवों द्वारा प्रबुद्ध होकर प्रवज्या लेनेवाले व्यक्तियों की सँख्या कम थी। स्वप्न देखकर, किसी प्रतिज्ञा के पूर्ण होने पर, अथवा जन्मान्तर के स्मरण से भी कुछ व्यक्ति प्रव्रज्या ग्रहण करतेथे। अनेक व्यक्ति रोष से, अपमानित होनेके कारण, दरिद्रता अथवा रोग से पीड़ित होकर अथवा पुत्रशोक से प्रव्रज्या लेतेथे[3]।

बुद्ध के उपदेशों से प्रव्रज्या की ओर समाज में आकर्षण बढ़गयाथा। कुछ व्यक्ति स्वयँ अपने पुत्र-पुत्रियों को प्रव्रज्या दिलातेथे। कुछ स्वयँ यह सोचकर प्रव्रज्या लेलेतेथे कि उनके कुल में अभीतक किसी ने प्रव्रज्या नहीं लीहै [4]। बुद्ध उच्च शाक्यकुल में उत्पन्न हुएथे। उनका तथा उनके कुल का समकालीन राजपरिवारों में बड़ा मान था। श्रेष्ठी और नरेश भिक्षुसँघ को भात (भोज) का निमन्त्रण दियाकरतेथे [5]। धनी उपासक सँघ को भोजन, भात, सूप, तेल आदि मुक्तहस्त से अर्पित करतेथे [6]।

बुद्ध ने कठोर तपस्या वर्जित करके सुखदायी मध्यममार्ग का उपदेश दियाथा। शाक्यपुत्रीय श्रमण (बौद्ध) शील और आचार का आराम से पालन करतेथे। उन्हें सुन्दर भोजन मिलताथा। वे अच्छे निवासों में तथा उत्तम शय्याओं पर सोतेथे [7]। रोगी होने पर उनकी चिकित्सा भी जीवक - जैसे राजवैद्य करतेथे [8]। इसलिए आनन्द से जीवन बिताने के इच्छुक व्यक्तियों केलिए प्रव्रज्यालेने का आकर्षण बढ़गयाथा [9]।

१- संयुत्तनिकाय, पृ० ४५१ २- संयुत्तनिकाय, पृ० ४५८ ३- स्थानांगसूत्र, १०।७१२; उ० जैन–जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ३८३ ४- चुल्लवग्ग, पृ० ४७७
५- चुल्लवग्ग, पृ० ४२९ ६- चुल्लवग्ग, पृ० ३९७ ७- महावग्ग, पृ० ११५
८- महावग्ग, पृ० ११५ ९- महावग्ग, प० ११५

फलतः अनेक अनाधिकारी व्यक्ति सँघ में प्रविष्ट होनेलगे। बौद्ध-पाली साहित्य से विदित होताहै कि वेश्या को उसका शुल्क न चुकाने पर वेश से धक्कादेकर निकालदिए व्यक्ति [१], चोरी करके कारागार में पड़े और वहां से भागे व्यक्ति [२], भिक्षुओं तक को लूटनेवाले [३] डाकू, ऋणी और दास [४], प्राणिहिंसक, अब्रह्मचारी, असत्यवादी, मदिराप्रेमी, बुद्धनिंदक, धर्मनिंदक, सँघनिंदक, असत्य धारणावाले, पडँक (हिंजड़े) और भिक्षुणीदूषक भी सँघ में घुसजातेथे [५]।

भिक्षु - भिक्षुणियों के हृदय में आजीवन विरक्ति की भावना बनाएरखना असम्भव होगया। विशेष कार्यभार से मुक्त, अशिक्षित या सामान्य शिक्षित युवक-युवतियों को निरन्तर कठोर सँयम और अनुशासन में रखने की समस्या जटिल बनगई। जिससे बुद्ध बड़े-दुःखी रहते और बार - बार अपने अनुयायियों को झिड़कतेरहतेथे।

जनता से सम्मान मिलते देख अनेक ढोंगियों की बनआई [६]। वे जनता को अपने आडम्बर से ठगकर आनन्द उड़ानेलगे। वे स्वयँ पाप करते और दूसरों से भी करवातेथे [७]। वे खुरदरा अँजिन चर्म पहनते, जटा बढ़ाते, दांत मैले रखते, तथा मन्त्रों का जप करतेथे। यदि उनकी चलती तो सारे जम्बूद्वीप को अपने ढोंग से लूटखाते [८]।

समाज पर प्रभाव—विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में विभिन्न पाषण्डों (मत-मतान्तरों) के प्रचारक भिक्षाचारियों का जनता उत्सुकता से स्वागत करतीथी। भिक्षु-सँघों या भिक्षु - मण्डलियों को, चाहे वे किसी भी मत - मतान्तर के अनुयायी हों, भात (भोजन) देना बड़े गौरव का कार्य समझाजाताथा।

कभी - कभी, विशेषकर पर्वदिनों पर भात देने के इच्छुकों में होड़लगजातीथी। बहुत-से व्यक्ति शकटों में बहुत - सा नमक, तेल, तण्डुल और खाद्यसामग्री भरकर लाते और आराम (भिक्षु - विहार) के बाहर सामग्री उलटकर तबतक रुकेरहते जबतक सँघ को भोजदेने केलिए उनकी बारी आती [९]।

वे भिक्षुसँघ को यवागू, भात, सूप, मांस[१०], आम्रपान, जम्बूपान, चोचपान, मोच (केला) पान, मधुपान, अँगूर का पान तथा फारुसक (फालसे) का पान अर्पित करतेथे[११]। भिक्षुओं के पात्र, धुलाकर वे गवपान, घी, मक्खन, मधु, खांड (फाणित) आदि भरकर देते तथा तीन - तीन चीवर भी देतेथे [१२]। भिक्षु भी धनी उपासकों से अगले दिन मिलनेवाले सुभोजन की कल्पना करतेहुए रात्रि को मनभर कर न सोसकतेथे [१३]।

विभिन्न (पाषण्डों) के प्रचारक और अनुयायी विशिष्ट रङ्ग के वस्त्र धारण करतेथे। जब उनकी मण्डली ग्राम - नगर में पहुँचती तो ग्राम - नगर सजाएजाते, मार्ग के

१- अट्ठानजातक, जा० ४ पृ० १३४ २- महावग्ग, प० ११७ ३- महावग्ग, पृ० १२७
४- महावग्ग, पृ० ११७ ५- महावग्ग, पृ० १२४-२५ ६- सोमनस्सजातक, जा० ५, पृ० ३२-३३
७- महाबोधिजातक, जा० ५, पृ० ३२८ ८- उद्दालकजातक, जा० ४, पृ० ५०८
९- महावग्ग, पृ० २४५ १०- महावग्ग, पृ० २४६ ११- महावग्ग, पृ० २५१
१२- निदानकथा, जा० १, पृ० ६६ १३- चुल्लवग्ग, पृ० ३६७

गड्ढों को रेते से भरते, मार्ग की भूमि को समतल बनाते, चांदी के पत्रों-जैसी श्वेत बालू को ऊपर से फैलातेथे। उन पर खीलों और फूलों की वर्षा करते, नाना रङ्ग के वस्त्रों की ध्वजा-पताकाएँ उड़ाते तथा मार्ग के दोनों ओर केलों और जल से भरे मँगलघटों कीं पँक्तियां खड़ी करतेथे [१]। उनका वाद्य - तुरीय-नाद से सत्कार करते, एवँ गन्ध और मालाओं से उनकी पूजा करतेथे। उनका उपदेश सुनकर प्रदक्षिणा करके लौटतेथे [२]।

उनके उपदेश का विषय जहां अपने सिद्धांतों का प्रचार होताथा, वहां वे दान की महिमा विशेष रूप से गातेथे। 'दान कर्म बड़ा उत्तम है। श्रद्धा से दियागया दान अति उत्तम है [३]। सारा लोक जरा और अग्नि से धधकरहाहै। इससे बचने केलिए दान देकर बाहर निकलो [४]।

'जो अन्न, वस्त्र, वाहन, प्रदीप और गृह देतेहैं, वे महान् पुण्य करतेहैं [५]। जो अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर श्रद्धापूर्वक अन्न का दान देतेहैं, वे इस लोक और परलोक में उसी अन्न को प्राप्त करतेहैं [६]। इसलिए कँजूसी छोड़कर, पापों को मिटानेवाला पुण्यकर्म करो, दान करो [७]।'

इस उपदेश का वांछित प्रभाव पड़ताथा। पाषण्डों को जनता उदारता से दान देतीथी। जनता की श्रद्धा का लाभ उठाकर भिक्षु - भिक्षुणी आनन्द से, निश्चिन्त हो जीवन बितातेथे।

ग्रामीण जनता सभी पाषण्डों का स्वागत करतीथी, उनका उपदेश सुनतीथी, पर अपने ग्राम-देवताओं की, अपने ही ढँग से पूजा - अर्चा करना न त्यागतीथी।

बालक - बालिकाओं को प्रव्रजित करनेवाले मत - मतान्तरों द्वारा पारिवारिक जीवन में उलझनें उत्पन्न होनेलगीं। उपदेशों से प्रभावित होकर जो व्यक्ति प्रव्रजित होते उनकी पत्नियों केलिए परिवार का पालन और बच्चों की शिक्षा - दीक्षा, बिवाह आदि का प्रबन्ध करना कठिन होजाताथा। ऐसे प्रव्रजित भी आवेश ठण्डा होजाने पर अपनी पत्नी और सन्तान की स्मृति में आंसू बहातेरहतेथे [८]। कई व्यक्ति पत्नी के आग्रह से पुनः गृहस्थी बनजातेथे [९]।

जिनके पुत्र - पौत्रादि को मूँडलियाजाता, वे रोते-चिल्लातेथे। सन्तान का प्रेम उनकी छाल छेदकर, चमड़ा छेदकर, मांस छेदकर, नस छेदकर, हड्डी को छेद - छेदकर उन्हें घायल करदेताथा [१०]।

प्रसिद्ध राज तथा श्रेष्ठी-कुलों के कुमारों को बुद्ध द्वारा प्रव्रजितहोते देख लोग हैरान होते, निन्दा करते और दुःखी होकर कहतेथे—'अपुत्र बनाने को श्रमण गौतम उतराहै, विधवा बनाने को क्षमण गौतम उतराहै, कुलविनाश केलिए श्रमण गौतम उतराहै [११]।'

१- निदानकथा, जा० १, पृ० ८७ २- निदानकथा, जा० १, पृ० ९७ - ९८
३- संयुत्तनिकाय, पृ० २२ ४- संयुत्तनिकाय, पृ० ३० ५- ७- संयुत्तनिकाय, पृ० ३१
८- संयुत्तनिकाय, पृ० ४९७ ९- संयुत्तनिकाय, पृ० ४९३ १०- महावग्ग, पृ० १२३
११- महावग्ग, पृ० १००

निर्ग्रन्थ (जैन) श्रमणों के साथ प्रव्रजित बालकों को देखकर लोग कहते—'यह इनके ब्रह्मचर्यव्रत का प्रत्यक्ष फल दिखाईदेताहै !' बालक रात्रि में भोजन मांगता, न मिलने पर चिल्लाता। लोग कहते –'ये श्रमण चारपालग (जे़लर) हैं ! अबोध बच्चों को कारागार में डालनेवाले हैं [1] !'

जनता अन्धविश्वासी थी। उसे साधु - महात्माओं की अद्भुतशक्ति पर विश्वास था। जनता में अनेक यक्ष, रक्ष, भूत, पिशाच, ग्रह, मातृदेवियों आदि की मान्यता थी। प्रत्येक रोग, कष्ट आदि की प्राप्ति इनके कुपितहोनेसे मानीजातोथी। साधु - महात्माओं के प्रसाद (प्रसन्नता) पर भी जन - विश्वास था। फलतः पाषण्डियों की चरण - वन्दना करनेवालों का तांता लगारहताथा।

तीर्थयात्रा — तीर्थयात्रा बहुप्रचलित थी। इसे अशिक्षित तथा अकिञ्चन व्यक्ति भी करसकताथा। इसकेलिए पुरुष - नारी, बालक - बृद्ध, ऊँच - नीच, ब्राह्मण - शूद्र, सभी को पूरी सुविधा थी। सारे देश को पुनीतभूमि का गौरव प्राप्त होचुकाथा। हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त सारी भूमि को एक मानतेहुए प्रत्येक सरिता, सरोवर, टीले - पर्वत और सागर में पावनता और देवत्व की प्रतिष्ठा होचुकीथी। पेड़ - पौधों में भी देवत्व का वास मानलियागयाथा।

देशभर के पशु - पक्षियों का, यहां तक कि कीड़े - मकोड़ों और सरीसृपों का सम्बन्ध भी लोक में प्रचलित देवी - देवताओं से जोड़दियागयाथा। मानव अब अकेला न था। उसके चारों ओर धरती से आकाश तक, नदी - पर्वतों, पेड़ - पौधों और पशु - पक्षियों में, उसकी दुःख - सुख की गाथा को सहानुभूति से सुननेवाले देवी - देवताओं का वास था। देशभर की नदियां पुनीत बनचुकीथीं। उनके तटों पर विशेष पर्वों पर मेले लगतेथे। उनमें तीर्थों अर्थात् स्नानकरने केलिए पुनीत स्थानों की स्थापना होचुकीथी। प्रतिदिन प्रातःकाल उनका स्मरण कियाजाताथा [2]। भूल से पाप होजाने पर उनमें स्नान करके पाप का प्रायश्चित होसकताथा। आशा के प्रकाश से जीवन सुखमय होगया।

उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा—गङ्गाजी सर्वपुनीत थी। लोक में उसकी व्यापकपूजा देख शैव और वैष्णवों ने उसका सम्बन्ध अपने आराध्यों से जोड़लियाथा। उत्तर वेदिककाल से ही गङ्गा - यमुना के तटों पर ऋषिमुनि अपने आश्रम बनानेलगेथे। श्रद्धालु जनता उनके आश्रमों में दर्शनार्थ जाने और उनसे आशीष मांगनेलगीथी [3]।

उत्तराखण्ड में गङ्गा, यमुना, मालिनी, रथस्था (रामगङ्गा), और शारदा - कालीगङ्गा के तटों की पावन भूमि में, अनेक स्थानों पर, तपस्वियों के आश्रम बनचुकेथे, जहां श्रद्धालु जनता पहुँचतीथी। ये आश्रम भी तीर्थ बनगएथे।

१- जैन – जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ३८४ २- विष्णुपर्व, १०९।४-२५

३- 'नमो गङ्गायमुनायोर्मध्ये ये वसन्ति ते मे प्रसन्नात्मा चिरं जीवितं वर्धयन्ति। नमो गङ्गा - यमुनोर्मुनिभ्यश्च नमो नमः'। — तैत्तिरीय, द्वितीय प्रपाठक, अनुवाक् २०

बौद्ध और जैनमतों के अनुयायियों ने भी अपने महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित स्थानों को तीर्थ मानकर उनकी तीर्थयात्रा करनी आरम्भ करदी।

सारे देश के नगर - ग्रामों में, सरिता - सरोवरों के तटों पर, टीले - पर्वतों पर, अगणित नाम - आकारवाले नाग, यक्ष आदि ग्रामदेवताओं के चैत्य (चबूतरे) थे। कृषि से अवकाश पाकर जनता इनकी यात्रा करतीथी। विशेष पर्वों पर इन स्थानों पर मेले भी लगतेथे। जैन-बौद्धमत के अनुयायियों ने इन स्थानों पर अगणित स्तूपों की स्थापना करदी। देवपूजकों ने देवाला या मन्दिर बनाडाले। देशभर में कोई स्थान न रहा, जिसे किसी न किसी देवता के निवास का गौरव न मिलाहो।

मैदानवासियों का पर्वतीय तीर्थों के प्रति और पर्वतवासियों का मैदानी तीर्थों के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था।

जनता कृषि, पशुचारण, व्यापार आदि अपने व्यवसायों में पूरी निष्ठा से जुटी-रहती। तथा अवसर पाते ही अपने गाढे परिश्रम की कमाई का अधिकांश पाषण्डियों के चरणों में और तीर्थस्थानों की पूजा - अर्चा में चढ़ादेती। उसकी पुनीत भावना सारी धरती को सर्वत्र पुनीत समझती और उसकी धूलि को मस्तक पर मलकर अपार शान्ति एवँ सुख का अनुभव करतीथी।

पर्वताश्रयी आयुधजीवी

उत्सेधजीवियों के अत्याचार—विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में हिमालय की ढालों पर कुलिन्द आदि जनपदों में आयुधजीवियों और उत्सेधजीवियों की टोलियां बसीथीं, यह हम देखचुकेहैं। इन दिनों इनकी गतिविधियों में जो विशेष वृद्धि हुईथी, उसे समझने केलिए समकालीन परिस्थिति पर दृष्टिडालना आवश्यक है।

जनपद - युग में भारतीय व्यापार में विशेष वृद्धि हुई। सिन्धु - तट तक पारसीक साम्राज्य फैलजानेसे भारत और पश्चिमी देशों के बीच चलनेवाले व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा होगई। फलतः भारतीय वस्तुओं की पश्चिमी देशों में और उन देशों की वस्तुओं की भारत में मांग बहुत बढ़गई। इससे स्थानीय शिल्पों और आन्तरिक व्यापार को भी विशेष प्रोत्साहन मिला। पांच -पांच सौ बैलगाड़ियों में बहुमूल्य सामग्री को लेकर सार्थ व्यापारिक मार्गों पर चलनेलगे [१]।

व्यापार में वृद्धि के साथ उत्सेधजीवी चोर - डाकुओं के कार्यकलापों में वृद्धि होगई। उन दिनों जनपदों की सीमाओं पर कान्तार या वन होतेथे [२]। जहां ये वन विभिन्न जनपदों की सीमानिर्धारण में सहायक थे, वहां उत्सेधजीवी चोर - डाकुओं को भी आश्रय देतेथे [३]।

इन कान्तारों में सार्थों को लूटनेवाले दस्यु पांच - पांच सौ का गिरोह बनाकर छिपेरहतेथे [४]। सार्थ इनसे बड़े भयभीत रहतेथे। वे मार्ग में, सूर्यास्त से पूर्व ही, पड़ाव पर पहुँचकर, बैलों को गाड़ियों से खोलकर, गाड़ियों को घेरे में खड़ाकरतेथे [५]। फिर गाड़ियों के चारों ओर तम्बू तनवाते, दिन रहतेही मनुष्यों और पशुओं को शाम का भोजन खिलाते, तथा मनुष्यों के घेरे के बीच में बैलों को बँधवातेथे। मनुष्यों को सुलवाकर सार्थवाह वलनायकों सहित हाथ में खड्ग लेकर रातभर खड़े - खड़े ही पहरादेतेथे [६]।

१- अप्पणकजातक, जा० १, पृ० १७६

२- मिलाइए — 'मध्यदेश की पूर्वदिशा में कजङ्गल नामक कस्बा है, उसके बाद शाल के घने वन हैं, और फिर आगे सीमान्तदेश।' — जातक (निदान) अट्ठकथा

३- अप्पणकजातक, जा० १, पृ० १७७

४- असंकियजातक, १, पृ० ४७७

५- अप्पणकजातक, जा० १, पृ० १७८

६- अप्पणकजातक, जा० १, पृ० १८१

उत्सेधजीवियों से जनता बड़ी आतँकित रहती। वे सेंधलगाते, गांव उजाड़ते, घरों में घुसकर चोरी करते मार्गों पर डाका डालते और नारियों का शीलभँग करतेथे [1]। कान्तार पेसनक (प्रेषणक) डाकुओं की टोलियों से भरे रहतेथे। वे पिता - पुत्र, मां - बेटी, गुरु - शिष्य, या भ्राता आदि सम्बन्धियों मेंसे एकको पकड़कर दूसरेको उसकी मुक्तिहेतु फिरौती लाने भेजतेथे [2]।

सीमान्त के उत्सेधजीवी जनपदों पर सहसा छापा मारकर गांवों को लूटलेतेथे। वे नर - नारियों को पकड़कर दास - दासी बनालेते और उन्हींके शिरों पर लूट की सामग्री लादकर अपने प्रदेश में लेजातेथे [3]। दस्यु - सरदार रूपवती नारियों को अपने लिए उठालेजातेथे [4]।

पाणिनि ने भी पारिपांथिक या मार्गों पर डाका डालनेवालों का उल्लेख कियाहै[5]। एक गांव से दूसरे गांव जानेमें चोरों के भय से लोग आतँकित रहतेथे। राज्य चोरों और दस्युओं से जनता की रक्षा करने में समर्थ न थे। अकेले किसीके घर में घुसजाना, किवाड़ तोड़कर मालमत्ता उड़ालेजाना पतञ्जलि के समय भी सामान्य बात थी [6]।

पर्वतीय उत्सेधजीवी शिवालिक के वनों में सुविधाजनक स्थानों पर रहते और पथिकों को लूटकर अपना निर्वाह करतेथे [7]। उनके चँगुल से भागीहुई नारियां तपस्वियों की कुटिया में छिपजातीं और यदि तपस्वी लँगोट के कच्चे होते तो उनके शीलभँग होनेमें देर न लगती [8]।

प्रत्यन्तदेश, सीमान्त, पर प्रायः विद्रोह होतेरहतेथे। जनता छापामार दस्युओं और उन्हें मारभगाने - हेतु आएहुए जनपद के सैनिकों से बड़ी आतँकित रहतीथी। उसे प्रत्येक अपरिचित शस्त्रधारी से पूछनापड़ताथा — 'राजपुरुष या चोरपुरुष ? आप कौन हैं ?' [9]

जनपदों की अशक्तता— जनपद दस्युओं पर नियन्त्रण करनेमें असमर्थ थे। पड़ोसी जनपद एक - दूसरे के प्रकृत्यमित्र या स्वाभाविक शत्रु थे। सीमान्त, व्यापारिक मार्गों की चुङ्गी की वसूली, नदीघाटों का कर, वनोपयोग, आखेट, नहरों के जल का उपयोग आदि पर आधारित कलहों या पारस्परिक स्पर्धा से जनपदों में लड़ाई - झगड़े और युद्ध होतेरहतेथे। वे कान्तारवासी दस्युनायकों को पड़ोसी जनपद पर छापामारने केलिए उत्साहित करतेथे। कौटिल्य ने आटविकों की सहायता से शत्रु-जनपद में अव्यवस्था फैलाने का बार - बार सुझाव दियाहै [10]।

१- मज्झिमनिकाय, पृ० ५४ २- वेदब्भजातक, जा० १, पृ० ३७६ ३- तक्कपण्डितजातक, जा० १, पृ० ४३० ४- चुल्लनारदजातक, जा० ४, पृ० ४२१ ५- अष्टाध्यायी, ४।४।३६
६- अग्निहोत्री — पतंजलिकालीन भारत, पृ० ३९३ ७- सतिगुम्बजातक, जा० ५, पृ० १९
८- अरञ्जजातक, जा० ५, पृ० ३११ ९- महाअस्सारोहजातक, जा० ५, पृ० १७६
१०- अर्थशास्त्र, १।५।६; ६।११।१५; ७।२१।१६; ८।१३२।४; १२।१६५।३; १३।१७३।३

जनपदों की सैन्यशक्ति अल्प होतीथी। अनेक जनपदों में स्थायी सैनिक न रखकर सँकट के समय जनपदवासी शस्त्रधारी युवकों को बुलालेने की प्रथा थी [1]। यदि जनपद दस्यु - सँकट रोकने केलिए सैनिक जुटाकर भेजतेथे तो दस्यु एक कान्तार से दूसरे कान्तार में भागजातेथे।

जिस प्रदेश में उत्सेधजीवियों का आतँक होता वहां जनपद के शासक सैनिकों को गुप्तवेश में छिपाकर रखतेथे। यदि दस्यु पकड़जाते तो उन्हें कठोर दण्ड दियाजाताथा। उनके हाथों को पीठ - पीछे कसकर बांधदियाजाता, उनके गले में रक्तकनेर की माला डालीजाती, तथा जोर - जोर से ढोल बजातेहुए उन्हें वधस्थल की ओर लेजायाजाताथा [2]।

दस्युओं को बन्दी बनाकर लेजातेहुए राजपुरुषों के पीछे - पीछे भीड़ चलतीथी, जो दस्यु के शिर पर ईंट का चूरा बखेरतीरहतीथी। नगर की सड़कों पर जहां - कहीं चौराहे आते, वहां दस्युओं पर चाबुकों की मारपड़तीथी [3]। उनके हाथ - पैर और नाक-कान काटलिएजाते [4], अथवा उन्हें कारागार में डालदियाजाताथा [5]।

यदि कारागार को तोड़कर दस्यु या अन्य अपराधी बौद्धसँघ में घुसजाते और भिक्षु बनजाते तो फिर राजपुरुषों का उनपर कुछ वश न चलताथा [6]। जनता दस्युओं को सँघ में भिक्षु बने देख त्राशखाती, और उद्विग्न होतीथी, किन्तु सँघ से दस्यु न हटाएजातेथे। जनता दूसरी ओर मुँहकरके चलदेतीथी [7]। दस्यु जब अवसर पाते सँघ से भागनिकलतेथे।

जैन-बौद्ध-मतों का प्रभाव—विरक्तिपरक मतों के प्रचार से, सँगठित होकर जनपद की रक्षाकरने की भावना लुप्त होनेलगी। एकान्त साधना द्वारा व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति की ओर जनता अधिकाधिक आकृष्ट होनेलगी। इन मतों के प्रचारक कहतेथे—'अकिंचन, अनागरिक भिक्षु मुक्तहोकर राष्ट्र में विचरताहै, और आसक्तिरहित रहताहै। यदि नगर में अग्नि भी धधकजाए तो उसका कुछ नहीं बिगड़ताहै [8]! यदि सारा राष्ट्र भी लूटाजारहाहो तो उसका कुछ भी नहीं लूटाजारहाहै [9]!'

अबतक जनपद की रक्षा केलिए सँग्राम में वीरता दिखानेवाले सैनिकों की सुगति के गीत गाएजातेथे [10]। बुद्धकाल में यह मान्यता चलीआतीथी कि जिस व्यक्ति की, सँग्राम में वीरतापूर्वक युद्धकरतेहुए, शत्रुओं के हाथ से मृत्यु होजातीहै, उसे सरञ्जित देवताओं के बीच जन्म मिलताहै [11]।

किन्तु बुद्ध ने घोषणा की – 'सँग्राम में वीरता दिखाकर मृत्यु को प्राप्तहोनेवाला सैनिक मरने पर सराजितनरक में उत्पन्न होताहै [12]। 'मैं कहताहूँ ऐसे मनुष्य की दो ही गति होसकतीहैं, या तो नरक या तिरश्चीन (पशु)—योनि [13]।'

यही बात उन्होंने योधाजीव (पदातिक) सैनिक तथा गजारोही और अश्वारोही

१- जायसवाल — हिन्दू राजतन्त्र, खण्ड, १, पृ० २३० २-३- कणवेरजातक, जा० ५, पृ०२२१
४- मज्झिमनिकाय, पृ० ५३२ ५- अंगुत्तर निकाय २।४, पृ० १२८; जैन—जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ८१-८२ ६-७- महावग्ग, पृ० ११७, २७ ८- सोनकजातक, जा०५, पृ०३३७
९- सोनकजातक, जा० ५, पृ० ३३८ १०-१३- संयुत्तनिकाय, पृ० ५८१

सैनिकों से कही। प्रत्येक सैनिक भगवान् का बचन सुनकर रोनेलगा – 'मैं दीर्घकाल तक ठगागया। मेरे साथ धोका हुआ। मुझे उपासक स्वीकार करिए [१]।'

उस युग में, जब नरेश सपरिवार बौद्धमत की दीक्षा लेरहेथे, या उस मत के उपासक (गृहस्थी अनुयायी) बनरहेथे, अपराधियों को कठोर दण्ड देनेवाले अधिकारियों तथा जनपद की रक्षाहेतु दूसरों की हत्याकरनेवाले सैनिकों को, अपनी आजीविका पर ग्लानि होनी स्वाभाविक थी। मगधराज सेनिय बिंबसार के सीमान्त में विद्रोह होगया। उसने सेनानायक महामात्यों को आज्ञा दी – 'जाओ रे ! सीमान्त की रक्षा करो [२]।'

तब अच्छे - अच्छे योद्धाओं ने सोचा – 'हम युद्ध में जाकर पाप करेंगे, दूसरों की हत्या करके बहुत अपुण्य पैदाकरेंगे। क्या उपाय है जिससे हम पाप से बचें ? अपुण्य पैदा न करें [३] ?'

'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मचारी, उत्तमाचारी, ब्रह्मचारी, सत्यवान्, शीलवान् और धर्मातमा हैं। यदि हम शाक्यपुत्रीय श्रमणों के पास जाकर प्रव्रजित होजाएँ तो हम पाप से बचजाएँगे। अपुण्य नहीं पैदाकरेंगे [४]।'

उन दिनों, जनपदों के शिष्ट परिवारों, विशेषकर क्षत्रिय - परिवारों के युवक विरक्तिवादी मतों से प्रभावित होकर नगर या सारे राष्ट्र पर अग्नि धधकजाने पर अपनी कोई हानि नहीं देखतेथे। सैनिक युद्ध में वीरता दिखाने के कार्य को नरक जाने का मार्ग समझनेलगेथे। तब जनपद और जनता की रक्षा कौन करता ?

आयुधजीवियों की माँग—इस परिस्थिति में, जनता के जीवन और सम्पत्ति की तथा सारे जनपद की रक्षा केलिए मध्यदेश के जनपदों को पर्वताश्रयी आयुधजीवियों को भाड़े के सैनिकों के रूप में नियुक्त करनापड़ा। अष्टाध्यायी, महाभारत, पुराणों तथा अर्थशास्त्र में बार - बार आयुधजीवियों, शस्त्रोपजीवियों, पर्वतवासी दस्युओं या पर्वतीय गणों का उल्लेख मिलताहै।

पुराणों की जनपदसूची में नगरहार-हुँजा, उत्तरकुरु, तङ्गण, खश, कर्ण (कुन्त), प्रावरण, दार्द और हुहुक नामक जनजातियों को पर्वताश्रयी आयुधजीवी बतलायागयाहै [५]। इनमें तङ्गण उत्तराखण्ड में टकनौर - जोशीमठ - टङ्गणी-चट्टी के निकटप्रदेश के निवासी थे [६] और खश उत्तराखण्ड के पठारीप्रदेश के पशुचारक आयुधजीवी [७]।

महाभारत में पर्वताश्रयी आयुधजीवियों को पर्वतीय दस्यु कहागयाहै [८]। उन दिनों

१- संयुत्तनिकाय, पृ० ४८१-८२ २-४- महावग्ग, पृ० ११३

५- 'अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
निराहारा (निगर्हरा), हंसमार्गा कुरवस्तङ्गणाः खशाः॥
कर्ण (कुन्त) प्रावरणाश्चैव हूणाः दार्वाः स-हूहुकाः।'
—— मारकण्डेय, वायु, वामनपुराण की जनपद - सूची

६- एपिग्राफिया इंडिका, जि० ३१, पृ० २८६ ७- डबराल—उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ०१७६

८- सभापर्व, २७।१६, २५

अनेक सँघों में आयुधजीवी सैनिकों का स्वतन्त्र अस्तित्व था, जिन्हें युद्ध केलिए सैनिक-टुकड़ियों के रूप में प्राप्त कियाजासकताथा [१]।

निरन्तर आपस में लड़ने - झगड़नेवाले मैदानी जनपद, पूर्वोक्त परिस्थितियों में, अपनी रक्षा केलिए पर्वतीय आयुधजीवियों को भाड़े के सैनिकों के रूप में भरतीकरनेलगे, और उन्हें सबप्रकार की सुख - सुविधाएँ देनेलगे। ठीक उसीप्रकार जिसप्रकार विक्रम की सातवीं शताब्दी के पश्चात् उत्तरभारत के नरेश अपनी सेना में द्रविड़, कर्नाट और हूणों को भरती करनेलगे तथा उनकी सुख - सुविधा का विशेष ध्यान रखनेलगे [२]।

साम्राज्यों की स्थापना—विद्वानों की धारणा है कि भारत के क्रमबद्ध इतिहास के आरम्भिक दिनों में अनेक छोटे - छोटे एवँ परस्पर लड़नेवाले जनपदों को जीतने केलिए महत्वाकांक्षी नरेश आयुधजीवियों से निरन्तर सहायता लेतेथे। उन दिनों आयुधजीवियों की निरन्तर बढ़तीहुई मांग ने उन्हें अपने सँघ बनाने की प्रेरणा दीथी [३]।

इन आयुधजीवी सँघों मेंसे कुछ के नेता सेनापति या राजा हुआकरतेथे। उनके सशस्त्र सैनिकों से मैदान के कृषक और वणिक् बड़े आतङ्कित रहतेथे। इन आयुधजीवियों की सहायता से धीरे - धीरे एक ऐसा राजनैतिक सँगठन उत्पन्न हुआ जिसने प्राचीनकाल से आतेहुए एवँ बिखरेहुए स्वतन्त्र जनपदों को जीतकर उन्हें केन्द्रद्वारा शासित साम्राज्य के नियन्त्रण में रखने की परम्परा स्थापित करदी [४]।

मगध साम्राज्य की स्थापना—बुद्ध के जीवनकाल में मगधजनपद के राजा अजातशत्रु ने राज्यवृद्धि की लिप्सा से अपने राजगृह दुर्ग को सुदृढ़ बनायाथा। उसने सोण और गङ्गाजी के सँगम पर पाटलिपुत्रनगर की नींव डालीथी। उसने वैशाली को जीतलिया और काशी को स्थायीरूप से अपने राज्य में मिलालियाथा।

बौद्ध-परम्परा के अनुसार अजातशत्रु अपने पिता की हत्याकरके सिंहासन पर बैठाथा [५]। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः उदायिन, नन्दिवर्द्धन और महानन्दिन हुए, जिन्हें सिंहल - परम्परा में क्रमशः अनुरुद्ध, मुण्ड और नागदासक कहागयाहै [६]। इस परम्परा के अनुसार अजातशत्रु से लेकर नागदासक तक सभी नरेश पितृघाती थे। इससे प्रजा ने रुष्ट

१- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४३१

२ 'खश-किरात-द्रविड़-कलिगोड्र-गौड-हूणोद्रमिडा-मेदांध्र चाण्डालपर्यन्तान्' ललितशूर का शासन, २

३- ४- 'We know some confederations which were grouped under the hegemony of a princely family, and their chiefs maintained armed bands feared by the people of the plains. Thus was created a new type of political organisation, which was imposed on the ancient independent tribes and so ground was prepared for future centralized empires.' – प्रिलुस्की—एनशिएंट पीपुल्स आब दि पंजाब, पृ० ५८

५- मिलाइए निरयावलि १; आवश्यकचूर्णी २, पृ० १०१   ६- महावंश, पृ० १५

होकर राजपरिवार को मगध से भगादिया [1] और नागदासक के आमात्य शिशुनाग को मगध के सिंहासन पर बिठाया [2]।

शिशुनाग

बौद्ध - परम्परा के अनुसार शिशुनाग वेश्यापुत्र था, जिसका पालन - पोषण एक राजकर्मचारी ने कियाथा। अपनी योग्यता से शिशुनाग नागदासक का मन्त्री बनगया और राजा के राज्यच्युत किएजाने पर मगध का नरेश बनबैठा [3]।

पुराणों के अनुसार शिशुनाग स्वतन्त्र नरेश था, जिसने अवन्ती के प्रद्योतराज और मगध के राज्य को जीतकर गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनायाथा [4]।

रैप्सन की धारणा है कि शिशुनाग नागदासक का मन्त्री न होकर एक स्वतन्त्र पर्वताश्रयी आयुधजीवी था। उन दिनों बिहार और उत्तरप्रदेश की उत्तरीसीमा पर, नेपाल और उत्तराखण्ड की पहाड़ी ढालों पर आयुधजीवियों की अनेक छोटी - बड़ी स्वतन्त्र ठकुराइयां थीं, जो अपने पड़ोसियों के कलहों में, भाड़े के सैनिक बनकर सक्रिय भाग लेतीथीं। शिशुनाग - वँश का सँस्थापक इन्हीं पर्वताश्रयी आयुधजीवियों का वँशज प्रतीत होताहै, जिसने अपने खड्ग के वल पर मगध पर विजय प्राप्तकीथी [5]।

शिशुनाग ने अवन्ति और सम्भवतः वत्स और कोसल पर भी अधिकार करलिया। उसकी राजधानी वैशाली थी। वह स्वयँ प्रायः गिरिव्रज में रहताथा। उसका पुत्र वाराणसी केन्द्र से उसके राज्य के पश्चिमी भाग की रक्षा करताथा [6]।

कालाशोक

शिशुनाग के पश्चात् कालाशोक को, जिसे पुराणों में काकवर्णी कहागयाहै, मगध का सिंहासन प्राप्त हुआ।

१- महावंश, पृ० १५; अंगुत्तरनिकाय ३।५७-६३ २- रायचौधरी—पौलिटिकल हिस्टरी, पृ० २१९; मजूमदार तथा पूसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० २९ ३- महावंश, पृ० १५

४- मजूमदार तथा पुसलकर — पूर्वोक्त, पृ० २९

५- 'The countries of the Himalayan frinze at this period were occupied by innumerable clans governed by their local constitutions, which may be described as the aristocratic obligarchies. It is possible that the Shishunagas and the Nandas may have been descendants of the mountain chieftains, who won the kingdom of Magadha by conquest.'
— रैप्सन—कैम्ब्रिज हिस्टरी, भाग १, पृ० २८१

६- 'हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य स यास्यति गिरिव्रजं॥'
— मत्स्य और ब्रह्माण्डपुराण में कलिराजवंशों की सूची ; परजिटर—मारकण्डेयपुराण, पृ० २१

कालाशोक ने मगध की राजधानी वैशाली से हटाकर पाटलिपुत्र में स्थापित थी। अपनी भौगोलिक परिस्थिति के कारण पाटलिपुत्र व्यापार का प्रमुख केन्द्र बनगया। अनेक शताब्दियों तक उसे भारत की राजधानी बनेरहने का गौरव प्राप्त हुआ।

हर्षचरित से विदित होताहै कि शिशुनागवँश में उत्पन्न काकवर्ण (काकवर्णि= कालाशोक) आश्चर्यजनक वस्तुओं को देखनेकेलिए बड़ा उत्सुक रहताथा। किसी यवन द्वारा निर्मित यन्त्रचालित नभयान को देखकर वह कुतूहलवश उसमें बैठा ! यवन ने उसे यान में ऊपर उठाया तथा नगर के पास ही उस निशस्त्र काकवर्ण के गले में खड्ग घुसेड़कर उसकी हत्या करदी [१]।

हर्षचरित के इस उल्लेख और उस पर शँकर की टीका के आधार पर डा० त्रिवेद का अनुमान है कि काकवर्णी का राज्य मगध से काबुलनदी तक फैलाथा [२]। तथा उसकी हत्या काबुलनदी के दक्षिणीतट पर स्थित जलालाबाद के समीप 'नगर' नामक स्थान पर हुईथी [३]। कुछ विद्वानों की सम्मति में काकवर्णी के साम्राज्य को इतना विशाल मानने केलिए अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। नगर काकवर्णी की राजधानी का द्योतक भी होसकताहै [४]। शँकर ने नगर को उस यवन के देश में बतलायाहै [५]।

यूनानी लेखक कर्टियस के अनुसार कालाशोक की हत्या उसकी रानी के जार, एक नापित के द्वारा हुईथी, जो इस हत्याकांड के पश्चात् कालाशोक के अबोध बच्चों का सँरक्षक बनबैठा। शक्ति प्राप्त करलेने पर उसने राजकुमारों की हत्या करके सिंहासन पर अधिकार करलिया और नन्दवँश की स्थापना की [६]।

विष्णुपुराण के अनुसार शिशुनागवँश में दस नरेश हुए। शिशुनाग, काकवर्ण, क्षेत्रधर्मा, क्षेत्रज्ञ, क्षेमधर्मज, विधिसार, अजातशत्रु, दर्भक, भावीदर्भक और अजय। उन्होंने एक सौ तिरेसठ वर्ष राज्य कियाथा [७]।

समकालीन कुलिन्द जनपद— समकालीन कुलिन्द जनपद सम्भवतः पूर्ववत् तामस [८], कालकूट [९], तङ्गण [१०], भारद्वाज [११], रङ्कु [१२] और आत्रेय [१३] (गोविषाण) प्रदेशों में बँटाथा। आत्रेय के अन्तर्गत सम्भवतः तराई प्रदेश भी सम्मिलित था। शब्दसाम्य के

---

१ 'आश्चर्यकुतूहली च दण्डोपनत-यवन-निर्मितेन नभस्तलयायिना यन्त्रयानेनानीयत क्वापि काकवर्णः शैशुनागिश्च नगरोपकण्ठे कण्ठे निचकृते निस्त्रिंशेन।' — हर्षचरितम्, पृ० ३५३

२- त्रिवेद — प्राङ्मौर्य विहार पृ० १०३

३- त्रिवेद — पूर्वोक्त, पृ० १०२

४- द्र०, रायचौधरी—पौलिटिकल हिस्ट्री आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० २२२

५- हर्षचरितम्, शंकर की टीका, पृ० ३५३

६- उ० मजूमदार तथा पुसलकर—एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३०

७- 'शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः। क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः॥
विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति। दर्भकस्तत्सुतो भावीदर्भकस्याजयः स्मृत॥'
— विष्णुपुराण, द्वादशस्कन्ध, १।५-६

८, १० 'तामसा हंसमार्गश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा'।

९- अष्टाध्यायी, ४।१।१७३

११, १३- 'आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च दशेरका'॥

१२- अष्टाध्यायी, ४।२।१००

आधार पर आत्रेय को तराई का सँस्कृतरूप मानसकतेहैं। आत्रेयप्रदेश भारद्वाजप्रदेश से सटा हुआ और उसका अँग था।

कुलिन्दजनपद के पूर्वीभाग में शासन करनेवाली जनशाखा इन दिनों बड़ी प्रवल थी। उसका क्षेत्र गङ्गाजी से कोसीनदी तक की पर्वतीय उपत्यका में फैलाथा। उसकी राजधानी रामगङ्गा के तट पर थी। यह शाखा नन्द भी कहलातीथी [१]। उन दिनों कुलिन्दजनपद के निवासी पूर्ववत् कृषि, पशुचारण, व्यापार और शस्त्रोपजीविका से अपना निर्वाह करतेथे।

बौद्धमत का प्रसार—उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग, भाबरप्रदेश में बौद्धमत का प्रसार था। कनखल के पास अहोगङ्ग या चण्डी की पहाड़ी पर और निकट-प्रदेश में बौद्ध-बिहारों की स्थापना होचुकीथी। उनमें ख्यातिप्राप्त स्थविर रहतेथे। इन बौद्धविहारों को उत्तराखण्ड के कुणिन्दनरेशों का आश्रय प्राप्त था। कुणिन्दगण की प्राचीनतम मुद्राओं पर भी बौद्धवेष्ठिनी, त्रिरत्न और वोधिवृक्ष अङ्कित मिलतेहैं [२]।

कालाशोक के राज्यकाल में बौद्धसँघ में दो दलों में घोर विवाद चलाथा। वैशाली के भिक्षु उपोसथ के दिन कांसे की थाली को पानी से भर भिक्षुसँघ के बीच में रखकर आने-जानेवाले वैशाली के उपासकों से सँघ केलिए द्रव्य मांगतेथे [३]। तथा विनय के नियमों के विरुद्ध अविहित कार्य करतेथे। इसका बुद्ध के पट्टशिष्य आनन्द के शिष्य स्थविर यश ने विरोध कियाथा [४]।

जब अकेले यश के कहने से विवाद शान्त न हुआ तो उन्होंने पावा और अवन्ति के भिक्षुओं के पास दूत भेजकर अहोगङ्गपर्वत पर आने केलिए कहा [५]। और स्वयँ अहोगङ्ग-पर्वत पर चलेगए। अहोगङ्गपर्वत पर उन दिनों साणवासी (श्मशान में पड़े या सण-भँग के वस्त्र पहननेवाले) सम्भूत स्थविर रहतेथे। सम्भूत स्थविर बुद्ध के पट्टशिष्य आनन्द के शिष्य थे [६]। उन्होंने श्रामणेर अवस्था में बुद्ध के दर्शन किएथे [७]।

पावावाले साठ, अवन्तिवाले अस्सी, यह सब स्थविर अहोगङ्गपर्वत पर एकत्रित हुए [८]। इधर - उधर से सूचना पाकर नब्बे सहस्र भिक्षु अहोगङ्ग पर एकत्रित होगए [९] साणवासी सम्भूत ने वैशाली के भिक्षुओं के आचरण को विनय के सर्वथा विरुद्ध बतलाया। तब, वे सब साणवासी सम्भूत को लेकर वैशाली पहुँचे [१०]।

वैशाली में बारह लाख भिक्षु एकत्रित हुए। विवादों का निश्चय करने केलिए आठ स्थविरों की जो पञ्चायत बनी उसमें भी साणवासी सम्भूत को स्थान दियागया [११]।

तब कालाशोक की सँरक्षता में, वैशाली के बालुकाराम में आठ स्थविरों की पञ्चायत द्वारा रेवतस्थविर की प्रधानता में विवादों के निर्णय की पुष्टि कीगई और धर्म तथा विनय का सँगायन कियागया [१२]। यह कार्य आठ मास तक चलतारहा [१३]। इसीका

१- परजिटर—मारकंडेयपुराण, पृ० ३८३ २- कनिंघम—क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७१
३-४- राहुल — बुद्धचर्या, पृ० ५१८-१९ ५-६- महावंश, पृ० १७ ७- महावंश, पृ० १९
८-९- महावंश, पृ० १७ १०-११- महावंश, पृ० १८ १२-१३- महावंश, पृ० १९

नाम बौद्धमत की द्वितीय सङ्गीति है ।

कितने ही भिक्षु इस सङ्गीति से सहमत न हुए। उन्होंने अपने महासँघ का कौशाम्बी में पृथक् सम्मेलन किया तथा अपने मतानुसार धर्म और विनय का सँगायन किया [१]।

सँघ के स्थविरों (वृद्ध भिक्षुओं) का अनुगमन करनेवाला होनेसे पहला समुदाय (= निकाय) आर्यस्थविर या स्थविरवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ और दूसरा महासांघिक[२]। तबसे अगली दो - तीन शतियों तक उत्तराखण्ड में अहोगङ्गपर्वत पर स्थविरवादियों का प्रमुख केन्द्र बनारहा ।

तिथि - क्रम

वर्धमान महावीर — जन्म [३] - चैत्र शुक्लात्रयोदशी, वि०पू० ५४२ (599 B. C.)
निर्वाण [४] - ७२ वर्ष में, बैशाख शुक्लादशमी वि० पू० ४७० (527 B.C.)

सिद्धार्थ, गौतम (बुद्ध)—जन्म[५] लगभग वि० पू० ५०६ (563 B. C.)
निर्वाण [६] - वि० पू० ४२६ (483 B. C.)

पाणिनि [७] — वि० पू० ४२३-३५३ (480-410 B. C.)

शिशुनाग [८] — वि० पू० ३७३ - ? (430 B. C. - ?)

कालाशोक[९] — वि०पू० ? - ३०७ (? - 364 B. C.)

बौद्धमत की द्वितीय सँगीति [१०] – वि० पू० ३२६ (383 B. C.)

कालाशोक की हत्या[११]
नन्दवँश की स्थापना – वि० पू० ३०७ (364 B. C.)

नन्द-साम्राज्य [१२] – वि पू० ३०७-२६७ (364-324 B.C:)

१-२- राहुल – बुद्धचर्या, भूमिका, पृ० ६ ३-४- जैन – जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० १२
५- राहुल– बुद्धचर्या, पृ० १ ६- राहुल—बुद्धचर्या, भूमिका, पृ० ५ ७- अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ५७२
८-९- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३८
१०- राहुल – बुद्धचर्या, पृ० १८
११-१२- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३८

नन्द-साम्राज्य में

उग्रसेन - महापद्म

पुराणों के अनुसार कालाशोक या काकवर्णी से मगध का सिंहासन छीनकर नन्दवँश की स्थापनाकरनेवाले नरेश का नाम महापद्म था। अनुमान कियाजाताहै कि महापद्मपति या अतिविशाल सेना का स्वामी होनेके कारण अथवा उसके कोष में महापद्म या अपार धनराशि होनेके कारण उसे यह विरुद मिलाहोगा [1]।

महाबोधिवँश के अनुसार उसका वास्तविक नाम उग्रसेन था। यूनानी लेखकों ने इस नरेश के पुत्र का, जो सिकन्दर का समकालीन था, अग्रमस के नाम से उल्लेख कियाहै [2]। विद्वानों की धारणा है कि अग्रमस सँस्कृत औग्रसेन्य का यूनानी रूप है, जिसका अर्थ होताहै, उग्रसेन का पुत्र [3]।

प्रारम्भिक जीवन—नन्दवँश के सँस्थापक उग्रसेन - महापद्म के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। पुराणों के अनुसार वह पिछले राजवँश के किसी क्षत्रबन्धु या नाम-मात्र के क्षत्रिय का शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र था [४-५]।

जैनग्रन्थ परिशिष्टपर्वणि के अनुसार नन्दराज वेश्या से उत्पन्न नापितपुत्र था [6]। यह किम्बदन्ती यूनानी लेखक कर्टियस ने भी सुनीथी। उसने लिखाहै — सिकन्दर के समकालीन नन्दवँशी अग्रमस (औग्रसेन्य) का पिता (उग्रसेन) एक निर्धन नापित था। अपनी आकर्षक आकृति के कारण वह रानी का प्रियपात्र बनगया और राजा का विश्वास प्राप्तकरके उसने छल से उसकी हत्या करदी। कुछ दिनों तक राजकुमारों का सँरक्षक रहकर अन्त में वह स्वयँ राजा बनबैठा [7]।

१- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३१

२- 'अग्रमस नाम सम्भवत: उग्रसेन का अपभ्रंश है, जो महाबोधिवंश के अनुसार प्रथम नन्द का नाम है, न कि औग्रसेन का अपभ्रंश (औग्रसेनि), जैसा रायचौधरी मानतेहैं'।
— त्रिवेद — प्राङ्मौर्य विहार, पृ० १२४

३- मजूमदार तथा पुसलकर—पूर्वोक्त, पृ० ३१

४- 'महानन्दिसुत: शूद्रागर्भोद्भवो वली' — भागवतपुराण, द्वादशस्कन्ध, १।८

५- 'महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशज:' — मत्स्यपुराण, २७२।१७

६- परिशिष्टपर्वणि, पृ० ४६; उ० रायचौधरी—पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० २३१-३२

७- उ० रायचौधरी — पूर्वोक्त, पृ० २३२

पुराण और यूनानी लेखक माता या पिता की ओर से उग्रसेन - महापद्म में शूद्ररक्त मानतेहैं। प्राचीन साहित्य में नन्दवँश को शूद्रवँश कहागयाहै। भारत में पिता की जाति पर पुत्र की जाति मानीजानेके कारण विद्वान् उग्रसेन - महापद्म को शूद्रकुलोत्पन्न मानतेहैं [१]।

बौद्धग्रन्थ महावँशटीका के अनुसार उग्रसेन पचन्तवासिक अर्थात् प्रत्यन्त (सीमांत) देश का निवासी था। वह अन्नातकुल या अज्ञातकुल में उत्पन्न हुआथा [२]। बचपन में वह आयुधजीवी दस्युओं के हाथ में पड़गया। वे उसे बन्दी बनाकर दूसरे प्रत्यन्तदेश, मलय (मिलाइए, मुद्राराक्षस का मलय) में लेगए [३]। उनके सँसर्ग में उसने दस्युवृत्ति अपनाली [४]। महाबोधिवँश के अनुसार वह स्वयँ भी चोर - पुब्बस या चोर-पूर्वज था। उसके पूर्वज दस्यु थे। वह दस्युवँश में उत्पन्न हुआथा। और उसने युवा होने पर अपनी परम्परागत दस्युवृत्ति अपनालीथी [५]। कालान्तर में वह दस्युजनों का सरदार बनबैठा [६]।

शक्ति बढ़जाने पर उसने पहले प्रत्यन्त के [७] पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण करना आरम्भ करदिया [८]। उसका नारा था—'राज्य छोड़ो या युद्ध करो' [९]। इसी क्रम से प्रत्यन्त के पड़ोसी देशों को जीततेहुए उसने मगध पर अधिकार करलिया। वह महत्वाकांक्षी दस्यु-सरदार मगध का सम्राट बनबैठा [१०]।

बौद्ध परम्परा उग्रसेन-महापद्म को दुराचारिणी रानी के सहयोग से छलछद्म द्वारा कालाशोक - काकवर्णी की हत्या से मुक्तकरतीहै। महावँशटीका में वर्णित उग्रसेन की विजयगाथा को ध्यान में रखकर विदित होताहै कि काकवर्णी की हत्या सम्भवतः उसे रणस्थल में पराजित करनेके पश्चात् कीगईथी [११]।

उग्रसेन के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में पूर्वोक्त किम्बदन्तियों से पता लगताहै कि—

(१) उग्रसेन की मूलभूमि प्रत्यन्तदेश थी, जो मलय से भिन्न थी,
(२) उसकी परम्परागत वृत्ति दस्युवृत्ति थी,
(३ वह शूद्र कुलोत्पन्न था,
(४) उसने एक-एक करके पड़ोसी देशों को जीततेहुए मगध पर अधिकार कियाथा।

१- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी पृ० ३१
१-३- महावंशटीका, उ० मजूमदार तथा पुसलकर — पूर्वोक्त, पृ० ३२
४- राधाकुमुद मुकरजी — चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० १९
५- महाबोधिवंश, उ० मजूमदार तथा पुसलकर—पूर्वोक्त, पृ० ३२
६- महावंशटीका, उ० मजूमदार तथा पुसलकर—पूर्वोक्त, पृ० ३२
७- 'पचन्तनगरं गत्वा'—उ० रा०कु० मुकरजी—चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० १९
८- 'रट्ठ विलुपनानो विचरन्तो'—उ० रा०कु० मुकरजी—पूर्वोक्त, पृ० १९
९- 'राज्यं वा देन्तु युद्धं वा'—उ० रा०कु० मुकरजी—पूर्वोक्त, पृ० १९
१०- रा०कु० मुकरजी—पूर्वोक्त, पृ० १९
११- महावंशटीका, उ० मजूमदार तथा पुसलकर - पूर्वोक्त पृ० ३२

प्रत्यन्तदेश—प्रत्यन्तदेश का अर्थ सीमावर्ती प्रदेश या सीमान्त से सटाहुआ देश मानाजाताहै। समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति में समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल और कर्तृपुर प्रत्यन्तदेशों में गिनेगएहैं [१]। ये देश समुद्रगुप्त के राज्य के सीमान्त से सटेथे। कालाशोक के समय, जिससे उग्रसेन ने राज्य छीनाथा, मगधराज्य की सीमा कोसल तक पहुँचीहुईथी[२]। इसलिए उत्तराखण्ड सहित उत्तरपांचाल की गिनती उस समकालीन प्रत्यन्तदेश से होसकतीहै, महावँशटीका के अनुसार जिसका निवासी उग्रसेन था। मलय की पहिचान अनिश्चित है। उसे पश्चिमी हिमालय में मानाजाताहै। उग्रसेन की जन्मभूमि मलय नहीं थी।

परम्परागत दस्युवृत्ति—उग्रसेन की परम्परागत दस्युवृत्ति तथा उसके द्वारा एक-एक करके उत्तरभारत के अनेक जनपदों को जीतकर मगध पर अधिकार करलेनेसे स्पष्ट है कि वह साधारण दस्यु न होकर उसीप्रकार के आयुधजीवियों के दल का नायक था, जिनको पाणिनि ने पर्वताश्रयी आयुधजीवी तथा कौटिल्य ने शस्त्रोपजीवी कहाहै।

शूद्र— ऐसे आयुधजीवी उन दिनों उत्तराखण्ड के कुणिन्द - कनैत - खश थे। जिन्हें महाभारत में म्लेच्छ कहागयाहै[३]। आज भी उनकी सामाजिक प्रथाएँ शास्त्रीय हिन्दुधर्म की प्रथाओं से अधिक ढीलीढाली हैं, ब्राह्मण पुरोहितों के अभाव से उनके विधिपूर्वक सँस्कार नहीं होते। इसलिए मनु ने उन्हें ब्राह्मण - पुरोहितों का दर्शन न मिलनेसे सँस्कारच्युत वृषल बतलायाहै [४]।

अँगरेजीराज्य के आरम्भिक वर्षों तक कनैत - खशों को शूद्र मानाजाताथा। सन् 1885 की जनगणना में गढ़वाल के कनैत-खशों को शूद्रवर्ग में स्थान दियागयाथा [५]। आज भी हिमाचलप्रदेश - उत्तराखण्ड में उच्चवँशी राजपूत कनैत - खशों को अपने समकक्ष नहीं मानते [६]।

विक्रमपूर्व छटी शताब्दी से विक्रमपूर्व तीसरी शताब्दी तक मध्यदेश के पूर्वी भाग के क्षत्रियों का जात्याभिमान अपनी चरम सीमा पर था [६]। जातकों और अन्य बौद्धग्रन्थों में बार - बार क्षत्रियवर्ण को शेष तीन वर्णों से श्रेष्ठतर बतलायागयाहै [७]। इन ग्रन्थों के

१- प्रयाग-प्रशस्ति , उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३४६ २- मजूमदार तथा पुसलकर—एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३० ३- वनपर्व, १४५।११

४- ' शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥
पौण्ड्काश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः। पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥'
... मनुस्मृति, १०।४३-४४

५- द्र०, जोशी -- खश - फेमिली - लौ, पृ० ४

६- द्र०, निम्न गजेटियर -- कांगड़ा, पृ० १५१; खनेटी, पृ० ४; ठ्योग, पृ० २; धामी, पृ० १; नालागढ़, पृ० ८; बघाल, पृ० ३; भज्जी, पृ० ३; मंडी, पृ० २४; रवांईगढ़, पृ० ३; सुकेत, पृ० २०; पौ - गढ़वाल - सेटलमेंट-रिपोर्ट, पृ० ८२; लायल -- कांगड़ा-सेटलमेंट-रिपोर्ट, पैरा ६९ आदि

७- मोहनलाल महतो—जातककालीन भारत, पृ० १४७ ८- मोहनलाल महतो—पूर्वोक्त, पृ० १२१

अनुसार स्वयँ बुद्ध भी इस धारणा के प्रचारक और पोषक थे [१]। शूद्र द्वारा क्षत्रियनरेशों को पराजित करके मगध के सिंहासन पर अधिकार जमाना, एक ऐसी क्रान्ति थी, जिसे उस काल का समाज सर्वथा अनुचित समझताथा [२]। इसलिए नन्दवँशियों के सम्बन्ध में पुराणों और बौद्धग्रन्थों में बार - बार आक्षेप किएगएहैं।

कुणिन्द से नन्द— महाभारतकाल से लेकर विक्रम की तीसरी शती तक कुलिन्द जनपद (हिमाचलप्रदेश - उत्तराखण्ड) पर कुणिन्दनरेशों का अधिकार था। कुलिन्द जनपद अनेक ठकुराइयों में बँटाथा। विक्रमपूर्व तीसरी शती में उत्तराखण्ड पर गङ्गाजी की पनढाल से लेकर कोसी की पनढ़ाल तक कुलिन्दजन की एक शाखा का राज्य फैलाथा, जिसकी राजधानी उत्तराखण्ड में रामगङ्गा के तट पर बताईजातीहै [३]।

कुलिन्दजन की यह शाखा अशुभसूचक 'कु' को छोड़कर नन्द भी कहलातीथी [४]। रैप्सन का अनुमान है कि नन्दवंश के सँस्थापक का सम्बन्ध उत्तराखण्ड के इस नन्दवँश से जोड़ाजासकताहै [५]।

पूर्ववर्णित तथ्यों एवँ उग्रसेन के विजितदेशों के क्रम पर दृष्टि डालने से भी उग्रसेन की जन्मभूमि और मूलवँश के सम्बन्ध में रैप्सन का यह अनुमान साधार प्रतीत होताहै।

उग्रसेन-महापद्म के जिन आठ पुत्रों ने उसके पश्चात् राज्य कियाथा, उनके नाम महाबोधिवँश के अनुसार पण्डुक, पण्डुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविषाणक, दशसिद्धक, कैवर्त और धननन्द थे [६]। इनमें गोविषाणक के नाम पर ध्यानदेने की आवश्यकताहै।

उत्तराखण्ड का दक्षिणपूर्वी भाग प्राचीनकाल में गोविषाण कहलाताथा। युवान्‌चाङ् ने गोविषाण की यात्रा कीथी। काशीपुर के पास आज भी गोविषाण के ध्वँसावशेष हैं [७]। अनुमान लगताहै कि नन्दवँश के सँस्थापक का या उसके पुत्र का गोविषाण से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य था। या तो उसकी मूलभूमि या राजधानी गोविषाणनगर या प्रदेश में थी, अथवा गोविषाण की विजय के समय उसका वह पुत्र उत्पन्न हुआथा, जिसका उसने गोविषाणक नाम रखाथा।

१- मोहनलाल महतो -- जातककालीन भारतवर्ष पृ० ६ २- त्रिवेद — प्राङ्मौर्य बिहार पृ० १०३

३- ४- परजिटर — मारकंडेयपुराण, पृ० २९२, ३९३; उ० रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, भाग १, पृ० २८०

५- 'As to the origin of the Nandas, we have no certain information, but the name is probably tribal, and it may be connected with the Nandas, who lived near the river Ramganga, between the Ganges and the Kosi, in the Himalayan region of the United Provinces'

— रैप्सन—कैम्ब्रिज हिस्टरी, भाग १, पृ० २८०

६- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० २३६

७- कनिंघम -- एनशिएंट जियोग्राफी आव इंडिया, पृ० ३००

बौद्धपरम्परा के अनुसार नन्दवँश के सँस्थापक ने खुले युद्ध में वलपूर्वक जीतकर मगध पर अधिकार कियाथा, रानी के साथ मिलकर कायरों की भांति षड़यन्त्र रचकर नहीं[१]। रैप्सन भी कर्टियस की कहानी पर विश्वास नहीं करता। उसकी धारणा है कि शिशुनागवँश और नन्दवँश की स्थापना करनेवाले पर्वतीय सरदार थे, जिन्होंने मगधनरेश को युद्ध में हराकर उसके राज्य पर अधिकार कियाथा [२]।

विजय— अपने आयुधजीवी दस्युदल को लेकर उग्रसेन ने जिन राज्यों को जीता था, वे इक्ष्वाकु, पाञ्चाल, काशी, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरु, मैथिल, शूरसेन एवँ वीतिहोत्र, थे [३]। इन राज्यों मेंसे कुछ पर पहले काकवर्णी आदि शिशुनागवँशी नरेशों की अधीनता में स्थानीय शासक शासन करतेथे। उग्रसेन - महापद्म ने स्थानीय शासकों को हटाकर उनके द्वारा शासितप्रदेशों पर भी अधिकार करलियाथा।

इक्ष्वाकुनरेशों की राजधानी अयोध्या या साकेत पर महापद्म के अधिकार की पुष्टि कथासरित्सागर में वर्णित उस प्रसँग से भी होतीहै, जिसमें अयोध्या में नन्दराज के स्कन्धागार का उल्लेख है [४]।

कलिंग पर नन्दराज के अधिकार की पुष्टि खारवेल के हाथीगुम्फा - अभिलेख से होतीहै। उसने कलिंग में एक जलप्रणाली का उद्घाटन कियाथा [५] तथा वहां से एक बहुमूल्य जैनप्रतिमा उठालेगयाथा [६]।

गोदावरी के तट पर वर्तमान नन्देर के पास मिले प्राचीन नवनन्ददेड़ा नामक नगर के अवशेषों से तथा मैसूर के कुछ प्राचीन अभिलेखों से विदित होताहै कि महाराष्ट्र का उत्तरी भाग कुन्तल, मैसूर का उत्तरपश्चिमी भाग तथा दक्षिण के निकटवर्ती प्रदेश नन्द-साम्राज्य के अन्तर्गत थे [७]। जैनपरम्पराओं के अनुसार नन्दसाम्राज्य (पश्चिमी) समुद्र से (पूर्वी) समुद्र तक फैलाथा [८]।

१- ' So this Budhist Tradition represents the Nandas as openly conquering Magadha by force and not by any secret conspiracy or cowardly assassination of the reigning King by intrigues with the queen.'
—मजूमदार तथा पुसलकर – एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३२

२- ' It is possible that the Shishunagas and the Nandas may have been the descendants of the mountain chieftains, who won the kingdom of Magadha by conquest.'—रैप्सन – कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, भाग १, पृ० २८०

३- द्र०, रायचौधरी—पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० २३४; मजूमदार तथा पुसलकर – पूर्वोक्त, पृ० ३२

४- कथासरित्सागर, ४।२।८३, पृ० २५

५- जायसवाल – खारवेल का शिलालेख, पृ० १४

६- जायसवाल – पूर्वोक्त, पृ० १२

७- मजूमदार तथा पुसलकर – एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३२

८- ' समुद्रवसनेशेभ्य आसमुद्रमपि श्रियः।
उपायहस्तैराकृश्य ततः सा कृत नन्दसात् ॥' – उ० रायचौधरी -- पूर्वोक्त, पृ० २३४

नन्द - साम्राज्य पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में पञ्जाब तक फैलाथा। यूनानी लेखकों के अनुसार उसका राज्य व्यासनदी के पूर्वीतट से लेकर गङ्गाजी के मुहाने तक फैलाथा [१]।

यूनानी लेखकों के अनुसार, सिकन्दर के आक्रमण के समय, विशाल मरुस्थल (थार) के पार प्रसि (प्राच्य) और गङ्गरिदे (निचली गङ्गाघाटी) पर एक ही नरेश का शासन था। तथा उस नरेश की राजधानी पलिबोथा (पाटलिपुत्र) थी [२]। उन्होंने लिखाहै कि पौरव राजकुमार पुरुवँशी - नरेश (पोरस) के समान सिकन्दर की अधीनता स्वीकारकरने को प्रस्तुत न था। जब सिकन्दर की सेना ने उसका पीछा किया तो उसने भागकर समीपवर्ती नन्द - साम्राज्य में शरण लीथी [३]।

इन प्रमाणों से विदित होताहै कि नन्द-साम्राज्य स्थूलरूप से हिमालय से लेकर कलिंग, महाराष्ट्र और मैसूर तक, तथा पूर्वीपञ्जाब से लेकर पश्चिमीबङ्गाल तक विस्तृत था [४]।

एकच्छत्र—महापद्मनन्द ने हिमालय से लेकर नीलगिरि तक तथा व्यासनदी से लेकर गङ्गाजी के मुहाने तक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना कीथी। इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत उसने स्थानीय नरेशों का उत्पाटन करके एक सुसँगठित एकच्छत्र राज्य की स्थापना कीथी [५]।

एक शूद्र के द्वारा मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रियनरेशों का उत्पाटन वर्णाश्रमव्यवस्था पर आस्था रखनेवाले विद्वान् ब्राह्मणों, क्षत्रियवँशों और जनसाधारण केलिए एक दारुण घटना थी। इसलिए पुराणों में महापद्मनन्द को सर्वक्षत्रान्तक तथा शूद्रा के गर्भ में कलि के अँश से उत्पन्न कहागयाहै [६]। उसे समस्त क्षत्रियवँशों का उत्पाटन करनेवाला दूसरा परशुराम बतलायागयाहै [७]।

१- मैंक्रिडल – इनवेजन, पृ० २७३, उ० मजूमदार तथा पुसलकर—एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३१

२- मैंक्रिडल - इनवेजन, पृ० ६७, १४१, १६१ उ० रायचौधरी—पौंलिटिकल हिस्टरी, पृ० २३४

३- मैंक्रिडल – इनवेजन, पृ० २७३ उ० मजूमदार तथा पुसलकर - पूर्वोक्त पृ० ३३

४- मजूमदार तथा पुसलकर – पूर्वोक्त, पृ० ३३

५- 'The general picture given in the Puranas of the great empire, which Mahapadma Nanda had built up, by exterminating the numerous Kshatriya principalities, may be regarded as historically accurate.'

—मजूमदार तथा पुसलकर—पूर्वोक्त, पृ० ३३

६- 'महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशज: ।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृप: ॥' – मत्स्यपुराण, २७२।१७; वायुपुराण, ९९।३२६; ब्रह्माण्डपुराण, ३।७४।१३९

७- 'महापद्मो नन्द: परशुराम इवापरो खिल क्षत्रान्तकारी भविता।' – विष्णुपुराण, अँश ४, अ०२४; श्रीमद् भागवतपुराण, १२।१।८

उग्रसेन - महापद्म भारत का पहला महान् ऐतिहासिक सम्राट था, जिसने इस देश में इतने विशाल साम्राज्य की स्थापना कीथी। इस देश के इतिहास में केवल मौर्य, मुगल और ब्रिटिश साम्राज्य ही, अपने चरम उत्कर्ष के दिनों में नन्दसाम्राज्य से अधिक विस्तृत बनसके।

उसका साम्राज्य सुसँगठित साम्राज्य था, जिसमें विभिन्न प्रदेश केन्द्र के कठोर नियन्त्रण में थे [1]। महापद्म का आतङ्क इतना कटोर था कि उसकी आज्ञा का, या उसके द्वारा प्रचारित नियमों का उल्लँघनकरने का साहस कोई नहीं करसकताथा [2]।

शासन-व्यवस्था—इतने बड़े साम्राज्य की सुव्यवस्था केलिए उसने निश्चय ही साम्राज्य के विभिन्न भागों एवँ नगरों को अपनी राजधानी से मिलानेवाले मार्गों की सुरक्षा और सुव्यवस्था पर विशेष ध्यान दियाहोगा। अर्थशास्त्र में तथा अशोक के अभिलेखों में [3] मार्गों की सुरक्षा - सुव्यवस्था का जो विस्तृत वर्णन मिलताहै, उसे आरम्भकरने का श्रेय महापद्मनन्द को दियाजासकताहै।

उसे जनहित का, विशेषकर कृषि का, अत्यधिक ध्यान था। उसने कलिंग में एक जलप्रणाली का उद्घाटन कियाथा [4]। जो भारतीय इतिहास में किसी नरेश द्वारा जलप्रणाली-निर्माण का पहला लिखित प्रमाण है।

दान–प्रियता—विपत्ति में फँसेहुए व्यक्तियों, धनहीनों और अवलाओं के हित की नन्दनरेशों को सदा चिन्ता रहतीथी। उनकी सहायताकरना इन नरेशों का दैनिक कृत्य था। नन्दवँश के विनाश के पश्चात् भी नन्दनरेशों के द्वारा दीन-दुखियों के प्रति सद्व्यवहार की कथाएँ चिरकाल तक लोक में प्रचलितरहीं [5]।

नन्दवँश के नरेश अपने पराक्रम, राजोचितगुणों के कारण श्रीकृष्ण के सगोत्री वृष्णि-वँशियों के समान समझेजातेथे [6]। बौद्धस्रोतों से विदित होताहै कि नन्दनरेश अपने विशाल कोष का सदुपयोग करतेथे। धननन्द ने एक दानशाला की स्थापना कीथी, जिसका सँचालन

१- मजूमदार तथा पुसलकर—एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३३

२- 'स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लंघितशासनः।
शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥' — श्रीमद् भागवत् पुराण, द्वाशस्कन्ध, १।१०

३- कालसी का द्वितीय अभिलेख, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३२६

४- 'पंचमे च दानी वसे नन्दराज-ति-वस-सत-ओघाटितं तन-सुलिय-वाटा पनाडि नगरं पवेस (य) ति'
(पञ्चमे चेदानीं वर्षे नन्दराजस्य त्रि-शत-वर्षं अवघट्टितां तनसुलियवाटात् प्रणालीं नगरं प्रवेशयति)
—— जायसवाल—खारवेल का शिलालेख, पृ० १४

५- 'स्वर्गं गताः खलु ते देवाः नन्दाः ये दुःखितं स्त्रीजनं प्रतिदिनं अनुकम्पन्ते।'
— मुद्राराक्षस, अंक ७, पृ० २९५

६- 'वृष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषाम्।
नन्दानां विपुले कुलेऽकरुणयानीते नियत्याक्षयम् ॥' —मुद्राराक्षस, अंक, २, श्लोक ४

किसी विद्वान् ब्राह्मण की अध्यक्षता में एक सँघ के द्वारा होताथा [१]। इस सँघ के अध्यक्ष को एक करोड़ मुद्राएँ तक दान की स्वीकृति देने का अधिकार था। सँघ के सबसे छोटे अधिकारी भी एक लाख मुद्रा तक के दान की स्वीकृति देसकतेथे [२]।

जब चाणक्य शास्त्रकार - परीक्षा देनेहेतु पाटलिपुत्र पहुँचा [३] तो उस विद्वान् को दानशाला का अध्यक्ष चुनलियागया [४]। भाग्यवश धननन्द ने चाणक्य की आकृति और व्यवहार से असँतुष्ट होकर उसे उस पद से हटादिया [५]।

इस अपमान से क्रुद्ध होकर चाणक्य ने धननन्द को श्राप देदिया और उसका वँश नष्ट करदेने की धमकी दी। नग्न आजीविक साधु का वेश बनाकर वह नगर से निकल-भागा [६]। इस गाथा से भी धननन्द की दानप्रियता की पुष्टि होतीहै।

नाप-तोल का नियन्त्रण— उन दिनों भारत के विभिन्न भागों में नाप-तौल की विभिन्न प्रणालियां प्रचलित थीं। महापद्मनन्द भारत का पहला ऐतिहासिक नरेश है, जिसने नाप - तोल की वह निश्चित प्रणाली आरम्भ कीथी, जो प्राचीन साहित्य में नन्दमान के नाम से प्रसिद्ध है [७]। नाप - तोल के बट्टे सर्वप्रथम नन्दनरेश ने निश्चित किएथे [८]। अपने विस्तृत साम्राज्य की आवश्यकताओं केलिए उसे ऐसा करनापड़ाथा। तबसे मगध - मान की प्रसिद्धि हुई [९]।

विद्वानों का सत्कार—आयुधजीवियों का सरदार होने पर भी नन्दनरेश विद्वानों का सत्कार करताथा [१०]। धन की आवश्यकता पड़नेपर विद्वान् उसके पास पहुँचते और उससे अभिलषित धनराशि प्राप्तकरतेथे। विद्वज्जन उसे सदा और सर्वत्र मिलसकतेथे। यहां तक कि युद्ध में, स्कन्धावार में भी उसके पास पहुँचकर धान प्राप्तकरसकतेथे [११]। कथासरित्सागर के अनुसार वह विद्वानों का सम्मानकरनेवाला, वीर और अत्यन्त गुणग्राही था [१२]।

प्राचीन बौद्ध परम्पराओं के आधार पर निर्मित्त मँजुश्रीमूलकल्प से विदित होताहै कि पुष्पपुर में सम्राट नन्द की सभा में सँस्कृत - व्याकरण के महान् आचार्य पाणिनि तथा अनेक तार्किक ब्राह्मण रहतेथे; जिन्हें वह दान - प्रतिष्ठा से सम्मानित करताथा [१३]। इसकी

१-२- महावंशटीका, उ० राधाकुमुद मुकरजी — चन्द्रगुप्त मौर्य एँड हिज टाइम्स, पृ० २१

३- महावंशटीका, उ० रा०कु० मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० १८

४-६- महावंशटीका, उ० रा० कु० मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० २१

७- 'नन्दोपक्रमाणि मानानि' — काशिका, २।४।२१

८-९- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २४२

१०- मंजुश्रीमूलकल्प, उ० अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० १५

११- कथासरित्सागर, १।२।८३

१२- कथासरित्सागर, १।२।८३

१३- 'तस्याप्यनन्तरो राजा नन्दनामा भविष्यति। पुष्पाख्ये नगरे श्रीमान् महासैन्यो महाबलः॥
भविष्यन्ति तदा काले ब्राह्मणास्तार्किका भुवि। तेभि परिवारितो राजा वे ...
तस्याप्यन्यतमः सख्य पाणिनिर्नाम माणवः'॥

—मंजुश्रीमूलकल्प, पटल, ५३, पृ० ६११-१२, उ० अग्रवाल -- पूर्वोक्त, पृ० ४७२

पुष्टि कथासरित्सागर, वृहत्कथामँजरी तथा युवान्चाङ् और तारनाथ के लेख से भी होतीहै [१]। राजशेखर ने उस प्राचीन अनुश्रुति का उल्लेख कियाहै, जिसके अनुसार पाटलिपुत्र में नन्द की सभा में शास्त्रकारों की परीक्षा होतीथी। उस परीक्षा में वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि पिंगल और व्याडि ने उत्तीर्ण होकर यश प्राप्तकियाथा [२]।

बौद्धग्रन्थ महावँश-टीका के अनुसार तक्षशिला गुरुकुल में शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् स्वयँ चाणक्य भी अपनी विद्वता के उपयुक्त सम्मानप्राप्ति-हेतु नन्दराज की सभा में पहुँचाथा [३]। तक्षशिला - जैसे विश्वविख्यात गुरुकुल के पाणिनि और कौटल्य - जैसे स्नातकों का पाटलिपुत्र की 'शास्त्रकार परीक्षा' में पहुँचना, उस नगर को समकालीन काशी का गौरव तो देता ही है, साथ ही उस राजवँश के महान् गौरव को भी प्रदर्शित करताहै जिसके द्वारा पाटलिपुत्र की विद्वत्सभा की स्थापना कीगईथी।

पाणिनि को महापद्मनन्द का समकालीन मानने में कालक्रम में बाधा पड़तीहै। पाणिनि बुद्ध के समकालीन मँखलि गोसाल से परिचित थे [४]। तथा अन्य कई प्रमाणों के आधार पर विद्वान् पाणिनि का समय 500-400 B.C. के बीच मानतेहैं[५]। पुराणों के अनुसार नन्दवँश का राज्यकाल १०० वर्षों तक तथा जैन - अनुश्रुतियों के अनुसार १५० वर्षों तक रहा। उनका राज्यकाल १५० वर्ष मानकर डा०अग्रवाल ने उन नरेशों की राज्यावधि का इस प्रकार अनुमान लगायाहै [६]।

नन्दिवर्द्धन्	लगभग	वि० पू० ४१८ - ३८८	(475 B.C. - 445 B.C.)
महानन्दिन्	,,	वि० पू० ३८८ - ३४६	(445 B.C. - 403 B.C.)
महापद्म	,,	वि० पू० ३४६ - ३१८	(403 B.C. - 375 B.C.)
महापद्म के पुत्र		वि० पू० ३१८ - २६८	(375 B.C. - 325 B.C.)

तारानाथ के अनुसार पाणिनि महापद्मनन्द के पिता नन्द (महानन्दिन्) के मित्र थे [७]। इस अनुमान के अनुसार पाणिनि का समय ईसा - विक्रम - पूर्व पांचवीं शती में निश्चित होताहै। अनेक विद्वान् नन्दवँश की राज्यावधि १५० वर्ष न मानकर केवल ४० वर्ष वि० पू० ३०७ - २६७ (364 B. C. - 324 B. C.) तक मानतेहैं [८]। इससे पाणिनि तथा नन्दवँश के सँस्थापक महापद्म के समय में एक शताब्दी का अन्तर आताहै।

सैन्यवल—शूद्रवँशी मानेजाने के कारण तत्कालीन ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा जन-साधारण की नन्दवँश के प्रति अश्रद्धा थी। जिन राजवँशों से उग्रसेन ने उनके राज्यों को छीनाथा, उन वँशों के अवशिष्ट व्यक्ति, आश्रित, सम्बन्धी, पुरोहित तथा उससे सहानुभूति

१- अग्रवाल -- पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १५, १७, ४७३

२- 'श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा। अत्रोपवर्ष वर्षाविह पाणिनिपिंगलाविह व्याडि:। वररुचि-पतंजली इह परीक्षिता: ख्यातिमुपजग्मु:॥ — राजशेखर—काव्यमीमांसा, पृ० १४३

३- उ० मुकरजी -- चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० १८ ४- अग्रवाल -- पूर्वोक्त, पृ० ४७०-७१

५- अग्रवाल -- पूर्वोक्त, पृ० ४७२ ६- ७- अग्रवाल -- पूर्वोक्त, पृ० ४७३

८- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३८

रखनेवाले व्यक्तियों की नन्दसाम्राज्य के प्रति सद्भावनाएँ न थीं। उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों में, प्रायः सर्वत्र उससे द्वेष रखनेवाले अनेक परिवार थे। जिनकी शक्ति और साधनों को महापद्म पूरीतरह नष्ट न करसकाथा।

उपद्रवी तत्वों का दमन करनेकेलिए तथा अपने विशाल साम्राज्य पर सुदृढ़ नियन्त्रण रखनेकेलिए उग्रसेन ने एक विशाल सेना सँगठित कीथी। यूनानी लखकों के अनुसार उग्रसेन या उसके पुत्र की सेना में दो लाख पदातिक, बीस सहस्र अश्वारोही, दो सहस्र रथ, तथा तीन सहस्र से छै सहस्र तक रणहस्ती थे [१]। उसकी सेना युद्धकाल में सुशिक्षित, रणभूमि से चिरपरिचित, सर्वजयी तथा तत्कालीन सर्वोत्तम अस्त्र - शस्त्रों से सुसज्जित थी। मिलिन्द-प्रश्न के अनुसार उसका सेनाध्यक्ष भद्रशाल था [२]।

उसके सैनिकों के पास विशाल धनुष एवँ लोहे की तीव्र नोकवाले बाण होतेथे। धनुष को पैर से दबाकर, पूरी शक्ति से जो बाण फेंकाजाताथा, उसका प्रहार अचूक होताथा [३]। निकट से भिड़नेवाले शत्रुओं का सामना ढाल, तलवार, गदा आदि से कियाजाताथा [४]। सेना को नियमितरूप से वेतन देकर सन्तुष्ट रखाजाताथा। इस सेना के रण - कौशल की ख्याति दूर-दूरतक फैलीथी।

महापद्मनन्द स्वयँ अति कुशल सैनिक था। वह भागतेहुए शत्रुओं का पीछा करते समय स्वयँ अपने अश्व को भगातेहुए शत्रुओं पर अचूक प्रहार करताथा। अपने दौड़तेहुए अश्व की बाग ढीली करके वह बिना रुके ही धनुष की प्रत्यञ्चा खींचता और शत्रुओं पर वाण चलाताथा [५]।

जब सिकन्दर ने अपनी सेना को व्यासनदी पारकरके नन्दसाम्राज्य पर आक्रमण करने का आदेश दिया तो उसकी सेना ने नन्द के सैन्यवल से सँत्रस्त होकर आगे बढ़ना अस्वीकार करदिया [६]।

स्मिथ का अनुमान है यदि सिकन्दर की सेना नन्दसाम्राज्य पर आक्रमण करती तो उसकी अपार सँख्या - मात्र से कांपउठती [७]। सचमुच मेसेडोनिया की सेना को कत्लेआम ने बचाने का श्रेय सिकन्दर के उन सैनिकों को है जिन्होंने उस समय विद्रोह करदियाथा [८]।

कर—अपनी विशाल सेना का वेतन चुकाने तथा अपने विस्तृत साम्राज्य में सुव्यवस्था बनाएरखने केलिए उग्रसेन को अपार धन की आवश्यकता थी। इसमें सन्देह नहीं कि उसने प्रजा पर अनेक कर लगाएहोंगे। जिन नरेशों को उसने पराजित कियाथा,

---

१- रायचौधरी – पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० २३६ - ३७

२- मिलिन्द-प्रश्न, पृ० १४७ - ४८ ३- ४- रैप्सन—कैम्ब्रिज हिस्टरी, भाग १, पृ० ३०४

५- 'शार्ङ्गज्याकृष्टमुक्तप्रशिथिलकविकाप्रग्रहेणात्र देशे।
देवेनाकारि चित्रं प्रजवितुरगं बाणमोक्षश्चलेषु ॥' — मुद्राराक्षस, अंक, ६, श्लोक ६

६- उ० रायचौधरी – पूर्वोक्त, पृ० २६७ ७-८- स्मिथ -- अर्लि हिस्टरी आव इंडिया, पृ० १२

उनके राजकोष से भी उसने अपार धन लूटाहोगा। कथासरित्सागर के अनुसार उसके कोष में निन्यानवे करोड़ स्वर्णमुद्राएँ थीं [१]। कहतेहैं उसने अपने कोष की अपार धनराशि को पाटलिपुत्र में अनेक स्तूपों में जमा कियाथा [२]। पुराणों में उसे अतिलोभी कहागयाहै [३]। अनुमान कियाजाताहै कि अपार धन के कारण उसे महापद्म (-पति) नाम मिलाथा [४]। बौद्धग्रन्थों से विदित होताहै कि वह इस धनराशि को जनहित में व्यय करताथा, जिसका पहले उल्लेख होचुकाहै।

राज्यावधि—पुराणों की मुद्रित प्रतियों के अनुसार महापद्म पृथ्वी पर ८८ वर्ष तक रहा [५]। इससे उसका दीर्घजीवी होना सिद्धहोताहै। कुछ पुराणों की हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार महापद्म ने २८ वर्ष राज्य कियाथा [६]। इस राज्यावधि को विद्वान् अधिक विश्वसनीय समझतेहैं [७]।

महापद्म के पश्चात् उसके आठ पुत्रों ने वयक्रम के अनुसार कुल मिलाकर १२ वर्ष तक [८], तथा डा० मोतीचन्द्र के अनुसार २२ वर्ष तक राज्य किया [९]। पुराणों में महापद्म के इन आठ पुत्रों के केवल नाम-मात्र मिलतेहैं। उनके जीवनकाल की किसी महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

नन्दवंश का विनाश—केवल ४० या ५० वर्षों में ही नन्दवँश का विनाश होगया। महापद्म ने जिस क्रम और जिस गति से उत्तरभारत को जीततेहुए अपने विशाल राज्य की स्थापना कीथी, उसी क्रम और उसी गति को अपनाकर चन्द्रगुप्त ने महापद्म के पुत्र धननन्द से उसका साम्राज्य छीनलिया। धूमकेतु के समान सहसा उदित होकर नन्दवँश सहसा लुप्त होगया।

प्राचीन भारत में, विजेता प्रायः विजित नरेशों को अपना सामन्त बनाकर उनका राज्य उन्हींके वँशजों के पास रहनेदेतेथे। उनसे नियमित - रूप से कर देने या कभी - कभी अपनी सभा में उपस्थित रहनेका वचन लेलेतेथे। वे प्रायः विजित राजपरिवारों से बैवाहिक सम्बन्ध जोड़कर शत्रुता मिटादेतेथे। विक्रम की चौथी शती में समुद्रगुप्त ने इसी प्राचीन

१- 'नवाधिकायां नवतेः कोटीनामधिपो हि स।' – कथासरित्सागर, १।४।९५

२- त्रिवेद—प्राङ्मौर्य बिहार, पृ० १२८ ३- 'अतिलुब्धो महापद्मोनन्दः'—विष्णुपुराण, अंक ४, अ०२४

४- 'महानन्दिसुतो राजन् ! शूद्रागर्भोद्भवो बली।
महापद्मपतिः कश्चिन् नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ॥' – भविष्यपुराण का पाठ

५- 'एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति। अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथिव्यां स भविष्यति'॥
— मत्स्यपुराण, २७२।१८-१९

६-७- मजूमदार तथा पुसलकर—एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३७

८- 'सुकल्पादि सुताह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः।
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ॥' – मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्डपुराण का पाठ

९- मोतीचन्द्र -- काशी का इतिहास, पृ० ५१

प्रथा का अनुशरण कियाथा [१]। महापद्म ने इस सर्वमान्य प्राचीन प्रथा का उल्लँघन करके विजित नरेशों से उनका राज्य छीनकर अनेक प्राचीन राजवँशों का उत्पाटन करदियाथा। फलत: विजित नरेशों के वँशज, सम्बन्धी, कुलपुरोहित तथा उनसे सहानुभूति रखनेवाले शक्तिशाली परिवार और व्यक्ति नन्दवँश से द्वेष करनेलगे।

नन्दवँश से शताब्दियों पहिले खश (कुश) पूर्वीभारत पर शासन करचुकेथे। किन्तु अबतक उनकी स्मृति लुप्त होचुकीथी। हिमालयप्रदेश के खश - कुणिन्द - समाज की रीति - नीतियों के प्रति उत्तरभारत के संभ्रात समाज की हेयभावना थी। हिमालय की महोच्चता तथा उसमें विद्याधरों के वास को जहां उपमायोग्य समझाजाताथा, वहां उसमें बसे खश - परिवार को दूषण मानाजाताथा [२]। अस्तु जब शास्त्रीय हिन्दुधर्म के स्तम्भ श्रेष्ठब्राह्मण चाणक्य का आश्रय लेकर चन्द्रगुप्तमौर्य ने मगध - साम्राज्य पर अधिकार करनाचाहा तो जनसाधारण ने उसका सक्रिय विरोध नहीं किया।

महाशक्तिशाली महापद्म के कठोर शासन में किसीको उसकी अवहेलना करनेका साहस नहीं हुआ [३]। किन्तु उसके उत्तराधिकारी, उसके आठों पुत्र दुर्बल शासक थे। आठ नरेशों द्वारा केवल १२ या २२ वर्ष तक शासन करनेसे विदित होताहै कि उच्चाधिकारियों के षड़यन्त्रों ने महापद्म के पुत्रों मेंसे किसीको भी स्थायीरूप से तथा दृढ़तापूर्वक शासन न करनेदियाथा। नन्दवँश के विनाश में चाणक्य और चन्द्रगुप्त की कूटनीति और रण-कुशलता का जितना हाथ है उतना ही उच्चाधिकारियों के षड़यन्त्र का भी।

जैन-स्रोतों के अनुसार कुछ सामन्तों ने धननन्द को शूद्रकुलोत्पन्न बताकर अपनी स्वार्थसिद्धि केलिए उसकी उपेक्षाकरना और जनभावना को उसके विपरीत उभाड़ना आरम्भ करदिया [४]। राजकर्मचारियों के इस षड़यन्त्र का उल्लेख यूनानी लेखकों ने भी कियाहै [५]।

यद्यपि नन्दवँश का सहसा विनाश होगया, फिर भी भारत में पहले विशाल साम्राज्य की स्थापना का श्रेय उसीको है। कालाशोक - काकवर्णी के छोटे - से मगधराज्य के स्थान पर महापद्म ने जिस विशाल साम्राज्य की स्थापना की उसने शीघ्र ही सारी भारतभूमि में एकता स्थापित करदी। अनेक छोटे - छोटे राज्यों में विभक्त भारत को एक सुदृढ़ केन्द्रीयशासन के अन्दर रखकर उसने राष्ट्रीयएकता की भावना को जाग्रत

१-२- द्र० 'यश्चोपमीयते सत्कटकसमुन्नत: विद्याधरवासतया हिमाचले, न च खशपरिवारतया...'
— प्रशान्तराग का शिरीषपदक ताम्रशासन, डबराल — उत्तराखण्ड का इतिहास, पृ० ४०८

३- 'स चैकच्छत्रामनुलंघितशासनो महापद्म: पृथिवीं भोक्ष्यति' — विष्णुपुराण, अंक ४, अ० २४

४- 'ततश्च केचित्सामन्ता: मदेनान्धा: भविष्णव:।
नन्दस्य न नतिं चक्रु: असो नापितसूरिति ॥' — परिशिष्टपर्वणि, ६।२४४
उ० रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० २३७ टि०

५- राधाकुमुद मुकरजी — चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० ३५

करदिया। चन्द्रगुप्तमौर्य जिस शासनप्रणाली केलिए इतना प्रसिद्ध है, उसकी प्रारम्भिक रूपरेखा बनाने का श्रेय नन्दवँश को है।

नन्दसाम्राज्य नवीन क्रान्ति और नवीन युग का द्योतक था। वैदिक राज्य-प्रणाली और वैदिक सँस्कृति अब अपनी शक्ति खोचुकीथी। उसका स्थान अब उस शासनप्रणाली और उस सँस्कृति ने लेलियाथा जो द्रविड़, व्रात्य और आर्य-परम्पराओं के मिश्रण से बनीथी [१]।

पुराण शूद्रनरेश महापद्म के द्वारा क्षत्रियनरेशों के उत्पाटन पर शोक प्रकट करतेहुए [२] मानों यह स्वीकार करतेहैं कि अब पुराने युग की समाप्ति और नए युग का आरम्भ होचुकाहै [३]।

नन्दनरेश उतने अप्रिय न थे, जितने बतलाएजातेहैं। उनके अवसान के पश्चात् भी उनके बहुत-से समर्थक पाटलिपुत्र में तथा भारत के अन्य नगरों में थे। पाटलिपुत्र में अपने प्रासाद में निवास करते समय चन्द्रगुप्तमौर्य सदा गुप्त षड़यन्त्रकारियों से भयभीत रहताथा। वह सदा सुदूरस्थ प्रदेशों से लाईगई खड्गधारिणी खश-किरात नारियों के पहरे में रहताथा [४], तथा प्रत्येक रात्रि में अपना शयनकक्ष बदलतारहताथा [५]।

उत्तराखण्ड— कालसी में अशोक के अभिलेखोंवाली शिला की प्राप्ति से विदित होताहै कि उत्तराखण्ड अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत था। विशाखदत्त के अनुसार चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की उत्तरी सीमा उत्तर की ओर गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश तक पहुँचीहुईथी [६]।

चन्द्रगुप्तमौर्य, बिम्बसार या अशोक द्वारा उत्तराखण्ड-विजय के प्रमाण नहीं मिलते। दूसरी ओर व्यासनदी तक नन्दसाम्राज्य के विस्तार के प्रमाण मिलतेहैं। इससे निश्चित है कि उत्तराखण्ड चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण से पूर्व नन्दसाम्राज्य के अन्तर्गत आचुका था। नन्दवँश की मूलभूमि यदि गोविषाण या उत्तराखण्ड में थी, जैसा रैप्सन का अनुमान है [७], तो उग्रसेन-महापद्म के राज्यकाल से ही उत्तराखण्ड नन्दसाम्राज्य के अन्तर्गत चलाआताथा।

१- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ३५

२- 'ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः' — मत्स्यपुराण, २७२।१८, विष्णुपुराण, अंक ४ अ० २४, श्रीमद्भागवत, १२।१।१०

३- मजूमदार तथा पुसलकर—पूर्वोक्त, पृ० ३५

४-५- मेगस्थनीज का लेख, उ० रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, भाग १, पृ० ४४४

६- 'आशैलान्द्राच्छिलान्त स्खलितसुरधुनीशीकरासारशीतात्।
आतीरान्नैकराग सकुरितमणिरुचौ दक्षिणस्यार्णवस्य ॥' — मुद्राराक्षस, ३।१९

७- रैप्सन -- पूर्वोक्त, पृ० २८७

मौर्य-साम्राज्य में

चाणक्य और चन्द्रगुप्त

पुराण, बौद्ध एवँ जैन स्रोत, सभी, एकमत से स्वीकार करतेहैं कि चन्द्रगुप्त ने अपने गुरु ब्राह्मण कौटिल्य की सहायता से नन्दवँश का उत्पाटन करके मौर्यवँश की स्थापना कीथी [1-2]।

कौटिल्य और चाणक्य एक ही व्यक्ति के दो नाम मानेजातेहैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में निश्चितरूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। महावँश-टीका के अनुसार चाणक्य तक्षशिला के निवासी थे [3]। तक्षशिला गुरुकुल में शिक्षा प्राप्तकरके वे अपने विद्वत्व का समुचित पुरष्कार पानेहेतु पाटलिपुत्र में नन्दनरेश की राजसभा में पहुँचेथे। किन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें नन्दनरेश से अपमानित होकर लौटनापड़ा [4]।

पाटलिपुत्र से तक्षशिला की ओर भागते समय चाणक्य को मार्ग में चन्द्रगुप्त मिला, जो किसी आखेटक के दास के रूप में जीवन व्यतीत कररहाथा। कहाजाताहै कि चन्द्रगुप्त का जन्म मोरिय नामक क्षत्रिय परिवार में एक साधारण व्यक्ति के घर में हुआथा। बचपन में ही उसके पिता की मुत्यु होजानेके कारण उसे दास-रूप में आखेटक के पास वेचदियागयाथा [5]।

चन्द्रगुप्त के मस्तक पर महापुरुष के लक्षण देखकर चाणक्य बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने एक सहस्र कार्षापण देकर आखेटक से उसे खरीदलिया, तथा अपने साथ उसे तक्षशिला लेजाकर वहां उसकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था की [6]।

१- 'ततश्च नव चैतान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति।
तेषामभावे मौर्याः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति।
कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति।' — विष्णुपुराण, अंक ४, २३।२६-२८

२- 'नव नन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति।
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ॥
स एक चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति।' — श्रीमद्भागवतपुराण, १२।१।१२-१३

३- मुकरजी — चन्द्रगुप्त ऐंड हिज टाइम्स, पृ० १८

४- मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० १९

५- ६- मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० १६

उनदिनों तक्षशिला में विभिन्न विद्याओं के पृथक् गुरुकुल थे। कुछ गुरुकुलों में तीन वेदों के अतिरिक्त अठारह शिल्पों की भी शिक्षा दीजातीथी। इन शिल्पों में अस्त्र-शस्त्र चलाना, आखेट खेलना तथा हस्ति - गजादिरोहण एवँ सैन्यसँचालन भी सम्मिलित थे [1]।

जिनदिनों चन्द्रगुप्त तक्षशिला में शिक्षा प्राप्तकररहाथा, यूनान के नरेश सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया। सिकन्दर तक्षशिला के मार्ग से होकर भारत में प्रविष्ट हुआथा। तक्षशिला के राजकुमार ने बिना युद्ध किएही सिकन्दर को देश में आगे बढ़नेकी सुविधा देदीथी।

यह उस काल की अति महत्वपूर्ण घटना थी। चाणक्य और चन्द्रगुप्त, दोनों ने, सजग होकर इस विदेशी आक्रमण को देखाथा। यूनानी लेखकों के अनुसार चन्द्रगुप्त सिकन्दर के सैन्यवल को देखने-हेतु उसके सैन्यागार में भी पहुँचाथा [2]।

सिकन्दर का आक्रमण— वि० पू० २७३ (330 B. C.) में यवन आक्रान्ता सिकन्दर ने परसिया को जीतकर उसकी राजधानी परसेपोलिस को भस्म करदिया! भारत तथा ईरान के मध्यवर्ती प्रदेशों को जीतकर उसने वि० पू० २७० (327 B. C) की ग्रीष्म में भारत की ओर प्रयाण किया।

उनदिनों उत्तरभारत में तीन बड़े राज्य थे। झेलम से पश्चिम की ओर तक्षशिला-राज्य, जेलम और राबी के द्वाव के बड़े भाग पर पुरुवँशी नरेश (पोरस) का राज्य तथा व्यास से पूर्व की ओर गङ्गाजी के मुहाने तक नन्दसाम्राज्य। इनके अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे गणराज्य या नरेशशासित राज्य थे, जिनका यूनानी लेखकों ने उल्लेख कियाहै। इनमें काबुलनदी की घाटी में कोफेयस नरेश का राज्य, सिन्धु की उपरली उपत्यका में शशिगुप्त का राज्य, कश्मीर के दक्षिण में अभिसारराज्य, ये नरेश-शासितराज्य थे। स्वात की घाटी में पुष्कलावती के पास अष्टकगण के, कुनार, पञ्चकोरा और स्वात की घाटियों में अश्वायन और अश्वकायन गणों के तथा काफिरस्तान के पूर्वी भाग में अश्वकगण के गणराज्य थे। राबी और व्यास के द्वाब में वीर कठजाति का गणराज्य था।

ईरान की सीमा पर स्थित इन राज्यों को ईरान में सिकन्दर के विजयअभियान की सूचना अवश्य मिलीहोगी। फिर भी इन्होंने सँगठित होकर आक्रांता का प्रतिरोध करनेकी योजना नहीं बनाई। वे आक्रांता के द्वारा अपने एकके पश्चात् दूसरे पड़ोसियों का उत्पाटन देखतेरहे, और उन्होंने उसीसमय अस्त्र उठाया जब आक्रांता उनके द्वार पर आगया। फिर भी अपनी सारी शक्ति और साधनों को झोंकने के पश्चात् ही सिकन्दर इनमेंसे कुछ को पराजित करसका।

देशद्रोहियों की कायरता—देश में सँगठन के अभाव ने तथा कतिपय देशद्रोहियों की कायरता ने सिकन्दर के अभियान को सफल बनादिया। शशिगुप्त ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करली। अपने पड़ोसी पुरुवँशी नरेश से द्वेष के कारण तक्षशिला के

१- मुकरजी – चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० १७ २- प्लूटार्क, उ० मुकरजी—पूर्वोक्त, पृ० १७

राजकुमार आंभी ने सिकन्दर का स्वागत - सत्कार करके बिना लड़े ही उसे अपने राज्य से होकर आगे बढ़ने की सुविधा देदी। भारत के इतिहास में देशद्रोह की यह प्रथम लिखित घटना थी [१]।

वि० पू० २६६ (326 B. C.) में सिकन्दर ने झेलम को पार करके उस पुरुवँशी नरेश को पराजित करदिया, जिसका यूनानी लेखकों पोरसनरेश के नाम से उल्लेख कियाहै। इस नरेश की वीरता और उसके ऐतिहासिक उत्तर की गाथा सर्वविदित है। किन्तु जब उसके उत्तर से प्रसन्न होकर कुशल राजनीतिज्ञ और अनुभवी विजेता सिकन्दर ने उसे अपना सामन्त बनालिया तो इस पुरुवँशी ने भी, जिसकी देशभक्ति की इतनी प्रशँसा कीजातीहै, आक्रान्ता द्वारा उत्तरभारत के शेष भाग को जीतने की योजना में सक्रिय योग दियाथा [२] !

विजित प्रदेश के महत्वपूर्ण नाकों पर अपनी सैनिक चौकियां स्थापित करके सिकन्दर आगे बढ़ा। चिनाव को पार करके पूर्व की ओर बढ़ने में सिकन्दर और पुरुवँशी नरेश की सेनाओं को विशेष कठिनाई न हुई। क्योंकि चिनाव की पूर्वी उपत्यका का दूसरा पुरुवँशी नरेश, जिसका यूनानी लेखकों ने पोरसकुमार के नाम से उल्लेख कियाहै, बिना युद्ध किएही प्राणरक्षाहेतु गन्दरिदेराज्य में, जिसकी पहिचान नन्दसाम्राज्य से कीजातीहै, भागगयाथा। सिकन्दर की आज्ञानुसार उसका राज्थ पुरुवँशीनरेश (पोरस) के राज्य में मिलादियागया।

आयुधजीवियों की आहुति— इसके पश्चात् सिकन्दर ने पड़ोस के जनपदों पर आक्रमणकिया। अरट्ट या अराष्ट्रकगण ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करली। वीर कठगण ने अपने दुर्ग सङ्गल का आश्रय लेकर, जिसकी पहिचान जण्डियाला से कीजातीहै [३], आक्रान्ता का प्रतिरोध किया। सत्रह सहस्र कठ सैनिक मारेगए तथा सत्तर सहस्र बन्दी बनाएगए [४]। इस युद्ध में पुरुवँशीनरेश (पोरस) ने अपने ही देशवासियों को सिकन्दर का दास बनाने केलिए अपने अनेक रणहस्तियों तथा छै सहस्र सैनिकों को झोंकाथा। युद्ध में विजय मिलने पर कठगणराज्य का सारा प्रदेश भी पुरुवँशीनरेश (पोरस) के राज्य में मिलादियागया [५]।

आतंकित होकर इस प्रदेश के पड़ोस में स्थित दो राज्यों के नरेशों ने, जिनके नाम यूनानों लेखकों के अनुसार सोफितेस (सौभूति) तथा फेगेलस (भगला) थे, सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करली।

प्रत्यावर्तन— सिकन्दर अब वर्तमान गुरुदासपुर के पास व्यासनदी के तट पर पहुँचा [६]। उसने अपनी सेना को व्यासनदी पारकरके नन्दसाम्राज्य पर आक्रमण करने का आदेश दिया। किन्तु नन्दनरेश के असीम सैन्यवल से घबराकर उसकी सेना ने आगे बढ़ना

१-- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४४

२- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४६

३-४- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५०

६- कैम्ब्रिज हिस्टरी, भाग १, पृ० ३२३

अस्वीकार करदिया। जब सिकन्दर के क्रोध, धमकी, उत्तेजनादायक भाषण आदि का सेना पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा तो उसे विवश होकर वि० पू० २६९ (326 B. C.) के आषाढमास में अपनी सेना को सिन्धुनदी के मार्ग से वापिस लौटने का आदेश देनापड़ा।

जिन प्रदेशों को वह जीतचुकाथा, उनपर अपना स्थायी अधिकार रखनेकेलिए वह अपने कतिपय सेनाधिकारियों को कुछ सेना देकर यहीं छोड़गया। कार्तिकमास में सिकन्दर झेलमनदी पर नावों के बेड़ों से दक्षिण की ओर चलपड़ा। जब वह झेलम और चिनाव के सँगम पर पहुँचा तो मालव और क्षुद्रक गणों से उसका घोर युद्ध हुआ। एक नगर की पांच सहस्र ब्राह्मण जनता आक्रान्ता की सेना के साथ युद्ध करतेहुए वीरगति को प्राप्त होगई। मालवगण की पराजय होजाने पर क्षुद्रकगण ने आक्रांता की अधीनता स्वीकार करली [१]। आगे चलकर शिविगण ने भी क्षुद्रकगण का अनुकरण किया।

वीर अगलसोईगण की विशाल सेना आक्रांता से युद्ध करतेहुए वीरगति को प्राप्तहुई। गण की नारियां और बच्चे अग्नि में जलमरे [२]। अम्बष्ठ, क्षत्रिय तथा बसाति गणों ने युद्धकरना उचित न समझा। सिन्धु की निचली उपत्यका के ब्राह्मणों ने आक्रांता से युद्धकरना अपना धार्मिक कर्तव्य बतलातेहुए गणराज्यों की जनता को सिकन्दर से जूझने की प्रेरणा दी और उसकी अधीनता स्वीकार करनेवालों को धिक्कारा [३]। पड़ोसी गणराज्यों के सैनिक, जनता और ब्राह्मणों की भारी सँख्या यूनानियों से युद्ध करतेहुए मारीगई [४]। वि० पू० २६८ (325 B. C.) में सिकन्दर सिन्धु के मुहाने से बेवीलोन की ओर लौटा, जहां दो वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु होगई [५]।

गङ्गाघाटी तक १— यूनानी लेखकों द्वारा प्रयुक्त कठाई Cathaei, सङ्गल Sangala, गन्दरिदे Gandaridae तथा फेगेलिस Phegelis या Phegeus नामों के प्रयोग के आधार पर कल्पना कीगईहै कि :—

> 'सङ्गल (साङ्गला) दुर्ग सतलुजनदी के पूर्व में स्थित किन्नौर (हिमाचलप्रदेश) का वर्तमान सांगला है और उस प्रदेश के निकट में रहनेवाले कठैतराजपूत प्राचीन कठजाति के वँशज हैं। यहीं भागल अथवा बागल-नरेश ने सिकन्दर से कहाथा कि गङ्गा वहां से काफी दूर नहीं है। मेगस्थने के फ्रैगमेंट सँ० १ से विदित होताहै कि सिकन्दर गङ्गाजी के पास तक पहुँचाथा। गङ्गाजी के तट पर, सम्भवत: उत्तरकाशी के निकट कहीं डण्डिमस या डण्डीस्वामी का आश्रम था [६]।

इस कल्पना के औचित्य पर विचार करना आवश्यक है।

कठ— वेवान ने Cathaei का अनुवाद क्षत्रिय कियाहै [७]। यदि यह सही हो तो कठ या कठैतजाति से उसका सम्बन्धजोड़ना कल्पनामात्र होसकताहै। पर कनिंघम [८] तथा

१-५- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४१ ६- शूरवीरसिंह—लेख, नवभारत टाइम्स, २४ सितम्बर १९६७ ७- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, भाग १, पृ० ३३२ तथा टि० ६ ८- कनिंघम -- आर्केलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० २, पृ० ३३

राधाकुमुद मुकरजी ने इस शब्द को कठजाति का द्योतक मानाहै [१]।

सङ्गल में सिकन्दर से भिड़कर आत्माहुति देनेवाली वीर कठजाति के वँशज पञ्जाब के मध्यवर्ती भागों में बड़ी सँख्या में मिलतेहैं [२]। पहले यह जाति पञ्जाब में हिमालय की तलहटी से लेकर दक्षिण की ओर समुद्रतट तक फैलीहुईथी। पठानकोट के पास कठुआ तथा गुजरात के पास कठियाबाड़ आजतक इसके प्रसार के स्मारक हैं [३]। आकृति में कठजाति के वँशज घक्करजाति से मिलतेजुलतेहैं। वे अपने को बालदेवता का वँशज मानतेहैं, और सूर्य के उपासक हैं [४]।

पाणिनि के समय राबीनदी और व्यासनदी के द्वाब में, वर्तमान पठानकोट के आसपास उदुम्बरगण की भूमि थी। उसके दक्षिण में इसी द्वाब में कठगण की भूमि थी [५]। रैप्सन [६] तथा जयचन्द्र विद्यालङ्कार [७] भी इसी प्रदेश में कठगण की भूमि मानतेहैं।

सङ्गल— हिमाचलप्रदेश - उत्तराखण्ड की कठैतजाति के पूर्वजों का सम्बन्ध सिकन्दरकालीन सङ्गल की कठजाति से जोड़ना सङ्गत होसकताहै। पर यदि सिकन्दर व्यासनदी के तट पर वर्तमान गुरुदासपुर तक ही पहुँचाथा, जैसा कि अधिकांश विद्वान् मानतेहैं, तो कठजाति के सङ्गलदुर्ग की स्थिति, कनौर में सतलुज के पूर्व में न होकर व्यासनदी के पश्चिम की ओर होगी। कनिंघम ने सङ्गल की पहिचान साकल से कीहै, और एरियन तथा कर्टियस द्वारा इस स्थान के वर्णन को भ्रांतिजनक बतलायाहै [८]। कुछ विद्वानों ने सङ्गल की पहिचान पञ्जाब में साकल से [९] तथा कुछने जण्डियाला नामक स्थान से कीहै [१०]।

राबी और व्यासनदी के मध्य बसी कठजाति का सँगलदुर्ग न तो राबी के पश्चिम में स्थित साकल वा स्यालकोट होसकताहै और न व्यास और सतलुज के पूर्व में कहीं होसकताहै। इसलिए अनेक विद्वान् कठजाति के सँगलदुर्ग की पहिचान जँडियाला के प्राचीन खण्डहरों से करतेहैं, जो व्यासनदी से पश्चिम की ओर, और अमृतसर से पूर्व की ओर हैं [११]।

रायचौधरी ने सँगल की स्थिति गुरुदासपुरजिले में फतेगढ़ के निकट मानीहै [१२]। तथा फेगेलस (सँस्कृत भगल) को, गणपाठ में उल्लिखित क्षत्रिय - उपाधि मानतेहुए, उसके द्वारा शासितप्रदेश की स्थिति राबी और व्यास के द्वाब में मानीहै [१३]।

१- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी पृ० ५०

२- ४- कनिंघम — आर्केलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० २, पृ० ३३

५- अग्रवाल -- पाणिनिकालीन भारतवर्ष, मानचित्र, २ ६- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, मानचित्र, ३ ७- जयचन्द्र विद्यालंकार—भारतीय इतिहास की मीमांसा, मानचित्र, १५

८- कनिंघम — पूर्वोक्त, जि० २, पृ० १९२ - ९३; जि० ५, पृ० १४९

९- मजूमदार तथा पुसलकर — पूर्वोक्त, पृ० ५० १०- रैप्सन—पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३३२, टि० ७

११- द्र० रैप्सन — पूर्वोक्त, जि० १, मानचित्र, ३

१२- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० २५१

१३- रायचौधरी — पूर्वोक्त, पृ० २५२

गन्दरिदे, गङ्गरिदे— गन्दरिदे Gandaridae का अनुवाद वेवान ने गङ्गाप्रदेश के निवासी मानाहै [१]। यूनानी लेखकों ने सिकन्दर के समकालीन नन्दसम्राट को गङ्गरिदे Gangaridae और Prasii का अधिपति बतलायाहै। सम्भवत: गन्दरिदे और गङ्गरिदे एक ही शब्द हैं, जो मेगस्थनीज के अनुसार गङ्गासागर के निवासियों के द्योतक थे। उसने गङ्गरिदे का प्रयोग गङ्गा के मुहाने के निवासियों केलिए तथा प्रासी या प्राच्य शब्द का प्रयोग मध्यदेश के पूर्वीभाग पाञ्चाल, शूरसेन, कोशल, काशी और विदेह केलिए कियाह [२]।

इतिहासलेखकों की धारणा है कि सिकन्दर पञ्जाब में व्यास (Hypasis) के तटपर वर्तमान गुरुदासपुर से आगे नहीं बढ़ाथा [३]। यूनानी इतिहासलेखकों के अनुसार सिकन्दर व्यास को पारकरने से पहले ही लौटगयाथा [४]। अस्तु सिकन्दर द्वारा गङ्गाघाटी तक पहुँचने की कल्पना अमान्य है।

यूनानी शासन का अन्त— आक्रांता द्वारा पराजित होनेपर भी पश्चिमी भारत के निवासी विदेशियों की दासता में रहनेको प्रस्तुत न थे। यूनानी लेखकों के अनुसार पञ्जाब के ब्राह्मणों ने, जिनका जन-साधारण पर पर्याप्त प्रभाव था, आक्रांताओं के सेनाधिकारियों को मार - भगाने केलिए प्रवल सँघर्ष खड़ाकरदिया [५]। चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया। वे इस सँघर्ष के नायक बनगए।

शीघ्र ही सिकन्दर के प्रान्तपाल फिलिप की हत्या की सूचना फैलगई। वि० पू० २६४ (321 B. C.) तक पञ्जाब के विजित क्षेत्रों से यूनानी सेना भागनेलगी। युदामस ने वि० पू० २६० (317 B. C) में सिकन्दर के सामन्त पुरुवँशीनरेश (पोरस) की हत्या करडाली [६]। दो - तीन वर्षों में ही चाणक्य और चन्द्रगुप्त पञ्जाब - सिन्धु से यवन-सत्ता को समाप्त करने में सफल होगए। यूनानी लेखकों ने स्वीकार कियाहै कि पश्चिमी भारत से यूनानी सत्ता को उखाड़कर मातृभूमि को स्वतन्त्र करने के आन्दोलन का सँचालक चन्द्रगुप्त था [७]।

१- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी, जि० १, पृ० ३३२, टि० २

२- ' He (the Nanda King) is known to the Greeks as the ruler of the peoples called Gangaridae and Prasii, ie, the peoples of the Ganges Valley, and the prachyas or 'easterners', people living to the east of the 'Middle Country', such as the Panchalas, Sursenas, Kosalas and the like'. —— मुकरजी — चन्द्रगुप्त ऐंड हिज टाइम्स, पृ० ३५

३- रैप्सन — पूर्वोक्त, पृ० ३३४

४- ' The historians say nothing of Alexander's crossing the Hypasis.'
— रैप्सन — पूर्वोक्त, पृ० ३३४ टि० २

५- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० २५८

६- मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ३१

७- जस्टिन, उ० मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ३२

जनसाधारण में गुरु - शिष्य की ख्याति फैलगई। अनेक युवक उनके सँकेत पर कार्य करनेको प्रस्तुत होगए। इस परिस्थिति से, तथा नन्दवँश के प्रति अनेक क्षत्रियपरिवारों में फैली अश्रद्धा से लाभ उठाकर उन्होंने नन्दसाम्राज्य पर अधिकारकरने की योजना बनाई।

सैन्य-संग्रह— नन्दसाम्राज्य से भिड़ना इतना सरल न था। यूनानी तथा भारतीय, दोनों स्रोत, नन्दनरेश के अपरिमित सैन्यवल का उल्लेख करतेहैं। जगद् - विजय का दम्भ रखनेवाली सिकन्दर की सेना नन्द की अपार सेना की सँख्या - मात्र सुनकर कांपउठीथी। उसे पराजित करने केलिए अपार और सुशिक्षित सेना की आवश्यकता थी।

सिकन्दर से भिड़नेवाले गणराज्यों और जनपदों की सेना प्रायः पूर्णतः नष्ट होचुकीथी। अस्तु गुरु - शिष्य ने पर्वताश्रयी आयुधजीवियों की सेना एकत्रित की। जस्टिन के अनुसार चन्द्रगुप्त ने दस्यु अर्थात् शस्त्रोपजीवियों से अपने भाड़े के सैनिक जुटाएथे [१]। हेमचन्द्र के अनुसार चणि के पुत्र चाणक्य ने धूल में पड़ीहुई वस्तुओं को उठाकर, अर्थात् तुच्छकुल के सैनिकों और सामान्य वँश के चन्द्रगुप्त को लेकर नन्दसाम्राज्य को उखाड़-फेंकाथा [२]। उसने पश्चिमी हिमालय के प्रतिरोधक, म्लेच्छ, किरात, दस्युदल, आटविक तथा शस्त्रोपजीवी श्रेणियों के प्रवीर पुरुषों को छांटकर अपनी सेना को सँगठित कियाथा [३]।

मुद्राराक्षसनाटक के अनुसार चाणक्य और चन्द्रगुप्त की सहायता करनेवाले पर्वताश्रयी आयुधजीवियों का नेतृत्व पर्वतेश्वर नामक नरेश के हाथों में था। चाणक्य ने मगध पर विजय प्राप्तकरने पर उसे मगधराज्य का अर्द्ध भाग देनेका प्रलोभन दियाथा [४]। इसी नाटक में एक दूसरे प्रसँग से विदित होताहै कि पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु के नेतृत्व में कुलूतनरेश चित्रवर्मा, मलयनरेश सिंहनाद, कश्मीरनरेश पुष्कराक्ष, सिन्धु की उपरली घाटी के नरेश मेघाक्ष की सेनाएँ थीं। खश, गान्धार, यवन, शक, हूण, कौलूत और कुछ चेदि तथा मगध के सैनिक भी उसके साथ थे [५]।

१- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आब इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५७

२- 'धातुवादोपार्जितेन द्रविणेन चणिप्रसुः।
चक्रे पत्यादि सामग्री नन्दमुच्छेतमुद्यतः॥' — परिशिष्टपर्वणि, ८।२५३-५४

३- महावंशटीका — उ० मजूमदार तथा पुसलकर — पूर्वोक्त, पृ० ५७

४- मुद्राराक्षस, अंक २, पृ० ९७ तथा अंक ३, पृ० १५४

५- 'कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो नृसिंहः,
काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमा सैन्धवः सिन्धुषेणः॥
मेघाक्षः पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगवलः पारसीकाधिराजो,
नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्तः प्रमाष्टुं॥' — मुद्राराक्षस, अंक १, श्लोक २०

६- 'प्रस्थातव्यं पुरस्ताद् खशमगधगणैर्मांमनुव्यूह्य सैन्यैः,
गांधारैर्मध्ययाने सयवनपतिभिः संविधेयः प्रयत्नः॥

मगध-विजय— सीमांत के प्रदेशों को जीततेहुए चन्द्रगुप्त की सेना ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। मुद्राराक्षसनाटक के अनुसार जब पर्वतेश्वर के अधीन शकों, यवनों, किरातों, काम्बोजों और पारसीकों की सम्मिलित सेना ने पाटलिपुत्र को घेरलिया [1] तो राजद्रोहियों की सहायता से नन्दवँश का उत्पाटन सम्भव होगया।

चन्द्रगुप्त ने व्यास से पश्चिम के प्रदेश पर पहले ही अधिकार करलियाथा। सिकन्दर के सेनाध्यक्ष एवँ उत्तराधिकारी सिल्यूकस को हराकर उसने हेरात, कन्धार एवँ काबुल तथा सम्भवतः गेद्रोसिया का कुछ भाग भी अपने साम्राज्य में मिलालियाथा।

छै लाख सैनिकों की विशाल सेना लेकर उसने विजित मगधसाम्राज्य के विभिन्न भागों में प्रयाण करके विद्रोह की सम्भावना समाप्त करदी [2]। उसकी सेना का मुख्य एवँ विश्वसनीय अग्रदल अबभी कोशार (खश) आयुधजीवियों का था [3], जो सम्भवतः उसी प्रदेश के थे, जहां पर्वतेश्वर (पर्वतक) की जन्मभूमि थी।

मुद्राराक्षसनाटक के अनुसार मगधराज्य जीतलेने पर चाणक्य ने छल से पर्वतक का वध करवादिया और अपनी कूटनीति से पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के हृदय में अपने सहायक कुलूत, मलय, कश्मीर, सिन्धु और पारसीक नरेशों के प्रति शँका उत्पन्न करदी। जिससे मलयकेतु ने इन नरेशों को मरवाडाला। इन नरेशों का वध होजाने पर उनकी सेना बिना नायकों के अस्तव्यस्त होकर जब इधर - उधर भागनेलगी तो चन्द्रगुप्त ने उसे अपनी सेना में मिलालिया [4]। डाक्टर मुकरजी कोशार आयुधजीवियों को दक्षिणवासी मानतेहैं [5]।

साम्राज्य-विस्तार— इस खश - सेना की सहायता से चन्द्रगुप्त ने दक्षिण में मैसूर-कोंकन तक फैले अतिविशाल प्रदेश पर अधिकार कियाथा। विशाखदत्त का यह कथन कि उत्तर में उसका राज्य हिमशिलाओं पर गिरतीहुई गङ्गाजी के जलकणों की पुहार से शीतल उत्तराखण्ड की उत्तरी पर्वतश्रेणियों तक फैलाथा, ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। उसके राज्य की सीमाएँ पूर्वीसागर (बङ्गाल की खाड़ी) से पश्चिमीसागर (अरब सागर) तक पहुँचीथी [6]। भारत के सारे प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर उसका अधिकार होगयाथा।

पश्चाद् गच्छन्तु वीराः शकनरपतयः संवृताश्चेदिहूणैः।
कौलूताद्यश्च शिष्टः पथि परिवृणुयाद्राजलोकः कुमारम् ॥' — मुद्राराक्षस, अंक ५, श्लोक ११

१- 'विराधगुप्तः—एष कथयामि। अस्ति तावत् शक - यवन - किरात - काम्बोज - पारसीक - बाह्लीक-प्रभृतिभिश्चाणक्य - प्रतिगृहीतैश्चन्द्रगुप्त - पर्वतेश्वरबलैरुदधिभिरिव प्रलयकाल - चलितसलिलैः समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुरम् ...' — मुद्राराक्षस, अंक २, पृ० ९०

२-३- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० २६६

४- मुद्राराक्षस, अंक ६, पृ० २५६-५७ ५- मुकरजी -- चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० ४२

६- 'आशैलेन्द्राच्छिलान्तरस्खलितसुरधुनीशीकरासारशीतात्,
आ तीरान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य ॥

चन्द्रगुप्त का पितृवंश— चन्द्रगुप्त ने जिस राजवँश की स्थापना कीथी, उसे पुराणों में [१] तथा बौद्ध [२] और जैनग्रन्थों में [३] मौर्यवँश कहागयाहै। किन्तु चन्द्रगुप्त के पितृवँश के सम्बन्ध में वर्तमान और प्राचीन विद्वानों में मतैक्य नहीं है। चन्द्रगुप्त के पितृवँश के सम्बन्ध में मुख्य मत निम्नांकित हैं :—

(१) चन्द्रगुप्त का पितृवँश बुद्धकालीन पिप्पलियवन के मोरिय क्षत्रियकुल से सम्बन्धित था [४]। अधिकांश वर्तमान विद्वानों का यही मत है [५]। इसकी पुष्टि अशोक के कुछ स्तम्भों के मूल पर, तथा मौर्यनरेशों की मुद्राओं पर बनी मयूर की आकृति के आधार पर भी कीजातीहै [६]।

(२) चन्द्रगुप्त मुरा नामक शूद्रा दासी अथवा मुर नामक शूद्र दास का पुत्र होनेके कारण मौर्य कहलाया। अब इस मत को मान्यता नहीं दीजाती, वरन् इसको सर्वथा त्याज्य बतलायाजाताहै [७]।

(३) चन्द्रगुप्त का नन्दवँश से किसी प्रकार का रक्तसम्बन्ध था। कथासरित्सागर [८] तथा वृहत्कथामञ्जरी के अनुसार [९] चन्द्रगुप्त पूर्वनन्द का पुत्र था, जिसे चाणक्य ने योगनन्द के विनाश के पश्चात् मगध के सिंहासन पर बिठायाथा। मुद्राराक्षसनाटक में भी कुछ स्थलों पर चन्द्रगुप्त का नन्दवँश से रक्तसंम्बन्ध बतलायागयाहै [१०]।

उसी नाटक में, अनेक स्थलों पर चाणक्य गर्व से अपनेको नन्दवँश का विनाश करनेवाला, उसके अँकुरों तक को भष्मकरदेनेवाला बतलाताहै [११]। यदि चन्द्रगुप्त का

आगत्यागत्ये भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्तां,
चूडारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः ॥' — मुद्राराक्षस, अंक ३, श्लोक १९

१- 'नवनन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति।
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥
स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति।' — श्रीमद् भागवतपुराण, १२।१।१२-१३

२- महावंश, पृ० २१ ३- जैन — जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ५२२

४- भिक्षु जगदीश काश्यप — संयुक्त - निकाय, भूमिका, पृ० ८

५- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५६ ६- राधाकुमुद मुकरजी — चन्द्रगुप्त मौर्य एँड हिज टाइम्स, पृ० १५ ७- मजूमदार तथा पुसलकर — पूर्वोक्त, पृ० ५६

८- 'महामन्त्री ह्ययं स्वच्छमचिरात्तं विनाशयेत्।
पूर्वनन्दसुतं कुर्याच्चन्द्रगुप्तं हि भूमिपम् ॥' — कथासरित्सागर

९- 'योगनन्दे यशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः।
चन्द्रगुप्तो कृतो राजा चाणक्येन महोजसा ॥' — वृहत्कथामंजरी

१०- 'स (राक्षसः) नन्दान्वयावयवे वृषलसाचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते।'
— मुद्राराक्षस, अंक १, पृ० २६; द्र० अंक ४, पृ० १७८-७९

११- 'नन्दकुलकालभुजङ्गी कोपानलबहललोलधूमलताम्।
अद्यापि वध्यमानां वध्यः को नेच्छति शिखा मे ?' — मुद्राराक्षस, अंक १, श्लोक ९

सम्बन्ध नन्दवँश से होता, तो उसे सिंहासन पर बिठानेवाले की ऐसी गर्वोक्ति सार्थक नहीं होसकती। स्वयँ चन्द्रगुप्त भी सारे नन्दवँश के उत्पाटन पर प्रसन्नता व्यक्त करताहै [१]। यदि चन्द्रगुप्त और उसके सम्बन्धी महाराज वलगुप्त का[२] नन्दवँश से रक्तसम्बन्ध होता तो नन्दवँश का भक्त राक्षस उनका विरोध न करता। वर्तमान इतिहासलेखक चन्द्रगुप्त का मौर्यवँश से रक्तसम्बन्ध नहीं मानते।

(४) चन्द्रगुप्त का पर्वतेश्वर से रक्तसम्बन्ध था। मुद्राराक्षसनाटक के अनुसार चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने नन्दसाम्राज्य की विशाल सेना को पराजितकरने-हेतु हिमालय के किसी भाग के नरेश पर्वतेश्वर या पर्वतक से सहायता लीथी। उसके अधीन शक, यवन, किरात, कम्बोज, पारसोक, बाह्लीक आदि की विशाल सेना ने प्रलयकाल में समुद्र की प्रचण्ड लहरों के समान उमड़कर पाटलिपुत्र को घेरलियाथा [३]।

पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु के अधीन कुलूत (कुल्लू) नरेश चित्रवर्मा, मलयनरेश सिंहनाद, कश्मीरनरेश पुष्कराक्ष, सिन्धु की उपरलीघाटी का नरेश सिंधुषेण तथा सिंधुपार के किसी जनपद के पारसीक नरेश मेघाक्ष और उनकी सेनाओं ने मगध पर आकमण कियाथा [४]। इन सेनाओं में खश, गान्धार, यवन, शक, हूण और कौलूत (कुल्लू-निवासी) पर्वताश्रयी आयुधजीवियों का दल-बादल था [५]।

नाटक के अनुसार चाणक्य ने पर्वतेश्वर को वचन दियाथा कि मगध-साम्राज्य पर अधिकार होजाने पर उसे दो भागों में बांटकर चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर को देदियाजाएगा [६]। जब चाणक्य ने विषकन्या-प्रयोग से पर्वतेश्वर का वध करवादिया तो उसने चन्द्रगुप्त तथा पर्वतेश्वर के भ्राता वैरोचक (वैरोचन) दोनों का राज्याभिषेक एकसाथ करके साम्राज्य को दो भागों में बांटने का स्वांग रचाथा [७]।

पर्वतेश्वर की मृत्यु के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर का श्राद्ध कियाथा [८]। हिन्दु मान्यताओं के अनुसार मृतक का श्राद्ध करने का अधिकार केवल उसके पुत्र या निकटतम सम्बन्धी को ही होनेके कारण कुछ विद्वानों का अनुमान है कि चन्द्रगुप्त का पर्वतेश्वर से किसी न किसी प्रकार का रक्तसम्बन्ध था [९]। पर्वतेश्वर, जैसा कि उसके नाम से तथा उसके सहायकों की सूची से स्पष्ट है, पश्चिम या मध्यहिमालय के अन्तर्गत किसी पर्वतीय राज्य

१- 'चन्द्रगुप्तः — राक्षसेन समं मैत्री राज्ये चारोपिता वयम्।
नन्दाश्चोन्मूलिताः सर्वे किं कर्त्तव्यमतः परम् ?' — मुद्राराक्षस, अंक ७, श्लोक १९

२- मुद्राराक्षस, अंक ३, पृ० १४९

३- 'विराधगुप्तः — एष कथयामि। अस्ति तावत् शक-यवन-किरात-कम्बोज-पारसीक-बाह्लीक-प्रभृतिभिश्चाणक्य-मतिपरिगृहीतैश्चन्द्रगुप्तपर्वतेश्वरबलैरुदधिभिरिव, प्रलयकालचलितसलिलैः समन्तातदुपरुद्ध कुसुमपुरम् ...।' — मुद्राराक्षस, अंक २, पृ० ९०

४- मुद्राराक्षस, अंक १, श्लोक २० ५- मुद्राराक्षस अंक ५, श्लोक ११

६- मुद्राराक्षस, अंक २, पृ० ९७ ७-८- मुद्राराक्षस, अंक ३, पृ० १५४

९- सेठ — लेख, जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, दिसम्बर १९४०

का शक्तिशाली शासक था। जिसके नेतृत्व में पश्चिमी हिमालय के आयुधजीवी मगधविजय केलिए एकत्रित हुएथे।

(५) चन्द्रगुप्त वृषल या पतित क्षत्रिय था। हिमालय की ढालों पर बसे खश, शक, यवन, दरद, पह्लव, किरात, पर्वताश्रयी आयुधजीवियों को मनु ने वृषल या पतित क्षत्रिय बतलायाहै [१]। पर्वतेश्वर तथा उसके पुत्र मलयकेतु को, एवँ उनके साथी आयुधजीवियों को नाटक में म्लेच्छ कहागयाहै [२]। उनदिनों, तथा अबसे कुछ काल पूर्व तक भी हिमालय के इन वृषल क्षत्रियों को म्लेच्छ कहाजाताथा।

नाटक में चाणक्य चन्द्रगुप्त केलिए बार - बार वृषल शब्द का प्रयोग करताहै [३]। कुछ विद्वानों ने, सम्भवत: चन्द्रगुप्त को उच्च क्षत्रियकुलोत्पन्न सिद्धकरने - हेतु, वृष या वृषल शब्द को उच्च या श्रेष्ठ का द्योतक मानाहै [४]।

किन्तु मौर्यसाम्राज्य के अवसान के तुरन्त पश्चात् पतञ्जलि ने महाभाष्य में बार - बार वृषल शब्द का प्रयोग मौर्यवँश [५] केलिए अपमानसूचक वाक्यों में कियाहै। उन्होंने वृषलकुल को सिकुड़कर सँगठितहुआ, किन्तु जेय बतलायाहै [६]। यह सँकेत मौर्यों की ओर है [७]। भाष्य में अनेक बार वृषल के प्रति अत्यन्त हेयदृष्टि प्रदर्शित कीगईहै [८]। **इससे स्पष्ट है कि मुद्राराक्षसनाटक में चन्द्रगुप्त केलिए वृषल शब्द का प्रयोग सम्भवत: साधार है।**

पुराणों के अनुसार महापद्मनन्द शूद्रा के गर्भ के उत्पन्न हुआथा। उसके पश्चात् शूद्रवँशी नरेशों की [९], या शूद्रप्राय: अधार्मिक नरेशों की परम्परा आरम्भ हुईथी [१०]। कुछ विद्वान् इस उल्लेख को केवल नन्दवँश तक सीमित मानतेहैं, कुछ नन्दवँश के परवर्ती वँशों को भी उसके द्वारा व्यक्त समझतेहैं। यदि मौर्यवँश केलिए वृषल शब्द का प्रयोग साधार था, तो पुराणों का पूर्वोक्त कथन उस वँश केलिए भी मानाजासकताहै।

चन्द्रगुप्त का पर्वतेश्वर से रक्तसम्बन्ध था या नहीं, यह कहना कठिन है। किन्तु वृषल शब्द के प्रयोग और उसके द्वारा जुटायीगई पर्वतीय आयुधजीवियों की विशाल सेना से

१- मनुस्मृति, १०।४३-४४

२- 'अहो ! विवेकशून्यता म्लेच्छस्य मलयकेतो' — मुद्राराक्षस, अंक ६, पृ० २६४

३- मुद्राराक्षस, अंक १, श्लोक २७; अंक ३, पृ० १३९　　४- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आब इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५५　　५- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ५७

६- 'काण्डीभूतं वृषलकुलम्, कुण्ड्यीभूतं वृषलकुलम्' — महाभाष्य ६।३।६१ तथा ज्ञेयो वृषल:' — महाभाष्य, १।१।५०　७- अग्निहोत्री -- पूर्वोक्त, पृ० ५७　८- अग्निहोत्री—पूर्वोक्त, पृ० १४३

९- 'महानन्दिन स्ततश्शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धोऽतिवलो महापद्मनामा नन्द: भविष्यति।
तत: प्रभृति शूद्रा: भूपाला: भविष्यन्ति।' — विष्णुपुराण, ४।२३।२१

१०- 'महापद्मपति: कश्चिन्नन्द: क्षत्रविनाशकृत्।
ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिका:।।' — श्रीमद्भागवत, १२।१।९

अनुमान लगताहै कि मौर्यवँश का सँस्थापक स्वयँ भी शिशुनागवँश और नन्दवँश के सँस्थापकों के समान पर्वतीय आयुधजीवी था।

मुद्राराक्षसनाटक की कथावस्तु का ऐतिहासिक आधार होनेपर भी उसमें वर्णित केवल उन्हीं घटनाओं और व्यक्तियों को ऐतिहासिक मानाजासकताहै जिनकी पुष्टि ऐतिहासिक या अन्य प्रामाणिक स्रोतों से होतीहो। नाटक में वर्णित अनेक पात्रों के नाम काल्पनिक हैं। उनकी ऐतिहासिकता की पुष्टि केलिए प्रमाण नहीं मिलते।

पर्वतेश्वर

पब्बत, पब्बतक, पर्वतक, पर्वतेश्वर के ऐतिहासिक अस्तित्व की पुष्टि जैनपरम्परा से भी होतीहै। वह पर्वतेश्वर या पर्वतक किस पर्वतीयप्रदेश का शासक था, यह कहना कठिन है। नाटक में कुलूत (कुल्लू), मलय, कश्मीर तथा सैन्धव (सिंधु की सम्भवतः उपरली घाटी के) नरेशों का पृथक उल्लेख है [१]। इसलिए पर्वतेश्वर का राज्य कुल्लू से पूर्व की ओर होनाचाहिए।

जैन स्रोतों के अनुसार हिमवन्तकूट के नरेश पर्वतक की सहायता से चाणक्य ने नन्दसम्राट पर विजय प्राप्तकीथी [२]। हिमवन्तकूट हिमालय का कोई - सा भाग होसकताहै। कालिदास के अनुसार हेमकूट गन्धमादनपर्वत पर मन्दाकिनीनदी की उपत्यका में था [३]।

विशाखदत्त से केवल एक शती पश्चात् ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों ने अपने अभिलेखों में अपने राज्य वर्तमान गढ़वाल - उत्तराखण्ड केलिए पर्वताकरराज्य नाम का प्रयोग कियाहै [४]। शब्दसाम्य के आधार पर पर्वतक या पर्वतेश्वर का सम्बन्ध पर्वताकरराज्य से जोड़ने की कल्पना होसकतीहै। किन्तु इस कल्पना की पुष्टि अभीतक अन्य स्रोतों से नहीं हुईहै।

कुछ विद्वानों ने पर्वतक की पहिचान सिकन्दर से भिड़नेवाले पश्चिमी पञ्जाब के पुरुवँशी नरेश (पोरस) से कीहै [५]। किन्तु यूनानी स्रोतों से विदित होताहै कि सिकन्दर जब भारत से लौटगया तो यवन सेनाधिकारी युदामस ने छलपूर्वक पुरुवँशी नरेश (पोरस) की हत्या करदी। और उसके १२० रणहस्ती तथा कुछ सैनिकों को लेकर भारत से चलागया [६]। इसलिए पर्वतक पुरुवँशी नरेश से भिन्न था।

नाटक के अनुसार मलयकेतु को आशँका हुई कि कुलूत, मलय और कश्मीर के नरेश उसके राज्य को तथा सिन्धुनरेश एवँ पारसीकनरेश उसके कोष और गंजसैन्य को

१- मुद्राराक्षस, अंक १, श्लोक २० २- जैन -- जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ५२२

३- विक्रमोर्वशीनाटक, अंक १; भगवतशरण उपाध्याय -- कालिदास का भारत, भाग १, पृ० ६

४-' परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री द्युतिवर्मा कुशली, पर्वताकरराज्येऽस्मद्‌ वश्यान्महाराजाविशेषान्‌ प्रतिमान्य . . . . ' — द्र० उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३५२

५- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी, जि० १, पृ० ४७१

६- दियोदोरस का लेख, उ० रा० कु० मुकरजी — चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० ३१

छीनना चाहतेहैं [१]। यदि इस आशँका का कोई ऐतिहासिक आधार है तो पर्वतेश्वर की मूलभूमि कुलूत, मलय और कश्मीर की सीमा से मिलीहुई होनीचाहिए।

पर्वतक या पर्वतेश्वर नामों तथा गजवल की सार्थकता सिद्धकरने केलिए पर्वतेश्वर का राज्य या व्यासनदी से यमुना - गङ्गा तक फैली पर्वतीय ढालों और उनके पादप्रदेश में स्थित भाबरप्रदेश में, लगभग उस क्षेत्र में मानसकतेहैं, जहां उदुम्बर और कुलिन्दजन का प्रसार था।

चाणक्य-कौटिल्य

अनुमान कियाजाताहै कि मौर्यसाम्राज्य की सुव्यवस्था - हेतु चाणक्य ने कुछ काल तक चन्द्रगुप्त का आमात्य बनना स्वीकार कियाथा। उन्होंने मौर्यनरेश तथा अन्य नरेशों के पथप्रदर्शन केलिए अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ की रचना कीथी। चणकऋषि की सन्तान होनेसे वे चाणक्य कहलातेथे। उनका नाम विष्णुगुप्त भी बतलायाजाताहै। अर्थशास्त्र में उन्हें कौटिल्य कहागयाहै। अर्थशास्त्र की पुष्पाञ्जलि में वे अपने को नन्दवँश का उच्छेता बतलातेहैं [२]।

अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के मन्त्री चाणक्य की कृति है या नहीं, इस विषय पर विद्वानों में बड़ा बिवाद है। कुछ विद्वान् इस ग्रन्थ को सर्वथा जाली मानतेहैं। किन्तु कुछ उसे चन्द्रगुप्त के शासनकाल में रचागया सिद्ध करतेहैं।

विशाल साम्राज्य का आमात्य होने पर भी वे बड़े त्यागी और कर्मयोगी थे [३]। आचार्य चाणक्य सहस्रांशु भगवान् सूर्य से भी अधिक तेजस्वी थे। उन्होंने अपनी नीति-कुशलता के द्वारा नन्दवँश को अस्त तथा मौर्यवँश को उदित कियाथा। फिर भी वे महातेजस्वी कर्मयोगी, मुद्राराक्षस के अनुसार, एक झोंपड़ी में निवास करतेथे। जिसमें एक ओर सूखे उपलों को तोड़ने केलिए पत्थर का टुकड़ा पड़ाथा, दूसरी ओर ब्रह्मचारियों द्वारा एकत्रित कुशों का ढेर लगाथा तथा सुखाईजानेवाली समिधाओं के भार से उस जीर्ण - शीर्ण झोंपड़ी का छप्पर झुकाहुआथा [४]।

१- 'कुलूताधिपश्चित्रवर्मा, मलयजनपदाधिपः सिंहनादः काश्मीरदेशाधिपः पुष्कराक्षः, सिन्धुराजः सिन्धुसेनः पारसीकाधिपतिर्मेघाक्षः इति। अत्रैव प्रथमभणितास्त्रयो राजनो मलयकेतोर्विषयमभिलषन्ति इतरौ द्वौ कोषं हस्तिवलञ्चेति' — मुद्राराक्षस, अंक ५, पृ० २२६

२- 'येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥' — अर्थशास्त्र, १५।१

३- 'यो नन्दमौर्यनृपयोः परिभूय लोकमस्तोदयो प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम्।
पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि धाम्नाऽतिशाययति धाम सहस्रधाम्नः॥'
— मुद्राराक्षस, अंक, ३, श्लोक १७

३- 'उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां बटुभिरुपहृतानां वर्हिषां स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि र्विनमित पटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥'
— मुद्राराक्षस. अंक ३, श्लोक १५

शासनप्रबन्ध— चन्द्रगुप्तमौर्य के शासनप्रबन्ध की विस्तृत सूचनाएँ उसकी सभा में रहनेवाले यवन राजदूत मेगस्थनीज के लेख के अवशिष्ट अँशों तथा अर्थशास्त्र से प्राप्त होतीहैं। अनेक विद्वानों की धारणा है कि अर्थशास्त्र में जिस शासनप्रणाली का चित्रण है, वह चन्द्रगुप्तमौर्य के राज्यकाल से सम्बन्धित है। और उसकी पुष्टि मेगस्थनीज के लेख के अवशिष्ट अँशों से भी होतीहै [१]।

चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में उसका विशाल साम्राज्य सम्भवतः चार या पांच प्रान्तों या देशों में बंटाथा। जिनके मुख्यालय तक्षशिला, उज्जैन, तोसली, सुवर्णगिरि और सम्भवतः पाटलिपुत्र में थे। मध्यदेश या यमुना से पूर्व के प्रदेश का शासन पाटलिपुत्र से होताथा या किसी अन्य मुख्यालय से, यह अभीतक अविदित है। इन प्रान्तों के शासक राजपरिवार से सम्बन्धित व्यक्ति होतेथे, जो सम्भवतः उपराज कहलातेथे [२]।

उपराजों के अधीन प्रादेशिक महामात्र और राजुक शासनव्यवस्था करतेथे [३]। ग्रामों का शासन पञ्चायतों के द्वारा होताथा, जो अपने स्थानीय नियमों के अनुसार परम्परागत ढंग से ग्राम की व्यवस्था करतीथीं [४]। इसलिए राजनैतिक उथल - पुथल होते रहने पर भी ग्रामीणजीवन में कोई उलटफेर न होतेथे[५]। मेगस्थनीज के लेख के अनुसार भारत में राष्ट्र को भोजन जुटानेवाले कृषकों का जीवन पुनीत समझाजाताथा। युद्ध के दिनों में भी, उस जनपद की सेनाएँ अथवा विरोधी जनपद की सेनाएँ कृषकों को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचातीथीं। युद्ध में भी शत्रु के ग्रामों पर अग्नि धधकाना और शत्रु के वनों को नष्टकरना सर्वथा वर्जित था [६]।

कौटिल्य की व्यवस्था थी कि स्थानीय चरित्र या सँस्थाओं की, किसी प्रकार अवहेलना नहीं होनीचाहिए। विभिन्न जनपदों को अपनी स्थानीय परम्पराओं के अनुसार सामाजिक और धार्मिक जीवन बिताने की पूरी स्वतन्त्रता होनीचाहिए [७]। इसलिए अनुमान लगताहै कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल में भी कुलिन्द जनपद के विभिन्न भागों – तामस, कालकूट, तङ्गण, भारद्वाज, रङ्कु और आत्रेय के स्थानीय जीवन में विशेष अन्तर न आयाहोगा।

पाषण्डों पर प्रतिबन्ध— निवृत्तिपरक पाषण्डों (मत-मतान्तरों) के प्रचार से जनसाधारण के पारिवारिक जीवन में जो अव्यवस्था फैली उसकी ओर भी कौटिल्य का ध्यान गयाथा। चन्द्रगुप्त के शासन में स्त्री और सन्तान के भरण - पोषण का समुचित प्रबन्ध न करके प्रव्रज्या लेना दण्डनीय अपराध बनादियागयाथा [८]। कौटिल्य ने देवपूजा

१- मुकरजी – चन्द्रगुप्त मौर्य एँड हिज टाइम्स, पृ० ४-५ २-३- मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० ५२-५३

४- मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० ४७ - ४८ ५- मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० ४८

६- उ० मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० ४८ ७- मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० ५१ - ५२

८- 'पुत्रदारमप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः, स्त्रियं च प्रव्राजयतः। लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदापृच्छ्य धर्मस्थान् अन्यथा नियम्येत।' – अर्थशास्त्र २।१, पृ० ९७

और श्राद्ध के अवसरों पर शाक्यपुत्रीय (बौद्ध), आजीवक, शूद्र तथा अन्य प्रव्रजित साधुओं को भोजदेना दण्डनीय अपराध ठहरादियाथा [१]। जिससे समाज में अव्यवस्था फैलानेवाले व्यक्तियों की सँख्या न बढ़े [२]। किन्तु चन्द्रगुप्त के राज्यकाल के पश्चात् इस नियम की अवहेलना होनेलगी। सम्भवतः कौटिल्य ने यह नियम उनदिनों बनायाथा, जब चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में द्वादश वर्षीय अन्नकाल पड़ाथा।

पर्वतवासियों को आजीविका—चन्द्रगुप्त के समय राजप्रासाद के तीसरे कक्ष में कुब्ज (कुबड़ा). बामन (बौना), किरात, मूक, वधिर और अन्धे सेवकों को सुरक्षा - हेतु रखाजाताथा [३]। इनकी उपस्थिति से षड़यन्त्रों का पता लगाने में सहायता मिलतीथी। किरात पर्वतवासी थे। उन्हें म्लेच्छ भी कहागयाहै [४]। उत्तराखण्ड और पड़ोसी पर्वतीय जनपदों की उपरली श्रेणियों के निवासी किरात थे [५]। आकर्षक किरात छोकरियों का राजभवनों में चमर डुलाने केलिए इतना व्यापक प्रयोग होताथा कि सँस्कृत में किराती शब्द का प्रयोग चामरग्राहिणी केलिए चलपड़ाथा [६]।

कौटिल्य आयुधप्रायः या आयुधजीवियों को विश्वासपात्र समझतेथे [७]। उन्होंने चोर, प्रतिरोधक, किरात आदि पर्वतीय म्लेच्छ, आटविक या वनप्रदेशों के निवासी, तथा शस्त्रोपजीवियों को सेना में भरती करनेका सुझाव दियाहै। इन्हें वे साहसी और विशेष वीर (प्रवीर) मानतेथे [८]। मौर्यसाम्राज्य की स्थापना में भी पर्वतीय आयुधजीवियों का हाथ था। चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना के अग्रभाग में भी ये साहसी वीर रहतेथे। उन्हें नियमित रूप से वेतन मिलताथा [९]।

बुद्ध के उपदेश से सैनिकों में युद्ध के प्रति विरक्ति बढनेलगीथी, यह हम देखचुकेहैं। बुद्ध ने समर में प्राण देनेवालों की गति नरक या पशुयोनि में जन्म घोषित कीथी [१०]। इसका दुष्परिणाम देखकर कौटिल्य ने व्यवस्था कीथी कि —

राजा उचित अवसरों पर सैनिकों को एकत्रित करके घोषणा करे—'मैं और आप लोग देश के वेतनभोगी सेवक हैं। देश की रक्षाकरना हमारा कर्तव्य है [११]।'

१- 'शाक्याजीवकादीन् वृषलप्रव्रजितान् देवपितृकार्येषु भोजयतः शत्यो दण्डः' — अर्थशास्त्र, ३।२०; मुकरजी — चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० १५७

२- 'न जनपदं उपनिवसेत्' — अर्थशास्त्र, २।१; मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० १८४

३- अर्थशास्त्र, १।१२; मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ६५

४- मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ६४

५- डबराल—उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० १८७

६- शर्मा तथा झा —शब्दार्थ-कौस्तुभ, पृ० ३२६

७- अर्थशास्त्र, ७।१; मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ७३

८- अर्थशास्त्र, ७।१०, १४; ८।१४; मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० २२

९- मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ७५

१०- संयुत्त - निकाय, पृ० ५८१

११- 'संहत्य दण्डं ब्रूयात् — तुल्यवेतनोऽस्मि, भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यं, मयाभिहितः परोऽभिहन्तव्यः इति। — अर्थशास्त्र, १०।३

राजपुरोहित घोषणा करे – 'वेदों में कहागयाहै कि विधिपूर्वक अनेक यज्ञों के करनेसे जो फल मिलताहै, वही वीरपुरुषों को प्राप्त होताहै [१]। अनेक कठोर तप और व्रतों के करनेसे ब्राह्मण को जो गति प्राप्त होतीहै, उससे भी उच्चगति देश - धर्म केलिए युद्ध में प्राण देनेवालोंको तुरन्त प्राप्त होजातीहै [२]। किन्तु जो सैनिक, वेतन लेने पर भी, स्वामी के आदेशानुसार युद्ध नहीं करता, वह नरक तो जाएगा ही, मृत्यु के उपरान्त उसका विधिपूर्वक सँस्कार भी नहीं कियाजाएगा [३]।'

मेगस्थनीज ने भारत की महोच्च पर्वतश्रेणियों को नाना प्रकार के फलदारवृक्षों से भरा बतलायाहै [४]। उनदिनों, जब पर्वतश्रेणियों का बड़ा भाग वनों से ढकाथा कन्द, मूल, फलों और अनेक प्रकार की जड़ी - बूटियों की प्रचुरता रहीहोगी। वनप्रदेश में स्वतः प्राप्तहोने वाली वस्तुओं से अनेक व्यक्तियों का निर्वाह होताथा। उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग अनेक प्रकार के जटिलक या जटाधारी तपस्वियों से भरेथे, जो वनों से ही भोजन प्राप्त करतेथे। इन वस्तुओं पर निर्भर रहनेवाले तापसों की मैदानों में भी कमी न थी। पर्वतीयप्रदेश में अनेक व्यक्तियों की आजीविका वनप्रदेश में प्राप्त उपयोगी वस्तुओं को एकत्रित करने और मण्डियों में उन्हें पहुँचाने से चलतीथी।

उस युग में सारी चिकित्सा भारतीय जड़ी - बूटियों से कीजातीथी। पाणिनि ने ओषधियों के वनों का उल्लेख कियाहै। कौटिल्य ने ओषधियां उगाने का सुझाव दियाहै [५]। मौर्यकाल में भारतीय ओषधियों की मांग, देश - विदेशों में अनेक चिकित्सालयों की स्थापना से बढगईथी। नगरों में जड़ी - बूटियों के भण्डारों की स्थापना कीगईथी, जिससे प्रत्येक क्षण ओषधियां उपलब्ध होसकें [६]। पशुओं की चिकित्सा केलिए अशोक ने चिकित्सालयों की स्थापना कीथी।

वनों से प्राप्त होनेवाली निम्न वस्तुओं का कौटिल्य ने उल्लेख कियाहै [७]। इन वस्तुओं की उत्तराखण्ड के वनों में भरमार थी :—

दारु – शाल, शीशम आदि, जिनसे भवन - निर्माण आदि केलिए दारु (लकड़ी) प्राप्त होतीथी।
बेणु – अनेक प्रकार के बांस, रिंगाल और देवरिंगाल।
बल्ली – बेत आदि, जिनसे टोकरियां बनतीथीं।
बल्कल– जिनकी छाल से तापसों के वस्त्र बनतेथे, यथा बनैली भांग, सीमल आदि।

१- 'वेदेष्वप्यनुश्रूयते समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु सा ते गतिर्या शूराणाम्' इति

२- 'यान् यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणः पात्रचयैश्च यान्ति।
क्षणेन तामप्यतियान्ति शूराः प्राणान् सुयुद्धेषु परित्यजन्तः॥' – अर्थशास्त्र, १०।३

३- 'नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद् योभर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥' – अर्थशास्त्र, १०।३

४- मुकरजी -- चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० ७५ ५- मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० १०४

६- अर्थशास्त्र, २।४; मुकरजी–पूर्वोक्त, पृ० १३९ ७- अर्थशास्त्र, २।१७; मुकरजी–पूर्वोक्त, पृ० १०९-१०

रज्जु – मूँज, बाबड़ घास, जिनसे रस्सियां आदि बनतीथीं।

पत्र – शाल, मालू, ढांक आदि, जिनके पत्ते पत्तल बनाने, सामग्री रखने के उपकरण बनाने तथा कुटीर छाने केलिए उपयोगी थे।

पुष्प – किंशुक (ढांक), कुसुम्भ, कुँकुम आदि, जिनका प्रयोग रङ्गों के निर्माण केलिए होताथा।

कन्द – मूल - फल तथा औषधियां।

विष – वृक्षों से तथा पौधों की जड़ों से प्राप्त होनेवाले भीषण विष, विशेषकर हिमरेखा के निकट उत्पन्न होनेवाले।

विविध– पात्रों के निर्माण और लिपाई केलिए रङ्ग - विरङ्गी मृतिका, कोयला, पशुओं के लिए घास और जलाने केलिए ईंधन।

इन वस्तुओं के सँग्रह और विक्रय का पर्वतवासियों की आजीविका में महत्वपूर्ण स्थान था। इन वस्तुओं को एकत्रित करने केलिए कुप्याध्यक्ष के अधीन ऐसे वनपाल नियुक्त किएजातेथे जिन्हें वनप्रदेश और उसकी प्रत्येक उपज का पूरा - पूरा बोध होताथा [१]। पर्वतीय भागों में ऐसे व्यक्ति स्थानीय ही होसकतेथे।

खनिज खोदने से अनेक व्यक्तियों को आजीविका मिलतीथी। उत्तराखण्ड में उस युग में भी स्वर्णचूर्ण, ताम्र, लौह तथा अन्य धातुओं की खुदाई होतीथी। सम्भवतः उस युग में भी उत्तर के तङ्गण तथा खश तिब्बत का लवण इस देश में लातेथे। कौटिल्य ने बाहर से आनेवाले आगन्तुक लवण पर विशेष कर लगाने का सुझाव दियाहै [२]। आज के समान उनदिनों भी पड़ोसी देशों में से केवल तिब्बत से ही लवण प्राप्त होसकताथा।

चन्द्रगुप्त के विशाल साम्राज्य के सुदूरस्थ भागों तक डाक पहुँचाने, भार - वहन, सवारी और विशाल सेना के उपयोग केलिए उत्तम अश्वों की भारी आवश्यकता थी। उनदिनों पश्चिमी सीमान्त के विशालकाय और सुदृढ़ अश्वों को विशेष महत्व दिया जाताथा [३]। किन्तु जन-साधारण के उपयोग केलिए उत्तराखण्ड के भारद्वाज और तङ्गण (टांघन) अश्वों की भी मांग कम न रहीहोगी। शताब्दियों पीछे हर्ष की सेना में भारद्वाज और तङ्गण अश्वों की पृथक् टुकड़ियां थीं [४]।

हैमवत मार्ग से उत्तम कम्बल, बहुमूल्य समूर और खालें, अश्व आदि पशु आतेथे [५]। कम्बल वर्षा में प्रयाण केलिए बड़े उपयोगी होतेथे। भांग के वस्त्र बड़ी मात्रा में आतेथे [६]।

बिन्दुसार

अनुमान कियाजाताहै कि विक्रमपूर्व २४० (297 B. C.) के आसपास या तो चन्द्रगुप्त ने शरीर त्यागदियाथा या वह जैन - श्रमण बनकर दक्षिण में चला-

१- मुकरजी – चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० १४६ २- अर्थशास्त्र, २।४; मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० १३६ ३- अर्थशास्त्र, २।३० ४- अग्रवाल – हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४१ ५- मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० २०६ ६- मुकरजी – पूर्वोक्त, पृ० २११

गयाथा [1]। चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसके पुत्र बिन्दुसार को मगध का सिंहासन मिला। तारानाथ के लेख से विदित होताहै कि बिन्दुसार ने दक्षिण के कुछ प्रदेशों को जीतकर मौर्यसाम्राज्य में मिलायाथा। किन्तु यह विवादास्पद है [2]।

बिन्दुसार को दक्षिण की विजय में या आमोद - प्रमोद में व्यस्त देखकर साम्राज्य के दूरस्थ भागों के शासक स्वेच्छाचारी बनकर प्रजा का उत्पीड़न करनेलगे। दुखी होकर तक्षशिला की प्रजा ने शासक के विरुद्ध विद्रोह करदिया, जिसे शान्त करने - हेतु राजकुमार अशोक को जानापड़ा।

इन्हीं दिनों ख्वस (खश) राज्य में, सम्भवतः नन्दवँश की मूलभूमि, मन्दाकिनी-उपत्यका [3], उत्तराखण्ड में विद्रोह होगया। अस्तु तक्षशिला का विद्रोह शान्त करके अशोक ने खशराज्य का विद्रोह शान्त किया। तारानाथ और दिव्यावदान, दोनोंने इस घटना का उल्लेख कियाहै।

अशोक

विक्रमपूर्व २१५ (272 B. C.) के आसपास बिन्दुसार ने शरीर त्यागदिया। इसके लगभग चार वर्ष पश्चात् अशोक मगध के सिंहासन पर बैठा। अभिषेक से ८ वर्ष पश्चात् अशोक ने कलिङ्ग पर आक्रमण किया। इस महायुद्ध में एक लाख मनुष्य मारेगए और डेढ लाख बन्दी बनाएगए, तथा इससे भी अधिक नष्ट होगए [4]। युद्ध के इस भीषण परिणाम का अशोक के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने भविष्य में युद्ध न करनेका व्रत लिया [5] और प्राणि-मात्र के कल्याण में जुटगया।

धर्मोपदेश—अशोक की बौद्धमत पर गहरी आस्था थी। पर उसने संकीर्ण मनोवृत्ति त्यागकर प्राचीन हिन्दुधर्म के उदार सिद्धान्तों का प्रचार किया। उसने अपने साम्राज्य के प्रमुख स्थानों पर, जहां घनी जनसँख्या थी, या मेले - उत्सव के अवसर पर जहां विशाल जन - समुदाय पहुँचताथा, शिलाओं, स्तम्भों और गुफाओं की भित्तियों पर अपने धर्मोपदेश खुदवाए।

उसके अभिलेख दक्षिण में मैसूर से लेकर, उत्तर में कालसी तक, तथा पश्चिम में पेशावर - मानसेहरा से लेकर पूर्व में राजगिरि के पास बरबारा की पहाड़ियों तक मिलेहैं। उसका एक अभिलेख कुछदिन पूर्व दिल्ली में, तथा दूसरा अफगानिस्तान में कन्धहार के पास मिलाहै। कन्धहार का अभिलेख यूनानी और आरमाइक लिपियों में, पश्चिमीभारत के अभिलेख खरोष्टीलिपि में तथा शेष ब्राह्मी लिपि में खुदेहैं।

उत्तराखण्ड में, कालसी में, एक विशाल शिला पर, अशोक के सभी, चौदह धर्मोपदेश, एकसाथ खुदे मिलतेहैं। यहां वे अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित अवस्था में पाएगएहैं।

१- मुकरजी — चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, पृ० ३९-४२ २ - मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ३३।४
३- अग्रवाल—मारकण्डेयपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४५ ४-५- कालसी का अभिलेख, १३

अशोक की इच्छा थी कि उसके राज्य में सभी मत - मतान्तरों के अनुयायी एक-दूसरे के प्रति उदारता का व्यवहार करें [१]। धार्मिक कट्टरता और सँकीर्ण मनोवृत्ति को त्यागकर सभी व्यक्ति धर्म के मूलसिद्धातों का पालन करें [२], और सबके साथ प्रेम से रहें [३]। समस्त प्राणियों के प्रति दयाभाव रखकर हिंसा को त्याग दें [४]। हिंसापूर्ण समाज - उत्सवों को बन्द करदें [५]।

पारिवारिक जीवन में सभी व्यक्ति माता - पिता एवँ गुरुजनों की सेवाकरें [६]। उनके प्रति पूज्यभाव रखें [७]। दासों और सेवकों से सद्व्यवहार करें। तथा मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों की सेवा - सहायता करें [८]।

अपने व्यक्तिगत जीवन में सभी व्यक्ति सँयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता, दृढ़भक्ति, शौच और शुद्धता का पालन करें [९]। सत्य और साधुता का आश्रय लें। लालच त्यागकर अल्प सँग्रही बनें [१०]। स्वयँ मितव्ययता से जीवन बितातेहुए दीन - दुखियों को दान दियाकरें [११]। और सबका हित करें [१२]।

आध्यात्मिक उन्नति केलिए सभी व्यक्ति ब्राह्मणों और श्रमणों के वचनों को श्रद्धा-पूर्वक सुनें। तथा उन्हें वित्तानुसार दान दें [१३]। धर्मोपदेशों को सुनकर स्वयँ धर्ममार्ग का अनुसरण करें तथा दूसरों को भी इसकेलिए प्रोत्साहित करें [१४], क्योंकि अपनी और दूसरों की आध्यात्मिक उन्नति केलिए प्रयत्नकरना सबसे महान् धर्म है [१५]।

अशोक स्वयँ आदर्श धार्मिकजीवन बितातोथा। अपनी प्रजा को भी धार्मिकजीवन बिताने की, प्रेरणादेने - हेतु उसने अनेक धर्म - महामात्र नामक अधिकारियों को नियुक्त कियाथा [१६]।

बौद्धमत का प्रचार— अभिलेखों द्वारा धर्मोपदेश के अतिरिक्त अशोक ने बौद्धमत के प्रचार केलिए भी विशेष प्रयत्न किएथे। वह सार्वजनिकरूप से बौद्धविद्वानों का सत्कार करताथा [१७]। बौद्धतीर्थों की तीर्थयात्रा करताथा [१८]। तथा श्रमणों [१९] और बौद्धसँघ को अपार धनराशि प्रदान करताथा [२०]।

अशोक की बौद्धमत के प्रति असीम श्रद्धा थी। अपने अभिलेखों में उसने प्रचलित सभी पाषण्डों (मत - मतान्तरों) के प्रति श्रद्धा व्यक्त कीहै [२१]। वह क्षमण एवँ ब्राह्मणों का समानरूप से आदर करताथा [२२]। राज्यारोहण के नौ वर्ष पश्चात् उसने गृहस्थी उपासक के रूप में बौद्धमत की दीक्षा लेलीथी।

उत्तराखण्ड में अहोगङ्ग - निवासी स्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य के प्रति उसके हृदय में वड़ी श्रद्धा थी। तथा उन्हींकी प्रेरणा से अशोक ने बौद्धमत की तृतीय सङ्गीति करवाई थी [२३]। इसका आगे वर्णन कियाजाएगा।

---

१ से १७- कालसी - अभिलेख, क्रमशः १२, ३, ३, १, ३, ९, ३, ७, ३, ६, ३, ११, १२, १२, ७, ८

१८- रा० कु० मुकरजी -- अशोक, पृ० ३७

१९- महावंश, पृ० ३१

२०- २२- कालसी - अभिलेख, ४, ८, ४

२३- महावंश, पृ० १७

परमार्थ कार्य— मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा केलिए अशोक ने अपने साम्राज्य में अनेक स्थानों पर पृथक्-पृथक् चिकित्सालय बनवाएथे[१]। पशुओं केलिए चिकित्सालय बनवाने की यह विश्वइतिहास में पहिली लिखित घटना है। उसने ऐसे चिकित्सालय अपने साम्राज्य के बाहर पड़ोसी देशों में भी बनवाएथे। इन चिकित्सालयों को, राज्य की ओर से, नियमितरूप से ओषधियां भेजीजातीथीं। औषधालयों के निकट भी जड़ी-बूटियों को उत्पन्नकरनेका प्रयत्न कियाजाताथा[२]।

मार्गों की सुरक्षा और पथिकों की सुविधा की ओर उसने विशेष ध्यान दियाथा। उसने प्रमुख राजमार्गों के दोनों ओर छायावाले वृक्षों एवँ आम्रवाटिकाओं को लगवाया था[३]। इन मार्गों पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उसने कुएँ, जलाशय तथा पांथशालाएँ बनवाईथीं[४]। उनमें मनुष्यों और पशुओं के टिकने का प्रबन्ध था। मार्गों पर दूरीसूचक सँकेत भी लगेरहतेथे।

मार्ग में पड़नेवाली नदियों को पारकरने केलिए नावों का प्रबन्ध था। चोरों, आततायियों तथा नारियों को भगानेवालों पर कड़ीदृष्टि रखीजातीथी[५]।

शिल्प— अशोक के समय शिल्प में, विशेषकर शिलाओं से स्तम्भ आदि बनाने में, उनको पशुओं की मूर्तियों से अलँकृत करनेमें, तथा चमकदार पालिस लगानेकी कला में विशेष उन्नति हुई। उसके राज्यकाल में बनी बरबारा तथा नागार्जुनी कोंडा की गुफाओं की दीवारें आज भी दर्पण के समान चमकतीहैं। उसके स्तम्भों पर लगी पालिस का रहस्य आज भी अज्ञात है[६]। अनुमान कियाजाताहै कि मौर्यकालीन स्थापत्यकला पर ईरानी प्रभाव पड़ाथा। पर इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, क्योंकि कुछ स्तम्भ अशोक से पूर्ववर्ती सिद्ध होचुकेहैं।

अशोक के स्तम्भ विशाल शिलाओं को काटने, उनपर रन्दा लगाने, पालिस और अतिसुन्दर चित्रकारी करनेके अद्भुत उदाहरण हैं। वे शिलाएँ, जिनसे स्तम्भ बनेहैं, पचास टन तक भारी, एवँ तीस फीट तक लम्बी हैं। उत्तराखण्ड में स्थित कालसी-शिला, जिस पर अशोक के चौदह अभिलेख खुदे हैं, दस फीट ऊँची और इतनी ही लम्बी है। आधार पर वह आठ फीट चौड़ी है, और ऊपर की ओर सँकरी होतीगईहै। इस शिला की दक्षिण-पूर्वी सतह को, जिसपर अभिलेख खुदेहैं, घिसकर चिकना कियागयाहै। दो सहस्र वर्षों से अधिक समय तक बाहर धूप और वर्षा में रहनेपर भी यह शिला पूर्ववत् चमकतीहै। उसके अभिलेखों का केवल अतिअल्प अँश ही अपाठ्य हुआहै।

अशोक का व्यक्तित्व—चालीस वर्षों तक शासन करनेके पश्चात् अशोक का शरीरान्त होगया। अपने राज्यकाल में उसने राजधर्म में एक नए आदर्श की स्थापना कीथी। उसे केवल अपनी प्रजा ही नहीं, विश्व-भर के नर-नारी एवँ पशु-पक्षी आदि समस्त

१-४- कालसी-अभिलेख, २ ५- अर्थशास्त्र, पृ० १६६

६- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ८६

प्राणी अत्यधिक प्रिय थे। वह उन्हें सुखी करनेके प्रयत्न में सदा लीन रहताथा [१]। वह उनकी केवल सांसारिक उन्नति ही नहीं, वरन् आध्यात्मिक उन्नति भी चाहताथा [२]। यही उसकी महानता और दुर्वलता थी।

प्रजाहित का उसे सदैव ध्यान रहताथा। वह प्रत्येक समय, प्रत्येक कार्य करतेहुए प्रजाहित केलिए प्रस्तुत रहताथा। उसे उसकी प्रजा प्रत्येक समय मिलसकतीथी [३]। उसके द्वारा किएगए जनहित के कार्य शतियों तक शासकों और जनता को प्रभावित करतेरहते। मगध की पांथशालाओं और चिकित्सालयों की विदेशी यात्रियों ने विक्रम की आठवीं शता में भी प्रशँसा कीहै [४]।

उसके राज्य में पहिली बार भारत के धुर-दक्षिणी भाग को छोड़कर शेष सारे देश में खैबर के पार तक एकच्छत्र राज्य की स्थापना हुई। जम्बूद्वीप के एकीकरण की जो भावना नन्दनरेशों ने आरम्भ कीथी, उसे अशोक ने पूरा किया। उसके समय, देश के विभिन्न भागों में स्थानीय बोलियों का प्रयोग होने पर भी सारे देश में पाली का राजभाषा के रूप में प्रयोग होताथा, जैसा कि उसके अभिलेखों से स्पष्ट है।

साम्राज्य का विघटन— अशोक को अपनी प्रजा की, तथा मानव-मात्र की आध्यात्मिक उन्नति की सबसे अधिक चिन्ता थी। उसने घोषणा कीथी कि वह धम्मविजय को सर्वोपरि समझताहै [५]। उसने युद्ध के भेरीघोष को धम्मघोष में परिणित करदिया [६]। दिग्विजय के स्थान पर वह धम्मविजय में जुटगया। उसने अपने पुत्रों और पौत्रों को भी युद्ध से विरतरहने का आदेश दिया [७]। तथा उन्हें चतुर सेनानायक और कठोर नियन्त्रण वाले कुशल शासक बनने केलिए आवश्यक शिक्षा-दीक्षा से वञ्चित करदिया।

जिनदिनों अशोक के महामात्र घर-घर जाकर धम्म के नियमों का सुचारु-रूप से पालनकरवाने में सँलग्न थे, उन्हींदिनों पश्चिमीसीमा पर स्थित देशों के यवननरेश चन्द्रगुप्त के पौत्र की ओर से निशँक होकर सैन्य-सँग्रहकरने में जुटेथे।

अशोक के जीवनकाल में ही इस राष्ट्रविनाशक धम्मनीति के परिणाम दिखाई-देनेलगे। अपने विशाल राज्य के कुछ भागों में उसे स्थानीय सामन्तों को अधिक सुविधाएँ देनीपड़ीं [८]। उसके राज्य के सत्ताईसवें वर्ष से दूरस्थ प्रान्तों का शासन ढीला होनेलगा [९]। उसकी मृत्यु होते ही उसके विशाल साम्राज्य के विभिन्न प्रदेश वेगसे स्वतन्त्र होनेलगे।

अशोक के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में ही, या उसकी मृत्यु होतेही, बाह्लीक (वैक्त्रिया) नरेश दियदात ने कपिशा, उद्यान और गान्धार को अपने राज्य में मिलालिया [१०]।

१- कालसी - अभिलेख, ४   २- कालसी - अभिलेख, ६, १०   ३- कालसी - अभिलेख, ६

४- रायचोधरी — पौलटिकल हिस्टरी, पृ० ३४७

६- ७- कालसी - अभिलेख, ४   ८- रायचौघरी—पूर्वोक्त, पृ० ३१५   ५- कालसी - अभिलेख, १३

१०- वन्द्योपाध्याय—प्राचीन मुद्रा, पृ० ३५   ९- रायचौधरी—पूर्वोक्त, पृ० ३२७

अशोक के छोटे पुत्र जलौक ने, जो सम्भवत: अशोक के जीवनकाल में कश्मीर का शासक था, पिता की मृत्यु होतेही कश्मीर में अपने स्वतन्त्र राज्य की घोषणा करदी। और पूर्व की ओर साम्राज्य पर अधिकार करताहुआ कान्यकुब्ज तक जाधमका [1]।

अशोक के साम्राज्य के पूर्वी भाग पर उसके नेत्रहीन पुत्र कुणाल ने अधिकार करलिया। कुणाल का पुत्र सम्प्रति अपने पिता के नाम से साम्राज्य का शासन करनेलगा। किन्तु अब उसके साम्राज्य में मगध, उज्जैन (मध्यप्रदेश) तथा राजस्थान का पूर्वी भाग, केवल यही प्रदेश बचेथे [2]।

तारानाथ के लेख से विदित होताहै कि सिन्धु के पार के प्रदेश पर अशोक की मृत्यु के पश्चात् एक स्वतन्त्र नरेश वीरसेन ने अधिकार करलियाथा [3]। पञ्जाब के दक्षिण-पश्चिमी भाग पर भी एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होगईथी [4]।

अशोककालीन लिपि में किसी काद नरेश की मुद्राएँ कुणिन्द मुद्राओं के साथ मिलीहैं [5], इनका सम्बन्ध कुलिन्दजन से जोड़ाजाताहै। इससे अनुमान लगताहै कि अशोक की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् हिमाचलप्रदेश - उत्तराखण्ड भी स्वतन्त्र होगयाथा।

उत्तरपांचाल के बारह नरेशों की मुद्राओं से, जिन्हें कनिंघम ने अशोक की मृत्यु के पश्चात् की, तथा विक्रमपूर्व ४३ (100 B. C.) से पूर्ववर्ती मानाहै [5], विदित होताहै कि उत्तरपांचाल, अर्थात् रुहेलखण्ड और निकटवर्ती प्रदेश में भी स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होगईथी।

वायु, मत्स्य और विष्णुपुराण में अशोक के उत्तराधिकारियों के विभिन्न नाम मिलतेहैं। कुणाल और उसके दो पुत्रों, दशरथ और सम्प्रति के पश्चात् पाटलिपुत्र का सिंहासन शालिशूक को प्राप्तहुआ। उसके या उसके किसी उत्तराधिकारी के राज्यकाल में किसी यवननरेश दमिति (देमितियस) ने पश्चिमीपञ्जाब को रौंदतेहुए पाटलिपुत्र पर आक्रमण कियाथा। कहाजाताहै कि मगधनरेश अपने प्राण बचानेहेतु राजगृह की पहाड़ियों में जाछिपा। किन्तु परिस्थितिवश यवन आक्रान्ता को शीघ्र लौटजानापड़ा।

उसके पश्चात् देववर्मन्, शतध्वन्वन् तथा वृहद्रथ मगध के शासक हुए। उनके राज्यकाल में मगधराज्य की सीमाएँ बहुत सिकुड़गईं। अन्तिम मौर्यनरेश वृहद्रथ की हत्या करके उसके सेनापति पुष्पमित्र शुङ्ग ने विक्रमपूर्व १२७ (184 B. C.) में पाटलिपुत्र का सिंहासन छीनलिया।

समकालीन उत्तराखण्ड

शासन— चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार और अशोक के राज्यकाल में उत्तराखण्ड

१- राजतरंगिणी, तरङ्ग १, श्लोक ११७

२- 'इतश्च सम्प्रतिनृपो यावत् उज्जयिनीपुरी'। — परिशिष्टपर्वणि, ११।२३; उ० रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी, पृ० ३५२

३- उ० रायचौधरी — पूर्वोक्त, पृ० ३६१

४- रायचौधरी — पूर्वोक्त, पृ० ३६२

५- कनिंघम—क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० १६१

मौर्यसाम्राज्य के अन्तर्गत रहा। बिन्दुसार के राज्यकाल में खशदेश में विद्रोह हुआथा, जिसे अशोक ने शान्त करदियाथा।

मौर्यसाम्राज्य में, उत्तराखण्ड - जैसे बीहड़प्रदेश का शासन, सम्भवत: स्थानीय सामन्तों के द्वारा होताथा। उनदिनों यदि किसी स्थानीय सामन्त की राजभक्ति सन्देहास्पद बनजातीथी तो उसे हटाकर, उसके किसी सम्बन्धी के हाथ में स्थानीय शासन सौंपदेने की प्रथा थी। शुङ्गकाल में, तथा उसके पश्चात् भी यह प्रथा बनीरही [१]। इससे अनुमान लगताहै कि हिमाचल - उत्तराखण्ड का शासन सम्भवत: पूर्ववत् कुणिन्द - सामन्तों के द्वारा होताथा। अशोक की मृत्यु के पश्चात् वे स्वतन्त्र होगए।

निवासी—उत्तराखँड की दक्षिणी पर्वतीय ढालों पर बसे खश शस्त्रोपजीवी बड़े प्रवल थे। उत्तरी भागों में किरातजाति का बाहुल्य था। मेगस्थनीज के अनुसार गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश के किरात चपटी नाक के कारण बिना मुँहवाले दिखाईदेतेथे। इनमेंसे कुछ व्यक्ति चन्द्रगुप्त के शिविर में लाएगएथे। वे बड़े भद्रपुरुष थे। किन्तु उनके मुँह नहीं थे! वे भूनेहुए मांस की गन्ध तथा फल - फूलों पर ही निर्वाह करतेथे! नाक को ही मुँह के रूप में प्रयुक्त करनेके कारण उनके शरीर से बड़ी दुर्गन्धि आतीथी। फल - फूलों की सुगन्धि के अभाव में उन्हें अपने प्रदेश से दूर, विशेषकर शिविर में, जीवित रहना अतिकठिन था [२]।

जीवन— जीवन की आवश्यकताएँ कम थीं। लोग सीदे - सादे और सन्तोषी थे। कृषि और पशुचारण पर आजीविका निर्भर थी। कन्द - मूल - फलादि का भोजन में महत्वपूर्ण स्थान था। शिक्षा का प्रचार था। अन्यथा शिलालेखों को खुदवाना व्यर्थ होता। जनता को शिलालेख पढ़कर सुनाने केलिए नियुक्त अधिकारियों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

धार्मिक महत्व के स्थानों पर समाज - उत्सव मनाने की प्रथा थी। कालसी, उत्तराखण्ड में महत्वपूर्ण स्थान था। वहां समाज - उत्सव मनायेजातेथे और यक्ष आदि की पूजा कीजातीथी [३]। वन के निकट स्थित उस प्रदेश में लोग आखेट भी खेलतेथे [४]।

मांस खाने की सार्वभौम प्रथाथी। पशुओं में हरिण का, तथा पक्षियों में मोर का मांस विशेष स्वादिष्ट समझाजाताथा [५]। समृद्ध व्यक्तियों के बड़े परिवारों में प्रतिदिन अनेक पशु - पक्षी भोजन-हेतु मारेजातेथे। सम्राट और राजप्रासाद के कर्मचारियों केलिए प्रतिदिन मारेजानेवाले पशु - पक्षियों की सँख्या कई सहस्र तक पहुँचतीथी [६]।

यद्यपि समाज में पशु मारनेवाले व्याधों तथा पक्षी पकड़नेवाले बहेलियों को हेयदृष्टि से देखाजाताथा, फिर भी जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण अँश मांस केलिए पशु पालने, बनैले पशु मारने तथा पक्षियों को पकड़ने या मारने से अपना निर्वाह करताथा।

आखेट मनोरञ्जन का प्रमुख साधन था। उसमें साहस और शक्ति प्रदर्शित

१- मालविकाग्निमित्र, अंक ५ २- फ्रैगमेंट्स, उ० रैप्सन—कैम्ब्रिज हिस्टरी, जि० १, पृ० २८०

३-६- कालसी - अभिलेख, १

करनेके अवसर मिलतेथे तथा भोजन केलिए ताजा मांस प्राप्त होताथा। राजा लोग जब विहार - यात्रा करतेथे तो आमोद - प्रमोद तथा आखेट रचेजातेथे [१]।

बिवाह तथा पुत्रजन्म आदि के अवसरों पर मङ्गलाचार किएजातेथे [२]। प्रवास पर जाते समय, अनिष्टनिवारण और सुख - समृद्धि की प्राप्ति केलिए भी मङ्गलाचार की सार्वभौम प्रथा थी। नारियां, विशेषकर माताएँ, ऐसे मङ्गलाचारों में प्रमुख भाग लेतीथीं। विश्वास था कि मङ्गलाचार से आगन्तुक रोगों और कष्टों को रोकाजासकताहै [३]।

शिव, स्कन्द, विशाख आदि देवी - देवताओं, मातृदेवियों, यक्ष, रक्ष और नागों की पूजा का सार्वभौम प्रचार था। परवर्ती मौर्यनरेश इनकी मूर्तियां ढलवाकर बेचतेथे। पतञ्जलि ने इन हिरण्यार्थी मौर्यों की पोल खोलीहै [४]।

आजीविका— कृषि और पशुचारण के अतिरिक्त आजीविका के कुछ अन्य साधन भी थे। कौटिल्य ने उत्तर के म्लेच्छों से प्राप्त होनेवाले उत्तम कम्बलों और चर्मों का उल्लेख कियाहै [५]।

साम्राज्य की सीमा ईरान और अफगानिस्तान तक फैलजाने के कारण उत्तरभारत में पश्चिम से आनेवाले उत्तम एवँ बहुमूल्य अश्वों का प्रचार बढ़गयाथा। जातकों में पश्चिम से आनेवाले अनेक अश्वव्यापारियों का उल्लेख मिलताहै। सारे देश में सुरक्षा और सुव्यवस्था की स्थापना होजाने पर व्यापार और आवागमन में बड़ी वृद्धि होगईथी। इसलिए ऊबड़-खाबड़ प्रदेशों की यात्रा और भारवाहन केलिए उत्तराखण्ड के भारद्वाज और टँकण अश्वों की मांग पूर्ववत् चलीआतीथी।

पर्वताश्रयी आयुधजीवियों की, जिन्हें कौटिल्य ने शस्त्रोपजीवी कहाहै, मौर्यसाम्राज्य में बड़ी मांग थी। हट्टे - कट्टे खश - कनैत मौर्यसेना में बड़ी सँख्या में भरती होतेथे। साम्राज्य के विभिन्न भागों में, विद्रोहों का दमनकरने केलिए तथा नवीन प्रदेश जीतने केलिए उनका प्रयोग होताथा। चन्द्रगुप्त को मगध का सिंहासन दिलाने में खश - वीरों का प्रमुख हाथ था। मौर्यसेना के अग्रिमदल के कोशार [६] या खस सैनिकों ने अतिप्रसिद्धि प्राप्त कीथी।

उत्तराखण्ड के गङ्गाजल की उनदिनों बड़ी मांग थी। अशोक की गङ्गास्रोत के पुनीत गङ्गाजल के प्रति असीम श्रद्धा थी [७]। महावँश के अनुसार उसकेलिए देवता प्रतिदिन मानसरोवर से आठ बहङ्गी पुनीत गङ्गाजल लातेथे [८]। राजा अशोक इस जल को अपने प्रिय व्यक्तियों में बांटतेथे [९]। वे प्रतिदिन चार बहङ्गी जल सँघ को, एक त्रिपिटकधारी साठ स्थविरों को [१०], तथा एक असँधिमित्रा को देकर शेष दो बहङ्गी गङ्गाजल अपने प्रयोग में लातेथे [११]।

१- कालसी - अभिलेख, ८ २-३- कालसी - अभिलेख, ९ ४- अग्निहोत्री—पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ५७ ५- अर्थशास्त्र, २।११ ६- द्र० रायचौधरी—पौलिटिकल हिस्टरी, पृ० २६९
७- ११- महावंश, पृ० २२

आध्यात्मिक उत्थान केलिए उत्तराखण्ड के पावन गङ्गाजल की जितनी मांग थी, उतनीही मांग शारीरिक स्वस्थता केलिए उत्तराखण्ड की जड़ी - बूटियों की थी। महावँश के अनुसार हिमालय के देवता प्रतिदिन नागलता की सहस्रों दातुन, आंवला, हरीतिकी आदि ओषधियां, तथा सुन्दर वर्ण (रङ्ग), रस और गन्धवाले आम्रों को लेकर अशोक के पास पहुँचतेथे [१]। निश्चय ही हिमालय के ये देवता भांग और ऊन की गातियां लपेटे पाटलिपुत्र पहुँचेहोंगे !

महावँश के पूर्वोक्त उद्धरणों से विदित होताहै कि उत्तराखण्ड के कतिपय निवासी शीतकाल में, उत्तरभारत में, दूर - दूर तक पहुँचकर, गङ्गाजल और ओषधियों का विक्रय करतेथे।

अशोक ने देश के विभिन्न भागों में, तथा पड़ोसी देशों में भी मनुष्यों और पशुओं केलिए चिकित्सालयों की स्थापना कीथी [२]। इन चिकित्सालयों में मुख्यतः हिमालय की जड़ी - बूटियों का प्रयोग होताथा। दुर्गम पर्वतीय ढालों से जड़ी - बूटियों को एकत्रित करके किरातादि वनेचर जातियां उन्हें स्थानीय बाजारों में बेचतीथीं, जहांसे वे देश के समस्त भागों में पहुँचाईजातीथीं।

कालकूट— अशोक ने अपने साम्राज्य के सुदूरस्थ प्रान्तों के मुख्यालयों में अपने चौदह वृहत् शिलालेखोंवाली शिलाओं की स्थापना कीथी [३]। इन शिलाओं मेंसे एक को कुलिन्द जनपद के मुख्यालय, टोंस और यमुना के सँगम पर स्थित, कालकूट में भी लगायागयाथा। पाणिनि के समय भी कुलिन्द जनपद का मुख्यालय कालकूट में था [४]।

कालकूट का निकटवर्ती प्रदेश उनदिनों घना बसाथा। उसके निकट - पड़ोस में शिक्षा का सन्तोषजनक प्रचार था। कालसी से दक्षिण में यमुना के पश्चिमी तट पर स्रुघ्ननगर में अशोक ने एक स्तूप की स्थापना कीथी [५], जिसे सातवीं शती में युवान्‌चाङ् ने भी देखाथा [६]।

भाबरप्रदेश में घनी बस्तियां थीं। गङ्गाद्वार - अहोगङ्ग से पश्चिम की ओर कालकूट - स्रुघ्न को तथा पूर्व की ओर गोविषाण - अहिच्छत्रा को व्यापारिक मार्ग पर्वत की तलहटी में चलतेथे। अशोक ने गोविषाण और अहिच्छत्रा, दोनों में स्तूप बनाएथे [६]। सातवीं शती में इन्हें भी युवान्‌चाङ् ने देखाथा [८]।

१- महावंश, पृ० २१ २- कालसी - अभिलेख, २

३- 'The fourteen Rock-Edicts were engraved in the capitals of the outlying provinces of Ashoka's empire' — भांडारकर – अशोक, पृ० ३६-३७; उ० मुकरजी – अशोक, पृ० १४ टि०

४- अष्टाध्यायी, ४।१।१७२

५- ६- मुकरजी – अशोक पृ० ८२ टि०

तिथि - क्रम[1]

सिकन्दर, मेसोदोनिया-नरेश	– वि० पू० २७९ - २६६	(336 - 323 B. C.)
भारत पर आक्रमण	– वि० पू० २७० - २६९	(327 - 326 B. C.)
व्यास - तट से प्रत्यावर्तन	– वि० पू० २६९	(जुलाई 326 B. C.)
भारत से वहिर्गमन	– वि० पू० २६८	(325 B. C.)
मृत्यु	– वि० पू० २६६	(323 B. C.)
मौर्य - साम्राज्य	– वि० पू० २६४ - १२७	(321 - 184 B. C.)
चन्द्रगुप्त का शासनकाल	– वि० पू० २६४ - २४०	(321 - 297 B. C.)
बिन्दुसार का शासनकाल	– वि० पू० २४० - २१७	(297 - 274 B. C.)
अशोक का राज्यारोहण [2]	– वि० पू० २१७	(274 B. C.)
राज्याभिषेक	– वि० पू० २१३	(270 B. C.)
चौदह वृहत् अभिलेखों वाली शिलाओं की स्थापना, जिनमेंसे एक कालसीमें स्थापित कीगई	– वि० पू० २०१ - २००	(258 - 257 B. C.)
बौद्धमत की तृतीय सँगीति	– वि० पू० १९६	(253 B. C.)
अशोक की मृत्यु	– वि० पू० १७५	(232 B. C.)
कुणाल, दशरथ, सम्प्रति, शालिशूक, देववर्मन्, शतधन्वन्, वृहद्रथ	– वि० पू० १७५ - १२७	(232 - 184 B. C.)
पुष्यमित्र शुङ्ग	– वि० पू० १२७ - ९१	(184 - 148 B. C.)

१- रैप्सन – कैम्ब्रिज हिस्टरी आब इण्डिया, जि० १, पृ० ६४१

२- मुकरजी – अशोक, पृ० २७

अहोगङ्ग के बौद्ध स्थविर

अहोगङ्गपर्वत— बुद्ध अपने जीवनकाल में उशीरध्वजपर्वत तक पहुँचेथे [1]। इस पर्वत की पहिचान, जिसे बौद्ध साहित्य में अधोगङ्ग भी कहागयाहै, कनखल के निकट की पहाड़ी से कीजातीहै [2]।

गँगाजी से रामगँगा तक फैली भाबर की सँकरी पट्टी की उत्तरी सीमा पर फैली शिवालिक की गिरिशाखा का प्राचीन नाम मयूरपर्वत या मोरगिरि था [3]। इसकी उस शाखा को, जो गँगाजी के पूर्वी तट से चण्डीघाट होकर लक्ष्मणझूला की ओर चलीगईहै, महाभारत में उशीरगिरि [4], तथा बौद्ध-पालीसाहित्य में उशीरध्वज, अहोगँग या अधोगँग कहागयाहै।

बुद्ध के जीवनकाल में ही उशीरध्वज, गङ्गाद्वार - कनखल के निकट का क्षेत्र बुद्ध के अनुयायियों केलिए पुनीतप्रदेश बनचुकाथा। उनके निर्वाण के पश्चात् यह प्रदेश बौद्ध - स्थविरों के चिन्तन - मनन का मुख्य केन्द्र बनगया।

गङ्गाद्वार के जिन आश्रमों में पहले सँहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों का पठन - पाठन होताथा, उन्हींमें, कालान्तर में, राज्यद्वारा सँरक्षित तथा जनताद्वारा बहुमान्य बौद्धग्रन्थों का पठन - पाठन चलपड़ा।

साणवासी सम्भूत

बौद्धमत की प्रथम सँगीति बुद्धनिर्वाण के तुरन्त पश्चात् अजातशत्रु के राज्यकाल में महाकश्यप की अध्यक्षता में हुईथी, जिसमें बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनन्द और शिष्या उपालि उपस्थित थे। इस सँगीति में बुद्ध के उपदेशों को सँग्रहीत कियागयाथा [5]।

आनन्द के शिष्य यश और साणवासी सम्भूत स्थविर हुए [6]। साणवासी सम्भूत मुख्यतः कनखल के पास अहोगँगपर्वत पर रहतेथे [7]। उनके जीवनकाल में सँघ में दो दल

१-२- भरतसिंह उपाध्याय — बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ८९

३- 'स्वर्णशृंगी शातशृंगी पुष्पको मेघपर्वतः।
विरजाक्षो बराहाद्रिर्मयूरोदारुधिस्तथा'॥ — मारकण्डेयपुराण, ५५।१३

४- वनपर्व, १३९।१ ५- महावंश, पृ० ३४ - ३५ ६- महावंश, पृ० १६ ७- महावंश, पृ० १७

उत्पन्न होगए। वैशाली और पाटलिपुत्र के भिक्षु सँघ के कठोर अनुशासन में शिथिलता लानेके पक्ष में थे। किन्तु कौशाम्बी, पाथेय और अवन्ति के भिक्षु बुद्धद्वारा प्रचारित विनय के नियमों का विधिपूर्वक पालनकरने और उनमें किसी प्रकार की शिथिलता न आनेदेने के पक्ष में थे [१]। इससे सँघ में घोर दलबन्दी उत्पन्न होगई। धर्म और विनय को हटाकर अधर्म और अविनय का प्रचार होनेलगा [२]।

वैशाली के भिक्षु उपोसथ के दिन कांसे की थाली में, पानी भर, भिक्षुसँघ के बीच में रखकर, आनेजानेवाले उपासकों से कार्षापण (रुपया - पैसा) सँघ केलिए मांगतेथे। वे भविष्य केलिए नमक - सँग्रहकरने, विकाल में भोजनकरने, एक गांव में छककर भोजन करलेने पर भी उसीदिन दूसरे गांव में भी जाकर भोजन करने, छककर भोजन करने के पश्चात् भी दही पीने, सुरा पीने आदि अविहित कार्यों को विहित बतलातेथे [३]।

सँघ पर आएहुए इस घोर सँकट को दूरकरने केलिए यश शीघ्र अहोगँगपर्वत पर साणवासी सम्भूत के पास पहुँचे। पावावाले साठ और अवन्तीवाले अट्ठासी भिक्षु, ये सभी महाक्षीणाश्रव स्थविर अहोगँग पर एकत्रित हुए [४]। दोनों क्षेत्रों के सभी आरण्यक, सभी पांसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक तथा सभी अर्हत् अहोगँगपर्वत पर पहुँचे [५]। जहां - तहां से आकर नब्बे सहस्त्र भिक्षुओं ने अहोगँग पर सम्भूत साणवासी से विचारविमर्श किया [६]।

तब, यश, साणवासी सम्भूत तथा रेवतस्थविर के प्रयत्नों से कालाशोक के राज्यकाल में बुद्ध के परिनिर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् बौद्धमत की द्वितीय सँगीति हुई [७], जिसका पहले उल्लेख होचुकाहै।

मोग्गलिपुत्त तिस्स

अशोक को बौद्धमत के प्रचार - हेतु प्रेरणा देनेवाले स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स थे। बुद्ध के पश्चात् विनय का गम्भीर अध्ययन करनेवाले उपालि, दासक, सोनक, सिग्गव तथा चण्डवज्जि के पश्चात् वे ही सर्वश्रेष्ठ विद्वान् मानेजातेथे [८]। कहतेहैं कि वे तिष्यब्रह्मा के अवतार थे। उन्होंने बौद्धमत पर आनेवाली विपत्ति दूर करने-हेतु मोग्गलिनामक ब्राह्मण के घर में अवतार लियाथा [९]। सोलहवर्ष की आयु में ही उन्होंने शिक्षा, कल्प, निघँटु, इतिहास-सहित तीनों वेदों का अध्ययन करलियाथा [१०]।

उनकी दीक्षा सिग्गव और चण्डवज्जि स्थविरों के द्वारा हुईथी [११]। अल्पकाल में ही उन्होंने बौद्धधर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन करलिया। उनका वचन बुद्धवचन के समान प्रामाणिक मानाजानेलगा [१२]।

१- महावंश पृ० १६ २- राहुल – बुद्धचर्या, पृ० ५२० ३- चुल्लवग्ग, उ० राहुल–पूर्वोक्त, पृ० ५२१ - २२ ४- महावंश, पृ० १७ ५- राहुल – पूर्वोक्त, पृ० ५२१ ६- महावंश, पृ० १७ ७- महावंश, पृ० १९ ८- गाइगर–महावंश, उ० मुकरजी–अशोक, पृ० ६३ ९- महावंश, पृ० २५ १०- राहुल – पूर्वोक्त, पृ० ५२६ ११- महावंश, पृ० २६ १२- महावंश, पृ० २६

अशोक के राज्यभिषेक के समय तिस्स की आयु साठ वर्ष की थी [१]। उन्होंने अशोक के पुत्र राजकुमार महेन्द्र का उपाध्याय बनाना स्वीकार करके उसे दीक्षा दीथी। बीस वर्ष पश्चात् जब उन्हें निर्वाण प्राप्तहुआ तो सँघ के महास्थविर का पद महेन्द्र को ही मिलाथा। महेन्द्र की दीक्षा के समय से लेकर निर्वाणप्राप्ति तक उनका अशोक के ऊपर विशेष प्रभाव था। उनकी प्रेरणा से अशोक ने जम्बूद्वीप के 'चौरासी सहस्र नगरों में चौरासी सहस्र चैत्यों से मण्डित चौरासी सहस्र विहार' बनवाएथे [२]।

जब उनकी प्रेरणा से अशोक ने कुमार महेन्द्र और कुमारी सँघमित्रा को सँघ को प्रदान करदिया तो तिस्स ने अशोक को 'शासन-दायाद' का पद प्रदान कियाथा [३]। युवान्च्वाङ् ने अशोक के धर्मगुरु का नाम उपागुप्त बतलायाहै। विद्वानों की धारणा है कि मोग्गलिपुत्त तिस्स का ही दूसरा नाम उपागुप्त था [४]।

अशोक के राज्यकाल में, जब राज्य की ओर से तथा जनसाधारण से सँघ को बहुत-सी सम्पत्ति मिलनेलगी और भिक्षु-भिक्षुणियों का जीवन चिन्ता से रहित एवं सुख-ऐश्वर्य से पूर्ण होगया, तो तैर्थिक तथा अन्य मतावलम्बी साधु भी, जिनका लाभ-सत्कार घटगयाथा, लाभ के लोभ से, स्वयँ ही काषायवस्त्र रङ्गकर, बौद्धभिक्षुओं के साथ रहनेलगे [५]। वे अपने सिद्धान्तों को बुद्ध के सिद्धान्त बतातेथे और मनमाने ढँग से रहतेथे [६]।

जब स्थिरगुणों से युक्त, दूरदर्शी मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविर, बौद्धमत पर आईहुई इस कठिन विपत्ति को, प्रयत्न करने पर भी, शान्त न करसके तो वे खिन्न होकर अहोगँगपर्वत पर चलेगए। और सात वर्ष तक वहीं ध्यानमग्न होकर एकान्तवास करतेरहे [७]।

बौद्धमत पर आई इस विपत्ति को दूर करनेहेतु अशोक ने मोग्गलिपुत्त तिस्स के पास अपने चार आमात्यों को एक सहस्र व्यक्तियों के साथ अहोगँग पर भेजा। उनके साथ चार स्थविर और एक सहस्र भिक्षु भी अहोगँगपर्वत पर तिस्स से निवेदनकरने गए। किन्तु तिस्स ने पाटलिपुत्र जाना अस्वीकार करदिया [८]।

तब अशोक ने अपने आठ आमात्यों के साथ एक सहस्र व्यक्तियों को भेजा। उनके साथ आठ स्थविर तथा एक सहस्र भिक्षु पुनः उनकी सेवा में पहुँचे [९]। अन्त में तिस्स ने अशोक की प्रार्थना स्वीकार करली। यद्यपि वे अतिवृद्ध होगएथे, फिर भी वे मनुष्यों या पशुओं द्वारा खींचेजानेवाले किसी यान पर चलने को प्रस्तुत न थे। अस्तु उन्हें गँगाजी पर नौका द्वारा पाटलिपुत्र पहुँचायागया [१०]।

अशोक स्वयँ अहोगँगवासी स्थविर के स्वागतहेतु आगे बढ़ा। जँघा-भर जल में प्रवेश करके उसने स्थविर को नौका से उतारने केलिए अपने गौरवशाली दहिने हाथ को

१- मुकरजी — अशोक, पृ० ६३ २- ३- राहुल—बुद्धचर्या, पृ० ५३२
४- वेडेल, उ० मुकरजी — अशोक, पृ० ६३
५- ७- महावंश, पृ० ३३
८-९- महावंश, पृ० ३४ १०- महावंश, पृ० ३५

आगे बढ़ाया। पूजनीय दयालु स्थविर अशोक के दहिने हाथ का सहारा लेकर नौका से उतरे [१]।

अब पाटलिपुत्र में, अशोक के राज्यकाल में, मोग्गलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में, बौद्धमत की तृतीय सँगीति आरम्भ हुई। उसमें एक सहस्र भिक्षुओं ने भाग लिया। और नौ मास तक बौद्धमत के मान्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचारविमर्श किया [२]।

अबतक बौद्धमत का प्रचार मुख्यतः पूर्वीभारत एवँ मध्यदेश तक सीमित था। भारत के दक्षिणी तथा पश्चिमी भागों में बौद्धमत के प्रचार केलिए सँगठित प्रयत्न नहीं हुआथा। भाबर - तराई की धुर दक्षिणी पट्टी को छोड़कर नेपाल, उत्तराखण्ड, त्रिगर्त, कश्मीर और गान्धार के पर्वतीय क्षेत्रों में बौद्धमत के प्रचार केलिए ठोसपग नहीं उठाएगएथे [३]।

इसलिए मोग्गलिपुत्त स्थविर ने तृतीय सँगीति के पश्चात् भारत के विभिन्न भागों में, तथा भारत के बाहर बुद्ध - शासन की स्थापना केलिए कार्तिकमास में निम्न स्थविरों को भेजा [४] :–

कश्मीर और गान्धारराष्ट्र में मध्यान्तिक (मज्झन्तिक) स्थविर को,
महिषकमँडल (इन्दौरराज्य का भाग) में महादेव स्थविर को,
बनवासी (उत्तरी कनारा जिला, बम्बई प्रान्त) में रक्षित स्थविर को,
अपरान्त (नर्मदा के मुहाने से बम्बई तक का प्रदेश) में योनक (यवन) धर्मरक्षित स्थविर को,
हिमवान् (हिमालय) प्रदेश में मध्यम (मज्झिम) स्थविर को,
सुवर्णभूमि (पेगू, बर्मा) में सोणक और उत्तर स्थविर को, तथा
ताम्रपर्णीद्वीप में चार स्थविरों के साथ महेन्द्र स्थविर को।

कास्सपगोत्त स्थविर

उत्तराखण्ड में बौद्धमत के प्रचारहेतु जिस स्थविर ने अन्य स्थविरों की टोली का नेतृत्व कियाथा उसके सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में कुछ मतभेद है।

समन्तपासादिका के अनुसार हिमवन्तप्रदेश में मज्झिम स्थविर के साथ कास्सपगोत्त, अलकदेव, दुन्दभिसार और महादेव स्थविर गएथे [५]।

दीपवँश के अनुसार इन स्थविरों का नेतृत्व कास्सपगोत्त कोतिपुत्त ने कियाथा। उसके सहायक मज्झिम, दुन्दुभिसार, सहदेव और मूलकदेव थे [६]।

महावँश के अनुसार कश्मीर और गान्धार में मज्झन्तिक स्थविर को, तथा कश्मीर को छोड़कर शेष हिमवन्त में चार स्थविरों के साथ मज्झिमस्थविर को भेजागयाथा [७]।

१- महावंश, पृ० ३५ २- महावंश, पृ० ३६ ३- महावंश, पृ० ६०
४- राहुल – बुद्धचर्या, पृ० ५३७ ५- ६- मुकरजी — अशोक, पृ० ३३
७- महावंश, पृ० ६०

सांची के स्तूप सँ० २ से प्राप्त शरीरनिधानों मेंसे एक पर कास्सपगोत्त को समस्त हिमवत का आचार्य कहागयाहै [२]। इससे दीपवँश के उल्लेख की पुष्टि होतीहै ।

दीपवँश के अनुसार उन्होंने सारे हिमवन्त को पांच राष्ट्रों में बांटकर धम्मचक्कपवत्तन सुतन्त का उपदेश दियाथा और अस्सी लाख व्यक्तियों को बौद्धमत में दीक्षित कियाथा [१]।

महावँश के अनुसार चार स्थविरों सहित मज्झिमऋषि ने हिमालयप्रदेश में जाकर धर्मचक्रप्रवर्तनसूत्र का उपदेश दिया [४], वहां अस्सी करोड़ व्यक्तियों को मार्गफल की प्राप्ति हुई। पांचों स्थविरों ने, पृथक् - पृथक् पांच देशों (हिमालय के पांच खण्डों) को श्रद्धालु बनाया। वहां प्रत्येक स्थविर के पास एक - एक लाख मनुष्यों ने भक्तिपूर्वक सम्बुद्ध के शासन में प्रव्रज्या ग्रहण की [५]।

प्राचीन परम्परा के अनुसार हिमालय के पांच खण्ड नेपाल, मानस (कुमाऊँ), केदार (गढ़वाल), जलन्धर (हिमाचल) तथा कश्मीर हैं [३]। कश्मीर में एक पृथक् स्थविर को भेजागयाथा। इसलिए महावँश द्वारा अभिप्रेत हिमालय का पांचवां खण्ड त्रिगर्त (कांगड़ा) होसकताहै।

निस्सन्देह अस्सी लाख या अस्सी करोड़ व्यक्तियों को मार्गफल की प्राप्ति सर्वथा अत्युक्ति है। केवल इतना मानसकतेहैं कि हिमालयप्रदेश की जनता ने बौद्धस्थविरों के उपदेश उत्सुकता से, पूरी श्रद्धा - भक्ति से सुनेथे।

हिमवन्त के कोल, किरात और खश - बर्वरों ने, जो प्रत्येक घाटी, पहाड़ी, वृक्ष, वन और निर्जनस्थानों में व्याप्त अगणित यक्ष, रक्ष, नाग आदि अतिमानव शक्तियों को अष्टवलियां देकर सन्तुष्ट करने केलिए सदा उत्सुक रहतेहैं, बौद्धमत का कितनी तत्परता से स्वागत कियाहोगा, यह कहना कठिन है। अधिक सम्भावना इस बात की है कि उन्होंने बुद्ध को भी अपने ग्रामदेवताओं की विशाल मण्डली में श्रद्धापूर्वक स्थान दियाहोगा; तथा किसी वृक्ष के नीचे उनकेलिए भी एक अनगढ़ शिला खड़ीकरके उसको पशुवलि आदि से पूजाकरनी आरम्भ करदीहोगी।

गँगाद्वार के निकट बसी उत्तराखण्ड की सुसँस्कृत जनता अवश्य अहोगँगपर्वत निवासी स्थविरों से अत्यधिक प्रभावित हुईथी। उसने तथागत के सिद्धान्तों को श्रद्धापूर्वक अपनायाथा। उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में जनता के बड़े अँश ने बौद्धमत स्वीकार कियाथा। मयूरगिरि (हरिद्वार) के निकटवर्ती प्रदेश में अनेक चैत्यों, स्तूपों और विहारों की स्थापना हुईथी।

अशोक ने स्रुघ्न और गोबिषाण में स्तूपों की स्थापना कीथी, जिन्हें सातवीं

१- मुकरजी — अशोक, पृ० ३३ २- कनिंघम — भिलसा तोपस्, पृ०-२८७

३- 'खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपाल - कूर्मांचलौ।
केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिरः कश्मीर - संज्ञोऽन्तिमः॥ — रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास, पृ० १

४- मज्झिमनिकाय, ३।४।११ ५- महावंश, पृ० ६२ - ६३

शती में युवान्चाङ् ने भी देखाथा [1]; लालढांग की खुदाई से विदित होताहै, अहोगङ्ग के अतिनिकट, उस स्थान पर भी स्तूप बनायागयाथा।

साणवासी, मोग्गलिपुत्त, मज्झिम तथा कस्सपगोत्त ऐतिहासिक व्यक्ति थे। उनके प्रयत्न से उत्तरभारत में बौद्धमत के प्रति अपार श्रद्धा उमड़आईथी। फलतः उस युग में, धनी-निर्धन, सारी जनता ने सांची, भारहुत, बुद्धगया आदि अनेक स्थानों पर बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने केलिए स्तूपादि का निर्माण कियाथा। क्षुद्र से क्षुद्र व्यक्ति से लेकर नरेशों तक में इस पुनीत कार्य से पुण्यलाभ करनेहेतु होड़ लगगईथी। उत्तराखण्ड के दक्षिणी भागों के निवासियों ने भी अपनी श्रद्धा और वित्त के अनुसार इसमें योगदान दियाथा।

मयूर (मोर) गिरि के बौद्ध— प्राचीनकाल में गढ़वाल में गङ्गाजी से रामगङ्गा तक फैली शिवालिक की निचली श्रेणी मयूरगिरि के नाम से प्रसिद्ध थी। मारकण्डेयपुराण में इसकी गणना उत्तरदिशा के पर्वतों में कीगईहै [2]। इसी श्रेणी के पदतल में गङ्गातट पर मयूरनगर बसाथा, इसका चीनी यात्री युवान्चाङ् ने मो - यू - लो या मयूर नाम से उल्लेख कियाहै [3]। इसी श्रेणी के पदतल में कोटद्वार के पास मोरध्वजस्तूप था [4]। पूर्व की ओर इस श्रेणी में एक घाटी आज भी मोरघाटी कहलातीहै। सुप्रसिद्ध अहोगँगपर्वत इसी श्रेणी की एक शाखा का नाम था।

अहोगँगवासी स्थविरों का, मयूरगिरि, गँगाजी से रामगँगा तक फैले गढ़वाल - भाबर के निवासियों पर गहरा प्रभाव पड़ाथा। इसकी गाथा सांची और भारहुत के अभिलेखों में आजतक सुरक्षित है।

सांची के स्तूपों से प्राप्त धातु - पात्रों में अहोगँग - निवासी स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स, हिमवन्त के आचार्य कस्सपगोत्त, मज्झिम स्थविर, हारीतिपुत्र तथा गोति (कौत्सी) पुत्र की धातु (अस्थिअवशेष) मिलीहैं [5]। उन धातुपात्रों के ढक्कनों पर अशोककालीन लिपि में इन स्थविरों के नाम अँकित हैं [6]। इससे विदित होताहै कि उत्तराखण्ड के स्थविरों को समकालीन बौद्धसमाज में चरम प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उनकी पुनीत धातुओं के ऊपर सारे उत्तरभारत की जनता ने श्रद्धापूर्वक सांची में तथा अन्यत्र स्तूप बनाएथे।

सांची के अभिलेखों से यह भी विदित होताहै कि मोरगिरि के पार्श्व में बसे कुछ ग्रामों के निवासियों ने सांची पहुँचकर स्तूपनिर्माण केलिए दान दियाथा [7]। सांची में

१- मुकरजी — अशोक, पृ० ८२ टि० २- मारकण्डेयपुराण, ५५।१३

३- वाटर्स — ऑन युआनचाङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, पृ० ३२८

४- मरखाम — लेख, जौ० ए० सो० बंगाल, जि० ६०, १८६१ ५- कनिंघम—भिलसा तोप्स, पृ० २८७

६- 'सपुरिस मोग्गलिपुतस'; 'सपुरिस कासपगोतस सवहेमवताचारियस'; 'सपुरिस मझिमस'; 'सपुरिस हारितीपुतस'; 'सपुरिस गोतीपुतस' — कनिंघम—पूर्वोक्त, पृ० २८७

७- 'चु (व?) मोरगिरिनो गामस दानं'; 'दानं मोरगहिकटियस' — भूलर—एपिग्राफिया इण्डिका, ज़ि० २, पृ० ३६६

मोरगिरि के निवासी अर्हदत्त, सिंहगिरि और भिक्षु देवरक्षित ने भी अपने दान को अंकित करवायाथा [१]।

भारहुत के दान - अभिलेखों से विदित होताहै कि मोरगिरि के निवासी घाटिल की माता ने [२], जितमित्र ने [३], स्तूपदास ने [४] तथा पुष्या ने [५] उस पुनीत स्थान में स्तूप के स्तम्भादि के निर्माण केलिए दान दियाथा। भारहुत और सांची के दान - अभिलेखों को एक - साथ पढ़नेसे उत्तराखण्ड के तत्कालीन इतिहास पर रोचक प्रभाव पड़ताहै।

भारहुत में नागरक्षित और उसकी माता चक्रमोचिका का दानलेख, मोरगिरि की नागिला (नागरक्षिता) भिक्षुणी का दानलेख, तथा धनभूति की भार्या नागरक्षिता का दानलेख और धनभूति के दो स्तम्भलेख मिलतेहैं। सांची में आर्य के अन्तेवासी नागिल (नागरक्षित) का दानलेख, तथा भदन्त नागिल के सम्बन्धियों का दानलेख मिलतेहैं।

इन लेखों को एक-साथ पढ़ने से विदित होताहै कि मोरगिरि - निवासी चक्रमोचिका का पुत्र नागरक्षित किसी स्थविर का, सम्भवत: कास्सपगोत्त कोत्तिपुत्र या मज्झिमस्थविर का शिष्य बनकर भिक्षु बनगयाथा। पीछे उसे भदन्त कहागयाहै। नागरक्षित की बहिन नागरक्षिता, जो राजा धनभूति की रानी थी, तथा उसकी माता चक्रमोचिका भी वृद्धावस्था में भिक्षुणियां बनगईथीं। धनभूति और उसके वँशजों की भी बौद्धमत पर गहरी निष्ठा थी।

सांची के अभिलेखों में मोग्गलिपुत्त के शिष्य गोतीपुत तथा वाछिपुत के शिष्य गोतीपुत का, गोतिपुत भण्डूक का, तथा गोतिपुत राजलिपिकार सुबाहित का उल्लेख है। भारहुत और मथुरा के अभिलेखों में गोतिपुत आगरज (अग्रराज्य)का, बाछिपुत धनभूति का तथा वात्सी (वाछि) पुत्र वाधपाल (वृद्धपाल) का उल्लेख है। ये सभी व्यक्ति समकालीन थे। बौद्धमत के प्रति इनकी गहरी श्रद्धा थी। सम्भवत: इनका पारिवारिक सम्बन्ध भी था।

विदित होताहै कि भदन्त नागरक्षित (नागिल), उसकी बहिन नागरक्षिता (नागिला) तथा उनकी माता चक्रमोचिका की प्रेरणा से धनभूति ने मथुरा और भारहुत में, तथा सम्भवत: सांची में भी, स्तूप - निर्माण में अपना योगदान दियाथा, जैसा कि आगे लिखाजाएगा।

आर्य-स्थविरवादियों का केन्द्र— कालाशोक के राज्यकाल में वि० पू० ३२६ (383 B. C.) में बौद्धमत की द्वितीय सँगीति के समय बौद्धसँघ में दो प्रमुख समुदाय उत्पन्न होगएथे। सँघ के स्थविरों (वृद्ध भिक्षुओं) का अनुगमन करनेवाला समुदाय (=निकाय)

१- 'मोरसिहिकट अरहदितस दानं'; 'महामोरगिम्हासिहगिरिनो दानं'; देवरखतस मोरजहकटियस भिछुनो दानं' — भूलर—एपिग्राफिया इण्डिका, जि० २, पृ० ११०, १०५, ३७१, ३८५

२-५- 'मोरगिरिमा घाटिल - माता दानं'; 'मोरगिरि जितमितस दानं'; मोरगिरिहभ थुपदासस दानं थभो'; 'मोरगिरिहम पुसाया दानं थभो'—कनिंघम—स्तूप आव भारहुत, पृ० १४१, १३६, १३८

आर्यस्थविर या स्थविरवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ [1]। सँघ के कठोर शासन को ढीलाकरने का इच्छुक दूसरा समुदाय महासांघिक कहलाया [2]। तबसे लेकर अगली तीन शतियों तक अहोगँगपर्वत पर आर्यस्थविरवादियों का महत्वपूर्ण केन्द्र बनारहा। अशोक के धर्मगुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स आर्यस्थविरवादियों के सँघस्थविर थे [3]।

हिमवन्त में बौद्धमत का प्रचारकरनेवाले स्थविरों का प्रेरणाकेन्द्र अहोगँग पर ही था। उस प्रदेश में भेजेगए पांच स्थविरों का निर्वाण होजाने पर हिमवन्त के पांचों खण्डों से उनकी अस्थियां पहले यहां पहुँचीहोंगी और तब यहां के स्थविरों के द्वारा स्रुघ्न एवँ सांची में पहुँचाईगईहोंगी। स्रुघ्न के बौद्ध राजवँश को तथा मोरगिरि के उपासक गृहस्थियों एवँ भिक्षु-भिक्षुणियों को सांची एवँ भारहुत में अपना दान अँकित करवानेकी प्रेरणा देनेका श्रेय भी अहोगँग के स्थविरों को मिलनाचाहिए।

मोग्गलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में हुई बौद्धमत की तृतीय सँगीति के समय आर्यस्थविरवाद से निकालेगए बौद्ध चिन्तक सर्वास्तिवादी कहलाए। उन्होने नालन्दा में अपनी पृथक् सँगीति कीथी [4]। बुद्धनिर्वाण के दो-ढाई शतियों के अन्तर्गत बौद्धसँघ १८ निकायों में बँटगया [5]।

अन्तिम मौर्यनरेश वृहद्रथ की हत्या करके जब पुष्पमित्र शुङ्ग ने मगध पर अधिकार करलिया तो उसने राजनैतिक उपयोगिता के विचार से वर्णाश्रममर्यादा वाले हिन्दूधर्म का पक्ष सम्भाला। परिस्थिति अनुकूल न होनेसे बौद्धमत के मुख्य केन्द्रों को मगध और कोशल से अन्यत्र जानापड़ा [6]। आर्यस्थविरवाद का मुख्य केन्द्र मगध से विदिशा के समीप चैत्यपर्वत (वर्तमान सांची) पर चलागया। और सर्वास्तिवाद का केन्द्र मथुरा के उरुमुण्डपर्वत (वर्तमान गोवर्धन) पर जाबसा [7]। किन्तु स्थविरवादियों का अहोगँगपर्वत वाला केन्द्र मगध और कोसल से दूर होनेके कारण चिरकाल तक बनारहा। अहोगँग के आर्यस्थविरवादियों का सँबँध चैत्यपर्वत (वर्तमान सांची) पर स्थापित आर्यस्थविरवाद के मुख्य केन्द्र से होनेके कारण उन्होंने सांची और भारहुत के स्तूपों के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दियाथा।

आर्यस्थविरवाद सबसे प्राचीन निकाय था। उसने बौद्धमत की प्राचीन परम्पराओं की दृढ़ता से रक्षा कीथी [8]। दूसरे निकायों ने, देश, काल और व्यक्ति आदि के अनुसार प्राचीन परम्पराओं में अनेक परिवर्तन करदिए [9]। उन्होंने अपने त्रिपिटक को भी, बहुमान्य सँस्कृतभाषा में अनूदित करदिया [10]।

राज्याश्रय— स्रुघ्न के बौद्ध राजवँश की अहोगँग के स्थविरों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। सांची तथा भारहुत के दानलेखों से अनुमान लगताहै कि स्रुघ्ननरेश धनभूति की भार्या नागरक्षिता, उसकी माता चक्रमोचिका तथा उसके भ्राता नागरक्षित ने बौद्धदीक्षा लेलीथी। कुछ दानलेखों से अनुमान लगताहै कि सम्भवतः इस राजपरिवार के कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी उनका अनुकरण कियाथा।

१- ५- राहुल — बुद्धचर्या, प्राक्कथन, पृ० ६

६- १०- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० ७

यवननरेश मेनान्द्र, जिसका पञ्जाब और कुरु - पांचाल के कुछ भाग, (पश्चिमी उत्तरप्रदेश) पर अधिकार था, बौद्धमत का पोषक था। मथुरा और उज्जैन के यवन - शक-शासक भी बौद्धमत के प्रति अधिक उदार थे। मथुरा के क्षत्रप मथुरा के सर्वास्तिवादियों तथा उज्जैन के क्षत्रप सांची के स्थविरवादियों के प्रति बड़ी श्रद्धा रखतेथे [१]।

उत्तराखण्ड के कुणिन्दनरेशों ने अपनी मुद्राओं पर बोधिवृक्ष तथा त्रिरत्न अँकित करके बौद्धमत के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कीथी।

कुषाणनरेश कनिष्क सर्वास्तिवाद के प्रति श्रद्धालु था। बौद्ध महाकवि अश्वघोष और आचार्य वसुमित्र को कनिष्क का आश्रय प्राप्त था। देवपुत्र कनिष्क की सहायता से वसुमित्र तथा अश्वघोष आदि आचार्यों ने सर्वास्तिवादी बौद्धभिक्षुओं की एक बड़ी सँगीति या सभा बुलाई। इस सभा में आपस के मतभेदों को दूरकरने केलिए उन्होने अपने त्रिपिटक पर ' विभाषा ' नाम की टीकाएँ लिखीं [२]।

महायान— बौद्धमत में दुखों से मुक्त या निर्वाण प्राप्तकरने के तीन यान या मार्ग मानेगएहैं [३]।

(१) अर्हत्यान या श्रावकयान – केवल अपने ही दुःख से विमुक्ति प्राप्तकरने - हेतु आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अनुसरण करके अर्हत् या जीवन्मुक्त होजाने का मार्ग,

(२) प्रत्येकबुद्धयान – कुछ अधिक परिश्रम से प्रत्येकबुद्धपद दिलानेवाला मार्ग, तथा

(३) बुद्धयान – अपनी मुक्ति की चिन्ता न करके असँख्य जीवों का मार्गप्रदर्शक बनने - हेतु दीर्घकाल तक घोर श्रम करके बुद्धत्व प्राप्त करने का मार्ग।

कुछ आचार्यों ने प्रथम दो यानों को तुच्छ या स्वार्थपूर्ण बतलाकर बुद्धयान को ही सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। यही बुद्धयान महायान कहलाया [४]। शेष दो यान हीनयान के अन्तर्गत गिनेगए। महायान के आचार्य नागार्जुन की कृतियों से विशेष प्रभावित हुएथे।

नन्दमूलकपर्वत के प्रत्येकबुद्ध— विक्रम की आरम्भिक शतियों में उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग, भाबरप्रदेश में हीनयान की विशेष मान्यता थी। जातकों से विदित होताहै कि प्रत्येकबुद्धों की प्रमुख तपोभूमि उत्तराखण्ड में गन्धमादन पर थी [५]। यहीं नन्दमूलकपर्वत, वर्तमान नन्दादेवीपर्वत के पादप्रदेश में, सम्भवतः गढ़वाल के बधाण (बौधायन) परगने में सैकड़ों प्रत्येकबुद्ध रहतेथे [६]। विधुरपण्डित ने इस पर्वत पर रहनेवाले पांच सौ प्रत्येकबुद्धों को भोजन - हेतु निमन्त्रण दियाथा [७]।

नन्दमूलक पर साधना करनेवाले प्रत्येकबुद्ध समय - समय पर मैदानीनगरों में आते - जातेरहतेथे [६]। कुछ तो वाराणसी तक पहुँचेथे [७]। पर्वतीयप्रदेश में आवश्यक वस्तुएँ

१- राहुल – बुद्धचर्या, प्राक्कथन, पृ० ७

२- राहुल – पूर्वोक्त, पृ० ८

३- ४- राहुल – पूर्वोक्त, पृ० ८

५- चतुपोसथिकजातक, जा० ४, पृ० ४१५

६- आदित्तजातक, जा० ४ पृ० १३०

७- दसब्राह्मणजातक, जा० ४, पृ० ५७५

८- भिक्खापरम्परजातक, जा० ५, पृ० ५७८
गङ्गमालजातक, जा० ४, पृ० १११

९- अट्ठसद्दजातक, जा० ४, पृ० ९२;

दुर्लभ होनेके कारण वे अपने साथ तीन चीवर, एक पात्र, एक छुरी, एक कुल्हाड़ी, एक सुई, एक कायबन्धन तथा एक पानी छानने का कपड़ा – ये आठ परिष्कर रखतेथे। वे अनोतप्तदह (मानसरोवर) तक पहुँचतेथे [१]।

वर्षाकाल में जब मूसलाधार वर्षा होती, कन्द - मूल खोदकर निर्वाहकरना कठिन होजाता, फलाफल और खानेयोग्य पत्ते भी न प्राप्त होते तो साधक बस्तियों में उतरआतेथे। फिर शरदऋतु में जब वर्षा कम होती और कन्द - मूल, फल सुलभ होजाते तो वे हिमालय में लौटजातेथे [२]।

उत्तराखण्ड में हीनयान की मान्यता चिरकाल तक बनीरही। सातवीं शती में युवान्‌चाङ् ने स्रुघ्न में अधिकांश बौद्धभिक्षुओं को हीनयान का अनुयायी पायाथा [३]। मतिपुर में भी उसे अधिकांश भिक्षु हीनयानी ही मिलेथे [४]। गोविषाण के सारे भिक्षुओं को भी उसने हीनयानी ही पायाथा [५]।

बोधिसत्व— महायानी बौद्ध, बुद्धयान के एकान्तभक्त थे। बुद्ध के अलौकिक चरित्र को वे बड़ा महत्व देतेथे। वे बुद्धयान पर भलीप्रकार आरूढ़ बुद्धत्व के अधिकारी प्राणी को बोधिसत्व कहतेथे।

महायान ने मानव को अपने सुख और उन्नति की अपेक्षा प्राणिमात्र के सुख और उन्नति केलिए उत्सर्ग होजाने की प्रेरणा दी। अनेक ऐसी गाथाएँ प्रचारित कीगईं जिनके अनुसार बुद्धत्व प्राप्तकरने से पूर्व बुद्ध ने अनेक जन्मों तक बोधिसत्व के रूप में प्राणिमात्र के उद्धार केलिए महान् त्याग किएथे [६]।

उन्होंने परानुग्रह की आकांक्षा से प्रेरित होकर विभिन्न जन्मों में अपने देश और घर का परित्याग करदियाथा, स्त्री - बच्चों का उत्सर्ग करदियाथा, अन्धे केलिए अपने नेत्र निकालकर देदिएथे, वुभुक्षित अतिथि की तृप्ति केलिए अपना मांस काटकर अर्पित करदियाथा, और क्षुधित बाघिनी के सन्मुख लेटकर उसकी क्षुधा शान्त करदीथी। अगणित बार बोधिसत्व के रूप में, पशु और मानवयोनि में जन्म लेकर, चरम त्याग के पश्चात् बुद्ध ने जनहित केलिए राज्य त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण कीथी [७]।

जातककथाओं के अनुसार बुद्ध ने कई बार बोधिसत्व के रूप में उत्तराखण्ड में जन्मग्रहण कियाथा। वे महाकपि के रूप में हिमालय में गङ्गातट पर रहतेथे [८]। उत्तराखण्ड में भी अन्यत्र के समान महायान द्वारा प्रचारित बोधिसत्वों की गाथाएँ बहुत लोकप्रिय रहीहोंगी। किन्तु स्रुघ्न, मयूर, अहोगँग, मतिपुर, गोविषाण के बौद्धकेन्द्रों में मुख्यतः हीनयान की ही प्रधानता रही, जैसा कि युवान्‌चाङ् के लेख से विदित होताहै।

महायान के सूत्र चाहे अधिक प्राचीन भी रहेहों, किन्तु विक्रम की चौथी शती में,

---

१- कुम्भकारजातक, जा० ४, पृ० ३८
२- कस्सपमन्दिमजातक, जा० ५, पृ० २०६
३- वाटर्स – ऑन युवान्‌चाङ्स ट्रैवल्स, पृ० ३१८
४- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३२२
५- वाटर्स – पूर्वोक्त, पृ० ३३१
६- ७- राहुल – बौद्ध संस्कृति, पृ० ३०
८- महाकपिजातक, जा ४, पृ० ३१

असँग के समय से महायान का व्यापक प्रसार आरम्भ हुआ [१]। अगली तीन शतियों में उसने भारत और उसके उत्तर के बौद्धजगत् को आत्मसात् करलिया [२]। इसी समय उसके गर्भ में तन्त्रयान (वज्रयान) अँकुरित होनेलगा [३]।

भक्तिमार्ग के प्रचार का बौद्ध मतावलम्बियों पर भी गहरा प्रभाव पड़ाथा। कनिष्क के समय से, अर्थात् बुद्ध से पांच शती पश्चात् पहले - पहल बुद्ध की प्रतिमा (मूर्ति) बनाईगई [४]। कनिष्क ने ही सर्वप्रथम अपनी मुद्राओं पर बुद्ध की प्रतिकृति अँकित कीथी [५]। महायान के प्रचार के साथ जहां बुद्ध-प्रतिमाओं की पूजा - अर्चा बड़े ठाटबाट से होनेलगी, वहां सैकड़ों बोधिसत्वों की प्रतिमाएं भी बननेलगीं। अवलोकितेश्वर, मंजुश्री, आकाशगर्भ आदि बोधिसत्वों की पूजा सबसे अधिक लोकप्रिय हुई।

उत्तराखण्ड के पठारी भागों में घण्डियाल या घण्टाकर्ण नामक ग्रामदेवता की आज भी घर - घर पूजा होतीहै। ऊँचे डांडों पर अनेक चबूतरों पर घण्डियाल देवता विराजताहै। उसकी पूजा जलकलस के रूप में होतीहै। वह पशुओं की रक्षा करताहै तथा सरनेवाले रोगों को दूरकरताहै। इसलिए उसकी पूजा के प्रति बड़ा आकर्षण रहताहै। एटकिनसन की कल्पना है कि घण्डियाल वीतराग अब्जपाणि नामक बोधिसत्व का रूपान्तर है [६]। ऐसी समानता कुछ अन्य ग्रामदेवताओं में भी मिलसकतीहै।

महायानियों ने तारा, प्रज्ञापारमिता आदि अनेक देवियों की भी कल्पना की। देश में अनेक स्थानों पर बोधिसत्वों और देवियों केलिए विशाल मन्दिर बननेलगे और उनमें नियमितरूप से पूजा - अर्चा होनेलगी [२]।

सूत्र, तन्त्र, मन्त्र— महायानियों ने हीनयान के सूत्रों से अधिक माहात्म्यवाले अपने सूत्र बनाए। सैकड़ों पृष्टों के सूत्रों का पाठ समयसाध्य होनेके कारण उन्होंने प्रत्येक सूत्र की दो - तीन पँक्तियों में छोटी - छोटी उसीप्रकार की धारणियां बनाईं, जैसे भागवत - पुराण का चतुःश्लोकी भागवत, गीता की सप्तश्लोकी गीता [८]। इन्हीं धारणियों को और अधिक सँक्षिप्त करके मन्त्रों की सृष्टि हुई [९]।

गुप्तसाम्राज्य के आरम्भिककाल से हर्षवर्द्धन के समय तक मँजुश्री - मूलकल्प, गुह्यसमाज और चक्रसँवर आदि अनेक तन्त्रों की सृष्टि होगई [१०]। मँजुश्री - मूलकल्प ने तन्त्रों केलिए मार्ग खोलदिया। गुह्यसमाज ने अपने भैरवीचक्र के मदिरा, मैथुन और मन्त्रोचारण से उसे और भी आकर्षक बनादिया। अहोगँग पर स्थित बौद्धसाधकों के केन्द्र ने समय के साथ बदलकर शाक्तपीठ और सिद्धपीठ का स्वरूप ग्रहण करलिया।

१- ३ राहुल — बौद्ध-सस्कृति, पृ॰ ३१ ४- राहुल — बुद्धचर्या, पृ० ६
५- पुरी—इंडिया अण्डर कुषाण्स, पृ०१८६ ६- एटकिनसन—हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ८१७
७- १०- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० ६

यवन-अधिकार

जलौक

वि०पू० १७५ (232 B.C.) में अशोक की मृत्यु के पश्चात् कश्मीर में अशोक के पुत्र और राष्ट्रीय जलौक ने स्वतन्त्रता घोषित करदी। पूर्व की ओर अपने पिता के साम्राज्य को जीतताहुआ वह कान्यकुब्ज तक पहुँचगया [1]। इससे अनुमान लगताहै कि अशोक के पश्चात् कश्मीर, पञ्चनद, मध्यदेश का पश्चिमी भाग कुरु - पांचाल पर जलौक का अधिकार होगया। उनदिनों कुलिन्द जनपद (कालकूट - भारद्वाज) ने जालोक की अधीनता स्वीकार करलीहोगी। या कम से कम अशोक के पुत्र से अपने अच्छे सम्बन्ध रखेहोंगे।

युथिदिम

अशोक की मृत्यु होतेही सिन्धु के पश्चिमी तट के प्रदेशों के राष्ट्रीय स्वतन्त्र होगएथे [2]। विक्रम से डेढ़ शती पूर्व युथिदिम नामक एक वाख्तरी - यवननरेश ने वलख, बुखारा, कन्धार, सीस्तान, तथा दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान पर अधिकार जमालिया। और धीरे - धीरे उत्तरपश्चिमी भारत के सीमान्त प्रदेशों को जीतलिया [3]।

राजतरङ्गिणी के अनुसार जलोक ने म्लेच्छों की सेना के एक आक्रमण को विफल कियाथा [4]। विद्वानों का अनुमान है कि यह आक्रमण बाख्तरी - यवन - सेना का रहाहोगा [5]। इस आक्रमण का सम्बन्ध बाख्तरी - यवननरेश युथिदिम के राज्यकाल, वि०पू० १६८-१३२ (225-189 B.C.) [6] से जोड़ाजासकताहै।

जलौक के वँशजों के सम्बन्ध में राजतरङ्गिणी से कोई अन्य सूचना नहीं मिलती। अनुमान लगताहै कि जलौक के राज्यकाल में, या उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके वँशजों के हाथ से कश्मीर को छोड़कर अन्य सारे जनपद निकलगए, जहां स्थानीय शासक स्वतन्त्र रूप से शासन करनेलगे [7]।

१- राजतरङ्गिणी, १।११५।१७

२- ३- एज आब इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १०५

४- राजतरङ्गिणी, १।११५।१७

५- एज आब इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ६०

६- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, भाग १, पृ० १७१

७- कनिंघम — क्वाइन्स आब एनशिएंट इंडिया पृ० ७६

अशोककालीन लिपि में पांचाल की मुद्राओं से इस अनुमान की पुष्टि होतीहै। अशोककालीन लिपि में काद की मुद्राएँ भी इसी युग की होसकतीहैं।

दिमित्र

युथिदिम का पुत्र दिमित्र बड़ा पराक्रमी और महत्वाकांक्षी था। वह सिकन्दर के समान भारतविजय का श्रेय प्राप्तकरना चाहताथा। उसकी राज्यावधि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है [१]। अनुमान कियाजाताहै कि उसका राज्यारम्भ अशोक की मृत्यु से तीस-चालीस वर्ष पश्चात् हुआथा।

अपने ज्येष्ठ पुत्र को बाख्तर और सौग्द की सुरक्षा का भार सौंपकर उसने अपने भ्राता अपोलोदात एवँ सेनापति मेनान्द्र के साथ भारतविजय केलिए प्रस्थान किया [२]। तक्षशिला और सिन्धु की पश्चिमी उपत्यका को जीतकर वह दक्षिणीसिन्ध में जापहुँचा, जहां उसने अपने नाम से दत्तामित्र नामक नगरी की स्थापना की [३]।

उसकी एक सेना मेनान्द्र के नेतृत्व में गान्धार से पूर्व की ओर बढ़ी और सागल (स्यालकोट) पर अधिकार करके व्यास और सतलुज की उपत्यका को जीततीहुई मथुरा जापहुँची। दूसरी सेना ने अपोलोदात के नेतृत्व में सिन्धुनदी के मुहाने पर स्थित पाताल-नगरी पर अधिकार करलिया। उसने सौराष्ट्र को जीतकर भरुकच्छ में अपनी राजधानी की स्थापना की [४]।

पश्चिमी भारत के बड़े भाग पर अधिकार करके तथा मथुरा और भरुकच्छ में अपनी शक्ति बढ़ालेने पर दोनों यवन सेनाओं ने मगध - विजय की योजना बनाई। भरुकच्छ से अपोलोदात की सेना ने वर्तमान चित्तौड़ के निकट स्थित माध्यमिकानगरी को घेरलिया और उसका विध्वँस करके पाटलिपुत्र की ओर प्रस्थान किया।

मथुरा से पूर्व की ओर बढ़कर मेनान्द्र की सेना ने पांचाल, साकेत और काशी को जीतकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण करदिया।

भारतीय स्रोतों से पुष्टि— यवननरेश दिमित्र और उसके सेनानायक मेनान्द्र तथा अपोलोदात द्वारा उत्तरभारत पर किएगए आक्रमणों पर भारतीय स्रोतों से महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ताहै।

हरिवँश के अनुसार उत्तरपश्चिमी भारत के बड़े भाग पर अधिकार करके जब काल के समान भयँकर यवन नरेश (कालयवन) अति शक्तिशाली बनगया तो अनेक

१- डी० सी० सरकार के अनुसार वि० पू० १४३-१०८ (200-165 B. C.); राहुल के अनुसार वि० पू० १३२ - ११० (189-167 B. C.) तथा रैप्सन के अनुसार वि० पू० १३३ - १०३ (190 - 160 B. C.)

२- ३- राहुल — मध्यएशिया का इतिहास, भाग १, पृ० १७५

४- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० १७६

उत्सेधजीवी म्लेच्छों के सरदार लूट-मार की अभिलाषा से उसके साथ मिलगए [१]। शक, तुषार, दरद, पारद, श्रृङ्गल, खश, पह्लव आदि पर्वताश्रयी आयुधजीवियों के अपार दल-बादल को लेकर उस भयंकर यवननरेश ने मध्यदेश की ओर प्रयाण किया [२]।

शलभों के समान वे अगणित उत्सेधजीवी लुटेरे दस्यु नानाप्रकार के आयुध धारणकरने के कारण बड़े भीषण प्रतीतहोतेथे। उनसे घिरेहुए भयंकर यवननरेश ने मथुरा पर आक्रमण करदिया [३]।

सहस्रों हाथी, लाखों घोड़े और करोड़ों गदहों और ऊँटों वाली अतिविशाल यवनसेना से धरती कांपउठी [४]। उसके प्रयाण से उठतीहुई धूलि ने सूर्य के मार्ग को आच्छादित करदिया। सैनिकों और घोड़े - ऊँटों के मल - मूत्र की नदियां बहनेलगीं [५]।

महाभारत तथा मारकण्डेय आदि पुराणों में वर्णित धुन्धदैत्य की कथा का सम्बन्ध भी विद्वान् सौराष्ट्र - राजस्थान पर अधिकार जमानेवाली अपोलोदात की यवनसेना से जोड़तेहैं [६]।

मरुप्रदेश के निकट टिकी यह यवनसेना चारों ओर अग्नि धधकाकर लूट - मार मचातीथी। उससे भिड़कर कुवलाश्व नामक नरेश की सेना और राजकुमार उसीप्रकार भस्म होगए जिसप्रकार प्राचीनकाल में कपिल के कोप से सगर के साठ सहस्र पुत्र भस्म होगएथे [७]।

मध्यमिका और साकेत पर यवनसेनाओं का आक्रमण महाभाष्य के लेखक पतञ्जलि के जीवनकाल में हुआथा। पतञ्जलि के लेख से विदित होताहै कि इन नगरों में स्थानीय नरेशों की सेनाओं ने यवनसेना का डटकर प्रतिरोध कियाथा। फलतः यवनसेना कई दिनों तक इन नगरों का घेरा डाले पड़ीरहीथी [८]।

१- ३- 'समृद्धो हि यदा राजा यवनानां महाबलः।
तत एव नृपा म्लेच्छाः संश्रित्यानुययुस्तदा ॥ १९ ॥
शकास्तुषारा दरदाः पारदाः श्रृङ्गलाः खसाः।
पह्लवाः शतशश्चान्ये म्लेच्छा हैमवतास्तथा ॥ २० ॥
स तैः परिवृतो राजा दस्युभिः शलभैरिव।
नानावेषायुधैर्भीमै र्मथुरामभ्यवर्तत ॥' २१ ॥ ——विष्णुपर्व, ५७।१९-२१

४- ५- 'गजवाजिखरोष्ट्राणामयुतैरर्बुदैरपि।
पृथिवीं कम्पयामास सैन्येन महता वृतः ॥ २२ ॥
रेणुना सूर्यमार्गं तु समवच्छाद्य पार्थिवः।
मूत्रेण शकृता चैव सैन्येन ससृजे नदीम् ॥ २३ ॥
अश्वोष्ट्रशकृतां राशेर्निस्सृतेति, जनाधिप !
ततोऽश्वशकृदित्येवं नाम नद्या बभूव ह' ॥ २४ ॥ —— विष्णुपर्व, ५७।२२-२४

६- अग्रवाल — मारकण्डेयपुराण, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ९२ ७- वनपर्व, २०४।११-३२

८- 'अरुणद् यवनो मध्यमिकाम्; अरुणद् यवनः साकेतम्।' — महाभाष्य, ३।२।१११

गार्गीसँहिता के अनुसार मथुरा, पांचाल और साकेत पर अधिकार करलेने के पश्चात् अतिभीषण यवनों ने कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) पर धावा बोलदिया। सारा उत्तर-भारत इसप्रकार आक्रान्ता यवनों के द्वारा रौंददिएजाने पर, तथा मगध की राजधानी पाटलिपुत्र पर उसका घेरा पड़जाने से सारी प्रजा अत्यन्त व्याकुल होगई [१]।

समकालीन दुर्वल मगधनरेश भागकर राजगृह की पहाड़ियों में जाछिपा [२]। नरेश द्वारा इसप्रकार राजधानी छोड़कर भागजाने पर आक्रान्ताओं ने अपना घेरा और भी प्रवल करदिया [३]।

युद्ध में यवनों को हराकर मारभगाना असम्भव था। सौभाग्य से इन्हीं दिनों आक्रान्ता यवन एक - दूसरे से भिड़पड़े। उनके आपस में ही भीषण युद्ध आरम्भ होगया। जिससे वे मध्यदेश अर्थात् पांचाल, काशी - कोसल, मगध में अधिक दिन तक न ठहरसके [४]।

यूनानी स्रोतों से विदित होताहै कि जब दिमित्र की सेना पाटलिपुत्र के विजयाभियान में सँलग्न थी, उसकी राजधानी पर, तथा उसके साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर दूसरे बाख्तरी - यवननरेश युक्रादित ने अधिकार करदिया। अपने साम्राज्य को आक्रान्ता के अधिकार से मुक्तकरने के प्रयत्न में वि० पू० १०८ या १०३ (165 या 160 B. C.) के आसपास एक युद्ध में दिमित्र की मृत्यु होगई।

मेनान्द्र

पाटलिपुत्र से लौटजाने पर भी दिमित्र का पञ्जाब, सिन्ध और सम्भवतः सौराष्ट्र पर अधिकार बनारहा। उसकी राजधानी सागल, साकल (वर्तमान स्यालकोट) थी। जिसका उसने अपने पिता के नाम पर युथिदेमिया नाम रखाथा [५]।

१- 'ततः साकेतमाक्रम्य पाञ्चालान् मथुरांस्तथा।
यवनाः दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम् ॥
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते।
आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः ॥'

— गार्गीसंहिता, उ० रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी, पृ० ३५४

२- भगवतशरण उपाध्याय — प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १८३

३- 'यवना ज्ञापयिष्यन्ति नश्येरन् च पार्थिवाः।'

— गार्गीसंहिता, उ० भ० श० उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १८२ - ८३

४- 'मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवनाः युद्धदुर्मदाः।
तेषां अन्योन्य सम्भाव्य (?) भविष्यन्ति न संशयः।
आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धं परमदारुणम् ॥'

— गार्गीसंहिता, उ० रायचौधरी — पूर्वोक्त, पृ० ३५४

५- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १०८

दिमित्र की मृत्यु होजाने पर भारत में उसके साम्राज्य के अधिकांश का स्वामी मेनान्द्र बनगया। मेनान्द्र के राज्यकाल पर बौद्धग्रन्थ मिलिन्द - पह्न (मिलिन्द - प्रश्न) से रोचक प्रकाश पड़ताहै। इस ग्रन्थ के अनुसार थेर नागसेन के प्रभाव में आकर मेनान्द्र बौद्धमत के प्रति श्रद्धालु बनगयाथा।

विद्वानों का अनुमान है कि मेनान्द्र की राजधानी साकल नगर में थी। इस नगर के वैभव का मिलिन्द - पह्न में विस्तृत वर्णन है। इस ग्रन्थ के अनुसार यवननरेश मिलिन्द थेर नागसेन के दर्शन - हेतु साकल में उसीप्रकार आयाथा, जिसप्रकार गङ्गाजी स्वतः ही समुद्र के पास चलीजातीहै [१]। यद्यपि इस उल्लेख से यह स्पष्ट नहीं है कि साकल में निश्चय ही मेनान्द्र की राजधानी थी [२], फिर भी विद्वानों का अनुमान है कि मेनान्द्र ने उस नगर से अपनी राजधानी न हटाईहोगी, जिसे उसके स्वामी दिमित्र ने अपने पिता युथिदिम के नाम पर बसायाथा।

राज्य-विस्तार— दिमित्र के साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर युक्रादित ने अधिकार करलियाथा। पर भारत में उसके साम्राज्य पर मेनान्द्र का अधिकार बनारहा। दक्षिण - पश्चिम में मेनान्द्र का राज्य भरुकच्छ या भड़ौंच तक फैलाथा। यहां पहिली शती ईसवी तक मेनान्द्र और अपोलोदात की मुद्राओं का प्रचलन चलाआताथा [३]।

पूर्व की ओर मेनान्द्र के राज्य का विस्तार हिमाचलप्रदेश, उत्तराखण्ड, रुहेलखण्ड, यमुना - गङ्गा - द्वाव पर मथुरा - आगरा तक फैलाथा। उसकी मुद्राएँ शिमलाजिले में सबाथू नामक स्थान पर तथा रामपुर, मथुरा और आगरा के पास भूतेश्वर नामक स्थान पर मिलीहैं [४]।

विद्वानों का अनुमान है कि मेनान्द्र के राज्य के अन्तर्गत अफगानिस्तान का मध्यवर्ती भाग, उत्तरपश्चिमी सीमान्तप्रदेश, पञ्जाब, सिन्ध, राजपूताना, कठियावाड़ तथा उत्तरप्रदेश का पश्चिमी भाग सम्मिलित थे [५]।

कुलिन्द क्षत्रपी— स्त्रावो के अनुसार मेनान्द्र ने भारत का सिकन्दर से भी अधिक भाग जीताथा। उसने अपने राज्य की सीमा हाइपनिया (व्यास) नदी पार करके इसमसनदी के तट तक पहुँचादीथी [६]।

इसमसनदी की पहिचान कुमाऊँ - रुहेलखण्ड - कन्नौजप्रदेश से होकर बहनेवाली कालीनदी से कीजातीहै। इस नदी का संस्कृत नाम इक्षुमती तथा प्राकृत नाम इच्छुमती है। इक्षुमती या इच्छुमती का ही यवन लेखकों ने इसमसनदी के नाम से उल्लेख कियाहै [७]।

१- २- हौरनर — मिलिन्द्स क्वैश्चन्स, जि० १, पृ० XXV

३- पेरिप्लस, उ० वन्द्योपाध्याय — प्राचीन मुद्रा. पृ० ६४; एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ११४

४- वन्द्योपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० ६४ - ६५ ५- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ११५; ट्वन्टिफाइव हण्ड्रेड इयर्स आव बुद्धिज्म, पृ० १६५ ६-७- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ११४

रायचौधरी की धारणा है कि इसमसनदी की पहिचान त्रिसामानदी से करनी चाहिए [१]। त्रिसामानदी का उल्लेख भागवतपुराण में उत्तराखण्ड की कौशिकी, मन्दाकिनी तथा यमुना के साथ मिलताहै [२]। त्रिसामा नामवाली कोई प्रमुख नदी अब उत्तराखण्ड में नहीं मिलती। सम्भवतः यह यमुना की पश्चिमी सहायक तमसा (टोंस) का प्राचीन नाम है।

तमसानदी उत्तराखण्ड की पश्चिमी सीमा पर तथा इक्षुमती धुर - पूर्वी सीमा पर स्थित है। यूनानी लेखकों के अनुसार दिमित्र और मेनान्द्र के राज्य में पाताल या सिन्धप्रदेश, अबीरिया या आभीरप्रदेश, सुराष्ट्रेन या कच्छ - सौराष्ट्र, तथा गान्धार [३] के अतिरिक्त, कस्पेराइ, या कश्मीर तथा कुलिन्द्राइन या कुलिन्दजनपद भी सम्मिलित थे [४]। इनका शासन यवन-क्षत्रपों के द्वारा होताथा।

मेनान्द्र की मुद्राओं के विस्तार से भी विदित होताहै कि उसके साम्राज्य में पश्चिमी और मध्यहिमालय का अधिकांश सम्मिलित था। कश्मीर, कुलूत, त्रिगर्त तथा कुलिन्द, वर्तमान हिमाचलप्रदेश - उत्तराखण्ड उसके साम्राज्य के अन्तर्गत थे।

राज्यावधि— बाख्तरी यवननरेशों मेंसे मेनान्द्र को भारतीय साहित्य में सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुईहै। बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्द-पह्न (मिलिन्द-प्रश्न) में उसके राज्यकाल की समृद्धि का विस्तृत वर्णन है। फिर भी मेनान्द्र (मिलिन्द) की राज्यावधि के सम्बन्ध में विद्वानों में तीव्र मतभेद है [५]। उसकी राज्यावधि को विभिन्न विद्वानों ने विक्रमपूर्व ११८ से लेकर विक्रमपूर्व ३३ (175 B. C. - 90 B. C.) के बीच किसी समय निर्धारित कियाहै [६] :—

बौन गुत्समिद	– वि० पू० ११८	(175 B. C.)
लामोत	– वि० पू० १०६ - ९३	(163 - 150 B. C.)
स्मिथ	– वि० पू० १०३ - ८३	(160 - 140 B. C.)
रैप्सन	– युक्रादित का समकालीन–वि०पू० १०३	(160 B. C. -)
नारायण	– वि० पू० ९८ - ७३	(155 - 130 B. C.)
डी० सी० सरकार	– वि० पू० ५८ - ३३	(115 - 90 B. C.)

यूनानी लेखकों के अनुसार मेनान्द्र की मृत्यु अपने साम्राज्य की रक्षा करतेहुए युद्ध - शिविर में हुईथी [७]। दिव्यावदान में सँग्रहीत बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार शुङ्ग-नरेश पुष्यमित्र ने पूर्व की ओर से यवनसाम्राज्य को जीततेहुए, उसकी राजधानी साकल

१- रायचौधरी – पौलिटिकल हिस्टरी, पृ० ३८० टि०
२- श्रीमद् भागवतपुराण, स्कन्ध ५, अ० १९, श्लोक १७
३- उ० मोतीचन्द्र – सार्थवाह, पृ० ९१
४- तालमी, उ० मोतीचन्द्र - पूर्वोक्त, पृ० ९२
५- भगवतशरण उपाध्याय -- प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १६९
६- हौरनर – मिलिन्द'स क्वैश्चन्स, पृ० XXV
७- भगवतशरण उपाध्याय -- पूर्वोक्त पृ० १८७

में पहुँचकर वहां भीषण हत्याकांड मचायाथा। इस घटना का सम्बन्ध पुष्यमित्र के द्वितीय अश्वमेध से जोड़ाजाताहै।

विद्वानों का अनुमान है कि पुष्यमित्र ने अपने राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में दूसरा अश्वमेधयज्ञ कियाथा। इस अवसर पर उसने अपने राज्य की पश्चिमी सीमा पर स्थित यवननरेश मेनान्द्र के राज्य का कुछ भाग छीन लियाथा, तथा उसकी राजधानी साकल पर अधिकार करलियाथा।

यदि वह यवननरेश, जिससे पुष्यमित्र ने साकल छीनाथा, मेनान्द्र था, तो मेनान्द्र की अन्तिम तिथि पुष्यमित्र की राज्यावधि के अन्तिम वर्षों के आसपास होनीचाहिए। पुष्यमित्र का राज्यकाल प्राय: वि० पू० १२७ - ९१ (184-148 B. C.) मानाजाताहै। यद्यपि कुछ विद्वान् वि० पू० १३० - ९४ (187-151 B. C) भी मानतेहैं।

इसलिए मेनान्द्र की अन्तिम तिथि वि० पू० ९२ (149 B. C.) के आसपास मानसकतेहैं। लामेत ने मेनान्द्र के राज्यकाल का विस्तार १३ वर्ष, स्मिथ ने २० वर्ष, नारायण ने २५ वर्ष तथा डी० सी० सरकार ने २५ वर्ष तक मानाहै।

अनुमान कियाजाताहै कि पुष्यमित्र को अपने राज्याभिषेक से पूर्व या तुरन्त पश्चात् दिमित्र तथा मेनान्द्र के मिलेजुले आक्रमण का सामना करनापड़ाथा। तथा उसके राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में उसका मेनान्द्र से युद्ध हुआथा [1]।

पुष्यमित्र के राज्यकाल की घटनाओं पर विचार करतेहुए अनुमान लगताहै कि दिमित्र और मेनान्द्र ने पश्चिमी भारत पर अपना स्थायी प्रभुत्व जमालेने के पश्चात् ही मध्यदेश पर आक्रमण कियाथा। और मगध से भागने पर भी मेनान्द्र ने पश्चिमी पांचाल तक के प्रदेश पर अपना अधिकार न छोड़ा था। अनुमान लगताहै कि मेनान्द्र का वर्तमान हिमाचलप्रदेश - उत्तराखण्ड पर लगभग दस - पन्द्रह वर्षों तक अधिकार रहाथा।

यवन-आक्रमण की तिथि— पाटलिपुत्र पर दिमित्र और मेनान्द्र के आक्रमण की तिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। गार्गीसँहिता के आधार पर कुछ विद्वान् उस आक्रमण की तिथि शालिशूक के राज्यकाल में[2] वि० पू० १४३ (200 B. C.) के आस-पास मानतेहैं [3]।

दिमित्र के पिता यूथिदिम ने वि० पू० १४० (197 B. C.) के पश्चात् किसी समय, जब उसका प्रतिद्वन्दी अन्तिओकस द्वितीय पश्चिम की ओर के युद्धों में फँसा था, दक्षिणी अफगानिस्तान, पूर्वी ईरान और सिन्धु की पश्चिमी उपत्यका की ओर अपना साम्राज्य बढाना आरम्भ कियाथा [4]। इसलिए उसके पुत्र दिमित्र द्वारा पँचनद, कुरु - पांचाल, कोसल - काशी को जीततेहुए मगध तक पहुँचने की तिथि वि० पू० १४० (197 B. C.) के बहुत पीछे होनीचाहिए।

१- २- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ११३

३- मजूमदार तथा पुसलकर—पूर्वोक्त, पृ० १०६ ४- मजूमदार तथा पुसलकर —पूर्वोक्त, पृ० १०५

कुछ विद्वानों की कल्पना है कि या तो पाटलिपुत्र पर एक से अधिक यवन-आक्रमण हुएथे, अथवा वह यवन - आक्रमण, जिसका पतञ्जलि ने उल्लेख कियाहै, वृहद्रथ के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में हुआथा। उस आक्रमण के समय मौर्यनरेश वृहद्रथ के कायर व्यवहार को देखकर पुष्यमित्र ने उसकी हत्याकरके मगध - साम्राज्य पर अधिकार करलियाथा [१]।

बाण - द्वारा हर्षचरित में उल्लिखित एक प्राचीन गाथा के अनुसार सेनापति पुष्यमित्र ने अपने स्वामी प्रज्ञादुर्वल (कायर) मौर्यनरेश वृहद्रथ की हत्या उस समय कीथी, जब पुष्यमित्र सेना - निरीक्षण के बहाने वृहद्रथ के सन्मुख सारे कटक को प्रदर्शित कररहाथा [२]।

बाण के पूर्वोक्त उल्लेख से विदित होताहै कि पुष्यमित्र ने, किसी शत्रु के, सम्भवतः यवनों के आक्रमण के समय शत्रु से भिड़ने में हिचकिचानेवाले वृहद्रथ की हत्या कीथी।

इससे अनुमान लगताहै कि पाटलिपुत्र पर दिमित्र - मेनान्द्र का आक्रमण वि० पू० १२७ (184 B. C.) के आस - पास हुआथा। और इससे पूर्व ये यवननरेश गान्धार, पँचनद, सौराष्ट्र, कुरु - पांचाल और कोसल - काशी पर अपनी सत्ता स्थापित करचुकेथे।

दिमित्र के साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर उसके शत्रु का अधिकार होजाने पर, अथवा गार्गीसँहिता के अनुसार यवनों के विभिन्न दलों में सँघर्ष उत्पन्न होजाने के कारण, दिमित्र - मेनान्द्र को मध्यदेश से भागनापड़ाथा। दिमित्र तो अपने साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर अपना अधिकार पुनः स्थापित करने-हेतु सिन्धु के पश्चिम की ओर चलागया, किन्तु मेनान्द्र ने पँचनद और कुरु - पांचाल पर अपना स्थायी अधिकार बनाएरखा।

मगध और विदिशा पर अपना अधिकार सुदृढ़ करलेने और अपने शत्रुओं से निपट लेने के पश्चात् पुष्यमित्र ने अपना पहला अश्वमेध किया। यह अश्वमेध उसके राज्याभिषेक के लगभग ८-१० वर्ष पश्चात् हुआहोगा। सम्भवतः इस अश्वमेध के समय उसके और पांचालनरेशों के सम्मिलित प्रयत्न से यमुना से पूर्व तक के प्रदेश को यवनशासन से मुक्ति मिलगईथी।

अबतक पांचाल के १२ से अधिक 'मित्र' नरेशों की मुद्राएँ प्राप्त होगईहैं। उनसे अनुमान लगताहै कि मध्यदेश पर यवन - सत्ता अधिक दिनों तक नहीं रही। अन्यथा उस प्रदेश में इतने अधिक नरेशों को अपनी मुद्राएँ प्रचारित करने का अवसर न मिलता।

१- 'This invasion might have taken place while Pushyamitra was yet a general of the Mauryas and it is not unlikely that his success against the Yavanas gave him a position and power, which enabled him to make a successful bid for the throne.'

— एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ९६

२- 'प्रज्ञादुर्वलं च वलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेष सैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं वृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनम्। ' — हर्षचरित, पृ० २५३

दूसरी ओर, मेनान्द्र की मुद्राएँ बड़ी सँख्या में शिमला, रामपुर और आगरा के पास तक मिलजाने के कारण इन प्रदेशों पर पर्याप्त समय तक उसके अधिकार की पुष्टि होतीहै। अनुमान लगताहै कि यमुना से पूर्व तक का प्रदेश यवन - अधिकार से मुक्त होजाने पर भी यमुना से पश्चिम के प्रदेश पर मेनान्द्र का अधिकार बनारहा। अपने राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में, जब पुष्यमित्र ने द्वितीय अश्वमेध किया, उस समय उसे मेनान्द्र की सेना से युद्ध करनापड़ा। उसने पूर्वीपञ्जाब से यवनसेना को खदेड़तेहुए साकल पर अधिकार करलिया। इसीसमय मेनान्द्र की मृत्यु हुई।

मेनान्द्र का अन्त— पुष्यमित्र और मेनान्द्र, दोनों की राज्यसीमा पांचाल में गङ्गाजी या कालीगङ्गा के पास मिलजाने या अतिनिकट आजाने से दोनों में शक्तिपरीक्षण होना अवश्यम्भावी था। इस राजनैतिक कारण के साथ एक अन्य कारण भी जोड़ाजाताहै। बौद्ध और जैन मतों को आश्रय देनेवाले मौर्यवँश की सत्ता समाप्त करके पुष्यमित्र ने वर्णाश्रम - मर्यादा पर आश्रित हिन्दुधर्म की व्यवस्थाओं और यज्ञादि का पुनः प्रचलन आरम्भ कियाथा। इससे उत्तरभारत के बौद्धस्थविरों को दुःख पहुँचाथा [1]।

जब स्थविर नागसेन के प्रयत्न से मेनान्द्र बौद्धमत में दीक्षित होगया तो उत्तर पश्चिमी भारत के इस सबसे अधिक शक्तिशाली बौद्धनरेश के भरोसे या उसके सँकेत पर बौद्धश्रमण शुङ्गसाम्राज्य को नष्टकरने की योजना बनानेलगे [2]। फलतः किसी न किसी बहाने से दोनों भिड़पड़े।

यूनानी लेखकों के अनुसार अपने साम्राज्य की रक्षा करतेहुए मेनान्द्र को वीरगति प्राप्तहुई [3]। फलतः यवनसेना के पैर उखड़गए। भागतीहुई यवनसेना का पीछा करतेहुए पुष्यमित्र ने साकल पर अधिकार करलिया, और बौद्धश्रमणों को कठोर दण्ड दिया।

मेनान्द्र की विधवा पत्नी अगथोसीलिया अपने अल्पवयस्क पुत्र स्त्रातो को लेकर पश्चिम की ओर भागगई [1] तथा तक्षशिला या अन्य किसी नगर से अपने पति के साम्राज्य के शेष भाग पर शासन करनेलगी।

पांचाल से साकल तक के विजित प्रदेश को पुष्यमित्र ने अपने राज्य में मिलालिया। किन्तु वह इससे आगे न बढ़ा। एक अनुभवी सेनापति के रूप में वह जानताथा कि साम्राज्य की सीमा उतनीही बढ़ानीचाहिए, जितनी सुरक्षित रखीजासके।

१- २- भगवतशरण उपाध्याय -- प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १८७

३- मिलिन्द - पह्न के अनुसार मेनान्द्र बुढ़ापे में प्रव्रजित होगयाथा और बौद्ध प्रव्राजी के रूप में उसकी मृत्यु हुईथी। प्लूतार्क के अनुसार मेनान्द्र की मृत्यु युद्धशिविर में हुईथी। विद्वान् प्लूतार्क के कथन को अधिक विश्वसनीय मानतेहैं।

द्र०, भगवतशरण उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १८६

मेनान्द्र की पराजय से वर्तमान उत्तराखण्ड शुङ्ग - अधिकार या प्रभावक्षेत्र में आगयाथा । किन्तु कुलिन्दजनपद के पश्चिमी भाग पर यवन - अधिकार अमोघभूति के राज्यकाल में समाप्त होसका ।

मेनान्द्र के उत्तराधिकारी— मेनान्द्र की मृत्यु के पश्चात् मेनान्द्र के वँशजों के हाथ से गान्धार और अफगानिस्तान निकलगए । पुष्यमित्र की मृत्यु के पश्चात् सम्भवत: उन्होंने पूर्वीपञ्जाब में अपने राज्य के कुछ भाग पर पुन: अधिकार करलिया ।

अगथोसीलिया और उसके पुत्र स्त्रातो (सोतर) प्रथम का राज्य पूर्वीपञ्जाब तक सीमित था [१] । स्त्रातो प्रथम की मुद्राओं से विदित होताहै कि वह बड़ी वृद्धावस्था तक, सम्भवत: आधीशती से भी अधिक अवधि तक शासन करतारहा [२] । बुढ़ापे में उसके राज्य का भार उसके पौत्र स्त्रातो फिलोपेतर ने सम्भाललियाथा, जिसका नाम उसकी मुद्राओं पर भी मिलताहै [३] ।

स्त्रातो प्रथम के दीर्घ जीवन में, पूर्वीपञ्जाब में, उसके वंश के राज्य की समाप्ति होगई तथा उत्तरभारत से यवन - शासन लुप्त होगया । उसीके राज्यकाल में उत्तरपश्चिम में शक - पह्लवों की राज्यसत्ता की स्थापना हुई [४] ।

मेनान्द्र का शासन— बौद्धग्रन्थों में, विशेषकर मिलिन्द - पह्न में मेनान्द्र के शासनप्रबन्ध की बड़ी प्रशँसा कीगईहै । यूनानी लेखकों ने भी उसकी प्रशँसा कीहै । प्लूतार्क ने लिखाहै कि मेनान्द्र अपनी न्यायप्रियता केलिए प्रसिद्ध था । उसकी प्रजा उसका बड़ा सम्मान करतीथी [५] ।

मेनान्द्र बड़ा विद्वान् था । दार्शनिक सिद्धान्तों पर तर्क करने में वह बड़ा कुशल था । उसने समकालीन विभिन्न मतों के शास्त्रों का भलीप्रकार मनन कियाथा [६] । जब, उसके दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर देकर उसे कोई सन्तुष्ट न करसका तो उसने बौद्ध विद्वान् थेर नागसेन के सन्मुख अपनी शँकाएँ रखीं । थेर के उत्तरों से प्रभावित होकर उसने बौद्धमत की दीक्षा लेली ।

उसने साकल में मिलिन्द - विहार का निर्माण करके नागसेन को अर्पित कियाथा । तथा भिक्षुसँघ को बहुत - से उपहार दिएथे ।

मिलिन्द-पह्न के अनुसार बुढ़ापे में अपने पुत्रको राज्य देकर वह प्रव्रजित होगयाथा । और बौद्ध प्रव्राजी के रूप में ही उसकी मृत्यु हुई । मृत्यु से पूर्व उसने अर्हत पद प्राप्त करलियाथा [७] । शिनकोट से प्राप्त मँजूषा के लेख से विदित होताहै कि मेनान्द्र की बौद्धमत के प्रति गहरी आस्था थी ।

१- ३- मजूमदार तथा पुसलकर — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ११७
४- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डिया, जि० १, पृ० ४६६
५- उ०, एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ११२ ६- ट्वंटिफाइव हंड्रेड इयर्स आव बुद्धिज्म, पृ० १६८
७- मिलिन्द - पह्न, पृ० ४२०; ट्वंटिफाइव हंड्रेड इयर्स आव बुद्धिज्म, पृ० १६८

प्लूतार्क के अनुसार मेनान्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी अस्थियों के ऊपर विभिन्न नगरों के निवासियों ने श्रद्धापूर्वक अनेक स्तूप बनाएथे [१]।

परवर्ती यवन-शासक—मेनान्द्र के उत्तराधिकारी उसके समान उदार न थे। वे अपने साम्राज्य पर अपने क्षत्रपों द्वारा शासन करतेथे। ये क्षत्रप प्रजा के हित का ध्यान न रखकर निरँकुशतापूर्वक शासन करतेथे।

उनकी धार्मिक भावनाएँ इस देशवासियों की भावनाओं से मेल न खातीथीं। वे परस्पर लड़ते-झगड़तेथे और देश में लूटमार मचातेथे। वे एक-दूसरे की हत्या करते, तथा स्त्री-बच्चों पर अत्याचार करनेमें तनिक भी न हिचकतेथे। कलियुग में जितने दुराचारों की कल्पना होसकतीहै, वे उन सबको करतेथे। यवननरेश परस्पर छीना-झपटी से सिंहासन प्राप्त करतेथे। उनका विधिवत् अभिषेक नहीं होताथा। राज्याभिषेक के समय प्रजापालन-सम्बन्धी जो प्रतिज्ञाएँ करनीपड़तीहैं, उन्हें जानने और उनका पालन करनेकी वे आवश्यकता नहीं समझतेथे [२]।

ये म्लेच्छनरेश किसी पर भी प्रसाद (कृपा) न करनेवाले और महान् क्रोधी थे। वे प्रजा की सुन्दर नारियों को छीनलेते, बालकों का वध करडालते तथा गोवध केलिए तत्पर रहतेथे। दूसरों की धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्रादि छीनने में उन्हें आनन्द आताथा [३]।

वे सदा पापाचार और छल-कपट में लीन रहतेथे। ये लोभी नरेश प्रजा का रक्त चूसते तथा अनेक अन्याय करतेथे। वे पारस्परिक सँघर्ष में फँसे रहतेथे, जिससे उनके उत्कर्ष और विनाश में देर न लगतीथी [४]।

समकालीन उत्तराखण्ड— सँ० १४४-२२२ वि० (87-165 A. D.) में विद्यमान् तालमी ने यवननरेशों के राज्य के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ दीहैं, उनके आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि यवनसाम्राज्य में पाताल या सिन्धप्रदेश, अबीरिया या आभीर-प्रदेश, सुराष्ट्रेन या कच्छ-सौराष्ट्र तथा गान्धार की क्षत्रपियां सम्मिलित थीं [५]। इनके साथ कश्पेरिया या काश्मीर तथा कुलिन्द्राइन या कुलिन्दजनपद की क्षत्रपियों का भी तालमी ने उल्लेख कियाहै [६]।

१- ट्वंटिफाइव हंड्रेड इयर्स आव बुद्धिज्म, पृ० १३८

२- 'भविष्यन्तीह यवना: धर्मत: कामतोर्थत: । नैव मूर्द्धाभिषिक्ता ते भविष्यन्ति नराधिपा: ॥
युगदोष-दुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते । स्त्रीणां बालवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् '॥
— परजिटर—डाटनेस्टीज आव कलि एज, पृ० ५६

३-४- 'अल्पप्रसादा वृहत्कोपास्सर्वकालमनृताधर्मरुचय: स्त्री-बाल-गो-वधकर्तार: परस्वादान-रुचयोऽल्पसारास्तमिस्रप्राया उदिस्तमितप्राया अल्पायुषो महेच्छा ह्यल्पधर्मा लुब्धाश्च भविष्यन्ति ।'
— विष्णुपुराण, अंश ४, अ० २४।७१

५- उ० मोतीचन्द्र — सार्थवाह, पृ० ९१

६- तालमी, उ० मोतीचन्द्र — पूर्वोक्त, पृ० ९२

उसके लेख के अनुसार उनदिनों सिन्धुनदी के स्रोतप्रदेश तथा कश्मीर - जम्मू की उपरली ढालों पर दरदजाति बसीथी। उससे पूर्व की ओर झेलम, राबी और चिनाव नदियों के उपरले स्रोतप्रदेश में कस्पेराइ अर्थात् कश्मीरी या खशजाति का प्रसार था। व्यास, सतलुज, यमुना और गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका में कुलिन्द्राइन या कुलिन्दजाति फैलीथी[१], गङ्गाजी के उपरले स्रोतप्रदेश में तङ्गणोइ या तङ्गणजाति रहतीथी, जो शारदा के स्रोतप्रदेश तक फैलीथी[२]।

यवनसाम्राज्य के दिनों में कुलिन्दजनपद का कितना भाग यवनों के अधिकार में आगयाथा, इसका निश्चय करना कठिन है। यमुना पारकरके पूर्व की ओर इक्षुमती तक बढ़ते समय यवनसेना स्रुघ्न और गोविषाण होकर गईहोगी। अस्तु कम से कम कुलिन्दजनपद के दक्षिणी भाग पर यवनों का अधिकार रहाहोगा। कुलिन्दजनपद के पश्चिमी भाग, शिमलाप्रदेश पर निश्चय ही यवननरेशों का अधिकार था। मेनान्द्र की मुद्राएँ शिमला के पास सबाथू में प्राप्त हुईहैं[३]।

कांगड़ाजिले की हमीरपुर तहसील के मेवातप्पा में तथा उसी जिले में ज्वालामुखी नामक स्थान पर अपोलोदोतस द्वितीय की मुद्राओं के साथ अमोघभूति कुणिन्दनरेश की रजतमुद्राएँ मिलीहैं। इससे विदित होताहै कि अमोघभूति ने इस प्रदेश को पहले से चलेआते यवनशासन से मुक्त कियाथा[४]।

अमोघभूति ने यवनमुद्राओं के समान अपनी मुद्राओं पर खरोष्टी लेख भी अँकित कराएथे। यवनों को पराजित करने पर उसने महरज (महाराज) का विरुद धारणकियाथा। सम्भवतः कुलिन्दजनपद के पश्चिमी भाग पर यवनशासन का अन्त अपोलोदोतस के राज्यकाल में हुआथा।

मेनान्द्र के राज्यकाल में साकल समृद्धिशाली नगर था। उसमें मध्यएशिया - बलख से लेकर भारत के विभिन्न भागों से उपलब्ध वस्तुएँ बिकतीथीं[५]। मेनान्द्र का भरुकच्छ के बन्दरगाह से उत्तरभारत को आनेवाले व्यापारिक मार्ग पर अधिकार था। पाटलिपुत्र से उत्तरापथ को जानेवाला व्यापारिक मार्ग भी उसके राज्य से होकर जाताथा।

उनदिनों साकल, स्रुघ्न, कालकूट, गोविषाण होकर अहिच्छत्रा तथा साकेत जानेवाली उत्तरापथ की उत्तरी शाखा का महत्व बढ़गयाथा। वह शाखा यवननरेश की राजधानी होकर जातीथी। इससे उत्तराखण्ड - हिमाचलप्रदेश के व्यापार में वृद्धि हुईहोगी। इस व्यापार ने, दक्षिण में, भाबरप्रदेश के नगरों की समृद्धि में योग दियाहोगा।

१-२- तालमी, ७।११।१३; उ० मोतीचन्द्र — सार्थवाह, पृ० ७९
३- वन्द्योपाध्याय — प्राचीन मुद्रा, पृ० ६४ - ६५
४- एलान — कैटेलोग आव क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, इन ब्रिटिश म्यूजियम, पृ० ciii
५- हौरनर — मिलिन्द'स क्वैश्चन्स, जि० १, पृ० २

उत्तराखण्ड में तमसा - यमुना की उपत्यका जौनसार - जौनपुर में आनेवाले 'जौन' शब्द का सम्बन्ध अल-बरूनी ने यवनजाति से जोड़ाहै [१]। राहुल का ध्यान भी इस कल्पना की ओर आकर्षित हुआथा [२]।

जौनसार - जौनपुर का सम्बन्ध यामुन (यमुना - उपत्यका) से जोड़सकतेहैं। पर यह भी सम्भव है कि यवन - अधिकार के दिनों में यवनों की कुछ टोलियां इस रम्य उपत्यका में बसगईहों। जौनसार - जौनपुर में बसी कुछ जातियों की नारियों की मुखाकृतियों से इसका आभास मिलताहै।

जौनसार - जौनपुर के निवासियों की कतिपय रीति - नीतियों और वेषभूषा से भी यही प्रकट होताहै [३]। जौनसारी नारियां जिस कोट को जातीय वेश के रूप में पहनतीहैं वह कूचा (मध्यएशिया) के प्राचीन तुखारियों में प्रचलित था [४]। यहां की नारियां परस्पर मिलने पर यूनानी नारियों के समान चुम्बन द्वारा स्वागत प्रदर्शित करतीहैं [५]। ऐसा अभिनन्दन उत्तराखण्ड के कुछ अन्य भागों की नारियां भी करतीहैं।

१- अल-बरूनी – इंडिया, पृ० ३०२

२- ५- राहुल – गढ़वाल, पृ० ६४-६५

शुङ्ग-साम्राज्य में

पुष्यमित्र

वृहद्रथ की हत्या— यवन - आक्रमण के कारण मौर्यसाम्राज्य की रही - सही शक्ति बिखरगईथी । गान्धार से बिना रोकटोक के पाटलिपुत्र तक यवन आक्रान्ता का पहुँचजाना तब ही सम्भव हुआहोगा, जब पँचनद और मध्यदेश, छोटे - छोटे जनपदों में बँटेरहेहों । इस आक्रमण से पूर्व निश्चय ही पँचनद और मध्यदेश मौर्यसाम्राज्य के हाथ से निकलचुकेथे । नहीं तो मौर्यनरेशों द्वारा पँचनद या मध्यदेश में यवनों को रोकने के प्रयत्न का कुछ न कुछ प्रमाण अवश्य मिलता ।

वृहद्रथ के राज्यकाल में यवन - आक्रमण के समय मौर्यसाम्राज्य के अन्तर्गत केवल मगध, विदिशा तथा विदर्भ बचेरहसकेथे ।

मालविकाग्निमित्र से विदित होताहै कि मौर्यराजधानी में दो दल थे । एक सेनापति पुष्यमित्र का, जिसने अपने पुत्र अग्निमित्र की विदिशा में राजुक के पद पर नियुक्ति करवादीथी । दूसरा मौर्य - आमात्य का, जिसने अपने सम्बन्धी यज्ञसेन की नियुक्ति विदर्भ के राजुक के पद पर करवाईथी ।

पुराणों से विदित होताहै कि वृहद्रथ मौर्य के सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग ने वृहद्रथ की हत्या करके सिंहासन पर अधिकार कियाथा [1] । बाण के अनुसार यह घटना उस समय हुई जब प्रज्ञादुर्बल (कायर) वृहद्रथ अपनी सेना का निरीक्षण कररहाथा [2] । मौर्यनरेश अपनी सेना का विश्वास खोचुकेथे । वे सेना की अपेक्षा भिक्षु - सँघ को अधिक महत्व देतेथे ।

वे स्वयँ तो बौद्ध - जैन श्रमणों के प्रति आदर प्रदर्शित करते ही थे, अपने अधीनस्थ अधिकारियों, राजाओं, सैनिकों और सेनाधिकारियों को भी इसके लिए प्रेरित

१- 'हत्वा वृहद्रथं मौर्यं तस्य सेनापतिः कलौ ।
पुष्यमित्रस्तु शुंगाह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति ॥' — श्रीमद्भागवत् द्वादश स्कन्ध १।१६-१७

२- 'प्रज्ञादुर्बलं च, बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेष सैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं वृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनम् ।' — हर्षचरित, पृ० ३५३

करतेथे [1]। अशोक द्वारा सदा केलिए युद्ध बन्द करदिएजाने की घोषणा से, शान्ति का, सामाजिक उन्नति का और धर्मप्रचार का एक ऐसा युग आरम्भ हुआथा, जिसमें राजनैतिक उत्कर्ष शिथिल पड़गयाथा तथा सेना का प्रयोग बहुत घटजानेसे मगध की सैनिकशक्ति का वेग से लोप होनेलगाथा [1]।

सम्भवतः इन कारणों से मौर्यनरेशों के प्रति सेना की अधिक श्रद्धा न रहगईथी। सेना का विश्वासभाजन होनेके कारण ही पुष्यमित्र को सारी सेना के सन्मुख मौर्यनरेश की हत्याकरने का साहस हुआहोगा।

विदर्भ-विजय— कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र से विदित होताहै कि वृहद्रथ की हत्या होतेही, मौर्य - आमात्य का सँकेत पाकर उसके सम्बन्धी विदर्भ के राजुक यज्ञसेन ने स्वतन्त्रता घोषित करदी। और मौर्य - आमात्य भी मौर्यसाम्राज्य के दक्षिणी भाग को हस्तगत करने विदर्भ की ओर चलपड़ा। पुष्यमित्र ने इस विद्रोह का अनुमान पहले ही लगालियाथा। उसके सँकेत से पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने, जो विदिशा का राजुक था, मौर्य - आमात्य को बन्दी बनादिया।

अग्निमित्र ने यज्ञसेन के चचेरे भ्राता माधवसेन को अपने पक्ष में करलिया। जब माधवसेन, अपनी बहिन मालविका को, अग्निमित्रसे उसका बिवाह करने - हेतु अपने साथ लारहाथा तो यज्ञसेन ने माधवसेन को बन्दी बनालिया। और अग्निमित्र को सूचना देदी कि यदि आप मेरे सम्बन्धी मौर्य - आमात्य को मुक्त करदेंगे तो मैं भी माधवसेन को मुक्त करदूँगा।

बराबरी के इस दावे से क्रुद्ध होकर, मौर्य - आमात्य को बिना मुक्त किए ही, अग्निमित्र ने सेना भेजकर विदर्भ पर अधिकार करलिया। तथा विदर्भ को यज्ञसेन और माधवसेन के मध्य विभाजित करके दोनों को अपना स्थानीक बनालिया।

नन्द और मौर्यसाम्राज्य के दिनों में पाटलिपुत्रके प्रभुत्वशाली व्यक्ति निरन्तर राजसत्ता उलटने केलिए षड़यन्त्र-करतेरहतेथे। शुङ्ग - साम्राज्य की स्थापना होजाने पर भी ऐसे षड़यन्त्रों की शृङ्खला न टूटी। फलतः मगध, विदिशा और विदर्भ में अपनी सत्ता सुदृढ़ करने में पुष्यमित्र को कुछ समय लगाहोगा। उसके पश्चात् उसने मध्यदेश में अपनी सत्ता सुदृढ़ करने तथा यवन - आक्रमण का भय दूर करने की ओर ध्यान दियाहोगा।

१- अशोक के पौत्र सम्प्रति ने प्रत्यन्त देशों के नरेशों को बुलाकर उन्हें जैनश्रमणों के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित करने का आदेश दियाथा। अपने योद्धाओं को साधुवेश में भेजकर उसने आन्ध्र, द्रविड़, महाराष्ट्र और कुड्डुक (कुर्ग) आदि प्रत्यन्त देशों को जैनश्रमणों के सुखपूर्वक विहार करनेयोग्य बनायाथा। —द्र०, वृहत्कल्पभाष्य, १, ३२७८-७९; निशीथचूर्णि १६, ५७५४-५८७, पृ० १३१; स्थविरावलिचरित, ११; ज० जैन — जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ५२३-२४

२- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ३०७

प्रथम अश्वमेध— देश की जो एकता, नन्द, चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अशोक ने स्थापित कीथी, वह परवर्ती मौर्यनरेशों की निष्कर्मण्यता से नष्ट होगईथी। देश के प्रमुख नगरों – तक्षशिला, साकल, भरुकच्छ, मध्यमिका, साकेत और पाटलिपुत्र तक का यवनों ने विध्वँस करडालाथा। आक्रान्ताओं का दस्युदल देश में लूटमार और अग्निकांड मचारहाथा। मौर्यनरेश उससे जनता को बचाने में असमर्थ थे।

पुष्यमित्र ने अश्वमेधयज्ञ का आयोजन किया। यज्ञअश्व और सेना को लेकर उसने बड़ी धूमधाम से अपने राज्य में विचरण किया। उसकी सेना को जनता के समक्ष अपनी शक्ति प्रदर्शित करने का अवसर मिला।

कलिंगयुद्ध, वि० पू० २०५ (262 B. C.) के पश्चात्, अब पहली बार, पचहत्तर-अस्सी वर्षों के बीतजाने पर सेना को यह सुअवसर मिलाथा। सेना के साथ अपने राज्य के प्रमुख भागों में विचरण करके पुष्यमित्र ने प्रजा की आर्थिक दशा तथा भावनाओं का वास्तविक परिचय प्राप्तकिया। उसके इस कार्य से राजुक, स्थानीक और दूसरे राज-कर्मचारी सतर्क होगए।

प्रजा को विश्वास होगया कि चार पीढ़ियों के पश्चात् अब फिर से भेरीघोष सुनने का अवसर आगयाहै। अब मगध की सेना प्रजा की रक्षा केलिए प्राणदेने को तत्पर रहेगी। अब वर्णाश्रम के नियमों के पालन पर कोई प्रतिबन्ध न होगा। लोग अपनी रुचि के अनुसार अपने देवी - देवताओं की पूजा - अर्चा करसकेंगे। कोई धर्ममहामात्र उनकी रुचि और विश्वास के विरुद्ध उन्हें विवश न करसकेगा।

इस नए युग के आगमन की घोषणा केलिए निश्चय ही अश्वमेधयज्ञ उस काल में सबसे उचित और प्रभावोत्पादक साधन था। महाभारत के एक प्रसङ्ग से, जिसका आगे उल्लेख कियाजाएगा, विदित होताहै कि ब्राह्मणों से घिराहुआ वह चक्रवर्ती नरेश अपनी सेना को लेकर म्लेच्छों का विनाश करने जिस प्रदेश में भी विचरण करताथा उसमें उसका स्वागत होताथा [1]।

मध्यदेश और मध्यमिका पर अधिकार— मध्यदेश, कुरु-पांचाल और कोसल-काशी पर, तथा दक्षिण - पश्चिम में मध्यमिका - सौराष्ट्र पर यवनों का अधिकार रहते पाटलिपुत्र की सुरक्षा असम्भव थी। इसलिए प्रथम अश्वमेध के अवसर पर पुष्यमित्र ने इन प्रदेशों से आक्रान्ता को मार-भगाने का प्रयत्न किया।

डा० भाण्डारकर की धारणा है कि पुष्यमित्र ने प्रथम अश्वमेध साकेत और मध्यमिका की विजय के पश्चात् कियाथा [2]। अपने साम्राज्य के पश्चिमी भाग से शत्रु युक्रातिद का अधिकार हटाने के प्रयत्न में जब दिमित्र की मृत्यु होगई तो मेनान्द्र केलिए भी अपने राज्य के पश्चिमी भाग की रक्षा केलिए विशेष प्रयत्नकरना आवश्यक होगया।

युक्रातिद, दिमित्र के साम्राज्य के केवल पश्चिमी भाग पर अधिकार करलेने से

१- वनपर्व, १९०।९३-९७

२- उ०, अग्निहोत्री—पतंजलिकालीन भारत, पृ० ६२ - ६३

सन्तुष्ट न था। वह दिमित्र के साम्राज्य के पूर्वी भाग को भी, जिस पर मेनान्द्र ने अपनी सत्ता स्थापित करलीथी, जीतलेने के लिए प्रयत्नशील था।

उसने वि० पू० १०८ या १०७ (165 या 164 B. C.) में भारत की ओर अभियान किया [१]। उसने कपिशा और गान्धार को जीतलिया। झेलम के पश्चिमी तट तक का सारा प्रदेश जीतकर उसने सम्भवतः सिन्धुनदी की सारी पश्चिमी उपत्यका पर अधिकार करलिया [२]। झेलम से पूर्व के प्रदेश को मेनान्द्र अपने हाथ से न जानेदेना चाहताथा।

मध्यदेश, कुरु - पांचाल के दुर्बल राज्यों को मेनान्द्र फिर भी जीतसकताथा। किन्तु एकबार पँचनद पर युक्रातिद का अधिकार होजाने पर भारत में अपना साम्राज्य स्थापितकरने की मेनान्द्र की अभिलाषा सदा केलिए समाप्त होजाती।

पुष्यमित्र ने इस अवसर से लाभ उठाकर कोसल - काशी, कुरु - पांचाल और सम्भवतः मध्यमिका से यवनसेना को मारभगादिया। उत्तराखण्ड से यवनसत्ता सम्भवतः इसी समय हटी।

वि० पू० १०३ (160 B. C.) में युक्रातिद को दिमित्र की भांति अपने साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर सँकट आने की सूचना पाकर भारत छोड़नापड़ा [३]। मेनान्द्र ने इस समय अपने पूर्वी शत्रु पुष्यमित्र से भिड़ना उचित न समझा। वह झेलम से पश्चिम की ओर के प्रदेश को अपने राज्य में मिलाने के प्रयत्न में जुटगया।

द्वितीय अश्वमेध-- पुष्यमित्र ने ३६ वर्षों तक राज्य किया। अपने राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में उसका मेनान्द्र के साथ युद्ध हुआथा। अनुमान कियाजाताहै कि इस युद्ध में मेनान्द्र मारागया। पूर्वी पञ्जाब और साकल पर पुष्यमित्र का अधिकार होगया। मेनान्द्र की विधवा रानी अपने अबोध पुत्र को लेकर साम्राज्य के पश्चिमी भाग में भागगई। साकल के बौद्धश्रमणों को, सम्भवतः अपना शत्रु और यवन - हितैषी समझकर, पुष्यमित्र ने कठोर दण्ड दिया [४]।

इस विजय के पश्चात् पुष्यमित्र ने दूसरा अश्वमेध किया। मालविकाग्निमित्र के अनुसार उसका पौत्र वसुमित्र अपने साथ एक सौ राजपुत्रों के अधीन सेना लेकर यज्ञ - अश्व की रक्षा करने - हेतु गयाथा।

सिन्धुनदी के दक्षिणीतट पर इस अश्व को यवनसेना ने पकड़लिया। किन्तु यवनों को घोर युद्ध में पराजित करके वसुमित्र ने अश्व को छुड़ालिया। अश्व के सकुशल लौटजाने पर पुष्यमित्र ने अश्वमेधयज्ञ की पूर्णाहुति दी [५]। इस यज्ञ के आचार्य महा -

---

१-३- राहुल — मध्यएशिया का इतिहास, खण्ड १, पृ० १७९

४- दिव्यावदान, उ०, भगवतशरण उपाध्याय -- प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १८७

५- द्र०, मालविकाग्निमित्र में पुष्यमित्र का पत्र :—

' स्वस्ति यज्ञशरणात् सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुषमन्तमग्निमित्रं परिस्वजे मनुदर्शयति ।

भाष्यकार पतञ्जलि थे [१]।

अनुमान कियाजाताहै कि पुष्यमित्र का द्वितीय अश्वमेध वि०पू० ९२ (149 B.C.) में हुआथा [२]। अगले वर्ष पुष्यमित्र की मृत्यु होगई।

साम्राज्य का विस्तार—शुङ्गसाम्राज्य की दक्षिणी सीमा नर्मदा तक पहुँचगईथी। विदर्भ पर भी उसका अधिकार था। मौर्यसाम्राज्य के विघटन से कलिङ्ग और आंध्र जनपद स्वतन्त्र होचुकेथे। उनकी बढ़तीहुई शक्ति को दबाना पुष्यमित्र केलिए सम्भव न था। पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में पञ्जाब में, उसका राज्य सतलुज तक पहुँचगयाथा। साकल पर भी उसने छापामाराथा। उत्तराखण्ड पर भी उसका अधिकार था।

जिस सिन्धुनदी के तट पर यवनसेना से घोर युद्धकरके वसुमित्र ने यज्ञअश्व को छुड़ायाथा, उसकी पहिचान चम्बल की सहायक काली - सिन्धु [३], यमुना की सहायक सिन्धु [४] तथा प्रसिद्ध सिन्धुनदी से कीगईहै [५]। अन्तिम पहिचान के पक्ष में यह प्रमाण दियाजाताहै कि अश्वमेध का अश्व अपने राज्य से बाहर छोड़ाजाताहै। तथा इसीलिए उसकी रक्षा - हेतु सेना भेजनीपड़तीहै। प्रथम दो सिन्धु पुष्यमित्र के राज्य के अन्तर्गत थीं। साकल पर अधिकार होजानेसे पुष्यमित्र के अश्व का महानदी सिन्धु के तट तक पहुँचजाना सर्वथा सम्भव था [६]।

दक्षिण - पूर्व में कलिङ्ग और आन्ध्र में उनदिनों शक्तिशाली राज्यों की स्थापना होजानेके कारण पुष्यमित्र, बिना भीषण युद्ध का सँकट उठाए, केवल पश्चिम की ओर ही अपना अश्व छोड़कर अपने यज्ञ को सफल करसकताथा।

बौद्ध श्रमणों पर अत्याचार— दिव्यावदान तथा तारानाथ के लेख से विदित होताहै कि पुष्यमित्र ने बौद्ध श्रमणों पर घोर अत्याचार किएथे। उसने पहले पाटलिपुत्र के दक्षिण में अशोक द्वारा निर्मित कुक्कुटाराम नामक विशाल विहार को, जिसमें एक सहस्र भिक्षु रहतेथे, नष्टकरना चाहा। किन्तु जब वह विहार के द्वार पर पहुँचा तो वलशाली सिंह का गम्भीर गर्जन सुनकर भय से भागगया [७]।

तब उसने पाटलिपुत्र से लेकर जलन्धर तक के सारे बौद्ध - विहार जलाडाले [८]।

विदितमस्तु। योऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य संवत्सरोपावर्तनीयो निर्रगलस्तुरङ्गो विसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः। तत् उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः।

ततः परान् पराजित्य वसुमित्रेण धन्विना।
प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः'॥ — मालविकाग्निमित्रम्, अंक ५

१- 'इह वसामः, इह पुष्यमित्रं याजयामः।' — महाभाष्य, ३।२।१२३
२- अग्निहोत्री—पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ६१ ३-४- कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, पृ०४६६
५- ६- भगवतशरण उपाध्याय — प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १८९
७- उ०, कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, पृ० ४६७
८- उ०, भगवतशरण उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १८७

इसके पश्चात् उसने साकल पहुँचकर बौद्धश्रमणों की हत्या करनीचाही। बहुत - से श्रमण भागगए। तब उसने घोषणा की–' जो मेरे पास किसी श्रमण का शिर लाएगा, उसे मैं प्रत्येक शिर केलिए एक सौ दीनार दूँगा '।

दिव्यावदान और तारानाथ के इस उल्लेख के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत व्यक्त किएहैं। कुछ विद्वान् इस उल्लेख को अत्युक्तिपूर्ण मानकर कहतेहैं – शुङ्गनरेश ब्राह्मण थे और वर्णाश्रम - मर्यादा के कट्टर समर्थक थे, इसमें सन्देह नहीं। पर वे बौद्धमत के घोर विरोधी थे, इसे सिद्धकरने केलिए कोई स्वतन्त्र प्रमाण उपलब्ध नहीं है। उनके राज्य में भारहुत में महान् बौद्धस्तूप का निर्माण हुआथा, यह उनकी धार्मिक उदारता का प्रवल प्रमाण है [२]।

दूसरे विद्वानों की धारणा है कि यद्यपि शुङ्गनरेशों की धार्मिकनीति उदारता-पूर्ण थी, पर विशेष परिस्थितिवश पुष्यमित्र को बौद्धश्रमणों के प्रति कठोर व्यवहार करनापड़ाथा।

ऐसा प्रतीत होताहै कि पञ्जाब में बौद्धों ने प्रकट - रूप में यवन आक्रान्ताओं का साथ दियाथा। इससे पुष्यमित्र को उनके साथ वही व्यवहार करनापड़ा जो सभी देशद्रोहियों के साथ होनाचाहिए [३]।

दिव्यावदान के पूर्वोक्त उल्लेख से विदित होताहै कि बौद्धश्रमण पुष्यमित्र के साकल पर अधिकार होतेही भागगए या छिपगएथे। इसलिए उसे एक-एक श्रमण-शिर केलिए सौ दीनार तक देने की घोषणा करनीपड़ीथी। ऐसी घोषणा तब ही कीगईहोगी, जब श्रमणों का हाथआना अतिकठिन होगयाहोगा। अस्तु यह मानाजासकताहै कि साकल में केवल थोड़े - से ही श्रमणों की हत्या हुईथी।

महाभाष्य से पता लगताहै कि पुष्यमित्र के राज्यकाल में बौद्धों और वर्णाश्रम पर विश्वास रखनेवाले ब्राह्मणों के सम्बन्ध सन्तोषजनक न थे। पतञ्जलि ने श्रमण और ब्राह्मणो के विरोध को चिरस्थायी बतलायाहै [४]। इससे स्पष्ट है कि पतञ्जलि से पूर्व शताब्दियों से श्रमण और ब्राह्मणों में घोर विरोध चलाआताथा। इस विरोध से

१- 'पुष्यमित्रो यावत् संघारामं भिक्षुंश्च प्रघातयन् प्रस्थितः। स यावच्छाकलमनुप्राप्तः तेनाभिहितम्। यो मे श्रमणशिरो दास्यति तस्याहं दीनारशतं दास्यामि '।

– दिव्यावदान, पृ० ४३३ - ४४, उ० भगवतशरण उपाध्याय – प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १८७

२- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ९७

३- ' In Punjab Budhism seems to have openly allied itself with the Greek invader, and this must have given Pushyamitra sufficient cause for meeting out to them the treatment which all traitors deserve.'

– नीलकान्त शास्त्री – कम्प्रेहेन्सिव हिस्टरी आव इंडिया जि० २, पृ० ९९

४- ' तेषां च विरोधः शाश्वतिकः ' — महाभाष्य, २।४।९

सारा समाज इसीप्रकार परिचित था, जिसप्रकार काक - उलूक या अहि - नकुल - वैर से था [१]।

श्रमण अवैदिक थे। वे यज्ञ - यागादि क्रिया - कलाप को महत्व नहीं देतेथे। उनकी दृष्टि में या तो उनका क्षुद्र फल था, ये वे निरर्थक और निष्प्रयोजनीय थे। ब्राह्मण और श्रमणों में नैसर्गिक वैर था। ब्राह्मण मुण्डदर्शन को अशुभ मानतेथे [२]। बौद्ध और जैन, दोनों मतों ने समाज में ब्राह्मणों का, उनके ब्रह्मादि देवताओं का तथा उनके वेदादि मान्यग्रन्थों का सम्मान गिराने का प्रयत्न कियाथा।

इसलिए दिव्यावदान और तारानाथ का कथन अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी साधार होसकताहै, जैसा हम आगे देखेंगे।

पुष्यमित्र का व्यक्तित्व— पुष्यमित्र साहसी और वीरपुरुष था। सेना की उस पर असीम श्रद्धा थी। सारी सेना के सन्मुख उसने मौर्यनरेश की हत्या करदी। उत्तरभारत के अधिकांश भाग पर अपना साम्राज्य स्थापित करलेने पर भी उसने अपना पुराना विरुद 'सेनापति' ही रखा। मालविकाग्निमित्र में दिएगए उसके पत्र में, तथा उसकी छटी पीढ़ी में लिखेगए धनदेव के शिलालेख में भी, उसे सेनापति ही कहागयाहै।

उसके शासनकाल में सेनानी और उसके पुत्र को विशेष अधिकार प्राप्त थे, जैसा महाभाष्य से पता लगताहै [३]।

उसका उतरभारत पर छत्तीस वर्ष तक सुदृढ़ शासन रहा। उसके आतँक से, तथा समकालीन राजनैतिक परिस्थितियों से शुङ्गवँश के राज्यकाल में यवनों को उनके राज्य पर आक्रमण करने या लूटमार करने का साहस न हुआ।

कुशल सेनापति होनेके साथ ही वह चतुर राजनीतिज्ञ था। उसने विदर्भ में मौर्य आमात्य द्वारा नए राज्य की स्थापना की योजना को तुरन्त दबादिया।

वह स्वयँ विद्वान् था। विद्वानों का सत्कार करताथा। पतञ्जलि - जैसे विद्वान उसके आश्रय में रहतेथे। सेनापति का शासन होने पर भी उसका निरँकुश सैनिक - शासन न था। पतञ्जलि ने पुष्यमित्र की सभा का उल्लेख कियाहै [४]। मालविकाग्निमित्र से विदित होताहै कि विदिशा में राजुक अग्निमित्र की सहायता केलिए भी मन्त्रिपरिषद् थी। सभी महत्वपूर्ण समस्याओं पर उसे मन्त्रिपरिषद् से परामर्ष करनापड़ताथा [५]। इससे विदित होताहै कि पुष्यमित्र की सभा भी इसीप्रकार की मन्त्रिपरिषद् थी, जिससे पुष्यमित्र महत्वपूर्ण समस्याओं पर परामर्ष करताथा [६]।

१- २- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ५७३ ३- महाभाष्य, ६।३।१; १।२।४८

४- महाभाष्य, १।१।६८; द्र०, अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० ३८०

५- मालविकाग्निमित्रम्, अंक, ५। १४

६- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ३८९ - ९०

अग्निमित्र

वायुपुराण के अनुसार पुष्यमित्र के आठों पुत्रों ने एक-साथ राज्य कियाथा [1]। इससे विद्वानों का अनुमान है कि पुष्यमित्र ने अपने विशाल राज्य को अपने आठों पुत्रों में बांटदियाथा [2]। भागवतपुराण [3] और विष्णुपुराण [4] में इसका उल्लेख नहीं है।

किन्तु धनदेव के अयोध्या-शिलालेख के आधार पर यह कल्पना होसकतीहै कि उसने अपने साम्राज्य को आठ जनपदों में बांटकर उनका शासन अपने आठों पुत्रों को सौंपदियाथा। सम्भवतः केन्द्रीय शासन अग्निमित्र के हाथ में था।

पुराणों के अनुसार शुङ्गवँश में पुष्यमित्र, अग्निमित्र, सुज्येष्ठ, वसुमित्र, भद्रक, पुलिन्द, घोष, वज्रमित्र, भागवत और देवभूति, ये १० नरेश हुए, जिन्होंने सौ वर्ष से अधिक समय तक या एक सौ बारह वर्षों तक पृथ्वी पर शासन किया।

अपने पिता के राज्यकाल में अग्निमित्र विदिशा का राजुक रहचुकाथा। उसने मौर्य-सचिव के सम्बन्धी द्वारा स्थापित विदर्भराज्य को सरलता से कुचलकर अपने अधीन करलियाथा। मालविकाग्निमित्रम् में यद्यपि उसे विलासी दिखायागयाहै, फिर भी उसके राज्यकाल में शान्ति और सुव्यवस्था रही। तथा सम्भवतः पुष्यमित्र द्वारा स्थापित राज्य-सीमाओं में अन्तर न आयाथा।

ज्येष्ठमित्र

अग्निमित्र के पश्चात् उसका पुत्र सुज्येष्ठ या ज्येष्ठमित्र को सिंहासन प्राप्तहुआ। उसके राज्यकाल के सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है।

वसुमित्र

ज्येष्ठमित्र के पश्चात् उसका भ्राता वसुमित्र सिंहासन पर बैठा। पुष्यमित्र के द्वितीय अश्वमेध के अश्व की रक्षा उसीने कीथी। सम्भवतः पुष्यमित्र और अग्निमित्र के राज्यकाल में साम्राज्य की पश्चिमी सीमा की रक्षा का भार उसीको सौंपागयाथा [5]। बाण के अनुसार अग्निमित्र के पुत्र सुमित्र की हत्या नृत्य देखतेसमय कीगईथी [6]। वसुमित्र के उत्तराधिकारियों मेंसे धनदेव और भागभद्र के नाम उल्लेखनीय हैं।

धनदेव के शिलालेख से विदित होताहै कि वह दो अश्वमेधयज्ञ करनेवाले सेनापति पुष्यमित्र के वँश की छटी पीढ़ी में उत्पन्न हुआथा। वह कोसलाधिप अर्थात् शुङ्गसाम्राज्य के अन्तर्गत कोसल जनपद का राष्ट्रीक था। तथा उसने अपने पिता फलगुदेव की स्मृति में

१- 'पुष्यमित्रसुताश्चाष्टौ भविष्यन्ति समा नृपाः'

२- भगवतशरण उपाध्याय — प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १६६

३- श्रीमद् भागवत पुराण, स्कन्ध १२, १।१७-१९

४- विष्णुपुराण, चतुर्थ अंश, अ० २३।३४-३७

५- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ९७

६- हर्षचरितम्, उ० ६, पृ० ३५२

देवनिकेतन (मन्दिर) का निर्माण कियाथा। उसकी माता का नाम कौशिकी था [१]।

भागभद्र

वेसनगर (भिलसा) के एक गरुड़ध्वज के लेख से विदित होताहै कि उसकी स्थापना (तक्षशिला के, यवननरेश अन्तिलिकितस द्वारा त्रातार (सम्राट) कौशिकीपुत्र भागभद्र की सभा में भेजेगए राजदूत तक्षशिलानिवासी दिय के पुत्र भागवत हेलिओदोर द्वारा भागभद्र के राज्यकाल के चौदहवें वर्ष में कीगईथी [२]।

इस भागभद्र की पहिचान शुङ्गराजवँश के पांचवें नरेश भद्रक से कीजातीहै [३]। नौवें शुङ्गनरेश भागवत के राज्यकाल के बारहवें वर्ष में स्थापित एक अन्य गरुड़ध्वज भी वेसनगर में मिलाहै [४]।

इन अभिलेखों से विदित होताहै कि शुङ्गकाल में भागवतसम्प्रदाय का विशेष प्रचार था। यवन भी, जो पहले बौद्धमत से विशेष प्रभावित थे, भागवतसम्प्रदाय को अपनानेलगेथे। शुङ्गनरेशों के सम्बन्ध अपने पश्चिमी पड़ोसी यवननरेशों से मैत्रीपूर्ण थे। तथा तबतक शुङ्गसाम्राज्य का विघटन नहीं हुआथा।

देवभूति

विष्णुपुराण के अनुसार अन्तिम शुङ्गनरेश देवभूति था। उस व्यसनी की हत्या करके उसके मन्त्री वसुदेव ने उसके राज्य पर अधिकार करलियाथा [५]। बाण के अनुसार देवभूति के आमात्य वसुदेव ने उसकी दासीपुत्री को उसकी साम्राज्ञी के वेश में उसके पास भेजकर उस मदनमथित कामुक की हत्या करवाडालीथी [६]।

शुङ्गसाम्राज्य का महत्व— पुष्यमित्र और उसके वँशजों ने यवन-आक्रमणों को एक शती तक रोककर उत्तरभारत में शान्ति, सुव्यवस्था और समृद्धि की स्थापना कीथी। चन्द्रगुप्तमौर्य के समान उन्होंने साहसपूर्वक आक्रान्ताओं से भिड़कर उन्हें शान्तिप्रिय पड़ोसी बनेरहने केलिए विवश कियाथा। शुङ्गसाम्राज्य के पतन के पश्चात् शक-कुषाणों के आक्रमण आरम्भ होगए।

१- 'कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण धन (देवेन) धर्मराज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितं।'

— राजवली पाण्डेय — हिस्टौरिकल ऐंड लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स, पृ० ४४ - ४५

२- राजवली पाण्डेय — पूर्वोक्त, पृ० ४४

३- ४. एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ९८

५- 'देवभूतिं तु शुङ्गराजनं व्यसनिनं कण्वो वसुदेव नामा तं निहत्य स्वयमवनीं भोक्ष्यति।'

— विष्णुपुराण, अंक ४, अ० २४।३९

६- 'अतिस्त्रीसंगरतमनंगपरवशं शुंगममात्यो वसुदेवो देवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यञ्जनया वीतजीवितमकारयत्।' — हर्षचरित, उ० ६, पृ० १९९

एक शती की शान्ति, सुव्यवस्था और सुदृढ़ शासन के अन्तर्गत धर्म, साहित्य और कला में जो उन्नति हुई वह गुप्तकालीन उन्नति के समान थी [१]। महाभारत, पुराण, स्मृति, अर्थशास्त्र, विभिन्न दार्शनिक सूत्रग्रन्थ और अनेक कलाओं और विद्याओं से सम्बन्धित प्राचीन परम्पराओं का सम्पादन - सँकलन कियागया।

जैन और बौद्ध मतों के प्रचारकों ने सँस्कृत की अवहेलना करके अपने सिद्धान्तों का प्रचार मध्यदेश - मगध की समकालीन लोकभाषा में कियाथा। फिर भी सँस्कृत के पठन - पाठन की परम्परा निरन्तर चलतीरही। शुङ्ग - राज्यकाल में सँस्कृत के पठन - पाठन के प्रति जनरुचि इतने तीव्रवेग से जगी कि जैन और बौद्ध विद्वानों को भी सँस्कृतभाषा को अपनानापड़ा। आगे चलकर कुषाण - शासनकाल में बौद्धमत के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ सँस्कृत में लिखेगए।

विदिशा, गोनर्द और भारहुत इस युग में ललितकलाओं के प्रमुख केन्द्र थे। विदिशा के हस्तिदन्त के शिल्पियों ने सांची के जिस अद्भुत तोरण का निर्माण कियाहै, उसकी समानता करनेवाली सँसार में हाथीदांत या काष्ठ, शिला आदि से निर्मित कोई वस्तु नहीं है।

विदिशा और घोसुण्डी के अभिलेखों से विदित होताहै कि भागवत्सम्प्रदाय का प्रचार वेग से बढ़रहाथा। यद्यपि उसके प्रचार में अशोक - जैसे नरेशों का योगदान न था, केवल अनुयायियों की श्रद्धा - भक्ति ने उसका इतना व्यापक प्रचार करदियाथा। यहांतक कि यवन भी श्रद्धापूर्वक गरुड़ध्वज की स्थापना करनेलगेथे।

बौद्धमतावलम्बियों में भी इसीप्रकार अपार श्रद्धा - भक्ति की लहर उमड़ आई। भारहुत और सांची के देयधर्म - अभिलेखों से विदित होताहै कि भारत के कोने - कोने से आकर इन पुनीतस्थलों पर अपनी भेंट अर्पित करने केलिए जनता में मानों होड़ लगगईथी। उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग के निवासी भी वहां पहुँचेथे।

देवभूति की हत्या करके वसुदेव ने जिस काण्वायनवँश की नींव डाली, उसकी राज्यावधि केवल ४५ वर्ष मानीजातीहै। ऐसा विदित होताहै कि काण्वनरेशों का अधिकार मगध, पूर्वी मध्यदेश और मध्यभारत तक ही सीमित रहा। पांचाल, शौरसेन और कुरुप्रदेश में सम्भवतः कुछ काल तक शुङ्गनरेशों का अधिकार बनारहा [२]।

उत्तराखण्ड पर शुङ्ग - शासन की पुष्टि देहरादून में पाईगई एक मृण्मुद्रा से मानीजातीहै [३]। इस मुद्रा पर शुङ्गकालीन लिपि में 'भद्रमित्रस्य द्रोणी घाटे' लेख मिलाहै। अनुमान कियाजाताहै कि भद्रमित्र शुङ्गराज्यकाल में मैदानी और परवर्तीय प्रदेश के व्यापार पर चुङ्गी वसूल करनेवाला कर्मचारी था। शुंगों के अधीन स्रुघ्न के राजवंश का वर्णन आगे कियाजाएगा।

१- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्ट्री आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ३६७

२- रायचौधरी — पूर्वोक्त, पृ० ४०१

३- जयचन्द्र विद्यालंकार—प्राचीन पञ्जाब और उसका पास - पड़ोस, पृ० ६

महाभारत और पुराणों का साक्ष्य— महाभारत और पुराणों से, जिनके महत्वपूर्ण अँशों का सम्पादन शुङ्ग - शासनकाल में मानाजाताहै, पता चलताहै कि परवर्ती मौर्य और यवननरेशों के शासन में प्रजा सुखी न थी। कलियुग के राजवँशों का वर्णन करतेहुए इन ग्रन्थों में वृषल नरेशों और दस्यु - म्लेच्छ नरेशों के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन है [१-२]।

इन ग्रन्थों से यह भी विदित होताहै कि जब इन वृषल और दस्यु - म्लेच्छ राजवँशों का उत्पाटन करके पुष्यमित्र ने फिरसे वर्णाश्रम की मर्यादा की स्थापना कीथी तो प्रजा ने उसका धर्मविजयी चक्रवर्ती नरेश के रूप में स्वागत कियाथा [३]।

वृषलों के अत्याचार— पुष्यमित्र के राज्यकाल में लिखेगए महाभाष्य में मौर्यवँश केलिए बार - बार वृषल शब्द का प्रयोग कियागयाहै [४]। इसमें सन्देह नहीं कि शुङ्ग - युग में सम्पादित महाभारत में वर्णित वृषल राजवँश मौर्यराजवँश ही है। आगे चलकर विशाखदत्त ने भी इसी प्राचीन परम्परा के आधार पर चन्द्रगुप्त के लिए वृषल शब्द का प्रयोग कियाहै [५]।

महाभारत के अनुसार वृषल नरेशों की ब्राह्मणों पर विशेष कोपदृष्टि थी [६]। ब्राह्मण वर्णाश्रम की मर्यादा के पोषक होनेके कारण बौद्ध एवँ जैनमत के प्रचार में विशेष बाधक थे।

अशोकावदान से विदित होताहै कि एक बार कुछ ब्राह्मण साधुओं ने बुद्धमूर्ति (बुद्ध-पादुका) का अपमान कियाथा। इससे क्रुद्ध होकर अशोक ने ब्राह्मण - साधुओं का हत्या-काण्ड आरम्भ करदिया, और घोषणा कीथी — जो कोई किसी ब्राह्मण साधु का शिर लाकर देगा, उसे पुरष्कार दियाजाएगा [७]। अशोक ने एक ऐसे 'नरक' या कारागार की स्थापना कीथी जिसमें बन्दियों को भीषणतम यातनाएँ दीजातीथीं [८]। फा-शीन [९] और युवान्चाङ् [१०], दोनों ने अशोक द्वारा स्थापित इस नरक का उल्लेख कियाहै।

वृषल नरेशों को ब्राह्मणों का सर्वस्व हरण करने में तनिक भी सँकोच न होताथा। ये लोभी नरेश कर न चुकानेवाले ब्राह्मणों की हत्या करनेमें भी न चूकतेथे [११]। उनके अत्याचारों से उत्पीड़ित ब्राह्मण भयभीत होकर हाहाकार करतेहुए देश में इधर - उधर

१- द्र० महाभारत, वनपर्व, अ० १९०-९१ २- भागवतपुराण, १२।१; विष्णुपुराण, अंश ४।२४

३- 'स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति।' — वनपर्व, १९१।९५

४- अग्निहोत्री—पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ५७ ५- मुद्राराक्षस नाटक, अंक, १, श्लोक २७ अंक ३, श्लोक २७ ६- वनपर्व, अ० १९०

७-८- अशोकावदान, उ० मुकरजी — अशोक, पृ० ४ ९- फा-शीन, गाइल्स का अनुवाद, पृ० ५६-५८

१०- वाटर्स — ओन युवानचाङ्स ट्रैविल्स, पृ० ८८ - ८९

११- 'तथा लोभाभिभूताश्च भविष्यन्ति नरा, नृप !
ब्राह्मणांश्च हनिष्यन्ति ब्राह्मणस्वोपभोगिनः।' — वनपर्व, १९०।५८

भटकनेलगे । जब उन्हें कहीं भी कोई रक्षा करनेवाला नहीं मिला तो उन्होंने भागकर दुर्गम पर्वतों की नदी - घाटियों में घुसकर अपने प्राण बचाने का प्रयत्न कियाथा [१] ।

उनदिनों करभार से पीड़ित होकर उत्तम ब्राह्मणों को भी धैर्य त्यागकर शूद्रों का सेवक बननापड़ाथा [२] । वृषलों द्वारा ब्राह्मणों का विरोध किएजाने से लोग अपने धार्मिक कृत्यों को त्यागने केलिए विवश होगएथे [३] ।

मौर्यशासनकाल में वर्णाश्रम की मर्यादा पर विश्वास रखनेवाले ब्राह्मण आदि केलिए असह्य परिस्थितियां उत्पन्न होगईथीं । इसलिए मारकण्डेयपुराण में मौर्यों की गिनती असुरों में कीगईहै [४]। महाभारत में अशोक को एक असुर का अँशज बतालायागयाहै [५]।

दस्यु-म्लेच्छों के अत्याचार— इनदिनों सिन्धु, देविका और चन्द्रभागा नदियों की उपत्यकाओं में, अर्थात् वर्तमान सारे पश्चिमी पाकिस्तान, काश्मीरमण्डल, पञ्जाब. जम्मू और पश्चिमी हिमालय की ढालों पर धर्म - कर्मों से हीन शूद्र - व्रात्य - म्लेच्छनरेशों का राज्य था [६] ।

ये म्लेच्छनरेश पापाचारी और छल - कपट करनेवाले थे [७] । उन्हें प्रसन्न रखना अतिकठिन था । वे साधारण बात पर भी अत्यन्त कुपित होजातेथे [८] । वे नारियों, बच्चों, गायों और ब्राह्मणों की हत्या से भी न चूकतेथे । प्रजा की सम्पत्ति और नारियों का अपहरण करना उनका दैनिक कृत्य था [९] । आपस में लड़ते - झगड़ते रहनेसे उनके उत्थान और पतन में देर न लगतीथी [१०] । इन नरेशों के न तो विधिवत् राज्याभिषेकादि सँस्कार होतेथे और न वे राजा के कर्त्तव्यों की चिन्ता करतेथे । राजाओं के पद पर प्रतिष्ठित ये म्लेच्छ प्रजा के सर्वस्व का भक्षण करनेवाले थे [११] ।

१- हाहाकृता द्विजाश्चैव भयार्ता वृषलार्दिताः ।
त्रातारमलभन्तो वै भ्रमिष्यन्ति महीमिमाम् ॥
आश्रयिष्यन्ति च नदीपर्वतान् विषमाणि च ।
प्रधावमाना वित्रस्ता द्विजाः, कुरुकुलोद्भव ! ' —— वनपर्व, १९०।५९, ६१

२- वनपर्व, १९०।६२-६३ ३- वनपर्व, १९०।७१

४- ' कालका दौहृदा मौर्याः कालकेयस्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्य्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥' — देवीमाहात्म्य, ८।६

५- आदिपर्व, ३७।१४

६- ' सिन्धोतटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् ।
भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्राताद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ' — भागवतपुराण, १२।१।३९
तथा द्र० ——विष्णुपुराण, ४।२४।६९ ७- भागवतपुराण, १२।१।४०

८- विष्णुपुराण, अंश ४, अ० २४।७१

९- ११- ' स्त्री-वाल-गो-द्विजघ्नाश्च परदारधनाहृताः । उदितास्तमितप्राया अल्पसत्वाल्पकायुषः ।
असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा - तमसाऽऽवृताः । प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः । '
— भागवतपुराण, १२।१।४१-४२

नित्य आपस में लड़ने - झगड़ने में सँलग्न ये नरेश प्रजा केलिए कँटक (अति कष्टकारी) थे। अभिमान और अहङ्कार में प्रमत्त वे प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ थे। वे केवल लूट - खसोट में व्यस्त रहतेथे। उन्हें प्रजा को उत्पीड़ित करने में ही आनन्द आताथा [१]। वे भले घरों की सम्पत्ति और नारियों को छीनलेतेथे। उनके रोने - चीखने की चिन्ता न करके वे वलपूर्वक उनका शीलभँग करतेथे [२]।

वर्णाश्रम-मर्यादा का लोप— इन अनाचारी - नरेशों और उनके अनाचारी राज्याधिकारियों के कारण प्रजा ने भी अपने धर्म - कर्म भुलाकर उनका अनुकरण करना आरम्भ करदिया [३]। धरती म्लेच्छों से भरगई। ब्राह्मणादि वर्ण अपने सामाजिक नियमों को त्यागकर वर्णसंकर बनगए। तप और सत्य को त्यागकर वे शूद्र होगए। उन्हें व्यभिचार, चोरी और विधवाओं की सम्पत्ति हरने में सँकोच न रहा। उन्होंने पितरों के श्राद्ध और तर्पण त्यागदिए तथा म्लेच्छाचारी बनगए [४]।

मद्र-साकल में— सरस्वती - कुरुक्षेत्र के पश्चिम की ओर शतद्रु (सतलुज), विपाशा (व्यास), इरावती (रावी), चन्द्रभागा (चिनाव) और वितस्ता (झेलम) तथा सिन्धु की उपत्यका के निवासी, जो यवनशासन में रहतेथे, धर्मवाह्य और पतित होगएथे [५]। साकलनगर के कुछ निवासी तो अत्यधिक निन्दित चरित्रवाले थे [६]।

वे भुनेहुए जौ और लहसुन के साथ गोमांस खाते और गुड़ से बनीहुई मदिरा पीकर मतवाले बनेरहतेथे। वे शील और आचार से शून्य थे [७]। वहां यवन म्लेच्छ बड़ी सँख्या में बसगएथे। ये यवन म्लेच्छ बड़े चतुर तथा शूर थे और अपनी ही निराली रीति-नीतियों का पालन करतेथे [८]।

उनके प्रभाव से साकल और मद्रदेश के निवासियों ने भी अपना आचार त्याग दियाथा। वहां के ब्राह्मण वेदहीन होगए। वहां यज्ञ - याग की परम्परा लुप्त होगई [९]। वहां की नारियों को माला और अङ्गराग धारण करके (यवन नारियों के समान) मतवाली और नग्न होकर नगर और घरों की प्राकारों के पास नाचने - गाने में सँकोच न रहा [१०]।

बौद्धमत का प्रचार— सर्वत्र हेतुवाद की दुहाई दीजानेलगी। काष्ट, मृतिका,

---

१- परस्परवधो युक्ता मूर्खाः पण्डितमानिनः। भविष्यन्ति युगस्यान्ते क्षत्रियालोककण्टकाः।
अरक्षितारो लुब्धाश्च मानाहङ्कारदर्पिताः। केवल दण्डरुचयो भविष्यन्ति युगक्षये ॥'
— वनपर्व, १९१।३३ - ३४

२- ' आक्रम्याक्रम्य साधूनां दारांश्चापि धनानि च।
भोक्ष्यन्ते निरनुक्रोशारुदतामपि, भारत ! ' — वनपर्व, १९१।३५

३- विष्णुपुराण, ४।२४।७२   ४- वनपर्व, १९०।१७-६८   ५- कर्णपर्व, ४४।६७; ४४।३१-३२
६- कर्णपर्व, ४४।१०   ७- कर्णपर्व, ४४।११   ८- कर्णपर्व, ४४।३६   ९- कर्णपर्व, ४४।४६
१०- कर्णपर्व, ४४।१२

ईंट, धातु, घरों की दीवार आदि पर केवल —

ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतोऽवदत् ।
अवदच्च यो निरोधो एवँ वादी महाश्रमणः ।। '

इस श्लोक को सैकड़ों - सहस्रों बार लिखने में ही सारे धर्म - कर्मों की इति - श्री समझने लगे। इस हेतुवाद से विमोहित लोग वेद और ब्राह्मणों की निन्दा करनेलगे और उन्होंने व्रतादि का पालन और यज्ञादि करना त्यागदिया। इस हेतुवाद से अन्धे बने लोग निःशँक होकर नीचकार्य करनेलगे [1]।

राज्य द्वारा यज्ञादि पर प्रतिबन्ध लगजाने से लोग निष्क्रिय होगए। अशोक आदि के द्वारा समाजों पर प्रतिबन्ध लगादिएजाने से प्रजा का जीवन आनन्दरहित और उत्सवहीन होगया [2]।

सत्य का लोप होगया। जो स्थविर (बौद्ध, जैन महात्मा) कहलातेथे, वे वास्तव में बालकों की-सी बातें करतेथे। और दूसरों को बालमति (मूर्ख) बतलातेथे [3]।

शूद्र बौद्धादि मतों की दीक्षा लेकर धर्म का प्रवचन करनेलगे। ब्राह्मणादि उनके उपासक (गृहस्थी बौद्ध) बनगए [4]। देवताओं को त्यागकर वे एडूकों (बौद्ध, जैन महात्माओं की अस्थियों) की पूजा करनेलगे। तपस्वियों के आश्रमों में, ब्राह्मणों की बस्तियों में, देवस्थानों में, चैत्यों में, नागदेवता के मन्दिरों में, सर्वत्र एडूकों से पूरित स्तूपों की स्थापना होनेलगी और कहीं देवताओं के मन्दिर न रहे [5]।

प्रजा का उत्पाटन— दस्युवृत्तिवाले इन म्लेच्छनरेशों से उत्पीड़ित प्रजा का विनाश होनेलगा। लोग एक जनपद से भागकर दूसरे जनपद में शरण लेनेलगे। अथवा वनों और पर्वतों का आश्रय लेकर कन्द - मूल फलादि से निर्वाह करनेलगे [6]। अनावृष्टि और दुर्भिक्ष होने पर भी इन नरेशों ने प्रजा के करभार को कम नहीं किया [7]। फलतः कर चुकाने में असमर्थ ब्राह्मण अपने प्राण बचाने - हेतु चारों ओर भागगए [8]। कर वसूल करनेवाले

१- ' न व्रतानि चरिष्यन्ति वेद - ब्राह्मण - निन्दकाः ।
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादविमोहिताः ।
निम्नेष्वीहां करिष्यन्ति हेतुवादविमोहिताः ।। ' — वनपर्व, १९०।२५-२६

२- वनपर्व, १९०।२९ ३- ' स्थविरा बालमतयो बालाः स्थविरबुद्धयः '। — वनपर्व, १९०।३९

४- वनपर्व, १९०।६४

५- ' आश्रमेषु महर्षीणां ब्राह्मणावसथेषु च ।
देवस्थानेषु चैत्येषु नागानामालयेषु च ।
एडूकाचिन्हा पृथिवी न देवगृहभूषिता ।। ' — वनपर्व, १९०।६७

६-७- भागवतपुराण, १२।१।३८-३९; विष्णुपुराण, ४।२४।९५ - ९६

८- ' मही म्लेच्छजनाकीर्णा भविष्यति ततोऽचिरात् । करभारभयाद् विप्रा भजिष्यन्ति दिशोदश ।।
निर्विशेषा जनपदास्तथा विष्टिकरार्दिताः । आश्रमामनुलपस्यन्ति फलमूलोपजीविनः ।। '
— वनपर्व, १९०।७३

कर्मचारियों के कठोर व्यवहार से दुःखी प्रजा जनपदों से भागकर जङ्गलों में अपना निर्वाह करनेलगी [१] ।

धर्मविजयी चक्रवर्ती-- जिनदिनों उत्तरभारत में दस्यु और वृषल नरेश इस प्रकार प्रजा का उत्पीड़न - उत्पाटन कररहेथे, उनदिनों एक धर्मविजयी चक्रवर्ती ब्राह्मण नरेश कल्कि उत्पन्न हुआ। वह महान् बुद्धि एवँ पराक्रम से सम्पन्न महात्मा, सदाचारी तथा प्रजावर्ग का हितंषी था [२]। मन के द्वारा चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र - शस्त्र और योद्धा उपस्थित होगए [३]। उस उदारबुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण ने दुःख से व्याप्तहुए जगत को आनन्द प्रदान किया [४]।

ब्राह्मणों से घिरेहुए उस धर्मविजयी ब्राह्मण नरेश ने सर्वत्र विचरण किया। और भूमण्डल में सर्वत्र फलेहुए म्लेच्छों का सँहार करदिया [५]। ये दस्यु उसके प्रहार से मरते समय दारुण स्वर में अपने माता, पिता, पुत्रादि का स्मरण करतेथे [६]।

ब्राह्मणों द्वारा अपनी स्तुति सुनतेहुए तथा स्वयँ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथोचित सम्मान देतेहुए उसने धरती पर विचरतेहुए दस्यु - विनाश किया [७]। इसके पश्चात् उसने विधिपूर्वक अश्वमेधयज्ञ किया [८]।

आश्रमों में घुसेहुए पाषण्डी मारेगए। प्रजा सत्य - परायण होगई [९]। उत्तम खेती होनेलगी। लोग दान, व्रत तथा धार्मिक नियमों का विधिपूर्वक पालन करनेलगे [१०]। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रसन्नतापूर्वक अपने वर्णधर्म का पालन करनेलगे [११]।

सतयुग आरम्भ होगया। यह घटना उस समय हुई जब सूर्य, चन्द्र और वृहस्पति पुष्य नक्षत्र पर एकत्रित हुए [१२]।

'यदा सूर्यश्च चन्द्रश्च तथा तिष्य वृहस्पती।
एक राशौ समेष्यन्ति प्रपस्यति तदा कृतम् [१३] ॥'

इस श्लोक में सूर्य=मित्र का पुष्य पर आने में पुष्यमित्र की ओर स्पष्ट सँकेतहै [१४]। वृहस्पति सम्भवतः पतञ्जलि का द्योतक है। विद्वानों को इस प्रसँग पर विचार करनाचाहिए।

१- वनपर्व, १९०।७३ २- ४- वनपर्व, १९०।९३-९६

५- 'स सर्वत्र गतान् क्षुद्रान् ब्राह्मणैः परिवारितः।
उत्सादयिष्यति तदा सर्वान्म्लेच्छगणान् द्विजः ॥' — वनपर्व, अ० १९०।९७

६- 'हा मातस्तात पुत्रेति तास्ता वाचः सुदारुणाः।
विक्रोशमानान् सुभृंश दस्यून् नेष्यति संक्षयम् ॥' — वनपर्व, १९१।६

७- वनपर्व, १९१।५ ८- वनपर्व, १९१।१

९- 'आश्रमा हतपाखण्डाः स्थिताः सत्यरताः प्रजाः।' — वनपर्व. १९१।१०

१०- वनपर्व, १९५।१०-११ ११- वनपर्व, १९१।१२-१४ १२-१३- वनपर्व, १९०।९०-९१

१४- द्र० विष्णुपुराण, ४।२४।१०३; भागवतपुराण, १२।२।२४

कुलिन्द जनपद

वि० पू० १७५–७७ वि०

जनपदों का जागरण— अशोक की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र जलौक और कुणाल केवल मद्र - कश्मीर और मगध - विदिशा पर ही अपना स्थायी अधिकार रखसके। अशोक के इन दुर्बल वंशजों के शासनकाल में उत्तरभारत के जिन जनपदों में जाग्रति आईथी, उनमें औदुम्बर, कुणिन्द, यौधेय, पांचाल, नेपाल, मथुरा, कौशाम्बी, आन्ध्र और कलिङ्ग मुख्य थे। इन जनपदों में से कुछ गणराज्य थे, और कुछ नृपशासित। इनमेंसे कुछ ने अपने इस जागरणकाल में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की सूचक कुछ मुद्राएँ प्रचारित कीथीं, जिनके लेख अशोककालीन लिपि में हैं।

जनपदों का यह जागरण, जिसे प्रथम जागरण कहसकतेहैं, उत्तरभारत में यवन और शुङ्ग-सत्ता स्थापित होजानेसे शीघ्र समाप्त होगया। पुष्यमित्र के राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में यमुना से सतलुज-रावी तक यवनसत्ता शिथिल होजाने पर कुणिन्द, यौधेय और औदुम्बर आदि जनपदों का द्वितीय जागरण आरम्भ हुआ, जो विक्रम की प्रथम शती में, उत्तरभारत में शक- पह्लव तथा कुशाणों की सत्ता स्थापित होजानेसे समाप्त होगया। इस द्वितीय जागरण की सूचना भी इन जनपदों की कुछ मुद्राओं से ही प्राप्त होतीहै।

जनपदों के जागरण का तीसरा काल कुशाणसाम्राज्य के अवसान के दिनों में आरम्भ हुआ और गुप्तसाम्राज्य के दिनों में धीरे - धीरे समाप्त होगया। इस तीसरे जागरणकाल में भी जनपदों ने कुछ मुद्राएँ प्रचारित कीथीं, जिनके अध्ययन से जनपदों के इतिहास पर रोचक प्रकाश पड़ताहै।

जनपदों के जागरण और शयन के इतिहास के सम्बन्ध में यद्यपि अनेक सूचनाएँ मुद्राओं, अभिलेखों और साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त होतीहैं, पर अभीतक उनका विधिपूर्वक अध्ययन करके क्रमबद्ध इतिहास लिखने का प्रयत्न नहीं हुआहै।

कुलिन्द-जनपद — कुलिन्द - जनपद में इन राजनैतिक युगान्तरों की सूचना मुद्राओं और अभिलेखों से प्राप्त होतीहै। आगे चलकर साहित्यिक स्रोत भी उसमें सहायता देतेहैं। फिर भी इन स्रोतों से उपलब्ध सूचनाएँ इतनी अल्प हैं कि उन्हें केवल

जनपद के अस्तित्व की सूचक - मात्र कहसकतेहैं। भविष्य में, सम्भव है, कुछ और सामग्री मिलजाने पर इस जनपद की क्रमबद्ध गाथा लिखीजासके।

(१) गण - सत्ता

गण-मुद्राएं— बिन्दुसार के राज्यकाल में खशदेश के विद्रोह को अशोक ने शान्त करदियाथा [१]। उसके पश्चात् अशोक की मृत्यु तक कुलिन्दजनपद में मौर्यशासन रहा। अशोक की मृत्यु के पश्चात् कुलिन्दजनपद पुनः स्वतन्त्र होगया, जिसकी पुष्टि में अबतक तीन प्रकार की मुद्राएं प्राप्त हुईहैं :—

प्रथम प्रकार की मुद्राओं से विदित होताहै कि आरम्भ में कुलिन्दजनपद की मुद्राओं पर केवल जनपद - सूचक कतिपय चिह्न अंकित थे। उनपर जनपद का नाम अंकित करनेकी प्रथा न थी [२]।

ऐसी मुद्राएं ताम्र की छोटे आकार की मुद्राएं हैं, जिनपर केवल एक ही ओर अंकन मिलतेहैं। तथा दूसरी ओर खाली होताहै। इनमें वेदी के ऊपर बोधिवृक्ष बना है। और उसके बाहर बौद्धवेष्ठिनी बनी है। बोधिवृक्ष और वेष्ठिनी से बाहरः ः चार छोटे - छोटे वृत्त हैं [३], जिन्हें चतुर्वर्ग का द्योतक मानाजाताहै [४]। ऐसी एक मुद्रा कनिंघम को बेहट में प्राप्त हुईथी [५]।

लेख अंकित न होनेसे इन मुद्राओं की तिथि निश्चित करना कठिन है। फिर भी इन पर अंकित सादे चिह्नों से विदित होताहै कि ये अबतक प्राप्त कुणिन्द और यौधेय मुद्राओं से अधिक प्राचीन हैं। इनसे पीछे की बनी मुद्राओं पर इन चिह्नों के साथ अन्य अनेक चिह्नों को अंकित करने की प्रथा बढ़ती दिखाईदेतीहै।

दूसरे प्रकार की मुद्राओं पर बने अंकन भी प्रथम प्रकार की मुद्राओं के अंकनों के समान सादे हैं। उनपर ब्राह्मी में केवल 'कुणिन्द', लिखा मिलताहै [६]। कनिंघम ने इनका चित्र मकाशित नहीं कियाहै। महाभारत और पुराणों में कुलिन्द और कुणिन्द दोनों पाठ मिलतेहैं। किन्तु मुद्राओं पर सदा 'कुणिन्द' लिखा मिलताहै, चाहे लेख ब्राह्मी में हो या खरोष्टी में। हमारा अनुमान है कि उच्चारण की सरलता केलिए यद्यपि जनपद - भूमि केलिए 'ण' के स्थान पर 'ल' को भी मान्य समझलियागया किन्तु गण या राजसत्ता के द्योतक शब्द कुणिन्द में ऐसी छूट देना वांछित न समझागया।

काद की मुद्राएं— तीसरे प्रकार की मुद्राओं पर अग्रभाग में छोटी - सी वेदिका पर ऊँचा बोधिवृक्ष अंकित है। उसके बाहर बौद्धवेष्टिनी है। बांई ओर मन्दिर के ऊपर

१- दिव्यावदान, पृ० २७२ उ० रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी, पृ० २९८

२- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ७१

३- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ७१

४- उ० त्रिवेद — प्राङ् मौर्य बिहार, पृ० २९

५- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ७७

६- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ७१

त्रिरत्न बनाहै। दाहिनी ओर अशोककालीन लिपि में कादस (कादस्य) लिखाहै। पृष्टभाग में विशाल सूर्य की किरणें चारों ओर उद्भासित होरहीहैं [१]।

कनिंघम को काद की केवल एक मुद्रा कुणिन्द - मुद्राओं के साथ मिलीथी [२]। ब्रिटिश सँग्रहालय में काद की अनेक मुद्राएँ हैं। ये मुद्राएँ ढलीहुई ताम्र मुद्राएँ हैं, जो आकार में बड़ी भद्दी हैं। इन पर मिलनेवाले अँकनों के आधार पर एलन ने उन्हें पांच विभागों में विभक्त कियाहै। इनमें से एक पर कार्तिकेय की मूर्ति अँकित है। उसके बांए हाथ में शूल (भाला) और दहिने हाथ में थैली - जैसी कोई वस्तु है [३]।

चित्रों में, कुबेर के हाथ में थैली तो मिलतीहै, किन्तु भाला नहीं मिलता। इससे एलन की धारणा है कि पूर्वोक्त मुद्रा में अँकित देवता को कार्तिकेय ही मानना चाहिए। इसके पश्चात् शताब्दियों तक कुणिन्द और यौधेय मुद्राओं पर बार - बार कार्तिकेय का अँकन मिलने से भी एलन की धारणा की पुष्टि होतीहै।

तक्षशिला में कनिंघम को कुछ ऐसी मुद्राएँ मिलीथीं, जो आकृति में चौकोर थीं। उनके ऊपर भी अशोककालीन लिपि में कादस (कादस्य) लिखाथा। उन पर विशाल सर्प की आकृति बनीहोनेके कारण उनका सम्बन्ध तक्षशिला के नागपूजक जन से जोड़ाजाताहै। उस जन का कुणिन्दजन से कोई सम्बन्ध न था [४]।

काद-नरेश या जन— काद की मुद्राएँ बड़ी सँख्या में उपलब्ध हैं [५]। उनके अँकनों में भी विविधता है। इसलिए भूलर का अनुमान है कि 'काद' किसी नरेश - विशेष का नाम है। उसकी धारणा है कि 'काद' या 'काट' सँस्कृत 'काल' के अपभ्रँश हैं [६]।

कनिंघम 'काद' को नरेश - विशेष का नाम न मानकर जन - विशेष का नाम मानतेहैं। उनका कहनाहै कि कुलिन्द (कनैत) जन की एक शाखा कदैक कहलातीहै जो उसके पूर्वज कादु या कद्रु से चलीथी [७]। कुलिन्दजन की इसी शाखा ने ये मुद्राएँ प्रचारित कीहोंगी। मुद्राविद् एलन ने भी काद की मुद्राओं को जन - विशेष की मुद्राएँ मानाहै, जैसा कि काद की मुद्राओं के अनेक विभागों से विदित होताहै [८]।

समकालीन कुलिन्द जनपद— काद की मुद्राएँ अशोककालीन लिपि में हैं। उनकी अवधि एलन ने वि० पू० १६८ - ११८ (225 - 175 B. C.)

१- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ७१ - ७२   २- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ७१

३- एलन — कैटैलोग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० vciii

४- द्र० कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ६२ तथा चित्र फलक २, चित्र २१ - २२

५- वन्द्योपाध्याय — प्राचीन मुद्रा, पृ० १३२   ६- भूलर — इंडियन क्वाइन्स, पृ० १२

७- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ७१

८- 'It is probably a tribal name and not that of a ruler. The number of the varieties also suggest this'. — एलन—पूर्वोक्त, पृ० xciii

मानीहैं[१]। इसलिए उन्हें अशोक की मृत्यु के पश्चात् की मानसकतेहैं। महाभारत में कुलिन्दजनपद की सैकड़ों ठकुराइयों या उपजनों का उल्लेख है[२]। मौर्य और शुङ्गकाल में भी स्थिति उसी प्रकार रहीहोगी।

इन मुद्राओं से अनुमान लगताहै कि सम्भवत: इन अनेक उपजनों मेंसे, कदैक से अपने पूर्वजों का सम्बन्ध जोड़नेवाला उपजन अधिक प्रभुत्वसम्पन्न था। उसने अपने उपजन के नाम पर जो मुद्राएं प्रचारित कीथीं, उनको सामान्य हेरफेर के साथ अन्य पड़ोसी उपजनों ने भी स्वीकार करलियाथा। उन मुद्राओं के जिन पांच विभागों का उल्लेख एलन ने कियाहै, वे सम्भवत: विभिन्न उपजनों की सन्तुष्टि केलिए किएगएथे। आगे चलकर यौधेय मुद्राओं पर भी, गण में सम्मिलित जनों की सन्तुष्टि केलिए 'द्वि', 'वि' या 'त्रि' अंकित किएजाने के प्रमाण मिलतेहैं[३]।

यह कहना कठिन है कि पूर्वोक्त तीन प्रकार की मुद्राओं मेंसे किसका प्रचलन पहले हुआ। सम्भव है कि जनपद के विभिन्न भागों में विभिन्न समयों में ये मुद्राएं चलती रहीहों। अथवा आरम्भ में केवल एक उपजनपद की 'काद' मुद्राओं के प्रचार के पश्चात् सारे जनपद केलिए एक ही कुणिन्द मुद्रा प्रचारित करने की भावना का उदय हुआहो। आगे चलकर मुद्राओं पर कुणिन्द नाम भी अंकित करदियागया।

कुलिन्द-भूमि— ताल्मी, सँवत् १४४ - २२२ (87 - 165 A. D.) ने व्यास, सतलुज, यमुना और गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश की ढालों पर कुलिन्दजन के विस्तार का उल्लेख कियाहै[४]। ताल्मी से एक - दो शतियों पूर्व भी कुलिन्दजन का प्रसार इसी प्रदेश में रहाहोगा। वास्तव में आज भी कुलिन्द - वँशज व्यास से लेकर कालीगङ्गा के स्रोतप्रदेश तक फैली पहाड़ियों की ढालों पर बसे मिलतेहैं।

जिन कुणिन्द मुद्राओं का ऊपर उल्लेख कियागयाहै, वे प्राय: यमुना की पूर्वी और पश्चिमी, दोनों उपत्यकाओं में मिलीहैं। दक्षिण की ओर उनका प्रसार सहारनपुरजिले में बेहट तक पायागयाहै[५]। अन्यत्र कांगड़ाजिले में मेवातप्पा[६], ज्वालामुखी[७], करनाल[८], सुनेत[९], अम्बाला[१०], सहारनपुर[११], देहरादून[१२] और गढ़वाल[१३] में जो कुणिन्द मुद्राएं मिलीहैं वे या तो अमोघभूति की हैं अथवा अन्य परवर्ती कुणिन्द-यौधेय नरेशों की हैं। निश्चय ही इन मुद्राओं के उतने व्यापक प्रसार के प्रमाण अभीतक नहीं मिलेहैं, जितना व्यापक प्रसार

१- 'Probably of the latter half of the second century or early third century B. C.' — एलन—कैटेलोग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० xcii.

२- 'कुलिन्दशतशङ्कुलाम्' — वनपर्व, १४।१।२५

३- ताल्मी का लेख, ७।१।४२; मोतीचन्द्र — स्टडीज इन महाभारत, पृ० ७७

४- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७७

५- ९- एलन — पूर्वोक्त, पृ० ciii

१०-११- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ७१

१२- जौनरल आव यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, जुलाई ४०, पृ० ८२-८५

१३- रतूड़ी — गढ़वाल का इतिहास, पृ० २४०

अमोघभूति की मुद्राओं का हुआथा।

इससे अनुमान लगताहै कि इन मुद्राओं का आरम्भ कुलिन्दजन की मूलभूमि कालिन्दिनी की घाटियों में हुआथा। विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में पाणिनि के समय से लेकर वि० पू० तीसरी - दूसरी शती में अशोक के राज्यकाल में कुलुन- कुलिन्द जनपद में कलकूट - कालकूट मुख्यालय था। सम्भवतः यहीं से ये प्रारम्भिक कुणिन्द्रमुद्राएँ पसारित कीगईथीं।

अमोघभूति की मुद्राओं के लेख खरोष्टी और ब्राह्मी दोनों लिपियों में हैं। किन्तु 'काद' तथा 'कुणिन्द' मुद्राओं के लेख केवल ब्राह्मीलिपि में हैं। उनका प्रसार सतलुज से पश्चिम की ओर न था, जहां खरोष्टी का प्रचार था।

आर्थिकदशा— कुलिन्दजनपद में जनता की आजीविका कृषि तथा पशुचारण से चलतीथी। इन व्यवसायों में उनदिनों मुद्रा की आवश्यकता बहुतकम पड़तीथी। आन्तरिक व्यापार मुख्यतः वस्तुओं की अदला - बदली तक सीमित था। केवल वाह्य व्यापार केलिए मुद्राओं की आवश्यकता होतीथी। उनदिनों भी तिब्बत के साथ व्यापार मुख्यतः वस्तुओं की अदला - बदली से होताथा,, जैसा कि इस शती के आरम्भ तक होतारहाहै।

पूर्वोक्त तीनों प्रकार की मुद्राएँ केवल ताम्र की मिलीहैं। उन्हें ढालागयाथा। अभीतक कोई रजतमुद्रा तीनों प्रकारों मेंसे किसी प्रकार की नहीं मिलीहै।

उनदिनों ईरान की अँदराव की खानों से भारत में चांदी पहुँचने में रुकावट पड़गईथी [१]। मौर्यनरेश तक अपनी ताम्रमुद्राओं पर रजत का पानी चढ़ाने केलिए विवश हुएथे [२]। छोटे जनपदों केलिए चांदी की मुद्राएँ प्रचारित करना सम्भव न था। सम्भवतः रजतमुद्राओं की आवश्यकता उत्तरभारत में प्रचलित मौर्य - शुङ्ग नरेशों की रजतमुद्राओं से पूर्ण कीजातीथी।

प्राचीन भारत में मुद्राओं को कभी 'अप्रचलित' नहीं मानाजाताथा। शताब्दियों तक मुद्राएँ अपनी चांदी के मूल्य पर प्रचलित रहतीथीं।

धार्मिक मान्यताएं— ये मुद्राएँ उस युग की धार्मिक मान्यताओं पर रोचक प्रकाश डालतीहैं। वृक्षदेवताओं की पूजा का सार्वभौम प्रचार था। बड़े वृक्षों के नीचे तने के चारों ओर चबूतरा बनाकर पेड़ के नीचे गोल - मटोल शिला खड़ी कीजातीथी। इसे उस वृक्षदेवता का द्योतक मानाजाताथा, जिसके निवास की वृक्ष पर कल्पना कीजातीथी।

बोधिवृक्ष, स्तूप और त्रिरत्न की पूजा का भी व्यापक प्रचार होचलाथा। बौद्धमत की इन मान्यताओं के साथ जनपद में सूर्य और कार्तिकेय की उपासना भी प्रचलित थी।

१-२- अग्रवाल — जौ० न्यूमिसमेटिक सोसायटी, जि० १२, पृ० १९६

३- 'There is evidence to show that in ancient and mediaeval India coins never became out of date.' — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६१ टि०

सूर्य की उपासना प्राचीनकाल से चलीआतीथी। कार्तिकेय की मूर्ति यौधेय और कुणिन्द मुद्राओं पर शताब्दियों तक बनतीरही। कुणिन्दमुद्राओं पर मिलनेवाली कार्तिकेय की मूर्ति से कुछ विद्वानों ने उनकी गिनती यौधेय - मुद्राओं में करदीहै। किन्तु कार्तिकेय कुणिन्द-राजवँश का भी आराध्य था।

उनदिनों देवी - देवता, स्तूप, त्रिरत्न, स्वस्तिक आदि से अँकित मुद्राओं को पुनीत समझाजाताथा। लोग इनके चित्र अपने घरों की दीवारों पर और शरीर पर भी बनवा लेतेथे। ऐसी चित्रोंवाली मुद्राएँ अपने पास रखने से तथा उन्हें बालकों के गले में बांधने से सँकटों से मुक्ति मिलतीहै, ऐसा जनसाधारण का विश्वास होचलाथा। इस विश्वास का आदर जनपदों के शासक भी करतेथे।

अमोघभूति की मुद्राओं पर मिलनेवाले मृग और लक्ष्मी के चित्र, जिसे मृग को तृण खिलातीहुई शकुन्तला भी कुछ लोग मानतेहैं, इन आरम्भिक मुद्राओं पर नहीं मिलते। और न सुमेरु के ऊपर नन्दिपाद मिलताहै।

राजनैतिक दशा— कुलिन्दजन की ये प्राचीन मुद्राएँ अपनी कुछ ऐसी विशेषताएं रखतीहैं, जिनसे उन्हें समकालीन अन्य जनपदों की मुद्राओं से पृथक् पहिचानाजासकताहै। इन पर ऐसी विशेषताएँ नहीं मिलतीं, जिनके आधार पर कुलिन्द जनपद को किसी अन्य जनपद के अधीन मानाजासके।

जनपद के शासक जनता की धार्मिक मान्यताओं का आदर करतेथे, जिनका उन्होंने अपनी मुद्राओं पर अँकन कियाहै। चतुर्वर्ग या अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति को शासन का लक्ष्य मानाजाताथा। इस लक्ष्य को मुद्राओं पर :: चार बिन्दुओं के द्वारा सूचित कियागयाहै।

मुद्राएँ ढालने की कला भलीप्रकार विकसित न थी। कुशल कलाकार उपलब्ध न थे। मुद्राओं पर लगाएगए ठप्पे भद्दे हैं। 'काद' मुद्राएँ तो अत्यन्त असावधानी से ढालीगईथीं। मुद्राओं की तोल की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दियाजाताथा। २३ ग्रेन से लेकर ११६ ग्रेन तक भारवाली मुद्राएँ प्राप्त हुईहैं। समकालीन न होनेसे इनके मूल्य में क्या अन्तर था, यह कहना कठिन है। २३ ग्रेन वाली मुद्राएँ ११६ ग्रेन वाली मुद्राओं का चतुर्थांश विदित होतीहैं।

अवधि— ये मुद्राएँ कुलिन्दजनपद में सम्भवतः अशोक के राज्यकाल के पश्चात प्रचारित हुईं और लगभग आधी शती तक चलतीरहीं। इनके पश्चात्, मौर्यसाम्राज्य के अवसान के आसपास हमें कुलिन्दजनपद की वे मुद्राएँ मिलतीहैं, जिनपर अगरजस (अग्रराजस्य) अँकित हैं। इस नरेश का पता शिलालेख से भी लगताहै। इसके पिता विश्वदेव और अज्ञातनामा दादा के समय की मुद्राएँ नहीं मिलतीं। सम्भवतः उनके राज्यकाल में पूर्वोक्त गणमुद्राएँ ही प्रचलित थीं।

(२) स्रुघ्न का बौद्धराजवंश

स्रुघ्न— पाणिनि के समय, से लेकर अशोक के राज्यकाल तक, विक्रमपूर्व पांचवीं शती से तीसरी शती तक सम्भवत: कलकूट - कुलुन - कुलिन्द जनपद का मुख्यालय कालकूट (कालसी) में रहा । अशोक की मृत्यु के पश्चात्, किसी समय जनपद का मुख्यालय कालकूट से हटाकर दक्षिण की ओर स्रुघ्न नामक स्थान पर स्थापित कियागया ।

कनिंघम ने स्रुघ्न की पहिचान बर्तमान अम्बालाजिले के सुघगांव से कीहै । जो यमुना की वर्तमान धारा के दहिने तट पर एक त्रिभुजाकार टीले पर बसाहै [१] । यह टीला तीन ओर से यमुना की पुरानी धारा की तलहटी से घिराहै, जिसमें अबभी पश्चिमी यमुना नहर बहतीहै । उत्तर और पश्चिम की ओर दो गहरे नालों ने इस क्षेत्र को दुर्ग के समान सुरक्षित बनादियाहै [२] ।

इस त्रिभुजाकार क्षेत्र के तीनों कोनों पर अबतक तीन दुर्गों के अवशेष हैं । यहां अब दयालगढ़, मांडलपुर और सुघगांव बसेहैं [३] । इन गांवों में विक्रमपूर्व पांचवीं शती की आहतमुद्राओं से लेकर बारहवीं शती तक की तोमर - चौहानों की मुद्राएं प्राप्त हुईहैं [४] । नामसाम्य, सुरक्षित स्थान और प्राचीन मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर कनिंघम वर्तमान सुघगांव को ही प्राचीन स्रुघ्ननगर मानतेहैं [५] । कनिंघम की इस पहिचान से कुछ विद्वान् सहमत हैं [६] ।

सुघगांव या प्राचीन स्रुघ्ननगर कालकूट से केवल ३८ मील दक्षिण की ओर है [७] । अशोक के राज्यकाल में भी यह स्थान कालकूट के समान ही महत्वपूर्ण था । दिव्यावदान के अनुसार स्वयँ भगवान् बुद्ध ने यहां पहुँचकर एक ब्राह्मण के अभिमान को दूरकियाथा । इस अनुश्रुति का युवानचाङ् ने भी उल्लेख कियाहै [८] ।

अशोक ने इस स्थान पर एक स्तूप बनायाथा [९] । यहां एक - दूसरे स्तूप में तथागत (बुद्ध) के हस्त और नख के अवशेष थे । पास बने कई स्तूपों में सारिपुत्र, मौद्गालयन और अन्य अनेक अर्हतों के अवशेष स्थापित किएगएथे [१०], जो हर्ष के राज्य-काल में चीनी यात्री ने देखेथे [११] ।

राजवंश की मुद्राएं— स्रुघ्ननगर से कुलिन्दजनपद पर शासन करनेवाले नरेशों मेंसे अबतक केवल अगरज (अग्रराज), वलभूति और अमोघभूति, इन तीन नरेशों की मुद्राएँ प्राप्त हुईहैं । इनमेंसे अन्तिम नरेश अमोघभूति की ताम्र और रजतमुद्राओं पर उसे

१- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० २९१　　२- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २९१
३- कनिंघम—पूर्वोक्त पृ० २९१ - ९२　　४- ५- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २९२
६- द्र० वाटर्स — आन युवान्चाङ्स ट्रेवल्स इन इंडिया; रेज डेविड्स तथा बुशल द्वारा सम्पादित पृ० ३३८　　७-९- वील — सि - यु - की, बुद्धिष्ट रेकार्ड्स आव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ० १८७

'कुणिन्दनरेश अमोघभूति महाराज' कहागयाहै [१]।

इनके अतिरिक्त सात अन्य कुणिन्दनरेशों की मुद्राएँ मिलतीहैं, जिनके समय में जनपद का मुख्यालय सम्भवतः स्रुघ्न से पूर्व की ओर बेहट में या अन्यत्र था। इनमेंसे म-ग-भ-त, शिवदत्त, शिवपालित और हरिदत्त सम्भवतः अमोघभूति के उत्तराधिकारी थे। उनका राज्यकाल ईसा की प्रथम शती के आरम्भिक वर्षों में मानाजाताहै [२]। अन्य तीन नरेश छत्रेश्वर, भानु और रावण कुशाणसाम्राज्य के अवसान के दिनों में हुएथे'।

कनिंघम को छत्रेश्वर की केवल पांच मुद्राएँ मिलीथीं। ये सभी यमुना से पश्चिम के प्रदेश में प्राप्त हुईथीं [३]। म-ग-भ-त, शिवदत्त, शिवपालित और हरिदत्त की मुद्राएँ अलमोड़ाजिले में मिलीहैं [४]।

राजवंश के अभिलेख— अब तक इस राजवंश के पांच शिलालेख प्राप्त हुएहैं। चार भारहुत में और एक मथुरा में।

(१) भारहुतस्तूप के पूर्वी तोरण का स्तम्भ-लेख :—
जिसके अनुसार उस तोरण का निर्माण शुङ्गों के राज्य के अन्तर्गत (भारहुत) में वात्सी-तनय राजा धनभूति ने कियाथा, जो गार्गी-तनय विश्वदेव का पौत्र तथा कौत्सी-तनय अग्रराज का पुत्र था [५]।

(२) भारहुतस्तूप के वतनमार द्वार का खण्डित अभिलेख [६] :—
जिसके अनुसार तोरण का (निर्माण) शुङ्गों के राज्य के अन्तर्गत (भारहुत) में अग्रराज (ने कियाथा)।

(३) भारहुतस्तूप के एक स्तम्भ पर दानसूचक लेख [७] :—
जिसमें नागरक्षिता को राजा धनभूति (प्रथम) की भार्या कहागयाहै।

१- 'रञ कुणिन्दस अमोघभूतिस महाराजस'

२- 'The coins of three Kings named Shiva Datt, Hari Datt and Shiva Palita may be assigned to the beginning of the first century A. D.'

— एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १७१

३- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ७१ - ७२

४- एलन — कैटैलौग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० vciii

५- 'सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस पौतेण गोतिपुतस आगरजुस पूतेण वाछिपुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां सिला कं मं तो च उपणं'।

— राजवली पाण्डेय—हिस्टौरिकल ऐंड लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स, पृ० ४३

६- 'सगान रज ... अगरजसु ... तोरनं . . .' — बरुआ तथा सिंह — भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १

७- '[धनभू] तिस रञो भारियाया नागरखिताया दानं'

— बरुआ तथा सिंह — भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० ३३

(४) भारहुतस्तूप के एक अन्य स्तम्भ पर दानसूचक लेख [१] :-
जिसमें कुमार वाधपाल (वृद्धपाल) को राजा धनभूति का पुत्र बतायागयाहै।

(५) मथुरास्तूप का दानसूचक लेख [२] :-
जिसके अनुसार वेदिका, तोरण और रत्नगृह का निर्माण धनभूति (द्वितीय) ने कियाथा जो .... (राजा) धनभूति (प्रथम) का (पौत्र) तथा वात्सीपुत्र वाधपाल (वृद्धपाल) का पुत्र था।

नरेशों की नामावली— इन अभिलेखों और मुद्राओं से कुलिन्द-स्रुघ्न-अलमोड़ा के राजवँशों के निम्न नरेशों की नामावली प्राप्त होतीहै :-

सँख्या	शिलालेखों से प्राप्त नाम — नरेश	रानी	मुद्रा पर नरेश का नाम	पूर्ववर्ती नरेश से सम्बन्ध
१	?	गागी (गार्गी)	- -	- -
२	विसदेव (विश्वदेव)	गोती (कौत्सी, गोप्ती)	- -	पुत्र
३	आगरजु (अग्रराज)	वाछी (वात्सी)	अगरज	पुत्र
४	धनभूति (प्रथम)	वाछी (वात्सी), नागरखिता (नागरक्षिता)	- -	पुत्र
५	वाधपाल (वृद्धपाल)	- -	- -	पुत्र
६	धनभूति (द्वितीय)	- -		पुत्र
७	- -	- -	वलभूति	?
८	- -	- -	अमोघभूति	?
९	- -	- -	म-ग-भ-त	?
१०			शिवदत (शिवदत्त)	?
११			हरि - त (हरिदत्त)	?
१२			शिवपलि - (शिवपालित)	?

१- 'धनभूतिस राजनो पुतस कुमारस वाधपालस (दानं)'।
— कनिंघम – स्तूप आव भारहुत, पृ० १४२

२- 'कल ... [धन] भूतिस .. वात्सीपुत्रस (वाधपा) लस .. धनभूतिस दानं बेदिका तोरनानां च रत्नगृह स व बुधपुजाय सहा मातु - पिता हैसाहर च त .. परिग्रहि।'
— कनिंघम – स्तूप आव भारहुत, पृ० १३०

वंशानुगत सम्बन्ध— स्रुघ्न के इस राजवँश का, जिसके सँस्थापक नरेश के नाम का पता शिलालेखों से नहीं लगता, गणसूचक मुद्राओं वाले गणशासकों से या काद से, यदि काद किसी राजा का नाम था, वँशानुगत सम्बन्ध स्थापित करनेहेतु कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है।

सम्भव है कि इस वँश का कुलिन्दजनपद के उस अवयव से सम्बन्ध रहाहो, जिसने काद मुद्रा प्रचारित कीथी। अथवा किसी दूसरे अवयव से रहाहो, जिसका मुख्यालय स्रुघ्न के आसपास, कुलिन्दजनपद के भाबरप्रदेश में था।

पाणिनि के समय कलकूट जनपद एकराज शासित - जनपद था [१]। उस पर किसी राजवँश का शासन था, जो समकालीन प्रथानुसार इसी नाम, कालकूटि से प्रसिद्ध रहाहोगा[२]। किसी प्राचीन मुद्रा या अभिलेख में इस वँश का नाम नहीं मिलता।

अग्रराज, वलभूति और अमोघभूति की मुद्राएँ स्रुघ्न में प्राप्त हुईथीं [३]। कनिंघम वलभूति और अमोघभूति को धनभूति द्वितीय का वँशज मानतेहैं [४]। यह कल्पना साधार होसकतीहै। पर वलभूति और अमोघभूति का आपस में क्या सम्बन्ध था, तथा दोनों का धनभूति द्वितीय से क्या सम्बन्ध था, यह अभीतक अज्ञात है।

वलभूति अमोघभूति से पूर्ववर्ती था। वलभूति की मुद्रा पर उसे केवल राजा वलभूति बतायागयाहै, जबकि अमोघभूति अपनेको कुणिन्दराज महाराज बतलाताहै। अमोघभूति की मुद्राओं के आकार - प्रकार से तथा उनके प्रसारक्षेत्र से भी इस कल्पना की पुष्टि होतीहै।

सम्भवतः वलभूति धनभूति द्वितीय का पुत्र या उत्तराधिकारी था और अमोघभूति वलभूति का।

अमोघभूति के पश्चात् मिलनेवाली कुणिन्दमुद्राएँ बड़ी भद्दी हैं। उनके लेख भी ठीक से नहीं पढ़ेजासकते। अमोघभूति के पश्चात् कुणिन्द राजवँश के विपत्ति के दिन आगएथे। उन्हें अपना मुख्यालय त्यागकर पूर्व की ओर भागनापड़ाथा। उनको वे कलाकार अब उपलब्ध न थे, जो अमोघभूति की मुद्राएँ ढालतेथे।

यदि यह अनुमान सही हो तो परवर्ती कुणिन्दों का राज्यकाल अमोघभूति के पश्चात् मानाजासकताहै। सम्भवतः उनकी राज्यसत्ता का अन्त शक - क्षत्रपों के द्वारा हुआथा।

परवर्ती कुणिन्दनरेशों का स्रुघ्न के राजवँश और अमोघभूति से क्या सम्बन्ध था, तथा उनका आपस में क्या सम्बन्ध था, इन प्रश्नों का निश्चित उत्तर देनेकेलिए प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

१- अष्टाध्यायी, ४।१।१७३ २- अग्निहोत्री – पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ४०६

३- कनिंघम – आर्केलौजिकल स० रि०, जि० १४, पृ० ६५, १३४, १३८

४- कनिंघम – स्तूप आव भारहुत, पृ० १६ - १७

स्रुघ्न से सम्बन्ध— इस राजवँश के भारहुत में प्राप्त धनभूति प्रथम के अभिलेख के आरम्भ में 'सुगनं रजे' शब्द को देखकर कनिंघम ने उसका अनुवाद 'स्रुघ्न-राज्ये' कियाथा [१]। राजेन्द्रलाल मित्र भी इस अनुवाद से सहमत थे [२]। भारहुत के दूसरे अभिलेख में, जो इसी राजवँश का है, 'सगान रज' शब्द मिलताहै। अब विद्वानों की धारणा है कि सुगनँ रजे' या 'सगान रज' का अनुवाद 'शुङ्गानां राज्ये' अर्थात् शुङ्गों के राज्यकाल में, होनाचाहिए [३]।

कनिंघम को इन अभिलेखों में उल्लिखित अग्रराज, वलभूति और अमोघभूति की मुद्राएँ स्रुघ्न में मिलचुकीथीं [४]। अमोघभूति अपनेको कुणिन्दराज बतलाताहै। उनदिनों कुलिन्दजनपद का मुख्यालय स्रुघ्न में था [५]। कुलिन्दजनपद प्राचीनकाल से लेकर विक्रम की सातवीं शती तक स्रुघ्नजनपद के नाम से भी प्रसिद्ध था [६]। इसलिए उस राजवँश को स्रुघ्न का राजवँश मानाजाताहै [७]।

राज्यस्थापक

स्रुघ्नराज्य की स्थापना करनेवाले प्रथम नरेश का नाम अभिलेखों में नहीं है। उसकी पत्नी गार्गी थी, जिसका पुत्र द्वितीयनरेश विश्वदेव था।

विश्वदेव

अभिलेख में विश्वदेव की माता का नाम तो दियागयाहै किन्तु पिता का नाम देना आवश्यक नहीं समझागया। सम्भवतः गणशासन के स्थान पर एकराज-शासन की स्थापना करनेवाला विश्वदेव ही था। उसका पिता सम्भवतः विशेष समृद्धिशाली या शक्तिशाली न था।

उनदिनों शासकों या साधनसम्पन्न व्यक्तियों की एक से अधिक पत्नियां होतीथीं। इसलिए माता के नाम का भी उल्लेख कियाजाताथा [८]। जैसे, यदि किसी की माद्री और पांचाली, दो पत्नियां होतीं तो उनके पुत्र एक ही पिता के पुत्र होनेपर भी अपने नाम से पूर्व माद्रीपुत्र या पांचालीपुत्र शब्द जोड़तेथे [९]। जब यह प्रथा चलपड़ी तो वे व्यक्ति भी, जिनकी कोई विमाता भी नहीं होतीथी, अपने नाम के आरम्भ में मातासूचक शब्द

१- कनिंघम — स्तूप आब भारहुत, पृ० १६ - १७

२- राजेन्द्रलाल मित्र — लेख, जौ० ए० सो० बंगाल, १८८०, पृ० ५८ - ६४

३- बरुआ तथा सिंह — भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १

४- कनिंघम — आर्केलौजिकल स० रि०, जि० १४, पृ० ६५, १३४, १३८; स्तूप आब भारहुत, पृ० १६

५- कनिंघम — क्वाइन्स आब एनशिएंट इंडिया, पृ० ७१ - ७२

६- बील — बुद्धिस्ट रेकार्ड्स आब दि वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ० ३१८

७- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० १६ - १७

८- कनिंघम — पूर्वोक्त पृ० १२६

९- अष्टाध्यायी, ४।१।१४७

लगानेलगे [१]। विश्वदेव की रानी का नाम गोती (कौत्सी) था। उसके सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना प्राप्त नहीं है।

अग्रराज

विश्वदेव और कौत्सी के पुत्र अग्रराज की पत्नी वाछी (वात्सी) थी। उसकी मुद्राएँ कनिंघम को स्रुघ्न और कौशाम्बी में मिलीथीं [२]। कनिंघम ने उन मुद्राओं का वर्णन नहीं दियाहै। अग्रराज की मुद्राओं का जायसवाल और अलतेकर ने भी उल्लेख कियाहै [३]। अग्रराज द्वारा मुद्रा प्रचलित किएजाने से अनुमान लगताहै कि उसने पैत्रिकराज्य में कुछ वृद्धि कीहोगी। उसका राज्यकाल राजनैतिक उथल - पुथलों से भरा था।

यवन-आक्रमण— वृहद्रथ के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में दिमित्र और उसके सेनापति मेनान्द्र ने मथुरा और साकेत पर अधिकार करलेने के पश्चात् पाटलिपुत्र का भी घेरा डालाथा। किन्तु अपने साम्राज्य के पश्चिमी भाग बख्त्रिया पर युक्रतिद के आक्रमण की सूचना पाकर दिमित्र पाटलिपुत्र का घेरा उठाकर पश्चिम की ओर लौटगयाथा।

दिमित्र अपनी भारतीय सेना लेकर बख्त्रिया की ओर दौड़ा। उसने मेनान्द्र को भी सेना लेकर आने का आदेश दिया। किन्तु मेनान्द्र ने उत्तरभारत के बिखरेहुए जनपदों की दुर्वलता को भलीप्रकार देखलियाथा। उसने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की योजना बनालीथी। इसलिए उसने अपने स्वामी और स्वसुर दिमित्र के आदेश की चिन्ता न की। उधर वि० पू० ११० (167 B. C.) के आसपास हिन्दुकुश की उपत्यका के एक युद्ध में दिमित्र मारागया।

पाटलिपुत्र और काशी - कौशल से पीछे हटजाने पर भी मेनान्द्र ने मथुरा, कुरु, पांचाल पर, तथा यमुना से पश्चिम के सारे प्रदेश पर अपना अधिकार बनाएरखा।

पुष्यमित्र ने वि० पू० १२७ (184 B. C.) में वृहद्रथ के सिंहासन पर अधिकार किया। मगध, विदिशा, विदर्भ और काशी - कौसल में अपनी सत्ता सुदृढ़ करलेने के पश्चात् उसने अपना पहला अश्वमेध किया। जिसके अश्व के साथ सेनासहित प्रयाण करके उसने सम्भवतः पांचाल, कुरु, मथुरा और पँचनद में, यमुना की पश्चिमी उपत्यका तक के प्रदेश से मेनान्द्र का अधिकार समाप्त करदिया।

कुलिन्द्राइन प्रान्त— तालमी के वर्णन से विदित होताहै कि यवनसाम्राज्य में पाताल, सुराष्ट्र, आभीर के साथ उत्तर में गन्धार, कस्पीरिया और कुलिन्द्राइन प्रान्त भी थे। कस्पीरिया की पहिचान कश्मीर से तथा कुलिन्द्राइन की कुलिन्द जनपद से कीजातीहै [४]।

१- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ९९३

२- कनिंघम — स्तूप आव भारहुत, पृ० १६; बरुआ तथा सिंह — भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १५०

३- जौनरल आव न्यूमिसमेटिक सोसायटी, जि० १७, भाग १, पृ० २५

४- द्र० मोतीचन्द्र — सार्थवाह, पृ० ९१- ९२

इससे निश्चित है कि मेनान्द्र का कुलिन्द जनपद पर अवश्य कुछ काल तक अधिकार रहाथा। मेनान्द्र ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने से पूर्व पँचनद और कुरु-पांचाल में अपना राज्य स्थापित करदियाथा। तबसे लेकर पुष्यमित्र के प्रथम अश्वमेध तक के दस - पन्द्रह वर्षों तक मेनान्द्र का अधिकार कुलिन्द, कुरु-पांचाल तथा मथुरा के कुछ भाग पर रहा। इसीलिए मेनान्द्र की मुद्राएँ इन प्रदेशों में बड़ी सँख्या में मिलतीहैं।

साकल से अहिच्छत्रा - साकेत पहुँचने केलिए मार्ग स्रुघ्न होकर जाताहै। इसलिए यवन आक्रान्ताओं ने अवश्य स्रुघ्न पर अधिकार कियाहोगा। शिमला के पास सबाथू से लेकर आगरा के पास भूतेश्वर तक मेनान्द्र की मुद्राएँ मिलीहैं। उसका राज्य कुमाऊँ से मैदान में आनेवाली इशमश=इक्षुमती=वर्तमान कालीनदी तक पहुँचाथा। इसलिए लगभग सारे कुलिन्द जनपद पर दस - पन्द्रह वर्षों तक मेनान्द्र का अधिकार रहाथा।

यवनों के अत्याचार— महाभारत और पुराणों से विदित होताहै कि यवन - शासनकाल में प्रजा सुखी न थी। इन विदेशी एवँ विधर्मी आक्रान्ताओं की दृष्टि में प्रजा को आतँकित करके उससे धन छीनना ही उनका एकमात्र कर्तव्य था [१]। इन शासकों को आर्षग्रन्थों के सम्पादकों ने लोककण्टक बतलायाहै [२]। बलपूर्वक प्रजा की नारियों का शीलभँग करना तथा गो - ब्राह्मणों की हत्याकरना उनके लिए सामान्य बातें थीं [३]। जितने दुराचारों की कल्पना होसकतीहै, वे उन सबको करतेथे। आपस में लड़ना - झगड़ना उनका दैनिक कृत्य था [४]।

गार्गीसँहिता से विदित होताहै कि ये विदेशी आक्रान्ता जिस प्रदेश पर आक्रमण करतेथे, वहां निर्मम हत्यकांड मचातेथे। इनके आक्रमण के समय देश के कुछ भागों में इतने अधिक पुरुष मारेगए कि गांवों में पुरुषों का मिलना दुर्लभ होगया। एक - एक पुरुष को दस - दस, बीस - बीस नारियाँ बरनेलगीं। भूमि जोतने और खेती की रक्षाकरने का कार्य भी नारियों को ही करनापड़ा। चातुर्वर्ण्य की मर्यादा भँग होगई। इन्हीं दिनों दो वर्षों तक वर्षा न होनेसे घोर अन्नकाल पड़गया। सहस्रों व्यक्ति अन्नाभाव से मृत्यु को प्राप्तहोगए [५]।

शुङ्ग-अधीनता— सम्भवतः मेनान्द्र की दासता से कुरु - पांचाल, मथुरा और स्रुघ्न जनपद को स्वतन्त्रता दिलानेका श्रेय पुष्यमित्र को था। ऐसा प्रतीत होताहै कि तब

१- विष्णुपुराण, अंश ४, अ० २४।७१ २- वनपर्व, १९१।३३ - ३४

३- परजिटर — डाइनेस्टीज आव कलि एज, पृ० ५६

४- 'भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः।
नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपाः॥
युगदोषदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते।
स्त्रीणां बालबधेनैव हत्वा चैव परस्परम्॥' — परजिटर—पूर्वोक्त, पृ० ५३ - ५४

५- उ० वासुदेवविष्णु मिरासी — कालिदास, पृ० ४७

से कुरु - पांचाल, मथुरा और स्रुघ्न के नरेशों ने शुङ्गों की अधीनता स्वीकार करली।

इतिहासलेखकों ने भारहुत के स्तम्भलेख में 'सुगनं रजे' (शुङ्गानां राज्ये) के आधार पर विश्वदेव के वँशजों को शुङ्गनरेशों के अधीनस्थ मानाहै [१]। किन्तु 'सुगनं रजे' का तात्पर्य यह भी होसकताहै कि – शुङ्गों के राज्य के अन्तर्गत अर्थात् शुङ्ग नरेशों द्वारा शासित प्रदेश भारहुत नामक स्थान पर राजा धनभूति ने इस तोरणादि का निर्माण कियाथा।

फिर भी स्रुघ्न के इस राजवँश को शुङ्गों का अधीनस्थ मानाजासकताहै। अपने शक्तिशाली पश्चिमी शत्रु मेनान्द्र से अपनी रक्षा करनेहेतु उनकेलिए ऐसा करना आवश्यक था।

कुछ वर्ष पूर्व देहरादून में भद्रमित्र नामक एक राजकर्मचारी की मुद्रा (मुहर) प्राप्तहुईथी, जिसपर शुँगकालीन लिपि में 'भद्रमित्रस्य द्रोणीघाटे' अँकित था। इससे विद्वानों का अनुमान है कि सम्भवतः भद्रमित्र शुङ्गनरेशों का कोई राजकर्मचारी था, जिसका कार्य द्रोणी (दूनप्रदेश) में व्यापारिक मार्ग की चुँगी वसूलकरना था [२]।

अनुमान लगताहै कि अग्रराज्य के राज्यकाल के आरम्भिक वर्षों में यवनशासन आरम्भ होगयाथा और उसके शासनकाल के अन्तिम वर्षों में ही समाप्त होसका।

धनभूति, प्रथम

यह नरेश पुष्यमित्र का समकालीन मानाजाताहै। उसने पुष्यमित्र- अग्निमित्र के राज्यकाल में भारहुत स्तूप के पूर्वी तोरण और स्तम्भ का निर्माण करके उस पर अपना शिलालेख अँकित कियाथा। कनिंघम की धारणा थी कि इस धनभूति प्रथम का राज्यकाल वि० पू० १८३ - १६३ (240 - 220 B. C.) के आसपास रहाहोगा [३]। किन्तु कनिंघम के इस अनुमान में सँशोधन की आवश्यकता है।

(१) भारहुत और सांची के स्तूपों के निर्माण का आरम्भ अशोक के राज्यकाल में होचुकाथा [४]। किन्तु उनके द्वार, तोरण, स्तम्भ, वेष्ठिनी आदि अलँकरणों का निर्माण शतियों तक चलतारहा [५]। धनभूति स्वयँ ही अपने अभिलेख में सुगनं रजे या शुँगानां राज्ये का उल्लेख करताहै। शुँगराज्य वि० पू० १२७ (184 B. C.) के आसपास आरम्भ हुआ। इसलिए धनभूति का राज्यारम्भ इस तिथि से अधिक पूर्ववर्ती नहीं होसकता।

(२ लिपि के आधार पर भी विद्वानों की धारणा है कि भारहुत के अभिलेख, जिनमें धनभूति, उसकी पत्नी नागरक्षिता और धनभूति के पुत्र वृद्धपाल के अभिलेख भी सम्मिलित हैं, अशोक के जीवनकाल के नहीं होसकते। वे निश्चय ही परवर्ती मौर्य या शुँगनरेशों के राज्यकाल के हैं [६]।

१- रैप्सन – कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डिया, जि० १, पृ० ४७१ - ७२

२- चन्द्रगुप्त विद्यालंकार – प्राचीन पञ्जाब और उसका पास - पड़ोस, पृ० ६

३- कनिंघम – स्तूप आव भारहुत, पृ० १३०

४- ५- कनिंघम—भिलसा तोप्स, पृ० २७०

६- वरुआ तथा सिंह – भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० ११२

(३) भारहुत के लेख और सांची के स्तूप (२) के लेख समकालीन हैं। सांची में भदन्त नागिल [1] (नागरक्षित) और उसके सम्बन्धियों के दानलेख हैं [2]। भारहुत में भी नागरक्षित और उसकी माता चक्रमोचिका के दानलेख [3] मिलजाने से इस अनुमान की पुष्टि होतीहै।

(४) सांची के स्तूप (२) के अन्दर ममस्न हिमवन्त के आचार्य कश्यपगोत्र, मज्झिमस्थविर, हारीतिपुत्र, गोतीपुत्र और मोग्गलिपुत्त के शरीरनिधान (अस्थिकलस) प्राप्त हुएहैं [4]। इसी स्तूप पर भदन्त नागिल का पूर्वोक्त लेख भी है [5]।

मोग्गलिपुत्त तिस्स ने ८० वर्ष की आयु में वि० पू० १९४ (251 B. C) में शरीरत्याग किया [6]। बौद्धमत की तृतीय सँगीति वि० पू० १९६ (253 B. C.) के समय उन्होंने मज्झिमस्थविर आदि को धर्मप्रचारहेतु भेजाथा [7]। यदि उस समय इन स्थविरों की आयु तीस वर्ष की मानें और मोग्गलिपुत्त तिस्स के समान उनकी भी दीर्घायु हुई हो तो उनका देहावसान वि० पू० १४३ (200 B. C,) के आसपास हुआहोगा।

हिमवन्त से मज्झिमस्थविर के अवशेष अहोगँग पहुँचाने में, उनके लिए सांची में स्तूप बनाने और स्तूप में अवशेष-स्थापना करने में बीस-पच्चीस वर्ष का समय लगसकताथा। इसलिए सांची के द्वितीय स्तूप में स्थविरों के अवशेषों की स्थापना वि० पू० ११८ (175 B C-) के आसपास मानसकतेहैं।

(५) जिनदिनों स्रुघ्ननरेश भारहुत के तोरणनिर्माण -जैसे महान् कार्य में सँलग्न था, उनदिनों उसके राज्य में, उत्तरभारत में, तथा शुँगसाम्राज्य में शान्ति और समृद्धि का समय रहाहोगा। भारहुत की वेष्टिनी और तोरण के बचेहुए अँशों को, जिन्हें कनिंघम ने सुरक्षित करदियाहै, देखकर विदित होताहै, यह कार्य ऐसे युग में हुआहोगा जो गुप्तकाल के स्वर्णयुग के समान सुव्यवस्था और समृद्धि का युग रहाहोगा।

ऐसा समय पुष्यमित्र के राज्यकाल में, आरम्भिक उथल - पुथलों के पश्चात् ही होसकताहै।

(६) यह भी ध्यान देनेयोग्य तथ्य है कि सांची, भारहुत और बोधगया में यवन शिल्पियों का भी प्रयोग हुआथा [8]। कहीं - कहीं वे अपनी स्मृति खरोष्टी अक्षरों में अँकित भी करगएहैं [9]। इन बौद्ध - तीर्थों के महान् निर्माणकार्य में, जहां राजा और प्रजा, समृद्ध और अकिंचन, पुरुष और नारी, बृद्ध और बालक, भारतीय और विदेशी, सभी ने बड़ी श्रद्धापूर्वक अपना यशाशक्ति योगदान समर्पित कियाथा, वहां बौद्धमत के महान् सँरक्षक और अर्हंत मानेजानेवाले मेनान्द्र ने कुछ भी योगदान न दिया।

१- कनिंघम—भिलसा तोप्स, पृ० २८०
२ कनिंघम — पूर्वोक्त पृ० २६३
३- एपिग्राफिया इंडिका, जि० ३३, पृ० ५०
४- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २८७
५- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २८०
६- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २९१
७- द्र० राहुल — बुद्धचर्या, पृ० ४३७
८- राखालदास — पाषाण-कथा, पृ० २५, ४१
९- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डिया, जि० १, पृ० ५६७

इस तथ्य से भी विदित होताहै कि भारहुतस्तूप के तोरणादि का निर्माणकार्य यवन-आक्रमण के पश्चात् पुष्यमित्र के राज्यकाल में उस समय हुआ, जब पुष्यमित्र और मेनान्द्र के सम्बन्ध शत्रुतापूर्ण थे।

(७) भारहुत के शिलाचित्रों में बुद्ध के स्थान पर केवल बोधिमण्ड या बुद्ध के चरण - युगल अँकित हैं [१]। तबतक बुद्ध की मूर्ति अँकित करनेकी प्रथा न चलीथी [२]। अशोककालीन शिल्पी पशु - पक्षियों का चित्रण तो बड़ी कुशलता और उत्सुकता से करतेथे किन्तु मानव-आकृतियां अँकित करनेसे हिचकतेथे [३]। भारहुत के शिल्पियों को अगणित कार्यकलापों में व्यस्त मानव-आकृतियां अँकित करने में आनन्द आताथा [४]।

इन तथ्यों पर ध्यान रखतेहुए हमारा अनुमान है कि धनभूति प्रथम की राज्यावधि वि० पू० १०३ - ८३ (160 - 140 B. C.) के आसपास होनीचाहिए। उसके राज्यकाल के पश्चात् उसकी रानी नागरक्षिता और पुत्र वृद्धपाल ने स्तूप - अलँकरण का कार्य चालू रखा।

शान्ति और समृद्धि— धनभूति प्रथम और उसके वँशजों का राज्यकाल शान्ति, सुख और समृद्धि का युग था। यवन - आक्रमण से हुई क्षति की पूर्ति उस व्यापार से होगईथी, जिसका स्रुघ्न प्रधान केन्द्र था। यवनराज्य यमुना से पश्चिम की ओर हटजानेसे शुँगराज्य और यवनराज्य के बीच व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र स्रुघ्न में स्थापित होगयाथा। यह पर्वतीय और मैदानी प्रदेशों के बीच व्यापार केलिए भी महत्वपूर्ण था।

पश्चिम में साकल से, दक्षिण में थूणा (स्थाण्वीश्वर) और मथुरा से, उत्तर में तामसप्रदेश और गङ्गाघाटी से तथा पूर्व में अहिच्छत्रा, गोविषाण और अहोगङ्ग से मार्ग आकर यहां मिलतेथे। यहां यमुना पार उतरने का पत्तन था। तरपण्य या नदी पारकरने का शुल्क आय का महत्वपूर्ण साधन था। उनदिनों हिमालय के पादप्रदेश में बौद्धमत की प्रतिष्ठा बढ़रहीथी। इससे चौरास्ते पर स्थित स्रुघ्न का धार्मिक महत्व भी बढ़गयाथा। यहां पहुँचकर सार्थ के व्यापारी उत्तरापथ के महामार्ग पर सार्थों की रक्षा करनेवाले सिद्धयात्रयक्ष की पूजा करतेथे [५]। यहां अनेक बौद्धस्तूप भी थे।

धनभूति प्रथम का राज्यकाल कुणिन्द-राज्यकाल का स्वर्णयुग था। स्रुघ्ननगर की समृद्धि का महाभाष्य में बार - बार उल्लेख मिलताहै।

पारिवारिक जीवन— सांची और भारहुत के अभिलेखों से धनभूति प्रथम के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में भी कुछ सूचनाएँ प्राप्त होतीहैं। उसकी माता बाछी अर्थात् वत्स-परिवार की थी। उसकी एक रानी नागरक्षिता का नाम उसके पृथक् अभिलेख से मिलताहै। धनभूति द्वितीय के अभिलेख से उसके पिता वाधपाल की माता को भी वात्सी

१- ट्वण्टिफाइव हण्ड्रेड इयर्स ग्राव बुद्धिज्म, पृ० ३०३

२- एज ग्राव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ९०

३- एज ग्राव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५१०

४- एज ग्राव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५१३

५- महामयूरी, श्लोक २३

अर्थात् वत्स-परिवार की बतायागयाहै। राजकुमार वाधपाल अपने दानलेख में अपने को राजा धनभूति का पुत्र बतलाताहै, किन्तु अपनी माता का नाम नहीं देता।

इससे विदित होताहै कि धनभूति प्रथम की दो रानियां थीं। एक वात्सी, जिसका पुत्र वाधपाल (वृद्धपाल) था और दूसरी नागरक्षिता, जिसका सम्भवतः कोई पुत्र न था।

नागरक्षिता की जनभूमि सम्भवतः अहोगङ्ग के पास मोरगिरि में थी। भिक्षुणी बनजाने पर भारहुत में उसने जो अपना दानलेख अँकित करायाहै उसमें उसे मोरगिरि की भिक्षुणी कहागयाहै [१]। उसका भ्राता नागिल (नागरक्षित) और उसकी माता चकमोचिका (चक्रमोचिका) ने प्रव्रज्या लेलीथी। पीछे नागरक्षिता भी भिक्षुणी नागिला वनगई।

नागरक्षित ने सम्भवतः बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कीथी। उसे अभिलेख में भदन्त कहागयाहै। नागरक्षित और उसकी माता चक्रमोचिका का दानलेख भारहुत में है। नागरक्षित के देहावसान पर या उसके जीवनकाल में ही उसके परिवारवालों ने भी अपना दानलेख अँकित कियाथा।

उनदिनों अहोगङ्ग के स्थविरों के शरीर - निधानों की स्थापना सांची में होरहीथी। अहोगङ्ग के पास मोरगिरि की जनता पर स्थविरों का बड़ा प्रभाव था। फलतः उसने भी नागिला, नागिल और चकमोचिका के साथ अपने दान अर्पित किएथे।

वृद्धपाल

वाधपाल या वृद्धपाल, जैसा उसका नाम सूचित करताहै, सम्भवतः वृद्धों का, माता - पिता का भक्त था। उसने कुमारावस्था में ही, भारहुत में अपना दान अँकित करायाथा [२]। इससे विदित होताहै कि उसके पिता राजा धनभूति का राज्यकाल अपेक्षाकृत लम्बा था, जिससे पिता और पुत्र, दोनों लगभग एकसाथ ही अपना दान अँकित करवासकेथे।

भारहुत में पूर्वी तोरण का निर्माण राजा धनभूति प्रथम ने करवायाथा। स्तूप की वेष्ठिनी पर धनभूति के पुत्र कुमार वृद्धपाल का लेख मिलजाने से सिद्ध होगयाहै कि पूर्वी तोरण और वेष्ठिनी का निर्माण लगभग एक ही अवधि में हुआथा [३]।

धनभूति (द्वितीय)

धनभूति द्वितीय का दानलेख भारहुत में नहीं मिलता, मथुरा में मिलताहै [४]।

१- 'मोरगिरिम्हं नागिलाया भिखुनिया दानं थभा।' — हुल्श इंडियन ऐंटिक्वारी, जि० २१, पृ० २३४

२- ३- कनिंघम—स्तूप आव भारहुत, पृ० १४२ ४- बरुआ तथा सिंह—भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १०२

तबतक भारहुत में निर्माणकार्य समाप्त होचुकाथा, ऐसा नहीं कहाजासकता। धनभूति द्वितीय ने सम्भवत: अपने धन का उपयोग निकटवर्ती स्थान पर करना उचित समझाथा। बलभूति की मुद्राएँ मथुरा में भी मिलीहैं। सम्भवत: मथुरानगर स्रुघ्ननरेशों की राज्य सीमा से अधिक दूर न था।

धनभूति द्वितीय के दानलेख की लिपि विशेष महत्व रखतीहै। उसके सभी अक्षरों पर मात्राएँ लगीहैं, तथा उनपर शिरोपंक्तियां भी हैं [१]। यह बातें अशोककालीन लिपि में नहीं मिलतीं। कुणिन्दनरेश अमोघभूति, औदुम्बरनरेश धरघोष तथा एक अन्य नरेश वरम्मिक की मुद्राओं के लेखों में भी ये विशेषताएँ मिलतीहैं [२]। इसलिए अमोघभूति का राज्यकाल धनभूति द्वितीय के राज्यकाल से आधी शती से अधिक परवर्ती नहीं होसकता।

बलभूति

धनभूति प्रथम, वृद्धपाल और धनभूति द्वितीय की मुद्राएँ नहीं मिलतीं। अग्रराज के समय से स्रुघ्ननरेशों ने, यवनदासता से मुक्त करानेवाले शुँगराजवँश की अधीनता स्वीकार करलीथी। इसलिए अग्रराज के राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों के पश्चात् से लेकर धनभूति द्वितीय के राज्यकाल तक स्रुघ्ननरेशों की मुद्राएँ नहीं मिलतीं।

अग्निमित्र के पुत्र ज्येष्ठमित्र तथा वसुमित्र का राज्यकाल वि० पू० ६६ (123 B. C.) के आसपास समाप्त होगया। धनभूति द्वितीय के पश्चात्, स्रुघ्ननरेश बलभूति की मुद्राएँ मिलनेलगतीहैं। पुष्यमित्र का पौत्र वसुमित्र, जिसने मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार पुष्यमित्र के यज्ञ - अश्व को सिन्धुतट पर यवनों से छुड़ायाथा, शक्तिशाली शासक था।

सम्भवत: अग्निमित्र के राज्यकाल में दक्षिण में कलिंग और आन्ध्र की बढ़तीहुई शक्ति का प्रभाव शुँगराज्य पर पड़ाथा। पाटलिपुत्र और विदिशा में शुँगराज्य को समाप्त करनेहेतु षड़यन्त्र होतेरहतेथे। बाण के अनुसार शुँगनरेश सुमित्र की हत्या नृत्य का अभिनय देखते समय कीगईथी [३]। कुछ विद्वान् इस सुमित्र की पहिचान वसुमित्र से करतेहैं [४]।

ऐसा प्रतीत होताहै कि अग्निमित्र के राज्यकाल से शुँगशासन में शिथिलता आनेलगी, और वसुमित्र के राज्यकाल में या पश्चात् शुँगसाम्राज्य के जनपद स्वतन्त्र प्राय: होगए और अपनी मुद्राएँ ढालनेलगे। सम्भवत: वि० पू० ६६ (123 B. C.) के पश्चात् किसीसमय स्रुघ्ननरेश बलभूति ने भी अपनी मुद्रा प्रसारित करदी।

बलभूति की मुद्रा—बलभूति की मुद्राएँ बहुतकम मिलतीहैं। कनिंघम को कुल तीन मुद्राएँ मिलीथीं। उसकी मुद्राएँ ब्रिटिश सँग्रहालय में भी हैं। अन्य विद्वानों ने भी उनका अध्ययन कियाहै [५]। बलभूति ने अपनी ताम्रमुद्रा का निर्माण ज्येष्ठमित्र की

१ बरुआ तथा सिंह—भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १०२
२- कनिंघम—स्तूप आव भारहुत, पृ० १४२
३- हर्षचरित, पृ० ३५२
४- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ९७
५- वन्द्योपाध्याय – प्राचीन मुद्रा, पृ० १३३

ताम्रमुद्रा के अनुकरण पर कियाथा [१]। ज्येष्ठमित्र की मुद्रा के समान उसकी मुद्रा पर भी अग्रभाग में दहिना हाथ ऊपर उठाएहुए पुरुषाकृति है। तथा पृष्टभाग में वेदीसहित बोधिवृक्ष बौद्धवेष्ठिनी से घिरा है। उस पर ब्राह्मीलेख – 'राञ बलभूतिस' अंकित है [२]।

शुंगमुद्रा के अनुकरण पर बनी उसकी मुद्रा से विद्वानों का अनुमान है कि उसने शुंगराजवंश से सर्वथा सम्बन्ध - विच्छेद न कियाथा। वह किसी न किसी रूप में शुंग - साम्राज्य के अधीन था [३]।

अमोघभूति

कुणिन्दनरेशों में सबसे अधिक ख्याति अमोघभूति को प्राप्त हुई। उसकी ख्याति केवल उसकी मुद्राओं पर निर्भर है, जो पूर्व में गङ्गाजी के तट पर श्रीनगर (गढ़वाल) के पास सुमाड़ीगांव से लेकर पश्चिम में सतलुज के पार ज्वालामुखी तक, तथा दक्षिण में करनाल और सुनेत तक मिलीहैं।

रजत और ताम्र की इन मुद्राओं में निर्माणकौशल के साथ अंकनों की विविधता भी मिलतीहै। ये मुद्राएं अबतक लगभग दो - तीन सहस्र तक प्राप्त होचुकीहैं। इनमेंसे एक सहस्र अकेले सुमाड़ीगांव से प्राप्त हुईथीं। अभीतक इस नरेश का कोई अभिलेख नहीं मिलाहै और न किसी प्राचीन ग्रन्थ में उसका उल्लेख मिलताहै।

समकालीन परिस्थिति— सम्भवत: वि० पू० ४३ (100 B. C.) के आसपास अमोघभूति को स्रुघ्न का सिंहासन मिला। उस समय तक पूर्व की ओर पांचाल, अयोध्या, कौशाम्बी के तथा दक्षिण में मथुरा के जनपदों की स्वतन्त्र सत्ता स्थापित होचुकीथी।

पश्चिम की ओर यमुना और सतलुज के मध्यवर्ती पर्वतीयप्रदेश के पश्चिमी भाग पर, शिमला के आसपास तक मेनान्द्र के पौत्र अपोलोदोतस द्वितीय की राज्यसीमा पहुंची-हुईथी। दक्षिण की ओर सतलुज के पूर्वी तट से यमुना के पश्चिमी तट तक यौधेयगण की भूमि पर भी किसी न किसी रूप में यवनसाम्राज्य बनाहुआथा।

गणराज्यों का जागरण— शुंगसाम्राज्य के उत्तरार्द्ध में जब पांचाल आदि जनपदों में स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना हुई, तो वि० पू० ४३ (100 B. C.) के आसपास यमुना और सतलुज की दक्षिणी उपत्यका में यौधेयगण ने, तथा सतलुज और व्यास की निचली उपत्यका में औदुम्बरगण ने यवनसत्ता उखाड़कर अपनी स्वतन्त्रता स्थापित करने के लिए संघर्ष आरम्भ करदिया। तथा यमुना से सतलुज-व्यास तक की पर्वतीय उपत्यका में यवनसाम्राज्य की सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए अमोघभूति जुटगया।

१- द्र० कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७४ - ७५

२- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, चित्रफलक ५ में मुद्रा संख्या १५, १६ तथा चित्रफलक ८ में मुद्रा संख्या ८ और ९

३- नीलकान्त शास्त्री—कौम्प्रेहेंन्सिव हिस्टरी आव इंडिया, जि० २, पृ० १३४

कुणिन्द, यौधेय और औदुम्बर गणों का जागरण, लगभग एक साथ हुआथा, इसकी पुष्टि इन गणों की रजतमुद्राओं से होतीहै। उनसे यह भी सिद्ध होताहै कि सम्भवतः तीनों गणों ने एक साथ ही यवनसत्ता उखाड़ने का प्रयत्न कियाथा और उसमें उन्हें पूरी सफलता मिलीथी। इसका श्रेय कुणिन्दगण के अमोघभूति तथा औदुम्बरगण के धरघोष और उसके सहयोगियों को है। उनके सहयोगी यौधेयगण के गणनायक का नामक मुद्राओं पर नहीं मिलता। वे अपनी सफलता का श्रेय अपने जातीय देव भगवान् ब्रह्मण्य को देतेथे।

मुद्राओं में समानता— कुणिन्द और औदुम्बरगण की रजतमुद्राएँ यवननरेश अपोलोदोतस की रजतमुद्राओं के अनुकरण बनीहैं [१]। दोनों के अग्रभाग में ब्राह्मीलेख और पृष्टभाग में खरोष्टीलेख हैं। आकार-प्रकार तथा शैली की दृष्टि से उनमें अद्भुत समानता है। इसीप्रकार की समानता कुणिन्द और यौधेयगण की रजतमुद्राओं में पाईगईहैं। केवल उनकी निर्माणशैली में ही नहीं, वरन् उनके ऊपर अँकित चिह्नों में भी रोचक समानता मिलीहै। इससे विद्वानों का अनुमान है कि अपोलोदोतस की मुद्राओं के अनुकरण पर बनी ये गणमुद्राएँ समकालीन हैं।

अमोघभूति, व्यक्ति या उपाधि— अबतक अमोघभूति की ताम्र और रजत मुद्राएँ लगभग दो-तीन सहस्र तक प्राप्त होचुकीहैं। इतनी अधिक सँख्या में मिलने से, उनपर अँकित चित्रों में रोचक विभिन्नता होने से तथा कुछ पर केवल ब्राह्मीलेख और कुछ पर ब्राह्मी एवं खरोष्टी दोनों लिपियों के लेख मिलने से जायसवाल की धारणा थी कि वे मुद्राएं, जिन पर अमोघभूति का नाम है, ईसापूर्व १५० से १०० ईसवी तक, ढाई सौ वर्षों तक चलतीरहीं [२]। उनपर अँकित 'अमोघभूति', व्यक्तिविशेष का नाम न होकर उपाधि-मात्र है। इस उपाधि अमोघभूति का अर्थ है अनन्त विभूतिवाला। कुणिन्दनरेश अपनी मुद्राओं पर अपना नाम न देखकर इस उपाधि को अँकित करतेथे [३]।

कनिंघम आदि विद्वान् जायसवाल की धारणा से सहमत नहीं हैं। प्रसिद्ध मुद्राविद् एलन ने अमोघभूति की अनेक मुद्राओं का भलीप्रकार अध्ययन करके निश्चय कियाहै कि अमोघभूति राजा-विशेष का ही नाम था। उसकी रजतमुद्राओं से कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह मानाजासके कि वैसी मुद्राएँ केवल एक राजा के राज्यकाल में ही नहीं, वरन् शतियो तक ढालीजातीरहीं। इसलिए 'अमोघभूति' को उपाधि मानने की तथा उस उपाधि का विभिन्न नरेशों द्वारा शतियों तक प्रयुक्त करनेकी कल्पना निराधार हैं [४]।

जहांतक अमोघभूति की ताम्रमुद्राओं की बात है, यह मानाजासकताहै कि उसकी ताम्रमुद्राओं के अनुकरण पर आरम्भिक शक-कुशाण आक्रान्ताओं ने अपनी मुद्राएं ढालीथीं [५]। जिससे उनकी और आक्रान्ताओं की मुद्राएँ पृथक पहचानने में कठिनाई होगईहै।

१- एलन — कैटेलौग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ. XXXV
२- ३- जायसवाल — हिन्दू राज्यतन्त्र, भाग १, पृ० ११० - ११
४- ५- एलन — पूर्वोक्त, पृ० cii

राज्यावधि — धनभूति का राज्यकाल पहले कनिंघम ने वि० पू० ९३ (150 B. C.) के आसपास मानाथा [१]। पीछे अमोघभूति के समकालीन औदुम्बरनरेश धरघोष का राज्यकाल उन्होंने वि० पू० ४३ (100 B. C,) के आसपास निश्चित किया [२]। कनिंघम को धनभूति, धरघोष और अपोलोदोतस की मुद्राएँ एकसाथ ज्वालामुखी में एक खेत में मिलीथीं। इसलिए अपोलोदोतस की तिथि का ध्यान रखतेहुए उन्होंने धरघोष की तिथि का निश्चय कियाथा [३]।

एलन [४] और रैप्सन [५] अमोघभूति का राज्यकाल ईसापूर्व पहिली शती के उत्तरार्द्ध में मानतेहैं। जायसवाल 'अमोघभूति' का राज्यकाल वि० पू० ९३-१५७ वि० (150 B. C. 100 A. D.) तक मानतेहैं। वे 'अमोघभूति' को उपाधि मानतेहैं, राजा नहीं। इसलिए उनकी धारणा के अनुसार 'अमोघभूति' की उपाधि धारण करनेवाले प्रथम नरेश का राज्यकाल वि०पू० ९३ (150 B. C.) के आसपास आरम्भ होताहै।

डी० सी० सरकार ने लिखा है — प्राय: यह विश्वास कियाजाताहै कि अमोघभूति ने ईसापूर्व पहली शती के अन्तिम वर्षों में, यवनसाम्राज्य के अवसान के अवसर पर, अपने लिए एक राज्य की स्थापना करलीथी [६]। यह धारणा असम्भव नहीं है [७]। किन्तु यदि अमोघभूति को, जिसका राज्यकाल दीर्घ अवधि तक रहा, ईसा की दूसरी या तीसरी शती में भी स्थान दियाजाए तो उसकी मुद्राओं पर मिलनेवाली लिपि के विपरीत न होगा [८]।

अमोघभूति की मुद्रा पर जो लिपि मिलतीहै, यदि वह ईसा की दूसरी - तीसरी शती तक भी चलतीरहीहो तो केवल इसीलिए अमोघभूति का राज्यकाल भी लिपि के साथ ही दूसरी - तीसरी शती तक नहीं घसीटा जासकता।

कनिंघम ने अमोघभूति और धरघोष की मुद्राओं पर मिलनेवाली लिपि में तथा धनभूति द्वितीय के मथुरा - अभिलेख की लिपि में पूरी समानता पाईहै [९]। इससे अन्य विद्वान् भी सहमत हैं [१०]। इसलिए धनभूति द्वितीय और अमोघभूति के राज्यकाल में अधिक अन्तर नहीं होसकता। और न दोनों को ईसा की दूसरी या तीसरी शती में घसीटा जासकताहै।

भारहुत के तोरण - स्तम्भ का निर्माण करनेवाले धनभूति प्रथम का राज्यकाल पुष्यमित्र के राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में और अग्निमित्र के राज्यकाल में होनाचाहिए।

१- कनिंघम — आर्केलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० १४, पृ० १३४

२- ३- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ६७

४- एलन — कैटैलोग आब दि क्वाइन्स आब एनशिएंट इंडिया, पृ० ciii

५- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आब इंडिया, जि० १, पृ० ४७६

६- ८- डी० सी० सरकार — एज आब इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६१ टि०

९- कनिंघम — स्तूप आब भारहुत, पृ० १६   १०- बरुआ तथा सिंह—भारहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १६

उसके पश्चात् बृद्धपाल, धनभूति द्वितीय और बलभूति के लिए लगभग ४० वर्ष की अवधि रखने पर अमोघभूति का राज्यकाल वि० पू० ४३ (100 B. C.) के आसपास निकलताहै।

कनिंघम ने यही तिथि धरघोष के लिए निर्धारित कीहै [१]। दोनों की मुद्राएँ साथ मिलने से तथा मुद्राओं में समानता होने से अनुमान लगताहै कि सम्भवत: धरघोष और अमोघभूति समकालीन और सहयोगी थे।

अमोघभूति ने अपनी मुद्राओं पर अग्निमित्र और ज्येष्टमित्र की मुद्राओं पर मिलनेवाले 'सुमेरु के ऊपर नन्दिपाद' के अँकन अँकित किएथे [२]। इन समानताओं का ध्यान रखतेहुए अमोघभूति को वि० पू० ४३ (100 B. C.) से बहुत - पीछे नहीं रखा-जासकता।

एलन की धारणा है कि आरम्भिक कुशाणनरेशों ने अमोघभूति की ताम्रमुद्राओं का उसीप्रकार अनुकरण कियाथा, जिसप्रकार उन्होंने यवननरेश हरमस की मुद्राओं का कियाथा [३]। इसलिए अमोघभूति का राज्यकाल आरम्भिक कुशाणनरेशों से पहले होना चाहिए। उसे ईसा की दूसरी-तीसरी शती में रखना सँगत नहीं है।

राज्यविस्तार— अमोघभूति से परवर्ती कुणिन्दनरेशों – अग्रराज और बलभूति की मुद्राएँ तथा उनसे भी परवर्ती कुणिन्द और कादमुद्राएँ, मुख्यत: यमुना के दोनों तटों पर स्थित प्रदेश में मिलीहैं। कौशाम्बी और मथुरा में मिलीं अग्रराज और बलभूति की मुद्राओं को वहां दान या व्यापार के कारण पहुँचा मानाजासकताहै। इन दोनों की मुद्राएँ स्रुघ्न में भी मिलीथीं, जहां उनकी राजधानी थी।

इसलिए आरम्भ में कुणिन्दनरेशों का राज्य यमुना की पश्चिमी उपत्यका से लेकर पूर्व की ओर गढ़वाल - कुमाऊँ के कुछ भाग तक सीमित रहाहोगा।

हर्ष के राज्यकाल में स्रुघ्नराज्य की सीमा पूर्व की ओर गङ्गाजी तक फैलीथी। उससे आगे ब्रह्मपुर राज्य था। दक्षिण में भाबरप्रदेश से लेकर उत्तर में महोच्चपर्वत तक स्रुघ्नराज्य का विस्तार था। उसके मध्य से होकर यमुनानदी बहतीथी [४]। राज्य का घेरा लगभग १००० मील था।

आरम्भिक स्रुघ्नराज्य में ब्रह्मपुर सम्मलित था या नहीं, कहना कठिन है। प्रमाणों के अभाव में अमोघभूति के पूर्वज धनभूति और बलभूति के राज्य की सीमाओं का पता लगाना सम्भव नहीं है। भारहुत के पूर्वी तोरण का निर्माण करनेवाले धनभूति प्रथम का राज्य बड़ा समृद्धशाली था। उसके पूर्वज अग्रराज के राज्यकाल में यवन आक्रमण के पश्चात् इतनी समृद्धि सहसा न हुईहोगी। महाभाष्य भी स्रुघ्न को अति समृद्धिशाली चित्रित करताहै। पर उसकी सीमा के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता।

१- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ६७

२- एलन — कैटैलौग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० xcvi-xcvii

३- एलन – पूर्वोक्त, पृ० cii

४- वाटर्स—औन युवानचाङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, पृ० ३१८

अमोघभूति की मुद्राएँ पश्चिम में व्यासनदी से लेकर पूर्व में गङ्गाजी की उपत्यका तक मिलीहैं। दक्षिण में वे सुनेत, करनाल, स्रुघ्न और बेहट तक मिलीहैं। लालढांग के पास पांडुवाला के अवशेषों में स्तम्भों पर वही चित्र अँकित मिलेहैं, जो अमोघभूति की मुद्राओं पर मिलतेहैं।

अलमोड़ा में यद्यपि अभीतक अमोघभूति की कोई मुद्रा नहीं मिलीहै, पर वहां प्राप्त कुणिन्दमुद्राओं पर उसकी मुद्राओं का प्रभाव मिलताहै। सम्भव है कि अमोघभूति के राज्य में गङ्गाजी से पूर्व का भी कुछ भाग रहाहो।

यह भी सम्भव है कि कुलिन्दजनपद के अवयव स्रुघ्न, तामस, भारद्वाज, आत्रेय, तङ्गण और रँकु का शासन अमोघभूति की अधीनता में जनपद की प्राचीन गणप्रथा से चलतारहाहो।

यदि अमोघभूति के राज्यकाल में उसके पैत्रिक राज्य स्रुघ्न की सीमाएँ उसी प्रकार थीं, जैसी हर्ष के समय थीं, तो इतने बड़े राज्य के निर्माण का श्रेय उसीको है।

अमोघभूति का प्रतिद्वन्दी— वह यवननरेश, जिससे अमोघभूति ने सतलुज से रावी तक का प्रदेश छीनाथा, सम्भवत: मेनान्द्र का पौत्र अपोलोदोतस द्वितीय था। कुछ विद्वान् स्त्रोतो द्वितीय या फिलोपेतर को ही अपोलोदोतस द्वितीय मानतेहैं [१]।

अमोघभूति की ५४ रजतमुद्राएँ अपोलोदोतस द्वितीय की २१ रजतमुद्राओं के साथ कांगड़ाजिले के मेवातप्पे में मिलीथीं [२]। उसकी ३ रजतमुद्राएँ अपोलोदोतस द्वितीय की ३० रजतमुद्राओं के साथ उसी जिले में ज्वालामुखी नामक स्थान पर मिलीथीं [३]।

अपोलोदोतस द्वितीय के वँशजों — दिओनिसस, जोइलस तथा हिपोस्त्रेतस का राज्य साकल की पड़ोस में कुछ काल तक बनारहा। उनकी मुद्राएँ पूर्व की ओर अमोघभूति की मुद्राओं के साथ नहीं मिलतीं।

इन यवननरेशों से पँचनद की भूमि छीननेवाला शकनरेश अय (Azes) था, जिसने अपोलोदोतस द्वितीय तथा हिपोस्त्रेतस की मुद्राओं पर अपना नाम अँकित करके उन्हें पुन: प्रचारित कियाथा [४-५]।

'महाराज' विरुद— अमोघभूति के राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों तक यमुना से पश्चिम की ओर पर्वतीय ढालों और मैदानी भागों पर मेनान्द्र के वँशजों का अधिकार था। इस प्रदेश में यवननरेश अपनी मुद्राओं पर खरोष्टीलिपि का प्रयोग करतेथे। इस प्रदेश को जीतलेने पर अमोघभूति केलिए उसीप्रकार की मुद्राएँ प्रचारितकरना आवश्यक होगया, जिस प्रकार की उससे पूर्व यवननरेश ने प्रचारित कीथीं।

मौर्यकाल से ही भारत में चांदी की कमी होनेलगीथी। ईरान के साथ व्यापारिक

१- रैप्सन —— कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, पृ० ४६६

२- ३- एलन — कैटेलौग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ciii

४- रैप्सन — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ५००

५- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १२६

सम्बन्ध ढीले पड़जाने से अन्दराव की खानों से आनेवाली चांदी प्राप्तकरना कठिन होगया [१]। मौर्यनरेशों मेंसे कुछने अपनी ताम्रमुद्राओं पर चांदी का पानी चढ़ाकर ढालाथा [२]। लगभग दूसरी शती ईसवी पूर्व से तीसरी शती ईसवी तक भारतीय बाजारों में चांदी की तँगी रही और ताम्रमुद्राओं का बोलबाला रहा [३]।

अमोघभूति ने यवननरेशों के समान ताम्र और चांदी की मुद्राएँ प्रचारित कीं। उसकी रजतमुद्राएँ यवननरेशों की हेमिद्रक्म मुद्रा के अनुकरण पर बनीथीं। पर उनका स्वरूप भारतीय रखागयाथा [४]। यवननरेशों की मुद्राओं के समान अपनी ताम्र और रजतमुद्राओं पर उसने ब्राह्मीलेख के साथ खरोष्टीलेख भी अँकित किए।

उसने यवननरेशों के समान 'महाराज' विरुद धारण किया और अपनी मुद्राओं पर उसे अँकित कियाथा। इस दृष्टि से उसकी मुद्राओं का खरोष्टीलेख विशेष ध्यानदेने योग्य है।

मुद्रा के अग्रभाग में ब्राह्मीलेख सारी परिधि के समानान्तर है। किन्तु पृष्टभाग पर 'रञ कुणिन्दस अमोघभूतिस' इतना लेख तो परिधि के समानान्तर है और 'महारजस' मध्य में अँकित कियागयाहै [५]। मुद्राविदों का अनुमान है कि ऐसा 'महारज' शब्द को विशेष महत्वदेने केलिए कियागयाहै। यूनानी और शकनरेशों की मुद्राओं पर इसी उद्देश्य से नरेश का नाम मध्य में लिखाहुआ मिलताहै [६]।

आर्थिक लाभ— रजतमुद्राएँ प्रचारित करके और 'महाराज' विरुद धारण करके अमोघभूति ने राजनैतिक प्रभुत्व तो स्थापित किया ही था, साथ ही आर्थिक लाभ भी उठायाथा।

उसके राज्य में साकल, मथुरा, अहिच्छत्रा, थूणा (स्थाणवीश्वर) तथा तामस (शिमला - यामुन) प्रदेश, तङ्गण और रङ्कु के पर्वतीयप्रदेशों से आनेवाले व्यापारिक मार्ग मिलतेथे। उनदिनों साकल और मथुरा में विशाल व्यापारिक मण्डियां थीं। यवनमुद्राओं से मिलती - जुलती रजतमुद्राएँ बनादेने से उसकी रजतमुद्राओं को बाजार में यवन-रजत-

---

१-३- अग्रवाल – लेख, जौरनल आव न्यूमिसमेटिक सोसायटी आव इंडिया, जि० १२, पृ० १९८
४- एलन — कैंटैलौग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ci
५- ६- 'The Brahmi legend runs continuously round the coin, on the obverse; on the reverse in the Kharosti inscription, महारजस is written independently in the exergue, while the remainder runs round the coin. This latter arrangement is a little remarkable, and suggests that some importance is given to the word महाराज by giving it a place occupied by the King's name on the Greek and Shaka coins.'
— एलन – पूर्वोक्त, पृ० cii

मुद्राओं की प्रतिद्वन्दिता में टिकने में सफलता मिलगई [१] ।

शक-आक्रमण— अनुमान कियाजाताहै कि वि० पू० ३ (60 B. C.) के आसपास शक आक्रान्ताओं ने मथुरा पर अधिकार करलियाथा [२] । मथुरा से स्रुघ्न को सीधा मार्ग जाताथा । जिस पर शुँगकाल में दैनन्दिन यातायात का प्रबन्ध था [३] । स्रुघ्न - जैसे समृद्ध नगर पर अधिकार करने में शक - आक्रान्ताओं ने विलम्ब न कियाहोगा ।

सम्भवत: अमोघभूति के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में या उसकी मृत्यु के तुरन्त पश्चात् स्रुघ्न पर शकों का अधिकार होगयाथा । इन बातों को ध्यान में रखकर हमारा अनुमान है कि अमोघभूति का राज्यकाल वि० पू० ४३ - ३ (100 - 60 B. C.) के के आसपास मानाजासकताहै ।

अमोघभूति का राज्य सतलुज - रावी की मध्यवर्ती उपत्यका त्रिगर्त (कांगड़ा) पर भी फैलाथा । वि० पू० ३ (60 B. C.) के आसपास त्रिगर्त जनपद की मुद्राएँ मिलनेसे विदित होताहै कि उनदिनों त्रिगर्त में भी अमोघभूति का राज्य समाप्त होगयाथा । इन मुद्राओं पर ब्राह्मी और खरोष्टी में 'त्रकतजनपदस' अर्थात् त्रिगर्तजनपदस्य लिखा मिलताहै [४] ।

अमोघभूति की मृत्यु के पश्चात् उसके वंशजों को स्रुघ्न से अपनी राजधानी हटाकर पूर्व की ओर लेजानीपड़ीथी ।

अमोघभूति का इतिहास उसकी मुद्राओं के इतिहास के समान था । उसकी मुद्राओं ने यवन मुद्राओं को हटाकर अपने लिए स्थान बनायाथा । शीघ्र ही शक - कुशाण मुद्राओं ने उसकी मुद्राओं को हटाकर अपनेलिए स्थान बनालिया [५] ।

अमोघभूति का व्यक्तित्व— अमोघभूति उत्तराखण्ड का ऐसा ऐतिहासिक नरेश है, जिसका नाम प्राचीन भारत के इतिहास पर लिखेगए अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों में मिलताहै । तथा जिसकी मुद्राएँ भारी सँख्या में भारत और विदेशों के सँग्रहालयों में सुरक्षित हैं । उसने कुलिन्दजनपद के सम्भवत: सभी अवयवों – रङ्कु, आत्रेय (गोविषाण), तङ्गण, भारद्वाज, तामस और स्रुघ्न को एकछत्र के अधीन सँगठित कियाथा । तथा पश्चिम की ओर त्रिगर्तजनपद का भी कुछ भाग अपने राज्य में मिलालियाथा ।

दक्षिण की ओर उसके राज्य की सीमा उसकी राजधानी स्रुघ्ननगर से भी कुछ

१- 'Economically the silver coins of the Kunindas represent an attempt of an Indian ruler to issue a native silver coinage which would compete in the market with the later Indo - Greek silver.'

—— एलन – कैटेलौग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० cii

२- राहुल – मध्यएशिया का इतिहास, खण्ड १, पृ० १८०		३- महाभाष्य, १।३।२५

४- द्र०, नीलकान्त शास्त्री—कौम्प्रेहेंन्सिव हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, पृ० १३४

५- एलन — पूर्वोक्त पृ० ciii

और दक्षिण की ओर रहीहोगी। धुर सीमान्त पर राजधानी स्थापित करने की प्रथा नहीं मिलती। वर्तमान अम्बाला और सहारनपुरजिलों का उत्तरी भाग उसके राज्य के अन्तर्गत था ऐसा मानाजासकताहै।

यमुना और व्यास की मध्यवर्ती पर्वतीय उपत्यका को यवन - दासता से मुक्त करने का भी श्रेय उसे है।

उसके राज्यकाल के सम्बन्ध में जानने का एकमात्र साधन उसकी मुद्राएं हैं। उनसे विदित होताहै कि उसका शासन दीर्घकाल तक रहा। सम्भवतः उसकी आयु भी साठ - सत्तर वर्ष से अधिक हुई। उसकी मुद्राओं से विदित होताहै कि यवनमुद्राओं का अनुकरण करने पर भी उसने उन्हें भारतीय स्वरूप दियाथा।

मुद्राओं पर हरिण और शकुन्तला—अमोघभूति की रजतमद्राएँ बड़ी कलापूर्ण हैं। उसी युग की अनेक मुद्राओं की अपेक्षा उनमें चिन्हों को अँकित करनेमें बड़ी सुरुचि प्रकट कीगईहै। भारत की जितनी प्राचीन मुद्राएं गुप्तयुग से पहले की मिलीहैं, उनमें पशुओं का चित्रण उतना आकर्षक, सुन्दर और सुरुचिपूर्ण नहीं है जितना अमोघभूति की मुद्राओं पर मिलताहै।

अमोघभूति की मुद्रा पर कनिंघम के अनुसार अग्रभाग में दहिनी ओर एक हरिण है। उसके सींगों के बीच रिक्तस्थान पर बौद्धचिह्न है। उसके पैरों के बीच रिक्तस्थान पर चैत्य बनाहै। पीठ के ऊपर भी रिक्तस्थान पर एक संकेत विदित होताहै। दहिनी ओर हरिण की ओर मुख किए एक नारी खड़ी है, जिसके हाथ में पुष्प है [१]।

एलन के अनुसार मुद्रा के अग्रभाग में दहिनी ओर हरिण है। उसकी ओर मुख किए, कमल के ऊपर लक्ष्मी खड़ी है। उसका दहिना हाथ ऊपर उठाहै। जिसपर वह कमल का फूल लिए है। हरिण के सींगों के बीच रिक्तस्थान में ⌐॰ नाग अँकित है। तथा हरिण की पीठ के ऊपर रिक्तस्थान पर □ चिह्न है [२]। इस चिह्न को विद्वान् चतुर्वर्ग मानतेहैं [३]।

हिन्दु - पुराकथाओं में लक्ष्मी का कमल और गज से सम्बन्ध मिलताहै, पर हरिण से नहीं। मुद्रा पर हरिण का चित्र पूर्णतः स्पष्ट है। इसलिए मुद्रा पर अँकित नारी को हरिण को तृण खिलाती शकुन्तला मानना अधिक सँगत है। शकुन्तला की जन्मभूमि कुलिन्दजनपद में थी।

कण्वाश्रम स्रुघ्न से ७० मील से अधिक दूर नहीं है। उन्हीं दिनों शकुन्तला की गाथा लोकप्रिय होरहीथी। सहजाति से प्राप्त एक मृण्मूर्ति के चित्र को विद्वानों ने कण्वाश्रम में दुष्यन्त का प्रवेश मानाहै [४]।

१- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ॰ ७२; चित्रफलक २, चित्र १

२- एलन — कैटलोग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ॰ ci

३- द्र॰, मृण्मूर्ति का चित्र, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, भीतरी मुखपृष्ठ

विदित होताहै कि शुंगकाल तक शकुन्तला की गाथा उत्तरभारत में इतनी लोकप्रिय होचलीथी कि जनसाधारण में उसकी मृण्मूर्तियों का भी व्यापक प्रयोग चलपड़ाथा।

हरिण को तृण खिलाती शकुन्तला का चित्रण अमोघभूति को अतिप्रिय था। उसकी रजतमुद्राओं के चार विभाग मानेगएहैं, जिनमें चिह्नों की वृद्धिकरके या उनका स्थान बदलकर विभिन्नता लाईगईहै [१]। किन्तु हरिण और शकुन्तला सभी में अँकित हैं।

हरिण को भी विभिन्न ढँगों से अँकित करके विभिन्नता प्रकट कीगईहैं। कनिंघम द्वारा प्रकाशित पांचों कुणिन्दमुद्राओं पर हरिण का चित्र अँकित है [२]। किन्तु प्रत्येक में हरिण के खड़ेहोने के ढँग में कुछ न कुछ अन्तर है। पहिली रजतमुद्रा में शकुन्तला हरिण के अधिक निकट है। उसके हाथ तक, जिसमें तृण है, हरिण का मुँह पहुँचाहै [३]।

दूसरी रजतमुद्रा में शकुन्तला के दोनों हाथ नीचे हैं। हरिण का मुँह ऊपर उठा है। सम्भवत: वह दिएहुए तृण को चबाता दिखायागयाहै [४]। तीसरी ताम्रमुद्रा में हरिण अधिक मोटा है, किन्तु शेष चित्र अस्पष्ट है [५]।

चौथी ताम्रमुद्रा में हरिण और शकुन्तला की स्थिति बदल गईहै। इस मुद्रा में दर्शक के दहिने हाथ की ओर हरिण आगयाहै और शकुन्तला दर्शक के बांएँ हाथ की ओर है। इस चित्र में शकुन्तला तिरछी खड़ीहै। उसने तृणवाले हाथ को अधिक ऊँचा उठादियाहै। हरिन गरदन ऊँची करके तृण को प्राप्त करने का प्रयत्न कररहाहै। इससे उसका पेट तनगयाहै और पूँछ थोड़ा ऊपर उठगईहै [६]।

पांचवीं ताम्रमुद्रा में हरिण की स्थिति चौथी मुद्रा के समान है। पर मृग मोटा है, और उसके पैरों के बीच का अन्तर भी अधिक होगयाहै। चौथी मुद्रा में बने हरिण के समान वह सीधा तनकर खड़ा नहीं है [७]।

राखालदास वन्द्योपाध्याय द्वारा प्रकाशित कुणिन्दमुद्रा के चित्र में हरिण शकुन्तला के सन्मुख चढ़ाई से उतरकर आता दिखायागयाहै। उसके अगले पैर नीची भूमि पर हैं। गरदन ऊपर उठाने से उसमें गोलाई आगईहै। आंखें और सींग ऊपर उठेहैं। पूँछ नीचे झुकीहै [८]।

रैप्सन द्वारा प्रकाशित अमोघभूति की रजतमुद्रा में हरिण इस प्रकार खड़ाहै कि उसकी पूँछ, चारों पैर, एक कान और दोनों सींग स्पष्ट हैं। इस मुद्रा में बना मृग उसकी अन्य मुद्राओं के मृग की अपेक्षा छोटा और पतला है। उसके नेत्र भी छोटे हैं और मुख भी पतला है जो गरदन सीधी खड़ीकरने से कुछ सिकुड़ाहुआहै [९]।

१- एलन — कैटैलौग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ci

२- ६- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ७२; चित्रफलक ५, चित्र १, २, ३, ४

७, कनिंघम — पूर्वोक्त, चित्रफलक ५, चित्रसंख्या ५

८- वन्द्योपाध्याय — प्राचीन मुद्रा, चित्रफलक ११, चित्र ६, यह चित्र उलटा छपाहै।

९- रैप्सन —— कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, चित्रफलक ५, चित्रसंख्या १६

स्मिथ ने अमोघभूति की आठ मुद्राओं का वर्णन कियाहै। किन्तु उनके लेखों का अशुद्ध पाठ दियाहै [१]।

कलाप्रियता— मुद्राओं में प्रदर्शित विविधताएँ अमोघभूति की कलाप्रियता की पुष्टि करतीहैं। समुद्रगुप्त की व्याघ्रनिहन्ता - प्रकार की मुद्राओं में जो विविधता मिलतीहै, सीमितरूप में, लगभग उसीप्रकार की विविधता लाने का प्रयत्न इस पर्वतीयनरेश ने कियाथा, जो समुद्रगुप्त से चार शतियों पूर्व हुआथा।

उसने अपनी मुद्राओं पर वेदी - सहित बोधिवृक्ष, चैत्य, स्तूप, नन्दीपाद, त्रिरत्न, नाग तथा स्वस्तिक अंकित किएथे। ऐसे चिह्न समकालीन अन्य मुद्राओं पर भी मिलतेहैं। पर उसने उन्हें अपनी मुद्राओं पर ऐसे कलापूर्ण ढँग से अँकित कियाथा कि सैकड़ों मुद्राओं के बीच उसकी मुद्राओं को तुरन्त पहिचानाजासकताहै।

कार्य का महत्व — अमोघभूति के कार्य का महत्व आंकना कठिन है। उसने यमुना से रावी तक के पर्वतीयप्रदेश को यवन - दासता से मुक्त कियाथा। उसने समकालीन औदुम्बर और यौधेयगणों को भी स्वतन्त्रता - प्राप्ति के संघर्ष में सहायता दीथी। यवन - मुद्राओं का अनुकरण करने भी उसने अपनी मुद्राओं को पूर्णतः भारतीय स्वरूप प्रदान कियाथा। यही कार्य आगे चलकर चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्त ने किया। अपनी रजतमुद्राएँ प्रसारित करके उसने उत्तरपश्चिमी भारत के व्यापार में यवन - मुद्राओं की प्रतिद्वन्दिता में सफलता प्राप्त कीथी।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि कुलिन्दजनपद के इस महानतम नरेश के सम्बन्ध में अभीतक अन्य कोई अभिलेख या साहित्यिक उल्लेख नहीं मिलसकाहै। मुद्राओं से केवल इतना ही विदित होताहै कि ईसापूर्व प्रथम शती के उत्तरार्द्ध में इस कुणिन्दनरेश ने पन्जाब की पहाड़ियों के जिस भाग को जीताथा, उसको शीघ्र ही शक - कुशाण आक्रान्ताओं ने छीनलिया [२]। फलतः उसके वँशजों को पूर्व की ओर उत्तराखण्ड की पर्वतीय ढालों की शरण लेनीपड़ी।

१- स्मिथ — कै० आव क्वाइन्स इन इंडियन म्यूजियम, जि० १, पृ० १६७

२- ' It is probable that Amoghabhuti's political history was similar. He was probably an Indian Chief who founded a short lived Kingdom at the close of the period of Greek dominion, in the Panjab, in the last half of the first century B. C., which was soon swept away by the Saka and Kushan invaders. '

— एलन — कैटेलोग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ciii

(३) परवर्ती कुणिन्दनरेश

उपलब्ध मुद्राएं— अमोघभूति के पश्चात् कुणिन्दराजवंश के इतिहास केलिए अबतक चार नरेशों की ताम्रमुद्राएँ प्राप्त होसकीहैं। इनकी प्राप्ति अलमोड़ा में होनेके कारण इन्हें अलमोड़ा की मुद्राएँ भी कहाजाताहै।

इन चारों मुद्राओं के आकार - प्रकार में समानता है [1]। अबतक उपलब्ध भारत की प्राचीन मुद्राओं और इन मुद्राओं में शैली तथा आकार - प्रकार की दृष्टि से बड़ा अन्तर है [2]। फिर भी इनमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनसे इन्हें कुणिन्दमुद्राओं में स्थान दियाजाताहै [3]।

इन मुद्राओं से निम्न नरेशों के नाम प्राप्त होतेहैं :—

मृगभूति या मार्गभूति

मात्राओं के प्रयोग में असावधानी उस युग की अनेक मुद्राओं में मिलतीहै। इस मुद्रा का लेख म - ग - भ त स पढ़ागयाहै। यह मुद्रा शिवदत्त (सँख्या २) की मुद्रा के समान आकार - प्रकार की है [4]। नामान्त के ३ अक्षर सम्भवतः धनभूति, बलभूति और अमोघभूति के समान भूतिस (भूतिस्य) हैं। यदि आरम्भिक दो अक्षर मिग (मृग) या मग्ग (मार्ग) हों तो नाम मृगभूति या मार्गभूति होसकताहै। तब लेख को मिगभूतिस (मृगभूतिस्य) या मग्गभूतिस (मार्गभूतिस्य) मानाजाएगा।

शिवदत्त

मुद्रा पर अग्रभाग में बड़े - बड़े ब्राह्मी अक्षरों में सिवदतस (शिवदत्तस्य) लेख है। लेख मुद्रा की परिधि के समानान्तर है। लेख से पूर्व वेष्ठिनी से घिरे सवेदी वृक्ष के सन्मुख नन्दी खड़ाहै। मध्य में सम्भवतः ‿० नाग है [5]। रैप्सन इस मुद्रा पर बने पशु को हरिण मानतेहैं [6]। अमोघभूति की मुद्रा पर भी हरिण अँकित है। मध्य में बने चिह्न क्या हैं, इसका अनुमान रैप्सन नहीं लगासके [7]।

मुद्रा के पृष्टभाग में नन्दीपाद के ऊपर इन्द्रयष्टि बड़ी - बड़ी रेखाओं द्वारा बनाईगईहै। इससे मिलता - जुलता अँकन अयोध्या से प्राप्त कुमुदसेन और अजवर्म की मुद्राओं पर भी मिलताहै [8]।

१- २- एलन — कै० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० Lxxxi

३- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, पृ० ४७७

४- एलन — पूर्वोक्त पृ० Lxxxi

५- एलन — पूर्वोक्त, पृ० Lxxxi

६- ७- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डिया, जि० १, पृ० ४८६

८- एलन — पूर्वोक्त, पृ० Lxxxix

हरिदत्त

मुद्रा का निर्माण इतनी असावधानी से हुआहै कि मुद्रा पर राजा का नामसूचक लेख भी भलीप्रकार अँकित नहीं होसकाहै। लेख हरिदतस (हरिदत्तस्य) प्रतीत होताहै, जिसमें 'द' मुद्रा पर स्पष्ट नहीं निकलाहै। इस मुद्रा के अग्रभाग और पृष्टभाग के अन्य अँकन शिवदत्त के मुद्रा के अँकनों के समान हैं [१]।

शिवपालित

वही असावधानी इस मुद्रा में भी मिलतीहै। मुद्रा पर राजा के नाम के अक्षर शिवपालि स अँकित हैं। पूरा लेख शिवपालितस (शिवपालितस्य) होनाचाहिए [२]। इस मुद्रा के पृष्टभाग में किसी पुरुष या देवता की आकृति बनीहै, उसके सन्मुख ◡◦ नाग का उसीप्रकार अँकन है. जिसप्रकार शिवदत्त और हरिदत्त की मुद्राओं पर मिलताहै [३]।

राज्यावधि— चारों मुद्राओं की शैली, आकार - प्रकार लिपि और अँकनों में समानता होनेसे उन्हें एक ही राजवँश का मानाजाताहै। उनका आपस में वँशानुगत सम्बन्ध क्या था, यह बताना कठिन है।

सम्भवत: जिस क्रम से उनके नाम ऊपर दिएगएहैं, वे उसी क्रम से एक के पश्चात् दूसरे हुएथे। शिवदत्त और हरिदत्त की मुद्राओं पर अँकित नाग उन्हें शिवपालित से पूर्ववर्ती बताताहै। शिवपालित की मुद्रा पर नाम के साथ एक मानव या देवाकृति भी आगईहै।

वेष्ठिनी से घिरा सबेदी वृक्ष और रैप्सन के अनुसार हरिण की आकृति, इन मुद्राओं का कुणिन्दराजवँश या कुणिन्दगण से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध सूचित करतीहै।

इन मुद्राओं का समय एलन ने ईसापूर्व पहिली शती के उत्तरार्द्ध से लेकर ईसापूर्व द्वितीय शती के पूर्वार्द्ध तक मानाहै [४]। डी० सी० सरकार उनका समय ईसा की पहिली शती के आरम्भिक वर्ष मानतेहैं [५]।

हमारा अनुमान है कि ये चारों नरेश अमोघभूति के पश्चात् हुए। अमोघभूति का राज्यकाल अनुमान से वि०पू० ४३-३ (100 - 60 B. C.) के आसपास होसकताहै। इन चारों नरेशों का राज्यकाल अस्सी वर्ष मानने से उनकी राज्यावधि वि०पू० ३ से सँ० ७७ वि० (60 B. C. - 20 A. D.) के आसपास निकलेगी। अन्तिम तिथि तक शक-प्रह्लव आक्रान्ता पँचनद तथा कुरु - पांचाल पर छागएथे।

समृद्धि का ह्रास— रैप्सन तथा डी० सी० सरकार आदि विद्वानों ने अलमोड़ा में प्राप्त मुद्राओंवाले नरेशों को कुणिन्दनरेश मानाहै। इन कुणिन्दनरेशों के राज्यविस्तार का पता लगाना कठिन है। सम्भवत: इनकी राजधानी स्रुघ्न नहीं थीं। इनकी मुद्राएँ अबतक केवल अलमोड़ा में मिलीहैं।

१- ४- एलन – पूर्वोक्त – पृ० Lxxxi

५- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६१

सम्भवत: अमोघभूति के राज्यकाल के पश्चात् स्रुघ्ननगर पर शक आक्रान्ताओं का अधिकार होगया। उसके वँशजों को अपनी राजधानी पूर्व की ओर ब्रह्मपुर या गोविषाण में या अन्यत्र स्थापित करनीपड़ीथी। गोविषाण उनदिनों महत्वपूर्ण स्थान था। वहां अशोक ने एक स्तूप बनायाथा जो सातवीं शती में भी वर्तमान था [१]। जबतक अन्य प्रमाण नहीं मिलते, तबतक इस कल्पना को अस्थायीरूप से मानसकतेहैं।

उनकी मुद्राएँ सूचित करतीहैं कि कुणिन्दराजवँश के अवसान के दिन आगएथे। वे रजतमुद्राएँ ढालने में असमर्थ थे। ताम्रमुद्राओं केलिए भी उन्हें वेसे कलाकार उपलब्ध न थे, जैसे अमोघभूति के राज्यकाल में उपलब्ध थे।

उनकी मुद्राएँ भद्दी हैं। उन पर राजा के नाम का अँकन बड़ी असावधानी से हुआहै। केवल मात्राएँ ही नहीं, नाम के व्यञ्जन भी भलीप्रकार नहीं उभरे हैं। श और स के उच्चारण तथा लेख में भ्रान्ति आज के समान उसयुग में भी उत्तराखण्ड में थी। शिवदत्त की मुद्रा में श को स लिखागयाहै [२]।

धार्मिक मान्यताएं— धार्मिक मान्यताओं में भी परिवर्तन आनेलगाथा। पूर्ववर्ती कुणिन्दनरेशों के नाम – विश्वदेव, अग्रराज, धनभूति, बृद्धपाल, बलभूति और अमोघभूति, उस युग में प्रचलित जनसाधारण के नाम हैं, जिनसे उनका बौद्धमत से या हिन्दुधर्म के किसी देवता - विशेष से सम्बन्ध नहीं जोड़ाजासकता।

इसके विपरीत शिवदत्त, हरिदत्त तथा शिवपालित नामों का सम्बन्ध शिव और हरि देवताओं से जोड़ाजासकताहै। इन नामों के पीछे छिपी मान्यता है – शिव या हरि के प्रसाद से उत्पन्न व्यक्ति।

धनभूति और उसके पूर्वजों की मुद्राओं पर बने स्तूप, वेष्ठिनी से घिरा बेदीयुक्त बोधिवृक्ष, चैत्य और त्रिरत्न, उनकी बौद्धमत के प्रति श्रद्धा व्यक्त करतेहैं। धनभूति प्रथम, वृद्धपाल और धनभूति द्वितीय ने भारहुत और मथुरा में बौद्धमत के प्रति अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीथीं।

अलमोड़ा से प्राप्त मुद्राओं पर बौद्धमत की ओर विशेष झुकाव प्रकट नहीं होता। उन पर बने अँकन को वेष्ठिनी युक्त सबेदी वृक्ष भी मानाजासकताहै। उनदिनों वृक्षदेवताओं की पूजा सर्वमान्य थी। मुद्राओं पर बना नाग दूसरा सर्वमान्य देवता है, जो अमोघभूति की मुद्रा पर भी मिलताहै। और उत्तराखण्ड में आज भी तमसा (टोंस) से शारदा तक घर - घर में पूजाजाताहै।

नन्दिपाद और हरिण अमोघभूति की मुद्रा पर भी मिलतेहैं। पर अलमोड़ा से प्राप्त मुद्राओं पर उन्हें विशेष महत्व देतेहुए मुद्रा के सारे पृष्टभाग पर अँकित कियागयाहै। उसके उपर दो छोटे और दो बड़े स्तम्भों के बीच इन्द्रयष्टि अँकित कीगईहै [३]।

१- वाटर्स–ऑन युवानचाङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, पृ० ३३१

२- एलन – कैं० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० Lxxxi

३- द्र० चित्र, त्रिपथगा, अगस्त ६४, पृ० १४३, चित्र १३

श्री रमेशचन्द्र शर्मा ने स्तम्भों को बाण मानाहै [१]। उनका अनुमान है कि कुणिन्दमुद्राओं पर मिलनेवाला सारा अंकन एक विशेष प्रकार के अस्त्र का द्योतक है [२]। एक पुराकथा के अनुसार आयुध के रूप में इन्द्रयष्टि की पूजा उपरिचर वसु ने आरम्भ कीथी [३]। इन चिह्नों को नन्दिपाद और इन्द्रयष्टि के प्रति श्रद्धा व्यक्तकरनेवाला माना-जासकताहै [४]। सम्भवतः तबतक हिन्दुधर्म की प्राचीन मान्यताओं के प्रति श्रद्धा बढ़नेलगीथी।

पांचाल से सम्पर्क— अलमोड़ा से प्राप्त मुद्राओं के पृष्टभाग पर अंकित चिह्नों में, और अयोध्या से प्राप्त दो नरेशों – कुमुदसेन और अजवर्म की मुद्राओं के चिह्नों में समानता पाईगईहैं [५]। पांचाल की सीमा कुलिन्दजनपद की सीमा से मिलतीथी। इसलिए सम्पर्क से ऐसा होना सम्भव था। अन्य प्रमाणों के अभाव में केवल इसी समानता के आधार पर कुलिन्दजनपद पर पांचाल-अयोध्या का राजनैतिक प्रभुत्व मानना सङ्गत न होगा।

समकालीन कुलिन्द जनपद

महाभाष्य की प्रामाणिकता—विक्रमपूर्व दूसरी शती में कुलिन्द जनपद, उत्तराखंड, के सम्बन्ध में पतंजलि के महाभाष्य से अनेक प्रामाणिक सूचनाएँ मिलतीहैं।

पतंजलि कुलिन्दजनपद और उसकी राजधानी स्रुघ्ननगर से सुपरिचित थे। उन्होंने दीर्घकाल तक स्रुघ्ननगर में निवास कियाथा। उसके दुर्ग, प्राकार, प्रासाद, मार्ग आदि का उन्हें पूर्णपरिचय था।

उनके वर्णन से विदित होताहै कि उन्हें स्रुघ्ननगर से विशेष प्रेम होगयाथा। स्रुघ्न से दूर रहने पर भी वे बार-बार स्रुघ्न को स्मरण करतेथे। महाभाष्य के एक स्थल पर तो मानों उन्होंने मथुरा में स्रुघ्न को जानेवाले मार्ग पर खड़ेहोकर बड़े उल्लास से अपने शिष्यों से कहाथा —‘यह है स्रुघ्न को जानेवाला मार्ग [६]! महाभाष्य में, स्थान-स्थान पर उन्होंने स्रुघ्न से सम्बन्धित वाक्य भरदिएहैं [७]।

उनके लिए स्रुघ्ननगर से केवल ५० मील की दूरी पर कनखल पहुँचना असम्भव न था। उन्होंने सम्भवतः कुलिन्दजनपद के कुछ भागों में भ्रमण भी कियाथा। वे वर्णाश्रम

१- २- रमेशचन्द्र शर्मा – लेख, त्रिपथगा, अगस्त ६४, पृ० १४३, चित्र १३

३- आदिपर्व, ६३।१८-१९ ४- रमेशचन्द्र शर्मा – पूर्वोक्त, पृ० १४३

५- एलन – कैटेलोग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० Lxxxix

६- ‘अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते।’ – महाभाष्य, १।३।२५

७- महाभाष्य, १।२।६४; ३।२।२।२८१; ३।१।३; ४।११।३३६; ४।२।२४; ५।१८।१८; ६।३।४२ आदि

पर विश्वास रखनेवाले ब्राह्मण थे। उनके समय में गङ्गातट के तीर्थों की यात्रा सुप्रचलित होगईथी।

पतञ्जलि पुष्यमित्र की राजसभा के पण्डित थे। वे पुष्यमित्र के द्वितीय अश्वमेध के आचार्य थे। उनके जीवनकाल में, वे यवनआक्रमण भी हुएथे, जिनमें मध्यमिका और साकेत नगरों को घेरागयाथा। पुष्यमित्र के राज्यकाल में स्रुघ्ननगर सहित कुलिन्दजनपद उसके प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत था। सम्भवतः स्रुघ्न के नरेश अग्रराज, धनभुति प्रथम, वृद्धपाल और धनभूति द्वितीय शुंगनरेशों के अधीनस्थ थे. जैसा भारहुत के अभिलेखों से अनुमान लगताहै।

इसलिए पतञ्जलि के महाभाष्य से उपलब्ध सूचनाओं की प्रामाणिकता असन्दिग्ध है।

हिमालय का आकर्षण—शुंगकाल में उत्तराखण्ड की हिमालयश्रेणियों का आकर्षण बहुत बढ़चलाथा। पश्चिम की ओर कश्मीर और त्रिगर्त की हिमश्रेणियोंवाले प्रदेश पर यवनों का अधिकार था। अस्तु वहां पहुँचना कठिन था।

यमुना - गङ्गा के स्रोतप्रदेशों की तीर्थयात्रा होतीथी। हिमालय की तीनों श्रेणियां, महाहिमवान्, क्षुद्रहिमवान् और वर्हिर्हिमवान् सुपरिचित होचुकीथीं [१]।

हिम से ढके शिखर, हिम्य, हिमरहित शिखर, हिमेलु तथा स्थायी हिमानियों का भी परिचय प्राप्त होगयाथा [२]।

वर्हिर्गिरि या शिवालिकश्रेणी, जो स्रुघ्ननगर से दिखाईदेतीथी, हस्तियों की वहुलता केलिए प्रसिद्ध थी [३]। आज भी, जबकि वनों का अधिकांश नष्ट करदियागयाहै, स्रुघ्न के पास यमुना से मालिनी तक के वनों में वनैले हस्ती मिलतेहैं। उसकाल में भी जनपद के निचले वनों में खेड़ा से हाथी पकड़ेजातेथे। जनपद की वनैली और पालतू चमरगायों से प्राप्त चमरों की शुंगकाल में भारी मांग थी [४]।

जनपद के खदिर, आम्र और देवदारु के वनों की प्रसिद्धि, उपयोगिता और आर्थिक महत्ता उनदिनों भी थी [५]। अध्ययन - अध्यापन - कार्य में विशेष वृद्धि होगईथी। सैकड़ों प्राचीन ग्रन्थ, जो तबतक प्रायः मौखिक चले आरहेथे, लिपिबद्ध किएगए। उनके लिए इस जनपद से प्राप्त होनेवाले भूर्जपत्र की मांग में विशेष वृद्धि होगई। फलतः जनपद का कोई भाग अपरिचित न रहगयाथा।

पुण्यभूमि—सारे भारत को पुण्यभूमि समझने की कल्पना शतियों पूर्व होचुकीथी। देश के पश्चिमी भाग पर यवनों का अधिकार होजानेसे अब आर्यावर्त की सीमा सँकुचित होगईथी। अब केवल हिमवँत, कालक, पारियात्र और आदर्श का मध्यवर्ती प्रदेश ही आर्यावर्त

१- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ. ७८
२- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० ७६
३- महाभाष्य, ५।२।६४
४- सभापर्व, ५२।५
५- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० ८०

मानाजाताथा [१]। पश्चिम में आदर्श, अदर्शन या विनसन उस प्रदेश का नाम था, जहां सरस्वतीनदी बालू में खोजातीहै [२]।

सतलुज से पश्चिम की ओर के प्रदेश में पारसीक तथा यवनादि विदेशी भारी सँख्या में बसगएथे। उनकी धार्मिक एवँ सामाजिक मान्यताएँ हिन्दु - मान्यताओं से मेल न खातीथीं। इसलिए शुँगकाल में सतलुज से पश्चिम के प्रदेश को धर्मवाह्य और अपवित्र मानाजाताथा [३]। वहां निवास करनेका धर्मभीरु पुरुषों केलिए निषेध था [४]।

इसलिए पुण्यभूमि के रूप में इस जनपद का महत्व और भी बढ़गयाथा। और उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा नियमित रूप से होनेलगीथी।

पतञ्जलि के समय तक, इस जनपद की धुर - उत्तरी पट्टी में कोई विदेशी जाति आकर बसगईथी [५]। यदि यह शकजाति थी, तो वह मध्यएशिया से कश्मीर की धुर - उत्तरी पट्टी होकर पूर्व की ओर भोटांतिकप्रदेश में फैलीहोगी। पतञ्जलि ने क्रौंच (माणाद्वार) और शौर्य (सौंकी) द्वार को आर्यावर्त की प्रतिमानित सीमा के बाहर मानाहै [६]। उन्होंने गब्दिका (चम्बा में गद्देरन) में भी, सम्भवतः शक या यवनों के बसजाने से उसे आर्यावर्त से बाहर मानाहै [७]।

स्रुघ्ननगर— कुलिन्दजनपद का मुख्यालय स्रुघ्ननगर यमुना के तट पर बसाथा। सम्भवतः तबतक यमुना अपनी उस प्राचीन घाटी में बहतीथी, जिससे होकर अब यमुना की पश्चिमी नहर बहतीहै। पतञ्जलि ने स्रुघ्ननगर का वर्णन बड़े उल्लास से कियाहै।

वाह्य आक्रमणों से रक्षाहेतु नगर के बाहर सुदृढ़ प्राकार बनायागयाथा। प्राकार का निर्माण सुदृढ़ पक्की ईंटों से होताथा [८]। वह इतना ऊँचा और चौड़ा होताथा कि उसके ऊपर लोग चल - फिरसकतेथे। उत्तरभारत में उनदिनों सबसे उत्तम प्राकार केवल पाटलिपुत्र और स्रुघ्न में ही थे। काशिका ने भी स्रुघ्न के प्राकार का उल्लेख कियाहै [९]।

महाभाष्य के एक अन्य प्रसँग से विदित होताहै कि उत्तरभारत के अन्य नगरों के प्राकार पाटलिपुत्र और स्रुघ्न के प्राकारों की समता नहीं करसकतेथे [१०]। पतञ्जलि ने

१- 'कः पुनरार्यावर्तः ? प्रागादर्शात् प्रत्यक् कालवनाद् दक्षिणेन हिमवन्तं उत्तरेण पारियात्रम्' — महाभाष्य, २।४।१०

२- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७०

३- 'पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः ।
तान् धर्मवाह्यान् अशुचीन् वाहीकानपि वर्जयेत् ॥' — कर्णपर्व, ४४।७

४- 'पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ।
आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्योद्व्यहं वसेत् ॥' — कर्णपर्व, ४४।४० - ४१

५- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ४२

६- ७- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ४३

८- महाभाष्य, ५।१।१६

९- 'अन्तरा तक्षशिलां पाटलिपुत्रं च स्रुघ्नस्य प्राकाराः' — काशिका, २।३।४ ; अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष, पृ० ११९

१०- महाभाष्य, ६।३।१२२

पाटलिपुत्र और स्रुघ्ननगर के प्राकारों का विशेष रूप से और अन्य नगरों के प्राकारों का सामान्यरूप से उल्लख कियाहै [१]।

स्रुघ्ननगर के बाहर गहरी परिखा थी, जिसमें यमुना का जल भरारहताथा। प्राकार पर कई द्वार थे, जिनपर द्वारपाल खड़े रहतेथे। ये द्वारपाल आवागमन का नियन्त्रण करतेथे, और निश्चित नियमों के अनुसार द्वार-कपाट बन्दकरतेथे [३]। परिखा के ऊपर सम्भवतः विभिन्न द्वारों के सन्मुख पुल बनेथे, जिनपर रथों और पथिकों का आवागमन होताथा। परिखा, प्राकार और द्वार नगर की रक्षा के मुख्य साधन थे। आक्रमणकारी परिखा को लांघकर और प्राकार को तोड़कर ही नगर पर अधिकार करसकताथा।

सातवीं शती में स्रुघ्ननगर के प्राकार का ऊपरी भाग गिरचुकाथा। किन्तु उसका निचला भाग तब भी अति सुदृढ़ था [२]।

नगर में राजकीय निवास, राजसभा, कोषागार, भांडागार आदि राजकीय आगार बनेहोतेथे। शुल्क लेने केलिए शुल्कशालाएँ होतीथीं। आमोद-प्रमोद केलिए प्रेक्षागृह (नाट्यशालाएँ) तथा पानागार होतेथे। विभिन्न आगारों का दायित्व उनमें नियुक्त अधिकारियों पर होताथा। शुल्कशालाओं और पानागारों की व्यवस्था केलिए भी राजकीय कर्मचारी रहतेथे [४]।

नगर में चौड़े मार्ग थे। उनपर रथ आ-जासकतेथे। नगर के भीतरीभाग 'पुर' में नागरिक रहतेथे। चांडालादि की बस्तियां बाह्यभाग में होतीथीं [५]। नगर के अन्दर चौराहों पर दो या कई मार्ग आकर मिलतेथे।

मकानों के फर्श ऊँचे और पक्के बनाएजातेथे। जिससे वर्षा का पानी उनके भीतर नहीं भरताथा। वायु या प्रकाश केलिए गवाक्ष (गोल खिड़कियां) बनाएजातेथे। घर के भीतर अजिर (आंगन) होताथा। स्नान केलिए पृथक् स्नानागार होताथा। दीवारों पर सामान टांकने केलिए शंकु (खूँटियां) होतीथीं। घर के अन्दर प्रकाश केलिए दीपक रखनेहेतु एक पृथक् स्थान बनाहोताथा। घर का द्वार बन्दकरने केलिए लोहश्रृँखला या अर्गला (गुल्ला) का प्रयोग होताथा [६]।

सम्पन्न व्यक्ति प्रासादों में रहतेथे। प्रासाद सामान्य घरों से भिन्न होतेथे। उच्चता, विस्तार और रचना, इन सबकी दृष्टि से उनका अधिक महत्व था। उनमें एक से अधिक मञ्जिलें होतीथीं। उनकी भित्तियां (दीवारें) ईंटों से बनाईजातीथीं [७]।

१- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १८८

२- बील — बुद्धिष्ट रेकार्ड आव वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ० ४८७

३- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १९०

४- ५- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १८९

६- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १८३ - ८४

७- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १८८ - ८९

व्यक्तिगत सम्पत्ति होनेपर भी प्रासादों को नगर का गौरव बढ़ानेवाला समझा जाताथा। प्रासादवासी व्यक्तियों की समाज में प्रतिष्ठा थी। प्रासादों के स्वामी ऊपरी मञ्जिलों में रहतेथे। निचली मञ्जिलों में उनके सेवकादि का निवास होताथा[1]।

प्रासाद अपनी उच्चता के कारण दूरसे ही पथिकों का ध्यान आकर्षित करलेतेथे। उनकी छत पर चढ़कर दूर तक देखाजासकताथा। उनका गृहप्रवेश भी विशेष प्रकार से कियाजाताथा[2]।

स्रुघ्न और पाटिलिपुत्र के प्रासाद अन्य नगरों के प्रासादों की अपेक्षा अधिक आकर्षक थे। महाभाष्य में स्रुघ्न[3] और पाटलिपुत्र[4] के प्रासादों का विशेष रूप से उल्लेख कियागयाहै[5]।

मथुरा में इसीकाल की एक शिला पर प्रासाद का चित्र बनाहुआ मिलाहै, जिसमें तिमँजिला प्रासाद अँकित है। उसके द्वारों पर चार द्वारपाल भाले लिए खड़े हैं[6]।

स्रुघ्न बड़ा सम्पन्न नगर था[7]। यमुनातट पर नदी पार करने के महत्वपूर्ण घाटे पर उसकी स्थिति ने उसकी समृद्धि बढ़ादीथी। मगध, काशी - कोसल से उत्तरपांचाल होकर पँचनद को जानेवाला मार्ग स्रुघ्न होकर जाताथा।

पाटलिपुत्र से मथुरा होकर साकल तथा तक्षशिला जानेवाले लम्बे मार्ग के सार्थ भी स्रुघ्न होकर जातेथे। काशिका में इस प्रसँग में तक्षशिला, स्रुघ्न और पाटलिपुत्र के नगरप्राकारों का उल्लेख है[8]।

हास्तिनपुर स्रुघ्न से केवल ४० मील दूर था[9]। हास्तिनपुर और मथुरा से स्रुघ्न को मार्ग आतेथे। सम्भवत: मथुरा और स्रुघ्न के मध्य दैनन्दिन यातायात का सुप्रबन्ध था[10]। अश्वादि पशु भी इसी मार्ग से जातेथे[11]। पतञ्जलि ने इस मार्ग का बड़े उल्लास से उल्लेख कियाहै[12]।

नगर की प्राकार के द्वारों को द्वारपाल निश्चित नियमानुसार खोलतेथे। रात्रि में प्राकार के द्वार बन्दरहतेथे। नगर का द्वार जिस प्रमुख नगर की ओर खुलताथा, उसीके आधार पर उसका नाम रखाजाताथा। कान्यकुब्ज और मथुरा नगरों की प्राकारों के जिन द्वारों से स्रुघ्न को मार्ग जातेथे वे स्रौघ्नद्वार कहलातेथे[12]। इन नगरों से जो मार्ग स्रुघ्न

१- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १८८ - ८९

२- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १८९ ३- महाभाष्य, ४।३।३९ ४- महाभाष्य, ४।३;१३५

५- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १८८ ६- अग्निहोत्री -- पूर्वोक्त, पृ० ११८

७- आर्कलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० १४, पृ० ११६

८- 'अन्तरा तक्षशिलां पाटलिपुत्रं च स्रुघ्नस्य प्राकारा:' — काशिका, २।३।४; अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० ११९ ९- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० ११८ १०- महाभाष्य, १।४।५१

११- 'अयं पन्था: स्रुघ्नमुपतिष्ठते।' — महाभाष्य, १।३।२५

१२- महाभाष्य, ४।३।८६; अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १९०

की जातेथे वे स्रौघ्नमार्ग कहलातेथे [१]।

शुंगराज्यकाल में स्रुघ्न, साकेत, मथुरा और पाटलिपुत्र चार सर्वप्रमुख नगर थे। इनसे पड़ोस के अन्य नगरों को मार्ग जातेथे [२]।

यातायात के साधन— यातायात के प्रमुख साधन पशु थे। जनपद के ऊबड़-खाबड़ भागों के कुपथों पर भेड़-बकरियों, घोड़ों और बैलों के द्वारा भार ढोयाजाताथा। चौरस, चौड़ी नदीघाटियों और भाबरप्रदेश में वस्तुओं और मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचानेकेलिए बैलों या घोड़ों से खींचेजानेवाले शकट या रथों का प्रयोग होताथा [३]।

छोटी यात्राओं, या थोड़ी दूर तक सामान्य भारवहन केलिए शकट या बैलगाड़ी का प्रयोग होताथा, लम्बी यात्रा केलिए घोड़ों से खींचेजानेवाले रथ का। जातकों में दूर तक जानेवाले सार्थों द्वारा भी बैलगाड़ी के प्रयोग का उल्लेख मिलताहै [४]। उनदिनों घोड़ों का मूल्य अधिक था। सम्भवतः देश के पश्चिमी भाग पर यवन-अधिकार होजानेसे पश्चिमी देशों से घोड़े बड़ी सँख्या में आनेलगेथे। पँचनद में भी खर, अश्व और ऊँट बड़ी सँख्या में पालेजानेलगेथे [५]।

सम्पन्न व्यक्ति बैलगाड़ी की अपेक्षा रथ का प्रयोग करतेथे। रथ की यात्रा रमणीक या आनन्ददायक समझीजातीथी [६]। गाड़ी सँकरे और सामान्य ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर भी चलसकतीथी। वेग से चलनेवाले रथ केलिए प्रशस्त, चौड़े और लगभग चौरस मार्गों की आवश्यकता थी। भाबरप्रदेश में, सामान्य ऊँची-नीची भूमि पर, और वनप्रदेश में भी रथ चलसकताथा। दुष्यन्त कण्वाश्रम तक रथ में ही पहुँचाथा [६]।

रथों की छत प्रायः वस्त्र, कम्बल या चमड़े से मढ़ीजातीथी। रथों केलिए विशेष प्रकार के कम्बल बनाएजातेथे। व्याघ्र और मृगों के चर्मों से भी उन्हें मढ़ा-जाताथा [७]।

हिमालय की तलहटी से होकर जानेवाले मार्ग सुपथ थे। उन पर निरन्तर सार्थ चलतेरहतेथे। स्थान-स्थान पर पड़ाव डालने और विश्राम करने की सुविधा थी। उत्तर की ओर हिमालय के ऊबड़-खाबड़ भागों के मार्ग उनदिनों भी अजपथ और मेंढ्पथ बनेहुएथे।

नदियों को पारकरने केलिए चमड़े की भस्त्रा या मशकों का प्रयोग होताथा। जिसके लिए गाय-भैंस आदि पशुओं के अतिरिक्त भोटांतिक घाटियों और तिब्बत से आनेवाले चमरगायों की खालों का भी प्रयोग होताथा।

१- महाभाष्य, ४।३।८५; अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष, पृ० १९०

२- महाभाष्य, १।३।२५; अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १९०

३- महाभाष्य, १।२।२४ ४- महाभाष्य, १।१।७० ५- कर्णपर्व, ४४।२०

६- 'रमन्तेऽस्मिन् रथ इति' — महाभाष्य, १।२।२५

७- आदिपर्व, अ० ७० ८- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० २३५

भाबरप्रदेश में उतरआने पर बड़ी नदियों पर नावें या बांस के बजड़े चलसकतेथे। उपरले भागों में भी, सुविधानुसार गङ्गा, यमुना को पारकरने केलिए डोंगी (डूँडा) का प्रयोग होताथा। उत्तरकाशी के पास एक स्थान, जहां से गङ्गाजी को डोंगी द्वारा पार कियाजाताथा, अभीतक डूण्डा कहलाताहै। घड़े या तूम्बी बांधकर नदियां पारकरने की प्रथा बहुप्रचलित थी [१]। बैल या भैंस आदि की पूँछ पकड़कर भी नदियां पार करतेथे [२]।

ग्रामीण जीवन, ग्राम— पाणिनि और पतञ्जलि ने दूर - दूर तक भ्रमण करके अपनी सामग्री को एकत्रित कियाथा। पतञ्जलि के जीवन का अधिकांश ग्रामों में बीताथा। पाणिनि ने भारद्वाज (गढ़वाल) के कृकर्ण और पर्ण नामक दो ग्रामों का उल्लेख कियाहै [३]। पतञ्जलि ने उसी प्रदेश (गढ़वाल) के दो अन्य ग्रामों के नाम ऐणीक और सौषुक बतलाएहैं [४]। इन ग्रामों की पहिचान अनिश्चित है।

गृह— ग्राम में मकान लकड़ी - पत्थर से बनतेथे। भारहुत स्तूप के तोरण और वेष्ठिनी के जो भाग अभीतक बचेहैं, उनमें मकानों के अनेक चित्र हैं। मैदानी भागों में मकान बनाने केलिए ईंटों का भी प्रयोग होताथा।

धनभूति प्रथम के राज्यकाल में भारहुत में बनी सुधर्मा देवसभा के चित्र से विदित होताहै कि सम्पन्न व्यक्तियों की, अपने मकानों में सभा (तिबारी) बनाने के प्रति बड़ी रुचि थी। तिबारी के खम्भे सम्भवतः लकड़ी से बनतेथे। इनके ऊपर टिके तिबारी के तोरण गोलाकार बनाएजातेथे। खम्भों और तोरण को कारुकार्य से सज्जित कियाजाताथा। दोमँजिले मकानों पर सम्भवतः खोलियां भी होतीथीं।

गृहसामग्री— घरों में विष्टर (बिछौना) और आसन होतेथे। वित्त के अनुसार लोग छोटी - बड़ी मँचा, (तख्त) मँचक और खट्वा (खाट) भी रखतेथे। जो नहीं जुटासकतेथे वे घास - फूँस बिछाकर धरती पर सोतेथे [५]।

साधारण व्यक्तियों के घरों में मिट्टी के छोटे - बड़े घट, घटी, घड़े, कलस और कलसियों का प्रयोग होताथा। जल पीने आदि केलिए मिट्टी के कुम्भी, कमण्डलु आदि बनाएजातेथे [६]।

इस जनपद के निचले, मैदानी भागों—स्रुघ्न, मायापुर, मोरध्वज और कोटद्वार, में मिट्टी के अनेक प्राचीन वर्तन मिलेहैं। इसी वर्ष मैंने लालढांग के पास पाण्डुवाला वन में और पारसनाथ के किले के पास मिट्टी के अनेक प्राचीन पात्र खोद निकालेहैं। पर्वतीय भागों में भी मिट्टी के पात्रों का प्रयोग होताथा। दस वर्ष पूर्व मैंने भारत - तिब्बत

१- महाभाष्य, ४।१।१ २- महाभाष्य, ४।४।६

३- 'कृकर्णपर्णाद् भारद्वाजे' — अष्टाध्यायी, ४।२।१४५

४- उ० अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष, पृ० १०६ ५- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १६१

६- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १६२

सीमान्त पर ११००० फीट की ऊँचाई पर स्थित मलारी में समाधियों से मृतिकापात्र प्राप्त किएथे [1]।

सम्पन्न परिवार कांसे के पात्रों का प्रयोग करतेथे। दूध, दही, घी, तेल जल आदि द्रव पदार्थों केलिए प्रायः लकड़ी या मिट्टी के पात्रों का प्रयोग होताथा। कुंडियां पत्थर या लकड़ी की बनतीथीं [2]।

अन्नादि रखने केलिए मिट्टी [3] या बांस आदि के छोटे - बड़े पात्रों का प्रयोग होताथा। बड़े पात्रों में अनाज भरकर बन्द करदियाजाताथा। कुछ पात्रों में बिना मुँह खोलेहुए अन्न निकालने हेतु नीचे छेद बना होताथा। ऐसे मिट्टी के पात्रों के टुकड़े पाण्डुवाला की खुदाई में मिलेहैं।

घरों में लौह के अनेक प्रकार के उपकरण असि (खड्ग - खुँखरी) परशु (कुल्हाड़ी), दात्र (दराती), हँसिया, फावड़े, सरौते आदि रखेजातेथे। अपनी सुरक्षा केलिए आयुध रखना अति आवश्यक था। कम से कम मैदानी भागों में, चोरी, लूट - मार और हत्या साधारण बातें थीं [4]।

वेश - भूषा— धनभूति प्रथम और उसके समकालीन कलाकार भारहुत की वेष्ठिनी पर उस युग की वेश - भूषा के अनेक चित्र अँकित करगएहैं।

अधिकांश व्यक्ति एक छोटा - सा, बिनासिला वस्त्र लँगोट के रूप में लपेटेरहतेथे [5]। कुछ व्यक्ति घुटनों तक पहुँचनेवाला कछौटा धारण करतेथे [6]। इसके ऊपर कायबन्ध बांधाजाताथा, जिसके किनारे नाभि के पास दोनों ओर नीचे लटकेरहतेथे [7]। कन्धों पर एक बिना सिला वस्त्र उत्तरीय (उपरना) डालाजाताथा, जिसके दोनों छोर छाती पर आकर एक - दूसरे को ढ़कलेतेथे [8]।

उष्णीश (पगड़ी) बांधने की प्रथा सर्वव्यापक थी। एकमात्र लँगोटीधारी व्यक्ति भी उण्णीश पहनतेथे [9]। पगड़ी लपेटने की विशेष विधि थी। जिससे आगे की ओर बालों के जूड़े को ढककर पगड़ी उसके ऊपर ऊँची उठी दिखाईदेतीथी [10]। जैन और बौद्ध श्रमण - भिक्षु चीवर या एक चादर लपेटलेतेथे।

शीतल भागों में ऊन या भांग की चादरें लपेटकर कांटे से टांकलेतेथे। सिलेहुए वस्त्र भी चलपड़ेथे। भारहुत में मिले सैनिक के शिलाचित्र में शरीर का अधोभाग दुहरी धोती या तहमद - जैसे वस्त्र से ढकाहै, जिस पर वह पूरीबांह का सिलाहुआ कोट पहने

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० २२५ २- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १९३ ३- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १९६ ४- अग्निहोत्री -- पूर्वोक्त, पृ० ३६३

५- ६- कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, चित्रफलक १६, चित्र ४३, ४५

७- ८- कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, चित्रफलक १७, चित्र ४६

९- कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, चित्रफलक, १६, चित्र ४५

१०- मोतीचन्द्र — प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५ - ६६

है। जिसके निचले और उपरले भागों को तनियों द्वारा बांधागयाहै [१]।

नारियां कमर पर घुटनों तक पहुँचनेवाली धोती पहनतीथीं। इसके ऊपर करधनी और पट्टुका बांधतीथीं। पट्टुका के छोरों पर चित्रित पट्टी सिलकर उसे सजायाजाताथा। पट्टुका नाभि के पास, धोती के ऊपर ऐसे ढंग से बांधाजाताथा, जिससे करधनी दिखाई देतीरहे। पट्टुका के दोनों किनारे नाभि के सामने नीचे लटकतेरहतेथे [२]।

नारियां शिर पर बालों के ऊपर एक वस्त्र लपेट लेतीथीं, जिसके किनारों पर चित्रकारी होतीथीं [३]। ऐसा जौनसार में आज भी दिखाईदेताहै।

वस्त्र, ऊन, भांग और कपास के बनतेथे। अस्सी वर्ष पूर्व तक गढ़वाल - कुमाऊं के दक्षिणी भागों में बौनिया कपास उगाईजातीथी [४]। नरमाबाड़ी के दो - चार पौधे अब भी उगाएजातेहैं। भांग उगाकर आज भी राठ के पठार में चांदरें बनाईजातीहैं।

चमड़े के जूते, लकड़ी के खड़ाऊँ और चप्पलों का भी प्रयोग होताथा। ऐसी खुली चप्पलें भी बनतीथीं, जिन्हें पहनकर कमगहरी नदियां पार करसकतेथे।

नर - नारी अलँकार बड़े चाव से धारण करतेथे। अलँकार, सुवर्ण, चांदी, अन्य धातुओं और हाथीदांत के बनतेथे। रत्न, उपरत्न, धातु, काष्ट और मिट्टी के बने मनकों की अनेक प्रकार की मालाएँ पहिनीजातीथीं। भारहुत के शिलाचित्रों में नारियां गले में अनेक लड़ियोंवाली मालाएँ पहनेहैं। कानों में बड़े - बड़े झुमके, हाथों में धातु की अनेक चूड़ियां तथा पैरों में धातु के अनेक चूड़ी - जैसे कँकण पहनने की व्यापक प्रथा थी [५]।

मस्तक पर, मध्य में बिन्दी लगाईजातीथी। सिलीहुई आधेबांह की कँचुकी भी चलपड़ीथी। पर स्तन नग्न रखेजातेथे [६]।

पुरुष, कान, कलाई और बाजू को आभूषणों से सजातेथे [७]। कानों में मुरकी, हाथों में कड़े और गले में कँठा पहनाजाताथा। नारियां फूल - पत्तियों से जूड़ा सजातीथीं। उनमें केशों को घुँघराले बनाने तथा आगे की ओर झुकाकर आकर्षक बनाने की प्रथा थी। वे सीमांत (मांग) बड़े चाव से निकालतीथीं। नख, ओष्ठ और दांतों का भी शृँगार करतीथीं। शृँगार पर ही व्यस्त रहनेवालों को आज के समान उनदिनों भी चिढ़ायाजाताथा [९]।

कुछ पुरुष लम्बे केश रखतेथे, कुछ उन्हें यदा - कदा कटवातेरहतेथे। कुछ शिखामात्र रखकर खोपड़ी घुटालेतेथे [१०]। तापस प्राय: जटिल होतेथे। अनेक अध्यापक, नर्तक, बादक भी लम्बे केश रखतेथे। छोटे ब्रह्मचारियों का शिरभद्र कियाजाताथा। दाढ़ी मुँडाने

१- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, चित्रफलक १६, चित्र ३७

२- ३- श्रीमा देवता और सुदर्शना यक्षी के शिलाचित्र, एज आव इम्पीरियल यूनिटी, चित्रफलक १६, चित्र ३५ - ३६.   ४- पौ — गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट, पृ०

५- ६- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, चित्रफलक १५, चित्र २२, फलक १६, चित्र ३५, ३६

७ अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० २०४

८- १० अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० २०५

की प्रथा थी। कुछ लोग केश. मूँछ. दाढ़ी बढ़ाएरखतेथे। ऐसे लोगों का समाज में सम्मान देखकर कुछ अन्य लोग भी ऐसा वेश बनाकर जनता को ठगतेथे [1]।

कृषि— आजीविका का मुख्य साधन कृषि था। गांव के चारों ओर की भूमि तीन भागों में विभक्त होतीथी। सीत्या, गोचर और ऊषर। सीत्या को केदार या खेतों में बांटकर खेती कीजातीथी। पर्वतीय ढालों पर खेती केलिए भीड़ों का निर्माण आवश्यक था।

गोचर पर पशु चरतेथे। कृषि और पशुचारण के अयोग्य, वन, चट्टान और दलदलादि से ढकी भूमि ऊषर कहलातीथी [2]। सीत्या की भूमि विभिन्न परिवारों में बँटीहोतीथी। पर गोचर पर सारे गांव का सम्मिलित अधिकार होताथा। यह प्रथा आज तक चलीआतीहै।

पशुपालन कृषि का आवश्यक अंग था। रात को पशु, गांव के बाहर, खेतों में, जिस स्थान पर बांधेजातेथे उसे गोष्ठ (गोठ) कहतेथे। ऐसे गोष्ठ अस्थायी छप्परों से बनाएजातेथे। ऋतुविशेष में गोष्ठ के छप्परों को उखाड़कर अन्यत्र खड़ाकरदियाजाताथा। ऐसा स्थान, जहां पहिले गोष्ठ रहाहो, और पीछे उखाड़ दियागयाहो, गोष्ठीन (गुठियार) कहलाताथा। खेतों में खाद जमाकरने, पशु चराने. गांव के पास कीचड़ तथा मच्छर आदि एकत्रित होनेसे बचाने केलिए गोपाल सुविधानुसार गोष्ठ के स्थान बदलते रहतेथे।

अन्न— गेहूँ, जौ, अनेक प्रकार के धान (शालि), व्रीहि, षष्टिका (साठी), नीवार (झँगोरा), तिल, सरसों, उड़द, मूँग, कुलथी आदि दालों का उत्पादन होताथा। अनेक साग - सबजियां तथा हलदी, दाख, अदरख, केशर, ईख और कपास भी उगाएजातेथे। पहाड़ी भागों में जौ बहुत उत्पन्न होताथा। मद्र और उशीनर जौ केलिए प्रसिद्ध थे [3]।

कृषि मुख्यतः वर्षा पर निर्भर थी। भाबरप्रदेश में बरसाती पानी को एकत्रित करने केलिए तालाब बनाएजातेथे। मोरध्वज और पांडुवाला में ऐसे तालाबों के अवशेष मिलेहैं [4]। बरसाती नदी - नालों से कुल्या (कूलें) निकालकर सींचाई कीजातीथी।

पशु - पक्षियों से खेतों को बचानेके लिए पुतले बनाकर खेतों में खड़े किएजातेथे [5]। कृषक के बच्चे भी रखवाली करतेथे। खेतों की रक्षा केलिए अनेक प्रकार के तन्त्र - मन्त्रों का प्रयोग भी चलताथा, और रक्षक भी रखेजातेथे [6]।

अन्न-पान—तँडुल या झँगोरा का उत्पादन केवल पर्वतीय भागों में ही नहीं, वरन् सारे भारतभर में बहुप्रचलित था। जनसाधारण का प्रमुख भोजन तँडुल का भात था [7]। अनेक प्रकार के चावलों का भात दूध के साथ चाव से खायाजाताथा। यज्ञादि में देवताओं और

१- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष, पृ० २०५
२- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० २८७
३- महाभाष्य, ४।१।९०
४- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २३१ - ३२
५- महाभाष्य, २।१।५२
६- महाभाष्य, ६।२।७८
७- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० २१०

पितरों को उत्तम भात और दूध चढ़ायाजाताथा [१]।

यवागू या सत्तू के घोल का प्रयोग बहुप्रचलित था। यवागू मुख्यत: जौ के सत्तू से बनायाजाताथा। व्रत - उपवास के दिन भी इसका प्रयोग करसकतेथे। सत्तू को दूध में पकाकर, अथवा नमक या गुड़ के साथ पानी में घोलकर पीतेथे [२]। सत्तू बाजार में बिकताथा। जौ के अतिरिक्त अन्य अन्नों से भी सत्तू बनताथा [३]।

तिल की पिंडी (पिन्ना) में शर्करादि मिलाकर खाने की प्रथा थी। तेल निकाल कर तिल की जो खली बचरहतीथी उसका भोजन केलिए प्रयोग होताथा [४]। इस जनपद की ढालों पर पहले तिल बड़ी मात्रा में उगायाजाताथा।

अन्नों के आटे से अपूप (पुआ). रोटी, बटक (बड़ा, पकोड़ा) आदि भी बनाएजातेथे [५]। गेहूँ आदि की भुनी बालों, भुने गेहूँ - चना, भुने चावल (चूड़ा) का व्यापक प्रचार था। सत्तू, चूड़ा और भुने अन्न मार्ग केलिए आवश्यक सम्बल थे [६]।

दालों का सूप बनाकर खायाजाताथा [७]। दूध, दही, घी, सरसों, तिल और इँगुदी के तेल का भोजन में प्रयोग होताथा। अनेक प्रकार के कन्द. मूल, फल सहायक भोजन थे [८]।

मांस - भक्षण बहुप्रचलित था। भेड़, बकरी तथा मृग, खरगोश, वनसूकर, कबूतर और वनकुक्कुट तथा मछलियों को स्वादसे खायाजाताथा [९]।

सुरापान बहुप्रचलित था। इसे अनेक प्रकार के अन्नों से बनायाजाताथा। नगरों में सुराविक्रय और पान केलिए पानागार बनेहोतेथे [१०]। ग्रामीण भी सुरा बनाकर पीतेथे। ब्राह्मणों केलिए सुरापान वर्जित था। वे सोम (होम या वनैली भांग) को कूट - पीस - घोटकर आनन्द से पीतेथे।

अन्नों का उत्पादन अधिक था। सुभिक्ष के कारण अनेक व्यक्ति भिक्षा से ही निर्वाह करलेतेथे। श्रमण, ब्राह्मणों को निमन्त्रण देकर लोग भोजन करातेथे [११]।

सामाजिक मान्यताएं— जैनमत और बौद्धमत का प्रचार होने पर भी अनेक सामाजिक मान्यताएँ पूर्ववत् चलीआतीथीं। सिद्धांतरूप से बौद्धसँघ में सभी जातियों के लोगों को समान समझाजाताथा। किन्तु स्वयँ बुद्ध भी जातियों के उच्च - नीच क्रम पर विश्वास रखतेथे [१२]। बौद्धग्रन्थों में क्षत्रियजाति को ब्राह्मणजाति से उच्च बतलायागयाहै [१३]। तथा कुछ जातियों को हीनजाति भी कहागयाहै [१४]।

१- महाभाष्य, ५।१।२
२- महाभाष्य, ५।३।६७; १।२।५१
३- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० २१२
४-५- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० २१४
६- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० २१५
७- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० २१६ - १७
८- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० २२०
९- महाभाष्य, २।३।१३; ४।३।१३१; ४।३।१५५
१०- महाभाष्य, २।१।१
११- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० २३२
१२- संयुत्त - निकाय, पृ० ४१९
१३- संयुत्त - निकाय, पृ० ७
१४- मज्झिम - निकाय, पृ० ५३४; संयुत्त - निकाय, पृ० ८३

ब्राह्मण— जन - साधारण में जातियों के सम्बन्ध में बड़ी - छोटी की भावना सदा प्रचलित रही [१]। जैन और बौद्धमतों के प्रचारकों ने क्षत्रियजाति को सब जातियों से उच्च बतलाया, किन्तु जन - साधारण की भावना में इससे विशेष अन्तर न आया [२]।

बौद्धनरेश भी गुणवान् ब्राह्मणों की उपेक्षा न करसके। मौर्यनरेशों ने सुयोग्य ब्राह्मणों को अमात्य और सेनानायक - जैसे महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कियाथा।

राज्य की ओर से यदि कभी ब्राह्मणजाति के सम्मान में कुछ अन्तर भी आयाहो, तोभी समाज में उसका सम्मान पूर्ववत् बनारहा [३]।

शुंगकाल में राज्य की ओर से भी ब्राह्मणों को पूर्ण सम्मान मिलनेलगा। ब्राह्मण माता - पिता से उत्पन्न व्यक्ति को ब्राह्मण मानाजाताथा। किन्तु यदि उसमें शास्त्राभ्यास और तपस (श्रेष्ठकर्म, तथा त्याग) नहीं होते तो उसे केवल जातिब्राह्मण (जन्म से ब्राह्मण) मानतेथे। उसे विद्वान् और तपःपूत ब्राह्मणों का - सा सम्मान न मिलताथा [४]।

ब्राह्मण गौरवर्ण, पिङ्गलाक्ष, कपिलकेश और शुद्धाचारी होतेथे। ये लक्षण ब्राह्मण की परिभाषा के अन्तर्गत थे। और इन्हें देखकर भी लोग किसी व्यक्ति के ब्राह्मण होने का अनुमान करलेतेथे [५]। ब्राह्मणों का वर्ण (रङ्ग) गौर था। शायद ही कोई ब्राह्मण काले रङ्ग का रहाहो [६]। ब्राह्मणजाति में अन्य रङ्गों का मिश्रण आगे चलकर हुआ [७]।

ब्राह्मण प्रायः तप और स्वाध्याय में रत रहतेथे। वे स्वच्छ रहतेथे। अपनी शुचिता के कारण वे समाज में उच्च समझेजातेथे [८]। शिष्ट ब्राह्मण का पद सामान्य ब्राह्मण से ऊँचा होताथा। आर्यावर्त के वे ब्राह्मण, जो एक - दो दिन से अधिक केलिए धान्य सँचित नहीं करतेथे, लोलुपता से दूर रहतेथे, इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होतेथे, और किसी न किसी विद्या में पारँगत होतेथे, शिष्ट ब्राह्मण कहलातेथे [९]।

समाज में ब्राह्मणों का सम्मान सर्वाधिक था। अन्य वर्ण ब्राह्मणों को भोजनार्थ घर पर बुलातेथे। लोग बालक ब्राह्मण का भी उठकर अभिनन्दन करतेथे [१०]। कुछ ब्राह्मण नमक नहीं खातेथे [११]। कुछ श्राद्धभोजन नहीं करतेथे [१२]। कुछ कभी - कभी केवल दूध पीकर रहतेथे। वे पयोव्रत कहलातेथे [१३]।

१- ३- द्र० जैन—जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० २२४ - २६

४- अग्निहोत्री – पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १४६

५- ' गौरः शुच्याचारः पिङ्गलः कपिलकेशः। इत्येतानप्यभ्यन्तरान् ब्राह्मणे गुणान् कुर्वन्ति।'

— महाभाष्य, २।२।६

६- ८- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० १४६

९- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० १४७

१०- १३- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० १४९

क्षत्रिय— ब्राह्मण के पश्चात् क्षत्रिय का स्थान था। क्षत्रिय राजन्य या शासक वर्ण था। धन - सम्पत्ति से सम्पन्न तथा किसी जनपद या भूभाग पर आधिपत्यवाले जन को प्राचीनकाल से ही क्षत्रियवर्ण मानाजानेलगाथा। देश के विभिन्न जनपदों के शासक जनों मेंसे, जिनकी सूची अष्टाध्यायी, काशिका और महाभाष्य में मिलतीहै, अनेक आर्येतर जन थे, जो क्षत्रियवर्ग में गिनेजातेथे।

कैकेय - मद्रदेश में, ईरान से आकर बसे जनों की पुत्रियां अतीव सुन्दरी होतीथीं, इसलिए कुरु - पांचाल के नरेश धन देकर भी उन्हें खरीदलातेथे। यवन, शक, खश, पल्लव, कुशाण सुन्दरियों को भारतीय क्षत्रिय नरेश बड़े चाव से प्राप्तकरने का प्रयत्न करतेथे। इन जातियों के नरेश भी वलपूर्वक इस देश के राजपरिवारों की लड़कियां और नारियां उठालेजातेथे।

इसलिए स्मृतिकारों ने इन समस्त विदेशी राजपरिवारों को वृषल (नाम-मात्र के) क्षत्रिय मानकर [1] इस देश के प्राचीन क्षत्रियपरिवारों के सम्मान की रक्षा करदी और दोनों के मध्य विधिवत् विवाह का मार्ग खोलदिया।

बौद्धमत के प्रचार से विशेषकर क्षत्रियपरिवार प्रभावित हुएथे। उनके युवक-युवतियों में सँघ में प्रवेश करनेहेतु विशेष उत्साह मिलताथा। शुँगयुग में उनका उत्साह कुछ शिथिला - सा पड़गया।

वैश्य— वैश्यजाति की स्थिति क्षत्रिय से अधिक घटकर न थी। कृषि, गोसम्पति, विशेषकर वाणिज्य पर उनका अधिकार था। वैश्य को विट भी कहतेथे। उत्तराखण्ड में इस शब्द का प्रयोग तीनों द्विजातियों केलिए अबतक होताहै।

शूद्र— शूद्रों में दो वर्ग थे। अनिरवसित और निरवसित। तक्षा (बढ़ई), अयस्कार (लोहार), रजक (धोबी) और तन्तुवाय (कोली - जुलाहा) आदि अनिरवसित शूद्र थे। ये यद्यपि यज्ञकर्म से बहिष्कृत थे, किन्तु त्रिवर्णों के पात्रों को छूसकतेथे [2]। त्रिगर्त में अब भी तक्षा और अयस्कार का छुआ पानी त्रिवर्णों में ग्राह्य है।

ग्राम और नगरों के बाहर रहनेवाले चांडाल और मृतप निरवसित शूद्र थे। उनका छुआ जल ग्राह्य न था। वे यदि किसी त्रिवर्ण के पात्र में खा - पीलेतेथे तो त्रिवर्ण उस पात्र को सँस्कार द्वारा शुद्ध करके भी व्यवहार में नहीं लासकतेथे [3]। किन्तु अनिरवसित शूद्रों द्वारा व्यवहृत त्रिवर्णों के पात्र अग्नि आदि के द्वारा शुद्ध करके काम में लाए-जासकतेथे [4]।

आश्रम— बौद्धमत के प्रचार से मुख्यतः दो आश्रम रहगएथे। भिक्षु और

१- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १५२ २- मनुस्मृति, १०।४३-४४

३- ४- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० १५३

गृहस्थ। शुँगकाल में तीन आश्रम विशेषरूप से प्रचलित थे, – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वैखानस। पीछे सन्यास आश्रम भी चलपड़ा [१]।

ब्रह्मचर्य— त्रिवणों के बालकों का उपनयन संस्कार १२ से १६ वर्ष के भीतर करदियाजाताथा। बौद्ध - जैन ब्रह्मचारी श्रमण कहलातेथे। शुँगकाल में श्रमणों के बिहार और वर्णाश्रम के अनुयायी हिन्दुओं के पृथक् विद्याप्रतिष्ठान थे। ऐसे बिहार और विद्या-प्रतिष्ठान इस जनपद के दक्षिणी भागों में पूर्ववत् चलेआतेथे।

वेदिक शाखाओं का अध्ययन 'चरण' नामक विद्यालयों में होताथा, जो वेदिक अध्ययन, अध्यापन और अनुसँधान के केन्द्र थे [२]। कण्वाश्रम में इसीप्रकार का विद्यालय था, जिसका विस्तृत वर्णन महाभारत में मिलताहै [३]। ऐसे ही विद्यालयों में महाभारत, रामायण, पुराणों और स्मृतियों का सम्पादन हुआहोगा। महाभारत के अनुसार एक ऐसा ही आश्रम हिमालय में गङ्गातट पर था, जहां व्यासजी ने महाभारत का प्रणयन या सम्पादन कियाथा [४]।

अल्पायुवाले ब्रह्मचारी भिक्षा मांगकर निर्वाह करतेथे। गुरुकुलों में जन - साधारण से तथा नरेशों से खाद्यसामग्री प्रचुरमात्रा में पहुँचतीथी। इसलिए घृत, ओदन या दाल-भात के लालच से भी कुछ ब्रह्मचारी गुरुकुल में डटेरहतेथे [५]। अधिकांश ब्रह्मचारी २० - २५ वर्ष की आयु में घर लौटजातेथे। ब्राह्मण - क्षत्रिय परिवारों में कन्याओं को घर पर शिक्षादेने की प्रथा थी।

गृहस्थाश्रम—बिवाह प्राय: बीस-पच्चीस वर्ष की आयु में होतेथे। परिवार के वृद्ध पुरुष या पिता के जीवनकाल में पुत्र, पौत्र आदि उसके अधीन सम्मिलित परिवार में रहतेथे। माता - पिता की आज्ञा शिरोधार्य थी। पुत्र माता के नाम पर भी पुकारेजातेथे [६]। इस जनपद में भी यह प्रथा सुप्रचलित थी। स्रुघ्ननरेशों ने अपने अभिलेखों में अपनी माताओं के नामों, या गोत्र - परिवारों का उल्लेख कियाहै [७]।

बौद्धमत ने नारी की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचायाथा। शुँगयुग में नारी को पुन: पूर्व प्रतिष्ठा प्राप्तहुई। नारी परिवार का आवश्यक अँग थी। गृहिणी से गृह और गृहस्थ सार्थक बनतेथे। पति के चयन में कन्या की सम्मति लीजातीथी [८]। माता - पिता

१- अग्निहोत्री -- पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १६७ २- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० १६२

३- आदिपर्व, अ० ७०

४- 'पुण्ये हिमवत: पादे मध्ये गिरिगुहालये। विशोध्य देहं धर्मात्मा दर्भसंस्तरमाश्रित: ॥
भारतस्येतिहासस्य धर्मेणान्वीच्य तां गतिम्। प्रविश्य योगं ज्ञानेन सोऽपश्यत् सर्वमन्तत: ॥'
—— आदिपर्व, १।२८ से आगे दा० पाठ

५- काशिका, ६।२।६६; अग्निहोत्री -- पूर्वोक्त, पृ० १६४ ६- अष्टाध्यायी, ६।२।१३२; अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १६३ ७- द्र० धनभूति प्रथम और धनभूति द्वितीय के शिलालेख ८- महाभाष्य, ३।१।१०१

यथाशक्ति अभिरूप, सुन्दर एवँ सुयोग्य वर की ढूँढकरतेथे [१]। पाणिग्रहण कन्या के वयस्क होने पर होताथा। पत्नी पति के साथ यज्ञ में भाग लेतीथी।

सम्पन्न और राजपरिवारों में पुरुष एक से अधिक बिवाह भी करलेतेथे। अग्निमित्र की दो रानियां होने पर भी. उसने पैंतालीस वर्ष से अधिक आयु में मालविका से बिवाह कियाथा। हिमालय की ऊँची ढालों पर द्रौपदी - बिवाह - प्रथा प्रचलित थी।

स्रुघ्न की नारियां सदाचार, दानप्रियता और अतिथिसत्कार केलिए प्रसिद्ध थीं [२]। पतञ्जलि ने स्रुघ्न में कुछ काल तक निवास कियाथा। उन्होंने स्रुघ्न की नारियों का उल्लेख प्रशँसाजनक विशेषणों के साथ कियाहै [३]।

पत्नी के भरण - पोषण का उत्तरदायित्व पति पर था। पति को प्रसन्न रखना और सन्तान को जन्मदेना पत्नी के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत मानेजातेथे।

ब्रह्चारियों, तापसों, भिक्षु - भिक्षुणियों को दान या भोजन देना गृहस्थी का परम कर्तव्य समझाजाताथा। द्वार से किसी को खाली नहीं जानेदियाजाताथा।

मनोरंजन के साधन— आखेट और समाज सामूहिक मनोरञ्जन के प्रमुख साधन थे। रात्रि या दिन में प्राचीन आख्यान सुनने - सुनाने की प्रथा बहुप्रचलित होने लगीथी। रात्रि को डमरू आदि वाद्य बजाकर जागरण करतेहुए जन - भाषा में पौराणिक आख्यान सुनाने (जागर, घड़ियाला) की प्रथा चलपड़ीथी। ऐसे आख्यान सारी रातभर चलतेरहतेथे। जनता उन्हें बड़े चाव से सुनतीथी [४]।

दिन में रामायण, महाभारत और पुराणों का मूल सँस्कृत में प्रवचन (कथा-पाठ) भी होताथा। अर्जुन के साथ गङ्गाद्वार में ऐसे आर्षग्रन्थों का पाठ करनेवाले ब्राह्मण भी पहुँचेथे [५]।

परिव्राजक और वैखानस— सर्वस्व त्यागकर विचरण करनेवाले व्यक्ति वैखानस कहलातेथे। उनका निर्वाह भिक्षा से होताथा। भिक्षु भिक्षा मांगकर निर्वाह करतेथे। वे प्रायः बस्ती से दूर, अरण्य में रहतेथे। उनमें, भिक्षा में प्राप्त सभी अन्नों को एकसाथ मिलाकर खाने की प्रथा थी।

तीसरे आश्रम वैखानस को मुनिवृत्ति भी कहतेथे। गृहस्थ त्यागदेनेके पश्चात वैखानस एकान्त स्थानों में चिन्तन, मनन और तपस्या से जीवन व्यतीत करतेथे। इस जनपद में, गङ्गाजी के तट पर अनेक वैखानस आश्रम बनाकर रहतेथे [६]।

जैन - बौद्ध भिक्षु - भिक्षुणियां अपने विहारों में टिकतेथे। गांवों में उनको भी लोग श्रद्धापूर्वक भोजन देतेथे।

१- महाभाष्य, १।४।४२ २- महाभाष्य, ४।३।३९; ६।३।४२
३- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष, पृ० ११८ ४- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० २४२
५- आदिपर्व, २१३।१-३ ६- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ३६४ - ६६

परिव्राजक स्वेच्छानुसार विचरते और भिक्षा से निर्वाह करतेथे।

शिष्ट-भाषा और जन-भाषा-- शुँगयुग में प्राकृत भाषाएँ विकसित होनेलगीथीं। उन्होंने जन - भाषाओं का रूप लेलियाथा। वैश्यों और क्षत्रियों में भी सँस्कृत का प्रयोग घटगयाथा। फिर भी उस समय तक वे सँस्कृत को पूर्णतया समझतेथे, यद्यपि दैनिक जीवन में उसका प्रयोग कम करतेथे [१]। मुद्राओं और अभिलेखों में नरेश प्राकृत का प्रयोग करतेथे, जिसे जनता भलीप्रकार समझसकतीथी।

ब्राह्मणसमाज में उस समय भी सँस्कृत व्यवहार की भाषा थी [२]। किन्तु ब्राह्मण बालक भी व्याकरण की उपेक्षा करनेलगेथे [३]।

पतञ्जलि के समय तक चारों सँहिताएँ, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, ब्राह्मण तथा सूत्रग्रन्थ बनचुकेथे। रामायण, महाभारत, काव्यग्रन्थों तथा आख्यानसाहित्य की रचना होचुकीथी [५]। प्राकृत के शब्द सँस्कृत में प्रवेश करनेलगेथे [६]।

महाभारत-सम्पादन— विक्रम से पांच शताब्दियों पूर्व पाणिनि, महाग्रन्थ के दोनों स्वरूपों भारत और महाभारत से परिचित थे [६]। आश्वलायनगृहसूत्र में भारत और महाभारत दोनों ग्रन्थों का उल्लेख है [७]। पाणिनि के समय तक व्यासजी द्वारा प्रणीत २४००० श्लोक का जयग्रन्थ विद्यमान था, तथा आख्यान, नीति आदि युक्त, सौ सहस्र (एक लाख) श्लोकों के महाभारत का भी सँग्रह होचुकाथा।

यद्यपि कुछ विद्वानों ने महाभारत की अन्तिम तिथि ईसा की चौथी शती से तनिक पहले मानीहै [९]। पर अनेक भारतीय विद्वान् इस ग्रन्थ की अन्तिम तिथि ईसा पूर्व की दूसरी शती मानतेहैं [१०]।

विक्रम - ईसा की आरम्भिक शतियों में इस महाग्रन्थ में यत्र - तत्र भले ही कुछ परिवर्द्धन, परिवर्तन या सँशोधन किएगएहों, पर महाभारत की मुख्यकथा के अधिकांश का सँग्रह - सम्पादन विक्रम - ईसा पूर्व दूसरी शती में, शुँगकाल में होचुकाथा। सभापर्व में वर्णित उपायन लानेवाली विभिन्न जातियों की समकालीन स्थिति से विदित होताहै कि सभापर्व का सम्पादन ईसा - पूर्व दूसरी शती में हुआथा [११]।

कर्णपर्व में सतलुज से पश्चिम की ओर बसे साकल और मद्रदेश के निवासियों के

१- ३- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ३३   ४- ५- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० ३४

६- अष्टाध्यायी, ६।२।३८   ७- आश्वलायनगृहसूत्र, ३।४

८- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३३२

९- 'The Mahabharata cannot have received the present form earlier than the 4th century B. C. and later than the 4th century A. D.'

— विंतरनित्स – हिस्टरी आव इंडियन लिटरेचर, जि० १ पृ० ४६५

१०- मोतीचन्द्र – जियोग्राफिकल ऐण्ड एकोनौमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृ० १०

११- मोतीचन्द्र – पूर्वोक्त, पृ० २४

आचार - विचार की तीव्र निन्दा कीगईहै [१]। वे भुनेहुए जौ और लहसुन के साथ गोमांस खाते और गुड़ से बनी मदिरा पीकर मतवाले बनेरहतेथे [२]। वे शील और आचार से शून्य थे। वहां यवन - म्लेच्छ बड़ी सँख्या में बसगएथे। ये यवन - म्लेच्छ बड़े चतुर और शूर थे, किन्तु अपनी ही निराली रीति - नीतियों का पालन करतेथे [६]।

उनके प्रभाव से साकल और मद्रदेश के निवासियों ने अपना परम्परागत आचार त्यागदियाथा। वहां के ब्राह्मण वेदहीन होगएथे। वहां यज्ञ - याग की परम्परा लुप्त होगईथी [४]। वहां की नारियां को माला और अंगराग धारण करके (यवन - नारियों के समान) मतवाली और नग्न होकर नगर और घरों की प्राकारों के पास नाचने - गाने में सँकोच न रहा [५]।

हम पहले देखचुकेहैं कि ऐसी परिस्थिति साकल - मद्रदेश में उनदिनों उत्पन्न हुईथी, जब उस भाग पर यवनसाम्राज्य फैलगयाथा। उस प्रदेश के निवासियों के आचार - विचार मध्यदेशवासियों के मान्य आचार - विचारों से इतने विपरीत होगएथे कि वहां एक - दो दिन ठहरने का भी निषेध करदियागयाथा [६]।

महाभारत ग्रन्थ में उत्तरपश्चिमी भारत और मध्यहिमालय के जिन जनपदों का उल्लेख है, उनकी स्थिति से भी यहीं निष्कर्ष निकलताहै। इसकी पुष्टि वनपर्व के तीर्थयात्रा-पर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, शल्यपर्व, शान्तिपर्व आदि में वर्णित जनपदों की स्थिति से भी होतीहै।

ऐसे अनेक प्रसँगों से इस धारणा की पुष्टि होतीहै कि महाभारत के अधिकांश का सम्पादन शुंगकाल में पञ्चनद से बाहर, व्यासाश्रम में हुआथा।

व्यासाश्रम— महाभारत के अनुसार व्यासजी ने महाभारत का सम्पादन हिमालय में अपने आश्रम में कियाथा। उनका आश्रम मेरुपर्वत की शाखा गन्धमादन पर गङ्गाजी के तट पर था [७]। यहां पहले व्यासजी ने चिरकाल तक तपस्या करके शुकदेव को पुत्ररूप में प्राप्त कियाथा [८]। गन्धमादनशृंग पर स्थित उनका यह आश्रम बदरिकाश्रम के अन्तर्गत था [८]। महाभारत में अनेक स्थलों पर बदरिकाश्रम की पावनता की प्रशँसा कीगईहै। तथा उस आश्रम का एवँ उसके निकट के आश्रमों का विस्तृत वर्णन दियागयाहै [९]।

हिमालय के अँचल में स्थित इस आश्रम में, गुफा के भीतर, धर्मात्मा व्यासजी स्नानादि से शरीर शुद्ध करके कुशासन पर बैठतेथे। वे पवित्र हृदय से इन्द्रियनिग्रह का व्रत

१- कर्णपर्व, अ० ४४ २- कर्णपर्व, ४४।११ ३- कर्णपर्व, ४४।३६

४- कर्णपर्व, ४४।४६ ५- कर्णपर्व, ४४।१३ ६- कर्णपर्व, ४४।४१

७- शान्तिपर्व, ३२४।१२ ८- शान्तिपर्व, ३२४।१३

९- 'स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासे पर्वतोत्तमे।
गन्धमादन - शृङ्गे तु श्रीमद् वदरिकाश्रमे ॥
इत्युक्त्वा वचनं देवि ! पाराशर्यो महामुनिः।
शिष्यैः परिवृत्तो विप्रैर्वंदर्याश्रममण्डले'॥ — केदारखँड, ६१।३९ - ४०

लेकर, तपस्या के नियमों का पालन करतेहुए शान्तचित्त से श्रुति, स्मृति एवँ आख्यानादि इतिहासों का चिन्तन करतेथे [१]।

जिस स्थान पर उन्होंने महाभारतादि ग्रन्थों की रचना कीथी, वह स्थान आजतक व्यासपुस्तक के नाम से प्रसिद्ध है। मान्यता है कि इस स्थानपर व्यासजी सदा निवास करतेहैं। जो व्यक्ति इस स्थान पर, पांच दिन तक जितेन्द्रिय रहकर उपवास करतेहैं, उन्हें, वांछित वरदेनेवाले सत्यवतीपुत्र भगवान् व्यास दर्शन दियाकरतेहैं [२]।

दक्षिणभारतीय पाठ— महाभारत के दो पाठ मिलतेहैं, उत्तरभारतीय और दक्षिणभारतीय। महाभारत के दोनों पाठों के अनुसार महाग्रन्थ की रचना व्यासजी ने अपने उस आश्रम में कीथी जो हिमालय में गङ्गाजी के तट पर था। उत्तरभारतीय पाठ की अपेक्षा दक्षिणभारतीय पाठ अधिक विस्तृत है। उसमें महाग्रन्थ की श्लोकसँख्या शत - सहस्र तक पहुँचाने का प्रयत्न कियागयाहै।

दक्षिणभारतीय पाठ का सम्पादन विधिपूर्वक कियागयाहै। उसमें वर्णित घटनाएँ स्पष्ट और स्वाभाविक हैं। इस पाठ की तुलना में उत्तरभारतीय पाठ में अनेक घटनाएँ अस्पष्ट और कई स्थानों पर एक - दूसरे से असम्बन्धित प्रतीत होतीहैं। कुछ घटनाएँ अस्वाभाविक एवँ असँगत हैं, और उनकी वर्णनशैली तथा सम्पादनपद्धति दक्षिणभारतीय पाठ की तुलना में निम्नकोटि की हैं [३]।

इस दक्षिणभारतीय पाठ का सम्पादन उत्तराखण्ड में बदरिकाश्रम में हुआथा, जैसा दोनों पाठों के उत्तराखण्ड - सम्बन्धी अनेक प्रसँगों के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होताहै। दक्षिणभारतीय पाठ के सम्पादक उत्तराखण्ड की पुनीतभूमि पर इतने मुग्ध थे कि उन्होंने इस प्रदेश सम्बन्धी प्रत्येक प्रसँग में कुछ न कुछ वृद्धि करके उसे उत्तरभारतीय पाठ की अपेक्षा अधिक रोचक और विस्तृत बनादियाहै [४]।

१- आदिपर्व, १।१८ से आगे दा० पाठ   २- केदारखंड, ६१।४२

३- ' The Southern recension thus impresses us by its precision, schematization. and thoroughly practical outlook. Compared with it the Northern recension is distinctly vage, unsystematic, sometimes even inconsequent, more like a story rather naively narrated, as we find in actual exprience. ' — सुथंकर मेमोरियल एडिशन, जि० १, पृ० ४८

४- देखिए, हिमालय की पवित्र गुफा में व्यासजी द्वारा महाभारत की रचना—आदिपर्व, १।२८ से आगे; कण्वाश्रम के तपस्वियों का विस्तृत वर्णन—आदि०, ७४।१२ से आगे; कुन्ती द्वारा वीर पुत्र उत्पन्न करने हेतु वायुदेव का आवाहन—आदि०, १२२।१० से आगे; पांडु-निधन पर कुन्ती का शोक—आदि०, १२४।२२ से आगे; कश्यप द्वारा पांडु की अन्त्येष्टि—आदि०, १२४।३१ से आगे; गङ्गाद्वार में नागकन्या उलूपी के गर्भ से इरावन् का जन्म—आदि०; २१३।३६ से आगे; अर्जुन द्वारा मेरु-मन्दराचल के मध्य शैलोदा के तट पर बसे कुणिन्द, खश, तङ्गणादि जातियों की विजय—

पुराणों का सम्पादन—महाभारत की अपेक्षा पुराणों का सम्पादन कुछ अधिक अवधि तक चलतारहा। इन ग्रन्थों के लुप्त अँशों की पूर्ति तथा उनमें नए अँशों का संग्रह भी शुँगकाल में, तथा उसके पश्चात् तक हुआ। प्रायः कहाजाताहै कि पुराणों को वर्तमान स्वरूप गुप्तकाल में मिला। गुप्तनरेश शास्त्रीय हिन्दुधर्म के पोषक और वर्णाश्रम-मर्यादा पर विश्वास रखनेवालथे। इसलिए उनके शासनकाल में प्राचीन हिन्दुआख्यानों का संग्रह कियाजाना स्वाभाविक था।

किन्तु पुराणों में जहां कलियुग के अनेक राजवँशों, प्रद्योत, शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुँग, काण्व आदि की विस्तृत वँशावलियां मिलतीहैं, वहां गुप्तवँश के सम्बन्ध में केवल एक ही पँक्ति मिलतीहै :—

'अनुगङ्गाप्रयागँ गयायाञ्च मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति[1]'।

'अनुगङ्गमाप्रयागँ गुप्ता भोक्ष्यन्ति मेदिनीम्'।[2]

गुप्तनरेश गङ्गाजी की उपत्यका में प्रयाग तक की भूमि पर शासन करेंगे।

इस पँक्ति में गुप्तवँश के किसी नरेश का नाम नहीं है। यदि पुराणों का सम्पादन गुप्तराज्यकाल में या गुप्तनरेशों के आश्रय में हुआहोता तो पुराणों के सम्पादक भविष्यवाणी करतेहुए परमप्रतापी चन्द्रगुप्त, तथा समुद्रगुप्त आदि का उल्लेख अवश्य करते।

इस पँक्ति का जो पाठ भागवतपुराण में मिलताहै, उसके अनुसार यह पँक्ति विश्वस्फूर्जि केलिए कही गईहै। इसका गुप्तनरेशों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उस पाठ के अनुसार विश्वस्फूर्जि[3] ने अपने वलवीर्य से क्षत्रियों को नष्ट करदिया। तथा पद्मावतीपुरी को अपनी राजधानी बनाकर उसने हरिद्वार से लेकर प्रयागपर्यन्त सुरक्षित पृथ्वी पर शासन कियाथा[4]।

पुराणों में गङ्गाजी तथा यमुना के तटवर्ती तीर्थों की वड़ी पावनता गाईगईहै। अधिकांश पुराण गङ्गाजी और उत्तराखण्ड की पावनता की घोषणा करते नहीं अघाते। प्ररम्परा के अनुसार व्यासजी ने महाभारत और पुराणों का, हिमालय में अपने आश्रम में,

---

सभा०, २८।६ से आगे; उत्तराखण्ड के कुणिन्दनरेश द्वारा युधिष्ठिर को दिव्यशंख की भेंट—सभा०, ५१।७ से आगे; श्रीकृष्ण द्वारा शोणितपुर में प्रवेश—सभा०, ३६।२६ से आगे; उत्तराखण्ड के दरद, तुषार, खश आदि आयुधजीवी म्लेच्छों का सात्यकि से प्रस्तरयुद्ध—द्रोण०, १२१।४० से आगे, आदि

१- विष्णुपुराण, ४।२३।६३

२- अन्यत्र पाठान्तर

३- 'मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जि पुरञ्जयः।
करिष्यत्यपरो वर्णान् पुलिन्दियदुमद्रकान्॥
प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः।
वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मावत्यां स वै पुरि।
अनुगङ्गामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम्।'— भागवतपुराण, १२।१।३६ - ३७

४- भागवतपुराण, गीताप्रेस संस्करण, पृ० ६०६

सम्पादन कियाथा। पीछे उनके शिष्यों ने नैमिषारण्य में तथा अन्यत्र पुराणों की कथा सुनाईथी ।

इससे विदित होताहै कि शुंगकाल तक उत्तराखण्ड के कुछ आश्रमों में प्राचीन आषग्रन्थों के पठन - पाठन का क्रम चलाआरहाथा। तथा सम्भवतः पुराणों के मूल - अँशों का सँग्रह भी उन आश्रमों में हुआथा। पुराणों में उल्लिखित कलियुग की राजवँशावलियों का सँग्रह निश्चय ही मध्यदेश की राजधानियों में हुआहोगा।

सम्पादन-तिथि— महाभारत - जैसे विशाल ग्रन्थ का तथा पुराणों के कतिपय अँशों का सम्पादन व्यासाश्रम में उनदिनों हुआहोगा, जब इस जनपद में शान्ति और समृद्धि का युग रहाहोगा।

भारहुतस्तूप का निर्माण और महाभारत का सम्पादन विक्रमपूर्व दूसरी - पहली शती की महानतम रचनाएँ सम्भवतः समकालीन थीं। जिनदिनों भारहुत के शिल्पी बुद्ध के जीवन तथा पूर्वजन्मों से सम्बन्धित अनेक प्रसँगों को शिलाओं पर अङ्कित कररहेथे, लगभग उन्हींदिनों उत्तराखण्ड के आश्रमों में व्यासजी की शिष्य - परम्परा अपने आचार्य द्वारा निर्धारित पद्धति से भूर्जपत्र पर प्राचीन आख्यानों एवँ नीति, धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं को अँकित कररहीथी।

ऐसा शान्ति और समृद्धि का युग इस जनपद में धनभूति प्रथम के राज्यकाल से लेकर अमोघभूति के राज्यकाल तक रहा। सम्भवतः इसीसमय महाभारत का अन्तिम सम्पादन और पुराणों के अनेक अँशों का सँकलन हुआ।

धार्मिक मान्यताएं— नन्द - मौर्यकाल के समान शुंगकाल में भी देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा सुप्रचलित थी। केवल बुद्धमूर्ति की तबतक कल्पना न हुईथी। भारहुत में अँकित चित्रों में बुद्ध की उपस्थिति प्रायः पादुका से व्यक्त कीगईहै।

देवमूर्तियों केलिए मन्दिर बनाएजातेथे [१]। धार्मिक उपदेशों केलिए सार्वजनिक सभागृह होतेथे [२]। कृष्ण के साथ बलराम, कुवेर, स्कन्द, विशाख और शिव की पूजा प्रचलित थी [३]। वेदिक यज्ञों का अनुष्ठान भी होताथा।

देवताओं की पत्नियों की कल्पना और पूजा प्रचलित होगईथी। इन्द्राणी, वरुणानी, भवानी, शर्वाणी, मृडानी, इसीप्रकार की देवियां थीं। इनके अन्तिरिक्त अन्य स्वतन्त्र देवियों की पूजा भी प्रचलित थी। इनमें गौरी, सरस्वती, लक्ष्मी और यमी अधिक प्रसिद्ध थीं [४]। नानाप्रकार की मातृदेवियों की पूजा होतीथी। अहिच्छत्रा की खुदाई में ऐसी अनेक मूर्तियां मिलीहैं [५]।

भागवतसम्प्रदाय को विशेष लोकप्रियता प्राप्त होगईथी। शैवभागवत, नारायण-

---

१- ३- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष, पृ० ५६

४- अग्निहोत्री — पूर्वोक्त, पृ० ५५३   ५- एनशिएंट इण्डिया, सं० ४, पृ० १०६-१०८

भागवत के अतिरिक्त अनेक देवी - देवताओं के उपासक भी भागवत कहलातेथे। शुंगकालीन एक यक्षमूर्ति पर मणिभद्र यक्ष केलिए भी भगवान् लिखा मिलाहै।

महाभाष्य से विदित होताहै कि उस युग में शिवभक्ति का सबसे अधिक प्रचार था। शिव के उपासक, शिवभागवत अपने साथ शिव - चिह्न के रूप में त्रिशूल रखतेथे [१]। आगे चलकर तो मुद्राओं पर त्रिशूल और परशु दोनों मिलनेलगे।

नर - नारायण की उपासना करनेवाले भागवतों की पुण्यभूमि वदरिकाश्रम में मानीगई। फलतः इस तीर्थ की यात्रा में वृद्धि होगई। यवन भी, जो पहले बौद्धमत की ओर आकर्षित हुएथे, नारायण - भागवत - सम्प्रदाय को अपनानेलगे। अगणित नाग, यक्ष तथा ग्राम देवी - देवताओं का प्रभाव जनता पर पूर्ववत् बनारहा। उन्हें सन्तुष्ट करने केलिए तन्त्र, मन्त्र, स्तोत्र आदि प्रचलित होगए।

जैन आगमग्रन्थों में अनेक देवो - देवताओं के नाम पर मेले - उत्सवों का उल्लेख मिलताहै, जो उस देवता के 'मह' कहलातेथे [२]। ऐसे मह इन्द्रमह [३], स्कन्दमह [४], रुद्रमह [५], मुकुन्दमह [६], शिवमह [७], वैश्रवणमह [८], नागमह [९], यक्षमह [१०], भूतमह [११], और आर्या (चण्डी) मह [१२] कहलातेथे।

वृक्षदेवता और चैत्यों की पूजा घर - घर प्रचलित थी। महापुरुषों की अस्थियां और अन्य अवशेष या उनके जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं को स्तूपों के अन्दर रखकर पूजा कीजातीथी।

स्रुघ्न में अनेक स्तूप थे। राजधानी के दक्षिण - पश्चिम में, यमुना के पश्चिमी तट पर अशोक का बनायाहुआ स्तूप तबतक सुरक्षित दशा में था। सातवीं शती में यहां, स्तूप के पास एक सँघाराम भी चीनी यात्री ने देखाथा। सम्भव है, उसे उन स्रुघ्ननरेशों ने ही बनवायाहो, जिन्होंने भारहुत और मथुरा के स्तूपों के तोरण - स्तम्भों का निर्माण कियाथा।

इन स्तूपों में तथागत, सारिपुत्र, मौद्गल्यायन तथा अन्य अर्हतों के अवशेष थे। धनभूति आदि नरेशों के राज्यकाल में स्रुघ्न बौद्धमत का पुनीतस्थल बनचुकाथा।

तीर्ययात्रा का व्यापक प्रचार हुआ। जैन और बौद्धमतों ने भी तीर्थयात्रा को प्रोत्साहन दिया। गङ्गाजी के प्रति पूज्यभावना ने जन - जन के मानस में स्थान बनालिया। दिव्यावदान के अनुसार, जिसकी रचना पुष्यमित्र की मृत्यु के पश्चात् हुई, मायापुर - हरिद्वार

१- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ५५३
२- ३- जैन — जैन आगमसाहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४२९
४- जैन — पूर्वोक्त, पृ० ४३२
५- ७- जैन — पूर्वोक्त, पृ० ४३३
८- ९- जैन — पूर्वोक्त, पृ० ४३५ १०- जैन — पूर्वोक्त, पृ० ४३७ ११- जैन — पूर्वोक्त, पृ० ४४७
१२- जैन — पूर्वोक्त, पृ० ४४९

की पवित्रता के सम्बन्ध में जन - साधारण की दृढ़ धारणा होगईथी कि वहां गङ्गाजी में स्नान करनेसे पापों का नाश होताहै [१]।

उनदिनों गङ्गातट पर, अनेक तीर्थों में मेले लगतेथे, जो गङ्गामह कहलातेथे। इनमें यज्ञादि किएजातेथे [२]। गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश की तीर्थयात्रा होतीथी। गङ्गाजी और यमुना में मिलनेवाली नदियों को भी इतना ही पुनीत मानाजाताथा। वे गङ्गाजी और यमुना में मिलकर अपना नाम खोबैठतीथीं और गङ्गाजी तथा यमुना ही बनजातीथीं [३]।

दान और तीर्थयात्रा को स्वर्गप्राप्ति का साधन मानाजाताथा [४]। मान्यता थी कि तीर्थों में स्नान करनेसे तीर्थयात्री सब प्रकार की कर्मपीड़ा से विनिर्मुक्त होजाताहै [५]।

शासन-व्यवस्था— कुलिन्दजनपद की गणना गणराज्यों में कीजातीथी। उसे श्रेष्ठ गणराज्य मानाजाताथा। शतियों पीछे, जब उसकी राजनैतिक सत्ता का अवसान भी होचुकाथा, उसका नाम सम्मानपूर्वक लियाजाताथा। बृहत्संहिता में कुलिन्द को गणपुंगव या गणों में शिरोमणि बतायागयाहै [६]। यद्यपि उस ग्रन्थ में अनेक गणराज्यों का कई स्थानों पर उल्लेख है किन्तु इस विशेषण का प्रयोग अन्य किसी गणराज्य केलिए नहीं हुआहै।

उस युग में कुणिन्द, यौधेय, औदुम्बर तथा त्रिगर्त प्रमुख गण थे। कुलूत सम्भवतः त्रिगर्त का ही अवयव था। गणमुद्राओं पर केवल गण का नाम और गणसूचक अंक तथा लक्षण अंकित किएजातेथे [७]। कुणिन्दगण की आरम्भिक मुद्राएँ इसीप्रकार की हैं। पीछे मुद्राओं पर नरेश का नाम भी आनेलगा। इसे गण - शासनप्रणाली में परिवर्तन का द्योतक मानाजाताहै।

गण या सँघ में शक्ति एक राजा के हाथ में केन्द्रित न होकर जनपद की समग्र क्षत्रियजाति में विभक्त रहतीथी [८]। जनपद के क्षत्रियपरिवारों के सदस्यों की सभा शासन की व्यवस्था करतीथी। एकराज शासन में यद्यपि सत्ता राजा के हाथ में होतीथी, किन्तु उसे मन्त्रिपरिषद् के परामर्ष से कार्य करनाहोताथा। ऐसी परिषदें शुंगकाल में भी थीं [९]।

अष्टाध्यायी में कुलिन्द - कालकूट जनपद की गणना एकराज जनपदों में कीगईहै [१०]। इससे विदित होताहै कि विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती में इस गण की शासन-प्रणाली में परिवर्तन होचुकाथा। और राजा ने जनपद का शासन स्वयँ सम्भाल लियाथा।

१- वाटर्स – औन युवानचाङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, पृ० ३२० - २१

२- महाभाष्य, ५।१।१२

३- महाभाष्य, १।७।७२

४- ५- अग्निहोत्री – पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ५८२

६- 'कौलिन्दान् गणपुंगवान्' – बृहत्संहिता, ४।२४

७- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० ३९१

८- अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० ३८४

९- महाभाष्य, १।१।६८;

अग्निहोत्री – पूर्वोक्त, पृ० ३८०

१०- अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४३४

दूसरी ओर, बराहमिहिर ने शतियों पश्चात् भी कुलिन्द की गणना गणों या संघों में की है [1]। इसका समाधान करने का जायसवाल ने प्रयत्न कियाहै। उनका कहनाहै कि कुणिन्दगण ऐसा गणराज्य था, जिसमें राजा - सभापति का निर्वाचन होताथा। उसकी मुद्राएं राजा और राजनीतिक समाज (गण ?) दोनों के नामों से अँकित होतीथीं [2]।

जायसवाल के इस कथन में सत्यता होसकतीहै। कुणिन्दों के पड़ोसी और सहयोगी यौधेयगण की मुद्राओं पर गण और मन्त्रधर दोनों का उल्लेख है [3]। इसीप्रकार वृष्णियों की मुद्राएं गण और राजन्य दोनों के नामों पर हैं [4]। इससे अनुमान लगताहै कि कम से कम अग्रराज के शासन से पूर्व कुणिन्दगण का शासन संघ - गणो की प्रजातांत्रिक प्रणाली पर आधारित था।

सम्भवत: अग्रराज के शासनकाल में इस जनपद पर यवनअधिकार होगया, जिससे शासन की प्राचीन गणप्रणाली छूटगई।

यवन - शासन उठजाने पर कुलिन्दजनपद शुंगसाम्राज्य के अधीन होगया। जनपद पर अग्रराज के वँशज पूर्ववत् शासन करतेरहे। जनपद ने शीघ्र ही अपनी पिछली समृद्धि प्राप्त करली। स्रुघ्ननरेशों ने जनपद से बाहर भारहुत और मथुरा में भी स्तूपों के स्तम्भ - तोरणादि के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दियाथा।

सम्भवत: शुंगनरेशों के समान स्रुघ्ननरेशों की भी मन्त्रिपरिषद् होतीथी, जो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करतीथी।

अमोघभूति के उत्तराधिकारियों के शासन के सम्बन्ध में जानने केलिए साधन उपलब्ध नहीं हैं।

—०—

अनुमानित तिथि-क्रम

गान्धार-साकल के यवननरेश—

दिमित्र	— वि० पू० १३५ - ११० (192 - 167 B. C.)
भारत - अभियान	— वि० पू० १३१ - ११० (188 - 167 B. C.)
मेनान्द्र	— वि० पू० ११० - ९२ (167 - 149 B. C.)
अगथोसलिया, स्रातो, स्त्रातो फिलोपेतर, अपोलोदोतस	— वि० पू० ९२ - १३ (149 - 70 B. C.)

१- वृहत्संहिता, ४।२४ २- जायसवाल -- हिन्दू राजतन्त्र, भाग १, पृ० ११० - ११
३- ४- अग्निहोत्री — पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० ३८५

मगध-पाटलिपुत्र-विदिशा के शुङ्गनरेश—

पुष्यमित्र	– वि० पू० १२७ - ९१	(184 - 148 B. C.)
प्रथम अश्वमेध	– वि० पू० ११३	(170 B. C.)
द्वितीय अश्वमेध	– वि० पू० ९२	(149 B. C.)
अग्निमित्र	– वि० पू० ९१ - ८३	(148 - 140 B. C.)
ज्येष्ठमित्र	– वि० पू० ८३ - ७६	(140 - 133 B. B.)
वसुमित्र	– वि० पू० ७६ - ६६	(133 - 123 B. C.)
परवर्ती शुंगनरेश	– वि० पू० ६६ - १५	(123 - 72 B. C.)

कालकूट-स्रुघ्न के कुणिन्दनरेश—

गणशासन	– वि० पू० १७५-१४३	(232 - 200 B. C.)
अज्ञात वँशस्थापक	– वि० पू० १४३	(200 B. C.)
विश्वदेव, अग्रराज	– वि० पू० ? - १०३	(? - 160 B. C.)
यवन - अधिकार	– वि० पू० १२९-११३	(186 - 170 B. C.)
धनभूति प्रथम	– वि० पू० १०३- ८३	(160 - 140 B. C.)
वृद्धपाल, धनभूति द्वितीय, बलभूति	– वि० पू० ८३ - ४३	(140 - 100 B. C.)
अमोघभूति	– वि० पू० ४३ - ३	(100 - 60 B. C.)

अलमोड़ा के कुणिन्दनरेश—

मृग (मार्ग) भूति, शिवदत्त, हरिदत्त, शिवपालित	– वि० पू० ३ - ७७ वि०	(60 B. C. - 20 A.D.)

मथुरा के शकक्षत्रप—

सम्राट मोग क्षहरात	– वि० पू० २० - १	(77 - 58 B. C.)
मथुरा पर अधिकार	– वि० पू० ३ वि०	(60 B. C.)
महाक्षत्रप हगाम	– वि० पू० ३ - १७	(60 - 40 B. C.)
हगान, रँजुबल, सोंदास	– सँ० १७ वि० - ७७ वि०	(40 B. C. - 20 A: D.)
परवर्ती क्षत्रप - महाक्षत्रप	– सँ० ७७ वि० - १३७ वि०	(20 - 80 A. D.)

शक-पह्लव-अधिक

मोग

मेनान्द्र की मृत्यु के पश्चात् पँचनद में अनेक छोटी - बड़ी यवनठकुराइयों स्थापना होगई, जिनके शासक अपनी सुविधानुसार मेनान्द्र के दुर्बल वँशजों की अधीनता मात्र केलिए स्वीकार करलेतेथे। जब पूर्व की ओर औदुम्बर, यौधेय और कुणिन्द स्वतन्त्रता घोषित करदी, तो मेनान्द्र के वँशजों के शासितप्रदेश और शक्ति का ह्रास होगया। फलतः यवनठकुराइयां स्वतन्त्र होगईं, और उनके पारस्परिक बढ़गए।

वि० पू० ५८ (115 B. C.) के आसपास घुमन्तु शकजाति की अनेक टोलि ने उत्तरपश्चिम के विभिन्न मार्गों से होकर भारत में प्रवेश किया [१]। उनके साथ जातियों की टोलियां भी थीं, जिन्हें अपने छापामार अभियानों में उन्होंने अपना बनालियाथा, और जो उन्हींके साथ घुलमिलगईथीं [२]।

इन टोलियों मेंसे कुछ, जो मुख्यतः पशुचारक थीं, हिमालय की ढालों पर, पशुओं के साथ पूर्व की ओर फैलगईं। इनके सम्बन्ध में आगे लिखाजाएगा।

कुछ टोलियां भलानद्वार के मार्ग से सिन्धुनदी की दक्षिणी उपत्यका में उतरगईं इन टोलियों का नायक शकजाति के क्षहरात वँश में उत्पन्न मोग था। उसने अल्पकाल में ही शक्तिहीन यवनठकुराइयों को रौंदतेहुए सिन्धुनदी की पश्चिमी तथा पूर्वी, दोनों उपत्यकाओं पर अधिकार करलिया। शीघ्र ही उसका राज्य गान्धार से लेकर सिन्धुनदी की निचली उपत्यका तक तथा वर्तमान विलोचिस्तान से लेकर झेलमनदी के पश्चिमी तट तक पहुँचगया।

झेलम से पूर्व की ओर अब भी मेनान्द्र के वँशजों का राज्य था। उससे पूर्व की ओर औदुम्बर, यौधेय और कुणिन्द गणों के स्वतन्त्र जनपद थे।

मथुरा-विजय— मेनान्द्र के वँशजों से बिना लड़े ही मोग ने सिन्धुनदी की दक्षिणी उपत्यका से पूव की ओर बढ़कर सौराष्ट्र पर अधिकार करलिया। अवन्ति के मार्ग से होकर

१- २- स्मिथ – अर्लि हिस्टरी आव इडिया, पृ० २४०

उसने विक्रमपूर्व ३ (60 B. C.) के आसपास मथुरा तथा पड़ोसी प्रदेश को जीतलिया। मोग की विजयवाहिनी ने वही मार्ग अपनायाथा, जिसे अपनाकर पहले दिमित्र के पुत्र अपोलोदोतस ने सफलता प्राप्त कीथी।

मोग ने भरुकच्छ के महत्वपूर्ण समुद्रीपत्तन पर अधिकार करलिया। इस पत्तन से उज्जयिनी होकर मथुरा जानेवाले व्यापारिक मार्ग पर उसका एकाधिकार होगया।

झेलम से पश्चिम की ओर के सारे प्रदेश पर, तथा सौराष्ट्र, अवन्ति और मथुरा पर अधिकार करलेने पर उसने मेनान्द्र के वँशजों के यवनराज्य को, तथा औदुम्बर, यौधेय और कुणिन्द गणों के जनपदों को अपनी चतुर व्यूहरचना द्वारा घेरलिया। जिससे यवनराज्य और इन गणों के जनपदों के अस्तित्व केलिए घोर सँकट उत्पन्न होगया।

मथुरा के क्षत्रप—मोग ने अपने साम्राज्य को शासन की सुविधा केलिए तक्षशिला, मथुरा और सौराष्ट्र - अवन्ति की क्षत्रपियों में बांटाथा। इनपर एक महाक्षत्रप अपने पुत्र या किसी सगे सम्बन्धी को अपना क्षत्रप बनाकर, उसकी सहायता से शासन करताथा। महाक्षत्रप की मृत्यु होजाने पर उसका क्षत्रप ही उसके स्थान पर महाक्षत्रप बनजाताथा।

वि० पू० १ (58 B. C.) में जब मोग की मृत्यु होगई तो मथुरा के महाक्षत्रप हगाम ने स्वतन्त्रता घोषित करदी। हगाम भी मोग के समान शकजाति के अहरातवँश में उत्पन्न हुआथा। वह अपने पुत्र हगान की सहायता से मथुरा क्षत्रपी पर शासन करताथा। उसकी मृत्यु के पश्चात् हगान महाक्षत्रप बनाथा।

शिलालेखों और मुद्राओं से अबतक मथुरा के नौ क्षत्रप - महाक्षत्रपों के नाम प्राप्त हुएहैं। हगाम, हगान, रञ्जुबल, सोदास, तरनदास, भरनदास, शिवघोष और शिवदत्त।

मथुरा के क्षत्रपों के, मोग के साम्राज्य की पश्चिमी क्षत्रपी, तक्षशिला के क्षत्रपों से घनिष्ट सम्वन्ध थे [१]। और वे समकालीन थे। मथुरा के परवर्ती क्षत्रपों के नाम भारतीय प्रतीत होतेहैं, किन्तु आरम्भिक क्षत्रपों के नाम सम्भवतः परसियन नामों के अनुकरण पर रखेगएथे [२]।

इन क्षत्रपों की राज्यावधि के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। अनुमान कियाजाताहै कि मथुरा के क्षत्रपों ने यमुना की पूर्वी और पश्चिमी उपत्यका पर लगभग डेढ़ शती तक शासन कियाथा। उनकी राज्यसत्ता कुशाणनरेश विम के राज्यकाल में समाप्त हुई। इस प्रकार उनकी राज्यावधि वि० पू० ३ से लेकर सम्बत् १३७ वि० (60 B. C. - 80 A. D.) के आसपास मानीजासकतीहै।

कुलिन्दजनपद का उत्पाटन— मथुरा में शक्तिशाली शकक्षत्रपी की स्थापना से कुलिन्दजनपद केलिए सँकट उत्पन्न होगया। वि० पू० ३ (60 B. C.) के आसपास

१· २· स्मिथ — अर्लि हिस्टरी आव इंडिया, पृ० २४१

कुणिन्दराजवँश के परमप्रतापी नरेश अमोघमूति की मृत्यु होगई । इन्हीदिनों मथुरा में शकक्षत्रपी की स्थापनी हुई ।

कुलिन्दजनपद की राजधानी स्रुघ्न और मथुरा के बीच दैनन्दिन यातायात का सुप्रबन्ध था [१] । मार्ग सुपथ था । उसपर रथ और पशु सरलता से चलसकतेथे [२] । स्रुघ्न समृद्धिशाली नगर था । उत्तरापथ का सुप्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग स्रुघ्न होकर जाताथा। स्रुघ्ननगर में सुदृढ़ प्राकार था [३] । वहीं मध्यदेश को जानेकेलिए यमुना पारकरने का घाट था । इसप्रकार स्रुघ्न मध्यदेश और पँचनद का मध्यवर्ती द्वाररक्षक था ।

भरुकच्छ से अवन्ति होकर मथुरा पहुँचनेवाले व्यापारिक मार्ग पर अधिकार करलेने के पश्चात् यह स्वाभाविक था कि शकक्षत्रप स्रुघ्न पर अधिकार करलेते ।

अस्तु अनुमान लगताहै कि अमोघभूति की मृत्यु के पश्चात् मथुरा के क्षत्रपों ने या तो स्रुघ्न पर अधिकार करलियाथा, या उस नगर और उसके पड़ोस के प्रदेश पर बार - बार छापा मारतेथे ।

मुद्राओं का साक्ष्य— अमोघभूति की रजतमुद्राएँ उसकी राज्यावधि, अनुमानतः वि० पू० ३ (60 B. C.) के पश्चात् नहीं मिलतीं । उसकी ताम्रमुद्राओं का अनुकरण आरम्भिक (शक तथा) कुशाण आक्रान्ताओं ने उसीप्रकार कियाथा, जिसप्रकार उन्होंने यवननरेश हरमस की मुद्राओं का कियाथा [४] ।

इससे विदित होताहै कि शक - कुशाण आक्रान्ताओं ने अमोघभूति द्वारा शासित प्रदेश पर अधिकार करलियाथा [५] ।

परवर्ती कुणिन्दनरेश म-ग-भ-तस (मृगभूति या मार्गभूति ?), शिवदत्त, हरिदत्त और शिवपालित की मुद्राएँ कुलिन्दजनपद के धुरपूर्वी भाग अलमोड़ा में प्राप्तहुईहैं । अभीतक उनकी कोई मुद्रा जनपद के पश्चिमी भाग में नहीं मिलीहै ।

इससे अनुमान लगताहै कि अमोघभूति के वँशजों को, शकक्षत्रपों के बढ़तेहुए छापों के कारण अपने जनपद के पूर्वी भाग में शरण लेनीपड़ीथी । तथा सम्भवतः शक-आक्रांताओं ने जनपद के दक्षिणी - पश्चिमी भाग पर अधिकार करलियाथा ।

१- महाभाष्य, १।४।५१ २- महाभाष्य, ४।३।६८ ३- काशिका, २।३।४

४- ' Is is probable that class II (of the ; copper coins of Amoghabhuti) represents ordinary copper coinage of the reign. There is just the probability that they are imitations made by early Kushan invaders like the imitations of the coins of Hermaeus. '

— एलन — कैटैलोग आव दि क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० cii

५- ' It is probable that Amoghabhuti's political history was similar (to the history of his coinage). He was probably an Indian chief who

शकाधिकार-सम्बन्धी गाथाएं— कतिपय प्राचीन गाथाएँ शक आदि विदेशी जातियों का सम्बन्ध इस जनपद के पश्चिमी भाग से जोड़तीहैं। महाभारत के अनुसार कुलिन्दजनपद में प्रदर [१], पारद [२], तुषार [३], दरद [४] तथा खशादि [५] जातियां बसीथीं। इनमें प्रदर - पारद की पहिचान शकजाति के साथ आनेवाली पह्लवजाति से तथा तुषारजाति की पहिचान उन्हींकी सहयोगी कुशाणजाति से कीजातीहै।

यमुनाउपत्यका में, टोंस और यमुना के सँगम पर बसे हरिपुर का सम्बन्ध शकनरेश रिसालू से जोड़ाजाताहै [६]। पञ्जाब के शकनरेश रिसालू का राज्य यमुनाउपत्यका तक फैलारहाहो, यह सम्भव नहीं प्रतीत होता; कनिंघम का अनुमान है कि जब शकजाति यमुनाउपत्यका में आबसी तो अपने साथ राजा रिसालू की प्राचीन गाथा भी लेआई [७]।

किन्तु यह भी सम्भव होसकताहै कि रिसालू मथुरा के क्षत्रपों के अधीन एक स्थानीय शकशासक का नाम रहाहो, जिसके नाम के साथ पीछे पञ्जाब के राजा रिसालू की गाथाएँ भी जुड़गईहों। मथुरा के एक क्षत्रप का नाम रँजुबल मिलताहै; किन्तु रँजुबल और रिसालू के एकीकरण केलिए प्रमाण नहीं मिलते।

गढ़वाल - कुमाऊँ से प्राप्त कुछ प्राचीन लेखों के आधार पर कनिंघम का अनुमान है कि मौर्यवँश का अन्तिम नरेश राजपाल वि० पू० दूसरी शती में उत्तराखण्ड के राजा शकादित्य द्वारा मारागयाथा [८]।

हर्षचरित से विदितहोताहै कि उत्तराखण्ड के जिस नरेश का, ध्रुवस्वामिनी का वेष धारणकरके चन्द्रगुप्त ने छल से वधकियाथा, वह शकवँशी था [९]।

इन गाथाओं के आधार पर अनुमान लगताहै कि कुशाणसाम्राज्य आरम्भ होनेसे पूर्व, किसीसमय इस जनपद के पश्चिमी भाग पर शकजाति का अधिकार होगयाथा। पीछे, जब पश्चिम की ओर से पह्लवजाति की टोलियां आगे बढ़ीं, तो सम्भवतः जनपद के दक्षिण - पश्चिमी भाग पर वे भी लूटमार मचानेलगीं। फलतः परवर्ती कुणिन्दनरेशों को जनपद के पूर्वीभाग का आश्रय लेनापड़ा।

---

founded a shortlived kingdom at the close of the period of the Greek dominion in the Panjab, in the last half of the first century B. C., which was soon swept away by the Saka and Kushan invaders'.

१- तथा ५- ' खशा एकासना ज्योहाः प्रदरा दीर्घवेणवः।
पारदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः॥' — सभापर्व, ५२।३

२- ३- ' किरातराज्ञो विषयं सुबाहो पीर्नास्तुषारान् दरदांश्च सर्वान् ' — वनपर्व, १७७।११

६- ७- देहरादून-गजेटियर — पृ० २३२ ८- उ० पडि — कुमाऊं का इतिहास, पृ० ५२१

९- ' अरिपुरे परकलत्रकामुकं कामिनीवेशगुप्तश्च चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयदिति '
— हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३५४ - ५५

शक-शासन— पुराणों में कलियुग के राजवँशों का वर्णन करतेहुए सोलह शक-नरेशों का उल्लेख है [१]। सम्भवतः शकों के साथ पह्लवनरेशों को भी गिनलियागयाहै।

पह्लवजाति की टोलियां मोग की मृत्यु के पश्चात् भारत में प्रविष्ट हुईथीं। उन्होंने गान्धार और पँचनद में छोटी - बड़ी ठकुराइयां स्थापित कीथीं। यवनठकुराइयों की स्वतन्त्र सत्ता को अन्त में उन्होंने ही मिटायाथा।

पुराणों में शकों के पश्चात् आठ यवननरेशों का उल्लेख है [२]। इतिहास में यवनों के पश्चात् शकों का राज्यकाल आरम्भ होताहै।

शकों के शासन में प्रजा सुखी न थी। वे भी यवननरेशों के समान अत्याचारी थे। वे प्रजा के जन - धन का स्वेच्छानुसार अपहरण करतेथे। और अनेक प्रकार के कर लगाकर जनता को पीड़ित करतेथे। पुराणों में उन्हें अतिलोलुप कहागयाहै [३]।

शक-संस्कृति — शकजाति की टोलियों ने, विभिन्न युगों में भारत में प्रवेश कियाथा। उन सबका सांस्कृतिक स्तर एक - सा न रहाहोगा।

अष्टाध्यायी से पताचलताहै कि पाणिनि (वि० पू० पांचवी शती) से भी पहले किसी समय शकजाति का प्रसार उत्तर - पश्चिमी भारत में हुआथा [४]। प्राचीन साकलनगर का सम्बन्ध भी शकजाति से जोड़ाजाताहै। इस नगर की स्थापना दिमित्र के आक्रमण से पहले होचुकीथी।

वि० पू० दूसरी शती से पहले, किसी समय, हमारे उत्तरी सीमान्तप्रदेश में, कुछ आर्येतर जातियां आबसीथीं, जिसको पतञ्जलि ने शक - यवन बतलायाहै। इन आर्येतर जातियों के आबसने के कारण उन्होंने यवन, शक, गब्दिक (चम्बा में गद्दीजाति का मूल स्थान गद्देरन), क्रौंच (माणाद्वार), शौर्य (कुमाऊँ में सौंकीद्वार) को आर्यावर्त से बाहर मानाहै [५]।

वि० पू० पहली शती में, जिनदिनों क्षहरातवँशी शकनरेश मोग के अधीन शक टोलियों ने शकस्थान (ईरान के पूर्वी भाग) से तक्षशिला, भरुकच्छ, अवन्ति और मथुरा पर अधिकार जमाया, लगभग उन्हींदिनों या कुछ पहले, शकों की घुमन्तू पशुचारक टोलियों ने पश्चिम की ओर से हिमालय की ढालों पर बढ़ना आरम्भ किया।

घुमन्तू, पशुचारक शकटोलियों का प्रसार यवनजाति के प्रसार से भिन्न था। यवनों का प्रसार मुख्यतः उन शासक परिवारों का प्रसार था, जो बख्तीरिया में अपने राज्य की स्थापना करचुकेथे। वहां वे, अपनी प्रजा पर, जो यवनजाति से सम्बन्धित नहीं थी,

---

१- ' शका शोडस भूपाला: भविष्यन्त्यतिलोलुपा: ' — भागवतपुराण, १२।१।२६

२- ' तत: शोडस शकाभूपतयो भवितार: । ततश्चाष्टौ यवना: ' । — विष्णुपुराण ४।२३।५२-५३

३- भागवतपुराण, १२।१।२६

४- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८२

५- अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ४३

अपने सैनिकों के बल पर शासन करतेथे। भारत में भी उनके कतिपय परिवार, इसीप्रकार सेना की सहायता से शासन करतेरहे।

हिमालय की श्रेणियों पर पश्चिम से पूर्व की ओर जिन शकटोलियों का प्रसार हुआ, वे अपने साथ अपनी प्रमुख सम्पत्ति, अपने पशुओं को भी लाईथीं। इनमेंसे जिन टोलियों ने कृषि अपनाली, वे धीरे - धीरे स्थानीय खशजाति में, जो मूलरूप में शकजाति का ही एक शाखा थी, घुलमिलकर लुप्त होगईं। किन्तु कुछ पूर्ववत् घुमन्तू पशुचारक बनीरहीं।

इनमें आगे चलकर कुशाण - पशुचारकों की टोलियां भी मिलगईं। इन्हीं शक - कुशाण - पशुचारकों के वँशज आज भी कश्मीर से लेकर उत्तराखण्ड तक, बणगूजरों के रूप में दिखाईदेतेहैं।

आकृति और वेशभूषा— साइथ या सिथियनजाति के प्राचीन चित्रों तथा ईरान में मिले शकजाति के चित्रों में पूर्ण समानता मिलनेसे दोनों जातियां एक ही वर्ग की मानीजातीहैं [१]। शकजाति आर्यजाति के समान गोरी जाति थी। आकार और रूप - रङ्ग में वह आर्यजाति के समान थी तथा कोल - द्रविड़ एवँ मङ्गोलजाति से सर्वथा भिन्न थी [२]।

शकों की घनी दाढ़ी और लम्बे केश होतेथे। उनकी नाक लम्बी और प्रायः ऊपर उठीहोतीथी। उनकी भौंहें ऊँची और आंखें गहरी होतीथीं [३]। शकलोग पूरे बांह की जाकट, ढ़ीली, किन्तु एड़ी के पास तँग सलवार और ऊँची नुकीली टोपियां पहनतेथे [४]।

मूलरूप में शक अश्वारोही, पशुचारक और आयुधजीवी थे। वे प्रायः अपनी कमर में खड्ग खूँसे रहतेथे। वे चमड़े के ऊँचे जूते पहनते, और सलवार का निचला शिरा जूतों के अन्दर खूँसेरखतेथे। एड़ी और घुटनों के बीच पैरों पर, सलवार के ऊपर वे चमड़ की पट्टी बांधतेथे [५]।

सामाजिक मान्यताएं— शकजाति पशुचारक एवँ अश्वपालक जाति थी। उसका मुख्य भोजन मांस और मुख्य पेय दूध था [६]। सम्भवतः वे मांस के साथ ताजा रुधिर भी पीतेथे [७]। वे युद्ध में प्रथम गिरे शत्रु का गरम - गरम रुधिर भी पाण्डव भीम के समान पियाकरतेथे [८]।

शकजाति प्याज - लहसुन का चाव से सेवन करतीथी। हिमालयप्रदेश - उत्तराखण्ड में लादू या वनैले पलाण्डु के प्रयोग की प्रथा सम्भवतः उसीके द्वारा प्रचलित हुईथी।

१- कून — रेसेज आव यूरोप, पृ० १६७

२- कून — पूर्वोक्त, पृ० १६८

३- ४- कून — पूर्वोक्त, पृ० १६६

५- कून — पूर्वोक्त, पृ० १६८, चित्र

६- राहुल — मध्यएशिया का इतिहास, जि० १, पृ० ६७-६८

७-८- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० ६८

प्राचीन लेखकों के अनुसार शक - छोकरियों के सौन्दर्य का रहस्य पलाण्डु - लहसुन - सेवन में निहित था[१]।

शकजाति में बिवाहप्रथा अपने प्रारम्भिक रूप में थी। कई भ्राता मिलकर एक पत्नी रखसकतेथे। कुछ पुरुषों की साझी पत्नियां तथा कुछ नारियों के साझे पति होतेथे[२]। अर्थात् शकजाति में सगे भ्राताओं की साझी पत्नियों की तथा यूथबिवाह की प्रथाएं प्रचलित थीं[३]। पहली प्रथा हिमाचलप्रदेश तथा उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग में यत्र-तत्र आजतक चलीआतीहैं।

शक-समाधियाँ— प्राचीन मिश्रनिवासियों के समान शकजाति में भी मृतकों की, विशेषकर सामन्तों की समाधियों को विशेषरूप से बनाने की प्रथा थी। मृतक के साथ, उसकी समाधि में, उन सब वस्तुओं को रखदियाजाताथा, जिनकी उसे अपने जीवन में आवश्यकता पड़तीथी[४]। अनेक प्रकार के आयुध, आभूषण, खान - पान की वस्तुएं, वस्त्र, तथा आवश्यक उपकरण अनेक शकसमाधियों में प्राप्तहुएहैं। सामन्त के शव के साथ उसके अश्व, सेवक - सेविकाओं तथा एक पत्नी को मारकर उसकी समाधि में गाड़-दियाजाताथा[५]।

ऐसी समाधियां हमारे देश की धुर - उत्तरी पट्टी में लद्दाख - लाहुल से लेकर उत्तराखण्ड तक मिलीहैं। सँ० २०१३ वि० (1956 ई०) में मैंने गढ़वाल में, भारत - तिब्बत - सीमान्त पर स्थित मलारीगांव में, लगभग ग्यारह सहस्र फीट की ऊँचाई पर ऐसी समाधियों का अध्ययन कियाथा, जिनमें शवों के साथ भोजन और पेय के पात्र रखे मिलेथे। एक समाधि में तो दो मानव - कँकालों के साथ पशुकँकाल भी प्राप्तहुएथे[६]। इनके सम्बन्ध में आगे विचार कियाजाएगा।

शव - सँस्कार की अन्य प्रथाएं जैसे पक्षियों से शव नुचवाकर अस्थियां गाडने की तथा शव जलाने की प्रथा भी प्रचलित थीं। मृतक की पत्नी को भी चिता पर जलाने की प्रथा उनमें थी। विद्वानों की धारणा है कि भारत में सतीप्रथा का आरम्भ शकजाति के आगमन से हुआ[७]।

धार्मिक मान्यताएं— शकजाति में दिउ (वेदिक द्यौ=आकाश) तथा अपिया (आप्या) या पृथ्वी की पूजा प्रचलित थी। आकाश - पिता तथा पृथ्वी - माता के पुत्र स्वलियु (स्वरियु=सूर्य) की पूजा बहुप्रचलित थी[८]। इस सूर्यदेव की वेशभूषा शकजाति

१- 'यस्योपयोगेन शकाङ्गनानां लावण्यसारादिव निर्मितानाम् ।
कपोलकान्त्या विजित: शशाङ्को रसातलं गच्छति निर्विदेव' ॥

— वाग्भट — अष्टाङ्ग - सङ्ग्रह, उत्तर, अ० ४६

२- ५- राहुल — मध्यएशिया का इतिहास, जि० १, पृ० ६८

६- विस्तृत सूचनाहेतु द्र०, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० २२३ - ३५

७- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० ६८

८- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० ६९

की वेशभूषा के समान थी। प्राचीन सूर्यमूर्तियों में उसे खाल का लम्बा चोगा पहने और ऊँचे बूट कसे दिखायागयाहै।

ऐसी बूटधारी सूर्य की मूर्तियां कश्मीर, हिमाचलप्रदेश तथा उत्तराखण्ड के प्राचीन मन्दिरों में आजतक मिलतीहैं। ये मूर्तियां आर्यों के सप्ताश्ववाले सूर्य की मूर्तियों से भिन्न हैं। और कश्मीर से लेकर उत्तराखण्ड तक शकजाति के प्रसार की सूचक हैं। सतलुज के तट पर निरत के मन्दिर में, तथा उत्तराखण्ड में कटारमल के सूर्यमन्दिर में बूटधारी सूर्य की प्रतिमाएँ आजतक पूजीजातीहैं [1]।

खशजाति में लोप—अनेक प्रमाणों से विदितहोताहै कि शकजाति की अनेक टोलियों का हिमालय की ढालों पर कश्मीर से उत्तराखण्ड तक प्रसार हुआथा। रूप - रङ्ग तथा आकार - प्रकार में शकजाति खशजाति के समान थी। विद्वानों की धारणा है कि खशजाति विशाल शकजाति की ही एक शाखा थी [2], जो ईसवी पूर्व सातवीं शती से ही पहले, उससे पृथक् होकर गिलगित, कश्मीर और नेपाल तक फैलगईथी [3]।

शकजाति की आगन्तुक टोलियां धीरे - धीरे खशसागर में विलुप्त होगईं। फिर भी उनके स्मृतिचिह्न आजतक चलेआने से विदितहोताहै कि शकटोलियों ने बड़ी सँख्या में फैलकर इस प्रदेश के पूर्ववर्ती निवासियों को प्रभावित कियाथा। शकजाति में प्रचलित सगे भ्राताओं की साझी पत्नियों की प्रथा, ग्रामदेवताओं के वाहनों द्वारा आवेश में आकर बकरे का ताजा रुधिर पीजाने की प्रथा तथा बूटधारी सूर्य की पूजाप्रथा आजतक चलीआतीहैं। सम्भव है कि पहली दो प्रथाएँ खशजाति में पहलेसे ही प्रचलित रहीहों। पर बूटधारी सूर्य की मूर्तियों को शकजाति की ही देन मानाजाताहै [4]।

कुछ विद्वान् उत्तराखण्ड के कत्यूरी और पँवार राजवंशों का सम्बन्ध भी शकजाति से जोड़तेहैं [5]।

शकसामन्त हमारे देश के सम्भ्रान्त राजपूतों, जाटों, अहीरों और गूजरों के रूप में आज भी मिलतेहैं [6]। जिसप्रकार वे भारतीय जनता के अभिन्न अँग होगए, वेसे ही उनकी कुछ पुराकथाएँ, रीतिनीतियां तथा छन्द और लय भी यदि जनप्रिय होकर हमारे होगएहों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं [7]। अनुमान कियाजाताहै कि हिन्दी का दोहा छन्द शकजाति की देन है [8]।

१- द्र० उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० २०६ टि० ७
२- राहुल – मध्यएशिया का इतिहास, जि० १, पृ० ६८
३- राहुल – पूर्वोक्त, पृ० ७३
४- राहुल – गढ़वाल, पृ० ६६
५- राहुल – गढ़वाल, पृ० ६५; ११९
६- ८- राहुल – दोहा - कोश, भूमिका, पृ० ६५

कुशाण-साम्राज्य में

कुशाणजाति का आगमन— जिसप्रकार शकवँश की राजलक्ष्मी को लूटनेवाले उनके पुराने शत्रु पह्लव थे, उसीप्रकार पह्लवों से उनकी राजसत्ता छीननेवाले उनके पीछे भारत में प्रविष्ट होनेवाले कुशाण थे।

कुशाणजाति की पहिचान प्राचीन तुषार या तोखारीजाति से कीजातीहै [1]। महाभारत में कुलिन्दजनपद के निवासियों में पारद (पह्लव) [2] तथा तुषार, दोनों को सम्मिलित कियागयाहै [3]।

भारतीय संस्कृति से परिचय— भारत में आने से पूर्व कुशाण भारतीय सँस्कृति और धार्मिक मान्यताओं से प्रभावित होचुकेथे [4]। मौर्यसाम्राज्य में, गान्धार के निवासी पहले ही सीतानदी के कांठे खोतानप्रदेश में, अपना उपनिवेश बसाकर उसे सांस्कृतिक दृष्टि से भारत का भाग बनाचुकेथे [5]। इसलिए हम, इस प्रदेश से भारत में आनेवाले कुशाणनरेशों को आरम्भ से ही भारतीय सँस्कृति से सुपरिचित पातेहैं।

कुजुल कदफिस्

भारतीय इतिहास के यवन, शक, पह्लव और कुशाणनरेशों की राज्यावधि के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। अनेक विद्वानों की धारणा है कि ईसा की प्रथम शती के पूर्वार्द्ध में कुशाणवंशीय नरेश कुजुल कदफिस् ने काबुल और गान्धार पर अधिकार करलिया और पह्लवनरेश से उसकी राजधानी तक्षशिला छीनली। समकालीन यवन या पह्लव नरेश हेरमय को कुजुल कदफिस् की अधीनता स्वीकार करनीपड़ी [6]।

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ७

२- पारदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः ।।' — सभापर्व, ५२।३

३- 'किरातराज्ञो विषयं सुबाहोः

पीनांस्तुषारान् दरदांश्च सर्वान् ।' — वनपर्व, १७७।११

४- ५- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ६ - ७

६- बन्धोपाध्याय — प्राचीनमुद्रा, पृ० १०६ - ७

पश्चिम की ओर कुजुल का साम्राज्य मर्व तक फैलाहुआथा। कश्पियनसागर से सटे हरशियनप्रदेश के शासकों से उसके अच्छे सम्बन्ध थे। वँक्षु (ओक्सस) नदी के प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग पर उसका नियन्त्रण था [१]।

कुजुल की ताम्रमुद्राओं मेंसे कुछ पर बैठेहुए बुद्ध का चित्र मिलताहै [२]। इससे पूर्व भारत में बुद्ध की मानवमूर्ति प्रचलित नहीं हुईथी। उसकी मुद्राओं पर खरोष्टी में महरयस रयरयस देवपुत्रस (महाराजस्य राजराजस्य देवपुत्रस्य) लेख मिलताहै। उसने ध्रमठित (धर्मस्थित) विरुद भी धारण कियाथा। इससे उसकी बौद्धमत के प्रति श्रद्धा की सूचना मिलतीहै।

भारत में कुशाणराज्य का सँस्थापक कुजुल को ही मानाजाताहै। उसने ८० वर्ष की आयु में देहत्याग दिया।

विम कदफिस्

कुजुल के पुत्र विम ने अपने राज्य की सीमा कपिशा - गान्धार से पूर्व की ओर कुरु - पांचाल, काशी तक पहुँचादी।

उसने अनेक प्रकार की मुद्राएँ प्रचारित कीथीं। जो तक्षशिला से लेकर [३] पूर्व में तिरहुत तक [४] प्राप्त हुईहैं। उसकी कुछ स्वर्णमुद्राओं पर शिव की मूर्ति अँकित मिलतीहै [५]। उसने कुछ मुद्राओं पर नन्दी अँकित करायाथा [६]। उसकी रजतमुद्रा पर राजा शिरस्त्राण, लम्बा कोट तथा पाजामा पहने खड़ाहै। उसके आगे वेदी और त्रिशूल है। पीछे की ओर दहिने हाथ में दण्ड है, और बांए हाथ में सम्भवत: एक पात्र है [७]।

उसकी ताम्रमुद्राओं पर द्विभुज शिव भारतीय ढँग से जटा धारण किए, बांए हाथ में त्रिशूल लिए खड़े हैं। उनके बांए कन्धे पर पुष्पों या नृकपालों की माला लटकरहीहै। उनके पीछे नन्दी खड़ाहै। जिसके सहारे वे तनिक झुकेहैं [८]।

एक अन्य मुद्रा पर द्विभुज शिव, जटा धारण किए, बाएँ कन्धे पर व्याघ्रचर्म लटकाए तथा दहिने हाथ में त्रिशूल और परशु लिए खड़े हैं [९]।

उसकी मुद्राओं पर उसका विरुद 'महरजस राजाधिरज सर्वलोग इश्वरस महिश्वरस विमकदफिसस' (महाराजस्य राजाधिराजस्य सर्वलोकईश्वरस्य माहेश्वरस्य विमकदफिसस्य) अँकित मिलताहै [१०]।

उसकी मुद्राओं पर पहिलीबार हिन्दुदेवता शिव अपनी भारतीय वेशभूषा, त्रिशूल, आयुध और नन्दी वाहन के साथ अँकित मिलतेहैं। तथा राजा का विरुद भी माहेश्वर मिलताहै। इससे उसकी शैवमत के प्रति श्रद्धा विदित होतीहै।

१- घृशमैन — ईरान, पृ० २८० - ६१ २- पुरी — इंडिया अण्डर दि कुशाण्स, पृ० २१३

३- एलन — कै० क्वाइन्स आब एनशिएंट इंडिया, पृ० XLV ४- एलन — पूर्वोक्त, पृ० xLviii

५- ८- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० २१४ ९- एज आब इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १४०

१०- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० १९८

उसकी एक अन्य ताम्रमुद्रा पर अग्रभाग में ऊँची टोपी तथा लम्बा लवादा पहने राजा खड़ाहै। उसकी दाहिनी ओर हवनकुण्ड है। उसके बांए हाथ में परशु है [१]।

राज्यविस्तार— उत्तरभारत में दूर - दूर तक, बसरा, भीटा और कसिया तक [२], उसकी मुद्राएँ मिलनेसे उत्तरभारत के बड़े भाग पर उसके राज्यविस्तार की पुष्टि होतीहै। उत्तरभारत के अनेक प्राचीन दुर्गों का सँस्थापक उसीको मानाजाताहै।

विद्वानों का अनुमान है कि विष्णुपुराण में वर्णित चक्रवर्तीनरेश वेन की गाथा के साथ कुशाणनरेश विम की गाथाएँ मिलगईहैं। अनेक दुर्ग, जिन्हें परम्परा वेन - निर्मित बतलातीहै, वास्तव में कुशाणनरेश विम द्वारा निर्मित हुएथे [३]।

लोकगाथाओं के अनुसार इसी नरेश ने केसरियस्तूप की स्थापना कीथी [४]। जिला बुलन्दशहर में इन्दौरखेड़ा [५], जिला एटा में अतरँजीखेड़ा [६] तथा अलवर [७] और मध्यभारत में [८] कुछ दुर्गों के खण्डहरों को उसके द्वारा स्थापित दुर्गों का अवशेष मानाजाताहै।

उत्तराखण्ड पर अधिकार— उत्तराखण्ड पर, या कम में कम उसके दक्षिणी भाग पर विम का अधिकार था। उसने मायापुर (हरिद्वार) में एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कियाथा, जो राजा वेन का किला कहलाताथा। १०० वर्ष पूर्व इसके खण्डहर २५० गज की लम्बाई में, हरिद्वार में गङ्गाजी की नहर के बन्धे के पास बिखरेथे। वहीं प्राचीन नगर के सूचक अनेक ऊँचे - ऊँचे टीले थे, जिनके ऊपर ईंटों के टुकड़े बिखरे पड़े थे। इनमें सबसे बड़ा टीला नहर के पुल के पास ही था [९]।

ईरान के इतिहास से विदित होताहै कि उसने पश्चिम की ओर अपने साम्राज्य में हेरात, सीस्तान (शकस्थान) और अराकोशिया के प्रान्त मिलालिएथे । दक्षिण में उसका साम्राज्य सिन्धुनदी के मुहाने तक फैलाथा [१०]। तथा पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित भरुकच्छ आदि पत्तनों पर उसका अधिकार था [११]।

इसप्रकार उसने समकालीन अति महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों पर अधिकार

१- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० १९८

२- कनिंघम — आर्केलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० १२, पृ० ३७

३- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाणस्, पृ० २४

४- कनिंघम — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ६५

५- कनिंघम — पूर्वोक्त, जि० १२, पृ० ३७

६- कनिंघम — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० २६६

७- कनिंघम — पूर्वोक्त, जि० ६, पृ० ८५ - ९१

८- कनिंघम — पूर्वोक्त, जि० ९, पृ० ४६

९- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० २९७

१०-११- 'Wima Kadphises, in the West, profited from the weakness of Parthians and their wars with Rome to capture Herat, Seistan and Arachosia. In the East he seized all western India and held the mouth of the Indus, as well as the western ports of the peninsula.'

— घृशमैन — ईरान, पृ० २९१

करलियाथा। यदि यह कथन सत्य है तो उसने क्षहरातवँश के द्वारा स्थापित सारे शक-साम्राज्य को हस्तगत करलियाथा।

विम के साथ कुशाणवँश का प्रथम परिवार समाप्त होगया। कुजुल और विम, दोनों भारतीय सँस्कृति से सुपरिचित थे। उनकी बौद्ध और शैव मतों के प्रति विशेष भक्ति थी। किन्तु अन्य मतों के प्रति वे किसी प्रकार उदासीन न थे। कुजुल की मुद्राओं पर अनेक ईरानी तथा यूनानी देवताओं के चित्र मिलतेहैं।

क्षत्रपों की स्वतन्त्रता— अनुमान कियाजाताहै कि विम का कोई पुत्र न था। उसकी मृत्यु होते ही उसके साम्राज्य में उसके क्षत्रपों ने स्वतन्त्रता घोषित करदी [१]। इन क्षत्रपों मेंसे निम्न के नाम मुद्राओं से प्राप्त होतेहैं :—

तक्षशिला में – जिओनिसेस
अभिसार में – शिवसेन
उज्जैन में – चष्टन तथा रुद्रदामन
मथुरा में – 'सोतर मेगस'
उज्जैन में – नहपान और चष्टन विम के राज्यकाल में उसके क्षत्रप थे।

सोतर मेगस

'सोतर मेगस' की मुद्राएँ मथुरा से लेकर पन्जाब, कन्दहार और काबुल तक मिलीहैं [३]। इसलिए विम के शासनकाल में उसका शासनक्षेत्र बड़ा विस्तृत रहाहोगा।

सोतर मेगस (महारक्षक) को उपाधि-मात्र मानाजाताहै। उसकी मुद्राओं पर राजा का नाम नहीं मिलता। खरोष्टी लख में भी 'महरजस रजदिरजस महतस त्रतरस' (महाराजस्य राजाधिराजस्य महतस्य त्रातरस्य) अँकित रहताहै। इस अज्ञातनामा नरेश Nameless King [४] का, यदि वह मथुरा का क्षत्रप था, प्रभावक्षेत्र कुरु - पांचाल तथा उत्तराखण्ड तक मानाजासकताहै।

विद्वानों का अनुमानहै कि विम की मृत्यु के पश्चात् पन्द्रह - बीस वर्ष तक कुशाण - साम्राज्य के क्षत्रप स्वतन्त्रतापूर्वक शासन करतेरहे। उत्तरभारत में एक या अधिक क्षत्रपों ने, अस्तित्वहीन कुशाणसम्राट के नाम पर, उसके उपराज के रूप में 'सोतर मेगस' के नाम से शासन कियाथा [५]।

इस अवधि में उत्तराखण्ड की राजनैतिक स्थिति जाननेकेलिए अभीतक कोई सामग्री नहीं मिलीहै।

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० २७
२- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० २८
३- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० २४
४- एज आब इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १४०
५- मार्शल का लेख, जौ० रॉयल एशियाटिक सोसायटी, अप्रैल १९४७, पृ० ३२; पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ३४ टि० ११७

कनिष्क

विम और कनिष्क की मुद्राओं पर अँकित राजा की आकृति और वेशभूषा की समानता से तथा मुद्राओं के आकार - प्रकार आदि की समानता से निश्चित है कि विम और कनिष्क दोनों एक ही वँश, कुशाण (तुषार) से सम्बन्धित थे। किन्तु उनके परिवार भिन्न - भिन्न थे, ऐसी विद्वानों की धारणा है।

राज्यविस्तार—कुशाणसम्राटों में कनिष्क सबसे महान् था। मध्यदेश, उत्तरापथ और अपरान्त, उत्तरभारत के इन तीनों मण्डलों पर उसका अधिकार था। उसका साम्राज्य पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में खोरासान तथा उत्तर में खोतान से लेकर दक्षिण में कोंकन तक फैलाथा [१]।

अनुमान कियाजाताहै कि विम की मृत्यु के पश्चात्, यद्यपि अन्य कुशाण क्षत्रपों ने स्वतन्त्रता घोषित करदीथी, पर तक्षशिला के कुशाण क्षत्रपों ने ऐसा नहीं कियाथा। वे तुर्किस्तान से कनिष्क की अधीनता में अपने कुशाणवँशियों की सेना के आगमन की प्रतीक्षा करतेरहे। कनिष्क के आजानेपर सारनाथ तक सारे क्षत्रपों को कुशाणसाम्राज्य के अधीन सँगठित करने में देर न लगी [२]।

किन्तु अधिक स्वाभाविक यह प्रतीत होताहै कि कनिष्क भी उन कुशाण सरदारों मेंसे एक था, जिन्होंने विम की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य पर अधिकार जमाने का प्रयत्न कियाथा। और जिसे इस उद्देश्य में पूरी सफलता मिलीथी [३]।

कनिष्क के अभिलेखों की तिथियों से विदित होताहै कि उसके साम्राज्य का प्रसार सम्भवत: पूर्व से पश्चिम की ओर हुआथा। उसके आरम्भिक अभिलेख मध्यदेश के उन पूर्वी भागों में मिलेहैं, जिन पर विम के अधिकार की पुष्टि में प्रमाण उपलब्ध नहीं है [४]।

राज्य-वर्ष [५]	अभिलेख का स्थान [५]
२	कोसम, जिला इलाहाबाद
३	सारनाथ, जिला बनारस
४ और आगे	मथुरा
११	सुई विहार, जिला भावलपुर
	जेद, जिला ऊँड
१८	मणिकियाल, जिला रावलपिण्डी

इस तालिका से विदितहोताहै कि या तो आरम्भ में कनिष्क मथुरा का क्षत्रप

१- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १४१

२- पुरी – इंडिया अण्डर दि कुशाणस, पृ० २८

३- ४- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १४१

५- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० ३७

था, अथवा उसने मथुरा के क्षत्रप की सहायता और सहयोग से अपना विजय - अभियान आरम्भ कियाथा [१]।

माट (मथुरा) में कुशाण नरेशों का देवकुल था। जिसमें समस्त दिवँगत नरेशों की प्रतिमाएँ स्थापित कीजातीथीं। इन नरेशों की राजधानी पुष्पपुर (पेशावर) थी। पुष्पपुर को छोड़कर माट (मथुरा) में देवकुल तब ही स्थापित कियागयाहोगा, जब इस प्रदेश से कनिष्क के परिवार का कोई विशेष सम्बन्ध रहाहोगा।

उसकी मुद्राओं और अभिलेखों के प्रसार से विदित होताहै कि सिन्ध, राजपूताना, मालवा और कठियावाड़ भी उसके प्रभावक्षेत्र में थे [२]। राजतरङ्गिणी के अनुसार कश्मीर कनिष्क के साम्राज्य के अन्तर्गत था।

उत्तराखण्ड पर अधिकार— विम ने अपने राज्यकाल में पँचनद और कुरु - पांचाल पर अधिकार करलियाथा। अनुमान कियाजाताहै कि उसकी मृत्यु के पश्चात् जब उसके साम्राज्य के अन्तर्गत क्षत्रपों ने स्वतन्त्रता घोषित करदी, तो तक्षशिला और मथुरा के क्षत्रपों का शासन औदुम्बर, कुलूत, त्रिगर्त, यौधेय और कुणिन्द गणों की भूमि पर रहाहोगा।

इन गणों की रही - सही शक्ति को नष्ट करके उन्हें अपने अधीन करने का श्रेय कनिष्क को दियाजाताहै [३]। पुराणों के अनुसार विम्बस्फाटि, जिसकी पहिचान कनिष्क के क्षत्रप वनस्फर से कीजातीहै, प्रयाग से लेकर अनुगङ्गा या हरिद्वार तक के प्रदेश पर शासन करताथा [४]।

मध्यएशिया में— ख्वारेज्म की खुदाई से सिद्ध हुआहै कि कनिष्क का साम्राज्य मध्यएशिया में वर्तमान उजबेकिस्तान तथा ताजिकिस्तान पर फैलाथा [५]। जब उसने अपने पूर्वजों की भूमि तरिम - उपत्यका पर अधिकार करनाचाहा तो उसकी चीनीसेना से

१- 'Kanishka may have originally been one of the several Kushana chieftains who tried to make their fortune in India and may have come out successful in the struggle for supremacy, that seems to have followed the death of Wima.

— एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १४१

२- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १४२

३- 'The Kushana King Kanishka I, appears to have been responsible for the subjugation of the reigning dynasty of Almora, the Audumbaras, and Vemakis, of the land between the upper Sutlej and the Ravi, as well as the royal families of Ahichhattra, Ayodhya and Kaushambi.'

— एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६२

४- भागवतपुराण, १२।१।३७

५- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० २०१

भिड़न्त हुई। इस युद्ध में हारकर कनिष्क चीन के सम्राट का करद बनने केलिए विवश होगया [१]।

कुछ वर्षों के पश्चात् उसने पुनः आक्रमण करके तरिम - उपत्यका को अपने साम्राज्य में मिलालिया। तथा निकटप्रदेश के मध्यएशियाई या चीनी राजकुमारों को जामिन के रूप में अपने साथ लेआया [२]। इन राजकुमारों के निर्वाह केलिए उसने पञ्जाब में चिनियारी प्रदेश की आय निर्धारित कीथी। जिससे वह प्रदेश चीनभुक्ति कहलानेलगाथा [३]।

कहाजाताहै कि इन राजकुमारों ने अपने प्रदेश से नासपाती और आड़ू मँगाकर इस देश में उगाने आरम्भ किएथे [४]।

ख्वारेज्म की मरुभूमि (करा - कुम) में कनिष्क के समय के नगरों के ध्वँस मिलेहैं। इस कारण ईसा की आरम्भिक तीन शतियों की वहां की सँस्कृति को कुशाण - सँस्कृति कहाजाताहै [५]।

मुद्राएं— कनिष्क की मुद्राएं बुद्धगया में महाबोधिमन्दिर के वज्रासन के नीचे प्राप्त हुईहैं [६]। बँगाल - विहार से लेकर सारे उत्तरीभारत में और भारत के बाहर अराल-समुद्र तक उसकी मुद्राएं बड़ी सँख्या में मिलीहैं। इनकी तोल कई मन होगी [७]। उसकी मुद्राओं में अग्रभाग में राजा लम्बा चोगा, नुकीली टोपी, घुटनों तक का शकीय जूता पहने, भाला, अँकुश लिए खड़ाहै। किसी मुद्रा में वह इसी वेश में बांए हाथ में लम्बा भाला लिए, दहिने हाथ से एक छोटे - से हवनकुण्ड में हवन कररहाहै। पृष्ट भाग में अनेक भारतीय और विदेशी देवी - देवताओं के चित्र अँकित हैं।

भारतीय देवी - देवताओं मेंसे शिव, महासेन, स्कन्द, कुमार, विशाख विशेष उल्लेखनीय हैं। कुजुल के समान कनिष्क ने भी अपनी मुद्राओं पर बुद्ध की मूर्ति अँकित कीथी। बुद्ध एक चौकी पर आसन बांधकर बैठेहैं। उनका दहिना हाथ अभयमुद्रा में है और बाएं हाथ की मुट्ठी बांधकर उन्होंने जँघा के ऊपर रखाहुआहै [८]।

उसकी मुद्राओं पर 'वेसीलियोस वेसिलियोन शाओननो शाओ कनिष्को कुशाणो' (राजाओं का राजा शाहानुशाह कनिष्क कुशाण) लेख यूनानी लिपि में लिखा मिलताहै।

ललितकलाओं का विकास— कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। उसके राज्यकाल में पाटलिपुत्र का वैभव पुरुषपुर को मिलगयाथा [९]। किन्तु इतने बड़े साम्राज्य के सुप्रबन्ध केलिए प्रत्येक क्षत्रप की पृथक् राजधानियां (मुख्यालय) थीं।

१- २- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० २०१
३- कनिंघम — आर्केलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० १४, पृ० ५४
४- घृशमैन — ईरान, पृ० २०३
५- राहुल — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० १६६
६- वन्द्योपाध्याय — प्राचीन मुद्रा, पृ० १८
७- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० १६६, २०३, २०५
८- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० २१६
९- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० २०२

उसने और उसके क्षत्रपों ने अनेक नए नगरों की स्थापना की। तथा प्राचीन नगरों की समृद्धि को बढ़ाया। कश्मीर में उसने कनिष्कपुर नामक नगर बसायाथा।

स्थापत्य और मूर्तिकला में विशेष उन्नति हुई। भारतीय कल्पनाओं और यवन-कौशल के सहयोग से गान्धार में अद्वितीय मूर्तिकला विकसित हुई। बुद्ध की प्रथम मूर्ति कनिष्क के राज्यकाल में बनी। जिसके चीवर के चुन्नट और केशविन्यास पर यवन प्रभाव दिखाई पड़ताहै, यद्यपि वह बहुत ही सूक्ष्म और बहुत मधुर है। मथुरा में गान्धारकला ने भारतीय स्वरूप धारण किया जो मथुराकला कहलाई [१]।

अश्वघोष

पाटलिपुत्र की विजय के समय वहां कनिष्क को बौद्ध विद्वान् अश्वघोष मिलेथे जो संस्कृत के प्रकांड पण्डित, कवि और नाटककार थे। कनिष्क उन्हें अपने साथ पुष्पपुर लेगया [२]। अश्वघोष ने बुद्धचरित और सौंदरनन्द नामक दो सँस्कृत महाकाव्य तथा सारिपुत्र-प्रकरण एवँ राष्ट्रपाल नामक दो सँस्कृत नाटक लिखेथे।

सँस्कृत में बुद्धचरित खण्डित मिलताहै, किन्तु उसके चीनी और तिब्बती अनुवाद पूर्ण हैं। सारिपुत्र - प्रकरण नाटक की खण्डित संस्कृत प्रति तरिम - उपत्यका से मिलीहै। दूसरे नाटक राष्ट्रपाल की अभीतक कोई प्रति मूल या अनुवाद में नहीं मिलीहै।

अश्वघोष को कालिदास से पूर्ववर्ती मानाजाताहै। उनकी रचनाओं और कालिदास की रचनाओं में कुछ समानताएँ मिलतीहैं।

वसुमित्र

कनिष्क को अशोक और मेनाद्र के समान बौद्धमत का पोषक माना-जाताहै। उसने प्रख्यात बौद्ध आचार्य पार्श्व और वसुमित्र को सम्मानित कियाथा [३]। कनिष्क के राज्यकाल में कश्मीर के कुण्डलवनविहार में बौद्धमत की चतुर्थ सँगीति (सभा) हुईथी। इसमें सर्वास्तिवाद के अन्तिम रूप मूल सर्वास्तिवाद के त्रिपिटक का पाठनिर्णय और सँग्रह हुआथा। इस सँगीति में तीनों पिटकों की विभाषाओं (भाष्यों) का निर्माण हुआथा [४]।

अनुमान कियाजाताहै कि विभाषाओं को सँस्कृत में लिखागयाथा [५]। और तबसे बौद्धमत सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ सँस्कृत में लिखेजानेलगे। युवान्चाङ् ने लिखाहै कि विभाषाओं का निर्माण होजाने पर कनिष्क ने उन्हें ताम्रपत्रों पर खुदवाकर एक स्तूप में बन्द करदिया था [६]। इस स्तूप का और उसमें रखेगए ताम्रपत्रों का अभीतक पता नहीं लगाहै [७]।

१- राहुल – मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० २०३ २- द्र० राहुल पूर्वोक्त, पृ० २०४
३- द्र० राहुल – पूर्वोक्त, पृ० २०४ - ५ ४-६- द्र० ट्वन्टिफाइव हन्ड्रेड इयर्स आव बुद्धिज्म, पृ० ४८ - ४६ ७- राहुल – पूर्वोक्त, पृ० २०६

चरक

अनुमान कियाजाताहै कि आयुर्वेद के प्रख्यात आचार्य चरक कनिष्क के समकालीन थे। और उनके द्वारा सम्मानित हुएथे [1]।

कनिष्क का व्यक्तित्व— कनिष्क वीर और साहसी था। सम्भवतः उसका जन्म सामान्य सैनिक परिवार में हुआथा। कुछ ही वर्षों में, उसने दृढ़तापूर्वक सारे उत्तर-भारत को जीतकर उन सब प्रान्तों पर अधिकार करलिया, जो विम के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। उसने मध्यएशिया तथा तरिम - उपत्यका में भी, अपने पूर्वजों की भूमि से चीन का आधिपत्य हटाकर अपना आधिपत्य स्थापित कियाथा।

निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने पर भी उसने व्यापार, साहित्य और कला की उन्नति की ओर ध्यान दियाथा। अश्वघोष, पार्श्व, वसुमित्र, चरक आदि विद्वानों को उसने आश्रय दियाथा। उसके समय से बौद्धमत के चिन्तक भी सँस्कृत भाषा को अपनानेलगे।

विम या कनिष्क ने अपने राज्यारम्भ से एक सँवत् चलायाथा। कनिष्क ने और उसके वँशजों ने अपने अभिलेखों में जिस सँवत् का प्रयोग कियाहै, वह सँवत् कब आरम्भ हुआ, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

उसकी बौद्धमत के प्रति निष्ठा थी। उसकी मुद्राओं पर बुद्ध की मूर्ति अँकित है। उसकी सभी देवी - देवताओं और मत - मतान्तरों के प्रति श्रद्धा थी। उसने अपनी मुद्राओं पर अनेक देवी - देवताओं की मूर्तियां अँकित कीथीं। बौद्धमत के सभी सम्प्रदायों को उसने भेदभाव छोड़कर सम्मानित कियाथा [2]।

अनुमान कियाजाताहै कि उसके निरन्तर विजय - अभिमानों से तँग आकर उसके सरदारों ने उसे मरवादियाथा [3]। उसने लगभग २३ वर्ष राज्य कियाथा। उसकी मूर्ति उसकी मुद्राओं पर अँकित है। मथुरा में भी उसकी एक पुरुष - परिमाण मूर्ति मिलीहै, जिसका शिर किसी ने तोड़डालाहै।

वशिष्क तथा कनिष्क द्वितीय

कनिष्क के पुत्र वशिष्क ने केवल चार वर्ष राज्य किया। उसकी कोई मुद्रा अभीतक नहीं मिलीहै।

आरा-अभिलेख से एक अन्य कनिष्क का पता चलताहै, जिसे विद्वान् कनिष्क द्वितीय मानतेहैं। वशिष्क के समान उसका राज्य भी अल्पकालीन था।

हुविष्क

इन दोनों के उत्तराधिकारी हुविष्क का शासन दीर्घकाल तक रहा। उसकी अनेक

१- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० २०६
२- ट्वन्टिफाइव हन्ड्रेड इयर्स आव बुद्धिज्म, पृ० ४६
३- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० २०६

प्रकार की मुद्राओं से और उसके राज्यकाल के अभिलेखों से विदितहोताहै कि वह प्रतापी और महान् शासक था।

उसने भी कनिष्क के समान अपनी मुद्राओं पर अनेक देवी-देवताओं की प्रतिकृतियां अँकित कीथीं। उसकी मुद्राओं पर बुद्ध की प्रतिकृति नहीं मिलती। उसने शिव, देवी, स्कन्द, कुमार, विशाख और महासेन, शिव - परिवार के इन देवी - देवताओं की प्रतिकृतियां अँकित कीथीं। कनिष्क के समान वह भी उदारहृदय था और सभी मतों के अनुयायियों के प्रति समान व्यवहार करताथा [१]। हुविष्क ने लगभग ३५ वर्ष तक शासन किया।

वासुदेव

कनिष्क के परिवार का अन्तिम कुशाणनरेश वासुदेव था। उसके नाम से विदितहोताहै कि उसका परिवार अबतक पूर्णतः हिन्दुसँस्कृति को अपनाचुकाथा। उसका राज्य पूर्व की ओर वाराणसी या उससे आगे तक फैलाथा। पश्चिम की ओर उसके राज्य का विस्तार वेग्राम तक था।

वह भी अपनी मुद्राओं पर 'महाराजा राजातिराज देवपुत्र शाही वासुदेव' का विरुद अँकित करताथा [२]।

उसकी मुद्राओं पर उसके पूर्वजों के समान अनेक देवी - देवताओं की प्रतिकृतियां नहीं मिलतीं। केवल ननादेवी (उमा) और शिव की प्रतिकृतियां मिलतीहैं [३]। अभिलेखों से विदित होताहै कि उसका बौद्ध और जैन मत के अनुयायियों के प्रति भी उदारतापूर्ण व्यवहार था।

परिवार के शासन का अन्त— वासुदेव के पश्चात् कनिष्क के परिवार के शासन का अन्त होगया। भारतीय स्रोतों से इसके कारणों पर प्रकाश नहीं पड़ता। किन्तु ईरानी स्रोतों से विदित होताहै कि ईरानी सम्राट शापुर प्रथम सँ० ३०४ - ३२९ वि० (247-272 A. D.) के राज्यकाल में सम्भवतः सँ० ३१९-३२० वि० (262-63 A.D.) के आसपास उस सम्राट ने पश्चिम की ओर से कुशाणसाम्राज्य पर आक्रमण करके पेशावर और सिन्धुनदी की उपत्यका पर अधिकार करलियाथा। हिन्दुकुश पारकरके उसने बख्तीरिया वँक्षु - उपत्यका, समरकन्द और ताशकन्द पर अधिकार करलियाथा [४]। उसके वँशजों ने 'कुशाणशाहनशाह' (कुशाणनरेशों का नरेश) विरुद धारण कियाथा [५]।

उसने कनिष्क द्वारा स्थापित कुशाणपरिवार का उच्छेदन करके एक दूसरे परिवार को भारत का शासक स्वीकार कियाथा, जिसने उसकी अधीनता स्वीकार करलीथी [६]। शापुर ने कुशाणराज्य के जिन भागों को जीतलियाथा, उनमें से कुछ पर उसने अपना अधिकार बनाएरखा। इसलिए कुशाणवँश का जो परिवार अब उत्तरभारत

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ४८

२- ३- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ५९

४- घृशमैन — ईरान, पृ० २९२

५- क्लैसिकल एज, पृ० २१

६- घृशमैन — ईरान, पृ० २९२

का शासक बना, उसका शासितप्रदेश पहले से घटगया [१]। कनिष्क - परिवार ने उत्तरभारत पर ९९ वर्षों तक शासन कियाथा [२]।

शापुर के अधीन जिस कुशाण - परिवार ने भारत पर शासन करना आरम्भ कियाथा, उसके शासितप्रदेश का निश्चय करना कठिन है। अनुमान कियाजाताहै कि वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् ही पँचनद और कुरु - पांचाल के गणराज्यों और राजवँशों ने स्वतन्त्रता घोषित करदीथी। पर पँचनद के कुछ भागों पर कुछ कुशाण राजपरिवारों का अस्तित्व एक - दो शतियों तक बनारहा।

कुछ विद्वानों का मत है कि अन्तिम कुशाणनरेश वासुदेव के पश्चात् भी कुछ कुशाण नरेश उत्तरभारत पर शासन करतेरहे। इनमें कनिष्क द्वितीय या तृतीय और वासुदेव द्वितीय के नाम लिएजातेहैं। इनकी मुद्राएँ भी मिलतीहैं। इनकी राज्यावधि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है [३]।

परवर्ती कुशाण— ईसा की चौथी शती में किदरकुशाण राजवँश का पता चलताहै, जिसकी मुद्राएँ पँचनद से लेकर कन्नौज, कोसम और हरदोई तक मिलीहैं [४]। इनके राज्यविस्तार और राज्यावधि के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है।

उत्तराखण्ड में कुशाण-शासन— मथुरा और वाराणसी - सारनाथ, कुशाण - साम्राज्य के इन दोनों शासनकेन्द्रों से कुशाणक्षत्रपों ने सतलुज से लेकर गँडकी तक के पर्वतीय प्रदेश को हस्तगत करने का प्रयत्न कियाथा। नेपाल में कुछ स्थानों की खुदाई से कुजुल और विम, दोनों कदफिस कुशाण नरेशों की मुद्राएँ प्राप्तहुईहैं। इससे विद्वानों का अनुमान है कि विम के राज्यकाल तक अवश्य नेपाल पर कुशाणसत्ता की स्थापना होचुकीथी [५]।

बिजनौर से १५ मील दूर, उत्तरपूर्व की ओर गङ्गाखादर के बांएतट पर स्थित टिप की टीले की खुदाई से मरखाम को कुशाणनरेश वासुदेव की पांच और भ्रि शक की एक, कुल छै अति सुन्दर और दुष्प्राप्य स्वर्णमुद्राएँ मिलीथीं [६]। इससे निश्चित है कि वासुदेव के राज्य-काल में उत्तराखण्ड पर भी उसका शासन था। उसका क्षत्रप भ्रि अति शक्तिशाली था। तथा उसे अपना नाम भी मुद्रा पर प्रचारित करने का अधिकार प्राप्त था। कुशाणसम्राटों की मुद्राओं पर ब्राह्मी के वि, सि, और भ्रि अक्षर विभिन्न क्षत्रपियों (प्रान्तों) के द्योतक थे, ऐसी अल्तेकर की धारणा है [७]।

काशीपुर के पास प्राचीन गोविषाण के टीले से तीन स्वर्णमुद्राएँ मिलीहैं। जिनके अग्रभाग में ऊँचीउठी टोपी पहने राजा बाएँ हाथ में लम्बा भाला लिए खड़ाहै। सामने

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ६६
२- पुरी — पूर्वोक्त. पृ० ७४
३- जौरनल आव यू० पी० हिस्टौरिकल सोसायटी, जुलाई ३९, पृ० ७
४- रेगमी — नेपाल, एनशिएंट ऐंड मेडिएवल, पृ० ४९
५- जौरनल आव एसियाटिक सोसायटी आव बंगाल, १८९१, पृ० १
६- उ० पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ७५

हवनकुण्ड और त्रिशूल है। राजा हवनकुण्ड में हवन कररहाहै। इसी ओर यूनानीलिपि में अस्पष्ट लेख है। पृष्टभाग में देवी अरदोक्शो सिंहासन पर बैठीहै। उसके दहिने हाथ में पाश और बाएँ हाथ में कौरनुकोपिया है। ब्राह्मी में एधुराया अधुजा या सधुजा नाम अँकित है [1]।

डा० नौटियाल ने इस मुद्राओं को वासुदेव द्वितीय की मुद्राएँ मानाहै। वासुदेव द्वितीय की ऐसी मुद्राएँ अन्यत्र भी मिलीहैं [2]। परवर्ती कुशाणों की मुद्राओं पर मिलनेवाली अरदोक्शो देवी की प्रतिकृति के अनुकरण पर गुप्तनरेशों ने अपनी मुद्राओं पर लक्ष्मी की प्रतिकृति अँकित कीथी [3]।

पूर्वोक्त मुद्राओं पर ब्राह्मी लेख में एधुराया अधुजा (या सधुजा) उस क्षत्रप का नाम होनाचाहिए जो वासुदेव द्वितीय के राज्यकाल में उत्तराखण्ड और निकटवर्ती मैदानी प्रदेश का शासक था [4]।

इन मुद्राओं की प्राप्ति से यह भी निश्चित होगयाहै कि उत्तराखण्ड या कम से कम उसके दक्षिणी भाग पर कुशाणनरेश विम के राज्यकाल से लेकर अन्तिम कुशाणनरेश कनिष्क द्वितीय (या तृतीय) और वासुदेव द्वितीय के राज्यकाल तक कुशाणसत्ता बनीरही।

शासन-प्रणाली— बलख और खोतान से लेकर विहार तक तथा कश्मीर से लेकर सिन्धुनदी की दक्षिणी - उपत्यका, और सम्भवतः पश्चिमी समुद्रतट तक विस्तृत अपने साम्राज्य के शासन केलिए कुशाणनरेशों ने क्षत्रपप्रथा अपनाईथी। आवागमन की कठिनाई और राज्यविस्तार का ध्यान रखकर उन्होंने अपने महाक्षत्रपों को अनेक महत्वपूर्ण अधिकार दिएथे। केवल उनके क्षत्रप महाराजा राजातिराज की उपाधि नहीं धारण करसकतेथे [5]। महाक्षत्रपों के अधीन क्षत्रप होतेथे।

अभिलेखों से विदित होताहै कि क्षेत्रीय प्रजा को क्षत्रप - महाक्षत्रपों के नाम ज्ञात होतेथे। वे उन्हींको उस प्रदेश का पूर्णअधिकारसम्पन्न राजा - जैसा समझतेथे [6]।

अभिलेखों में आए महाक्षत्रपों और क्षत्रपों के नामों से विदित होताहै कि यह पद कुशाणवँशजों या शकादि विदेशियों केलिए सुरक्षित था [7]। प्रायः पिता के पश्चात् पुत्र को क्षत्रप पद प्राप्त होजाताथा। इसप्रकार क्षत्रप का पद वँश परम्परागत होनेलगाथा [8]।

दण्डनायक, महादण्डनायक और प्रचण्डदण्डनायक, सम्भवतः सेना और पुलिस-शक्ति से सम्पन्न अधिकारी थे। अनुमान लगताहै कि इनका क्षत्रप, महाक्षत्रप के अतिरिक्त

१- जौरनल आव न्यूमिसमेटिक सोसायटी, जि० २४, १९६२, पृ० १८०

२- पुरी – इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ७५

३- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० २१९

४- जौरनल आव न्यूमिसमेटिक सोसायटी, जि० २४, १९६२, पृ० १८१

५- ६- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० ७९

७- ८- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० ८२

सम्राट से भी सीधा सम्बन्ध होताथा। वे राज्य के विभिन्न भागों में सुव्यवस्था बनाएरखतेथे [१]।

क्षत्रप, महाक्षत्रपों के समान दण्डनायकों के पद भी विदेशियों केलिए सुरक्षित थे [२]। केवल ग्रामों में ग्राम का मुख्य अधिकारी स्थानीय व्यक्ति होताथा [३]। प्रजा की रीतिनीतियों और भावनाओं से अपरिचित छोटे-बड़े सभी राज्याधिकारियों का विदेशी होनेसे प्रजा को बड़ा कष्ट हुआहोगा।

क्षत्रप बनस्फर

सारनाथ के दो अभिलेखों से विदित होताहै कि कनिष्क के शासनकाल में बनस्फर उस क्षत्रपी का शासक था, जिसके अन्तर्गत वाराणसी पड़ताथा [४]। उनदिनों बनस्फर क्षत्रप और खरपल्लाण महाक्षत्रप था। पीछे बनस्फर भी महाक्षत्रप बनगया।

जायसवाल ने इस बनस्फर की पहिचान पुराणों में वर्णित विश्वस्फूर्जि विश्वस्फटिक, विश्वस्फाणि) से कीहै [५]। मध्यदेश के इस क्षत्रप की राजधानी पद्मावती थी [६]। उसने पूर्व की ओर मगध का प्रदेश जीतलियाथा। गङ्गाजी की उपत्यका पर, पर्वतश्रेणी के पदतल से लेकर प्रयाग तक उसका शासन फैलाथा [७]।

उसने अपनी क्षत्रपी में उच्चवर्णों के हिन्दुओं का दमनकरके निम्नवर्णों के व्यक्तियों को ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित कियाथा। उसने उच्च क्षत्रियवँशों का उत्पाटन करदियाथा [८]। जायसवाल की धारणा है कि बुन्देलखण्ड के बनाफर राजपूत, इसी बनस्फर के वँशज हैं [९]।

कुशाणसाम्राज्य में बड़े पदों पर विदेशियों की नियुक्ति से, तथा उन विदेशी राजपुरुषों द्वारा किएगए सम्भ्रान्त परिवारों के अपमान और प्रजाशोषण के कारण प्रजा बहुत दुःखी थी। इसलिए अवसर पाते ही प्रजा ने कुशाणसाम्राज्य के विरोधियों को पूरा सहयोग दिया [१०]।

सामाजिक जीवन— यवन, शक, पह्लव और कुशाण–इन विदेशी जातियों की दासता में रहतेहुए भी सामाजिक जीवन में विशेष अन्तर न आया। धीरे-धीरे ये विदेशी जातियां हिन्दुसमाज में घुलमिलकर लुप्त होगईं।

जातिव्यवस्था में विशेष अन्तर न आया। शक्तिशाली यवन आदि जातियों को वृषल क्षत्रिय कहकर क्षत्रियसमाज में मिलालियागया। बौद्ध और जैनमत द्वारा विरोधी

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ८३ - ८४ २- ३- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ८४
४- हिस्टोरिकल ऐंड लेटरेरी इन्सक्रिप्शन्स, पृ० ६९ ५- जायसवाल — अन्धकारयुगीन भारत, पृ० ६७
६- भागवतपुराण, १२।१।३६ ७- भागवतपुराण, १२।१।३७
८- 'मगधायां तु विश्वस्फटिकसंज्ञोऽन्यवर्णान्करिष्यति। कैवर्त्तं यदुपुलिन्दानब्राह्मणान् राज्ये स्थापयिष्यति। उत्साद्याखिलक्षत्रजातिम्।' — विष्णुपुराण, ४।२३।६१ - ६३
९- जायसवाल — पूर्वोक्त, पृ० ७६ - ७७ १०- जायसवाल — पूर्वोक्त, पृ० ७९ - ८०

प्रचार किएजाने पर भी ब्राह्मणजाति का सम्मान पूर्ववत् बनारहा। विदेशी जातियों के लोग भी उनके त्यागपूर्ण जीवन से प्रभावित हुएथे।

हुविष्क के शासनकाल के एक अभिलेख से विदित होताहै कि वकनपति और खरसलेरपति नामक विदेशियों ने मथुरा में प्रति मास शुक्ला चतुर्दशी के दिन पुण्यशाला में १०० ब्राह्मणों के भोजन केलिए अक्षयनीवि की स्थापना कीथी [१]। ऐसे अनेक शिलालेख मिलतेहैं [२]।

सम्मिलित परिवार की प्रथा थी। बड़े परिवारों में पितामह से लेकर पौत्र तक एकसाथ रहतेथे। बहुबिवाह की प्रथा थी। साहित्य और स्थापत्य में पर्दे का अस्तित्व नहीं मिलता। पितरों की पूजा और श्राद्ध का व्यापक प्रचार था। पितरों की सद्गति केलिए दानदेने का अभिलेखों में बार - बार उल्लेख मिलताहै।

संस्कृत— मौर्य - शुंगकाल में ब्राह्मणों ने प्राचीन धर्मग्रन्थों और सँस्कृत विद्या के पठन-पाठन को शिथिल न होनेदियाथा। फलतः कुशाण-शासनकाल तक जनता पुनः सँस्कृत की ओर आकर्षित होगई। जनता में सँस्कृत के प्रति इस आकर्षण को देखकर बौद्धमत के आचार्यों केलिए अपने धर्मग्रन्थों को सँस्कृत में लिखना आवश्यक होगया। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष ने सँस्कृत में दो महाकाव्यों और दो नाटकों की रचना करडाली। वैद्यक के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसँहिता तथा ज्योतिष, कर्मकांड और नीति-धर्मशास्त्र आदि के ग्रन्थ भी सँस्कृत में लिखेगए।

सँस्कृत सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा तो न होसकी, पर द्विजातियों में, तथा बौद्ध और जैनमत के अनुयायियों में भी सँस्कृतभाषा लिखने - पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़गई। अभिलेखों में तत्सम शब्दों का प्रयोग चलपड़ा।

वेशभूषा—विशाल कुशाणसाम्राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की वेशभूषा का होना स्वाभाविक था। सामान्य पुरुषों की वेशभूषा प्रायः लँगोटी या घुटनों तक पहुँचने वाली धोती और पगड़ी थी। कन्धे पर प्रायः एक उपरना लटकालेतेथे। नारियां लहँगा तथा चोली पहननेलगीथीं [३]। प्रायः स्तन नग्न रहतेथे। हाथ, पैर और गले में आभूषण चाव से पहनेजातेथे [४]।

राजा तथा सामन्त एड़ियों तक लटकनेवाली सिलवटदार धोती पहनतेथे। तथा कन्धों को ढकतीहुई एवँ बांई बाहु पर होती पीछे की ओर लटकी चादर धारण करतेथे। पैरों में चप्पल, खड़ाऊँ या जूते पहनेजातेथे [५]।

१- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० २०८
२- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाणस्, पृ० ८६
३- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ६१
४- पुरी — पूर्वोक्त, चित्रफलक १०, १२, १३, १५, १६
५- मोतीचन्द्र — प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १०४

कुशाण सैनिक, जिनसे जनता बड़ी आतंकित रहीहोगी पजामा और लम्बा चोगा पहनतेथे। इनके ऊपर वे कवच (जिरहवख्तर) धारण करतेथे। शिर पर, सम्भवत: पगड़ी के नीचे वे लोहे का टोप पहनतेथे। उनके हाथ में भाला होताथा। वे गले से कमर तक एक पट्टी लटकाए रखतेथे, जिसपर खड्ग लटकताथा [१]।

मनोरंजन— विदेशी शासन में भी जनता ने अपनी आमोदप्रिय प्रवृत्ति न छोड़ीथी। समाज, उत्सव, आख्यान - श्रवण, मृगया, द्यूत तथा नृत्य, वाद्य से जनता अपना मनोरँजन करतीथी। नर्तक और गायक गांव - गांव में घूमतेहुए जनता का हृदय आह्लादित करतेथे [२]। नगर - ग्रामों में गणिकाएँ होतीथीं।

विभिन्न देवी - देवताओं के मन्दिरों और चैत्य - स्तूपों की पूजा केलिए विभिन्न पर्वों पर उत्सव होतेरहतेथे। समकालीन स्थापत्य में ऐसे अनेक शिलाचित्र अँकित हैं।

अन्न-पान— अन्न - पान पूर्ववत् चलाआताथा। मथुरा के एक शिलालेख से विदित होताहै कि जौ के सत्तू और अरहर की दाल का सार्वभौम प्रचार था [३]। सत्तू पीसने और बेचनेवाले 'सक्तूकारक' प्राय: प्रत्येक छोटे - बड़े नगर में रहतेथे। सत्तू के अतिरिक्त आटे से बनी वस्तुओं – बटक, पुआ आदि का भी भोजन में स्थान था। आटा पीसनेवाले 'चूर्णकुट्टक' भी प्रत्येक छोटे - बड़े नगर में होतेथे। फल, कन्द, मूल का भी भोजन में स्थान था। फलादि के व्यापारी मूल - वणिज कहलातेथे [४]।

मदिरा - पान पर विशेष प्रतिबन्ध न था। परिवार में पति - पत्नी भी मदिरा - पान से मनोरञ्जन करतेथे।

गृहसामग्री— इस युग की गृहसामग्री में मृतिकापात्र विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। सम्पन्न व्यक्तियों के घरों में धातु के पात्रों का प्रयोग चलपड़ाथा। पर जन-साधारण का निर्वाह मृतिका और काष्ट के पात्रों से ही होताथा। विम और कनिष्क के राज्यकाल में, पश्चिमोत्तर भारत में, यवननरेशों के राज्यकाल से प्रचलित मृतिकापात्रों के आकार-प्रकार का अनुकरण सारे उत्तरभारत में होनेलगा [५]। इस प्रकार के पात्रों का प्रचलन ईसा की प्रथम शती से चतुर्थ शती तक होतारहा।

इस काल के पानी तथा मद्यरखने के बरतनों में टोटीं लगीहैं। तथा उन्हें पकड़ने के हेतु कुण्डे बनेहैं [६]।

पात्रों को सजाने के हेतु पांच ढंग व्यवहार में लाएगएहैं [७] :—

१— इन पर, पकाने से पूर्व किसी लकड़ी की कलम से खुदाई कीगईहै [८]।

२— इन पर छिलाई करके उभारदार नक्काशी कीगईहै।

१- पुरी — इंडिया अंडर कुशाण्स, चित्रफलक ३

२- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ६५

३- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० २०८

४- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० १०६

५- राय गोविन्दचन्द्र — प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन, पृ० ४०

६- ८- राय गोविन्दचद्र — पूर्वोक्त, पृ० ४१

३– इन पर ठप्पे लगाएगएहैं [1]।

४– इन पर लाल चमक लाईगईहै। लाल चमकदार मृतिकापात्र ईरान तथा यवनों के नगरों में बहुप्रचलित थे [2]। तथा

५– उन्हें चित्रित कियागयाहै। चित्रित पात्रों पर प्रायः फूल - पत्ती के आकार बनेहैं। ये लाल या काले रँग से अँकित किएगएहैं। और बीच - बीच में चित्रकारी में सौन्दर्य लानेहेतु पीले, गुलावी, मखनिया तथा गेरू के रँगों का व्यवहार कियागयाहै। प्रायः चित्रों को चौड़ी - चौड़ी रेखाएं दो या तीन भागों में बांटतीहैं [3]।

इस काल के पात्रों पर प्रायः त्रिकोण, एक - दूसरे को काटतीहुई रेखाओं, खड़ी और पड़ी रेखाओं तथा लहरियादार रेखाओं से चित्रकारी कीगईहै। कुछ पात्रों पर मोर या मुर्गों के चित्र बने मिलेहैं [4]।

भुक्कर [5], तक्षशिला [6]. हस्तिनापुर [7] तथा बाणगढ़ (दिनाजपुर) [8] से कुशाण-कालीन स्तरों में जिसप्रकार के टोंटी और कुण्डीलगे पात्र प्राप्तहुएहैं, ठीक उसीप्रकार के मुझे सँ० २०१३ वि० (1956) में भारत - तिब्बत सीमान्त पर ११००० फीट की ऊँचाई पर स्थित मलारी की समाधियों से मिलेथे [9]।

शव-संस्कार— मृतक के शव को चादर में लपेटकर उसके परिवार के व्यक्ति कन्धे पर उठाकर श्मशान में लेजातेथे। शवयात्रा के साथ चलनेवाले व्यक्ति केश खोलकर, वक्ष पीटतेहुए रोते - चिल्लातेहुए उसके पीछे चलतेथे [10]। शवदाह के पश्चात् अवशिष्ट अस्थियों को मृतिकापात्र में रखकर किसी वृक्ष के नीचे गाड़ाजाताथा। महापुरुषों की अस्थियों के ऊपर स्तूप बनाएजातेथे।

कुछ जातियों में शव को गाड़ने और उसके साथ मृतिकापात्रों में भोज्य एवं पेयपदार्थ रखने की प्रथा थी। ऐसी प्रथा उस युग में ईरान में भी थी। आजकल जिस प्रकार यूरोप में, कब्रस्तान के पास शवसँस्कार सम्बन्धी वस्तुओं की दूकान होतीहै, ठीक उसीप्रकार (भारतीय कुशाणनरेशों के समकालीन) पार्थियननरेशों के राज्यकाल में, ईरान में कुम्हार की दूकान नगरप्राकार के बाहर कब्रस्तान के पास होतीथी। वहां मृतक के साथ समाधि में रखने केलिए विभिन्न आकार - प्रकार के मृतिकापात्र मिलतेथे [11]।

मलारी की समाधियाँ— मलारी की समाधियों में मृतकों को घुटना मोड़कर लिटायागयाथा। तथा उनके साथ भोज्य और पेय के मृतिकापात्र रखेगएथे [12]। भोज्य के

१- ३- राय गोविन्दचन्द्र — प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन, पृ० ४१

४- राय गोविन्दचन्द्र — पूर्वोक्त, पृ० ४३

५- ७- राय गोविन्दचन्द्र—पूर्वोक्त, पृ० ४८-५१

८- राय गोविन्दचन्द्र — पूर्वोक्त, पृ० ५३

९- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० २२५

१०- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ९९

११- घृशमैन — ईरान, पृ० १८१ - ८२

१२- उत्तराखंड का इतिहास, भाग २, पृ० २२५

मृतिकापात्र छोटी - बड़ी तशतरियों के समान थे। पेय-पात्रों पर कुण्डे और हत्थे बनेथे [१]। उनपर पेन्दी के नीचे एक - दूसरे को काटतीहुई रेखाओं से सजावट कीगईथी [२]। ऊपर की ओर कुण्डे और टूटी के पास त्रिभुज खींचकर उनके अन्दर गहरी रेखाओं से पत्तियां बनाईगईथीं [३]।

एक बड़े पात्र के कुण्डे पर, जिसको लाल रँग से सज्जित कियागयाथा, मोनाल पक्षी का चित्र बनाथा। एक अन्य पात्र की पेन्दी पर लँगोटी और पगड़ी पहने कई व्यक्ति अनेक पँक्तियों में आगे बढ़तेहुए चित्रित किएगएथे [४]।

ऐसे पात्रोंवाली समाधियां केवल मलारी में ही नहीं, वरन् पश्चिम की ओर कन्नौर [५], चम्बा [६], लाहुल [७] और लद्दाख में भी मिलीहैं [८]।

इन समाधियों में और ईरान में प्राप्त समकालीन समाधियों में समानता होनके कारण विदित होताहै कि शक - कुशाणकाल में ईरान से पशुचारकों की कुछ टोलियां हिमालय की उपरली श्रेणियों पर पूर्व की ओर मलारी तक फैलगईथीं। दक्षिण में, उनके जातिभाइयों ने, उत्तरभारत में, शीघ्र ही शवदाह - प्रथा अपनाली। किन्तु पर्वतश्रेणियां पर फैली टोलियां चिरकाल तक प्राचीन प्रथानुसार मृतकसंस्कार करतीरहीं।

राहुल ने इन समाधियों का सम्बन्ध खशजाति से जोड़ाहै। किन्तु लद्दाख, लाहुल से लेकर मलारी तक ये समाधियां हमारे उत्तरी सीमान्त की उस पट्टी में मिलीहैं, जहां वर्तमान समय में भोटांतिक किरात बसेहैं। इस पट्टी से दक्षिण की ओर कश्मीर से नेपाल तक खशजाति बसीहै। उससे दक्षिण की ओर पुनः किरातजाति के वँशज यत्र - तत्र बिखरेहैं। इससे विदित होताहै कि खशजाति ने लघुहिमालय की ढालों पर पश्चिम से पूर्व की ओर फैलकर किरातजाति को उत्तर और दक्षिण की ओर धकेल दियाथा।

यदि यह अनुमान सही है तो भोटांतिक घाटियों में मिलनेवाली इन समाधियों का सम्बन्ध खशजाति से न होकर किसी अन्य जाति से होसकताहै। इसका निर्णय शेष समाधियों के विधिवत् अध्ययन से ही होसकेगा [६]।

व्यापार— यवन, शक, पह्लव और कुशाण राजवँशों के **सँस्थापकों ने भारत में** अपनी सत्ता जमाने से पूर्व भारत के लाभपूर्ण व्यापार पर दृष्टि डालीथी और भारत के व्यापारिक मार्गों पर अधिकार करने का प्रयत्न कियाथा। दिमित्र, शक, पह्लव और कुशाण, सभी को हम सिन्धु की घाटी में उतरकर पाताल और भृगुकच्छ पर अधिकार करते, तथा तब उत्तर की ओर बढ़कर उज्जैन और मथुरा पर अधिकार करतेहुए पातेहैं।

१- ४- उत्तराखंड का इतिहास, भाग २, पृ० २२५-२६ ५- राहुल — किन्नरप्रदेश में, पृ० १३६
६- ७- राहुल — गढ़वाल, पृ० ५८ ८- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ५१२
९- द्र० उत्तराखड का इतिहास, भाग २, पृ० २२३-२५

मानसून पवनों का पता लगजाने पर, रोम के सम्राट ग्रौगस्तस के राज्यकाल से भारत और लालसागर के समुद्री पत्तनों के मध्य सामुद्रिक व्यापार अत्यधिक बढ़गयाथा [१]। मिश्र और रोमसाम्राज्य की व्यापारिक सामग्री लालसागर के पत्तनों से समुद्री पोतों के द्वारा सिन्धु के मुहाने तक पहुँचतीथी। वहां से आगे सिन्धुनदी पर पोतों के द्वारा पुष्पपुर (पेशावर) तक पहुँचाईजातीथी। वहां से पशुओं पर लादकर उसे हिन्दुकुश और पामीर के पार तरीम - उपत्यका होकर चीन में पहुँचायाजाताथा [२]।

विम के राज्यकाल से ही कुशाणसम्राटों का महान् कौशेयपथ के तीन महत्वपूर्ण भागों पर अधिकार होगयाथा [३] :—

(१) कशपियनसागर और युक्जाइन (Euxine) सागर को मिलानेवाला मार्ग,
(२) मर्व, एकवताना होकर फरातनदी को पारकरके रोमसागर के पत्तनों को जानेवाला मार्ग, तथा
(३) लालसागर और भारत के बीच का समुद्री मार्ग।

ईरान के पार्थियनसम्राटों से अच्छे सम्बन्ध न होनेके कारण रोम के सम्राटों ने तुरन्त भारत के कुशाणसम्राटों से व्यापारिक मित्रता जोड़ली। तब रोम की व्यापारिक सामग्री को ईरान होकर चीन भेजने की आवश्यकता न रहगई। उसे कुशाणसम्राटों के अधीन भारतीय मार्गों से होकर सरलता से, और पूरी सुरक्षा के साथ चीन भेजाजासकताथा [४]।

कुशाण भी, पार्थियनसम्राटों के समान, व्यापार में मध्यवर्ती बनकर लाभ उठाने वाले थे [५]। भारत की अपार सम्पत्ति और उसके अतिशय लाभपूर्ण व्यापार से कुशाणों की इतनी अधिक आय थी कि उन्होंने अपने पड़ोसी ईराननरेशों से रेतलीभूमि छीनने की कभी चिन्ता भी न की [६]।

भारत से रोम को अनेक प्रकार के रत्न और उपरत्न, मोती, खनिज, लैपिस लजूली, समूरवाली खालें, नाना प्रकार के वस्त्र, तथा मिर्च, कालीमिर्च, अदरख एवं अनेक प्रकार की विलाससामग्री भारी मात्रा में जातीथी [७]। इनके बदले रोम से पतले वस्त्र, मूँगा, सुवर्ण, रजत और अन्य धातुओं के पात्र, श्रृंगारसामग्री और उत्तम मदिरा आतीथी [८]। गायक छोकरों और लावण्यवती छोकरियों की भी रनिवासों केलिए बड़ी मांग थी [९]।

अपनी वस्तुओं के मूल्यस्वरूप भारत को अकेले रोम से प्रतिवर्ष दस करोड़ स्वर्णमुद्राएँ (Sesosteres) प्राप्त होतीथीं। इसकी पुष्टि भारत के अनेक स्थानों में मिली रोमन मुद्राओं से होगईहै।

तङ्गण व्यापारी— विदेशी व्यापार के समान ही भारत का आन्तरिक व्यापार भी बड़ा उन्नत था। इस व्यापार से लाभ उठाने में उत्तराखण्ड के व्यापारी भारत के अन्य जनपदों के व्यापारियों से पीछे न थे।

१- ५- घृशमैन — ईरान, पृ० २६१
६- घृसमैन — पूर्वोक्त, पृ० २६१ - ६२
७- ९- पुरी — इंडिया अंडर कुशाण्स, पृ० ११७

ग्रीष्मकाल में हिमाचल-उत्तराखण्ड के खश, तङ्गणादि व्यापारी भारत की व्यापारिक मण्डियों से विक्रयसामग्री लेकर तिब्बत और मध्यएशिया की मण्डियों में पहुँचतेथे। और शीतकाल आरम्भ होनेसे पूर्व उन प्रदेशों की सामग्री लेकर अपनी घाटियों में उतर आतेथे [१]।

तिब्बत, मध्यएशिया तथा हिमालय के विभिन्न भागों की सामग्री लेकर वे शीतकाल में मंदानी मण्डियों में पहुँचतेथे। उनकी विक्रयसामग्री में सुहागा, स्वर्णचूर्ण, अनेक प्रकार के रत्न और उपरत्न महत्वपूर्ण थे। धातुओं को गलाने, एनेमल और औषधियां बनाने केलिए सुहागे की भारत और विदेशों में बड़ी मांग थी। उनदिनों केवल तिब्बत में प्राकृतिक सुहागे का भण्डार होनेके कारण तिब्बत का सुहागा भारत होकर विदेशों में भी पहुँचताथा [२]।

भारत के नगरों में स्वर्णहट्ट (शर्राफा) नगर का सबसे महत्वपूर्ण भाग होताथा[३]। स्वर्णचूर्ण के व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र उज्जयिनी में था, जिसके स्वर्णहट्ट स्वर्णचूर्ण से भरेरहतेथे [४]। इसलिए द्वीप - द्वीपान्तरों तक उसकी समृद्धि की धाक फैलीहुईथी [५]। इस स्वर्णचूर्ण की, जिसे तङ्गण तिब्बत से लातेथे, पिपीलिक (च्यूँटियों द्वारा खोदागया) सुवर्ण के नाम से बड़ी ख्याति थी। हेरोदात, स्त्रावो, प्लिनी, तथा अनेक यूनानी, रोमक[६], अरब, तुर्क तथा भारत के प्राचीन लेखकों ने उसका उल्लेख कियाहै।

तङ्गण, तिब्बत तथा पामीर से आनेवाले लैपिस लजूली, मरगज (अश्मसार), स्फटिक, अफीक, सँगअजूवा, सँगयशव, सँगसुलेमानी तथा हिमालय में मिलनेवाले जिपसम, सेलखड़ी, अलावास्टर, स्वर्णमक्षिका एवँ अनेक प्रकार के रङ्गीन पाषाणों को भारतीय मण्डियों में पहुँचातेथे [७]।

वे तिब्बत और अपने प्रदेश के वहुमूल्य समूरों, खालों, ऊनी वस्त्रों और ऊन का व्यापार करतेथे। यूनान और रोम के धनिकों में भारत के शाल - दुशालों, कढ़ाईवाले ऊनी वस्त्रों तथा कालीनों को खरीदने की होड़ लगीरहतीथी [८]। भारत में भी उनकी भारी खपत थी। वे भांग के वस्त्रों और थैलों का भी व्यापार करतेथे। जैन साधुओं को भांग के वस्त्र विशेष प्रिय थे [९]।

उस युग में साधुओं और ब्रह्मचारियों केलिए आसनादि बनाने, तन्त्र- मन्त्र में

१- डबराल — उत्तराखण्ड के भोटांतिक, पृ० २६
२- वेट — डिक्सनेरी आव एकोनोमिक प्रोडक्टस, जि० १, पृ० ५०४
३- शाह — एनशिएंट फौंडेशेन आव एकोनोमिक्स इन इण्डिया, पृ० ११२
४- ५- 'चामीकरचूर्णवालुकानिकरखचित' — कादम्बरी, पृ० १०९
६- रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया, जि. १, पृ० ३२६
७- डबराल — पूर्वोक्त, पृ० ३४
८- मुकरजी—हिस्टरी आव इंडियन शिपिंग, पृ० ५८
९- मोतीचन्द्र — प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० ३१, १४५

प्रयोग करने, रथों और पिटारों आदि को मढने एवं अन्य कार्यों केलिए व्याघ्र, चीता, हरिण आदि की खालें बड़े आग्रह से खरीदीजातीथीं [१]।

तङ्गण घरों और राजप्रासादों की सजावट केलिए वनैले पशुओं के सींगों, सुखाएगए शिरों, भूसाभरी खालों, तथा औषधियां आदि बनाने केलिए हरिणादि की अस्थियों एवं जूतों की सजावट केलिए चेलपुओं (तिब्बती मेंढे - मेमनों) के सींगों का व्यापार करतेथे।

वनैले और पालतू चमरों से प्राप्त चमरों और कस्तूरी के व्यापार पर उनका एकाधिकार था। सुअर, भालू और व्याघ्रों पर भी झपटनेवाले भोटिया कुत्तों की ख्याति भारत के बाहर तक पहुँचीथी। रोम में कुत्तों की नस्ल सुधारने केलिए भारत - तिब्बती (भोटिया) कुत्तों का आयात कियाजाताथा [२]। फारिस और रोम में इन भारतीय (भोटिया) कुत्तों के स्वामी उनका जलूस में गर्व से प्रदर्शन करतेथे [३]।

उत्तराखण्ड अपनी अद्भुत प्रभावदायक जड़ी - बूटियों केलिए प्रसिद्ध था। चरकादि वैद्य हिमालय - निवासी किरातों की सहायता से हिमशिखरों पर उगनेवाली जड़ी-बूटियों को पहिचानते और प्राप्त करतेथे [४]।

यूनान और रोम में भारत की जटामासी का, जो वहां जतनमासी कहलातीथी, तथा कुष्ट, बच, मोथा, गुग्गल, कस्तूरी आदि का व्यापक प्रयोग होताथा [५]। गन्धमादन के मीठाविष, कालकूट, हालाहल, वत्सनाभ, मेषश्रृंगी आदि विष और सँखिया सोने से भी अधिक मूल्य पर बिकतेथे [६]।

प्राचीन बस्तियाँ— शिवालिक के अँचल में, भाबरप्रदेश में, अनेक छोटे - बड़े व्यापारिक नगर बसगएथे, जो पर्वतीय और मैदानी व्यापारिक वस्तुओं का विक्रय करतेथे। उत्तराखण्ड में स्रुघ्न, कालकूट, बेहट, वीरभद्र, कनखल, ब्रह्मपुर, मोरगिरि, गोविषाण के अतिरिक्त और भी अनेक छोटी - बड़ी मण्डियां रहीहोंगी जो कालान्तर में नष्ट होगईहैं।

इनका पता अब केवल, उनके प्राचीन खण्डहरों या उनकी अवशिष्ट पक्की ईंटों से लगताहै जो आकार - प्रकार में वर्तमान ईंटों से बहुत बड़ी हैं और गहरे लाल रङ्ग की हैं [७]। वीरभद्र में, वर्तमान औषधिनिर्माणशाला का निर्माण करते समय १४ - १५ इँच लम्बी लाल पक्की ईंटों से बनी किसी दुर्ग या प्रासाद आदि की एक लम्बी दीवार मिलीथी, जिसे तोड़कर ईंटों को सड़क पर बिछा दियागया [७]। मोरध्वजस्तूप में १३½×८½×२½ इँच की ईंटें मिलीहैं। इन्हें वहां बसनेवाले कृषकों ने अपने मकानों की नीवों में भरदियाहै [८]। लालढांग के पास पांडुवाला वन में लगभग इसी आकार-प्रकार की ईंटें दूर-दूर तक बिखरी हैं।

१- डबराल — उत्तराखण्ड के भोटांतिक, पृ० ३६
२- मुकरजी — हिस्टरी आव इंडियन शिपिंग, पृ०६७
३- मोतीचन्द्र—स्टडीज इन महाभारत, पृ० १०० टि०
४- अत्रिदेव —आयुर्वेद का इतिहास, पृ०७६
५- मुकरजी — पूर्वोक्त, पृ० ५८
६- अत्रिदेव — पूर्वोक्त. पृ० १३३
७- डबराल—उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २१८
८- डबराल — पूर्वोक्त, पृ० २२६

मार्ग— इतने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा और सुव्यवस्था तथा व्यापार की सुविधा केलिए कुशाणनरेशों ने मार्गों के सुधार और सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दियाथा। कुशाण - शासन में समस्त बड़े राज्याधिकारी शक - कुशाण वंशों से सम्बन्ध रखतेथे। देश के सुदूरस्थ भागों में उनकी सुरक्षा केलिए भी आवागमन के साधनों को उन्नत करना आवश्यक था।

नदियों पर प्रायः बांस के पुल बनाएजातेथे [१]। झूलों, नावों और नावों के बेड़ों के द्वारा भी नदियां पार कीजातीथीं। समुद्री व्यापार पोतों के द्वारा होताथा। नदियों पर नावों के द्वारा भारी व्यापार होताथा। कुशाणों ने बांध बनाकर अनेक छोटी - छोटी नदियों को भी नाव चलानेयोग्य बनाडालाथा [२]।

मार्ग प्रायः सुपथ थे। उन पर साम्राज्य के एक भाग से दूसरे भाग तक लोग कुशलतापूर्वक पहुंचसकतेथे। फिर भी मार्ग भूलने और चोर - डाकुओं से सुरक्षा केलिए अपने साथ किसी पण्डित, निपुण, मेधावी मार्गप्रदर्शक को लेजाना आवश्यक समझाजाताथा [३]। आरम्भिक मौर्यसम्राटों के समान कुशाणसम्राट भी मार्गों की सुरक्षा के प्रति विशेष सचेष्ट थे।

साकल से पांच - पांच सौ गाड़ियोंवाले सार्थ पाटलिपुत्र तक जातेथे [४]। श्रावस्ती से सोपारा को और तक्षशिला से काशी को निरन्तर सार्थ चलतेरहतेथे [५]। साकल से स्रुघ्न कालकूट होकर उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में गोविषाण और अहिच्छत्रा जानेवाला मार्ग भी बहुप्रचलित था।

उत्तराखण्ड के तीर्थों को जानेवाले मार्गों में भी कुछ सुधार हुआहोगा। कुशाण - राज्यकाल के आरम्भ से ही तीर्थयात्री देश के मैदानी भागों से देवप्रयाग होकर बदरिकाश्रम-मान (माणा) पर्वत तक जानेलगेथे [६]।

धार्मिक सहिष्णुता— कुशाणनरेशों में कुजुल की मुद्राओं पर बुद्ध की प्रतिकृति मिलतीहै। उसका विरुद 'सत्यधर्मस्थित' था। इससे विदित होताहै कि उसकी बौद्धमत के प्रति श्रद्धा थी। विम की मुद्राओं पर शिव और नन्दी की प्रतिकृतियां मिलतीहैं। मुद्राओं पर वह अपने को **'माहेश्वर'** बतलाताहै। इससे उसकी शैवमत के प्रति श्रद्धा प्रकट होतीहै।

कनिष्क और हुविष्क ने अपनी मुद्राओं पर अनेक भारतीय और यवन - ईरानी देवी - देवताओं की प्रतिकृतियां अंकित कीथीं। वासुदेव ने अपनी मुद्राओं पर केवल शिव, उमा (नना=अम्बा) की प्रतिकृतियों को स्थान दियाथा। उसकी शैवमत के प्रति निष्ठा विदित होतीहै। कुशाणकाल में मध्यएशिया तक शैवमत की मान्यता थी।

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० १०७ २- राहुल — मध्यएसिया का इतिहास, जि० १, पृ० २०३ ३- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० १०८ ४- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ११६
५- देवप्रयाग-अभिलेख, उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३४६-४७

कुशाणनरेश उदरहृदय थे। शैव या बौद्धमत के प्रति निष्ठा होनेपर भी वे सभी मत - मतान्तरों के अनुयायियों से समान व्यवहार करतेथे। मथुरा के कुशाणकालीन अभिलेखों से विदित होताहै कि ब्राह्मणों को अपने यज्ञ - याग करने की, तथा बौद्ध और जैन मतावलम्बियों को अपने मतों का प्रचार करने एवँ स्तूप, चैत्य, विहार - संघाराम आदि बनाने की पूरी स्वतन्त्रता थी।

उस काल में बनी मूर्तियों से भी विदित होताहै कि हिन्दुधर्म के तीनों स्कन्धों, वर्णाश्रम, बौद्ध और जैन — सभी के देवी - देवताओं की मूर्तियों का निर्माण बड़ी संख्या में होताथा। मूर्तिनिर्माण का प्रमुख केन्द्र मथुरा में था।

वेदिक यज्ञ— मथुरा में तथा अन्यत्र मिले अनेक लेखों से विदित होताहै कि कुशाणकाल में अनेक प्रकार के वेदिक यज्ञ होतेथे [१], जिनमें पशुवलियां होतीथीं।

नारायण-पूजा— विष्णु की नारायण और वासुदेव के रूप में पूजा प्रचलित थी [२]। नारायण के उपासकों का प्रमुख तीर्थ बदरिकाश्रम था।

मथुरा में इस युग की अभयमुद्रा में खड़े तथा पद्मासन पर बैठे ध्यानमग्न विष्णु की मूर्तियां मिलीहैं [३]। विष्णु की अष्टभुजावाली मूर्ति तथा कमलासन पर विराजमान लक्ष्मी की मूर्तियां भी प्राप्त हुईहैं [४]। आयुधपुरुष तथा चक्रधारी बलराम की मूर्तियां भी उस युग में बननेलगीथीं।

शिव-पूजा— शिवजी को रुद्र, शिव और पशुपति नामों से पूजा होतीथी। शुँग-राज्यकाल के समान कुशाण - राज्यकाल में भी, शिवजी की पूजा सबसे अधिक प्रचलित थी [५]। तारानाथ के अनुसार बौद्ध बनने से पूर्व अश्वघोष शैव था [६]।

कुशाणमुद्राओं पर द्विभुज और चतुर्भुज शिव की प्रतिकृतियां मिलतीहैं, जिनके साथ नन्दी, त्रिशूल और व्याघ्रचर्म अंकित हैं। त्रिमूर्ति या तीन शिरवाले शिव तथा हर-गौरी या उमा सहित शिव भी उनकी मुद्राओं पर अंकित हैं [७]।

मथुरा में पार्वतीसहित शिव की, अर्द्धनारीश्वर की, तथा चतुर्भुज शिव की मूर्तियां बननेलगीथीं [८]। ऐसी मूर्तियां भी बनतीथीं, जिनमें दहिनी ओर गणेश तथा बांईं ओर कार्तिकेय होतेथे और उनके मध्य में शिव - पार्वती होतेथे [९]।

शिवजी की लिङ्गरूप में पूजा बहुप्रचलित थी [१०]। लिङ्गोद्भवमूर्ति (शिवलिंग पर बनी शिवाकृति) की पूजा शुँगकाल से ही चलपड़ीथी [११]। लिङ्गोद्भवमूर्तियां, जिन्हें

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० १३७ - ३८
२- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० १३८ - ३९
३- ४- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० २०४
५- ६- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० १३९
७- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० २०३
८- १०- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० २०३ - ४
११- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४६० - ६१

मुखलिङ्ग भी कहतेहैं, कुशाणकाल में मथुरा में बड़ी सँख्या में बननेलगीथीं। इनमें से कुछ पर द्विभुज और कुछ पर चतुर्भुज शिव अँकित होतेथे [१]।

लालढांग के शिवमन्दिर में पाण्डुवाला के खण्डहरों से उठाकर एक विशाल लिंगोद्भव-मूर्ति की स्थापना कीगईहै, जो मथुराकला का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। इसमें चार फीट ऊँचे लालशिला से निर्मित लिंग पर हरगौरी की आकृतियां अँकित कीगईहैं।

वीरभद्र में, गङ्गाजी के तट पर बने मुख्य मन्दिर से लगभग १०० गज की दूरी पर एक छोटे मन्दिर में लालशिला का बना एक अति सुन्दर मुखलिंग है। इसका सम्बन्ध भी मथुराकला से जोड़ाजासकताहै।

विभिन्न देव-पूजा— अन्य देवी - देवताओं में वरुण, ब्रह्मा, कुवेर, चन्द्र, सूर्य, धनद और गङ्गाजी की पूजा बहुप्रचलित थी [२]। कार्तिकेय की स्कन्द, विशाख, महासेन और कुमार नाम से भी पूजा होतीथी [३]।

मथुरा में सूर्य की एक ऐसी मूर्ति मिलीहै, जिसमें सूर्यदेव चार अश्वों से खींचे जानेवाले रथ में बैठेहैं। उनके दोनों हाथों पर कमल हैं। उनके लम्बे केश हैं। गले में रत्नालँकार है। वे कुशाणनरेशों के समान लम्बा चोगा और ऊँचे जूते पहनेहैं। उनके पास गदा या खड्ग है [४]।

बूटधारी सूर्य की मूर्तियां शक - कुशाणों की देन हैं। ऐसी अनेक मूर्तियां आजतक उत्तराखण्ड के अनेक मन्दिरों में मिलतीहै। इनमें सबसे प्रसिद्ध कटारमल की सूर्यमूर्ति है।

यक्ष-पूजा— यक्ष और यक्षणियों की अति विशाल ठोस प्रतिमाएं बनतीथीं, जो उनकी शक्ति, प्रभुत्व एवं आतँक को व्यक्त करतीथीं। ऐसी मूर्तियां नन्दसाम्राज्य के दिनों से चलीआतीथीं। इस युग में उनके निर्माण में विशेष वृद्धि हुईथी [५]।

नाग-पूजा— नाग - पूजा का व्यापक प्रचार था। उसकाल की अनेक नागमूर्तियां मिलीहैं, जिनमें मानव - आकार के ऊपर सात या अधिक फणोंवाला बाब - शिर छत्ररूप में बनायागयाहै [६]। पार्श्वनाथ मूर्ति के शिर पर नाग इसीप्रकार छत्र बनाए खड़ाहै। नाग उरुविल्व, नाग एलापत्र तथा नाग मुचिलिन्द का बुद्ध की सेवा में उपस्थित होना अनेक शिलाचित्रों में अँकित है। शेषशायीविष्णु की और कालियनाग का दमन करतेहुए कृष्ण की मूर्तियां भी बननेलगीथीं।

जनसाधारण में नागपूजा अत्यधिक प्रचलित होनेसे विभिन्न मतों के अनुयायी अपने आराध्यों को नागों के पूज्य बतलाकर नागउपासकों को अपने मत की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न कररहेथे। फिर भी नागपूजा की व्यापकता में अन्तर नहीं आयाथा।

१- पुरी – इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० १३७ - ३८

२- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० १३६

३- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० १३६

४- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० २०४

५- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५७७

६- पुरी – पूर्वोक्त, पृ० १५२

अधिकांश जनता लोक में प्रचलित विभिन्न देवी - देवताओं के प्रति अपनी रुचि या पारिवारिक परम्पराओं के अनुसार श्रद्धा व्यक्त करतीथी। और साथ ही बौद्ध तथा जैनमत के महापुरुषों को भी उतना ही पूज्य मानतीथी। हिन्दु, बौद्ध या जैन - उपासक एक ही परिवार में प्रेम से रहसकतेथे। शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के समान बौद्ध और जैन सम्प्रदाय भी हिन्दुधर्म के अँग थे। केवल इनके साधु, भिक्षु या श्रमणों की मान्यताओं में कुछ अन्तर होताथा।

बौद्धमत-- कुशाणकाल में बौद्धमत में एक नया मांड़ आया। बुद्ध की मूर्तिरूप में पूजा होनेलगी। शुँगकाल तक भारहुत, सांची आदि के शिलाचित्रों में बुद्ध की उपस्थिति प्रायः उनकी पादुका, उष्णीष, बोधिवृक्ष या रिक्तासन से व्यक्त कीजातीथी। अब बुद्ध की मूर्तियां बननेलगीं। विम और कनिष्क की मुद्राओं पर बुद्ध की प्रतिकृतियां अँकित हैं।

गान्धारशैली-- गान्धार और निकटवर्ती प्रदेश में एक ऐसी शैली का विकास हुआ जिसमें बुद्ध की मूर्तियां बननेलगीं। बुद्ध की मूर्तियों के साथ - साथ उनके जीवन से सम्बन्धित दृष्योंवाली मूर्तियां तथा अनेक बोधिसत्वों की मूर्तियां भी बननेलगीं।

इस शैली की पचासों सहस्र मूर्तियां अबतक उपलब्ध होचुकीहैं [१]। उन सबका सम्बन्ध केवल बुद्ध और बोधिसत्वों के जीवनचित्रों से है। ये सभी मूर्तियां काले स्लेट पत्थर की तथा कुछ चूनेमसाले की बनीहैं [२]। उनकी सँख्या इतनी अधिक होतेहुए भी उन पर कोई लेख नहीं है, जिससे उनके निर्माणकाल का निश्चय होसके [३]। फिर भी अन्य साक्ष्यों से विद्वानों ने उनका निर्माणकाल विक्रमसँवत् के आरम्भ से लेकर २५० विक्रमी (50 B. C. - 300 A. D.) तक मानाहै [४]।

गान्धारशैली पर यवन या रोमन प्रभाव बतलायाजाताहै। कुछ विद्वानों की धारणा है कि इन मूर्तियों का निर्माण विदेशी शिल्पियों द्वारा भारतीय परम्पराओं पर कियागयाथा [५]।

मथुराशैली-- मथुरा में भारहुत और सांची की उन्नत लोककला पल्लवित होरहीथी। कुशाणकाल में राज्याश्रय पाकर उसमें भी एक नया मोड़ आया। कुशाणकाल में बुद्ध और अनेक देवी - देवताओं की मूर्तिरूप में पूजा की प्रथा सर्वव्यापक होचुकीथी। मध्यएशिया में भी भारतीय देवी - देवताओं और बुद्ध - बोधिसत्वों की मूर्तियां पूजीजातीथीं।

मूर्तियों की इस भारी मांग की पूर्ति मथुरा के कलाकार करतेथे। वे उस काल में सभी प्रकार की और सभी सम्प्रदायों के देवी - देवताओं और महापुरुषों की मूर्तियां श्वेत चित्तीवाले लाल रवादार शिलाओं से बनातेथे। ये शिलाएँ सीकरी, भरतपुर आदि की खानों से आतीथीं [६]।

१- ४- राय कृष्णदास — भारतीय मूर्तिकला, पृ० ८६ ५- राय कृष्णदास, — पूर्वोक्त, पृ० ८७-६१

६- राय कृष्णदास — पूर्वोक्त, पृ० ६२

शिशुनाक और नन्दसाम्राज्य के दिनों से मध्यदेश में यक्षों की विशाल, ठोस खड़ी मूर्तियां बनतीथीं। उन्हींके अनुकरण अब बुद्धभगवान् की उसी आकार - प्रकार की मूर्तियां बननेलगीं [१]। कुशाणकाल की मथुराशैली की अधिकांश बुद्ध और बोधिसत्व - प्रतिमाएं खड़ी मूर्तियां हैं, जिनकी आकृति, ऊँचाई तथा शैली स्पष्टरूप में शैशुनाक - मूर्तियों या खड़ी जैनमूर्तियों की है। इसीप्रकार मथुरा की पद्मासनासीन मूर्ति में वह परम्परा विद्यमान है जो मोहेन-जो-दड़ो से होतीहुई जैनमूर्तियों में चलीआतीथी [२]।

मथुरा में कुशाणनरेशों के देवकुल से प्राप्त नरेशों की मूर्तियां भी इसीप्रकार स्थूल हैं। उनकी वेशभूषा उस काल में मध्यएशिया में प्रचलित वेशभूषा है।

जैनमत— मथुरा में जैन तीर्थंकरों और अर्हतों की अनेक विशाल मूर्तियां मिलीहैं। वे भी उसीप्रकार स्थूलकाय हैं। इनके अतिरिक्त वहां अनेक आयागपट्ट और जैन - अभिलेख मिलेहैं, जिनसे विदित होताहै कि कुशाणसाम्राज्य में जैनमत भी भलीप्रकार पल्लवित होरहाथा। उनदिनों भी जैनमत के विभिन्न गणों और शाखाओं का अस्तित्व चलाआताथा।

तीर्थयात्रा— भारत में तीर्थयात्रा प्राचीनकाल से चलीआतीथी। अशोक के राज्यकाल में बौद्ध पुनीतस्थलों की नियमितरूप से तीर्थयात्रा होतीथी। स्वयं अशोक ने बौद्धतीर्थों की यात्रा कीथी। जैन भी अपनी पुनीतभूमियों की तीर्थयात्रा करतेथे। स्तूपयात्रा भी होतीथी। जन - साधारण में सभी मत - मतान्तरों और महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित पुनीतस्थलों की तीर्थयात्रा प्रचलित थी। मैदानी भागों में, शीतकाल में कृषि-कार्य से अवकाश मिलजाने पर विभिन्न तीर्थों की नियमितरूप से यात्रा कीजातीथी।

गङ्गातट के तीर्थों की यात्रा बहुप्रचलित थी। गङ्गाजी की पूजा कीजातीथी। उत्तराखण्ड में बदरिकाश्रम में नारायण-भागवतों की तथा उसींके पास कैलास-भृगुपँथमें शिव-भागवतों की पुनीतभूमि की स्थापना होजानेसे उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा के प्रति आकर्षण बढ़गयाथा।

देवप्रयाग में रघुनाथ मन्दिर के पीछे शिला पर लगभग चालीस शिलालेख हैं, जिनमें से कुछ में उन तीर्थयात्रियों के नाम हैं, जो इस तीर्थ में ईसा की दूसरी से चौथी शती तक आएथे [३]। इन शिलालेखों में मानपर्वत का उल्लेख होनेसे विदित होताहै, कि वे माणापर्वत के अँचल में स्थित बदरिकाश्रम में भी पहुँचतेथे। इन शिलालेखों का पता डा० छावड़ा ने लगायाथा [४]।

१- 'The Budha Bhagawan was shaped, as it were, out of the form and content of the Yaksha Bhagawan.' – एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५१८

२- राय कृष्णदास – भारतीय मूर्तिकला, पृ० ६३

३- ४- एपिग्राफिया इंडिका, जि० ३०, पृ० १३३

तिथि-क्रम

कुशाणवंशी नरेश [1]

कुजुल कदफिस	– सँ० ८२ - १३५ वि० (25 - 78 ई०)
विम कदफिस	– सँ० १३५ - १८२ वि० (78 - 125 ई०)
महाक्षत्रप झोनिक, सोतरमेगस	– सँ० १८२ - २०१ वि० (125-144 ई०)
महाक्षत्रप रुद्रदामन	– सँ० १८७ - २०८ वि० (130-151 ई०)
कनिष्क प्रथम	– सँ० २०१ - २३० वि० (144-173 ई०)
वाशिष्क	– सँ० २३० - २३८ वि० (173-181 ई०)
कनिष्क द्वितीय, हुविष्क	– सँ० २३८ - २६३ वि० (181-206 ई०)
वासुदेव प्रथम	– सँ० २६३ - ३०० वि० (206-243 ई०)
परवर्ती कुशाण	– सँ० ३०० - ३०७ वि० (243-250 ई०)

विक्रमाब्द— इस सँवत् को कृत और मालव सँवत् भी कहाजाताहै। इसके आरम्भ होनेके सम्बन्ध में विद्वानों में घोर मतभेद है। जैन लेखक मेरुतुंग की थेरावली के अनुसार उज्जैननरेश गर्दभिल्ल ने जैनमुनि कालकाचार्य की बहिन श्राविका सरस्वती का शील भँगकियाथा। इसलिए कालकाचार्य ने सिन्धुनदी के पश्चिम में शासन करनेवाले शाही (शक) नरेश पर अपनी ज्योतिषविद्या से प्रभाव डालकर उससे उज्जैन पर आक्रमण करवा दिया। गर्दभिल्ल हारगया और उज्जैन पर शकनरेश का अधिकार होगया। उसने उज्जैन पर चार वर्ष तक शासन किया [2]।

गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकनरेश को मार-भगाकर उज्जैन पर अधिकार करलिया। उसने विक्रम सँवत् चलाया और ६० वर्ष तक राज्य किया। उसके चार वँशजों ने ४०, ११, १४ तथा १० वर्ष तक शासन किया। तब से शककाल आरम्भ हुआ [3]। विक्रम की मृत्यु के पश्चात् १३५ वर्ष बीतजाने पर शकों ने विक्रम के वँशजों को निकालकर उनके राज्य पर अधिकार करलिया [4]। जैन अनुश्रुति ऐतिहासिक तथ्यों पर निर्भर विदित होतीहै [5]।

शकाब्द— इस गणना का प्रयोग पहले शकनरेश करतेरहे। इसका आरम्भ ईसा के ७८ वें वर्ष में हुआ। अनेक विद्वान् इसका सम्बन्ध कनिष्क के राज्यकाल से जोड़तेहैं। कुछ विद्वान् कनिष्क के राज्यारम्भ की तिथि ७८ ई० में नहीं मानते। ऐसी अवस्था में शकाब्द के सँस्थापक का नाम अनिश्चित समझाजाताहै [6]।

१- पुरी – इंडिया अंडर कुशाण्स

२-४- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १५५

५- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १५५ - ५६

६- एज आव इम्पीरियल, यूनिटी, पृ० १५८

कुणिन्द - अवसान

कुशाण-साम्राज्य का अवसान-- मुद्राओं से विदित होताहै कि कुशाण-साम्राज्य के अवसान पर उत्तरभारत के बड़े भाग के जनपद स्वतँत्र होगएथे। उन्हींके साथ कुलिन्द जनपद को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुईथी। इस महान् घटना की तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा विवाद है। वासुदेव प्रथम अन्तिम कुशाणनरेश था, जो अपने साम्राज्य के पूर्वी भाग पर अपना अधिकार रखसकाथा। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुशाणसाम्राज्य का वेग से विघटन हुआथा। वासुदेव प्रथम की मृत्यु कुछ विद्वान् सँ० ३०० वि० (243 ई०)[१] में तथा अन्य विद्वान् सँ० २३३ वि० (176 ई०) के आसपास मानतेहैं [२]।

वासुदेव प्रथम के पश्चात् भी किसी कुशाणनरेश के क्षत्रप एधुराया अधुजा (सधुजा) का इस जनपद पर कुछ काल तक शासन रहाथा, जैसा कि उसकी गोविषाण में प्राप्त मुद्राओं से विदित होताहै [३]। उसके पश्चात् भी कुशाणवँश की एक शाखा किदर-कुशाण के शासन का पता उसकी मुद्राओं से चलताहै। इस वँश के एक नरेश सलोनवीर की मुद्राएँ उत्तरप्रदेश में हरदोईजिले तक प्राप्तहुईहैं [४]।

फिर भी अनुमान कियाजाताहै कि सँ० ३०७ वि० (250 ई०) के आसपास सतलुज से पूर्व की ओर पँचनद और मध्यदेश से कुशाणसत्ता समाप्त होगईथी। सतलुज से पश्चिम के प्रदेश पर कुशाणराज्य लगभग दो शतियों तक बनारहा। सँ० ३०७ वि० (250 ई०) के पश्चात् की कुशाणमुद्राएँ सतलुज से पूर्व की ओर नहीं मिलतीं [५]।

भारशिव-राज्यसंघ— विशाल कुशाणसाम्राज्य के सहसा लुप्त होजाने के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। जायसवाल की कल्पना है कि कुशाणसत्ता उलटने का श्रेय भारशिवनरेशों को है [६]। उन्होंने कुशाणों का विरोध करनेहेतु एक राज्यसँघ की स्थापना कीथी, जिसमें उनके साथ यौधेय, मालव, मद्र और कुणिन्द प्रजातन्त्र सम्मिलित हुएथे [७]।

१- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ४०

२- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १५०

३- जौ० न्यूमिसमेटिक सो० जि० २४, १९६२, पृ० १८०

४- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, जुलाई ३९, पृ० ७

५- वाकाटक - गुप्त - एज, पृ० २७

६- जायसवाल — अन्धकारयुगीन भारत, पृ० ११

७- जायसवाल — पूर्वोक्त, पृ० ६३ - ६८

भारशिवनरेश वीरसेन के प्रयत्न से अल्पकाल में ही कुशाणराज्य की सीमा पीछे हटते - हटते सरहिन्द तक पहुँचगईथी [1]। कुशाणों से उत्तरभारत को स्वतन्त्र करके भारशिव नरेशों ने काशी में दश अश्वमेध किएथे [2]।

वर्तमान खोजों से सिद्ध हुआहै कि कुशाणसाम्राज्य के विनाश का सारा श्रेय भारशिव - राजवँश को देना सर्वथा कल्पना - मात्र है [3]। जिस भारशिव - राज्यसँघ की कल्पना जायसवाल ने कीहै, उसके अस्तित्व की पुष्टि किसी ऐतिहासिक स्रोत से नहीं होती [4]।

यदि कुणिन्द और यौधेयगण उस तथाकथित भारशिव - राज्यसँघ के सदस्य रहेहोते तो इन गणों की मुद्राओं की जो अनेक निधियां प्राप्तहुईहैं, उनमें कहीं न कहीं भारशिव - मुद्राएँ भी मिलतीं। अथवा उनकी मुद्राओं पर भारशिव - मुद्राओं का प्रभाव मिलता। अभीतक किसी अभिलेख या साहित्यिक साक्ष्य से उस भारशिव - राज्यसँघ के अस्तित्व की पुष्टि नहीं हुईहै।

यौधेयगण का उत्थान— दूसरी ओर अल्तेकर की कल्पना है कि कुशाण-साम्राज्य पर सबसे प्रथम आक्रमण करनेका श्रेय यौधेयगण को है [5]। जिस कुशाणवँश का अधिकार वख्तरिया से विहार तक था, जिसके साधन असीम थे और जिसके नरेश एक शती से भी अधिक अवधि से देवपुत्र होने की प्रसिद्धि प्राप्तकरचुकेथे, उस राजवँश से भिड़ना साधारण बात न थी [6]।

कुशाणनरेशों ने उत्तरपश्चिमी भारत तथा मध्यएशिया से अपनी सर्वोत्तम सेना बुलाकर यौधेय - विद्रोह को दबाने का पूरा प्रयत्न कियाहोगा। किन्तु विद्रोह केलिए कटिबद्ध गण की वीरता और देशभक्ति के सन्मुख उनकी एक न चली [7]। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वर्तमान इतिहासलेखकों की दृष्टि अभीतक यौधेयगण की इस सफलता की ओर न जासकी [8]।

अन्य इतिहासकार अल्तेकर की इस कल्पना पर विश्वास नहीं करते। उनका विश्वास है कि कुशाणसाम्राज्य का विघटन धीरे - धीरे हुआथा [9]। यौधेयगण के उत्थान

१- जायसवाल — अन्धकारयुगीन भारत, पृ० ६१

२- 'भागीरथी - अमलजलः मूर्द्धाभिषिक्तानां दशाश्वमेध - अवभृथ - स्नानानां भारशिवानाम्।'
— उ० जायसवाल — पूर्वोक्त, पृ० १०

३- 'The suggestion that the Bharashivas were responsible for the overthrow of Kushan suprimacy in India, may be regarded as fantastic.' — एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६६

४- ५- वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २६

६- ७- वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २७-२८

८- वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २६

९- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ७६

से कुशाणसाम्राज्य को अवश्य क्षति पहुँचीथी। पर उस साम्राज्य के विनाश का सारा श्रेय केवल यौधेयगण को नहीं दियाजासकता [१]।

अन्य कारण— कुशाणसाम्राज्य के विनाश के अनेक कारण थे। वासुदेव प्रथम के वँशजों में इतने विशाल साम्राज्य को सम्भालने केलिए वांछित योग्यता न थी। पारिस के शक्तिशाली सासानी नरेशों ने कुशाणसाम्राज्य के पश्चिमी भाग पर अधिकार करके सिन्धुनदी की पश्चिमी उपत्यका को अपने साम्राज्य में मिलालियाथा [२]। कुशान - मल्कान - मल्क अर्थात् 'कुशाणनरेशों का नरेश' ऐसा विरुद धारण करके उन्होंने देवपुत्र होने का दंभ रखनेवाले कुशाणसम्राटों की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिलादीथीं [३]।

पूर्व की ओर सम्भवतः क्षत्रप बनस्फर के वंशजों ने स्वतन्त्रता घोषित करदीथी। महत्वपूर्ण पदों पर केवल शक - कुशाण अधिकारियों को ही नियुक्त करने की प्रथा के कारण [४] कुशाणनरेश जनता की और राज्यभ्रष्ट राजवँशों की सहानुभूति खोचुकेथे। सम्भवतः जब कुशाणनरेश पश्चिम में सासानीनरेशों के चँगुल में उलझगए तो पूर्व की ओर यौधेय, कुणिन्द, मालव गणों तथा नाग और मघ आदि राजवँशों ने स्वतन्त्रता घोषित करदी [५]।

कुणिन्द-यौधेय-सहयोग — इन दिनों कुणिन्द और यौधेय गणों ने जो मुद्राएँ प्रसारित कीथीं, उन पर एक - दूसरे के रोचक प्रभाव से विदित होताहै कि इन दोनों गणों ने अपनी स्वतन्त्रता के संँघर्ष में एक - दूसरे को पूरा सहयोग दियाथा।

पौराणिक पुरावृत्त के अनुसार कुणिन्द और यौधेय गणों का पारिवारिक सम्बन्ध था। उत्तराखण्ड के ऐल (चन्द्र) वँशी नरेश अनु की आठवीं पीढ़ी में राजा उशीनर हुएथे। उनके पांच पुत्रों ने शिवि, यौधेय, नवराष्ट्र, कृमिल और अम्बष्ठ इन पांच राज्यों की स्थापना कीथी [६]। उशीनर की मूलभूमि कुलिन्द - उशीनर जनपद का शासन पूर्ववत् एक अन्य शाखा द्वारा होतारहा [७]।

महाभारत के अनुसार यौधेय पांडवनरेश,युधिष्ठिर का पुत्र था, जिसे उसने शिविदेश की राजकुमारी देविका के गर्भ से उत्पन्न कियाथा [८]। राजसूय के अवसर पर यौधेयदेश के राजा, राजकुमारी और निवासी उपायन लेकर पहुँचेथे [९]। पाण्डवों के सहयोगी, सहायक और घनिष्ट मित्र [१०] कुणिन्दवंश की, पाडवों के वँशज या आत्मीय यौधेयों से मित्रता होना स्वाभाविक था।

१- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६८

२- घृशमैन — ईरान, पृ० २९२ - ९६

३- पुरी — इंडिया अण्डर कुशाण्स, पृ० ७८ टि० ३२

४- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ८२, ८४, ८५

५- पुरी — पूर्वोक्त, पृ० ७६

६- वेदिक एज, पृ० २८३

७- डबराल — उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० २९६

८- आदिपर्व, ९५।७६

९- सभापर्व, ५२।१४-१७

१०- द्र० सभापर्व, ५१।७ से आगे दा० पाठ; वनपर्व, १४०।२४-२८; सभापर्व, २६।३; ७५।७ से आगे दा० पाठ; उद्योगपर्व, ४।१४; द्रोणपर्व, ८३।४-६; ८५।५-१९

राजनैतिक दृष्टि से कुणिन्दगण यौधेयगण का पड़ोसी था। पाणिनि ने यौधेयगण के पड़ोसी त्रिगंतगण का उल्लेख कियाहै [१], जिसका प्रसार रावी, व्यास और सतलुज की पर्वतीय उपत्यका में था। सतलुज से पूर्व की ओर यमुना, गङ्गाजी और कालीगङ्गा के स्रोतप्रदेश तक कुणिन्दगण की भूमि थी। कुलिन्दजनपद की दक्षिणीसीमा पर मैदानीप्रदेश में सतलुज से यमुना तक यौधेयगण की भूमि फैलीथी।

यौधेयगण की प्राचीन राजधानी सरहिन्द और जलन्धर के बीच, सतलुज के बांये तट पर सुनेत्र. वर्तमान सुनेत में थी [२]। महाभारत-सँग्रहकाल तक इस गण का प्रसार यमुना के पश्चिमी तट पर, बहुधान्यकप्रदेश तक होचुकाथा, जहां रोहीतक, वर्तमान रोहतक में, उसकी दूसरी राजधानी थी [३]। यहां खोखरकोट के टीले की खुदाई से ताम्रमुद्राएँ ढालने के एक सहस्र सांचे मिलेथे। इन सांचों से 'यौधेयाना बहुधानेक' लेखवाली मुद्राएँ ढलतीथीं [४]।

पाणिनि के पश्चात् नन्द, मौर्य और शुँगराज्यकाल में कुणिन्दगण के समान यौधेयगण का भी उल्लेख नहीं मिलता। इन साम्राज्यों के उत्कर्ष से गणराज्यों की शक्ति क्षीण होगईथी।

मेनान्द्र की मृत्यु के पश्चात् कुणिन्द और यौधेय, दोनों गणों ने स्वतन्त्रता घोषित करदीथी। सतलुज के बांयें तट पर डटकर कुणिन्द और यौधेय बार - बार आक्रान्ताओं से भिड़कर पूर्व की ओर उनके प्रसार को रोकतेरहे।

दूसरी शती विक्रमी तक यौधेयगण 'परम वीर' के नाम से विश्रुत होचुकाथा [५]। विश्वास कियाजाताथा कि उसने युद्ध में विजय प्राप्तकरने का मन्त्र सिद्ध करलियाथा [६]।

उज्जैन और मथुरा के क्षत्रपों के शक्तिशाली बनने से पूर्व यौधेयगण का दक्षिण की ओर मरुभूमि, वर्तमान राजस्थान की उत्तरीपट्टी तक प्रसार होचुकाथा, जहां उन्हें रुद्रदामन ने करारी पराजय दीथी [७]। इस पराजय के कारण यौधेयगण में जो आर्थिक दरिद्रता आई उसका प्रभाव उसकी मुद्राओं पर भी पड़ा [८]।

पराजित होकर यौधेयगण को पुनः अपनी मूलभूमि की ओर खिसकना पड़ा। जहां उसने कुशाण - साम्राज्य के अवसान के दिनों में कुणिन्दगण के सहयोग से स्वतन्त्रता प्राप्त कीथी।

१- अष्टाध्यायी, ४।१।१७८; ४।३।९१ 	२- अष्टाध्यायी, ४।२।७५

३- सभापर्व, ३२।४-५; उद्योगपर्व, १९।३० - ३१

४- जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सो०, जुलाई १९४०, पृ० ८३

५- द्र० रुद्रदामन का गिरिनार—शिलालेख

६- 'यौधेयानाम् जयमन्त्रधराणाम्' — लुधियाना से प्राप्त यौधेयमुद्रा का लेख

७- 'वीर - शब्द - जा [तो] त्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन . . .'
— रुद्रदामन का गिरिनार — शिलालेख

८- एलन — कै० क्वाइन्स आव एनशिएट इंडिया, पृ० CLiii

यौधेय और कुणिन्द मुद्राएं— दोनों गणों के पारस्परिक सहयोग की साक्षी, उनकी वे मुद्राएं हैं, जिन्हें उन्होंने कुशाणसाम्राज्य के अवसान से लेकर गुप्तसाम्राज्य के अभ्युदय तक की एक शती की अवधि में प्रसारित कियाथा।

यौधेयगण की मुद्राओं को मुद्राविदों ने तीन वर्गों में विभाजित कियाहै :–

(१) योधेयगण की प्राचीनतम मुद्राएँ, जो उसने मौर्यसाम्राज्य के विघटन के पश्चात् तथा कुशाणसाम्राज्य के उत्थान से पूर्व, उनदिनों प्रसारित कीथीं, जब वह गण स्वतन्त्र था [१]।

इन मुद्राओं की प्रसारणतिथि विद्वानों ने ईसापूर्व पहली शती – वि० पू० ४३ से सँ० ५७ वि० तक निर्धारित कीहै [२]। इस प्रकार ये यौधेयमुद्राएँ कुणिन्दनरेश अमोघभूति के समकालीन हैं।

(२) दूसरी शती ई० – सँ० १५८ वि० से २५७ वि० तक की मुद्राएँ, जिनसे यौधेय गण की आर्थिक दरिद्रता झलकतीहै। जो सम्भवतः रुद्रदामन के हाथों उसकी पराजय एवं शकजाति से उसके लम्बे सँघर्ष के कारण उत्पन्न हुईथी [३]।

(३) वे ताम्र मुद्राएँ, जिनके आकार-प्रकार पर कुशाण मुद्राओं का प्रभाव मिलताहै। इन मुद्राओं के लेखों की लिपि गुप्तब्राह्मीलिपि से अधिक प्राचीन नहीं है। तथा लेखों में जिस प्राकृतभाषा का प्रयोग हुआहै, वह सँस्कृत से प्रभावित है [४]।

इन मुद्राओं पर 'यौधेयगणस्य जयः' लेख अँकित है। कुछ मुद्राओं पर 'वि' या 'त्रि' भी समकालीन ब्राह्मीलिपि में अँकित मिलताहै। इन मुद्राओं का समय तीसरी-चौथी शती ईसवी (सँ० २५८ से ४५७ वि०) के बीच मानाजाताहै [५]।

'वि' और 'त्रि' वाली मुद्राओं मेंसे कुछ पर यौधेयगणस्य जयः लेख मिलताहै। कुछ ऐसी भी हैं, जिन पर 'वि' 'त्रि' के अतिरिक्त अन्य कोई लेख नहीं मिलता। ऐसी एक मुद्रा मेरे पास है, जो भैड़गांव में प्राप्तहुईथी [६]।

अल्तेकर का अनुमान है कि यौधेय, कुणिन्द और आर्जुनायन गणों ने विदेशी आक्रान्ताओं का विरोध करनेहेतु संघ बनाकर कुछ एक-जैसी मुद्राएँ प्रसारित कीथीं। उन मुद्राओं पर सँघ के द्वितीय और तृतीय सदस्य कुणिन्द और आर्जुनायनगण को व्यक्तकरनेहेतु वि (द्वितीय) तथा तृ (तृतीय) सँकेत अँकित किएथे [७]। इस अनुमान में कुछ सत्यता प्रतीत होतीहै। कुणिन्दभूमि के अन्तर्गत भैड़गांव में 'वि' अँकित मुद्रा मिलीहै। 'त्रि' अँकित मुद्राएँ भी उस निधि में थीं या नहीं, यह अज्ञात है।

कनिंघम ने यौधेयमुद्राओं से पता लगायाहै कि यह गण तीन जनों में विभक्त था [८]। ये जन कनिंघम के अनुसार जोहिया, बागड़ी और भाटी थे [९]।

१- ३- एलन – कैं० क्वाइन्स आव एनशिएट इंडिया, पृ० CLiii

४- ५- एलन – पूर्वोक्त, पृ० CL

६- डबराल – उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४३१

७- वाकाटक - गुप्त - एज, पृ० ३१

८- ९- कनिंघम – क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७६

इन मुद्राओं को यौधेयगण ने कुशाणसाम्राज्य से मुक्त होने पर प्रसारित कियाथा । उन्हींदिनों कुणिन्दनरेश छत्रेश्वर ने जिन मुद्राओं को प्रसारित कियाथा , वे भी कुशाणमुद्राओं के अनुकरण पर बनीहैं [१] । उनके लेख की लिपि तीसरे वर्ग की यौधेयमुद्राओं की ब्राह्मी लिपि के समकालीन है । तथा उन पर लिखागया प्राकृत लेख ' भागवत छत्रेश्वर महात्मनः' संस्कृत से प्रभावित है । [२] ।

कुशाणसत्ता के उत्पाटन के दिनों से यौधेय और कुणिन्द गणों के मध्य जो अपूर्व सहयोग आरम्भ हुआथा, उसका पता उनकी मुद्राओं से लगताहै [३] । इस युग में दोनों गणों ने सम्भवतः आपस में व्यापार की सुविधा का ध्यान रखकर एक - जैसी मुद्राएँ प्रसारित कीथीं ।

कुशाणमुद्राओं के अनुकरण पर बनी यौधेयमुद्राओं का समय मुद्राविदों ने तीसरी और आरम्भिक चौथी शती ईसवी (सँ० २५८ - ३८२ वि०) के बीच निर्धारित कियाहै[४] । इनदिनों यौधेयगण ने पुनः अपनी समृद्धि प्राप्त करलीथी [५] । यौधेयगण का स्वतन्त्र अस्तित्व समुद्रगुप्त की दिग्विजय के पश्चात् भी बनारहा [६] । किन्तु कुणिन्दगण का स्थान सं० ४०० वि० (343 ई०) के आस - पास कतिपय राजवँशों ने लेलिया । इसलिए इस तिथि के पश्चात् की कुणिन्दमुद्राएँ नहीं मिलतीं [७] । कुणिन्दगण में पाणिनि के समय से निरन्तर शासन की व्यवस्था नरेश द्वारा होतीथी । किन्तु इन नए राजवँशों का पूर्ववर्ती कुणिन्द - राजवँशों से क्या सम्बन्ध था, यह अज्ञात है ।

यौधेय और कुणिन्द गणों की परवर्ती मुद्राओं में मिलनेवाली आश्चर्यजनक समानताओं के कारण कुछ विद्वानों ने कतिपय कुणिन्दनरेशों की मुद्राओं की गणना यौधेय मुद्राओं में करडालीहै ।

वे कुणिन्दनरेशों को यौधेयनरेश मानतेहैं । और कुलिन्दजनपद की सीमा के अन्तर्गत बेहट, देहरादून और गढ़वाल में, जहां ऐसी मुद्राएँ मिलीहैं, वहां तक यौधेयगण के राज्य का प्रसार मानतेहैं ।

१- २- एलन — कैं० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० Ciii

३- 'This remarkable resemblance in coinage will, to some extent, support the hypothesis that Kunindas and Yaudheyas ware contemporary powers and worked hand in hand in regaining their independence towards the beginnings of the third century A. D. '
— वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २६

४- ५- ' The fine coins of class 6 (of the Yaudheyas), which reveal strong Kushan influence, show the tribe well-established again, in the third and early fourth centuries A. D. ' — एलन— पूर्वोक्त, पृ० CLiii

७- वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २६

६- द्र० प्रयागप्रशस्ति

साथ ही यह कल्पना भी चलपड़ीहै कि कुशाण - दासता से मुक्ति प्राप्त करलेने के कुछ समय पश्चात् कुणिन्दगण का यौधेयगण में विलय होगयाथा [१]। इसकी पुष्टि में दो तर्क दिएजातेहैं [२] :-

(१) कुणिन्दमुद्राएं लगभग सं० ३०७ वि० (250 ई०) के पश्चात् नहीं मिलतीं,

(२) समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति में, जहां यौधेयगण का नाम मिलताहै, वहां कुणिन्दगण का नाम नहीं मिलता।

यौधेयगण में कुणिन्दगण की विलय की कल्पना और उसकी पुष्टि में दिएगए पूर्वोक्त दोनों तर्कों का निराकरण यौधेय और कुणिन्दमुद्राओं की विशेषताओं, इन मुद्राओं की प्राप्ति के स्थानों एवं शिवभवानी और शीलवर्मन् के अभिलेखों से होजाताहै।

यौधेयमुद्राओं की विशेषताएं —

(१) यौधेयगण की मुद्राओं पर निम्न लेख मिलतेहैं :—

अ- योधेयना अथवा यौधेयनि [३] या यधेयन [४],

आ- यौधेय गणस्य जय [५] (जयः) [६] वि, त्रि,

इ- भागवतो स्वामिन ब्राह्मण यौधेय [७],

ई- भागवत स्वामिन ब्राह्मणदेवस्य [८],

उ- भागवत स्वमिनो ब्रह्मण्य (स्य) यौधेय [९],

ऊ- भागवत स्वमिनो ब्रह्मण्य देवस (स्य) कुमारस (स्य) [१०],

ए- ब्रह्मण्य देवस्य भागवतः [११],

ऐ- स्वामि भागवतः [१२],

ओ- भागवतः यधेयनः [१३],

औ- कुमारस (कुमारस्य) [१४],

अं- महाराजस (महाराजस्य) [१५],

अः- बहुधानेक [१६],

१-२- 'As compared to the Yaudheyas, the Kunindas were a small state and it seems that they eventually coalesced with them. For we do not find their coinage subsequent to c 250 A. D.; nor do they figure among the republics mentioned in the Allahabad inscription of Samudragupta.' — वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० २१

३,५- कनिघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७६ ४- वन्द्योपाध्याय — प्राचीन मुद्रा, पृ० १४१ ६- एलन—कै० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० CLi

७-८- कनिघम — पूर्वोक्त, पृ० ७८ ९- एलन — पूर्वोक्त, पृ० CXLIX

१०- एलन — पूर्वोक्त, पृ० CL ११-१४- वन्द्योपाध्याय, — पूर्वोक्त, पृ० १४१

१५- कनिघम—पूर्वोक्त, पृ० ७७ १६- जौ०यू०पी० हिस्टोरिकल सो० जुलाई, १९४०, पृ० ८५

क- भागवत स्वामिनो ब्राह्मण्य देवस्य कुमारस्य यौधेयगणस्य जयः [१],

ख- यौधेयानां बहुधानेक [२]।

मुद्राविदों की धारणा है कि यौधेयमुद्राओं पर मिलनेवाला महाराजस (स्य) विरुद किसी राजा - विशेष का नाम नहीं है [३]। इसीप्रकार यौधेयमुद्राओं पर मिलनेवाला कुमारस (कुमारस्य) विरुद किसी राजा-विशेष का द्योतक न होकर कार्तिकेय का द्योतक है, जिसका एक नाम कुमार भी है । बहुधान्यक यौधेयगण की मूलभूमि का नाम है।

(२) जिन यौधेयमुद्राओं पर पूर्वोक्त लेख मिलेहैं, उन पर निम्नांकित चित्रांकन मिलतेहैं :–

अ- वेष्ठनीयुक्त बोधिवृक्ष की ओर जाताहुआ नन्दी [४],

आ- बांये हाथ से कमर पकड़े, दहिने हाथ में शूल लिए खड़ा वीर, मध्य में मयूर [५],

इ- बांए हाथ से कमर पकड़े, दहिना हाथ को आगे की ओर बढ़ाकर खड़ा वीर [६],

ई- दहिने हाथ में शूल लिए खड़ा षडानन कार्तिकेय [७],

उ- दहिने हाथ में शूल लिए खड़ा षडानन कार्तिकेय, कन्धे के ऊपर रिक्त स्थान पर एक छोटा - सा पक्षी [८], (सम्भवतः मयूर),

ऊ- हस्ती तथा नन्दीपाद [९],

ए- अग्रभाग में पद्म पर खड़ा षडानन कार्तिकेय, पृष्टभाग में बोधिवृक्ष, सुमेरु, नन्दीपाद और षष्ठीदेवी - कार्तिकेयानी ।

ऐ- अग्रभाग में हाथ में शूल लेकर खड़ा षडानन कार्तिकेय, बांई ओर मयूर, पृष्टभाग में कुशाणसम्राटों की मुद्राओं पर अँकित मिहिर (सूर्यदेव) के समान देवमूर्ति [१०]।

यौधेयमुद्राओं के पूर्वोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि :–

(१) वे गणराज्य की मुद्राएँ हैं।

(२) यौधेयगण 'वीर' नाम से विख्यात था। जिसका उल्लेख रुद्रदामन ने भी कियाहै [१२]।

(३) यह गण अपनी मुद्राओं पर शूल लिए वीर का तथा देवताओं के सेनापति कार्तिकेय और षष्ठीदेवी - कार्तिकेयानी का चित्रांकन करताथा।

(४) इस गण की मुद्राओं पर किसी राजा का नाम नहीं मिलता [१३]।

१- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो० जुलाई १९४०, पृ० ८५

२- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो० जुलाई १९४०, पृ० ८३

३- 'The word Maharajas in the Brahmi Srcipt on the Yaudheya coins is not the name of a king.'

—— एलन -- कै० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० CXLVii

४- ५- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७७

६-८- कनिंघम—पूर्वोक्त, पृ० ७८

९- वासुदेव उपाध्याय — भारतीय सिक्के, पृ० ८१

१०- वन्द्योपाध्याय —प्राचीन मुद्रा, पृ० १४९

११- वन्द्योपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १५०

१२- ' वीर-शब्द-जा (तो) त्सेका विधेयानां यौधेयानां...' रुद्रदामन का गिरिनार-शिलालेख

१३- एलन — पूर्वोक्त, CXLVii

कुणिन्दमुद्राओं की विशेषताएं—

कुणिन्दमुद्राओं पर निम्न लेख मिलतेहैं :-

(१) कुणिन्दमुद्राओं पर निम्न लेख मिलतेहैं :-

अ- कादस (कादस्य) [१],

आ- कुणिन्द [२],

कुणिन्दनरेश अमोघभूति के दो पूर्वजों की मुद्राओं के निम्न लेख :-

इ- अगरजस (अग्रराजस्य)

ई- राञ बलभूतिस (राज्ञः बलभूतिस्य) [३]।

उ- रञ कुणिंदस अमोघभूतिस महारजस [४],

ऊ- शिवदतस (शिवदत्तस्य) [५],

ए- हरि (द) त स (हरिदत्तस्य) [६],

ऐ- शिवपलितस (शिवपालितस्य) [७],

ओ- म ग भतस (मार्गभूतिस्य ?) [८],

औ- भगवतो छत्रेश्वर महात्मन [९] या भागवत छत्रेश्वर महात्मनः [१०],

अं- भानुवर्मन [११] या रज्ञां भानुव [१२] या भानुवस्य [१३] या भानुव [१४],

अः- रावण [१५] या रावणस्य [१६] या वणस्य [१७]।

(२) कुणिन्दमुद्राओं पर निम्न चित्रांकन मिलतेहैं :—

अ- अग्रभाग में बौद्ध वेष्ठनी युक्त विशाल बोधिवृक्ष, मन्दिर, त्रिरत्न; पृष्टभाग में प्रभासित सूर्य [१८],

आ- अग्रभाग में मृग के सन्मुख पुष्प लिए खड़ी नारी (शकुन्तला), चैत्य; पृष्टभाग में चैत्य, त्रिरत्न, धर्मचक्र, बौद्धवेष्ठनी युक्त बोधिवृक्ष तथा स्वस्तिक [१९],

इ- अग्रभाग में दहिने हाथ में त्रिशूल और परशु लेकर खड़े शिव, जिनके बाएं बाजू से व्याघ्रचर्म लटकरहाहै ; पृष्टभाग में मृग, नाग, वृक्ष, नक्षत्र, पात्र और चैत्य [२०],

ई- बलभूति की मुद्रा – अग्रभाग में शिर तक दहिना हाथ उठाएहुए पुरुष की आकृति; पृष्टभाग अस्पष्ट [२१],

---

१- २- कनिंघम – क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७०

३- कनिंघम – क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ८७

४- कनिंघम—पूर्वोक्त, पृ० ७२

५- ८- एलन – कै० क्वाइन्स आव एनशिएंड इंडिया, पृ० Lxxxii

९- कनिंघम – पूर्वोक्त, पृ० ७२

१०- नीलकांत शास्त्री – कोम्प्रेहेन्सिव हिस्टरी आव इंडिया, जि० २, पृ० १३७

११- कनिंघम – आर्केलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० १४, पृ० १४४

१२-१४- जौ० न्यूमिस्मेटिक सो० जि० १८, भाग १, १९५६, पृ० ४७

१५-१७- जौ० न्यूमिस्मेटिक सो० जि० १८, भाग १; १९५६, पृ० ४७ - ४८

१८-२०- कनिंघम – पूर्वोक्त, पृ० ७१-७२

२१- कनिंघम—पूर्वोक्त, पृ० ८७

उ- अलमोड़ा से प्राप्त मुद्राओं पर–अग्रभाग में वेष्ठनीयुक्त वृक्ष के निकट जाताहुआ नन्दी, नाग और देव या मानवमूर्ति; पृष्टभाग में नन्दीपाद और इन्द्रयष्टि [१]। रैप्सन ने शिवदत्त की मुद्रा पर वृक्ष और मृग अँकित पाएहैं [२]।

ऊ- भानुवर्मा की मुद्रा–अग्रभाग में नाग; पृष्टभाग अस्पष्ट, केवल त्रिशूल दिखाई देताहै [३]। गढ़वाल में मिली भानु की मुद्रा पर षडानन कार्तिकेय तथा त्रिशूलधारी शिव [४]।

ए- रावण की मुद्रा–अग्रभाग में त्रिशूलधारी शिव; पृष्टभाग में मेरु पर नन्दीपाद तथा अन्य चिह्न [५]।

अस्तु कुणिन्दमुद्राओं की विशेषताएँ निम्नांकित हैं :–

(१) कुणिन्दगण की केवल आरम्भिक मुद्राओं पर गणसूचक कुणिन्द नाम मिलताहै।

(२) इस गण की शेष समस्त मुद्राओं पर नरेशों के नाम मिलतेहैं। विक्रम से पांच शती पूर्व पाणिनि ने भी कालकूट को एकराज बतलायाहै।

इसके विपरीत यौधेयगण की किसी मुद्रा पर किसी नरेश का नाम नहीं मिलता। केवल गण का, गण के इष्टदेव ब्रह्मण्यदेव या कुमार का, या गण की मूलभूमि बहुधानेक (बहुधान्यक) का उल्लेख मिलताहै।

इसलिए भानु और रावण, जिन्होंने अपनी मुद्राओं पर अपना नाम अँकित कियाहै तथा जिनकी मुद्राएँ देहरादून और गढ़वाल में मिलीहैं, ऐसे कुणिन्दनरेश थे, जिन्होंने अपनी मुद्राओं पर यौधेयमुद्राओं के कतिपय चिह्न, मुख्यतः 'वीर' के चित्रांकन अँकित किएथे।

चित्राँकनों की अदलाबदली — मुद्राविदों की धारणा है कि प्राचीनकाल में जब कोई राजवँश किसी दूसरे राजवँश के शासितप्रदेश पर अधिकार करलेताथा तो विजितप्रदेश में पहले से प्रयुक्त मुद्राओं के अनुकरण पर अपनी मुद्राओं का निर्माण करताथा। कुणिन्द और यौधेयमुद्राओं से विदित होताहै कि दोनों गणों ने एक ही युग में एक - दूसरे की मुद्राओं का प्रचुर अनुकरण कियाथा। इसलिए इस अनुकरण का कारण उनके द्वारा एक - दूसरे के प्रदेश को जीतलेना नहीं मानाजासकता।

विक्रमपूर्व पहली शती से विक्रम की तीसरी शती तक पड़ोसी जनपदों में एक - दूसरे की मुद्राओं का अनुकरण करने की प्रवृत्ति थी। उदाहरण केलिए औदुम्बरगण की रजतमुद्राएँ कुणिन्दनरेश अमोघभूति की मुद्राओं से बहुतअधिक मिलतीजुलतीहैं [६]।

१- एलन -- कै॰ क्वाइन्स आव एनशिएंट इडिया, पृ॰ Lxxxi

२- कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डिया, पृ॰ ४८६ ३- कनिंघम – क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ॰ ७८

४- ५- जौ॰ न्यूमिसमेटिक सोसायटी, १९५६, जि॰ १८, भाग १, पृ॰ ४७

६- 'The resemblance of the silver coins of Audumbaras and those of the Kuninda Amoghabhuti is remarkable in many ways.'

– एलन – पूर्वोक्त, पृ॰ Lxxxvi

कुणिन्दनरेश छत्रेश्वर की मुद्राओं पर भागवत विरुद और त्रिशूल तथा युद्धपरशु लिए खड़े शिव का चित्रांकन है। औदुम्बरनरेश महादेव की मुद्राओं पर भागवत विरुद है। औदुम्बरनरेश धरघोष की मुद्राओं पर त्रिशूल और युद्धपरशुधारी शिव का चित्रांकन हैं [१]।

एलन ने यौधेयगण की जिन परवर्ती मुद्राओं को तीसरे वर्ग में रखाहै, उनमें और कुणिन्दमुद्राओं में अत्यधिक समानता है। ब्रिटिश सँग्रहालय में यौधेयगण की एक ऐसी रजतमुद्रा हैं, जो कुणिन्द - रजतमुद्रा से बिलकुल मिलतीजुलतीहै। इस पर अग्रभाग में षडानन कार्तिकेय का चित्रांकन है। किन्तु पृष्टभाग में कुणिन्दमुद्राओं पर मिलनेवाले सभी चिह्न – सुमेरु पर नन्दीपाद, सवेदी वृक्ष, सरिता (गङ्गा) का तथा कमल के सन्मुख खड़ी लक्ष्मी का चित्रांकन, ठीक उसीप्रकार है, जिसप्रकार कुणिन्दमुद्राओं पर मिलताहै। इस मुद्रा पर मिलनेवाले ब्राह्मीलेख – 'भागवत स्वमिनो ब्रह्मण्य (स्य) यौधेय' के कारण ही इसकी गणना योधेयमुद्राओं में कीजातीहै [२]।

भैड़गांव (गढ़वाल) में प्राप्त ताम्रमुद्राओं पर अग्रभाग में षडानन कार्तिकेय या त्रिशूलधारी खड़े शिव का चित्रांकन है। पृष्टभाग में मृग, लक्ष्मी (शकुन्तला) तथा कुणिन्दमुद्राओं पर मिलनेवाले अन्य चित्रांकन हैं [३]।

यौधेयगण और कुणिन्दगण की इन परवर्ती ताम्रमुद्राओं में अनेक समानताएँ मिलतीहैं :—

(१) दोनों गणों की मुद्राएँ रचना एवँ शैली की दृष्टि से भद्दी हैं।
(२) उनके आकार - प्रकार में समानता है।
(३) उनके लेखों की भाषा प्राकृत और सँस्कृत की मध्यवर्ती है।
(४) उनके लेख प्राय: अधूरे हैं।
(५) दोनों गणों की ऐसी ताम्रमुद्राएँ सैकड़ों की सँख्या में मिलीहैं [४]।

ऐसा प्रतीत होताहै कि उस युग में, जब यौधेय और कुणिन्द आदि गण तथा एकराज जनपद कुशाणदासता का उच्छेदन करके अपनी स्वतन्त्रता स्थापित कररहेथे, त्रिशूल एवँ युद्धपरशुधारी शिव का मुद्राओं पर चित्रांकन बहुप्रिय बनगयाथा। कुशाणनरेश विम, कनिष्क तथा वासुदेव अपनी मुद्राओं पर ऐसे चित्रांकन करचुकेथे।

विक्रमपूर्व पांचवीं - चौथी शती तक शैवभागवत सम्प्रदाय लोकप्रिय बनचुकाथा। शैवभागवत मस्त होकर हाथ में अय: शूल (लोहे का शूल) लिएचलतेथे। कुशाणकाल तक विशाख आदि नामों से प्रसिद्ध देवसेनापति कार्तिकेय बड़े लोकप्रिय बनगएथे। सबसे प्रथम कुशाणनरेशों ने इन देवताओं का चित्रांकन अपनी मुद्राओं पर करना आरम्भ कियाथा। यौधेयगण अपने को देवसेनापति (सु) ब्रह्मण्य कार्तिकेय के आदेशानुसार शत्रुओं से

१- कनिंघम – क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ६८
२- एलन—कै० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० CXLiX
३- जौ० न्यूमिसमेटिक सो० जि० १८, भाग १; १९५६, पृ० ४७
४- एलन – पूर्वोक्त पृ० CL

भिड़नेवाला वीर समझताथा। फलतः यौधेय अपनी मुद्राओं पर षडानन - कार्तिकेय के, कार्तिकेय और षष्ठी - कार्तिकेयानी के तथा कार्तिकेय और शिव के चित्रांकन बनानेलगे। इनकी लोकप्रियता के कारण कुणिन्दनरेशों ने भी ऐसे चित्रांकन अपनी मुद्राओं पर आरम्भ करदिए।

अस्तु जिन मुद्राओं पर वीर, षडानन, षष्ठी - कार्तिकेयानी, शूल और परशुधारी शिव के साथ यौधेयगण या उनके इष्टदेव या मूलभूमि - सूचक विरुद मिलतेहैं, वे निश्चय ही यौधेयमुद्राएं हैं। किन्तु कुणिन्दजनपद में प्राप्त जिन मुद्राओं पर ऐसे विरुद नहीं मिलते, वरन् किसी राजा का नाम मिलताहै, जिन्हें कुणिन्दमुद्रा मानाजासकताहै। छत्रश्वर को कुणिन्दनरेश मानाजाताहै। कुणिन्दभूमि बेहट, देहरादून और गढ़वाल में प्राप्त भानु और रावण की मुद्राओं पर नरेशों के नाम मिलनेसे उन्हें भी कुणिन्दनरेश मानसकतेहै।

कार्तिकेय की जन्मभूमि—कुणिन्दनरेश भी यौधेयों के समान कार्तिकेय के उपासक थे। जब दक्ष, शिव और उमा - हैमवती का सम्बन्ध उत्तराखण्ड में कनखल और कैलास - गन्धमादन से जोड़ाजानेलगा तो कार्तिकेय और गणेश की जन्मभूमि उत्तराखण्ड में मानीजानेलगी। क्रौंचरंध्र या माणाद्वार को विदीर्ण या पार करने का श्रेय कार्तिकेय [1] और परशुराम [2] को दियाजाताहै। इसी क्रौंचद्वार के पदतल में, कार्तिकेयपुर बसाथा, जिसका अष्टाध्यायी में कत्रि, प्रयागप्रशस्ति में कर्तृपुर तथा पौरव और कत्यूरीनरेशों के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर के नाम से उल्लेख है।

प्रयागप्रशस्ति का साक्ष्य— यौधेयगण का गणराज्य प्रजातन्त्र था। इस गण का कोई राजा न था! समुद्रगुप्त के राज्यकाल में भी उसका गणराज्य के रूप में अस्तित्व था। प्रयागप्रशस्ति में मालव, अर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक और खरपरिक, इन नौ गणराज्यों का पृथक उल्लेख है। इनसे पहले पांच राजशासित जनपदों के नाम आतेहैं, जिनमें समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल के पश्चात् कर्तृपुर के प्रत्यन्तनृपतियों का उल्लेख है। यह कर्तृपुर निश्चय ही कुलिन्दजनपद है, जिस पर पाणिनि के समय से ही एकराज - शासन था, तथा जिसके कई नरेशों की मुद्राएं अबतक प्राप्त होचुकीहैं। कर्तृपुरनृपति और योधेयगण का पृथक उल्लेख होनेसे विदित होताहै कि समुद्रगुप्त के राज्यकाल में दोनों पृथक जनपद थे। एक राजशासित था और दूसरा गणराज्य।

अश्वमेधों का साक्ष्य— देहरादूनजिले में प्राप्त अभिलखों से, जिनका आगे उल्लेख कियाजाएगा. विदित होताहै कि उस प्रदेश में शिवभवानी [3] और शीलवर्मन् [4] नामक दो नृपतियों ने अश्वमेध किएथे। लिपि की दृष्टि से इन अभिलेखों को तीसरी

१- वनपर्व, २२५।३३; शल्यपर्व, ४६।८३-८४

२- 'हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्' —पूर्वमेघ, श्लोक, ६०

३- नवभारत टाइम्स, दिनांक, १ फरवरी ६५

४- एनशिएंट इंडिया, जि० ६, पृ० १४१

शती ईसवी का मानागयाहै [१]। इन दोनों अश्वमेधकर्ताओं को समुदगुप्त से पूर्ववर्ती होनाचाहिए। प्रचण्ड प्रतापी समुद्रगुप्त के राज्यकाल में उसकी राज्यसीमा से सटे छोटे - से पर्वतीय जनपद के स्वामी को अश्वमेध करने का साहस न होसकताथा।

शिवभवानी और शीलवर्मन् के अभिलेखों से विदित होताहै कि समुद्रगुप्त के समय से पूर्व, कम से कम यमुना-गङ्गा-उपत्यका में इन अश्वमेधकर्त्ता नरेशों का शासन था, गणराज्य न था। अस्तु यह प्रदेश यौधेयगण के अधीन न होकर एक पृथक जनपद था, जिसे उक्त प्रशस्ति में कर्तृपुर कहागयाहै।

मुद्रा-प्राप्ति-स्थान— कुणिन्दमुद्राएँ सतलुज से कालीगङ्गा की उपत्यका तक प्राप्त हुईहैं। इससे विद्वानों की धारणा है कि कुणिन्दभूमि वर्तमान हिमाचलप्रदेश के पूर्वी भाग से लेकर गढ़वाल - कुमाऊँ तक फैलीथी। अम्बाला, सहारनपुर और बिजनौर जिलों की भाबर की सँकरी पट्टी भी उसके अन्तर्गत थी। कुलिन्दजनपद की दक्षिर्णासीमा पर सतलुज से यमुना तक यौधेयगण की भूमि थी।

कुणिन्दमुद्राएँ यौधेयगण की भूमि के अन्दर, लुधियाना के पास सुनेत [२] और करनाल में [३] भी प्राप्त हुईहैं। इसीप्रकार यौधेयमुद्राएँ, जिन पर यौधेयना (यौधेयनि) [४] तथा महाराजस लेख हैं [५], बड़ी सँख्या में कुणिन्दमुद्राओं के साथ कुणिन्दभूमि के अन्दर बेहट (सहारनपुर) में प्राप्त हुईहैं [६]।

वे मुद्राएँ, जिन पर वीर, षडानन कार्तिकेय, षष्टी - कार्तिकेयानी, त्रिशूल एवँ युद्धपरशुधारी शिव का चित्रांकन है, किन्तु यौधेयगण या उसके इष्टदेव का नाम न होकर केवल राजा का नाम है, केवल बेहट, स्रुघ्न और देहरादून में, तथा दोगडा से ८ मील दूर भैड़गांव नामक स्थान में प्राप्त हुईहैं।

देहरादून में प्राप्त मुद्राएं— देहरादून में सं० १९९३ वि० (1956 ई०) में १६४ ताम्रमुद्राएँ प्राप्त हुईथीं, जिन पर षडानन कार्तिकेय, षष्टी-कार्तिकेयानी, कमल पर खड़ी देवी, तथा त्रिशूलधारी शिव के चित्रांकन थे। उन पर कुणिन्दमुद्राओं के मृग तथा हस्ती, नन्दी, मयूर, कुक्कुट, गर्दभ, अश्व, व्याघ्र, सूर्य, चन्द्र, शँख, स्वस्तिक, त्रिशूल, कमल, कमण्डलु, उज्जैन - सँकेत, वेष्ठनीयुक्त वृक्ष, यज्ञयूप, मन्दिर, चैत्य, भवन, नन्दीपाद तथा सरिता (गङ्गा) भी अँकित थे [७]।

गढ़वाल में प्राप्त मुद्राएं——लगभग बीस वर्ष पहले, भैड़गांव में एक मृतिकापात्र में रखीहुई लगभग पांच - छै सौ ताम्रमुद्राएँ तीन बालकों को खेलते समय एक चट्टान की ओट में बनी गुफा में प्राप्त हुईथीं। मुद्राओं को घर लेजाकर तीनों ने बांटलिया।

१- एनशिएंट इंडिया, जि० ६, पृ० १४१

२- ३- एलन — कै० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० Ciii

४- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७७

५- ७- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो० जुलाई १९५०, पृ० ८२

भैड़गांव का एक युवक रामसिंह कोर्ट ग्राब वार्ड्स कार्यालय, इलाहाबाद में चपरासी था। उसने इनमेंसे कुछ मुद्राएँ लेजाकर कोर्ट ग्राब वार्ड्स के स्पेशल मैनेजर श्री जिनेश्वर दास को दी। १९५६ में इलाहाबाद सँग्रहालय के क्यूरेटर डाक्टर सतीशचन्द्र काला को जिनेश्वरदास के मुद्रासँग्रह में उन मुद्राग्रों को देखने का ग्रवसर मिला। डा० काला ने इन मुद्राग्रों का विस्तृत वर्णन जौ० न्यूमिसमेटिक सो० जि० १८, भाग १, १९५६ में प्रकाशित कियाहै।

डा० काला को इन मुद्राग्रों मेंसे केवल ११९ ताम्रमुद्राएँ देखने को मिलींथीं। जिनमें राजा भानु की २५ तथा रावण की १५ मुद्राएँ थीं। ५६ मुद्राग्रों पर षडानन - कार्तिकेय का तथा २१ मुद्राग्रों पर ग्रग्रभाग में त्रिशूलधारी शिव का, एवँ पृष्टभाग में सुमेरु पर नन्दीपाद ग्रौर ग्रन्य ग्रँकन थे [1]। तथा २ मुद्राग्रों के ग्रँकन ग्रस्पष्ट थे।

इन मुद्राग्रों पर कार्तिकेय ग्रादि के चित्रांकन के कारण डा० काला ने इन्हें यौधेय-मुद्राएँ मानाहै [2]। किन्तु इन्हें कुणिन्दमुद्राएँ मानना ग्रधिक संगत है। डा० काला ने स्वयँ स्वीकार कियाहै कि ग्राकार - प्रकार में ये मुद्राएँ कुणिन्दमुद्राग्रों के समान थीं [3]। कुछ मुद्राग्रों पर कुणिन्दमुद्राग्रों के समान मृग का चित्रांकन तथा कुछ पर कुणिन्दमुद्राग्रों पर मिलने वाले ग्रन्य ग्रँकन थे। उन पर कोई लेख नहीं दिखाईदिया [4]।

भैड़गांव में प्राप्त ताम्रमुद्राग्रों मेंसे एक मुद्रा मुझे भी एक छात्र के द्वारा कई वर्ष पूर्व मिलीथी। जिसका चित्र मैंने उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १ में प्रकाशित कियाहै। डा० काला का लेख पढ़कर पिछले वर्ष जब मैं शेष मुद्राग्रों को ढूँढने भैड़गांव पहुँचा, तो पताचला कि भूत - प्रेत के भय से उन मुद्राग्रों को कई वर्ष पूर्व भेल में फेंकदियागयाथा। इसप्रकार भूत - प्रेत की बाधा ने इस जनपद के नरेशों को सतरह शतियों के पश्चात् भी न छोड़ा।

डा० काला को तथा मुझे मिली मुद्राग्रों मेंसे किसी पर भी यौधेयगण, या उससे सम्बन्धित लेख नहीं हैं। वरन् भानु, रावण ग्रौर वि ग्रँकित हैं। इन पर भी वीर, षडानन-कार्तिकेय, षष्ठी - कार्तिकेयानी ग्रौर शिव के चित्रांकन हैं।

निष्कर्ष—

(१) देहरादून तथा गढ़वाल में प्राप्त मुद्राग्रों के जो विवरण ग्रबतक प्रकाशित हुएहैं, उनसे विदित होताहै कि इन स्थानों पर मिली मुद्राग्रों पर यौधेय तथा कुणिन्द मुद्राग्रों पर मिलनेवाले चित्रांकन हैं, ग्रौर लेखों में नरेशों के नाम हैं। उन पर यौधेयगण का, या ब्रह्मण्यदेव कुमार का या बहुधान्यक का उल्लेख नहीं है, जिससे उनको निश्चयपूर्वक यौधेयमुद्राएँ कहाजासके।

१- जौ० न्यूमिसमेटिक सो० १९५६, जि० १८, भाग १, पृ० ४७

२- ४- जौ० न्यूमिसमेटिक सोसायटी, १९५६, जि० १८, भाग १, पृ० ४७

(२) यौधेय और कुणिन्द, दोनों गणों का आपस में पूर्ण सहयोग रहा। उन्होंने एक दूसरे द्वारा शासित भूमि पर अधिकार जमाने का प्रयत्न नहीं किया।

(३) उन्होंने एक - दूसरे की मुद्राओं का अनुकरण किया। वे मुद्राएँ जिन पर शूलधारी वीर, षडानन - कार्तिकेय, षष्टी - कार्तिकेयानी तथा त्रिशूल - युद्धपरशुधारी शिव के साथ यौधेयगण-सूचक लेख न होकर राजाओं के नाम हैं, कुणिन्दराजाओं की मुद्राएँ हैं। सुनेत, करनाल तथा बेहट, में, जहां कुणिन्द और यौधेयमुद्राएँ एकसाथ मिलीहैं, वहां वे व्यापार के कारण पहुँचीहैं।

इस तथ्य की ओर डाक्टर डी० सी० सरकार का भी ध्यान गयाहै। उन्होंने लिखाहै [१] — कुणिन्द और यौधेयगण की उन मुद्राओं की शैली और आकार - प्रकार में पूर्ण समानता है, जिनमें निम्न चित्रांकन मिलतेहैं :–

अ- षडानन (छै शिरवाला) कार्तिकेय,

आ- अग्रभाग में स्कन्द तथा पृष्टभाग में छै शिरवाली देवी, जिसे कार्तिकेय की पत्नी षष्ठी या देवसेना मानाजाताहै।

(४) कुशाणों द्वारा उत्पाटित होने पर यौधेयगण द्वारा देहरादून - गढ़वाल में शरण लेने की डा० काला की कल्पना अमान्य है। यौधेयगण की स्थापना यौधेयजन ने कीथी। जिस जन का विस्तार उत्तर में सतलुज और यमुना के द्वाव में शिवालिक की तलहटी से लेकर दक्षिण में वर्तमान राजस्थान के सीमान्त तक था, जिसकी मुद्राओं की निधियां लुधियाना, सनेत, दिपालपुर, सतगढ़, अनुधान, खराड़े, मुलतान, भटनेर, अबोहर, सिरसा, हांसी, पानीपत, सोनपत, करनाल, कुरुक्षेत्र और दिल्ली तक मिलीहैं, जिसके अभिलेख विजयगढ (भरतपुर राज्य) तक प्राप्त हुएहैं, वह जन दो - चार सौ शस्त्रोपजीवियों का गिरोह नहीं था, जो रुद्रदामन और कुशाणों के आतंक से सारे पञ्जाब से भागकर उत्तराखण्ड के भाबर के वनों और पर्वत - कन्दराओं में जा - छिपता।

इतने बड़े प्रदेश पर फैले जन की जनसँख्या कई लाख रहीहोगी। उसके लिए बड़ी सँख्या में अपनी भूमि को छोड़कर चलाजाना सम्भव न था। इससे अनुमान लगताहै कि शक्तिशाली कुशाणसाम्राज्य में, यौधेय अपनी भूमि पर कुशाणों की प्रजा के रूप में उसी-प्रकार बसे रहेहोंगे जिसप्रकार वे मौर्य तथा यवनराज्यकाल में रहेथे।

(५) छत्रेश्वर, भानु और रावण कुणिन्दनरेश थे, जो कुशाण-अवसान के पश्चात् हुएथे।

---

१. 'This class of coins (of the Yaudheyas), which is connected closely in style and type with the coinage of the Kunindas, bears the representation of the six headed god Skanda. On some of the coins the god Skanda is found on the obverse, while a goddess with six heads is represented on the reverse. This deity has been identified, with Shashthi or Devasena, wife of Skanda.'

— एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६७

छत्रेश्वर

छत्रेश्वर, भानु और रावण की सूचना केवल उनकी मुद्राओं से प्राप्त होतीहै। अभीतक इन नरेशों का न कोई अभिलेख मिलाहै और न किसी साहित्यिक उल्लेख से उनके अस्तित्व की पुष्टि होतीहै।

छत्रेश्वर आदि कुणिन्दनरेशों का अमोघभूति आदि स्रुघ्न के कुणिन्दनरेशों के वँश से या अलमोड़ा के कुणिन्दवँश से क्या सम्बन्ध था, यह अविदित है। यह कहना कठिन है कि शक - कुशाण - आधिपत्य के दिनों में कुणिन्दराजवँश की क्या स्थिति थी।

छत्रेश्वर इन नरेशों में सबसे पूर्ववर्ती था। उसकी मुद्राओं का निर्माण कुशाण-नरेशों की ताम्रमुद्राओं के अनुकरण पर हुआथा [१]। सम्भवतः वासुदेव कुशाण या उसके वँशज से अपनी भूमि को स्वतन्त्र करने का श्रेय उसीको था।

मुद्रालेख—छत्रेश्वर की मुद्रा पर शिव का चित्रांकन है [२]। शिवजी दहिने हाथ पर त्रिशूल और युद्धपरशु लिए खड़े हैं। उनका बांया हाथ उनकी कमर पर है। पृष्टभाग में दांयीं ओर मृग खड़ाहै। दहिनी ओर सवेदी वृक्ष है। पास ही चैत्य और त्रिभुजाकार चिह्न के नीचे नाग है। एक चिह्न उसके नीचे, तथा एक अस्पष्ट चिह्न मृग के ऊपर की ओर बनाहै [३]।

मुद्रा के ब्राह्मीलेख को कुछ विद्वानों ने 'भगवतः चतरेश्वर महात्मनः' पढ़ाहै [४]। लेख के इस पाठ के आधार पर उनका अनुमान है :—

(१) परवर्ती कुणिन्दनरेशों की राजधानी का नाम सम्भवतः चत्र या छत्र था, जो अहिच्छत्रा या छत्रवती - जैसे नाम का लघुरूप था [५]।

(२) चतरेश्वर का अर्थ है, चत्र या छत्र का अधिपति देवता शिव [६]। ऐसा विदित होताहै कि कुणिन्दगण के कुलदेवता शिवजी थे, जिनके नाम पर उस गण ने अपनी मुद्राएँ प्रसारित कीथीं [७]।

कनिंघम [८], राखालदास वन्द्योपाध्याय [९] और एलन [१०] आदि विद्वान् इस कल्पना

१, ६- 'Another class of the Kuninda coins of the module of the Kushan coppermoney bears the figure of shiva and the Brahmi legend भगवतः चतरेश्वर महात्मनः, shiva in the form of चतरेश्वर (sic छत्रेश्वर ?) lord of चत्र or छत्र, probably Kuninda capital or a contraction of its name, (cf. अहिच्छत्रा and छत्रवती) appears to have been the tutelary deity of the tribe in whose name the tribal coins were issued.'

— एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६१

३- स्मिथ — कै० क्वाइन्स इन इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता, जि० १, पृ० १७०

८- कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७२

९- एलन — कै० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० Ciii

१०- वन्द्योपाध्याय—प्राचीन मुद्रा, पृ० १४२

से सहमत नहीं हैं। वे मुद्रा के लेख को 'भगवत: छत्रेश्वर महात्मन:' पढ़तेहैं। उनके अनुसार छत्रेश्वर देववाचक शब्द नहीं है, वरन् कुणिन्दनरेश का नाम है। कतिपय औदुम्बरमुद्राओं पर 'भगवत महादेवस राजराज' लेख मिलताहै। विद्वानों की धारणा है कि इस मुद्रालेख में महादेव शब्द देववाचक नहीं है, वरन् औदुम्बरनरेश का नाम है [१]।

शासित प्रदेश— छत्रेश्वर की मुद्राएँ मुख्यत: यमुना के पश्चिम की ओर मिलीहैं [२]। इससे विदित होताहै कि उसका शासितप्रदेश मुख्यत: वर्तमान हिमाचलप्रदेश के पूर्वी भाग और उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग यामुनप्रदेश तक सीमित था। अहिच्छत्रा कुणिन्दजनपद की पूर्वी सीमा से पर्याप्त दूर है। अभी तक कोई ऐसे प्रमाण नहीं मिलेहैं, जिनसे अहिच्छत्रा पर कुणिन्दनरेशों के अधिकार की पुष्टि होसके।

प्रमाणितसामग्री के अभाव में यह कहना कठिन है कि छत्रेश्वर के राज्य की पूर्वी और पश्चिमी सीमाएँ कहां तक पहुँचीथीं। कुशाणसाम्राज्य के अवसान पर कुलिन्दजनपद के धुर दक्षिण - पूर्वी भाग पर 'मित्र' वंशी नरेशों का अधिकार होगयाथा। गोविषाणदुर्ग के इष्टकालेखों से विदित होताहै कि या तो गोविषाण में उनकी राजधानी थी, अथवा गोविषाणदुर्ग उनके पश्चिमी सीमान्त का प्रहरी था।

राज्यावधि— छत्रेश्वर ने अपनी मुद्राएँ कुशाणनरेशों की ताम्रमुद्राओं के अनुकरण ढालीथीं [३] और उन पर केवल ब्राह्मीलिपि का प्रयोग कियाथा। इसलिए छत्रेश्वर की राज्यावधि कुशाणसत्ता उठने के तुरन्तपश्चात् होनीचाहिए। भानु की मुद्राओं पर भी कुशाणप्रभाव बतायाजाताहै [४]। किन्तु रावण की मुद्राओं के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहाजाता।

एलन ने लिपि के आधार पर छत्रेश्वर की मुद्राओं को दूसरी शती ईसवी के अन्तिम वर्षों या तीसरी शती ईसवी की मानाहै [६]। डी० सी० सरकार के अनुसार उनका समय तीसरी शती ईसवी होसकताहै [७]।

वासुदेव प्रथम के पश्चात् भी किसी परवर्ती कुशाणनरेश के समय एधुराया अधुजा (सघुजा) का अधिकार कुलिन्दजनपद के **पूर्वी भाग गोविषाण** पर बनारहा [८]। मुद्राओं से विदित होताहै कि वासुदेव प्रथम के तुरन्तपश्चात् पूर्वी पँचनद से कुशाणसत्ता समाप्त होगई, और यौधेयादिगण स्वतन्त्र होगए। किन्तु पांचाल के कुछ भाग पर किसी कुशाणवँशज या उसके भूतपूर्व सामन्त का अधिकार स्थानीय शासक के रूप में कुछ काल तक बनारहा।

यदि इस कल्पना में कुछ सत्यता हो तो सम्भवत: वासुदेव प्रथम से अपनी भूमि को

१- कनिंघम — क्वाइन्स ग्राव एनशिएंट इंडिया, पृ० ६८
२- कनिंघम—पूर्वोक्त, पृ० ६६
३- एज ग्राव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६१
४- स्मिथ — कै० क्वाइन्स इन इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता, जि० १, पृ० १६५
५- एलन — कै० क्वाइन्स ग्राव एनशिएंट इंडिया, पृ० Ciii
६- एज ग्राव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १६१, टि० १
७- जौ० न्यूमिसमेटिक सो० जि० १५, जून १९५३, पृ० १८०

स्वतन्त्रकरने का श्रेय छत्रेश्वर को था। अस्तु उसका राज्यारम्भ सँ० ३०० से ३०७ वि० (243 से 250 ई०) के बीच किसी समय अस्थायीरूप से मानाजासकताहै।

अज्ञातनामा नरेश

भैड़गांव - निधि में अनेक ऐसी मुद्राएँ मिलीहैं, जिनपर कोई मुद्रालेख नहीं दिखाई देता। उनका विवरण नीचे दियाजाताहै :–

(१) भैड़गाव से मुझे प्राप्त मुद्रा पर अग्रभाग में दहिने हाथ में शूल लिए षडानन कार्तिकेय खड़ाहै, उसका बांयां हाथ उसकी कमर पर है। पृष्टभाग में तीन शिर वाली देवी दहिना हाथ ऊपर उठाए तथा बांयां हाथ कमर पर लगाए खड़ीहै। परिधि को बिन्दुओं से सज्जित कियागयाहै। दहिनी ओर ब्रह्मी में 'वि' अँकित है।

(२) वे मुद्राएँ, जिनपर पूर्ववर्ती कुणिन्दमुद्राओं पर मिलनेवाले मृग का चित्रण है। अमोघभूति की मुद्राओं के समान इन मुद्राओं पर भी मृग के चित्रांकन में तनिक परिवर्तन करके विविधता लाने का प्रयत्न कियागयाहै। डा० काला द्वारा प्रकाशित चित्रों मेंसे तीन मुद्राओं पर मृग का मुख दहिनी ओर है और पांच मुद्राओं पर बांयीं ओर है।

(३) वे मुद्राएँ, जिनपर पूर्ववर्ती कुणिन्दमुद्राओं पर मिलनेवाले अन्य चित्रांकन हैं, तथा जिनमें इसीप्रकार तनिक परिवर्तन करके विविधता लाईगईहै।

ये मुद्राएँ जिन नरेशों ने प्रसारित कीथीं, उनके नाम अज्ञात हैं।

भानु

वंशानुगत सम्बन्ध—प्रमाणों के अभाव में यह कहना कठिन है कि भानु का छत्रेश्वर, अज्ञातनामा नरेश और रावण से क्या सम्बन्ध था। यह भी अविदित है कि इन नरेशों के अतिरिक्त और भी कोई नरेश उन्हीं दिनों कुलिन्दजनपद के किसी भाग पर शासन कररहेथे या नहीं। भैड़गांव में प्राप्त निधि की दोतिहाई मुद्राएँ लुप्त होजानेसे सम्भव है कुछ नरेशों का नाम सदा केलिए लुप्त होगयाहो।

मुद्रालेख—भानु की अबतक केवल ताम्रमुद्राएँ मिलीहैं। कनिंघम और एलन ने भानु की केवल एक - एक मुद्रा का चित्र प्रकाशित कियाहै। भैड़गांव की निधि से बचीहुई मुद्राओं मेंसे २५ मुद्राएँ भानु की हैं [१]।

कनिंघम ने भानुवर्मा नामक एक औदुम्बरनरेश की मुद्राओं का उल्लेख कियाहै [२]।

१- जौ० न्यूमिसमेटिक सो० १९५६, जि० १८, भाग १, पृ० ४७

२- कनिंघम – क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ७८

स्मिथ ने कुछ मुद्राओं पर भानुमित्र नाम पढ़ाहै [१]। जिस भानु की मुद्राएं बेहट, देहरादून और भैड़गांव में मिलीहैं, उसे औदुम्बरनरेश नहीं मानसकते। भानुमित्र औदुम्बर की तिथि स्मिथ ने वि० पू० ४३ (100 B. C.) मानीहै [२]। स्मिथ के इस अनुमान के अनुसार औदुम्बरनरेश भानुमित्र कुशाणनरेशों से पूर्ववर्ती और अमोघभूति का समकालीन था।

कनिंघम, एलन और डा० काला ने भानु की जिन मुद्राओं का अध्ययन कियाहै, उनपर निम्न चित्रांकन और लेख पाएगएहैं :—

अ- अग्रभाग में नाग तथा ब्राह्मीलेख, 'भानुवर्मा' ; पृष्टभाग घिसाहुआ, केवल त्रिशूल दिखाईदेताहै [३]।

आ- अग्रभाग में ब्राह्मीलेख, 'भानव'; पृष्टभाग में त्रिशूल तथा ध्वज [४]।

इ अग्रभाग में ब्राह्मीलेख, 'राञ भानव' ; पृष्ठभाग में षडानन कार्तिकेय तथा त्रिशूलधारी शिव [५]।

ई- अग्रभाग में ब्राह्मीलेख 'भानुवस्य'; पृष्टभाग अस्पष्ट, सम्भवतः पूर्ववत् चित्रण [६]।

शासितप्रदेश—भानु की मुद्राएं बेहट, देहरादून और भैड़गांव में मिलीहैं। ये तीनों स्थान यमुना से पूर्व की ओर हैं। यह अविदित है कि यमुना से पश्चिम की ओर उसका राज्य कहां तक था। उसकी राजधानी स्रुघ्न में थी या बेहट अथवा किसी अन्य स्थान पर थी, यह भी अभीतक अनिर्णित है। उसके शासितप्रदेश के अन्तर्गत वर्तमान अम्बाला, सहारनपुर, सिरमौर, देहरादून, टिहरी और गढ़वाल जिलों का कितना अंश था, यह निश्चितरूप से कहना कठिन है।

राज्यावधि—भानु की मुद्राओं पर भी कुशाणमुद्राओं का प्रभाव बतायाजाताहै। इसलिए यदि वह छत्रेश्वर का समकालीन न था, तो उसकी राज्यावधि छत्रेश्वर के तुरन्त पश्चात् मानीजासकतीहै। वह रावण से पूर्ववर्ती था, इसमें सन्देह नहीं। उसका राज्यारम्भ वासुदेवप्रथम की मृत्यु के पन्द्रह - बीस वर्ष पश्चात् मानसकतेहैं।

रावण

ऐतिहासिकता— रावण का नाम प्राचीन साहित्य में उस लँकापति के रूप में मिलताहै, जिसने सीताहरण कियाथा। और फलतः रामचन्द्रजी के हाथों जिसका विनाश हुआथा। इस लँकापति रावण के अतिरिक्त अन्य किसी रावण नामवाले नरेश का उल्लेख प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता। पुरातात्विक सामग्री, यथा अभिलेख आदि से भी किसी रावण नामधारी नरेश के अस्तित्व की पुष्टि नहीं होती।

१-२- स्मिथ – कै० क्वाइन्स इन इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता, जि० १, पृ० १७०

३- कनिंघम – पूर्वोक्त, पृ० ७८

४- एलन – कै० क्वाइन्स आव एनशिएंड इंडिया, फलक XL-१५

५- ६- जौ० न्यूमिसमेटिक सोसायटी, १६५६, जि० १८, भाग १, पृ० ४७

लँका के इतिहास में किसी रावण नामक नरेश का उल्लेख नहीं मिलता [1]। न अबतक कोई ऐसा पुरातात्विक प्रमाण मिलाहै, जिससे उस द्वीप पर अयोध्या के राजकुमार राम के आक्रमण की पुष्टि होसके [2]।

भारत में प्रतिवर्ष अगणित ग्राम - नगरों में रावण का पुतला जलायाजाताहै। कोई अपने पुत्र का रावण नाम रखना पसन्द नहीं करता। किन्तु चम्बा - कांगड़ा के गद्दी - पशुचारकों में आजतक रावण नाम रखने की प्रथा चलीआतीहै। ये पशुचारक अपने प्राचीन अतिशक्तिशाली नरेश रावण की गाथा बड़े चाव से सुनातेहैं।

गढ़वाल में प्रचलित लोकगाथाओं के अनुसार लँकापति रावण ने गढ़वाल में, नन्दादेवीशिखर के पदतल में तपस्या कीथी, तथा अपने मौलि (शिर) काटकर शिवजी को अर्पितकिएथे। मान्यता है कि इसीलिए नन्दादेवी के पादप्रदेश का भूखण्ड आजतक दशौली (दशमौलि) कहलाताहै।

एक अन्य लोकगाथा के अनुसार सीताजी द्वितीय वनवास में गढ़वाल में आईथी। तथा यहीं उन्हें भूसमाधि प्राप्तहुईथी। इस घटना के स्थल का नाम आजतक सितोनस्यूँ चलाआताहै। केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार रावण[3] तथा राम[4] और लक्ष्मण[5] ने उत्तराखण्ड में तपस्या कीथी।

इन गाथाओं के रावण की पहिचान मुद्राओंवाले राजा रावण से करना असँगत है। पूर्वोक्त गाथाओं का कोई ऐतिहासिक आधार हो या न हो, किन्तु जिस राजा रावण की मुद्राएँ मिलीहैं, उसकी ऐतिहासिकता असँदिग्ध है।

मुद्रालेख— कनिंघम, स्मिथ, एलन, रैप्सन, राखालदास आदि किसी मुद्राविद को रावण की मुद्राएँ प्राप्त नहीं हुईं। इसलिए उनके मुद्रासम्बन्धी ग्रन्थों में रावण की मुद्राओं का उल्लेख नहीं मिलता। रावण की मुद्राएँ अबतक केवल भैड़गांव में प्राप्तहुईहैं। भैड़गांवनिधि में डा० काला को रावण की केवल १५ ताम्रमुद्राएँ मिलीथीं।

ये सभी मुद्राएँ भद्दी हैं। उन्हें बड़ी असावधानी से ढालागयाहै। कुछ पर तो रावण का नाम भी पूरा नहीं ढलाहै। फिर भी मुद्रालेखों, चिह्नों एवँ मानवचित्रांकनों को विभिन्न मुद्राओं पर विभिन्न ढंग से अँकित करके उनमें विविधता लाने का प्रयत्न कियागयाहै [6]।

रावण की जिन पन्द्रह मुद्राओं का डा० काला ने अध्ययन कियाहै, वे अँकनादि की दृष्टि से चार वर्गों में रखीजासकतीहैं :-

अ- भार, १३०.२५ ग्रेन। अग्रभाग में ब्राह्मीलेख. 'रावणस्य', लेख के नीचे किरीट-धारीदेवी का चित्रांकन; पृष्टभाग में तोरण के बाहर खड़ा पुरुष [7]।

१-२- भदन्त आनन्द कौशल्यायन — महावंश, भूमिका
३- केदारखण्ड, ८१। १५-१६ ४- केदारखण्ड, १२४। ३५। ३७ ५- केदारखण्ड, १५८। ६३
६-७- जौ० न्यूमिसमेटिक सो० जि० १८, भाग १, १९५६, पृ० ४८

आ- अग्रभाग में ब्राह्मीलेख, 'रावणस्य'; पृष्टभाग घिसाहुआ [१]।

इ- भार, ११३ ग्रेन। अग्रभाग में ब्राह्मीलेख, 'वणस्य', नीचे मानवाकृतिवाली देवी दहिनी ओर चैत्य; पृष्टभाग में दहिनी ओर त्रिशूल, बांई ओर अन्य अँकन [२]।

ई- अग्रभाग में ऊपर एक अँकन, नीचे लेख, 'रावण'; पृष्टभाग में दहिनी ओर त्रिशूल, बांई ओर त्रिशूल से सँलग्न युद्धपरशु, बिन्दुओं से निर्मित परिधि [३]।

शासित प्रदेश — चम्बा - कांगड़ा के गद्दीपशुचारकों में प्रचलित गाथाओं के अनुसार रावण महान् पराक्रमी नरेश था। उसका शासितप्रदेश विशाल था। रावण की मुद्राएँ अभीतक स्रुघ्न, बेहट या देहरादून में, जहां अन्य कुणिन्दनरेशों की मुद्राएँ बड़ी सँख्या में मिलीहैं, प्राप्त नहीं हुईहैं। उसकी मुद्राएँ अभीतक केवल भैड़गांव में मिलीहैं। इससे अनुमान लगताहै कि उसका शासितप्रदेश सीमित था। पश्चिम की ओर यामुनप्रदेश पर उसका अधिकार कहांतक फैलाथा, यह कहना कठिन है।

राज्यावधि--रावण की मुद्राओं का अध्ययन अभीतक डा० काला के अतिरिक्त किसी विद्वान् ने नहीं कियाहै। मुद्राओं का ध्यान रकर छत्रश्वर, भानु और रावण की राज्यावधि चौथी शती विक्रमी के पूर्वार्द्ध में रखीजासकतीहै।

रावण के पूर्वजों और वँशजों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। उत्तराखण्ड के पूर्वीभाग पर इन दिनों 'मित्र' वँशी नरेशों का अधिकार था। समुद्रगुप्त से पूर्व उत्तराखण्ड पर शिवभवानी और शीलवर्मन् नामक अश्वमेधकर्त्ताओं का राज्य था। इससे अनुमान लगताहै कि सम्भवत: रावण या उसके उत्तराधिकारी के राज्यकाल में उत्तराखण्ड में कुणिन्द राजवँश का अवसान होगया।

कुणिन्द और कालाब्राह्मण--यह बड़ी रोचक बात है कि श्रीनगर के पास सुमाड़ीगांव में, जहां कुणिन्दनरेश अमोघभूति की एक सहस्र रजत मुद्राएँ मिलीथीं, वर्तमान समय में कालाजाति के ब्राह्मण बसेहैं। भैड़गांव में भी, जहां भानु और रावण आदि परवर्ती कुणिन्दनरेशों की मुद्राएँ मिलीहैं, वर्तमान समय में कालाजाति के ब्राह्मण बसेहैं। उनके पूर्वज सुमाड़ीगांव से आकर वहां बसेथे। इस तथ्य के आधार पर निम्न प्रश्न उठतेहैं :-

(१) क्या कालाब्राह्मणों के पूर्वजों का कुणिन्दनरेशों से कोई सम्बन्ध था? क्या वे कुणिन्दराजवँश के पुरोहित थे? महाभारत में कुणिन्दनरेश को द्विजमुख्य कहागयाहै [४]।

(२) क्या परवर्ती कुणिन्दनरेशों के राज्यकाल में भी श्रीनगर - सुमाड़ी में इन नरेशों का कोई मुख्यालय उसीप्रकार चलाआताथा, जिसप्रकार अमोघभूति के राज्यकाल में था?

(३) क्या भैड़गांव के कालाब्राह्मणों के पूर्वज सुमाड़ीगांव से परवर्ती कुणिन्दनरेशों के राज्यकाल में, चौथी शती विक्रमी के आरम्भ में आबसेथे?

प्रामाणिक सामग्री के अभाव में इन प्रश्नों का निश्चित उत्तरदेना कठिन है।

१- ३- जौ० न्यूमिसमेटिक सोसायटी, १९५६, जि० १८, भाग १, पृ० ४८

४. सभापर्व, २१।७ मे आगे दा० पाठ

प्रमुख बस्तियाँ— इन परवर्ती कुणिन्दनरेशों के राज्यकाल में स्रुघ्न, कालसी, जगतग्राम, लाखामण्डल, बाराहाट, गोपेश्वर, कर्तृपुर (कार्तिकेयपुर), श्रीनगर - सुमाड़ी, बेहट, मायापुर, भैड़गांव तथा गोविषाण आदि में महत्वपूर्ण बस्तियां थीं। दूनप्रदेश तथा भाबर में अपेक्षाकृत घनी जनसंख्या थी। हिमालय की तलहटी से होकर जानेवाला व्यापारिक मार्ग सुप्रचलित था। सहस्रों कुणिन्दमुद्राओं की प्राप्ति से विदित होताहै कि कृषि और पशुचारण के अतिरिक्त व्यापार भी महत्वपूर्ण व्यवसाय था।

बेहट— भाबर के व्यापारिक मार्ग पर स्रुघ्न, वेहट, मायापुर और गोविषाण समृद्धशाली नगर थे। प्राचीन बेहटनगर सहारनपुर से १६ मील उत्तर में, तिमलीद्वार और चकरौता को जानेवाली पक्की सड़क के पास, वर्तमान यमुनानहर के मध्यवर्ती क्षेत्र में बसाथा। सँ० १८६१ (1834) में नहर की खुदाई कराते समय कैप्टिन कौटले ने प्राचीन नगर के अवशेषों को खुदवायाथा। प्राचीन नगर के अवशेष नवीन बेहटनगर से २५ फीट की गहराई पर तथा पासपड़ोस के वर्तमान धरातल से १७ फीट की गहराई पर प्राप्त हुए [१]।

प्राप्त मुद्राएं— खुदाई में अनेक सांस्कृतिक वस्तुओं के साथ भारी सँख्या में कुणिन्दमुद्राएं तथा कतिपय अन्य राजवंशों की मुद्राएं प्राप्तहुईं। यहां अमोघभूति की रजत तथा ताम्र मुद्राएं [२] छोटे - बड़े आकार - प्रकार एवँ तौल की कुणिन्द ताम्र एवँ कांस्य मुद्राएं [३], कतिपय यौधेयमुद्राएं [४] एवँ कदफिस कुशाणों की राजा और नन्दी वर्ग की मुद्राएं [५] तथा कनेरकोसङ्कवर्ग की ऐसी मुद्राएं मिलीथीं, जिनपर ग्रीकलिपि में लेख थे [६]। भारी सँख्या में कुणिन्दमुद्राओं की प्राप्ति से अनुमान कियाजाताहै कि यह नगर कुणिन्दराज्य में एक प्रमुख और बड़ा नगर था। सहसा शत्रु के आक्रमण अथवा बाढ़ - जैसी किसी आकस्मिक भीषण विपत्ति के कारण नगर उजाड़ होगया [७]। नदी ने पर्वत से मलवा लाकर नगर को ढ़कदिया। तथा कालान्तर में पड़ोस में वर्तमान बेहटनगर बसगया।

आर्थिक स्थिति— भाबर की मण्डियों में व्यापार आय का मुख्य साधन था। अमोघभूति की मुद्राएं तबतक प्रचलित थीं। सुविधा केलिए ताम्र तथा कांस्य की विभिन्न तौल और आकार की मुद्राएं प्रसारित कीगई थीं [८]। यौधेय, कुशाण तथा यवन मुद्राएं भी व्यापार के कारण कुणिन्दराज्य के नगरों में पहुँचतीथीं।

डेढ़ सहस्र से अधिक वर्षों तक धरातल की आर्द्रता के कारण लोह आदि से बनी बहुत - सी वस्तुएं नष्ट होगईं [९]। असावधानी से खुदाई करनेसे भी बहुत - सी वस्तुएं

१- एटकिनसन — गजेटियर आव मेरठ डिवीजन, भाग १, पृ० ७५

२- ३- प्रिंसेप — इण्डियन ऐण्टिक्विटीज, जि० १, पृ० ८३

४- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० ८५

५- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० ८४

६- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० ८४, २०२

७- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० ८४

८- ९- प्रिंसेप — इण्डियन ऐण्टिक्विटीज, जि० १, पृ० ८३

टूट - फूटगईं । नगरनिवासी कुशाणकालीन ईंटों के समान बड़ी - बड़ी पक्की ईंटों से बने मकानों में रहतेथे [१] । कुंओं की जगत पर पक्की गोल ईंटें लगाईजातीथीं [२] । नाना आकार-प्रकार के मृतिकापात्रों का प्रचलन था [३] ।

लोह, ताम्र और कांस्य से अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाईजातीथीं । बेहट में धातु पिघलाने की अनेक भट्टियां तथा पिघलाए लोहे के टुकड़े मिलेथे [४] । धातुओं के आभूषण [५], मूर्तियों केलिए मुकुट [६] अंगुलियों में पहनने के छल्ले [७], बाणों की नोकें [८] तथा हथियारों की मूठें बनाईजातीथीं [९] । धातु तथा मिट्टी के रँग - विरँगे मनके भी बनतेथे [१०] । मिट्टी के खिलौनों तथा लघुमूर्तियों का व्यापक प्रचार था [११] । नर - नारी सुरमा बड़े चाव से लगातेथे । बेहट में सुरमा लगाने की सैकड़ों सलाइयां मिलीहैं [१२] । बेहट के आमोदप्रिय निवासी एक ऐसे धातु - बाट का प्रयोग करतेथे, जिसे मेंढ़क की आकृति का बनाया जाताथा [१३] । इसकी तौल २ तोला या ३०० ग्राम या छै यवन द्रक्म के बराबर होतीथी ।

धार्मिक मान्यताएं— मुद्राओं पर मृग को तृण खिलातीहुई शकुन्तला, मन्दिर, चैत्य, कलस, सुमेरु, बोधिवृक्ष, स्वस्तिक आदि अँकित मिलेहैं [१४] । मिट्टी के बनी तथा पकाईहुई किसी वृताकार वस्तु के दो टुकड़े मिलेहैं । जिनकी परिधि पर आसनवद्ध बुद्ध के १२ लघुचित्र बनेथे [१५] । इससे अनुमान कियाजाताहै कि जनता में कम से कम एक वर्ग ऐसा अवश्य था, जिसकी वौद्धमत के प्रति श्रद्धा थी [१६] ।

कुणिन्द-अवसान— आरम्भ में कुलिन्दजनपद कालिन्दिनी (यमुना) की पूर्वी और पश्चिमी उपत्यकाओं तक सीमित था । कुलिन्दजनपद के कुणिन्दगण का विस्तार अपने चरम उत्कर्ष के दिनों में अपनी मूलभूमि से पश्चिम की ओर सतलुजनदी की उपत्यका तक तथा पूर्व की ओर कालीगङ्गा की उपत्यका तक हुआथा । उत्तर में इस गण का प्रसार भारत - तिब्बत - सीमान्तश्रेणी के पदतल तक सीमित रहा । दक्षिण की ओर वर्तमान अम्बाला, सहारनपुर और बिजनौर जिलों के भाबरप्रदेश एवं नैनीताल की तराई पर कुणिन्द-गण का प्रसार हुआथा ।

पुराणों और महाभारत में मिलनेवाली कुणिन्दगण की गाथा, जिसका अध्ययन इस इतिहास के भाग २ में कियागयाहै, कुणिन्दनरेश सुबाहु को पाण्डवों का समकालीन सिद्धकरतीहै [१७] । पाण्डवों का समय वि० पू० १३५० से वि० पू० ९५० (1400 B. C. से 1000 B. C.) तक मानाजाताहै [१८] । यद्यपि अभीतक कोई ऐसी पुरातात्विक सामग्री नहीं मिलसकीहै , जिससे इस गाथा की पुष्टि होसके , फिर भी पाणिनि के ग्रन्थ अष्टाध्यायी

१- ७- एटकिनसन — गजेटियर आव मेरठ डिवीजन, भाग १, पृ० ७५

८- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० ८५

९— प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० २०४

१०- १२- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० ८५

१३- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० ८३

१४- १६- प्रिंसेप — पूर्वोक्त, पृ० २०० - २०१

१७- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ३७७-७८

१८- वेदिक एज, पृ० २७४

के आधार पर अनुमान कियाजाताहै कि कुणिन्दगण और कुलिन्दजनपद वि० पू० पांचवीं शती में अवश्य विद्यमान् थे [१] । विक्रम की चौथी शती के मध्य में, रावण या उसके वँशज के समय कुणिन्दगण का स्थान कतिपय छोटे - छोटे राजवँशों ने लेलिया ।

इसप्रकार वि० पू० ६५० से लेकर लगभग सं० ३५० वि० तक की, तेरह शतियों की सुदीर्घ अवधि तक कुणिन्दगण का अपनी मूलभूमि कुलिन्दजनपद पर अधिकार बनारहा । पाण्डवों के उत्तराधिकारी परीक्षित के वँशजों के राज्यकाल में कुणिन्दगण ने उनकी अधीनता स्वीकार कीहोगी [२] । अनुमान कियाजाताहै कि नन्दसाम्राज्य की स्थापना, कुणिन्दगण की एक शाखा ने, कीथी [३] , जिसकी मूलभूमि उत्तराखण्ड में नन्दाकिनी के तट पर थी [४] । नन्दवँश के उत्तराधिकारी मौर्यवँश का कुलिन्दजनपद पर पूर्ववत् प्रभावक्षेत्र बनारहा ।

यवनों की दासता से मुक्तहोने केलिए कुणिन्दों ने शुङ्गों की अधीनता स्वीकार करली । अमोघभूति ने अपने सारे जनपद को एक सूत्र में सँगठित करने के अतिरिक्त अपने पश्चिमी पड़ोसियों को भी यवनदासता से मुक्तकरने में सहायता दीथी । अमोघभूति के वँशज शक - पह्लव और कुशाणों से अपने जनपद की रक्षाकरने में सफल न होसके । वासुदेव कुशाण के पश्चात् यद्यपि परवर्ती कुणिन्दनरेश अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करनेमें सफल होगए, पर वे उसकी अधिक समय तक अखण्डता बनाए न रखसके । फलतः कुलिन्दजनपद छोटे-छोटे राज्यों में बँटगया । और गणसत्ता का स्थान अश्वमेधकर्त्ता नरेशों के शासन ने लेलिया ।

पौराणिक पुरावृत्त के अनुसार कुणिन्दनरेश सुबाहु की राजधानी गङ्गाद्वार से आगे बदरिकाश्रम के मार्ग पर ऐसे स्थान पर थी, जहांसे आगे रथ नहीं चलसकतेथे । इस नगर की निश्चित स्थिति का अभीतक पता नहीं लगाहै । अमोघभूति और उसके पूर्वजों की राजधानी स्रुघ्ननगर में थी । जिसके अवशेष अबतक चलेआतेहैं । शक - पह्लवों के आक्रमणों के कारण कुणिन्दनरेशों को पहले बेहट में और पीछे गढ़वाल और कुमाऊँ के भावरप्रदेश और पठारों में शरण लेनीपड़ी । बेहट के प्राचीन नगर में कुशाणनरेश कुजुल और विम की मुद्राएँ मिलीहैं । विक्रम की तीसरी शती तक उसका अस्तित्व बनाहुआथा ।

कुणिन्दनरेश दीर्घकाल तक अपने जन की परम्पराओं के अनुसार इस जनपद का शासन करतेरहे । उनके अवसान के पश्चात् धीरे - धीरे यौधेय, त्रिगर्त, कुलूत आदि उनके पड़ोसी गण भी लुप्त होगए । उस युग में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होगईथी, जिसमें गणशासन का अस्तित्व सम्भव न था ।

महाभारत में कुणिन्दनरेश सुबाहु के ऐश्वर्य एवँ शौर्य की तथा उसके अधीन कुलिन्दजनपद की समृद्धि का विस्तृत वर्णन है । अमोघभूति की सहस्रों की सँख्या में मिलनेवाली मुद्राएँ उसके ऐश्वर्य एवँ कुलिन्दजनपद की समृद्धि और सुव्यवस्था की पुष्टि करतीहैं ।

१- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ६६ २- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ३२०
३- द्र० रैप्सन — कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डिया, भाग १, पृ० २८०
४- अग्रवाल — मारकण्डेयपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४५

कुछ विद्वानों ने कत्यूरीवँश का सम्बन्ध कुणिन्दगण से जोड़ने की कल्पना कीहै। किन्तु जो सामग्री अबतक उपलब्ध होसकीहै, उससे इसकी पुष्टि नहीं होती। कुणिन्दगण के अवसान और कत्यूरीवंश के उत्थान के बीच की साढ़े चार शतियों की दीर्घ अवधि में उत्तराखण्ड में अनेक राजवंशों का उत्थान - पतन हुआ।

अनुमानित तिथिक्रम

वासुदेव तथा परवर्ती कुशाण	सँ० २६३ - ३०७ वि० (206 - 250 ई०)
छत्रेश्वर, भानु, रावण	सँ० ३०० - ३४७ वि० (243 - 290 ई०)
अश्वमेघकर्ता शिवभवानी, पोणवँशज और शीलवर्मन्	सँ० ३४७ - ४०७ वि० (290 - 350 ई०)

गोविषाण का 'मित्र' वंश

गोविषाण के इष्टकालेख

सँ० १९५८ वि० (1901 ई०) में काशीपुर के पास गोविषाण के प्राचीन दुर्ग के अवशेषों से निम्नांकित लेखवाली ईंटें प्राप्तहुईथीं [1] :–

१- 'राञो मातृमित्तस पुत्त . . .' [2]

२- 'तस्य राञो: श्री पृथिविमित्तस . . .' [3]

दोनों लेख अधूरे हैं। इनसे विदित होताहै कि पूरे लेख एक से अधिक ईंटों पर उत्कीर्ण किएगएथे। दुर्ग का विध्वँस होजाने पर दोनों ओर की ईंटें बिखरगईं। मलवे के विशाल ढेर में उनका पतालगाना असम्भव होगया।

इन लेखों से कम से कम तीन नरेशों का पता चलताहै, जिनका सम्बन्ध गोविषाण दुर्ग के सँस्थापक के वँश से था :–

(१) राजा मातृमित्र,

(२) राजा मातृमित्र का पुत्र, जिसके नामवाली ईंट प्राप्त नहीं होसकीहै,

(३) राजा पृथिवीमित्र।

सम्भवत: पूरे लेख में तीन से अधिक नरेशों के नाम थे, जिनका पता लगाना कठिन है। उनदिनों पांचाल [4], कोशल (अयोध्या) [5], कौशाम्बी [6]. मथुरा [7] तथा पाटलिपुत्र में [8], नरेशों के नामान्त में 'मित्र' लगाने की प्रथा थी। गोविषाण पांचाल से सटाहोने के कारण सम्भवत: जिस नरेश का नाम लुप्त होचुकाहै, उसके नामान्त में भी 'मित्र' लगाथा।

१- पायोनियर पत्रिका, दिनांक ६ दिसम्बर १९०१

२- = राजा मातृमित्र के पुत्र . . . . . .

३- = उस राजा श्री पृथिवीमित्र के . . . . .

४- कनिंघम – क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ८१-८४

५- कनिंघम–पूर्वोक्त, पृ० ९३

६- कनिंघम – पूर्वोक्त, पृ० ७४

७- कनिंघम – पूर्वोक्त, पृ० ८१ - ८४

८- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १०० तथा १०० टि०

तथा यह भी सम्भव है कि यातो गोविषाण में 'मित्र' नामान्त वाले किसी स्वतन्त्र वँश का राज्य था, अथवा पांचाल के 'मित्र' वँश का इस जनपद के दक्षिण - पूर्वी भाग पर अधिकार था।

'मित्र' वंशी नरेश— शुंगनरेश पुष्यमित्र के समय से राजाओं के नामान्त में 'मित्र' लगाने की प्रथा का मध्यदेश में व्यापक प्रचारहुआथा। पांचाल के राजवँश को, जिसमें ऐसे नाम रखने की प्रथा कई पीढ़ियों तक रही, वँशसूचक प्रामाणिक नाम के अभाव में 'मित्र' वँश कहाजाताहै [१]।

कनिंघम ने मुद्राओं से उत्तरपांचाल के रुद्रगुप्त, ध्रुवमित्र, सूर्यमित्र, फाल्गुनीमित्र, भानुमित्र, भद्रघोष, भूमिमित्र, अग्निमित्र, जयमित्र, विश्वपाल, इन्द्रमित्र और विष्णुमित्र, इन १२ नरेशों के नामों का पता लगायाहै। — इन नामों में मातृमित्र और पृथिवीमित्र के नाम नहीं है। भूमिमित्र और पृथिवीमित्र में यद्यपि समानता है, फिर भी पांचाल के ये नरेश गोविषाण के इष्टकालेखों के 'मित्र' नामान्त वाले नरेशों के समकालीन नहीं होसकते।

उत्तरपांचाल की मुद्राओं की लिपि अशोककालीन ब्राह्मी है। अस्तु लिपि के आधार पर उत्तरपांचाल की पूर्वोक्त मुद्राओं का समय अशोक के पश्चात् तथा ईसवी सन् के आरम्भ होनेकी लिपि से पूर्ववर्ती है [३]। मातृमित्र और पृथिवीमित्र के इष्टकालेखों को विद्वानों ने तीसरी शती ईसवी का मानाहै [४]।

डी०सी० सरकार ने पांचाल की राजधानी अहिच्छत्रा के नरेशों में पूर्वोक्त १२ नरेशों के अतिरिक्त वृहत्स्वातिमित्र, जिसका नाम मुद्राओं पर भ्रमवश वृहस्पतिमित्र भी पढ़ागयाहै, जयगुप्त, बँगपाल, दमगुप्त, वसुसेन, यज्ञपाल, प्रजापतिमित्र और वरुणमित्र के नाम भी गिनेहैं [५]।

डी०सी० सरकार ने इन मुद्राओं को प्रथम शती ईसवी पूर्व के अर्द्ध से लेकर तीन शतियों पीछे तक का मानाहै [६]। इसप्रकार ये मुद्राएँ उनके अनुमान से सँ० ७ से सँ० ३०७ वि० (50 B. C. - 250 A. D.) तक की अवधि में प्रचारित कीगईथीं।

इन मुद्राओं पर एक ओर बिना किसी विरुद के राजा का नाम अँकित मिलताहै, तथा दूसरी ओर राजा के नाम से सम्बन्धित देवता का चित्र होताहै [७]। उदाहरण केलिए अग्निमित्र की मुद्रा पर अग्नि का तथा सूर्यमित्र और भानुमित्र की मुद्राओं पर सूर्य का चित्रांकन होताहै [८]। विद्वानों की धारणा है कि यद्यपि ऐसे चित्रांकनों से नरेशों का लक्ष्य अपनेको अपने नाम से सम्बन्धित देवताओं का कृपापात्र व्यक्तकरना था, पर उन्हें विभिन्न देवताओं के चित्रांकन की प्रेरणा कुशाणमुद्राओं पर बने देवचित्रों से मिलीहोगी [९]।

१- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १७२

२-कनिंघम — क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ८१ - ८४ ३- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ७९

४- ओझा — प्राचीन भारतीय लिपिमाला, पृ० १५१

५- ९- एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० १७२

इससे अनुमान लगताहै कि इनमेंसे कुछ नरेश कुशाणसत्ता उठजाने के पश्चात् हुएथे। गोविषाण के मातृमित्र और पृथिवीमित्र का अहिच्छत्रा के मित्र नरेशों से क्या सम्बन्ध था, यह कहना कठिन है।

मातृमित्र

गोविषाण के 'मित्र' वँश का सँस्थापक कौन था, कहना कठिन है। यह भी सम्भव होसकताहै कि इष्टकालेख में लम्बी वँशावली रहीहो और गोविषाणदुर्ग की स्थापना मातृमित्र, उसके पुत्र या पृथिवीमित्र के द्वारा न होकर उसके किसी अन्य वँशज के द्वारा हुईहो, जिसने अपने लेख में अपने पूर्वजों का उल्लेख कियाहो।

मातृमित्र की अभीतक कोई मुद्रा नहीं मिलीहै। न किसी अभिलेख या ग्रन्थ से उसके अस्तित्व का पता लगताहै।

पृथिवीमित्र

मातृमित्र और पृथिवीमित्र का आपस में पारिवारिक सम्बन्ध जानने के साधन उपलब्ध नहीं हैं। इनमें कौन पूर्ववर्ती था और कौन परवर्ती, यह अभीतक अज्ञात है। इन नरेशों की कोई मुद्रा नहीं मिलीहै। भूमिमित्र की मुद्राएँ मिलीहैं। पर उसकी और पृथिवीमित्र की एकता सिद्धकरने के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। किसी अभिलेख या ग्रन्थ से इस नरेश के अस्तित्व का पता नहीं लगता।

राज्यावधि— मातृमित्र, उसके पुत्र और पृथिवीमित्र की राज्यावधि वासुदेव प्रथम के राज्यकाल के पश्चात् होनीचाहिए। इन तीनों नरेशों की राज्यावधि अनुमान से सँ० ३०७ - ३४७ वि० (250 - 290 ई०) के आसपास मानसकतेहैं। छत्रेश्वर, भानु और रावण सम्भवत: उनके समकालीन थे।

मातृमित्र और पृथिवीमित्र के इष्टकालेखों की प्राकृत सँस्कृत से उसीप्रकार प्रभावित है, जिसप्रकार छत्रश्वर की मुद्राओं का लेख है। लिपि के आधार भी उनको लगभग समकालीन मानाजासकताहै।

यदि यह अनुमान सत्य है तो छत्रेश्वर, भानु और रावण के राज्यकाल में इस जनपद की दक्षिण - पूर्वी भाबर - तराई की पट्टी पर पांचालनरेशों का अधिकार था। छत्रेश्वर की मुद्राएँ यमुना के पश्चिम की ओर मिलीहैं। भानु की मुद्राएँ बेहट, देहरादून और गढ़वाल में, तथा रावण की केवल गढ़वाल में मिलीहैं।

गोविषाण की समृद्धि— पतँजलि ने पांचाल को सुभिक्ष. सम्पन्नपानीय तथा बहुमाल्यफल बतलायाहै। यह उल्लेख शुंगकाल में पांचाल की समृद्धि सूचित करताहै। पतँजलि से चार शती पश्चात् पांचाल की आर्थिक स्थिति जानने के साधन उपलब्ध नहीं हैं।

परवर्ती कुणिन्दों के समान पांचाल के मित्रवँशी नरेशों ने भी ताम्रमुद्राएँ प्रचारित कीथीं। विद्वानों का अनुमान है कि उनदिनों की कौड़ियां आज के पैसे से अधिक मूल्यवान्

थीं। जीवन के उपयोग की साधारण वस्तुएँ खरीदने केलिए ताम्बे का द्रम अति उपयोगी था।

वस्तुएँ बहुत सस्ती थीं। एक रजतमुद्रा (१ तोला चांदी) में एक गाय, या ३२ सेर उत्तम चावल या पांच सेर घी खरीदाजासकताथा [१]। इसलिए रजतमुद्राओं की अपेक्षा ताम्रमुद्राओं का ही व्यापक प्रचार था [२]।

स्थापत्य— गोविषाण के 'मित्र' नरेश अपने स्थापत्य के अवशेष छोड़गएहैं। उन्होंने एक विशाल दुर्ग और सम्भवत: कई मन्दिरों का निर्माण कियाथा। दुर्ग के पास स्थित विशाल द्रोणसागर (६००′×६००′) भी उतना ही प्राचीन है।

लोक में प्रचलित अनुश्रुति के अनुसार उज्जैन के दुर्ग और द्रोणसागर का निर्माण पाडवों ने अपने गुरु द्रोणाचार्य के उपयोग केलिए कियाथा [३]। महाभारत में द्रोणशर्मपद तीर्थ का उल्लेख है, जिसमें स्नानकरने की प्रशँसा कीगईहै [४]। पर उसकी स्थिति अनिश्चित है।

इष्टकालेखों के आधार पर दुर्गनिर्माण का श्रेय गोविषाण के 'मित्र' वँशी नरेशों को है। तथा सम्भवत: द्रोणसागर को खुदवाने या विस्तृत करने का श्रेय भी उन्हींको दियाजासकताहै।

इन 'मित्र' नरेशों के राज्यकाल से लगभग चार शती पश्चात् चीनी यात्री युवान्‌चाङ् गोविषाण पहुँचाथा [५]। उसने उस प्रदेश की समृद्धि तथा घनी जनसँख्या का वर्णन करतेहुए नगर का घेरा लगभग ढाई मील बतलायाहै [६]। मातृमित्र और उसके वँशजों के दुर्ग के अवशेष काशीपुर से एक मील की दूरी पर उज्जैनगांव में आज भी खड़ेहैं। दस वर्ष पूर्व, जब मैं उसे देखने गयाथा तो दुर्ग के अवशेषों पर कांटेदार झाड़ियां और जँगल फैलेथे।

यह दुर्ग लगभग ३००० फीट लम्बा और १५०० फीट चौड़ा है। उसका निर्माण १५″×१०″×२½″ आकारवाली ईंटों से कियागयाहै। दुर्ग की दीवारें निकट के खेतों से २५ - ३० फ़ीट ऊँची हैं। सौ वर्ष पूर्व पूर्वदिशा को छोड़कर शेष तीन ओर उथली खाइयां दिखाईदेतीथीं [७]। ध्वँस की सतह ऊँची - नीची है। उत्तरपश्चिम और दक्षिणपश्चिम की ओर दो स्थानों पर पुराने फाटकों के अवशेष प्रतीत होतेहैं, जिनसे होकर दुर्ग पर उगे जँगल में प्रवेश करसकतेहैं [८]।

१- २- वासुदेव उपाध्याय — भारतीय सिक्के, पृ० ६२

३- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० ३०२ ४- अनुशासनपर्व, २५ । २८

५- ६- वाटर्स — ऑन युवान्‌चाङ्‌स ट्रैवल्स इन इण्डिया, पृ० ३३०

७- ८- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० ३०२

दुर्ग के बाहर द्रोणसागर नामक तालाब के तट पर प्राचीन टीलों के ऊपर अनेक छोटे-बड़े नवीन मन्दिर हैं [१]। इन टीलों की प्राचीनता का अनुमान उनकी खुदाई से ही लगसकेगा। सम्भव है वे उतने ही प्राचीन हों, जितना दुर्ग है।

दुर्ग की उत्तरी दीवार के भीतर सबसे ऊँचा टीला भीमगदा कहलाताहै। सम्भवतः उसे यह नाम उस विशाल शिवलिंग के कारण मिलाहै [२], जो उसके ऊपर स्थापित है।

दुर्ग के अन्दर, उत्तरपूर्वी कोने से लगभग पांच सौ फीट की दूरी पर, बत्तीस फीट से अधिक ऊँचा, एक दूसरा उल्लेखनीय टीला है, जो छै सौ फीट लम्बी एवँ पांच सौ फीट चौड़ी भूमि के मध्य खड़ाहै [३]। कनिंघम के अनुसार यहां कभी एक विशाल चतुर्भुज मन्दिर था। इस मन्दिर के ध्वँस से पूर्व की ओर दो छोटे-छोटे मन्दिरों के ध्वँसावशेष हैं [४]।

द्रोणसागर के तट पर निर्मित ज्वालादेवी के नातिप्राचीन मन्दिर से पूर्व की ओर ६८ फीट व्यासवाला एक लगभग-गोल टीला है, जो ईंटों की सात से लेकर ग्यारह फीट तक ऊँची दीवारों से घिराहै। इसे रामगिरगुसांईं का टीला कहाजाताहै। दुर्ग के दक्षिण में जागेश्वरमन्दिर के निकट बाईस फीट ऊँचा एक बड़ा टीला है, जिसके ऊपर कभी बीस फीट वर्ग के आधारवाला मन्दिर खड़ाथा [५]।

जागेश्वरमहादेव के दक्षिणपश्चिम में खागपुरगांव के निकट एक २० फीट ऊँचा तथा २०० फीट व्यासवाला ईंटों का टीला है, जो किसी बौद्धस्तूप या विहार का अवशेष है [६]।

युवानचाङ् के समय राजधानी से नाति दूरी पर एक प्राचीन विहार था, जिसके अन्दर अशोक द्वारा निर्मित स्तूप था [७]। अशोक ने यह स्तूप उस स्थान पर बनायाथा, जहां ठहरकर बुद्ध ने एक मास तक धर्मोपदेश दियाथा [८]। यहां चार बोधिसत्वों की चँक्रमणभूमियां थीं। तथा दो स्तूपों में बोधिसत्वों के केश और नख रखेहुएथे [९]।

गोविषाण पर 'मित्र' वँश का अधिकार कबतक, बनारहा? समकालीन कुलिन्दजनपद के कितने भूभाग पर उनका अधिकार था? कुणिन्दनरेशों से इस राजवँश के कैसे सम्बन्ध थे? इन प्रश्नों का उत्तरदेने केलिए सामग्री उपलब्ध नहीं है।

धार्मिक मान्यताएं— मातृमित्र तथा पृथिवीमित्र के राज्यकाल से सम्बन्धित कोई अन्य सामग्री उपलब्ध नहीं है। इन नरेशों के नामों से भी किसी प्रकार का निष्कर्ष नहीं

१- डबराल — उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २३६

२-४- राहुल — कुमाऊं, पृ० २७३

५- राहुल — कुमाऊं, पृ० २७३-७४

६- राहुल — कुमाऊं, पृ० २७४

७-९- वाटर्स — ओन ट्रैवल्स आव युवान्चाङ्, पृ० ३३१

निकालाजासकता। उनके बनाएहुए मन्दिर आदि विध्वस्त होजानेसे उनके सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है।

पांचाल - नरेशों की मुद्राओं पर शिवलिङ्ग अंकित मिलाहै। कुछ मुद्राओं पर हवनकुण्ड, प्रज्वलित अग्नि, वेष्ठनीयुक्त वृक्ष और नाग के चित्रांकन प्राप्त हुएहैं। पांचाल के 'मित्र' नरेशों के नामों से तथा उनकी मुद्राओं के चित्रांकनों से विदित होताहै कि उनके राज्यकाल में हिन्दुधर्म के देवी - देवताओं के प्रति अधिक आकर्षण था।

अलमोड़ा से प्राप्त शिवदत्त, हरिदत्त तथा शिवपालित की मुद्राओं पर मुद्राविदों ने कतिपय ऐसे अंकन पाएहैं, जो अयोध्या से प्राप्त कुमुदसेन और अजवर्म की मुद्राओं पर मिलतेहैं [1]। इसे पारस्परिक सम्पर्क का प्रभाव मानसकतेहैं।

---

१ - एलन — कै० क्वाइन्स आव एनशिएंट इंडिया, पृ० Lxxxi

युगशैल के अश्वमेधकर्त्ता

वासुदेव से समुद्रगुप्त तक— अन्तिम कुशाणनरेश वासुदेव के राज्यान्त के पश्चात् से लेकर समुद्रगुप्त की दिग्विजय से पूर्वतक के उत्तराखण्ड के राजवँशों की सूचना निम्न स्रोतों से मिलतीहै :—

(१) छत्रेश्वर, भानु और रावण – इन तीन कुणिन्दनरेशों की मुद्राएँ;
(२) मातृमित्र, तत्पुत्र और पृथिवीमित्र के इष्टका - लेख;
(३) शिवभवानी और शीलवर्मन् नामक दो अश्वमेधकर्त्ता नरेशों के अभिलेख;
(४) प्रयाग - प्रशस्ति में कर्तृपुरनृपति का उल्लेख; और
(५) लाखामण्डल की प्राचीन प्रशस्ति में राजा जयदास और उसके सात वँशजों का उल्लेख।

इस सामग्री के आधार पर अनुमान लगताहै कि परवर्ती कुणिन्द और 'मित्र' वँशी नरेश समकालीन थे। उनके पश्चात् अश्वमेधकर्त्ता नरेशों का उत्तराखण्ड पर अधिकार होगयाथा। समुद्रगुप्त के राज्यकाल में उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग पर कर्तृपुरनरेश का अधिकार था, तथा पश्चिमी भाग, यमुना की उपत्यका पर जयदास या उसके किसी वँशज का।

शिवभवानी

शिलालेख— शिवभवानी का एक अभिलेख तीन वर्ष पूर्व देहरादूनजिले के अम्बरीगांव में प्राप्त हुआथा[१]। अभिलेख के अनुसार राजा शिवभवानी ने यमुनातट पर एक अश्वमेध कियाथा। इस अभिलेख की मूलप्रति अभीतक प्रकाशित नहीं हुईहै।

महाभारत के अनुसार प्राचीनकाल में सूर्यवँशी राजा नाभागपुत्र अम्बरीष ने यमुनातट पर एक यज्ञ कियाथा[२]। सम्भव है अम्बरीगांव उस स्थान पर बसा हो, जहां प्राचीनकाल में राजा अम्बरीष ने यज्ञ कियाथा।

राजा शिवभवानी के राज्यकाल, शासितप्रदेश और यज्ञ के अतिरिक्त अन्य कार्यों के सम्बन्ध में अभीतक किसी स्रोत से कोई सूचना नहीं मिलीहै। इस नरेश की मुद्राएँ भी

१- नवभारत टाइम्स, दिनांक ६ फरवरी १९६५
२- आदिपर्व, १।२२७; भीष्मपर्व, ९।६; वनपर्व, १२९।२

उपलब्ध नहीं हुईहैं। उसके अभिलेख को लिपि के आधार पर ईसा की तीसरी शती का मानागयाहै। अभिलेख की मूल प्रति के प्रकाशन के अभाव में इस नरेश के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहाजासकता।

शीलवर्म्मन्

इष्टकालेख— राजा शीलवर्मन् ने कालसी में अशोक द्वारा स्थापित शिला के ठीक सामने, यमुना के बांयें तट जगतग्राम नामक स्थान पर एक या अधिक अश्वमेध किएथे। यज्ञ केलिए उसने जगतग्राम में गरुड़ाकार वेदिका बनाईथी. जिसकी ईंटों पर निम्न दो अभिलेख मिलेहैं [1] :–

(अ) सिद्धम् । युगेश्वरस्याश्वमेधे युगेशैलमहीपते (:) § [2]
इष्टका वार्षगण्यस्य नृपतेश्शीलवर्मण (:) §

(आ) नृपतेर्वार्षिगण्यस्य पोण-षष्ठस्य धीमत (:) § [3]
चतुर्थस्याश्वमेधस्य चित्यो (ऽ)§ यं शीलवर्म्मण (:) §

इन अभिलेखों से निम्न तथ्य प्राप्त होतेहैं :–

१- शीलवर्मन् वार्षगण्यगोत्र में उत्पन्न हुआथा ;

२- उसके छटे पूर्वपुरुष का नाम पोण था ;

३- उसने चार अश्वमेध किएथे, जिनमेंसे कम से कम एक जगतपुर (जगतग्राम) में हुआथा; तथा

४- उनदिनों उसके शासितप्रदेश का नाम या उसकी राजधानी का नाम युगशैल था।

वार्षगण्यगोत्र— वर्तमान समय में इस गोत्र के वँशज उत्तराखण्ड में नहीं मिलते। महाभारत के अनुसार वार्षगण्य एक प्राचीन ऋषि थे, जिनसे गन्धर्वराज विश्वावसु ने जीवात्मा - परमात्मा-तत्व का विवेचन सुनाथा [4]।

महर्षि वार्षगण्य सांख्य के प्राचीन आचार्य मानेजातेहैं। वे गुप्तकाल से बहुतपहले हुएथे [5]। उन्हें प्रसिद्ध आचार्य वसुबन्धु का गुरु बतलायाजाताहै [6]। सांख्य, योग तथा वेदान्त के अनेक मान्य ग्रन्थकारों ने उनका बड़े आदर के साथ उल्लेख कियाहै [7]। उनका

१- डी० सी० सरकार – सलेक्ट इन्सक्रिप्शन, जि० १, पृ० ९९

२- सिद्ध को नमस्कार। यह वृषगण या वार्षगण्यगोत्र में उत्पन्न, युगशैल मही या दो पर्वतों से घिरी हुई धरती के नरेश, युगेश्वर या युगनगरी के राजा शीलवर्मन् के अश्वमेध की ईंट है।

३- यह वार्षगण्यगोत्र वाले, पोण नामक व्यक्ति या नरेश की छटी पीढ़ी में उत्पन्न, धीमान् शीलवर्मन् के चतुर्थ अश्वमेध का चैत्य है।

§ ईंटों पर यहां ऐसे चिन्ह का अंकन है, जो प्राय: कुशाणकालीन अभिलेखों में मिलताहै।

४- शान्तिपर्व, ३१८ । ५९   ५- वासुदेव उपाध्याय – गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, खंड १, पृ० ११५

६- ७- वासुदेव उपाध्याय – पूर्वोक्त, पृ० ११६

जीवनकाल दूसरी शती ईसवी में होसकताहै। उनकी छटी पीढ़ी में उत्पन्न शीलवर्मन् का समय तीसरी शती ईसवी में मानाजासकताहै।

शीलवर्मन् के इष्टकालेख की तिथि लिपि के आधार पर तीसरी शती ईसवी ठहराईगईहै। इसी शताब्दी के अन्तिम वर्षों के आसपास यमुनाघाटी में सेनवर्मन् ने यदुवँश के राज्य की स्थापना की, जिसके १२ नरेशों के नाम लाखामण्डल में प्राप्त राजकुमारी ईश्वरा के शिलालेख से मिलतेहैं। यदि इष्टकालेख में वार्षगण्यस्य के स्थान पर वृष्णिगणस्य पाठ होता तो शीलवर्मन् और सेनवर्मन् को एक ही व्यक्ति मानाजासकताथा। किन्तु रामचन्द्रन् ने [1] तथा डी० सी० सरकार ने वार्षगण्यस्य पाठ ही सही मानाहै [2]। इसलिए, तथा लाखामण्डल में प्राप्त एक दूसरी प्रशस्ति [3] का ध्यान रखतेहुए दोनों को विभिन्न व्यक्ति माननाचाहिए।

पोण

शीलवर्मन् पोण की छटी पीढ़ी में उत्पन्न हुआथा। पोण को वँशसँस्थापक मान सकतेहैं [4]। रामचन्द्रन् ने ईंटों पर पनर्षष्ठस्य तथा पूर्णषष्ठस्य पाठ भी पढ़ाहै। किन्तु डी० सी० सरकार ने शुद्ध पाठ पोणषष्ठस्य ही मानाहै [5]। पूर्ण या पोण के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। हर्षचरित में 'पौणकि' का उल्लेख आताहै [6]। टीकाकार शँकरकवि ने पुणक को गोत्रविशेष का नाम मानाहै [7]। उस गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति पौणकि कहलातेथे। हर्षचरित के पुणक का पोण से सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है।

पोण के चार वँशजों के नाम, जो शीलवर्मन् के पूर्वज थे, अभीतक अज्ञात हैं। यदि वे नरेश थे, तो उनकी राज्यावधि और शासितप्रदेश के सम्बन्ध में अभीतक कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। वासुदेव के पश्चात् और समुद्रगुप्त से पूर्व उत्तराखण्ड पर शासन करनेवाले छत्रेश्वर, भानु, रावण, शिवभवानी, पोण और शीलवर्मन् इन छै नरेशों के नाम अभीतक मिलेहैं। किन्तु यह कहना कठिन है कि पोण-वँशज शीलवर्मन् का छत्रेश्वर, भानु, रावण और शिवभवानी से रक्तसम्बन्ध था या नहीं। प्रमाणों के अभाव में यह निश्चय करना कठिन है कि शिवभवानी और शीलवर्मन् मेंसे किसे पूर्ववर्ती मानना उचित है।

शीलवर्मन् का शासित प्रदेश— शीलवर्मन् के इष्टकालेख में उसके शासित प्रदेश का नाम युग और युगशैलमही आयाहै। एक ही श्लोक में प्रयुक्त इन दोनों शब्दों को समानार्थक नहीं मानसकते। इसलिए युगशैलमही को देश का सूचक तथा युग को राजधानी का सूचक मानसकतेहैं।

१-२- एनशिएंट इंडिया, जि० ६, पृ०१४१ २- डी०सी० सरकार—सलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, जि० १, पृ०६६

३- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, जुलाई १६४४, पृ ८१

४- ५- डी० सी० सरकार — पूर्वोक्त, पृ० ६६

६- 'जघान जघन्यजं प्रद्योतस्य पौर्णकि कुमारं कुमारसेनम्'। — हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३५३ - ५४

७- 'पूर्णको गोत्रविशेषः तत्र भवः पौर्णकि' — शंकरकवि की टीका, हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३५३ - ५४

डा० अग्रवाल का अनुमान है कि युगशैल या युगनामक पहाड़ीप्रदेश सम्भवत: अम्बालाजिले में सरस्वती से लेकर यमुना तक फैलाथा [१]।

इस अनुमान में तनिक सँशोधन की आवश्यकता है। सरस्वती से यमुना तक फैलेहुए प्रदेश का अर्थ हुआ सरस्वती के पूर्वीतट से लेकर यमुना के पश्चिमीतट तक फैलाहुआ प्रदेश। जिस स्थान पर शीलवर्मन् ने चतुर्थ अश्वमेध की यज्ञवेदी का निर्माण कियाथा, वह स्थान, जगतग्राम (जगतपुर) यमुना के पूर्वीतट पर स्थित है। अस्तु शीलवर्मन् का राज्य यमुना से पूर्व की ओर भी दूर तक फैला रहाहोगा।

यमुना के पूर्वीतट से सटे ग्राम को जीतलेने पर ही उसने अश्वमेध न कियाहोगा। चार अश्वमेध रचनेवाले नरेश का शासितप्रदेश अवश्य कुछ अधिक विस्तृत रहाहोगा।

युगशैलमही का अर्थ दो पर्वतों से घिरी भूमि भी होसकताहै। उपगिरि या शिवालिकश्रेणी से लेकर अन्तर्गिरि या लघुहिमालय तक अथवा वहिर्गिरि या महाहिमालय तक के प्रदेश को भी युगशैलमही कहसकतेहैं। चार अश्वमेध करनेवाले नरेश का अधिकार सम्भवत: सारे कुलिन्दजनपद पर रहाहोगा।

युगशैलमही की राजधानी युग नामक नगरी की पहिचान अनिश्चित है। सम्भव है, वर्तमान जगतपुर या जगतग्राम का प्राचीन नाम युगपुर या युगग्राम रहाहो और शीलवर्मन् ने अपनी राजधानी में ही यमुनातट पर अश्वमेधयज्ञ कियाहो। जगतग्राम कालसी के ठीक सामने यमुना के बांए तट पर है। कालसी या कालकूट अति प्राचीनकाल से कुलिन्दजनपद का मुख्यालय, राजधानी या प्रमुखनगर रहचुकाहै।

राज्यावधि— अश्वमेधकर्त्ता शिवभवानी और शीलवर्मन् की राज्यावधि सम्राट समुद्रगुप्त से पहले होनीचाहिए। प्रचण्ड पराक्रमी समुद्रगुप्त के राज्यकाल में उसका क्षुद्र पड़ोसी अश्वमेध की कल्पना भी न करसकताथा। उसका इष्टकालेख शुद्ध सँस्कृत में छन्दोबद्ध है। लिपि के आधार पर उसे तीसरी शती ईसवी का ठहरायागयाहै [२]। समुद्रगुप्त का राज्यारम्भ सँ० ३९७ वि० (340 ई०) में मानाजाताहै। दस वर्ष के अन्तर्गत उसने मध्यदेश के अनेक नृपतियों का उत्पाटन करदियाथा। इसलिए शीलवर्मन् के अश्वमेध की तिथि समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि के आस-पास या कुछ पहले होसकतीहै। उसकी अन्तिमतिथि सँ० ३९७ से ४०७ वि० (340 से 350 ई०) के मध्य किसी समय मानसकतेहैं।

रावण और पृथिवीमित्र के पश्चात् शिवभवानी तथा शीलवर्मन् और उसके पूर्वजों केलिए कम से कम साठ वर्ष की अवधि होनीचाहिए।

शान्ति और समृद्धि— शीलवर्मन् का राज्यकाल शान्ति और समृद्धि से पूर्ण था। वह साहसी, वीर और महत्वाकांक्षी पुरुष था। उसके पड़ोसियों मेंसे कोई उससे भिड़ने

१- अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७३

२- एनशिएंट इंडिया, जि० ९, पृ० १४१

का साहस न करताथा। अन्यथा उसे चार अश्वमेध करने की सुविधा न होती। उसका शासनकाल पर्याप्त लम्बा था।

खनिज, वनप्रदेशों की सम्पत्ति, तथा व्यापार की आय से उसे ऐसी समृद्धि प्राप्त होगईथी जिससे वह चार अश्वमेध करसकाथा। अश्वमेध केलिए सैनिकशक्ति के साथ-साथ धन की बड़ी आवश्यकता पड़तीहै। यज्ञ के अन्त में बड़ी - बड़ी धन राशियां, गाएँ और अन्य वस्तुओं का दान करनापड़ताहै।

जन - साधारण की स्थिति जानने केलिए साधन उपलब्ध नहीं हैं। पांडुवाला की खुदाई से विदित होताहै कि मैदानी भागों में गृहनिर्माण केलिए पक्की लाल ईंटों का प्रयोग होताथा। उनपर सजावट केलिए चित्रकारी भी कीजातीथी। वीरभद्र की खुदाई में मयूर और फूलपत्तियों के चित्रोंवाली ईंटें प्राप्त हुईहैं। ऐसी चित्रित ईंटों का प्रयोग सम्भवतः प्रासादों और मन्दिरों में कियाजाताथा।

पात्र मुख्यतः मिट्टी के बनतेथे। पांडुवाला की खुदाई से विदित होताहै कि भोज्य-सामग्री रखने, भोजन पकाने और भोजन परोसने केलिए नाना आकार - प्रकार के मृतिका पात्र होतेथे। इनके अतिरिक्त लकड़ी और धातुओं के पात्र भी रहेहोंगे। उसके राज्य में शिक्षा का सन्तोषजनक प्रचार था। अन्यथा इष्टकालेख व्यर्थ होते। यज्ञों के सम्पादन केलिए विद्वान् ब्राह्मण उपलब्ध थे। राजकार्यों में सँस्कृत का प्रयोग चलपड़ाथा।

मौर्यकाल में, बौद्ध और जैन मत के प्रचार से राजपरिवार विशेष प्रभावित हुएथे। इसलिए नरेशों द्वारा सम्पन्न होनेवाले वेदिकयज्ञों की प्रथा शिथिल पड़गईथी, किन्तु सर्वथा लुप्त न हुईथी। वेदों का पठन - पाठन तथा कतिपय वेदिकयज्ञों का सम्पादन भी निरन्तर चलतारहा। शुँगकाल से नरेशों ने अश्वमेध आदि यज्ञ करने आरम्भ करदिये।

शुँग - कुशाण - काल में जनता शैवमत की ओर विशेष आकृष्ट हुई। विदेशी नरेश भी अपनेको माहेश्वर कहनेलगे। शीलवर्मन् के राज्यकाल में भी वही मान्यताएँ रही होंगी, जो कुशाणकाल में थीं।

शीलवर्मन् ने यज्ञ केलिए गरुड़ाकार वेदिका बनवाईथी। शुँगकाल से गरुड़ाकृति की विशेष पावनता मिलचुकीथी। विदेशियों ने भी गरुड़ध्वजों की स्थापना कीथी। शैवभागवत् और वैष्णवभागवत् मतों के व्यापक प्रचार होतेहुए भी बौद्धमत का सर्वथा लोप नहीं हुआथा। इस जनपद के दक्षिण में गङ्गाद्वार के आस - पास महत्वपूर्ण बौद्धबस्तियां चिरकाल तक बनीरहीं।

पाँडुवाला— इस जनपद के दक्षिणी भाग की बस्तियों की समृद्धि कुशाणशासन उठजाने पर भी बनीरही। स्रुघ्न, कालकूट, बेहट, जगतग्राम, वीरभद्र, मायापुर, अहोगङ्ग, पाण्डुवाला और गोविषाण शीलवर्मन् के राज्यकाल में पर्वतीयप्रदेश और मैदानीप्रदेश के बीच व्यापार के केन्द्र थे।

कोटद्वार - हरिद्वार - मोटरमार्ग पर, लालढांग से पश्चिम की ओर पाण्डुवाला सुरक्षितवन में दूर - दूर तक प्राचीन बस्तियों के खण्डहर फैलेहैं। शीलवर्मन् के राज्यकाल में पाण्डुवाला में विशाल और समृद्धिशाली नगर था। नगर को पाण्डुवालास्रोत (नाला) तथा रवासननदी से जल प्राप्त होताथा। नगर के पूर्वी भाग में एक विशाल तालाब था, जिसे सम्भवत: रवासन के जल से भराजाताथा। तालाब के चारों ओर पक्की लाल ईंटों की घाटोंवाली दीवार बनीथी। तालाब से एक नहर निकालीगईथी, जो गन्दे जल को बाहर निकालनेके अतिरिक्त सम्भवत: सींचाई केलिए भी प्रयुक्त होतीथी। तालाब के चारों ओर के घाटों की दीवारों के पास मूर्तियों के टुकड़े मिलेहैं। सम्भवत: घाटों के पास छोटे - बड़े देवाला या मन्दिर बनेथे।

नगर में प्रधानमन्दिर सम्भवत: शिवजी का था। जिसमें लालशिला की विशाल लिङ्गोद्भव मूर्ति थी। यह मूर्ति कुशाणकालीन मथुराकला की सुन्दर कृति है। इस मूर्ति को अब पाण्डुवाला के खण्डहरों से उठाकर लालढांग के मन्दिर में पधरायागयाहै। वन में पड़े अनेक आमलकों से विदित होताहै कि सातवीं-आठवीं शती के पश्चात् भी इस प्रदेश में कुछ मन्दिरों का निर्माण हुआथा। पाण्डुवाला के खण्डहरों से लेजाकर कुछ छोटी - छोटी मूर्तियां नजीबाबाद के एक मन्दिर में पधराईगईहैं। किन्तु वे आठवीं शती या पश्चात् की प्रतीत होतीहैं।

नगर से कुछ ऊंचाई पर, जहां आजकल बणगूजर झोपड़ियां बनाकर टिकतेहैं, सम्भवत: दुर्ग या नगर का विशिष्ट भाग था। जिसकी सूचना यत्र - तत्र बिखरी, कटी-हुई शिलाओं से मिलतीहै। नगर में भवनादि के निर्माण केलिए विशाल लाल ईंटों का प्रयोग हुआथा, जो आकार - प्रकार में वीरभद्र में प्राप्त ईंटों के समान थीं। अब भी वनप्रदेश में दूर - दूर तक अगणित टूटीहुई तथा उनके साथ कुछ पूरी ईंटें भी मिलजातीहैं।

सौ वर्ष पूर्व पाण्डुवाला में प्रासादों और मन्दिरों के अवशेष भारी मात्रा में उपलब्ध थे। वहां की अनेक मूर्तियां और चित्रित शिलाओं को दिल्ली तथा जयपुर के मूर्तिव्यापारी उठालेगए।

स्तूप— पाण्डुवाला में एक विशाल बौद्धस्तूप था। उसके ऊपर अब छै फीट से लेकर बारह फीट की ऊंचाई तक मिट्टी फैलीहै। सबके ऊपर घना वन उगाहुआहै। सं० २०२५ (1968 ई०) के ग्रीष्म में पाण्डुवाला के खण्डहरों का अध्ययनकरते समय मैं उस स्तूप के पास पहुंचा। पाण्डुवाला सोत ने स्तूप को बीच से काटडालाहै। जिससे स्तूप में दबाईगई सामग्री का कुछ अंश दिखाईदेताहै। कुछ वर्षों से नदी मलवा लाकर उस कटेहुए अंश को पुन: रेत - बजरी और पत्थरों से ढकनेलगीहै।

अब भी सोत की तलहटी के दोनों ओर दूर - दूर तक अगणित मृतिकापात्रों के अवशेष दिखाईदेतेहैं । इनमेंसे अनेक छोटे पात्र सावधानी से खोदनेपर पूरे निकलआतेहैं ।

मैंने सोत के दोनों ओर, तीन स्थानों पर, मजूरों तथा लालढांग विद्यालय के छात्रों की सहायता से खुदाई करके अनेक मृतिकापात्रों को प्राप्त कियाहै ।

सबसे छोटे पात्रों का प्रयोग सम्भवत: दीपकों के रूप में होताथा । ये वर्तमान दीपकों से मिलते - जुलतेहैं । इनसे बड़े पात्र अनेक आकार - प्रकार की कटोरियों और प्याले - तशतरियों के समान हैं । इनका प्रयोग छोटी - छोटी उपयोगी वस्तुओं, नमक, मसाला, पुष्प, सुगन्धित सामग्री, धूप, तैल आदि पदार्थों को रखनेकेलिए होताथा । इनको पतली रेखाओं के वृत्तों से सजायागयाहै । दो पात्रों की तलहटी में धुएँ के काले चिह्नों से विदित होताहै कि उनमें धूप जलाईगईथी ।

जिन कटोरियों का प्रयोग द्रवपदार्थों को रखने, या दुग्ध, यवागू आदि पीने केलिए होताथा, उन्हें बिलकुल वृत्ताकार न रखकर पिचकाकर लम्बोतरा बनायागयाहै । इन्हें भी रेखाओं के वृतों से सजायागयाहै ।

जिन थालियों पर भिक्षु स्वयँ भोजन करतेथे, या जिन पर सामग्री रखकर बुद्ध या बोधिसत्व आदि के सन्मुख अर्पित करतेथे, उनकी पेन्दी में भीतर की ओर मध्य में एक छोटा-सा गोला बनाहै । इसे स्तूप का द्योतक मानाजाताथा [१] । ऐसे स्तूपवाले पात्रों में रखीहुई सामग्री पुनीत मानीजातीथी [२]। कुछ पात्रों के मध्य में गोला न बनाकर समानान्तर रेखाओं से एक छोटा - सा वृत्त बनायागयाहै । वह भी सम्भवत: स्तूप का ही द्योतक है ।

यहां अगणित आकार - प्रकार की मिट्टी की बनी कूँडियां, चाटियां, मटकियां, मटके और घड़े थे । खोदते समय उनके कुछ भाग टूटगएहैं । फिर भी उनके उपरले भाग या गले पूरे निकलआएहैं ।

इन पात्रों मेंसे कुछ पर गले से नीचे सम्भवत: कांच के चूरे से चमक लानेका प्रयत्न कियागयाथा । अनेक पात्रों पर बाहर से किसी चिपकदार वस्तु का लेप कियागयाथा । उन्हें धोते समय अँगुलियां चिपकतीथीं । ये पात्र लाल रङ्ग के हैं । कुछ पात्रों के गलों पर वृत्त बनाकर सौन्दर्य लायागयाहै ।

इस स्थान पर मध्य में, अनेक पात्रों के बीच में तीन मृतिकापात्रों में अस्थियां रखीहुईथीं , जो मृतिका में बदलचुकीथीं । पात्रों में मृतिका की उपरली परत के नीचे रिक्त स्थान मिलने से विदित होताहै कि अस्थियों के साथ उनमें सम्भवत: जल आदि रखागयाथा । उस मृतिका की छानबीन करने पर उसमें कैलशियम फौसफेट, आइरन फ्लोराइड, सोडियम तथा पोटासियम सल्फेट प्राप्तहुएहैं ।

१- २- राय गोविन्दचन्द — प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन, पृ० ३५

इन पात्रों मेंसे एक पात्र टूटगया। किन्तु दो पूरे निकलआए। दो बड़े पात्रों में जल बाहर निकालने केलिए टूटी बनीहैं। छोटे पात्र में टूटी नहीं है। आकार - प्रकार में बड़े पात्र राय कृष्णदास की पुस्तक 'प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन' के अन्त में छपे टूटीवाले पात्र के चित्र (फोटोग्राफ)से पूरा मेलखातेहैं। राय कृष्णदास ने उस पात्र को कुशाणकालीन मानाहै।

इस स्थान की उपरली सतह से प्राप्त कुछ पात्रों के नमूने मैंने पुरातत्वविभाग को भेजेथे। जांच करने पर उन्हें ईसा की चौथी शती, सँ० ३५८ - ४५७ वि० (301-400 ई०) में निर्मित पायागया।

पांडुवाला और निकंटवर्ती प्रदेश में, हरिद्वार के ठीक सन्मुख, गङ्गाजी के बाएं तट पर चण्डीमन्दिर के आस-पास दूर-दूर तक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री बिखरीपड़ीहै, जिसकी खुदाई और अध्ययन से उत्तराखण्ड के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा।

फूरर ने पाण्डुवाला की पहिचान प्राचीन ब्रह्मपुर से कीहै [१]।

१- फूरर — मोन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज आव ना० वे० प्रो०, जि० २, पृ० ४५ - ४६

जयदास और उसके वंशज

छागलेश की प्रशस्ति— देहरादूनजिले में, चकरोता से २५ मील पूर्व की ओर यमुना और मोरदगाड के सँगम पर स्थित लाखामण्डल नामक स्थान के एक प्राचीन मन्दिर में एक खण्डित शिलालेख प्राप्त हुआहै [१]। यह शिलालेख ११″ × १३″ की शिला पर बड़ी सावधानी से खोदागयाथा [२]। २० पँक्तियों में लिखीगई इस प्रशस्ति में सँस्कृत भाषा और वसँततिलका छन्द का प्रयोग हुआथा [३]।

कहाजाताहै कि रुहेला आक्रान्ताओं ने लाखामण्डल की अनेक अतिसुन्दर मूर्तियों को तोड़ - फोड़कर नष्टकरदियाथा [४]। सम्भवतः उसी समय इस प्रशस्ति को भी नष्टकरने का प्रयत्न कियागया। पहिली, दूसरी, तीसरी, पांचवीं और छटी पँक्ति का अधिकांश सुरक्षित है। चौथी पँक्ति का लगभग आधा भाग नष्ट होगयाहै। सातवीं पँक्ति से आगे अनेक स्थानों पर लेख सर्वथा नष्ट करदियागयाहै [५]।

यह प्रशस्ति छागलेश या छागलेशकेतु नामक किसी राजा ने लिखवाईथी। डा० छावड़ा ने लिपि के आधार पर प्रशस्ति की तिथि ईसा की पांचवीं शती ठहराईहै [६]। इसलिए प्रशस्ति को अँकित करवानेवाले छागलेश को ईसा की पांचवीं शती में विद्यमान् मानसकतेहैं।

जयदास और उसके वंशज

प्रशस्ति का आरम्भ 'सिद्धम्' से कियागयाहै। आरम्भ में नागेन्द्रतनया और पशुपति का स्मरण करने के पश्चात् [७] नरपति जयदास का उल्लेख है। इसलिए उसीको वँश का सँस्थापक मानसकतेहैं।

१- ३- जो० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, जुलाई १९४४, पृ० ८१

४- वाल्टन — देहरादून गजेटियर, पृ० २३६

५- जो० यू० पी० हिस्टौरिकल सो० जुलाई, १९४४, पृ० ८१ - ८३

६- जो० यू० पी० हिस्टौरिकल सो० जु० १९४४, पृ० ८१

७- 'सिद्धम्। नत्वा नगेन्द्रतनयां परिहासक (श्रीम्)
(धृत्वा सदा) पशुपतेरतिचारुरूपम्॥' — पंक्ति—१

प्रशस्ति से निम्न नरेशों की नामावली मिलतीहै :—

सं०	नाम	उपाधि
१-	जयदास [1]	नरपति
२-	. . . ?	नृपति
३-	गुहेश	क्षिपति
४-	अचल	अवनीपतीश
५-	. . . ?	?
६-	छागलेशदास	?
७-	रुद्रेशदास	नृपतेश
८-	अजेश्वर, छागलेश (छागलकेतु)	नृप

प्रशस्ति में जयदास और उसके वँशजों को केवल नरपति, नृपति, क्षिपति, अवनीपति, नृपतेश बतलायागयाहै। शक - कुशाणों के समय से महाराजा. राजातिराज आदि उपाधियों का प्रयोग चलपड़ाथा। इसलिए जयदास और उसके वँशजों के शासित प्रदेश को अतिविस्तृत नहीं मानसकते।

प्रशस्ति से जिन नरेशों के नामों की सूचना मिलतीहै, उनके कार्यकलाप, युद्ध, विजय, शासित प्रदेश तथा राज्यावधि के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिलती।

इन नरेशों मेंसे किसी भी नरेश की अभीतक कोई मुद्रा नहीं मिलीहै, तथा न किसी अभिलेख या प्राचीन ग्रन्थ से उनके सम्बन्ध में कोई सूचना प्राप्तहुईहै।

छागलेश (छागलकेतु)

अन्तिम नरेश छागलेश को प्रशस्ति में छागलकेतु तथा अजेश्वर भी कहागयाहै। उसकी पत्नी का नाम गुणदेवी था। उसके पुत्र की तुलना इन्द्र और शची के पुत्र जयन्त से कीगईहै। लेख का वह अँश, जिसमें उस राजकुमार का नाम था, खण्डित होगयाहै।

१- 'आसीत् पुरा नरपतिर्ज्जयदास नामा।
तस्यात्मज यश्च नृपति . . . . . .॥
तस्माद् गुहेश इति च क्षितिपो वभूव।
तस्माद् अभूत अचलेत्यवनीपतीश ॥
. . ., ... छागलेशदास। . . . .
रुद्रेशदास इति तत् तनयस् च जज्ञे।
तस्माच्च रुद्रनृपतेश , ... केतु ॥
देव्यां अजेश्वर नृपात् गुणवान् गुणायाम्।
. . . . हुतभुज्यां अधिपाज्जयन्ता: ॥ —— पंक्ति २

— जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, जुलाई १९५४, पृ० ८९ - ९०

प्रशस्ति की अँतिम १३ पँक्तियों में सम्भवत: छागलेश या अजेश्वर के राज्यकाल से सम्बन्धित कुछ सूचनाएँ थीं। इस महत्वपूर्ण अँश के नष्ट होजाने के कारण इतिहास को भारी क्षति पहुँचीहै।

राज्यावधि— छत्रेश्वर, भानु और रावण का राज्यकाल गसुदेव की मृत्यु के पश्चात् से लेकर सँ० ३४७ वि० (290 ई०)तक मानाजासकताहै। जयदास और उसके सात वंशजों की राज्यावधि लगभग ११० वर्ष मानसकतेहैं। इन अश्वमेधकर्त्ता शिवभवानी और शीलवर्मन् के वँशजों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। अश्वमेधकर्त्ता नरेशों की राज्यावधि सँ० ३४७ - ४०७ वि० (290 - 350 ई०) मानकर जयदास और उसके वँशजों की राज्यावधि सँ० ४०७ - ५१७ वि० (350-460 ई०) के आसपास तबतक अस्थायी - रूप से मानसकतेहैं, जबतक उनके सम्बन्ध में अन्य कोई प्रामाणिक सूचना मिलतीहै। गुप्तसम्राटों से जयदास और उसके वँशजों के क्या सम्बन्ध थे, यह अभीतक अज्ञात है।

शासित प्रदेश— छागलेश या उसके पूर्वंजों के शासित प्रदेश के सम्बन्ध में निश्चित - रूप से कुछ कहना कठिन है। सम्भवत: उनका राज्य यमुना के दोनों तटों पर फैलाथा। यमुना से काली तक तथा भाबरप्रदेश से जन्सकरश्रेणी तक फैल कुलिन्दजनपद का कितना अँश उनके राज्य के अन्तर्गत था, इसकी सूचना अप्राप्य है। प्रशस्ति के उस भाग में जो नष्ट होचुकाहै, क्या सूचनाएँ थीं, यह अज्ञात है।

शिक्षा का प्रचार— छागलेश के राज्यकाल में सँस्कृतभाषा के पठन - पाठन का क्रम चलाआरहाथा। शुद्ध सँस्कृत में अति ललित छन्दों की रचना करनेवाले विद्वान उपलब्ध थे। जन - साधारण में शिक्षा का प्रचार था। सँस्कृत छन्दों में लिखेगए अभिलेखों को पढ़ने एवँ समझनेवालों की, भारत के अन्य भागों के समान इस प्रदेश में भी, कमी न थी।

लाखामण्डल— छागलेश और उसके पूर्वजों की राजधानी कहां थी, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। उनके राज्य के अन्तर्गत लाखामण्डल महत्वपूर्ण स्थान था। लाखामण्डल का प्राचीन नाम लक्षमण्डल या लाक्षामण्डल बतलायाजाताहै। विश्वास किया जाताहै कि इसी स्थान पर दुर्योधन ने पांडवों को जीवित जलाने - हेतु लाक्षागृह का निर्माण करायाथा।

प्राचीनकाल में यमुना और उसकी सहायकों के सँगमस्थल या प्रयागों की उतनी ही मान्यता थी जितनी मान्यता बदरीनाथ तक मोटरमार्ग बनने से पूर्व अलकनन्दा और उसकी सहायकों के सँगमस्थल प्रयागों की थीं। यमुना और मोरदगाड के सँगम पर बसे लाखामण्डल को अति प्राचीनकाल में ही पुनीतस्थल मानाजानेलगाथा।

यहां पड़ी एक विशाल केदारशिला की शिवजी के प्रतीक के रूप में पूजा होतीहै[1]। यहां राजा छागलेश ने उस शिवमन्दिर का निर्माण कियाथा, जिसमें यह प्रशस्ति लगीहै। पीछे यहां अनेक देवी - देवताओं के मन्दिर बनगए, जिनके विध्वँस आज भी देखेजासकतेहैं[2]। सम्भवत: यहां दुर्ग भी था। अभीतक यहां एक सुरङ्ग मिलतीहै[3], जिससे होकर

४- वाल्टन — देहरादून-गजेटियर, पृ० २३६

यमुनातट तक पहुँचने का मार्ग था। अनुमान कियाजाताहै कि यह वही सुरङ्ग है, जिससे होकर पाण्डव लाक्षागृह से भागेथे। पीछे भी शत्रुओं के आक्रमण के समय इस सुरङ्ग का प्रयोग कियाजाताथा [१]।

सम्भवतः जयदास और उसके वंशजों के सारे राज्य का या उनके राज्य के अन्तर्गत किसी मंडल (विषय=जिला) का मुख्यालय लाखामण्डल में था। यदि विषय का मुख्यालय लाखामण्डल में रहाहो, तो राज्य का मुख्यालय सम्भवतः बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) में या कालकूट (कालसी) में रहाहोगा।

स्थापत्य— जयदास के वंशजों के राज्यकाल में स्थापत्य और मूर्तिनिर्माणकला में बड़ी उन्नति हुईथी। उनके राज्यकाल में निर्मित मन्दिर अब विध्वस्त होचुकेहैं, तथा उनकी अधिकाश मूर्तियां टूट - फूट गईहैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार लाखामण्डल की कई दर्जन मूर्तियों मेंसे कम से कम दो को पांचवीं शती ईसवी की मानाजासकताहै [२]। उत्तर की ओर स्थित बड़े शिवलिङ्गवाले मन्दिर के द्वार पर जय और विजय नामक द्वारपालों की अतिसुन्दर मूर्तियां हैं। इन्हें उत्तम कालीशिलाओं से बनायागयाहै [३]। मन्दिर के आगे खड़ी नन्दीगण की दो प्रतिमाएँ भी उसी खान की शिलाओं से बनाईगईहैं, जिस खान की शिलाओं से द्वारपालों की प्रतिमाएँ बनाईगईहैं [४]।

द्वारपालों की मानवाकृति है। उनके केवल दो हाथ हैं। बाहर की ओर वाले हाथ में वे दोनों गदा उठाएहुएहैं। उनका दूसरा हाथ उनकी जँघा पर है। दोनों के शिर पर अतिसुन्दर रत्नजटित मुकुट है। उनके गले में मुक्ताओं का एकावलीहार लटकरहाहै, जिसका मध्यवर्ती मनका दूसरों से बड़ा और लम्बा है। वे छोटे जांघिया पहनेहुएहैं, जो कमर पर करधनी से बँधाहै [५]।

उनकी आकृतियों से ओज, साहस और शौर्य टपकतेहैं। दोनों प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर बनीहैं। उन पर लगी पालिश भी अति उत्तम है [६]। शैली की दृष्टि से द्वारपालों की ये मूर्तियां, गुप्तयुग, पांचवीं शती ईसवी की मानीजासकतीहैं। इसलिए इनके निर्माण का श्रेय प्राचीन शिवमन्दिर के निर्माता, एवँ प्रशस्ति को अंकित करानेवाले छागलेश (अजेश्वर) को मिलनाचाहिए।

धार्मिक मान्यताएं— प्रशस्ति से पता चलताहै कि छागलेश के राज्यकाल में शैवसम्प्रदाय की ओर अधिक आकर्षण था। प्रशस्ति के आरम्भ में 'सिद्धम्' अंकित कियागयाहै। उसके पश्चात् नागेन्द्रतनया और पशुपति की स्तुति दीगईहै। जिससे विदित होताहै कि राजपरिवार में उमा - महेश्वर की पूजा प्रचलित थी। छागलेश द्वारा शिवमन्दिर के निर्माण से भी यही विदित होताहै।

१- वाल्टन — देहरादून - गजेटियर, पृ० २३६

२-६- जौ० यू० पी० हिस्टोरिकल सो० जुलाई, १९४४, पृ० ८१ - ८३

देवप्रयाग के अभिलेख— देवप्रयाग में रघुनाथमन्दिर के सामने की शिला पर अंकित कतिपय ब्राह्मीअभिलेखों को डा० छाबड़ा ने दूसरी शती ईसवी से लेकर पांचवीं शती ईसवी तक का मानाहै [1]। इस प्रकार वे अभिलेख कुशाण - राज्यकाल से लेकर छागलेश (अजेश्वर) के राज्यकाल तक के हैं।

उनसे सिद्ध होताहै कि उनदिनों ऋषिकेश - देवप्रयाग होकर उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा बहुप्रचलित होचुकीथी। साहसी तीर्थयात्री उत्तराखण्ड के दुर्गम मार्गों पर चलकर माणाद्वार तक पहुँचतेथे। सम्भवत: उनदिनों माणाद्वार के पास सरस्वतीनदी के उद्गम, देवताल की एवँ सतोपँथ तथा अलकाहिमानी और कैलास - मानसरोवर की भी तीर्थयात्रा होतीथी।

देवप्रयाग के इन अभिलेखों से यह भी बिदित होताहै कि उनदिनों शिव, रुद्र, गुह, स्कन्द, आदित्य तथा मात्रिका — इन देवी - देवताओं से सम्बन्धित नाम रखनेकी प्रथा थी। लोक में इन देवी - देवताओं की मान्यता बहुप्रचलित थी [2]।

१- एपिग्राफिया इंडिका, जि० ३३, पृ० १३३

२- पूर्वोक्त, पृ० १३५

कर्तृपुर के खशाधिपति

कर्तृपुर— समुद्रगुप्त ने अपनी प्रयागप्रशस्ति में, अपने राज्य के प्रत्यन्त, अर्थात् सीमान्त पर स्थित समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल और कर्तृपुर के नृपतियों का उल्लेख कियाहै, जो उसके प्रचण्ड शासन को सब प्रकार के कर देकर, आज्ञा मानकर तथा उसकी सेवा में उपस्थित होकर सन्तुष्ट करतेथे [1]।

समुद्रगुप्त के राज्य के सीमान्त पर कामरूप और नेपाल के पश्चात् कर्तृपुर का उल्लेख होनेसे, इस जनपद की स्थिति, नेपाल के पश्चिम में विदित होतीहै। समुद्रगुप्त के राज्य की सीमा पश्चिम की ओर यमुना और चम्बल तक पहुँचीथी [2]। यमुना से पश्चिम की ओर यौधेय और मद्र गणराज्य थे। उनसे भी पश्चिम की ओर दैवपुत्र-शाहिशाहानुशाही-शक-मुरुण्ड नरेशों का राज्य था [3], जिन्हें परवर्ती कुशाण या किदारकुशाण मानाजाताहै।

फ़्लीट ने नेपाल से पश्चिम की ओर स्थित इस कर्तृपुर जनपद की पहिचान जालन्धरजिले में स्थित करतारपुर से कीहै। जालन्धर, सुनेत्र, सरहिन्द उनदिनों यौधेय गणराज्य के अन्तर्गत थे। इस गणराज्य का प्रयागप्रशस्ति में पृथक् उल्लेख है। इसलिए जालन्धरजिले के अन्तर्गत पृथक् करतारपुर राज्य की कल्पना असँगत है। किसी प्राचीन गाथा, या पुरातात्विक अवशेषों से भी करतारपुर की प्राचीनता सिद्ध नहीं होती।

रायचौधरी की धारणा है कि कर्तृपुरराज्य का विस्तार जालन्धरजिले में स्थित करतारपुर से लेकर गढ़वाल, कुमाऊँ और रुहेलखण्ड तक था [4]। स्मिथ ने उसकी स्थिति कांगड़ा से लेकर गढ़वाल-कुमाऊँ तक मानीहै [5]। ओलढ़ाम आदि विद्वानों ने गढ़वाल

१- 'समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्तृपुरादि प्रत्यन्तनृपतिभिः ..,.... सर्वकरदानाज्ञाकरणप्रणामागमनपरितोषित प्रचण्डशासनस्य ....'— प्रयागप्रशस्ति; उत्तराखड का इतिहास, भाग १, पृ० ३४६

२- आर० सी० मजूमदार — एनशिएंट इंडिया, पृ० २४३

३- प्रयागप्रशस्ति; गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० १६१

४- रायचौधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इंडिया, पृ० ५४४

५- स्मिथ — अर्लि हिस्टरी आव इंडिया, पृ० ३०२

कुमाऊँ, रुहेलखण्ड तक विस्तृत कत्यूरीराज्य का प्राचीन नाम कर्तृपुर मानाहै [1]।

इन विद्वानों को लाखामण्डल में प्राप्त छागलेश की प्रशस्ति का पता न था। प्रशस्ति से विदित होताहै कि समुद्रगुप्त के राज्यारम्भ के आसपास कुलिन्दजनपद के पश्चिमी भाग, यामुनप्रदेश में, जयदास नामक किसी नरेश का राज्य था। जयदास के सात वँशजों ने तथा लाखामण्डल की दूसरी प्रशस्ति में वर्णित बारह यादव नरेशों ने कुल मिलाकर लगभग तीन सौ वर्षों तक यामुनप्रदेश पर शासन कियाथा।

इसलिए कर्तृपुरराज्य यामुनप्रदेश के पूर्व में और नेपाल के पश्चिम में था। उसके अन्तर्गत वर्तमान उत्तरकाशी, टिहरी का कुछ अँश, तथा चमोली, गढ़वाल, पिथौरागढ़, अलमोड़ा, नैनीताल और रुहेलखण्ड की उत्तरी पट्टी का अधिकांश सम्मिलित था, ऐसा मानसकतेहैं।

कर्तृपुर की प्राचीनता— कर्तृपुर या कत्रि एक अत्यन्त प्राचीन नगर था, जिसके नाम से जनपद भी कर्तृपुर कहलानेलगाथा। विक्रमपूर्व पांचवीं शती में पाणिनि ने कत्रि नामक नगर का उल्लेख कियाहै [2], जिसकी पहिचान डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने उत्तराखण्ड के कत्यूर (कत्रिपुर) से कीहै [3]।

समुद्रगुप्त से केवल तीन शती पश्चात् ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर का उल्लेख है [4]। सँवत् ९१० वि० (853 ई०) में कत्यूरीनरेश ललितशूर ने अपना ताम्रशासन कार्तिकेयपुर से प्रसारित कियाथा [5]।

सँवत् ९७७ वि० (920 ई०) में विद्यमान कन्नौज के राजकवि राजशेखर ने काव्यमीमांसा में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत कियाहै, जिसके अनुसार कार्तिकेयनगर की स्थिति किन्नरों के गीतों से ध्वनित गहन गुफाओंवाले हिमालय में थी [6]।

ललितशूर और पद्मट के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर के साथ अन्तराग और टङ्कणपुर विषय (जिले), टङ्कणपुर (नगर), बदरिकाश्रमीय तपोवन, बदरिकाश्रम, योशिका, गरुड़ाश्रम, पलसारि, विष्णुगङ्गा आदि का उल्लेख मिलने तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर विद्वानों की धारणा है कि वर्तमान जोशीमठ ही प्राचीन कार्तिकेयपुर है [7]।

अष्टाध्यायी का कत्रि, प्रयागप्रशस्ति का कर्तृपुर, तथा अभिलेखों के कार्तिकेयपुर, कार्तिकेयनगर और कीर्तिपुर एक ही स्थान के विभिन्न नाम प्रतीत होतेहैं। राज्य की

१- द्र० वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ५६ ; मजूमदार तथा अल्तेकर—वाकाटक - गुप्त - एज, पृ० १३०-३१; पुसलकर — दि क्लैसिकल एज, पृ० ८; मजूमदार तथा जो० रा० ए० सो०, १८६८, पृ० १९८

२- अष्टाध्यायी, ४।२।९५

३- अग्रवाल — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८६

४- ' कार्तिकेयपुरे निम्बसार्यां बलाध्यक्ष लवचन्द्रशकाशाद् दिवरपति धनदत्तेनोपक्रीतम् ... ' — विष्णुवर्मन् का ताम्रशासन; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३५९ - ६०

५- डबराल — उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६८

६- राजशेखर — काव्यमीमांसा, पृ० १२४

७- राहुल — कुमाऊं, पृ० ६५

राजधानी के नाम पर राज्य का नाम रखने की प्रथा प्राचीनकाल से चलीग्राती है। सम्भवत: समुद्रगुप्त के समय कर्तृपुरराज्य की राजधानी का नाम भी कर्तृपुर था। इसकी पहिचान प्राचीन कार्तिकेयपुर (वर्तमान जोशीमठ) से होसकतीहै।

समकालीन नरेश— अनुमान लगताहै कि चार अश्वमेध करनेवाले शीलवर्मन् के पश्चात् उसका राज्य दो भागों में बँटगया।

(१) पश्चिमी भाग या यामुनप्रदेश पर जयदास और उसके वँशजों का अधिकार होगया।

(२) पूर्वी भाग या कर्तृपुर - कार्तिकेयपुरराज्य पर शीलवर्मन् के किसी वँशज का या किसी अन्य वँश के नरेश का राज्य रहा। इस वँश के उस नरेश ने, जो समुद्रगुप्त का समकालीन था, गुप्तसम्राट की अधीनता स्वीकार करलीथी।

समुद्रगुप्त के समकालीन इस नरेश का नाम, वँश, शीलवर्मन् से उसका सम्बन्ध, राज्यावधि और राज्यविस्तार आदि के सम्बन्ध में अभीतक कोई सूचना किसी स्रोत से नहीं प्राप्त होसकीहै।

खशाधिपति

हर्षचरित, देवीचन्द्रगुप्तनाटक, काव्यमीमांसा और सज्जनअभिलेख में वर्णित सूचनाओं के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि :–

समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त ने, जिसे शर्मगुप्त भी कहतेथे, हिमालय में स्थित कार्तिकेयनगर के स्वामी किसी खशाधिपति शकनरेश पर आक्रमण कियाथा। इस आक्रमण के समय वह अपने साथ अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को भी लेगयाथा। जब शर्मगुप्त कार्तिकेयनगर पहुँचगया तो खशाधिपति ने गुप्तसम्राट के वापिस लौटने का सँकीर्ण पर्वतीय मार्ग रुद्ध करदिया। इस सँकट में फँसजाने पर गुप्तसम्राट ने खशाधिपति से सन्धि का प्रस्ताव किया।

शत्रु के सँकट का लाभ उठातेहुए खशाधिपति ने शर्मगुप्त से उसकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को मांगा। तब, एक अनुश्रुति के अनुसार, शर्मगुप्त अपनी पत्नी खशाधिपति को सौंपकर कार्तिकेयनगर से लौटा।

दूसरी अनुश्रुति के अनुसार, जब गुप्तसम्राट अपनी पत्नी को शत्रु के हाथों में सौंपने को प्रस्तुत होगया तो उसके भ्राता चन्द्रगुप्त ने स्वयँ ध्रुवस्वामिनी का वेश बनाकर तथा अपने साथ नारियों के वेश में कुछ सैनिकों को लेकर शत्रु के नगर में ही उसकी हत्या करडाली। उस दिन से कार्तिकेयनगर में उस नरेश (चन्द्रगुप्त) की कीर्ति गाईजानेलगी। और उस नगर पर गुप्तसम्राट का अधिकार होगया।

इस घटना से ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के हृदय में एक - दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़गया। चन्द्रगुप्त ने उन्मत्त होनेका बहाना करके रामगुप्त के प्रासाद में घुसकर उसकी

हत्या करडाली। तत्पश्चात् गुप्तसिंहासन पर बैठकर उसने ध्रुवस्वामिनी को अपनी राजमहिषी बनालिया।

देवीचन्द्रगुप्त नाटक में उल्लेख— इस घटना को लेकर विशाखदत्त ने देवीचन्द्रगुप्त नाटक की रचना कीथी। विशाखदत्त के दूसरे नाटक मुद्राराक्षस के भरतवाक्य [१] के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन थे [२]। विशाखदत्त के पितामह तथा पिता किसी नरेश के सामन्त थे [३]। इसलिए उन्हें राजवंश से सम्बन्धित घटनाओं की प्रामाणिक सूचनाएँ प्राप्त थीं [४]।

देवीचन्द्रगुप्त नाटक अभीतक अप्राप्य है। इस नाटक के थोड़े-से उद्धरण रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र रचित नाट्यदर्पण में उद्धृत हैं। इन उद्धरणों से विदित होताहै कि जब राजा रामगुप्त ध्रुवदेवी को शकनरेश के हाथों में सौंपने को प्रस्तुत होगया तो कुमारचन्द्रगुप्त स्त्रीवेष धारण करके शत्रुवध-हेतु गयाथा [५]।

राहु से पीड़ित चन्द्रकला के समान ध्रुवदेवी का हृदय करुणा, शोक और घृणा से भरगयाथा। क्लीवजन के समान अपनी पत्नी दूसरेको सौंपदेने केलिए प्रस्तुत पति के व्यवहार से ध्रुवदेवी लज्जा, क्रोध, विषाद, भीति एवं घृणा से क्षुब्ध होगईथी [६]।

शकनरेश के वध के उपरांत चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी आपस में प्रेम करनेलगेथे। चन्द्रगुप्त ने अपने मदनविकार को छिपातेहुए उन्मत्तरूप में राजकुल (राजप्रासाद) में प्रवेश कियाथा [७]।

१- 'म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः,
स श्रीमद्वन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः॥' — मुद्राराक्षस, भरतवाक्य

२- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खंड, पृ० ११०

३- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १०९   ४- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, प्रथम खंड, पृ० ६८

५- 'यथा देवीचन्द्रगुप्ते द्वितीयऽङ्के प्रकृतीनामाश्वासनाय, शकस्य ध्रुवदेवींसम्प्रदाने अभ्युपगते राज्ञा रामगुप्तेनारिवधनार्थंयियासुः प्रतिपन्नध्रुवदेवीं नेपथ्यः कुमारचन्द्रगुप्तो विज्ञपयन्नुच्यते एतस्त्रीवेषधारी चन्द्रगुप्तबोधनार्थमभिहितमिव विशेषणसाम्येन ध्रुवदेव्या स्त्रीविशयं प्रतिपन्नम्, इति।'

६- 'रम्यां चारतिकारिणीं च करुणाशोकेन नीतां दशाम्
तत्कालोपगतेन राहुशिरसा गुप्तेव चान्द्रीकला।
पत्युः क्लीवजनोचितेन चरितेनानेव पुंसः सतः
लज्जाकोपविषादभीत्यरतिभिः क्षेत्रीकृता ताम्यते॥'

७- इयमुन्मत्तस्य चन्द्रगुप्तस्य मदनविकारगोपनपरस्य मनोजशत्रुभीतस्य राजकुलगमनार्थं निष्क्रमसूचिकेति।'
— उ०, गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ६८

हर्षचरित में उल्लेख— सातवीं शती में हर्ष के राजकवि बाण ने हर्षचरित में लिखाहै :—

नारी के वेष में छिपेहुए चन्द्रगुप्त ने दूसरे की पत्नी की कामना करनेवाले शकपति को शत्रु के नगर में ही मारडाला [१]।

नौवीं शती में हर्षचरित के प्रसिद्ध टीकाकार शँकरकवि ने बाण के पूर्वोक्त वाक्य की टीका करतेहुए लिखाहै :—

शकाधिपति शकों का आचार्य (स्वामी) था। वह चन्द्रगुप्त के भ्राता की पत्नी ध्रुवदेवी को प्राप्तकरने का अभिलाषी था। चन्द्रगुप्त ने ध्रुवदेवी का वेष धारण करके तथा स्त्रियों का वेष धारण किएहुए पुरुषों को साथ लेकर उस खशाधिपति का वध करडाला [२]।

काव्यमीमाँसा में उल्लेख— दसवीं शती में कन्नौजनरेश यशोवर्मन् के राजकवि राजशेखर ने काव्यमीमांसा में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत कियाहै। उसके अनुसार :—

किन्नरों की मधुरध्वनि से गूँजतीहुई गहन गुफाओंवाले हिमालय के जिस कार्तिकेयनगर में, रुद्धगति होजानेसे राजा शर्मगुप्त साहस खोकर रानी ध्रुवस्वामिनी को खशाधिपति के पास सौंपकर, जहांसे लौटआयाथा, उसी कार्तिकेयनगर में, हे राजन्! नारियों का समूह अब तुम्हारी कीर्ति गारहाहै [३]।

श्रृंगारप्रकाश में उल्लेख— ग्यारहवीं शती में धारा के विद्वान् और अनेक ग्रन्थों के रचयिता राजा भोज ने अपने ग्रन्थ श्रृङ्गारप्रकाश में देवीचन्द्रगुप्तनाटक से कुछ वाक्यों को उद्धृत करतेहुए लिखाहै :—

स्त्रीवेष में प्रच्छन्न चन्द्रगुप्त अरिपुर (अलिपुर) में शत्रु के स्कन्धावार में शकपति के वध केलिए गया [४]।

सञ्जन-ताम्रपत्र में उल्लेख—शक सँवत् ७९५=वि० सं० ९३० में राष्टकूट-नरेश अमोघवर्ष प्रथम ने अपने एक ताम्रशासन में लिखाहै कि एक गुप्तनरेश ने जो लक्ष-करोड़ मुद्राएँ दानदेने केलिए विख्यात था, अपने भ्राता की हत्याकरके उसके राज्य को और

१- 'अरिपुरे परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तः चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयत्'।
— हर्षचरित, उ० ६

२- 'शकानामाचार्यः शकाधिपतिः। चन्द्रगुप्तभ्रातृज्जायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवी-वेषधारिणा स्त्रीवेषजनं परिवृतेन व्यापादितः' — शँकरकवि की टीका, हर्षचरित, उ० ६,

३- 'दत्वा रुद्धगतिः खशाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीम्
यस्मात् खण्डितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृपः।
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणत् क्वणत् किन्नरैः
गीयन्ते तव कार्तिकेयनगरे स्त्रीणां गणैः कीर्तयः॥' — काव्यमीमांसा, पृ० १२४

४- 'स्त्रीवेषनिह्नतः चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारमलिपुरं शकपतिवधायागमत्।'
— उ०, वासुदेव उपाध्याय—गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० १९

उसकी दीन राजमहिषी को छीन लियाथा [१]। अमोघवर्ष उस दानी गुप्तनरेश से भी अधिक दानशील था। इस ताम्रशासन में दान केलिए विख्यात उस गुप्तनरेश के नाम का उल्लेख नहीं है। उसी शती में लिखगए सुभिक्षराज के ताम्रशासन से विदित होताहै कि चन्द्रगुप्त नामक नरेश अपनी दानशीलता केलिए पौराणिक वलि, वैकर्तन और दधीचि के समान प्रसिद्ध था [२]।

मुजलुत्तवारीख की कहानी— १२ वीं शती के एक ऐतिहासिक ग्रन्थ मुजलुत्तवारीख में रव्वाल और बरकमारीश दो भ्राताओं की कहानी है। इस कहानी के अनुसार रव्वाल नामक बड़े भ्राता ने, छोटे भ्राता बरकमारीश द्वारा स्वयम्बर में प्राप्त राजकुमारी पर मुग्ध होकर उसे अपनेलिए रखलिया। कुछ समय पश्चात् शत्रु के आक्रमण से पराजित होकर रव्वाल सन्धिस्वरूप अपनी पत्नी तथा अपने सामन्तों की पुत्रियां विजेता शत्रु को सौंपने केलिए प्रस्तुत होगया। बरकमारीस ने स्वयँ राजकुमारी का वेष बनाकर तथा कतिपय सामन्त पुत्रों को भी राजकुमारियों के वेष में अपने साथ लेजाकर शत्रु की हत्या करदी और उसकी सेना को मार भगादिया।

रव्वाल का बरकमारीस के प्रति सन्देह उत्पन्न होगया। इस पर बरकमारीस ने पागल बनने का बहाना करलिया। तथा एकदिन राजप्रासाद में प्रवेश करके रव्वाल का वध करदिया। उसने तब सिंहासन पर स्वयँ बैठकर उसकी रानी को अपनी पत्नी बनालिया। बरकमारीस का प्रताप दूर दूर तक फैला और समस्त भारत पर उसका अधिकार होगया।

विद्वानों का अनुमान है कि इस कहानी का बरकमारीस विक्रमादित्य है और उसके द्वारा प्राप्त रानी ध्रुवस्वामिनी है [३]।

विक्रमोर्वशी में छाया— विद्वानों की धारणा है कि कालिदास ने अपने नाटक विक्रमोर्वशी की रचना इसी कथानक को लेकर कीहै। विक्रमोर्वशीनाटक में नायक का नाम पुरूरवा होने पर भी नाटक का नाम पुरूरवा - उर्वशी न रखकर विक्रमोर्वशी रखागयाहै [४]।

नाटक के अनुसार महेन्द्र की प्रेयसी उर्वशी को जब दानव केशी हरलेगया तो

१- 'हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरत् देवीं च दीनां ततो,
लक्षं कोटिमलेखन किल किलो दाता स गुप्तान्वयः।
— हिस्टोरिकल ऐंड लिटरेरी इन्सक्रिपशन्स, पृ० २५३

२- करि - तुरङ्ग - विभूषणान् अनवरतप्रदान - तिरष्कृताशेष - वलि-वैकर्तन-दधीचि-चद्रगुप्त-चरितश्-
चतुरधिपरिखा - पर्यन्त मेखलादान्तः क्षितिर् भर्त्ताः -'
— उ०, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८५

३- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ७६

४- चन्द्रवली पांडेय — कालिदास, पृ० १५

सूचना पाकर पुरूरवा ने उसे दानव से छुड़ायाथा। और फिर उसे अपनी पत्नी बनालियाथा। विद्वानों की धारणा है कि इस नाटक में पुरूरवा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का, उर्वशी ध्रुवस्वामिनी की, केशीदानव खशाधिपति का तथा महेन्द्र रामगुप्त का प्रतिनिधि है [१]।

इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि घटना की सत्यता में कोई सन्देह नहीं है [२-३]।

शक-खश-अधिपति— देवीचन्द्रगुप्त नाटक, हर्षचरित, उसकी टीका तथा श्रृङ्गारप्रकाश में ध्रुवस्वामिनी की कामना करनेवाले नरेश को शक बतायागयाहै। काव्य-मीमांसा में उसे खशाधिपति कहागयाहै। खशाधिपति का अर्थ खशजाति का नरेश या खशप्रजा का स्वामी भी होसकताहै। यदि विशाखदत्त, बाण और राजशेखर को प्राप्त सूचनाएँ सही थीं तो अनुमान लगताहै कि कार्तिकेयनगर के नरेश का सम्बन्ध तो शकजाति से था, किन्तु उसकी प्रजा का अधिकांश खशजाति से सम्बन्ध रखताथा।

घटनास्थल— हर्षचरित के अनुसार चन्द्रगुप्त ने कामिनी (नारी) का वेष बनाकर परस्त्री की कामना करनेवाले शकनरेश का वध अरिपुर (शत्रु के नगर) में ही करडालाथा। काव्यमीमांसा के अनुसार उस शत्रु नगर का नाम कार्तिकेयनगर था, जो हिमालय में स्थित था। कुछ विद्वान् कार्तिकेयनगर की पहिचान कांगड़ाजिले में स्थित नगरकोट से करतेहैं [४], तथा कुछ उसे पश्चिमी हिमालय में कहीं बतलातेहैं [५]।

डा० भाण्डारकर की धारणा है कि कार्तिकेयनगर उसी कर्तृपुर नामक प्रदेश में स्थित था, जो समुद्रगुप्त के समय एक प्रत्यन्तदेश था [६]। वासुदेव उपाध्याय ने कार्तिकेयनगर की पहिचान अलमोड़ाजिले में गोमतीनदी के तट पर बैजनाथग्राम के पास कार्तिकेयपुर से कीहै [७]। बैजनाथग्राम के पास स्थित कार्तिकेयपुर का सर्वप्रथम उल्लेख कत्यूरीनरेश लखनपालदेव के अभिलेख में वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर के नाम से मिलताहै। लखनपालदेव के पूर्वज ललितशूर और पद्मट के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर के साथ टङ्कणपुर, बदरिकाश्रम, योशिका, गरुड़ाश्रम, पलसारी और विष्णुगङ्गा का उल्लेख मिलने से विद्वानों का अनुमान है कि कत्यूरीनरेशों की आदिराजधानी कार्तिकेयपुर (कत्यूर) जोशीमठ में थी [८]। पीछे, जब अनेकमल्ल और क्राचल्लदेव ने

१- चन्द्रवली पांडेय — कालिदास, पृ० १५ - १६

२- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ५६३ - ६६

३- चन्द्रवली पांडेय — कालिदास, पृ० १५, १६ तथा द्र० मिरासी — कालिदास, पृ० ५४; रमाशंकर तिवारी — कालिदास, पृ० १२; चन्द्रगुप्त विद्यालंकार — भारतीय इतिहास की मीमांसा, पृ० ७५-७७

४- चन्द्रवली पांडेय—पूर्वोक्त, पृ० ५६४

५- चन्द्रगुप्त विद्यालंकार — भारतीय इतिहास की मीमांसा, पृ० ७५ - ७७

६- मालवीय कमोमेरेशन वोल्यूम, पृ० १६६

७- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० ७४

८- राहुल—कुमाऊं, पृ० ६७

कार्तिकेयपुर (जोशीमठ) का विध्वँस करदिया तो कत्यूरीनरेशों ने अपनी राजधानी बैजनाथ में स्थापित कीथी और उसे वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर नाम दियाथा [१]।

इसलिए ध्रुवस्वामिनी वाली घटना का स्थल प्राचीन कार्तिकेयपुर, वर्तमान जोशीमठ के आसपास होनाचाहिए। विक्रमोर्वशीनाटक के अनुसार भी पुरुरवा ने, जिसे नाटक में विक्रम कहागयाहै, केशीदानव द्वारा उर्वशी के अपहरण की सूचना हेमकूट के निकट सुनीथी। तथा हेमकूटपर्वत पर, मन्दाकिनीनदी की उपत्यका में ही, वह आगे चलकर उन्मत्त होकर उर्वशी की ढूँढ करतारहा। ये दोनों स्थल जोशीमठ के पास हैं। यदि विक्रमोर्वशीनाटक पर ध्रुवस्वामिनी वाली घटना की छाया का कुछ आधार है, तो घटनास्थल को जोशीमठ के आसपास मानाजासकताहै।

घटना-तिथि—गुप्तनरेशों की राज्यतिथियां गुप्तसँवत् के आरम्भ होनेकी तिथि पर आधारित हैं। इस सँवत् को किस गुप्तनरेश ने कब प्रचारित कियाथा, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि गुप्तसँवत् का आरम्भ वि० सँ० ३७६ (319 - 20 ई०) में चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण के दिन से हुआथा। इस तिथि से गणना करने पर समुद्रगुप्त का राज्यकाल वि० सँ० ३९७ से ४३२ (340-375 ई०) तक मानाजाताहै।

समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् रामगुप्त को सिंहासन मिला। मथुरा के समीप प्राप्त शिवप्रतिमा के निकट के शिलालेख से विदित होताहै कि गुप्तसँवत् ६१, वि० सँ० ४३७ (380 ई०) में समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त को सिंहासन मिलचुकाथा [२]। उसीवर्ष यह घटना हुई। रामगुप्त को वि० सँ० ४३२ (375 ई०) में सिंहासन मिला। और उसके राज्यकाल के पांचवें वर्ष में इस घटना के पश्चात् उसका वध कियागया [३]।

युद्ध का कारण— खशाधिपति और रामगुप्त के मध्य युद्ध क्यों हुआ ? रामगुप्त को अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से हिमालय में, खशाधिपति के दुर्गमप्रदेश में, सेना लेकर क्यों जानापड़ा ? समुद्रगुप्त - जैसे प्रचण्डप्रतापी सम्राट का पुत्र किन परिस्थितियों में ऐसे सँकट में फँसगया कि उसे अपनी पत्नी अपने शत्रु को सौंपकर परित्राण पानेकी शर्त स्वीकार करनीपड़ी ? पत्नी भी साधारण रखेलन नहीं, वरन् जिसे देवी (राजमहिषी) कहागयाहै।

इन प्रश्नों का समुचित उत्तर देनेकेलिए प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। रामगुप्त का नाम गुप्त - अभिलेखों में नहीं मिलता। काच की मुद्रा को रामगुप्त की मुद्रा

१- राहुल—कुमाऊं, पृ० ६७

२- 'सिद्धम् ! भट्टारक महाराज (राजाधि) राज श्री समुद्रगुप्तस (त्पु) त्रस्य भट्टारक म (हाराज) (राजाधि) राज श्री चन्द्रगुप्तस्य विज (य) राज्यसंवत्सर (रे) (पं) चमे (५) पाठान्तर प्रथमे कालवर्तमान संवत्सरे एक षष्ठे ६० (+) १ . . . ' – एपिग्राफिया इंडिका, जि० २१, पृ० ८८ गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ७८

३- द्र० वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ७८

मानने के तर्क की पुष्टि अन्य स्रोतों से नहीं होती। काव्यमीमांसा में रामगुप्त के स्थान पर शर्मगुप्त और शक के स्थान पर खशाधिपति पाठ है। ऐसे कतिपय तर्कों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इस घटना की सत्यता पर सन्देह कियाहै। पर प्राचीन उल्लेखों के आधार पर, जिन्हें ऊपर दियागयाहै, इस घटना को सहसा निराधार नहीं कहाजासकता।

अनुमान लगताहै कि परमविजेता समुद्रगुप्त के पुत्र रामगुप्त को भी दिग्विजय की सूझी थी। उसने उत्तरभारत के प्रत्यन्त जनपदों को अपने राज्य में मिलाने का विचार कियाथा। नेपाल के साथ उसके पूर्वजों के अच्छे सम्बन्ध थे, इसलिए नेपाल में विशेष कठिनाई न हुई।

इस दिग्विजय-अभियान में उसके साथ उसकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी और भ्राता चन्द्रगुप्त भी गएथे, चन्द्रगुप्त का, देवीचन्द्रगुप्तनाटक के उद्धरणों के अनुसार ध्रुवस्वामिनी से गुप्त प्रेम था।[१], मुजलुत् तवारीख में वर्णित बरकामारीस की कहानी का यदि ऐतिहासिक आधार हो तो ध्रुवस्वामिनी को विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त) ने स्वयम्बर में प्राप्तकियाथा। उसके भ्राता रव्वाल (रामगुप्त) ने उस पर मुग्ध होकर उसे अपनी पत्नी बनालियाथा। इसलिए विक्रमादित्य और ध्रुवस्वामिनी में प्रेम होना स्वाभाविक था। इस कहानी के अनुसार ध्रुवस्वामिनी की गाथा रामायण के बाली और सुग्रीव की पत्नी तारा की गाथा से मेल खातीहै।

अपने छोटे भ्राता द्वारा स्वयम्बर में प्राप्त राजकुमारी को बड़े भ्राता द्वारा अपनेलिए रखलेना उस युग की सामाजिक परम्पराओं के विपरीत था। इसलिए ध्रुवस्वामिनी को चन्द्रगुप्त द्वारा स्वयम्बर में प्राप्तकरने की कल्पना पर विश्वास नहीं कियाजासकता।

उनदिनों अनेक राजवँश गुप्तनरेशों केलिए अपनी राजकुमारियों को भेंटस्वरूप अर्पित करतेथे। समुद्रगुप्त ने इस प्रथा का प्रयागप्रशस्ति में उल्लेख कियाहै[२]। यदि ध्रुवस्वामिनी को, इस प्रथानुसार किसी नरेश ने समुद्रगुप्त के पुत्र राजकुमार चन्द्रगुप्त केलिए भेजाहो, तो उसे रामगुप्त द्वारा अपनेलिए रखलियाजाना, उस युग की प्रथा के विपरीत

१- 'इयमुन्मत्तस्य चन्द्रगुप्तस्य मदनविकारगोपनपरस्य मनोजशत्रुभीतस्य राजकुलगमनार्थं निष्क्रम-सूचिकेति'।

— उ, वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० ६८

२- 'दैवपुत्रशाहिशाहानुशाहीशकमुरुण्डैः सैंहलकादिभिश्च सर्वद्वीपनिवासिभिरात्मनिवेदन कन्योपायनदान-गरुत्मदङ्कस्वविषय-भुक्तिशासनयाचनाद्युपायसेवाकृत ...' जिसको दैवपुत्र शाहि-शाहानुशाहि, शक, मुरुण्ड तथा सैंहलक आदि सारे द्वीपों के निवासी आत्मनिवेदन करते, अपनी कन्याएं भेंट में अर्पित करते तथा जिससे अपने विषय एवं भुक्ति के शासन केलिए गरुड़ की राजमुद्रा से अङ्कित शासन (फरमान) मांगतेथे। - प्रयागप्रशस्ति

न था। जयशँकरप्रसाद ने ध्रुवस्वामिनीनाटक में इसीप्रकार की कल्पना कीहै। ऐसी अवस्था में उसे शत्रु को सौंपने में रामगुप्त को अधिक सँकोच न हुआहोगा।

उत्तराखण्ड पर गुप्त-अधिकार— काव्यमीमांसा के अनुसार शर्मगुप्त अपनी पत्नी खशाधिपति को सौंपकर जिस कार्तिकेयनगर से लौटाथा, उसी नगर में उस नरेश (चन्द्रगुप्त) की कीर्ति गाई जानेलगीथी। इससे विदित होताहै कि खशाधिपति की हत्या के पश्चात् कार्तिकेयनगर पर, और कर्तृपुरजनपद पर, जिसकी राजधानी कार्तिकेयनगर थी, चन्द्रगुप्त का अधिकार होगयाथा।

गङ्गा - यमुना के स्रोतप्रदेश पर गुप्तनरेशों के अधिकार की पुष्टि उत्तराखण्ड में गुप्तकालीन कतिपय मन्दिरों के अवशेषों और मूर्तियों से भी होतीहै। गुप्तनरेश अपनी मुद्राओं पर गङ्गा की मूर्ति अँकित करतेथे। समुद्रगुप्त की व्याघ्रनिहँता मुद्राओं पर देवी मकर पर खड़ीहै। इससे विदित होताहै कि कलाकार मुद्राओं पर पहलेसे आनेवाली देवी की मूर्ति के स्थान पर गङ्गाजी की मूर्ति अँकित कररहाथा [1]।

गङ्गाजी और यमुना के स्रोतप्रदेश से लेकर गङ्गाजी के मुहाने, समुद्र में मिलने तक की सारी भूमि, आर्यावर्त पर अपना अधिकार होजानेसे गुप्तनरेशों ने अपनेको धन्य मानाथा। वे अपने मन्दिरों की द्वारशिलाओं पर गङ्गा - यमुना - अवतरण से लेकर उनके समुद्र में गमन तक का सारा दृश्य बड़े चाव और कुशलता से अँकित करतेथे।

उदयगिरि की बाराहावतारगुफा में, जो निश्चय ही गुप्तकाल की है, दहिनी और बांयीं ओर गङ्गाजी और यमुना का अवतरण तथा उनका समुद्र द्वारा स्वागत बड़ी कुशलता से दिखायागयाहै।

हिमालय के ऊपर स्वर्ग में देवता और गन्धर्व उल्लास से उड़रहेहैं। नीचे अप्सराएँ गाती - बजातीं नृत्य कररहीहैं। दोनों पार्श्वों में, दोनों नदियां, गङ्गाजी और यमुना, देवीरूप में खड़ीहैं। गङ्गाजी मकर पर और यमुना कच्छप पर। टेढ़ी - मेढ़ी रेखाओं द्वारा नदियों का बहना चित्रित कियागयाहै। उसके पश्चात् दोनों के सँगम और फिर सम्मिलितरूप में उनका समुद्र तक पहुँचना अङ्कित है। वहां समुद्रदेव घुटनों तक जल में खड़ाहोकर जलकुम्भ लिए गङ्गा - यमुना का स्वागत कररहाहै [2]।

चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के राज्यकाल में अङ्कित मन्दसौर के शिलालेख में कुमारगुप्त को सुमेरु और कैलास तक के प्रदेश का शासक कहागयाहै [3]। सुमेरु और कैलास

१- अल्तेकर — गुप्तकालीन मुद्राएं, पृ० १०; फलक ३, चित्र १३ - १४

२- कनिंघम — आर्केलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९०५-६, पृ० १९

३- 'चतुस्समुद्रान्त विलोलमेखलां सुमेरुकैलासवृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति'॥
— बन्धुवर्मा का मन्दसौर — अभिलेख

की पहिचान, महाभारत और कालिदास के अनुसार उत्तराखण्ड की गन्धमादनश्रेणी की
शाखाओं से कीजातीहै [१]। विद्वानों की धारणा है कि कुमारगुप्त ने गुप्तसाम्राज्य में अपनी
विजय द्वारा कोई बृद्धि नहीं की। समुद्रगुप्त के राज्यकाल में कर्तृपुर जनपद उसके राज्य
के बाहर एक प्रत्यन्तदेश था [२]। इसलिए कर्तृपुर जनपद को अपने साम्राज्य में मिलाने
का श्रेय चन्द्रगुप्त को है।

खशाधिपति के पूर्व और पश्चात्—उस खशाधिपति का अपने परवर्ती उत्तराखंड के राजवंश से क्या सम्बन्ध था? समुद्रगुप्त के समकालीन जिस नरेश ने गुप्तसम्राट की अधीनता स्वीकार कीथी, उससे उसका क्या सम्बन्ध था? तथा खशाधिपति का वध होजाने पर उसके वंशजों पर क्या बीती? इन बातों को जाननेके लिए साधन उपलब्ध नहीं हैं। यह कहना कठिन है कि समुद्रगुप्त के राज्यकाल से लेकर चन्द्रगुप्त के राज्यकाल तक कितने खश-नरेश हुए।

अनुमानित तिथि - क्रम

कुशाणनरेश –	
वासुदेव प्रथम, परवर्ती कुशाणनरेश	सं० २६३ - ३०७ वि० (206 - 250 ई०)
कुणिन्दनरेश	
छत्रेश्वर, भानु, रावण	सं० ३०० - ३४७ वि० (243 - 290 ई०)
गोविषाण-नरेश–	
मातृमित्र, तत्पुत्र, पृथिवीमित्र	सं० ३०७ - ३४७ वि० (250 - 290 ई०)
अश्वमेधकर्त्ता–	
शिवभवानी, पोणवंशज, शीलवर्मन्	सं० ३४७ - ४०७ वि० (290 - 350 ई०)
यामुन-नरेश–	
जयदेव और वंशज	सं० ४०७ - ५१७ वि० (350 - 460 ई०)
सेनवर्मन् यादव और वंशज	सं० ५१७ - ६७७ वि० (460 - 620 ई०)
कर्तृपुर-नरेश–	
खशाधिपति और वंशज	सं० ४०७ - ४३८ वि० (350 - 381 ई०)
गुप्तसम्राट–	
गुप्त, घटोत्कच, चन्द्रगुप्त	सं० ३२७ - ३९७ वि० (270 - 340 ई०)
समुद्रगुप्त	सं० ३९७ - ४३२ वि० (340 - 375 ई०)
रामगुप्त	सं० ४३२ - ४३८ वि० (375 - 381 ई०)

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ३२२ २- प्रयाग - प्रशस्ति

गुप्त-साम्राज्य में

चन्द्रगुप्त प्रथम

कर्तृपुर जनपद के नरेश ने समुद्रगुप्त के राज्यकाल में उसकी अधीनता स्वीकार करलींथी । फिर भी इस जनपद का समुद्रगुप्त के राज्य की सीमा से बाहर प्रत्यन्तदेश के रूप में पृथक अस्तित्व था। समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल से कर्तृपुर जनपद की स्वतन्त्र सत्ता नष्ट होगई। वह गुप्तसाम्राज्य का अङ्ग बनगया। इस चन्द्रगुप्त द्वितीय का विरुद विक्रमादित्य था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से पूर्व गुप्तराजवँश में गुप्त, घटोत्कच, चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्त, ये चार नरेश होचुकेथे।

वंश के मूलपुरुष गुप्त तथा उसके पुत्र घटोत्कच का राज्य

राज्यविस्तार— मगधप्रदेश के अन्तर्गत सीमित क्षेत्र में फैलाथा। घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम का बिवाह लिच्छविवँश की राजकुमारी कुमारदेवी के साथ हुआथा। अनुमान कियाजाताहै कि इस बिवाह के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त के शासितप्रदेश, शक्ति, वैभव एवँ प्रतिष्ठा, सभी में वृद्धि हुईथी।

चन्द्रगुप्त ने महाराजाधिराज का विरुद धारण कियाथा। उसने स्वर्णमुद्राएँ प्रसारित कीथीं। सँ० ३७६ वि० (319-20 ई०) से आरम्भ होनेवाले गुप्तसँवत् का प्रवर्तक भी प्रायः उसीको मानाजाताहै।

चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र थी। अनुमान कियाजाताहै कि उसके राज्य के अन्तर्गत तिरहुत, दक्षिणी विहार, अवध तथा प्रयाग तक का प्रदेश था [१]।

पुराणों के अनुसार गुप्त के वँशजों ने साकेत, मगध और गङ्गाजी की उपत्यका में स्थित प्रयाग तक के प्रदेश का भोग कियाथा [२]। यद्यपि पुराणों का यह कथन गुप्त के किसी

१- द्र० वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ३४

२- ' अनुगङ्गां प्रयागं च साकेतं मागधांस्तथा । एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ॥ '
— वायुपुराण, ९९।३८३; ब्रह्माण्डपुराण, ३।७४।१९५

भी वँशज केलिए होसकताहै, पर समुद्रगुप्त की प्रयाग - प्रशस्ति में उसके विजितप्रदेशों और प्रत्यन्तदेशों की सूची के आधार पर पुराणों के इस कथन को चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यकाल का द्योतक मानाजासकताहै।

- समुद्रगुप्त

प्रयागप्रशस्ति से विदित होताहैं कि अपने पुत्रों मेंसे समुद्रगुप्त को सबसे सुयोग्य समझकर, चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने जीवनकाल में ही, उसे अपना राज्य सौंपदियाथा [१]।

समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त प्रथम के छोटे - से राज्य को, जो मगध और पूर्वी उत्तर-प्रदेश तक सीमित था, उत्तरभारत में समकालीन सबसे प्रवल राष्ट्र में परिर्वातित करदिया। उसने मध्यदेश के नौ नरेशों का उत्पाटन करके उनके राज्य पर अधिकार जमालिया, और अपने राज्य की पश्चिमीसीमा यमुना तक पहुँचा दी। यमुना से पश्चिम की ओर उनदिनों यौधेय, माद्रक, आभीर आदि गणराज्य थे [२]।

मध्यदेश पर अधिकार करके, और अपने राज्य के सीमान्त पर स्थित समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल तथा कर्तृपुर के नरेशों से एवँ मालव, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक तथा खरपरिकादि गणराज्यों से अपनी अधीनता स्वीकार करवालेने पर[३] समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ की विजय केलिए प्रस्थान किया।

वह मध्यदेश, महाकोसल, महाकान्तार को जीततेहुए कलिङ्ग तक पहुँचाथा। उसके विजयाभियान की अन्तिम सीमा दक्षिण में, कृष्णानदी के तट तक मानीजातीहै। मार्ग के विजित नरेशों से उसने उपयनादि लेकर उनका राज्य उन्हींके अधिकार में रहनेदियाथा [४]।

समुद्रगुप्त का व्यक्तित्व— समुंद्रगुप्त की प्रयाग - प्रशस्ति उसके राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं के उल्लेख के साथ ही उसके व्यक्तित्व पर भी विस्तृत प्रकाश डालतीहै। किसी प्राचीन नरेश के सम्वन्ध में इतनी विस्तृत एवँ प्रामाणिक सूचनाएँ देनेवाला कोई दूसरा अभिलेख अभीतक इस देश में नहीं मिलाहै [५]।

समुद्रगुप्त परम पराक्रमी था। अपने भुजबल से उसने भारत के आधे से अधिक भाग पर विजय प्राप्तकीथी। उसने सैकड़ों समरों में अपने साहस और कौशल का परिचय दियाथा। उसके शरीर पर विभिन्न शस्त्रों के सैकड़ों घाव थे। फिर भी उसका शरीर

१- ' स्नेह-व्याकुलितेन वाष्प-गुरुणा तत्वेक्षिणा चक्षुषा।
य: पित्राभिहितो निरिक्ष्यनिखिलां पाह्येवमुर्वीमिति '।। — प्रयाग - प्रशस्ति, श्लोक ४

२- ३- ' समतटडवाककामरूपनेपालकर्तृपुरादि प्रत्यन्तनृपतिभिः मालवार्जुननायनयौधेयमाद्रकाभीर, प्रार्जुनसनकानींककाकखरपरिकादिभिश्च सर्वंकरदानाज्ञाकरणप्रणामागमन परितोषितप्रचण्डशासनस्य...
— प्रयाग - प्रशस्ति

४- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ५४

५- स्मिथ — अर्लि हिस्टरी आव इंडिया, पृ० २९८

अतिसुन्दर था [१]।

अनेक नरेशों का युद्ध में उत्पाटन करनेवाला होनेपर भी वह उदारहृदय था। तथा दीन, दुखी, अनाथ और आतुर जनों के उद्धार केलिए सदा प्रस्तुत रहताथा [२]।

वह सँगीत का मर्मज्ञ था [३]; उसकी एक मुद्रा पर उसे वीणा बजातेहुए अँकित कियागयाहै। वह स्वयँ श्रेष्ठ कवि था तथा कवियों का आश्रयदाता था [४]। उसका महादण्डनायक हरिषेण, जिसने प्रयाग - प्रशस्ति की रचना कीथी [५], उच्च कोटि का कवि एवँ चम्पूलेखक था।

अपनी दिग्विजय के पश्चात् समुद्रगुप्त ने अश्वमेधयज्ञ कियाथा। और उस अवसर पर नई स्वर्णमुद्राएँ प्रचारित कीथीं। उसके अश्वमेध का उल्लेख प्रयाग - प्रशस्ति में नहीं है। इसका पता उसकी 'अश्वमेधपराक्रम:' मुद्राओं से लगताहै। उन मुद्राओं के अग्रभाग पर 'राजाधिराज: पृथिवीमवित्वा दिवँजयत्याहृत वाजिमेध:' तथा पृष्ट भाग पर 'अश्वमेधपराक्रम:' लिखा मिलताहै [६]।

अनुमान कियाजाताहै कि समुद्रगुप्त ने दीर्घ अवधि तक राज्य कियाथा। उसकी एरण-प्रशस्ति से विदित होताहै कि उसका पारिवारिक जीवन भी बड़ा सुखी था। उसके अनेक सुयोग्य पुत्र एवँ पौत्र थे। उसकी व्रतिनी कुलवधू उसके आनन्द का स्रोत थी [७]। ऐसे पराक्रमी, दीर्घायु, दीर्घकाल तक विशाल साम्राज्य पर शासन करनेवाले, यशस्वी, कलामर्मज्ञ तथा पारिवारिक जीवन में सुखी नरेश सँसार में बहुत कम हुएहैं।

प्रयाग - प्रशस्ति से विदित होताहै कि कर्तृपुर जनपद के नरेश ने समुद्रगुप्त को सब प्रकार के कर देना, उसकी आज्ञाओं का पालन करना तथा समय - समय पर उसकी सभा में उपस्थित होकर उसे प्रणाम करना स्वीकार कियाथा [८]।

रामगुप्त

समुद्रगुप्त के पश्चात् उसके ज्येष्ठपुत्र रामगुप्त (शर्मगुप्त) को सिंहासन प्राप्तहुआ। सम्भवत: उसने भी अपने दिग्विजयी पिता समुद्रगुप्त के समान विजयाभियान

१- प्रयाग - प्रशस्ति, पंक्ति १७ - १८

२- प्रयाग - प्रशस्ति, पंक्ति, २६

३- ४- प्रयाग - प्रशस्ति, पंक्ति, २७

५- प्रयाग - प्रशस्ति, पंक्ति, ३२ - ३४

६- अल्तेकर — गुप्तकालीन मुद्राएं, पृ० ८

७- '[दत्ता] स्य पौरुषपराक्रमदत्तशुल्का,
[हस्त्य] श्वरत्नधनधान्यसमृद्धि युक्ता ।
[नित्यं] गृहेषु मुदिता बहुपुत्र - पौत्र—
[सं] क्रामिणी कुलवधुः व्रतिनी निविष्ठा ॥'

— एरण-प्रशस्ति, हिस्टॉरिकल ऐंड लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स, पृ० ७७

८- प्रयाग - प्रशस्ति, पंक्ति, २३ - २५

आरम्भ कियाथा, और साम्राज्य की सीमा पर स्थित प्रत्यन्तदेशों को अपने राज्य में मिलाने की योजना बनाईथी।

अपनी विजय के सम्बन्ध में पूर्णत: विश्वस्त होकर उसने कर्तृपुर जनपद पर आक्रमण कियाथा। किन्तु पर्वतीयप्रदेश के किसी विषम घाटे पर रुद्धगति होजाने से उसका सारा उत्साह शिथिल पड़गया। उसे खशाधिपति को अपनी पत्नी देकर सन्धि करने केलिए विवश होनापड़ा। उसके भ्राता चन्द्रगुप्त ने नारी वेष में खशाधिपति का वध किया। चन्द्रगुप्त ने अवसर पाकर रामगुप्त का वध करके गुप्तसिंहासन पर अधिकार करलिया, और भ्रातृजाया ध्रुवस्वामिनी को अपनी राजमहिषी बनालिया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य का विरुद धारण कियाथा। उसकी एक पत्नी कुवेरनागा दक्षिण के किसी नागनरेश की पुत्री थी। इस रानी की पुत्री प्रभावती गुप्ता का बिवाह वाकाटकनरेश रुद्रसेन से हुआथा। चन्द्रगुप्त की दूसरी रानी ध्रुवस्वामिनी (ध्रुवादेवी) थी, जिसके पुत्र कुमारगुप्त तथा गोविन्दगुप्त थे।

शक-विजय— तक्षशिला और मथुरा के शक क्षत्रपों का उत्पाटन विम कदफिस के राज्यकाल में होचुकाथा। कुशाणनरेश वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् सतलुज से पूर्व की ओर के प्रदेश से कुशाणसत्ता समाप्त होगई। किन्तु मालवा और सौराष्ट्र में शकक्षत्रपों की राज्यसत्ता उसके पश्चात् भी बनीरही।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिमी भारत की इन शक क्षत्रपियों का उत्पाटन करके उनके प्रदेश को अपने राज्य में मिलादिया। उसने 'शकारि' की उपाधि धारण की। तथा विजितप्रदेश पर अपना स्थायी नियँत्रण रखने केलिए उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया। इसकी पुष्टि चन्द्रगुप्त या कुमारगुप्त के राज्यकाल में लिखेगए भाण 'पादताडितम्' के एक प्रसँग से भी होतीहै [१]। प्राचीन परम्परा के अनुसार विक्रमसँवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य शकारि की राजधानी उज्जयिनी थी। विद्वानों की धारणा है कि सँवद्-प्रवर्तक विक्रमादित्य की गाथाएँ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की गाथाओं में मिलगईहैं।

सप्तसिन्धु-विजय— दिल्ली में कुतुबमीनार के समीप स्थित लौहस्तम्भ के लेख से विदित होताहै कि किसी चन्द्रनरेश ने वङ्ग में, सँघटित रूप में आक्रमणकरनेवाले अपने शत्रुओं को परास्त कियाथा [२]। युद्ध में सिन्धु के सातों मुखों को पारकरके वाह्लीकों पर

१- अहो ! खलु जम्बूद्वीपतिलकभूतस्य सर्वरत्नाविष्कृत (रत्नालंकृत) विभूतेः सार्वभौमनरेन्द्राधिष्ठितस्य सार्वभौमनगरस्य परा श्रीः' — चतुर्भाणी, पृ० १६१ - ६२

२- 'यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान्,
वङ्गेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे।

विजय प्राप्त कीथी [१]। और विष्णुपद नामक पर्वत पर विष्णुध्वज की स्थापना कीथी [२]।

इस स्तम्भलेख के चन्द्रनरेश की पहिचान कुछ विद्वान् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से करतेहैं। लौहस्तम्भलेख के आधार पर कहाजाताहै कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने सिन्धुनदी के सातों मुखों को पारकरके वाह्लिक या बलखदेश को जीताथा [३]। दूसरे विद्वानों की धारणा है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने सिन्धु की सहायकों की उपत्यका अर्थात् सप्तसिन्धु-पंचनद को जीताथा और चिनाव-झेलमनदी तक फैले बाहीकप्रदेश पर अधिकार करलियाथा [४]।

विद्वानों का अनुमान है कि चन्द्रनरेश के अभिलेखवाले पूर्वोक्त लौहस्तम्भ का निर्माण गढ़वाल के शिल्पकारों ने स्थानीय लोहे से कियाथा [५]।

विद्वानों को आश्रय— चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य विद्वानों का आश्रयदाता था। मान्यता है कि उसकी राजसभा में प्रसिद्ध नौ विद्वान रहतेथे, जो उसकी सभा के नवरत्न कहलातेथे। महाकवि कालिदास इनमें सर्वश्रेष्ठ थे।

अनुमान कियाजाताहै कि कालिदास ने समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त की दिग्विजयों के आधार पर रघु की दिग्विजय का वर्णन कियाहै। उनका विक्रमोर्वशी नाटक खशाधिपति द्वारा ध्रुवस्वामिनी के अपहरण और चन्द्रगुप्त द्वारा उसकी रक्षा की घटना की ओर संकेत करताहै। यह भी कहाजाताहै कि उन्होंने कुमारसम्भव की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर कीथी।

१-२- तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका,
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिः वीर्यानिलैर्दक्षिणः॥
प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ,
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णौ मतिम्,
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः॥'

— हिस्टॉरिकल ऐंड लिटरेरी इन्सक्रिप्सन्स, पृ० ९१

३- 'वाहि्लक, the other country conquered by Chandragupta II after crossing the 'seven mouths of the river Sindhu' is almost certainly to be identified with Balkh (Bactria) beyond the Hindu Kush mountains. It is regrettable that we have no more definite or detailed account of the only recorded military expedition of an Indian King in this remote region outside India.'

— दि क्लासिकल एज, पृ० २०

४- वासुदेव उपाध्याय—गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ८५

५- राहुल—गढ़वाल, पृ० ९३

राजा भोज के श्रृङ्गारप्रकाश नामक ग्रन्थ में वर्णित एक सन्दर्भ के आधार पर अनुमान कियाजाताहै कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने कालिदास को अपना दूत बनाकर कुन्तलेश्वर (कुन्तलदेश के स्वामी कदम्बवँशी नरेश) के पास भेजाथा। क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ औचित्य - विचार - चर्चा के अनुसार कालिदास ने 'कुन्तलेश्वर - दौत्य' नामक काव्य की रचना कीथी।

किन्तु अभीतक ये कल्पनाएं सर्वमान्य नहीं होसकीहैं।

कुमारगुप्त

शान्ति और समृद्धि— चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र कुमारगुप्त सिंहासन पर वैठा। उसने लगभग ४२ वर्षों तक राज्य किया। उसने किसी नए प्रदेश को नहीं जीता। उसके राज्यकाल का अधिकांश बड़ी शान्ति से बीता।

उसके राज्यकाल में दशपुर (मन्दसौर) के सूर्यमन्दिर के शिलालेख से विदित होताहै कि कुमारगुप्त का साम्राज्य कैलास और सुमेरु तक पहुँचाथा [१]। इस अभिलेख से स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड कुमारगुप्त के साम्राज्य के अन्तर्गत था।

गुप्तकाल में लिखेगए भाण उभयसारिका से भी विदित होताहै कि नरेन्द्र (कुमारगुप्त) का साम्राज्य मेरुपर्वत तक पहुँचाथा। उसे समुद्र की मेखलावाली तथा मेरु और विन्ध्यपर्वत रूपी स्तनोंवाली सारी धरती का पालक कहागयाहै [२]।

विदिशा के एक शिलालेख से कुमारगुप्त के शासनकाल के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं प्राप्त होतीहैं।

कुमारगुप्त विद्वान्, बुद्धिमान तथा वीर और साहसी पुरुषों को अपने राज्य में गोप्ता आदि राज्याधिकारियों के पदों पर नियुक्त करताथा [३]। वे अधिकारी दीनों पर अनुकम्पा रखते, आर्तं तथा दुःखियों की सहायता करते और सबके साथ सदा दयापूर्ण व्यवहार करतेथे [४]। वे गम्भीर, नीतिवान्, सबके प्रिय, प्रजाजन केलिए वन्धुओं के समान, सम्बन्धियों के दुःख दूर करनेवाले तथा गर्वपूर्ण शत्रुओं की सेना को नष्टकरने में समर्थ होतेथे [५]। वे प्रजा से पुत्रवत् व्यवहार करतेथे [६]।

कुमारगुप्त के राज्य में सत्य, क्षमा, दम, शम, व्रत, शौच, धैर्य, स्वाध्याय, कुशाग्र-बुद्धि, विद्या तथा तप आदि गुणों से सम्पन्न ब्राह्मणों की भरमार थी [७]।

१- 'चतुस्समुद्रान्तविलोलमेखलाम्। सुमेरुकैलासवृहत्पयोधराम्
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीम्। कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति ॥' — मन्दसौर-अभिलेख

२- 'एवं सस्पर्धियुक्तां जलनिधिरशनां मेरुविन्ध्यास्तनाढ्याम्।
प्रीतिं प्राप्नोतु सर्वां क्षितिमधिकगुणां पालयन्नो नरेन्द्रः ॥ — चतुर्भाणी, पृ० १४७

३- दशपुर (मन्दसौर) का शिलालेख, श्लोक, २४, २६ ४- पूर्वोक्त, श्लोक, २५
५- पूर्वोक्त, श्लोक, २६ ६- पूर्वोक्त श्लोक, १५ ७- पूर्वोक्त, श्लोक, १४

उसके राज्य में अनेक प्रकार के कलाकौशल उन्नतावस्था में थे। सुन्दर कौशेय वस्त्र बुनेजातेथे। अनेक विद्याओं को सीखने की सुविधा थी। कुछ व्यक्ति धनुर्वेद में कुशल थे। कुछ कथाविद् थे। कुछ धार्मिक कर्त्तव्यों को बतलाने में प्रवीण, कुछ मधुर हितकारी वचन कहने में समर्थ, कुछ ज्योतिषशास्त्र के पूर्णज्ञाता, तथा कुछ सैनिकवृत्ति वाले थे। सभी लोग अपने कुल की मर्यादा की रक्षा करनेवाले और सत्यव्रतधारी थे [१]। विभिन्न कला-कौशलों के सँलग्न व्यक्ति अपनी श्रेणियां (समितियां) बनायाकरतेथे [२]।

अश्वमेध— कुमारगुप्त को न राज्यविस्तार की लिप्सा थी, न धनसँग्रह का लोभ था। उसके राज्यकाल में गुप्तसाम्राज्य का वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। उसकी एक स्वर्ण मुद्रा से विदित होताहै कि उसने भी समुद्रगुप्त के समान एक अश्वमेध कियाथा। किन्तु सम्भवतः उसने समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त के समान विजय-अभियान नहीं रचाथा। कुमारगुप्त समुद्रगुप्त के समान ही परमप्रतापी था। भितरी-स्तम्भलेख में उसे पौराणिक राजापृथु के समान यशस्वी तथा पराक्रमी बतलायागयाहै [३]।

पुश्यमित्रों का आक्रमण— उसके शासनकाल के अन्तिम दिनों में पुष्यमित्रवँशी शत्रुओं ने उसके राज्य के दक्षिणीभाग पर आक्रमण कियाथा। विद्वानों की धारणा है कि ये पुष्यमित्रवँशी सामन्त नर्मदा के दक्षिण में बसेथे [४]। वे बड़े शक्तिशाली तथा अपार सेना और साधनों से सम्पन्न थे। उनके आक्रमण से गुप्तसाम्राज्य के अस्तित्व लिए घोरसँकट उत्पन्न होगयाथा। बड़ी कठिनाई से राजकुमार स्कन्दगुप्त ने शत्रुओं के आक्रमण को विफलकरके साम्राज्य की रक्षा कीथी।

स्कन्दगुप्त

कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् स्कन्दगुप्त को गुप्त-सिंहासन प्राप्तहुआ। वह कुमारगुप्त के दूसरे पुत्र पुरुगुप्त की अपेक्षा अधिक साहसी, वीर, कर्त्तव्यपरायण एवँ सुयोग्य था। सम्भवतः वह कुमारगुप्त का ज्येष्ठपुत्र था। उसकी माता राजमहिषी थी, या नहीं, इस पर विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों का अनुमान है कि पुरुगुप्त स्कन्दगुप्त की विमाता अनन्तदेवी का पुत्र था, जो कुमारगुप्त की राजमहिषी थी।

अनुमान कियाजाताहै कि स्कन्दगुप्त की कोई सन्तान न थी। इसलिए उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके भ्राता पुरुगुप्त को गुप्तसिंहासन मिलाथा।

साम्राज्य की रक्षा— गाजीपुरजिले के भितरी नामक स्थान पर स्कन्दगुप्त का एक स्तम्भलेख मिलाहै, जो स्कन्दगुप्त के जीवनवृत्त तथा राज्यकाल की घटनाओं केलिए

१- दशपुर (मन्दसौर) का शिलालेख, श्लोक, १६, १८ २- पूर्वोक्त, श्लोक, ९

३- 'प्रथित-पृथुमति-स्वभावशक्तिः पृथु-यशसः पृथिवीपतेः पृथु-श्रीः' — भितरी-स्तम्भलेख

४- इंडियन ऐंटीक्वायरी, जि० १८, पृ० २२८

उसीप्रकार महत्वपूर्ण है, जिसप्रकार प्रयागप्रशस्ति समुद्रगुप्त के राज्यकाल केलिए है।

इस स्तम्भलेख से विदित होताहै कि जब पुष्यमित्रों ने गुप्तसाम्राज्य पर आक्रमण करके गुप्तराज्यलक्ष्मी को विचलित करदियाथा तो स्कन्दगुप्त अनेक कष्ट उठाकर साम्राज्य के शत्रुओं से भिड़ाथा। युद्धकाल में उसे नङ्गी धरती पर लेटकर रात्रि बितानी पड़ीथी। अन्त में शत्रुओं को पराजितकरके वह साम्राज्य की रक्षाकरने में सफल हुआथा [1]।

हूण-आक्रमण— कुमारगुप्त की मृत्यु होतेही गुप्तसाम्राज्य पर कोई घोरविपत्ति आईथी। जिससे गुप्तराज्यलक्ष्मी पुनः डामाडोल होनेलगीथी। स्कन्दगुप्त ने पुनः शत्रु के आक्रमण को विफलकरके साम्राज्य की रक्षा कीथी।

अपने पति कुमारगुप्त के मरजानेसे, तथा अपने पुत्र स्कन्दगुप्त को भीषण संकट में फँसे देखकर स्कन्दगुप्त की माता अत्यन्त चिन्तातुर होकर अश्रु बहारहीथी। तब शत्रु का विनाशकरके स्कन्दगुप्त ने लौटकर अपनी माता को उसीप्रकार शान्त्वना दीथी, जिस प्रकार कँस का वध करनेके पश्चात् श्रीकृष्ण ने देवकी को शान्त्वना दीथी [2]।

स्कन्दगुप्त को यह दूसरा युद्ध किसके साथ लड़नापड़ाथा, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुमारगुप्त की मृत्यु की, और स्कन्दगुप्त के राज्यारोहण की तिथि वि० सँ० ५१२ (455 ई०) मानीजातीहै। इसी वर्ष के जूनागढ़ - शिलालेख से विदित होताहै कि म्लेच्छों को परास्तकरने के पश्चात् स्कन्दगुप्त ने सौराष्ट्र की रक्षा का भार पर्णदत्त को सौंपाथा [3]। इन म्लेच्छों की पहिचान हूणों (हेफतालों) से कीजातीहै, जिन्होंने कुमारगुप्त की मृत्यु के तुरन्तपश्चात् गुप्तसाम्राज्य पर आक्रमण कियाथा।

भितरी - स्तम्भलेख से विदित होताहै कि हूणों के साथ स्कन्दगुप्त का युद्ध इतना भीषण था कि उससे धरती कांपउठीथी। भीषण दस्युदल के साथ उमड़कर वर्वरों ने गुप्तसाम्राज्य को नष्टकरना आरम्भ करदियाथा। उस समय अपार साहस के साथ शत्रुओं से भिड़कर स्कन्दगुप्त ने साम्राज्य की रक्षा कीथी [4]।

१- 'विचलितकुललक्ष्मीस्तम्भनायोद्यतेन क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा।
समुदितवलकोशान् पुष्यमित्रांश्च जित्वा क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वामपादः॥'
—— भितरी - स्तम्भलेख, श्लोक, ४

२- 'पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं भुजवलविजितारिं यः प्रतिष्ठाय भूयः।
जितमिवपरितोषान् मातरं साश्रुनेत्रां हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः॥'
—— भितरी - स्तम्भलेख, श्लोक, ६

३- जूनागढ़ — अभिलेख, पंक्ति ४

४- 'हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।
भीमावर्तकरस्य शत्रुषु शरा ....॥
.... विरचितं प्रख्यापितो (दीप्तिदा)।
न द्योति ... नमीषु लक्षत इव श्रोत्रेषु गाङ्गध्वनिः॥' — भित्तरी - स्तम्भलेख, पंक्ति १४-१५

पुष्यमित्रों का आक्रमण साम्राज्य के दक्षिणी भाग पर हुआथा। उसके तुरन्त पश्चात् साम्राज्य के उत्तरी भाग पर हूण - हेफताल - आक्रमण हुआ। दक्षिण और उत्तर में, इन भीषण आक्रमणों से साम्राज्य की रक्षाकरना स्कन्दगुप्त - जैसे वीरपुरुष केलिए ही सम्भव था।

बर्बर हूणों को पराजितकरना इतना महान् कार्य था, जिसके लिए शतियों तक विपत्ति में देश का उद्धार करनेवाले वीरपुरुष के रूप में स्कन्दगुप्त की कीर्ति गाईजाएगी [1]। स्कन्दगुप्त के राज्यारोहण से कुछ ही समय पूर्व हूण यूरोप में अपने खड्ग और अग्निमशालों की विनाशलीला दिखाचुकेथे। इन बर्बरों के प्रहार से महान् रोमसाम्राज्य कम्पित होउठाथा। स्कन्दगुप्त द्वारा पराजित होने पर भी वे इतने शक्तिशाली थे कि भारत से लौटते समय उन्होंने पारिस को रौंदडाला और पारिसनरेश का वध करदिया [2]।

जहां-कहीं वे पहुँचतेथे वहां खड्ग और अग्निमशाल द्वारा हाहाकार मचाडालतेथे। जो समृद्धशाली नगर और ग्राम उनके मार्ग में पड़ते वे सर्वथा विध्वस्त और उजाड़ होजातेथे[3]। रक्तपात और निर्मम हत्याकांड में उन्हें आनन्द आताथा। मृत्यु और विध्वँस उनके प्रयाणपथ के अग्रदूत बनकर चलतेथे। विशाल अश्वारोही दल - बादल को लेकर वे तूफान के समान सहसा आकर दूर - दूर तक के प्रदेश पर छाजातेथे [4]। मानवजाति के इतिहास में उनके सहसा होनेवाले भीषण आक्रमण भयँकर ज्वालामुखी के उभड़ने के समान थे। अपनी मूलभूमि से वे यूरोप और एशिया के ऊपर उसीप्रकार छागएथे जिसप्रकार प्रज्वलित लावा [5]।

हूणआक्रमण का और उनके द्वारा किएगए अत्याचारों का समाचार सुनकर सारे उत्तरभारत की जनता अत्यन्त आतँकित होगईथी। केवल पँचनद और मध्यदेश में ही नहीं, वरन् भरतपुर तक की जनता को अपने जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा की भारी चिन्ता होगईथी। अपनी धनसम्पत्ति को धरती में गाड़कर वह प्राण बचानेहेतु सुरक्षित स्थानों की ओर भागगईथी [6]।

स्कन्दगुप्त द्वारा बर्बर दुर्दमनीय हूणों की पराजय से देश के नर - नारियों को शान्ति मिली। उन्हें अपनी सम्पत्ति और अपने परिवार की सुरक्षा का आश्वासन मिला। देशभर में घर - घर स्कन्दगुप्त की कीर्ति गाईजानेलगी [7]।

युद्ध-भूमि— हूण दस्युदल ने किस मार्ग से भारत पर आक्रमण कियाथा तथा स्कन्दगुप्त ने उन्हें कहां पराजित कियाथा, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल में गुप्तसाम्राज्य की पश्चिमी सीमा बाहीक तक,

---

१- ३- क्लैसिकल एज, पृ० २७

४- ५- उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इण्डिया, पृ० ४

६- उपेन्द्र ठाकुर — पूर्वोक्त, पृ० ७५

७. 'चरितममलकीर्त्तेर्गीयते यस्य शुभ्रं
दिशि - दिशि परितुष्टैराकुमारं मनुष्यैः।' — भितरी - स्तम्भलेख, श्लोक ५

अर्थात् चिनाव और झेलमनदी की उपत्यका तक पहुँचगईथी। कुमारगुप्त के राज्यकाल में यही सीमा बनीरही। इसलिए स्कन्दगुप्त के राज्यारम्भ में हूणों की युद्ध भूमि पँचनद में, गुप्तसाम्राज्य के सीमान्त पर होनीचाहिए।

बयाना में मिली गुप्तसम्राटों की मुद्राओं की निधि के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि हूणों से युद्ध या तो पश्चिमीभारत के मैदान में कहीं हुआथा, अथवा सतलुज के तट पर हुआथा [१]। डा० अल्तेकर ने उस मुद्रानिधि का विशेष अध्ययन कियाहै। उनकी धारणा है कि हूणयुद्ध यमुनातट पर हुआथा [२]।

भितरी - स्तम्भलेख से विदित होताहै कि हूणयुद्ध उस प्रदेश में हुआथा, जहां कानों में गङ्गाजी की ध्वनि आरहीथी [३]। 'श्रोत्रेषु गाङ्गध्वनि' से पता चलता है कि हूणयुद्ध गङ्गाजी की उपत्यका के पर्वतीय भाग में हुआथा, जहां गङ्गाजी घोर घोष करतीहुई बहतीहै। गङ्गाजी का ऐसा घोष मैदानी भाग में नहीं सुनाईदेता। मैदानी भाग में तो गङ्गाजी की तलहटी में औसत से एक मील में छै - सात इन्च ढाल होनेके कारण गङ्गाजी इतनी मन्दगति से बहतीहै कि दूर से, केवल ध्वनि के द्वारा उसके अस्तित्व का पता भी नहीं चलताहै। आंख से देखलेने पर ही पता लगताहै कि गङ्गाजी निकट बहरहीहै।

अस्तु अनुमान लगताहै कि हूण पँचनद के उत्तरी भाग को रौंदतेहुए कांगड़ा-हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों पर फैलकर हरिद्वार - ऋषिकेश तक पहुँचेथे।

रघुवँश के अनुसार रघु, वँक्षु के तीर पर हूणों को पराजित करनेके पश्चात् काम्बोजों को जीतकर हिमालय में गङ्गाजी की उपत्यका में स्थित प्रदेश, वर्तमान गढ़वाल में पहुँचेथे, जहां भोजपत्रों में मर्मर करताहुआ, कीचक या देवरिंगाल के छिद्रों में बांसुरी - सी बजाता हुआ और गङ्गाजी की फुहारों से शीतल बना वायु रघु की सेवा करताथा [४]।

इससे विदित होताहै कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और कुमारगुप्त के राज्यकाल में कालिदास को वँक्षु तट के हूणों का पता था। तथा हूणों की इस भूमि से होकर कोई मार्ग गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका में होकर उत्तरभारत में पहुँचताथा।

सं० ११६७ वि० में लिखित नरवर्मदेव की नागपुर - प्रशस्ति में रघु की दिग्विजय का अनुकरण करतेहुए प्रशस्तिकार ने लक्ष्मणदेव परमार के विजयमार्ग को वँक्षु

१- उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इण्डिया, पृ० ७५, टि०

२- अल्तेकर — बयाना होर्ड, भूमिका, पृ० xxxiii - xxxiv

३- 'हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।
भीमावर्तकरस्य शत्रुषु शरा ....॥
.......विरचितं प्रख्यापितो (दीप्तिदा)।
न द्योति ... नभीषु लक्षत इव श्रोत्रेषु गाङ्गध्वनिः॥' — भितरी - स्तम्भलेख, पंक्ति १४-१५

४- 'भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे॥' — रघुवंश, ४।७३

की उपत्यका से कीरदेश (कागड़ा) पहुँचायाहै [1]। इससे भी पूर्वोक्त अनुमान की पुष्टि होतीहै।

स्कन्दगुप्त का व्यक्तित्व— स्कन्दगुप्त देवसेनापति स्कन्द के समान पराक्रमी था। राजकुमार - अवस्था में ही उसने अत्यन्त शक्तिसम्पन्न पुष्यमित्रों के भीषण आक्रमण से विचलित गुप्तवँश की राज्यलक्ष्मी की फिर से प्रतिष्ठा कीथी। पिता की मृत्यु होतेही उसे धरती को कम्पित करदेनेवाले हूणों के अपार दल से भिड़नापड़ाथा। दोनों युद्धों में उसे पूरी सफलता मिलीथी। उसके साहस, वीरत्व और दृढ़ सँकल्प के कारण राज्यलक्ष्मी ने स्वयँ उसका वरण कियाथा [2]।

अपनी भुजाओं के पराक्रम से उसने गुप्तवँश के वीरों में अपनेलिए विशिष्ट स्थान बनायाथा [3]। उसका यश दूर - दूर तक फैलगयाथा। म्लेच्छों के देश में भी उसका आतँक फैलगयाथा। वहां भी उसके पराक्रम की प्रशँसा कीजातीथी [4]।

वह स्वयँ बड़े उज्ज्वल चरित्रवाला था और सज्जनों के मान का रक्षक था। वह विनय, वल और सुनीति से सम्पन्न था। आतुर और दु:खीजनों केलिए उसका हृदय सदा करुणा से भरारहताथा [5]। उसकी प्रजा में आर्त, दरिद्र, व्यसनी और कुत्सित पुरुष ढूँढे नहीं मिलतेथे। वह ईश्वर-भक्त, प्रजा में अनुरक्त, बुद्धिमान् एवँ सबका हितैषी था [6]। अपने पिता कुमारगुप्त तथा अपनी माता के प्रति उसके हृदय में अपार श्रद्धा थी।

शत्रुओं के आक्रमणों की पुनरावृत्ति रोकनेकेलिए उसने सचेष्ट होकर अपने साम्राज्य के प्रान्तों में ऐसे सुयोग्य अधिकारियों को नियुक्त कियाथा [7], जो प्रजा की रक्षा करने तथा उसके दु:खों को दूरकरने केलिए सदैव तत्पर रहतेथे। वे कृषि की ओर विशेष

१- एपिग्राफिया इंडिका, जि० २, पृ० १८ ; उ० उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इण्डिया, पृ० ५७, टि०

२- 'व्यपेत्य सर्वान् मनुजेन्द्रपुत्रान् लक्ष्मीस्वयं यं वरयाञ्चकार।' — जूनागढ़ - अभिलेख

३- 'जगति भुजवलाढ्यो गुप्तवंशैकवीर:, प्रथितविपुलधामा नामत: स्कन्दगुप्त: ॥
— भितरी - स्तम्भलेख

४- अपि च जितमेव तेन प्रथयन्ति यशांसि यस्य रिपुवोऽपि। आमूलभग्नदर्पा निर्वचना म्लेच्छदेशेषु ॥'
— जूनागढ़ - अभिलेख

५- स्यात्कोऽनुरूपो मतिवान् विनीतो मेधा स्मृतिभ्यामनपेतभाव:।
सत्यार्जवौदार्य नयोपपन्नो माधुर्य - दाक्षिण्य - यशोन्वितश्च ॥
भक्तोऽनुरक्तो नृविशेषयुक्त: सर्व्वोपधाभिश्च विशुद्धवुद्धि:।
अनृण्यभावोपगतान्तरात्मा: सर्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत: ॥' — पूर्वोक्त

६- तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद् धर्मादपेतो मनुज: प्रजासु।
आर्त्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दंड न वा यो भृशपीडित: स्यात् ॥' — पूर्वोक्त

७- 'एवं स जित्वा पृथिवीं समग्रां भग्नाग्रदर्पान् द्विषतश्च कृत्वा।
सर्व्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन् स चिन्तयामास वहुप्रकारम् ॥' — पूर्वोक्त

ध्यान देतेथे। वे सींचाई केलिए पुराने कासारों की मरोम्मत तथा नए कासारों का निर्माण करतेथे [1]।

पुरुगुप्त

स्कन्दगुप्त के पश्चात् पुरुगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसे वृद्धावस्था में राज्य प्राप्त हुआथा। उसने तथा उसके पुत्र नृसिंहगुप्त और पौत्र कुमारगुप्त ने कुल मिलाकर केवल छै - सात वर्षो तक राज्य कियाथा। इन तीनों के राज्यकाल में गुप्तवंश सामरिक की शक्ति, शासित प्रदेश और समृद्धि में वेग से ह्रास हुआ।

साम्राज्य के विभिन्न भागों में एक से अधिक गुप्तवँशीय नरेश, एकसाथ, अपनी पृथक् स्वतन्त्र सत्ता के साथ राज्य करनेलगे। कुछ प्रदेशों के शासकों ने अपने स्वतन्त्र राजवँशों की स्थापना करडाली। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के कुछ ही वष पश्चात् गुप्तसाम्राज्य के कतिपय आश्रित शासकों ने हेफतालननेश तोरमाण की अधीनता स्वीकार करलीथी।

बुधगुप्त अन्तिम गुप्तसम्राट था, जिसने मगध, तथा मध्यदेश और मालवा के बड़े भाग पर किसी न किसी रूप में अपनी सत्ता रखने का प्रयत्न कियाथा।

सौराष्ट्र, पँचनद तथा सम्भवतः मध्यदेश के उत्तरपश्चिमी भाग से पुरुगुप्त के राज्यकाल में गुप्तसत्ता या तो उठगईथी या नाममात्र की रहगईथी। बुधगुप्त का राज्य काशी से दामोदरपुर (वँगाल) तक तथा दक्षिण की ओर एरण (मध्यप्रदेश) तक सीमित रहगयाथा [2]। जिससे पुष्यभूति और मुखर के वँशजों के उत्थान केलिए मार्ग प्रशस्त होगयाथा।

स्वर्णयुग— भारत के इतिहास में गुप्तयुग स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है। गुप्त सम्राटों ने उत्तरभारत में, तथा उनके समकालीन दक्षिण के नरेशों ने दक्षिणीभारत में लगभग डेढ शती तक शान्ति, सुव्यवस्था और समृद्धि में वृद्धि कीथी। इस डेढ शती में भारत में साहित्य, कला - कौशल और वैभववृद्धि केलिए जो स्वर्णअवसर उपस्थित हुआ वह अगली डेढ शती तक भी चलतारहा।

गुप्तसाम्राज्य के दिनों में सँ० ४५६ - ४७१ वि० (399 - 414) के बीच चीनी यात्री फा - शीन ने भारत में भ्रमण कियाथा। मगध के सम्बन्ध में उसने लिखाहै—मध्यदेश के समस्त प्रदेशों में इसीमें सबसे विशाल नगर और कस्बे हैं। यहां के निवासी धनी और सम्पन्न हैं। वे उदारता में तथा अपने पड़ोसियों की सेवा - सहायता करने में एक - दूसरे की प्रतिस्पर्धा करतेहैं [1]।

१- जूनागढ़ - अभिलेख

२- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० १२८

३- गाइल्स — ट्रैवल्स आव फा - शीन, पृ० ४७

भारत के विभिन्न प्रदेशों के धनी-मानी व्यक्तियों ने अपने प्रमुख नगरों में निःशुल्क चिकित्सालयों की स्थापना कीहै, जिनमें सभी निर्धन और असहाय रोगियों, अनाथों, विधवाओं और पँगुओं की सुश्रूषा कीजातीहै। उनकी बड़ी सावधानी से देखरेख कीजातीहै। चिकित्सक उनके रोगों को दूर करतेहैं। उन्हें आवश्यकतानुसार भोजन और औषधियां दीजातीहैं। चिकित्सालयों में उनके सुख-सुविधा का ध्यान रखाजाताहै। स्वस्थ होनेपर ही वे वहां से जातेहैं [1]। मध्यदेश के निवासी सम्पन्न और सुखी हैं। उनपर राज्य की ओर से विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। जो व्यक्ति राजा की धरती जोततेहैं, वे उपज का कुछ अँश उसे देतेहैं। प्रजा को इधर-उधर जाने-आने और ठहरने की पूरी स्वतन्त्रता है [2]।

अपराधियों को प्राणदण्ड नहीं दियाजाता। उन्हें उनके अपराधों के अनुसार आर्थिक दण्ड दियाजाताहै। राजा के शरीररक्षकों को निश्चित वेतन मिलताहै। सारे देश में न तो कोई जीवहिंसा करताहै, न मदिरा पीता और न प्याज-लहसुन का सेवन करताहै [3]।

चाण्डाल नगर से बाहर रहतेहैं। पतित या कोढ़ियों को चाण्डाल कहाजाताहै। नगर या बाजार में आते समय वे लकड़ी के एक टुकड़े से खट-खट करतेहैं, जिससे लोग उनके सँसर्ग से बचने-हेतु मार्ग से हटजातेहैं [4]।

गुप्तसम्राट हिन्दुधर्म के प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार शासन करते तथा आदर्श जीवन व्यतीत करतेथे। स्वयँ परमभागवत होने पर भी वे सभी मत-मतान्तरों के अनुयायियों से उदारतापूर्ण व्यवहार करतेथे। वे अपनी प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझतेथे। उनके साम्राज्य में वर्णाश्रम, बौद्ध और जैन आदि सभी मतों के धार्मिकसाहित्य में प्रचुर वृद्धिहुईथी।

उस युग में सभी मत-मतान्तरों द्वारा अनेक मठ, मन्दिरों, गुफाओं, स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआथा। प्रस्तर और मृतिका की मूर्तियों के निर्माण में विशेष उन्नति हुईथी। गुप्तकालीन मूर्तिकला भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखतीहै। इस काल में मथुरा और सारनाथ सुन्दर देवमूर्तियों के निर्माण के प्रमुख केन्द्र थे। गुप्तकाल में निर्मित सहस्रों अतिसुन्दर देवमूर्तियां भारत-भर के मन्दिरों में तथा सँग्रहालयों में आज भी विद्यमान हैं। उत्तराखण्ड के कतिपय मन्दिरों में भी कुछ गुप्तकालीन मूर्तियां हैं।

अगणित बहुमूल्य मूर्तियां विदेशों के संग्रहालयों में पहुँचगईहै। मन्दिरों से महत्वपूर्ण मूर्तियों को चुराकर विदेशियों के हाथों में बेचने का कार्य पिछले १५-२० वर्षों में इतना अधिक व्यापक होगयाहै कि कुछ ही वर्षों में इस देश में प्राचीन देवमूर्तियों, विशेषकर गुप्तकालीन दुर्लभ मूर्तियों का मिलना अतिकठिन होजाएगा।

१- गाइल्स — टैवल्स आव फा-ह्शीन, पृ० ४७-४८

२- गाइल्स — पूर्वोक्त, पृ० २०-२१

३-४- गाइल्स — पूर्वोक्त, पृ० २१

गुप्तकाल में विष्णु और उसके अवतारों, विशेषकर, बाराह और कृष्ण की मूर्तियां तथा कार्तिकेय, शिव, सूर्य और दुर्गा के विभिन्न रूपों की मूर्तियां विशेषरूप से बनतीथीं। बुद्ध की ध्यान, भूमिस्पर्श, अभय, वरद तथा धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्राओं में अतिसुन्दर मूर्तियां बनतीथीं। खड़ी और आसनासीन, दोनों प्रकार की मूर्तियों का निर्माण होताथा। बुद्ध एवं उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को प्रदर्शित करनेवाली तथा बोधिसत्वों की भी अनेक मूर्तियां बनतीथीं। इसीप्रकार जैन तीर्थंकरों की खड़ी अथवा पद्मासन बांधे ध्यान-मुद्रा में प्रतिमाएँ बनतीथीं।

अजन्ता और बाघ के अनेक भित्तिचित्रों की रचना गुप्तकाल में हुईथी। संगीत, नृत्य और नाट्यकला आदि ललितकलाओं में भी विशेष उन्नति हुईथी।

संस्कृत के हरिषेण, वीरसेन, वत्सभट्टि, वासुलि, रविशान्ति, कालिदास, मातृगुप्त, भर्तृमेण्ठ, शूद्रक, विशाखदत्त, सुबन्धु, भामह और अमरसिंह आदि कवि, नाटककार, गद्यलेखक और साहित्यकार तथा कोषरचयिता इसी युग में उत्पन्न हुएथे।

पुराणों के कतिपय अंशों के तथा स्मृतियों के सम्पादन का श्रेय भी गुप्तयुग को दियाजाताहै। सांख्य, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, कामशास्त्र आदि पर भी इस युग में महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखेगए।

बौद्धमत के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य, असँग, वसुबन्धु, स्थिरमति, दिङ्नाग, शँकरस्वामी, धर्मपाल, बुद्धपालित, भावविवेक, चन्द्रकीर्ति, मनोरथ, सँघभद्र, बुद्धघोष, बुद्धदत्त. धम्मपाल, चन्द्रगोमिन् आदि इस युग में हुएथे।

अनेक बौद्ध विद्वानों ने गुप्तयुग में चीनदेश में पहुँचकर चीनीभाषा में भारतीय बौद्धग्रन्थों के अनुवाद में सहायता कीथी।

जैनमत के आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, जिनभद्र, सिद्धसेन, समन्तभद्र, देवनन्दि आदि का प्रादुर्भाव भी गुप्तयुग में हुआथा।

इसमें सन्देह नहीं कि गुप्तनरेशों के शासनकाल में भारत में भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति का जो स्वर्णअवसर मिलाथा, वह फिर इस देश में कभी नहीं आसका।

कर्तृपुर जनपद पर अधिकार—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल से स्कन्दगुप्त के राज्यकाल तक उत्तराखण्ड गुप्तसाम्रज्य का अँग बनारहा। उनदिनों उत्तराखण्ड का शासन किन-किन अधिकारियों को सौंपागयाथा, इस सम्बन्ध में अभीतक कोई सामग्री नहीं मिलसकीहै।

सँ० २०१३ वि० (1956 ई०) में मैंने बदरिकाश्रम से आगे माणाग्राम में तिब्बती और गुप्तब्राह्मी में अँकित शिलालेखों का पता लगायाथा। और कुछ के चित्र लिएथे। तब से अबतक लगातार सरकार से रोते-पीटते रहने पर पिछले वर्ष भारत के प्रमुख एपिग्राफिष्ट डा० गाई उन शिलालेखों का फोटोग्राफ लाए। किन्तु उन्होंने अभीतक

न तो उनका प्रकाशन कियाहै, और न उनका सँक्षिप्त परिचय पुरातत्वविभाग की पत्रिकाओं में छपवाया है।

बुलन्दशहरजिले के इन्दौर नामक स्थान से प्राप्त ताम्रशासन से विदित होताहै कि स्कन्दगुप्त के राज्यकाल में सर्वनाग नामक व्यक्ति अन्तर्वेदी अर्थात् गङ्गा - यमुना - द्वाव का विषयपति (प्रान्तशासक) था [1]। सम्भवत: उत्तराखण्ड भी उनदिनों उसी विषयपति के अधीन या।

स्कन्दगुप्त की मृत्यु होतेही हिमाचलप्रदेश - पञ्चनद से होकर कुशाण - हेफताल अन्तर्वेदी पर छापे मारनेलगे। गुप्त सम्राटों की शक्ति शिथिल होतेही स्थानीय शासकों ने अपना सत्ता बठाली और स्वतन्त्र बनबैठे।

गोपेश्वर और बाड़ाहाट के अभिलेखों से विदित होताहै कि विक्रम की छटी - सातवीं शती में कर्तृपुर जनपद पर नागवँशी स्थानीय नरेश शासन करतेथे। उन्हींदिनों उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग, यामुनप्रदेश पर यदुवँशी नरेशों का आधिपत्य था।

अनुमानित तिथि - क्रम

कर्तृपुर-नरेश—		
खशाधिपति और वँशज	सँ० ४०७ - ४३७ वि०	(350 - 380 ई०)
गुप्त - अधिकार	सँ० ४३७ - ५२७ वि०	(380 - 470 ई०)
विषयपति सर्वनाग	सँ० ५२२ - ५४२ वि०	(465 - 485 ई०)
नागवँशी नरेश	सँ० ५४२ - ६३३ वि०	(485 - 576 ई०)
गुप्तसम्राट—		
गुप्त, घटोत्कच, चन्द्रगुप्त प्रथम	सँ० ३२७ - ३९७ वि०	(270 - 340 ई०)
गुप्तसँवत्	सँ० ३७६ वि०	(319 - 20 ई०)
समुद्रगुप्त	सँ० ३९७ - ४३२ वि०	(340 - 375 ई०)
रामगुप्त	सँ० ४३२ - ४३७ वि०	(375 - 380 ई०)
चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य	सँ० ४३७ - ४७० वि०	(380 - 413 ई०)
कर्तृपुर पर अधिकार	सँ० ४३७ वि०	(380 ई०)
कुमारगुप्त	सँ० ४७० - ५१२ वि०	(413 - 455 ई०)
स्कन्दगुप्त	सँ० ५१२ - ५२४ वि०	(455 - 467 ई०)
हूण - पराजय	सँ० ५१३ वि०	(456 ई०)
पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय	सँ० ५२४ - ५३३ वि०	(467 - 476 ई०)
बुद्धगुप्त	सँ० ५३३ - ५५२ वि०	(476 - 495 ई०)

१- 'विषयपति सर्वनागस्य अन्तर्वेद्यां भोगाभिवृद्धये वर्तमाने . . .' — इन्दौर—ताम्रशासन; उ० गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० १०६ टि०

कालिदास का उत्तराखण्ड

महाभारत और पुराणों के पश्चात् गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका का सर्वाधिक वर्णन कालिदास के ग्रन्थों में मिलताहै। मालविकाग्निमित्र और ऋतुसँहार को छोड़कर कालिदास की शेष रचनाओं में अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं की क्रीड़ास्थली इसी उपत्यका में है।

रघुवंश में— पहले सर्ग में दिलीप अपने कुलगुरु वशिष्ट के आश्रम में सन्तान-प्राप्ति की कामना से पहुँचताहै [1]। वशिष्ट का आश्रम, रघुवंश के अनुसार गौरीगुरु (पार्वती के पिता) नामक पर्वत पर गङ्गाजी के तट पर था। आश्रम के पास के वन में, जहां दिलीप नन्दिनी को चराताथा, देवदारु के वृक्ष थे।

रघुवंश के प्रथम सर्ग के अन्तिम ४८ श्लोकों तथा द्वितीय सर्ग के आरम्भिक ७१ श्लोकों में वर्णित घटनाएँ वशिष्ट के इसी आश्रम में हुईं।

चतुर्थ सर्ग में, दिग्विजय के अवसर पर, रघु कम्बोज के पराजित नरेशों से उपायन लेकर गौरीगुरुपर्वत पर आक्रमण करताहै [3]। उसकी सेना पर्वतीय गणों से नाराचों द्वारा जूझतीहै, जिसका प्रतिरोध पर्वतीय वीर शिलावृष्टि से करतेहैं [4]।

इस घोर युद्ध में, जिसका अतिसुन्दर नौ श्लोकों में वर्णन है [5], किसी की भी हार-जीत न हुई। रघु को विदाकरते समय पर्वतीय गणों ने अनेक बहुमूल्य उपायन दिए। हिमालयवासियों को रघु की सैन्यशक्ति का और रघु को हिमालयवासियों की शक्ति और सम्पत्ति का आभास मिलगया [6]।

कुमारसम्भव में— प्रथम सर्ग के आरम्भिक चौदह श्लोकों में हिमालय की प्राकृतिक छटा और तत्सम्बन्धी पौराणिक मान्यताओं का वर्णन है। जिन्हें सारे हिमालय या उसके किसी भी भाग से सम्बन्धित मानाजासकताहै। इस सर्ग में, पन्द्रहवें श्लोक से

१- रघुवंश, १।४८ २- रघुवंश, २।२६, ३६ ३- रघुवंश, ४।७१
४- रघुवंश, ४।७७ ५- रघुवंश, ४।७१-७९ ६- रघुवंश, ४।७९

हिमालय के उस भाग का वर्णन आरम्भ होताहै, जिसमें भागीरथी - गङ्गा बहतीहै तथा जहां देवदारु के वन हैं [१]।

तीसरे सर्ग से आगे की घटनाएँ, यद्यपि हिमालय के इसी भाग, गन्धमादन के निकटप्रदेश में हुईं, किन्तु छटे सर्ग तक इस प्रदेश की प्राकृतिक छटा का अन्यत्र के समान विस्तृत वर्णन नहीं मिलता।

छटे सर्ग में कवि ने स्थावर हिमालय का जङ्गम मानवरूप में अतिसुन्दर चित्रण कियाहै। जब शिवजी का सन्देश लेकर सप्तर्षि पर्वतराज हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ में पहुँचे तो गेरु आदि लाल शिलाओं के ओंठोंवाला, देवदारु के विशाल वृक्षों की भुजाओं वाला, स्वभाव से ही पटाल - शिलाओं के चौड़े और सुदृढ़ वक्षस्थलवाला हिमालय, हाथों में अर्घ्य और पाद्य लेकर, अपने ठोस बोझीले चरणों से धरती को धँसाताहुआ उनकी वन्दना - हेतु आगे बढ़ा [२]।

सातवें और आठवें सर्ग की घटनाएँ ओषधिप्रस्थ और उसके पड़ोस में मन्दराचल-गन्धमादन पर हुईं। इन सर्गों में यत्र - तत्र हिमालय की छटा का सुन्दर वर्णन है। नवम सर्ग की घटनाएँ मुख्यतः कैलासपर्वत पर हुईं, जिसे गन्धमादन की ही एक गिरिशाखा मानागयाहै।

मेघदूत में— पूर्वमेघ में यक्ष मेघ से कुरुक्षेत्र होकर कनखल जाने की प्रार्थना करताहै [३]। कनखल से आगे मेघ को हिमालय के उस शिखर पर पहुँचनाहै, जिससे गङ्गाजी निकलतीहै, तथा जिसकी शिलाएँ कस्तूरामृगों के बैठेरहने के कारण सुरभित बनीरहतीहैं [४]। अगले ११ श्लोकों में गङ्गास्रोत से कैलास - अलकापुरी तक का कल्पना और पौराणिक-मान्यताओं पर आधारित सुन्दर वर्णन है [५]।

उत्तरमेघ में अलकापुरी के वैभव और जीवन का काल्पनिक वर्णन है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में— प्रथम अंक की घटनाएँ कण्वाश्रम में होतीहैं। यह आश्रम गङ्गाजी की सहायक मालिनीनदी के तट पर पर्वत की तलहटी में बसाथा। यहां की भूमि उद्घातिनी (ऊँची - नीची) थी [१]। सातवें

द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अंक की सारी घटनाएँ कण्वाश्रम में होतीहैं।

१- कुमारसम्भव, १।५४

२- 'तानर्घ्यानर्घ्यमादाय दूरात्प्रत्युद्ययौ गिरिः।
नमयन्सारगुरुभिः पादन्यासैर्वसुन्धराम् ॥
धातुताम्राधरः प्रांशुर्देवदारुबृहद्भुजः।
प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति ॥ — कुमारसम्भव, १।५०-५१

३- मेघदूत, पूर्व, ५३

४- मेघदूत, पूर्व, ५६

५- मेघदूत, पूर्व, ५७ - ६७

१- शकुन्तला, अंक १; अंक ४

अँक की घटनाओं का स्थान हेमकूट पर कश्यप का आश्रम है। विक्रमोर्वशी में कवि ने हेमकूट को मन्दाकिनी की उपत्यका में बतलायाहै[१]।

विक्रमोर्वशीयम् में— प्रथम अँक की घटनाएं हेमकूट पर तथा चतुर्थ अँक की घटनाएं गन्धमादन पर मन्दाकिनी के तट पर दिखाईगईहैं। यहां जब उर्वशी सिकतापर्वत से खेलरहीथी तो पुरूरवा को एक विद्याधर-कन्या की ओर घूरते देखकर वह कुपित होगई[२]। पुरूरवा को वहीं छोड़कर वह मानिनी चलदी। अज्ञानवश कार्तिकेय के कुमारवन में प्रविष्ट होतेही वह लता बनगई[३]।

पुरूरवा दीर्घकाल तक उसकी ढूंढ़ करताहुआ विलाप करताहै। अन्त में सँगमनीय मणि के प्रभाव से उसे उर्वशी पुनः नारी-रूप में मिलजातीहै[४]।

मालविकाग्निमित्र और ऋतुसँहार को छोड़कर कालिदास के अन्य ग्रन्थों में गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका का वर्णन प्राकृतिक छटा और पौराणिक मान्यताओं पर आधारित मिलताहै। इस उपत्यका के धुर-दक्षिणी भाग, भाबरप्रदेश की, तथा धुर-उत्तरी भाग, महाहिमालय, गन्धमादन की छटा पर कवि विशेषरूप से मुग्ध थे। कण्वाश्रम और कनखल के पश्चात् उन्होंने सीधे गन्धमादन, मन्दराचल, ओषधिप्रस्थ, हेमकूट और कैलास का वर्णन कियाहै।

कैलास— महाकवि कैलास को भी गन्धमादन की एक गिरिशाखा मानतेहैं। शाश्वत हिम से मण्डित इस शिखर को उन्होंने स्फटिक-सा स्वच्छ, कुमुद-सा कमनीय[५] तथा तुरन्त कटेहुए हाथीदांत के समान श्वेत बतलायाहै[६]। कैलास की गोद में अलकापुरी है, और वहीं से गङ्गाजी की धारा निकलीहै[७]। वर्तमान भूगोल गङ्गाजी का उद्गम तिब्बत में स्थित कैलासशिखर से नहीं मानता। पर कैलास-मानसरोवर प्रदेश में अब भी एक नाला गङ्गाछु कहलाताहै[८]। गँगाजी का उद्गम गन्धमादन की अलकापुरीहिमानी में है, जिससे सटा शिखर कालिदास का कैलास है।

क्रीडाशैल—अलकापुरी में यक्ष के भवन के अन्दर बांबड़ी के पास एक छोटा-सा टीला था, जिस पर कुरबक, मौलसिरी और अशोक के वृक्ष थे। तथा माधवीलता फैलीथी[९]।

क्रौंचरन्ध्र-- कवि के अनुसार गँगाजी के स्रोत से कैलास की ओर जाने पर, क्रौंचरन्ध्र आताहै। जिससे होकर हंस मानसरोवर पहुँचतेथे[१०]। इस मार्ग को भृगुपति परशुराम की कीर्ति का प्रतीक मानाजाताथा[११]। क्रौंचरन्ध्र की पहिचान गढ़वाल के नीतिद्वार से कीजातीहै[१२]। सम्भवतः परशुरामजी ने भारत-तिब्बत के बीच स्थित इस गिरिद्वार का पता लगायाथा।

१- २- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० २१३ ३- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० २१४
४- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० २३७ ५- मेघदूत, पूर्व, ६२ ६- मेघदूत, पूर्व, ६३
७- मेघदूत, पूर्व, ६७ ८- प्रणवानन्द—एक्सप्लोरेशन इन तिबेट, पृ० २२१ ९- मेघदूत, उत्तर, १७-१८
१०- ११- मेघदूत, पूर्व, ६१ १२- दे — जियोग्राफिकल डिक्सनेरी, पृ० १०४

गन्धमादन— भागीरथीनदी से लेकर वर्तमान केदार - बदरी होकर उत्तर - पूर्व की ओर मुड़ी श्रेणी को कालिदास के ग्रन्थों में गन्धमादन कहागयाहै। कवि ने कैलास को इसी श्रेणी की गिरिशाखा मानाहै [१]। मन्दाकिनी [२] और जाह्नवी, दोनों नदियां गन्धमादन की ढालों पर बहतीहैं [३]।

गौरीगुरुपर्वत— हिमालय के उस भाग केलिए, जिसे गौरी (उमा) का पिता या जन्मस्थान मानाजाताहै, कालिदास ने गौरीगुरु नाम का प्रयोग कियाहै। कवि के अनुसार इस गिरिशाखा की ढाल पर गङ्गाजी झरना बनाकर बहतीहै [४]। इसकी बुग्यालों में हरी - हरी घास होतीहै [५]। तथा देवदारु [६], भूर्जपत्र [७] एवँ कीचकवेणु (देवरिंगाल) के वन हैं [८]। इस पर्वत की गुफाओं में सिंह निवास करतेहैं [९]। तथा पर्वतीय ढालों पर वनैले चमर विचरण करतेहैं [१०]।

प्रभवअचल — कालिदास के अनुसार कनखल से कैलास की ओर जाने पर मार्ग में प्रभव नामक अचल (पर्वत) मिलताहै, जिससे गङ्गाजी निकलतीहै। यह पर्वत हिम से श्वेत बनारहताहै [११]। इसकी शिलाओं पर कस्तूरामृगों के लेटेरहने के कारण कस्तूरी की सुगन्धि फैलीरहतीहै। यहां देवदारु के वन में चमरगाएँ विचरतीहैं। अन्धड़ के समय जब देवदारु के वन में दावाग्नि उत्पन्न होतीहै, तो चमरियों के लम्बे बाल झुलसजातेहैं [१२]।

सिकतापर्वत— गन्धमादन की ढाल पर मन्दाकिनीनदी के तट पर सिकतापर्वत

१- कैलासशिखरोद्देशम्' — विक्रमोर्वशी
२- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० २१३
३- कुमारसम्भव, ८।८२
४- ५- गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश।' — रघुवंश, २।२६
६- रघुवंश, २।३६
७- ९- 'ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः॥
शशंस तुल्यसत्वानां सैन्यघोषेऽप्यसंभ्रमम्।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्यावलोकितम्॥
भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे॥' — रघुवंश, ४।७१-७३
१०- शकुन्तला, ६।१९
११- 'आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणाम्,
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः'। — मेघदूत, पूर्व, ५६
१२- 'तं चेद् वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा,
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।' — मेघदूत, पूर्व, ५७

या बालू का टीला था [१] । मन्दाकिनी के तट पर आज भी अनेक रेते के टीले हैं, जो हिम द्वारा बहाकर लाएगए रेते से बने हैं ।

सुमेरु— मेरु या सुमेरु को कालिदास ने कैलास तथा गन्धमादन के समीप माना है [२] । विवाह के पश्चात् शिव मेरु [३] , मन्दर [४], कैलास [५] और गन्धमादन [६] पर रमण करतेहैं , जो सबके - सब गढ़वाल में रुद्रहिमालय के समीप या उसकी श्रृंखला में अवस्थित हैं [७] ।

सुरभिकन्दर— गन्धमादन की एक गिरिशाखा थी , जिसके शिखर विशेष रमणीय थे [८] ।

हेमकूट-- कवि ने इस पर्वत की आभा पिघलेहुए सुवर्ण के समान या सन्ध्याकालीन रक्त मेघ के समान बतलाईहै । यह तपस्वियों की साधना केलिए सर्वोत्तम स्थान मानाजाताथा [९] । देवताओं और दैत्यों के पिता कश्यप यहां सपत्नीक तपस्या करतेथे [१०] ।

गङ्गाजी-- कालिदास ने गङ्गाजी का स्रोत प्रभवअचल में मानाहै । और उस पर्वत के तुषारमण्डित शिखरों, देवदारु के वनों तथा उनमें विचरनेवाली चमरगायों एवं कस्तूरामृगों का उल्लेख कियाहै [११] । अन्यत्र उन्होंने गङ्गाजी का उद्‌गम कैलासपर्वत में अलकापुरी के पास बतलायाहै [१२] । गङ्गाजी कनखल में पर्वत से मैदान में उतरतीहैं [१३] । कवि ने उन्हें जह्नु कन्या तथा सगर के पुत्रों को स्वर्ग पहुँचानेवाली सीढ़ी बतलायाहै [१४] । कवि ने गङ्गाप्रपात का भी उल्लेख कियाहै , जिसके निकट वशिष्ठ का आश्रम था [१५] ।

मन्दाकिनी— इस नाम का कवि ने आकाशगँगा और गँगाजी, दोनों केलिए प्रयोग कियाहै [१६] । पृथक नदी के रूप में भी उन्होंने इसका प्रयोग गढ़वाल में गन्धमादन-केदारनाथ से होकर बहनेवाली मन्दाकिनीनदी केलिए कियाहै । तथा उसके तट पर सिकता-पर्वत (बालू के टीले) बतलाएहैं [१७] ।

१- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० २१३

१- भगवतशरण उपाध्याय – कालिदास का भारत, भाग १, पृ० ११

३- कुमारसम्भव , ८।२२   ४- कुमारसम्भव, ८।२३   ५- कुमारसम्भव, ८।२४

६- कुमारसम्भव , ८।२८   ७- भगवतशरण उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १२

८- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० २२७   ९- विक्रमोर्वशी, अंक १, पृ० ५१०

१०- विक्रमोर्वशी, ७।९   ११- मेघदूत, पूर्व, ५६ - ५७

१२- ' तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलाम्,
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् । ' —मेघदूत, पूर्व , ६७

१३- मेघदूत, पूर्व , ५४

१४- ' तस्मात् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम्'
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।। ' – मेघदूत, पूर्व , ५४

१५- रघुवंश, २।२६   १६- मेघदूत, उत्तर, ६   १७- मालविकाग्निमित्र, अंक ४, पृ० २१३

महाकोशी— कवि ने महाकोशी के प्रपात को हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ के निकट बतलायाहै [१]।

मालिना— कण्वाश्रम से होकर बहनेवाली नदी आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इसके तट पर स्थित कण्वाश्रम से हस्तिनापुर जाने और वहां से कण्वाश्रम लौटने में उतने दिन लगतेथे, जितने अक्षर दुष्यन्त शब्द में हैं।

अनेक वर्षों तक कालिदास के साहित्य का अध्ययन करने पर एक विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचेहैं कि—मालिनी सहारनपुरजिले और अवध में बहतीहुई अयोध्या से प्राय: ५० मील पहले घाघरा में गिरतीहै [२]। सहारनपुरजिले की नदी को अवध पहुँचाने केलिए गँगा, मालिनी, रामगँगा आदि अनेक नदियों के ऊपर पुल बनाकर उनके ऊपर नदी को लेजानापड़ेगा !

सरोवर— हिमालय में अनेक सरोवरों का कवि ने उल्लेख कियाहै। ये सरोवर कमल के पत्तों से हरितवर्ण दिखाईदेतेथे। मानसरोवर में कवि ने सुनहरे कमलों का वर्णन कियाहै [३]।

जलवायु— ऋतुसँहार में कवि ने विन्ध्याचल के निकटप्रदेश में विभिन्न ऋतुओं में बदलतीहुई प्राकृतिक छटा का तन्मयता से वर्णन कियाहै। उस ग्रन्थ में हिमालय की शोभा का वर्णन नहीं है ; कालिदास के अन्य ग्रन्थों के उत्तराखण्ड - सम्बन्धी प्रसँगों में यत्र - तत्र बदलतेहुए जलवायु का वर्णन मिलताहै। विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक में कवि ने उच्चहिमालय पर वर्षाऋतु का सुन्दर चित्रण कियाहै।

ग्रीष्मकाल में भावरप्रदेश में वृक्षों के पत्ते झड़जातेथे। मध्यदिन में, जब पथिक ताप से व्याकुल होकर विश्रामकरना चाहता तो उसे ढूँढ़कर भी छाया नहीं मिलतीथीं। जल में पड़ी पत्तियों के सड़ने से पर्वतीय नदियों का जल विरस और कड़ुवा होजाताथा। उसकी स्वाभाविक मृदुता और शीतलता समाप्त होजातीथी [४]।

ग्रीष्मकाल में जब तीव्र आंधियां चलतीथीं तो टहनियों की रगड़ से देवदारु के वनों में दावाग्नि उत्पन्न होजातीथी। जब वन जलनेलगते तो उनमें विचरण करनेवाले लम्वे - लम्वे बालों वाले चमरों को अपनी रक्षा करना कठिन होजाताथा। वनों और पशु-पक्षियों की रक्षा तब ही होसकतीथी, जब वर्षा होती [५]।

१- कुमारसम्भव, ६ । ३३

२- भगवतशरण उपाध्याय — कालिदास का भारत, भाग १, पृ० २५

३- मेघदूत, पूर्व, ६६

४- ' मध्यन्दिनेऽपि ग्रीष्मे विरलपादपच्छायासु वनराजिषु ग्राहिण्ड्य पत्रसङ्करकषाय विरसानि उष्ण-कटुकानि पीयन्ते गिरिणदीसलिलानि । ' — शकुन्तला , अंक २, पृ० ८३

५- मेघदूत, पूर्व, ५७

वर्षाकाल में धरती हरी - हरी घास से भरजातीथी। नदी - तटों पर हरियाली छायीरहतीथी [१]। हरिण आदि वनैले पशु दर्भ (कुश) के अँकुरों को चाव से खातेथे [२]। जूते न पहननेवाले नर - नारियों के पैरों में चुभकर कुश - सूचि (दर्भ) बड़ी पीड़ा देतेथे [३]। हरी घास पर वर्षाकाल में बहुत - सी इन्द्रगोप (बीरबहूटी) छाजातीथीं [४]।

शीतकाल में कम ऊँची पहाड़ियों पर भी पाला (तुहिन) गिरताथा, किन्तु सूर्य निकलते ही बिखरजाताथा [५]। ऊँचे पर्वतों पर घोर हिमपात होताथा। जिस श्रेणी में गङ्गाजी का उद्गम था वह हिम से ढकीरहतीथी [६]। हिमालय के उषाकाल [७] और सायँकालीन अन्धकार [८] तथा उज्ज्वल चांदनी [९] का वर्णन कवि ने बड़ी तन्मयता से कियाहै।

वनस्पति— भाबरप्रदेश और गन्धमादन तथा उससे सँलग्न गिरिशाखाओं पर उगनेवाली वनस्पति का कवि ने विस्तृत वर्णन कियाहै। स्तवक (गुच्छों) तथा फूलों वाली लताओं एवं पौधों मेंसे कवि ने नवमल्लिका, नवमालती, नलिनी, कुमुदिनी (कुमुद्वती), माधवी, बासन्ती, कन्दली, यूथिका (जूही), कमल और मौलिश्री का कवि ने अनेक स्थानों पर उल्लेख कियाहै। पर्वतीय नारियां पत्तों और पुष्पों द्वारा शरीर को बड़े चाव से सजातीथीं [१०]। इसलिए आंगन नाना प्रकार के फूलों के पौधों और लताओं से भरेरहतेथे [११]।

भाबर की वनस्पति मेंसे कवि ने आम्र (चूत, सहकार) की सुरभित मञ्जरियों का बार - बार उल्लेख कियाहै [१२]। विशाल छायायुक्त सप्तपर्ण नामक वृक्ष के नीचे वेदी बनाईजातीथी, जिसपर नर - नारी बैठाकरतेथे [१३]। शिरीष के कुसुमों को कानों में पहनने की प्रथा थी [१४]। कुरबक, कर्कन्धु (बेर), निचुल, जम्बू (जामुन), नीप (कदम्ब), रक्तकदम्ब तथा बेत कमऊँची पर्वतीय ढ़ालों पर होतेथे।

१- शकुन्तला, १।७ २- शकुन्तला, १।१५ ३- शकुन्तला, अंक १, पृ० ७६
४- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० ११३ ५- शकुन्तला, ४।४ ६- मेघदूत, पूर्व, ५६
७- शकुन्तला, ४।२-५ ८- कुमारसम्भव, ८।५३-५७ ९- कुमारसम्भव, ८।५८-७४
१०- 'हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीतालोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यंत्र नीपं बधूनाम्॥' — मेघदूत, उत्तर, २
११- मेघदूत, उत्तर १५, १८ तथा 'यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा' — मेघदूत, उत्तर, ३
१२- शकुन्तला, अंक १, पृ० ३८ - ४० १३- शकुन्तला, अंक १, पृ० ५२
१४- शकुन्तला, अंक १, पृ० ३२

ऊँची श्रेणियों पर मन्दार [1], कल्पवृक्ष [2], भूर्ज [3] सरल (देवदारु) [4] और नमेरु [5] (थुनेर) उत्पन्न होतेथे। कल्पवृक्ष की टहनियां फूलों से लदीरहतीथीं। धरती पर खड़ा मनुष्य भी उन्हें तोड़सकताथा [6]। इस वृक्ष की फूल - पत्तियों से नारियां शरीर सजातीथीं [7]।

कवि ने अलका - जैसे शीतलप्रदेश में भी अशोक, मौलश्री तथा माधवीलता का उल्लेख कियाहै [8]। ऊँचे शिखरों पर कीचकवेणु (देवरिंगाल) होताथा, जिसके छिद्रों में वायु भरजानेसे मधुर ध्वनि से वनप्रदेश गूँजतारहताथा [9]।

हेमकूट पर अपराजिता नामक महोषधि होतीथी [10]। भाबर के वनों में इङ्गुदी होतीथी, जिसके बीजों के तेल को आश्रमवासी शिर पर मलतेथे [11] तथा घावों पर लगातेथे [12]। पोखरों में मुस्ता उत्पन्न होतीथी [13]। खश का विलेपन ताप - शन्ति केलिए कियाजाताथा [14]।

पशु-पक्षी— कालिदास ने भाबर के वनों में सारङ्ग [15] और कृष्णसार [16] मृगों का उल्लेख कियाहै। अन्य वन्य पशुओं मेंसे उन्होंने कोल - बराह, शार्दूल, ऋक्ष (रीछ) महिष तथा शूकर का उल्लेख कियाहै। पर्वतीय हाथी बड़े सुदृढ़ शरीरवाले होतेथे [17]। वशिष्ठ के आश्रम के पास गङ्गातट पर देवदारु के वन में [18], तथा कैलास के पास अलकापुरी में पर्वत - जैसे ऊँचे हस्तियों का भी [19] कवि ने वर्णन कियाहै। हिमालय की ऊँची श्रेणियों पर अब बनैले हस्ती नहीं मिलते। लासा में दलाईलामा का एक हाथी था [20]। इससे विदित होताहै कि हाथी पर्वतीय जलवायु में रहसकताहै।

किन्तु टेढ़े - मेढ़े, ऊँचे - नीचे सँकीर्ण पर्वतीय मार्गों पर उसका निर्वाह सरलता से होसकाहोगा, इस पर विश्वास नहीं होता।

ऊँची श्रेणियों पर कवि ने चमरी [21], कस्तूरामृग [22], शरभ [23] और सिंहों [24] का भी उल्लेख कियाहै।

१- मेघदूत, उत्तर, ६ २- मेघदूत, उत्तर, ४ ३- रघुवंश, ४।७३ ४- रघुवंश, ४।७५
५- रघुवंश, ४।७४ ६- ७- मेघदूत, उत्तर, १५ ८- मेघदूत, उत्तर, १८
९- रघुवंश, २।१२, ; तथा ‘शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः’—मेघदूत, पूर्व, ६७
१०- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५३८
११- ‘सा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य हस्ते निपतिष्यति।’—शकुन्तला, अंक २, पृ० ११३
१२- शकुन्तला, ४।१६ १३- शकुन्तला, २।६ १४- शकुन्तला, अंक ३, पृ० १३८
१५- शकुन्तला, १।५ १६- शकुन्तला, १।६ १७- शकुन्तला, २।४ १८- रघुवंश, २।३७
१९- ‘शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।’ — मेघदूत, उत्तर, १३
२०- हेनरिच हारर — सेवन इयर्स इन तिबेट, पृ० २१- मेघदूत, पूर्व, ५७
२२- मेघदूत, पूर्व, ५६ २३- मेघदूत, पूर्व, ५८ २४- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५२३

पक्षियों मेंसे कवि ने मयूर, चक्रवाक, परिभृत (कोकिल) का अनेक स्थानों पर उल्लेख कियाहै। अलका में यक्षपत्नी ने एक मयूर पालाहुआथा [१]। राजहँस क्रौंचरन्ध्र (नीतिद्वार) होकर मानसरोवर पहुँचतेथे [२]। अलका में हँस और सारिकाएं भी पालीजातीथीं [३]।

कीटों में इन्द्रगोप (बीरबहूटी) और भ्रमर का उल्लेख भी कालिदास ने अनेक बार कियाहै।

निवासी— कण्वाश्रम, वशिष्ठाश्रम और कश्यपाश्रम में कवि ने गृहस्थी, एवं ब्रह्मचारी तपस्वियों का उल्लेख कियाहै। अन्यत्र पर्वतश्रेणियों के निवासियों को उन्होंने किंनर, किरात, विद्याधर, सिद्ध, यक्ष और अप्सरा बतलायाहै।

किंनर-किरात— गङ्गाजी के तट पर बसी हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ के निवासी यक्ष और किंपुरुष जातियों के थे। उनकी नारियां वनदेवियों के समान सुन्दर और सुखी थीं [४]। किंपुरुष और किंनर समानार्थक हैं। भागीरथी की घाटी में किंनरों के साथ किरात भी बसेथे [५]।

कम्बोजों को जीतकर जब रघु ने गौरीगुरुपर्वत पर आक्रमण कियाथा तो गङ्गाजी की उपत्यका में बसे किरात वनप्रदेश में छिपगए। जब रघु ने अपना सैन्यशिविर हटालिया तो वे वहां पहुँचे। देवदारुवृक्षों की ऊँची शाखाओं पर हाथियों के गले की सँकलों से बनी रेखाओं को देखकर उन्होंने रघु के हाथियों की ऊँचाई का अनुमान कियाथा [६]।

किंनरियां मधुर गीतों केलिए प्रसिद्ध थीं। जब कीचकवेणु बजनेलगते तो वे भी स्वर मिलाकर त्रिपुर - विजय के गीत गातीथीं [७]।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में एक प्राचीन श्लोक उद्घृत कियाहै, जिसके अनुसार समुद्रगुप्त के पुत्र शर्मगुप्त (रामगुप्त) के राज्यकाल में कार्तिकेयनगर के पास हिमालय की गुफाएं किंनरों के गीतों से गूजतीथीं [८]।

१- मेघदूत, उत्तर, १६ २- मेघदूत, पूर्व, ११ ३- मेघदूत, उत्तर, २५

४- 'यक्षाः किंपुरुषाः पौरा योषितो वनदेवता।' — कुमारसम्भव, ६।३९

५- 'भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः॥' — कुमारसम्भव, १।१५

६- 'तस्पोत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुदेवदारवः॥' — रघुवंश, ४।७६

७- 'शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः।
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किंनरीभिः॥' — मेघदूत, पूर्व, ६०

८- 'तस्मिन्नेव हिमालये गिरिगुहा कोणत् क्वणत् किंनरैः।
गीयन्ते तव कार्तिकेयनगरस्त्रीणां गणैः कीर्तयः॥' — काव्यमीमांसा, पृ०

किंनर और किरात मँगोलाइत नृवँश की दो शाखाएँ थी, जिनका प्रसार हिमालय की ढालों पर पूर्व से पश्चिम की ओर हुआथा। अनुमान कियाजाताहै कि किंनरजाति के पश्चात् किरातजाति की टोलियों ने आकर उसे पश्चिम की ओर धकेल दिया। कालिदास के समय गङ्गाजी की घाटी में किंनर और किरात, दोनों जातियां साथ - साथ बसीथीं।

उत्सवसंकेत— गङ्गाजी की घाटी के किंनर - किरातों के पड़ोस में उत्सवसँकेत नामक जाति बसीथी। सम्भवतः इनके किंनर - किरातों से उनदिनों अच्छे सम्बन्ध न थे। जब रघु ने उत्सवसँकेतों को उत्सवहीन (पराजित) करदिया तो किंनरों ने रघु की वीरता के गीत गाएथे [१]।

यक्ष— हिमालय की ऊँचीं ढालों पर यक्षजाति बसीथी। इस जाति का प्रमुख नगर कैलास के पास अलका के नाम से प्रसिद्ध था [२]। इस नगर के पास गँगाजी बहतीथी [३]। इस नगरी का स्वामी यक्षेश्वर कुवेर था [४]।

अन्य निवासी— कालिदास के समय जनसाधारण की मान्यता थी कि हिमालय के शिखरों पर सिद्ध [५], अप्सराएँ [६], और विद्याधर [७] निवास करतेहैं। इन सबकी शरीराकृति मानवाकृति से मिलती - जुलतीथी। मानव इन जातियों की नारियों से बिवाह करतेथे। पुरूरवा ने एक अप्सरा उर्वशी से बिवाह कियाथा, तथा एक विद्याधर - कन्या पर भी मुग्ध होगयाथा [८]। शकुन्तला विश्वामित्र की पुत्री मेनका अप्सरा से उत्पन्न हुईथी।

यह आश्चर्य की बात है कि कालिदास ने गँगा - उपत्यका में सर्वाधिक सँख्या में बसी खशजाति का उल्लेख नहीं कियाहै, जबकि महाभारत में उसकी इस प्रदेश के निवासियों में गणना कीगईहै [९]। खशजाति की पहिचान यक्षजाति से कीजातीहै। किन्तु कालिदास ने उत्तरमेघ में यक्षजाति की सुख - समृद्धि का ऐसा अलौकिक वर्णन कियाहै जिसे समकालीन खशजाति केलिए सँगत नहीं मानसकते।

बस्तियाँ, अलका— यक्षों की नगरी अलका कैलासपर्वत की गोद में बसीथी [१०]। उसीके निकट से गँगाजी बहतीथी [११]। वह नगरी ऊँचे - ऊँचे भवनों से भरीथी [१२]। कुछ भवन तो सात मँजिल तक ऊँचे थे [१३]। भवनों के बाहर इन्द्रधनुष के समान सुन्दर तोरण

१- 'शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान्।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किंनरान्॥' — रघुवंश, ४।७८

२- ३- मेघदूत, पूर्व, ६७

४- 'गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्' — मेघदूत, पूर्व, ७

५- कुमारसम्भव, १।५ ६- कुमारसम्भव, १।४ ७- कुमारसम्भव, १।७

८- विक्रमोर्वशी, अंक ४, पृ० २१३ ९- सभापर्व, ५२।३

१०- १२- मेघदूत, पूर्व, ६७ १३- मेघदूत, उत्तर, ८

थे [१]। भवनों के आंगन में बावड़ियां थीं, जिनमें हँस तैरतेथे [२]। बावड़ियों के पास उपवन थे, जिनमें कल्पवृक्ष, अशोक, कुरबक, माधवी आदि के पुष्प खिलेरहतेथे [३]। यहां पालतू मोर और सारिकाएँ भी रहतीथीं [४]।

अलका के भवनों में यक्षणियां रङ्ग - विरङ्गे वस्त्र पहने बिजली - सी चमकती थीं [५]। वे हाथों को कमल के आभूषणों से, चोटियों को कुन्द के पुष्पों से, जूड़े को कुरबक के पुष्पों से, कानों को सिरस के फूलों से तथा मांग को कदम्ब के पुष्पों से सजाती थीं। वे मुख को लोध्र के पुष्पों का पराग मलकर आकर्षक बनातीथीं [६]।

उनके घर नाना प्रकार के चित्रों से सजेरहतेथे [७]। और मृदङ्ग के साथ सँगीत की मधुर ध्वनि से गूँजतेरहतेथे। अलका के निवासी वैभव - सम्पन्न थे। उन्हें सब प्रकार की भोग - विलास की सामग्रियां, भोज्य वस्तुएँ और मदिरा सुलभ थीं [८]। नर-नारियों का जीवन अपने प्रियजनों के साथ आनन्द से बीतताथा [९]।

ओषधिप्रस्थ— पर्वतराज हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ गँगाजी और उसकी सहायकों द्वारा घिरी उपत्यका में बसीथी [१०]। समृद्धि में यह नगरी अलका से भी चढ़ी-बढ़ी थी [११]। नगरी के बाहर सुगन्धित पुष्पों से ढका गन्धमादनपर्वत, उसकेलिए उपवन के समान था [१२]। वहां के उच्चप्रासादों पर सदा मेघ छाएरहतेथे [१३]।

इस नगर में यक्ष और किन्नरों का निवास था। वहां की नारियां वनदेवियों के समान सुन्दर थीं [१४]! यहां के निवासी आजीवन युवा बनेरहतेथे [१५]। वे आजीवन भोग-विलास में मग्न रहतेथे [१६]। नगर में अनेक स्फटिक के बने मदिरालय थे [१७]। यहां के निवासियों को मृदंग आदि बजाकर गीत गाने में बड़ा आनन्द आताथा [१८]।

यहां पर्वतीय जड़ी - बूटियों की चमक से रात्रि जगमगायाकरतीथी [१९]। वहां के हाथी इतने सुदृढ़ और विशाल थे कि सिंह को पछाड़सकतेथे। वहां के घोड़े उत्तम बिल जाति के थे [२०]। इस काल्पनिक नगरी की पहिचान अनिश्चित है।

कनखल— आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इसे दक्ष की राजधानी और यज्ञभूमि बतलायाजाताहै। यहां गँगाजी पर्वतराज से मैदान में उतरतीहै [२१]।

कण्वाश्रम— कुलपति कण्व का आश्रम मालिनीनदी के तट पर था। आश्रम

१- मेघदूत, उत्तर, १२
२- मेघदूत, उत्तर, १६
३- मेघदूत, पूर्व, १४, १८
४- मेघदूत, उत्तर, १६, २५
५- मेघदूत, उत्तर, १
६- मेघदूत, उत्तर, २
७- मेघदूत, उत्तर, ८
८- मेघदूत, उत्तर, १२
९- मेघदूत, उत्तर, ७
१०- कुमारसम्भव, ६।३८
११- कुमारसम्भव, ६।३७
१२- कुमारसम्भव, ६।४६
१३- कुमारसम्भव, ६।४०
१४- १५- कुमारसम्भव, ६।३९
१६- कुमारसम्भव, ६।४४
१७- कुमारसम्भव, ६।४२
१८- कुमारसम्भव, ६।४०
१९- कुमारसम्भव, ६।३८
२०- कुमारसम्भव, ६।३९
२१- मेघदूत, पूर्व,

नदी के दोनों तटों पर बसाथा, उसके बीच से मालिनीनदी बहतीथी [१]। मालिनीनदी गौरीगुरुनामक पुनीत पर्वत से, जिस पर चमर विचरण करतेथे, निकलतीथी [२]।

कण्वाश्रम हिमगिरि की उपत्यका में वनप्रदेश के बीच में बसाथा [३]। यद्यपि कण्वाश्रम तक रथ आसकतेथे [४], किन्तु मैदान से आगे आश्रम तक की भूमि ऊँची - नीची थी। उस पर रथ लेजाते समय बड़ी सावधानी से रथ को धीरे - धीरे हांकना पड़ताथा [५]। आश्रम की भूमि सर्वथा समतल चौरस न थी। उसकी ऊबड़ - खाबड़, ऊँची - नीची भूमि पर यदि देख - देखकर, सावधानी से, पैर न रखेजाते तो गिरने का भय रहताथा [६]।

कुलपति कण्व का आश्रम मालिनी की पर्वतीय उपत्यका में पर्याप्त दूर तक फैलाथा। प्राचीनकाल में, जिस उपाध्याय के आश्रम में दस - सहस्र मुनि - विद्यार्थियों को भोजनादि देकर अध्ययन की व्यवस्था होतीथी, उसे कुलपति कहतेथे [७]। दस सहस्र-विद्यार्थियों के भोजनादि की व्यवस्था केलिए आश्रम के पास कुछ कृषिभूमि भी रहीहोगी।

यह आश्रम हस्तिनापुर से दो दिन के मार्ग पर था। दुष्यन्त के नाम में जितने अक्षर हैं, उतने दिनों में कण्वाश्रम से हस्तिनापुर जाना और हस्तिनापुर से कण्वाश्रम लौटना सम्भव था [८]। इसलिए कण्वाश्रम की स्थिति गढ़वाल - भावर में मालिनीनदी के तट पर, वर्तमान चौकीघाट के आस - पास मानसकतेहैं।

कण्वाश्रम के पास गौरीगुरुपर्वत पर कालिदास ने बैठेहुए चमरों की कल्पना कीहै [९]। ऐसा ऊँचे पर्वतों पर ही सम्भव होसकताहै। अन्यत्र जहां कालिदास ने गौरीगुरु में चमरों का उल्लेख कियाहै, वहां देवदारु या भूर्जपत्र का भी वर्णन कियाहै। भाबर के निकट शिवालिक की पहाड़ियों पर चमर का होना सम्भव नहीं है। बाण ने तो विन्ध्यपर्वत पर आम्र के उपवनों में भी चमरों का उल्लेख कियाहै [१०]।

१- 'एष चास्मद्गुरो कण्वस्य कुलपतेः अनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते।'—शकुन्तला, अंक १, पृ० २२-२३

२- शकुन्तला, ६।१६

३- एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः कण्वसन्देशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः सम्प्राप्ताः।'
— शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३१५

४- शकुन्तला, अंक १, पृ० १४

५- 'उद्घातिनी भूमिरिति रश्मिसंयमनात् रथस्य मन्दीभूतो...' — शकुन्तला, अंक १, पृ० १७

६- 'अस्मिन्नलक्षित नतोन्नत भूमिभागे, मार्गे पदानि खलु ते विषमी भवन्ति।' — शकुन्तला, ४।१७

७- 'मुनीनां दस साहस्रं योऽन्नपानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिः स वै कुलपतिः स्मृतः।' — उ० शास्त्री—अभिज्ञान शाकुन्तलम्, पृ० २३, टीका

८- 'एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं, नामाक्षरं गणय गच्छसि यावदन्तम्।
तावत् प्रिये! मदवरोधनिदेशवर्ती नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति॥' — शकुन्तला, ६।१२

९- 'कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितो निषण्णचमरा गौरीगुरोः पावनाः।' — शकुन्तला, ६।१६

१०- 'सहकारारामरोममन्थायमानचमरयूथाः,' — हर्षचरित, उ० ८, पृ० ४२०

आश्रम वनप्रदेश में था। वहां कुटीरों के पास अनेक पुष्पों से लदे वृक्ष थे, आम्र आदि फलदार वृक्षों और माधवी आदि लताओं से आश्रम के उपवन भरे थे [१]।

उपवन के वृक्षों को सींचने केलिए मालिनीनदी से कूलें निकालीगईथीं [२]। तपस्वियों की पुत्रियां भी घड़ों में जल लाकर वृक्षों को सींचतीथीं [३]।

सरोवरों में कमल खिलेथे [४]। लताओं के कुंजों में चौड़ी, चपटी शिलाएं बिछीथीं, जिनपर बैठकर विश्राम करसकतेथे [५]। आश्रम में अनेक हंस [६], मयूर तथा मृग रहतेथे, जो आश्रमवासियों के पारिवारिक प्राणियों के समान थे [७]।

आश्रम की कुटीर कुशादि तृणों से छाईजातीथीं [८]। आश्रम के निकट सम्भवतः कृषिभूमि थी, जिसमें भोजन केलिए श्यामाक और नीवार (झंगोरा - कोदा) उत्पन्न कियाजाताथा। पशु-पक्षियों को भी यदा - कदा श्यामाक खिलायाजाताथा [९]। वनैले पशु-पक्षी भी तपस्वियों की कृषि को हानि पहुंचातेथे [१०]।

चरणन्यास— प्रभवअचल (गंगास्रोत) के पास शिला पर शिवजी के चरणों के चिह्न बनेथे, जिनकी सिद्धलोग निरन्तर पूजाकरतेथे। ऐसी मान्यता थी कि श्रद्धा से चरणन्यास का दर्शन करनेसे पाप धुलजातेहैं और शरीरत्यागने के पश्चात् शिवजी के गणों में स्थान मिलताहै [११]।

वशिष्टाश्रम— सूर्यवंशियों के कुलगुरु वशिष्ट का आश्रम गौरीगुरुपर्वत पर था। इसके निकट, गंगाजी देवदारु के वृक्ष [१२] के पास झरना बनातीहुई बहतीथी [१३]। आश्रम के पास वन में कीचकवेणु (देवरिंगाल) की झुरमुटें थीं [१४]। इस वर्णन के अनुसार वशिष्ट का आश्रम गढ़दाल में गंगाजी के तट पर था।

रघुवंश के अनुसार दिलीप एक ही दिन में, रथ के द्वारा सायंकाल के समय

१- शकुन्तला, ४
२- शकुन्तला, १।१२
३- शकुन्तला, अंक १, पृ० ३०
४- शकुन्तला,
५- शकुन्तला, अंक ३, पृ० १५१
६- शकुन्तला, ६।१६
७- शकुन्तला, ४
८- शकुन्तला, ४।४
९- शकुन्तला, ४
१०- शकुन्तला, अंक १, पृ० २६
११- 'तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौले,
शश्वत् सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन् दृष्टे करणविगमाद् ऊर्ध्वमुद्धूतपापाः,
कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्धधानाः ॥ — मेघदूत, पूर्व, ५९.
१२- 'अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।' — रघुवंश, २।३६
१३- 'गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोगह्वरमाविवेश।' — रघुवंश, २।२
१४- रघुवंश, २।१२,

वशिष्ट के आश्रम में पहुँचगएथे [१]। यदि दिलीप अयोध्या से चलेहों तो उनका एक ही दिन में गढ़वाल पहुँचजाना सम्भव न था। किन्तु यदि वे कनखल के आसपास, अपने राज्य के किसी भाग से चलेहों तो सायँकाल को वशिष्ट के आश्रम में पहुँचसकतेथे।

दिलीप रथ द्वारा ही आश्रम में पहुँचगएथे। इसलिए आश्रम मैदान या भाबर प्रदेश में लछमनभूला के आसपास होनाचाहिए। किन्तु, तब आश्रम के पास देवदारु के वृक्ष का होना सम्भव न होगा। यदि देवदारु और सिंह दोनों को मायाप्रसूत मानें, जैसाकि कवि ने स्वयँ कहाहै [२], तो आश्रम को लछमनभूला से थोड़ा - आगे मानने में आपत्ति नहीं होसकती।

शक्रावतार— गँगाजी के तट पर छोटा - सा गांव था [३]। इस गांव में धीवरों की बस्ती थी [४]। यहां शचीतीर्थ था [५], जिसकी पथिक वन्दनाकरतेथे [५]।

हेमकूट— इस पर्वत की ढालों पर किंनरों का निवास था [६]। इसलिए इसे किंपुरुषपर्वत भी कहतेथे [७]। इसमें तपस्या करनेवालों को तुरन्त सिद्धि प्राप्तहोतीथी [८]। इस पर्वत की ढाल पर प्रजापति मरीचि का आश्रम था [९]। यह स्थान स्वर्ग से भी अधिक शान्तिप्रद था [१०]।

आश्रम में उत्तम भवन थे [११]। अशोक और कल्पवृक्ष थे [१२]। वहां सिंह भी मानवों के साथ पालतू पशुओं - जैसे रहतेथे [१३]। मुनियों के बच्चे सिंह - शावकों के साथ खेलतेथे [१४]।

जीवन — कालिदास के ग्रन्थों में गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका के मुख्यतः आश्रमवासियों के जीवन का वर्णन मिलताहै। इन आश्रमों मेंसे कण्वाश्रम और वशिष्टाश्रम धुरदक्षिण में शिवालिक की तलहटी में थे। मरीचि का आश्रम हेमकूट पर था।

शिवालिक की तलहटी से लेकर महाहिमालय की ढालों अर्थात् वर्तमान टकनौर - नागपुर-पैनखण्डा - से पहले के क्षेत्र के सम्बन्ध में कालिदास के ग्रन्थ मौन हैं। मेघ कनखल से सीधे प्रभवअचल पहुँचताहै। फलतः इस उपत्यका के लघुहिमालय के पठारों के निवासियों

१- 'स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमश्रान्तवाहनः।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षे महिषीसखः॥' रघुवंश, १।४८

२- 'उतिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रसविर्णीं न सिंहम्॥'— रघुवंश, २।६१

३- शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३५६

४- शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३८६

५- ६- शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३५६ - ५७

७- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५१०

८- एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतः परं तपस्विनां क्षेत्रम्।'—शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५१०

९- शकुन्तला, ७।९

१०- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५१५

११- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५१८

१२- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५१६

१३- १४- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५२१

के सम्बन्ध में कवि के ग्रन्थों से कोई सूचना नहीं मिलती।

शिवालिक की तलहटी, भाबरप्रदेश के ग्रामीण जीवन का वर्णन भी उनके ग्रन्थों में नहीं मिलता। फिर भी आश्रमों के वर्णन से जो सूचनाएँ मिलतीहैं, उनमेंसे कुछसे समकालीन ग्रामीण गृहस्थियों के जीवन और मान्यताओं का परिचय मिलजाताहै।

जनसंख्या— कुलपति कण्व के आश्रम में सैकड़ों मुनियों तथा विद्यार्थियों के भोजन, निवास और शिक्षा की व्यवस्था थी। अन्य आश्रमों तथा ओषधिप्रस्थ एवं अलकानगरी की जनसंख्या की निश्चित सूचना उपलब्ध नहीं है। आश्रमों में रहनेवाले मुनियों और विद्यार्थियों केलिए भोजनसामग्री का बड़ा भाग पड़ोस में बसी ग्रामीणजनता से प्राप्त होताथा, ऐसा मानसकतेहैं।

आश्रमों के वर्णन में कृषि - उपकरणों तथा बैलों आदि का वर्णन न मिलनेसे अनुमान लगताहै कि वहां श्यामाक और नीवार थोड़ी मात्रा में ही उत्पन्न किएजातेथे। शेष आवश्यकता की पूर्ति निकटवर्ती ग्रामीण जनता द्वारा कीजातीथी।

ऊँचे पर्वतीय भागों में पत्थर के सुदृढ़ मकान बनाएजातेथे, जिनमेंसे कुछ कई मँजिल ऊँचे होतेथे [१]। इन पर द्वार और वातायन (खिड़कियां) बनी होतीथीं [२]। घरों को लीप, पोतकर स्वच्छरखने एवँ चित्रादि से सजाने की प्रथा थी [३]। खिड़कियों पर जालियां लगाईजातीथीं [४]।

शिवालिक की तलहटी में घास - फूस से छाईहुई कुटियां अधिक प्रचलित थीं [५]।

बस्तियों में घरों के निकट फल तथा पुष्प देनेवाले वृक्षों और लताओं को चाव से लगायाजाताथा [६]। पालतू पशु - पक्षियों में गाय [७], अश्व [८], मयूर [९] और सारिका [१०] सबसे अधिक लोकप्रिय थे। आश्रमवासी मृगों को भी पाललेतेथे [११]।

वेशभूषा— शरीर को आभूषणों से सजाने की व्यापक प्रथा थी [१२]। आभूषण मुख्यत: पुष्पों और पत्तियों से बनतेथे। नारियां बालों के जूड़े को पुष्पों से सजातीथीं [१३]; मांग में और कानों में रङ्ग - विरङ्गे पुष्प पहनतीथीं [१४]। मृणाल के वलय (कड़े) बनातीथीं [१५]। तथा पुष्पों की मालाएँ चाव से धारण करतीथीं।

धनी व्यक्ति चन्द्रमा के समान उज्ज्वल क्षौमवस्त्र धारण करतेथे [१६]। पैरों पर लाक्षारस लगाकर सजातेथे [१७]। वे पल्लवों के समान सुन्दर आभूषण धारणकरतेथे [१८]। तापादि शान्तकरने नारियां स्तनादि पर उशीर का लेप करतीथीं [१९]। लोध के पुष्पों का पराग मलकर मुख का सौंदर्य बढ़ातीथीं [२०]।

१- मेघदूत, उत्तर, २- मेघदूत, उत्तर, ३- मेघदूत, उत्तर, ४- मेघदूत, उत्तर,
५- शकुन्तला, ६- शकुन्तला, ७- शकुन्तला, २ ८- कुमारसम्भव,
९- मेघदूत, उत्तर, १०- मेघदूत, उत्तर, ११- शकुन्तला, ४ १२-१४- मेघदूत, उत्तर, २
१५- शकुन्तला, १६- १८- शकुन्तला, ४।७ १९- शकुन्तला, ३।१०
२०- मेघदूत, उत्तर, २

साधारण जनता और तपस्वी सस्ते और सुलभ वस्त्र धारण करतेथे। तपस्वियों के वस्त्र बल्कल या छाल से बनतेथे [१]। जब भीगते तो उन्हें सुखाने केलिए वृक्षादि पर टांकदेतेथे [२]। इससे पता लगताहै कि बल्कल सम्भवत: भांग आदि पौधों की छाल के रेशों से बने मोटे, भद्दे और सस्ते वस्त्र थे। तपस्वी नारियां भी इनको धारण करतीथीं [३]। इन्हें गाती के समान शरीर पर लपेटकर ऊपर से रस्सी आदि से बांधतेथे [४]।

घरों में काष्ट, मृतिका और धातु के पात्र होतेथे। मृतिका के पात्र बहुप्रचलित थे। जल केलिए घट (घड़ों) का प्रयोग होताथा [५]।

भाषा— शकुन्तला और विक्रमोर्वशी के अनुसार नारियां और साधारण व्यक्ति प्राकृतभाषा का प्रयोग करतेथे। शिष्ट समाज में सँस्कृतभाषा का प्रयोग प्रचलित था। नारियों को सँस्कृत तथा पुरुषों को प्राकृत समझने में कोई कठिनाई नहीं होतीथी। कुमारसम्भव के एक प्रसँग के अनुसार सँस्कृत और प्राकृत. दोनों का प्रयोग समाज में प्रचलित था। सरस्वती ने दोनों भाषाओं में शिव और उमा की प्रशँसा कीथी [६]।

धार्मिक मान्यताएं— बर्णाश्रम - व्यवस्था प्रचलित थी। ब्रह्मचारी आश्रमों में शिक्षा प्राप्तकरतेथे। कण्वाश्रम - जैसे विशाल आश्रमों में कई सौ मुनि और विद्यार्थी विद्याध्ययन करतेथे। उनके आचार्य कुलपति कहलातेथे [७]। आश्रमों में गृहस्थी तपस्वी भी होतेथे [८]। बैखानस या वानप्रस्थ तपस्वी भी आश्रमों में रहतेथे [९]।

जनसाधारण का भाग्य पर विश्वास था [१०]। विपत्ति आने पर दुष्टग्रहों की शान्ति केलिए अनेक उपाय किएजातेथे। ऐसे उपाय तीर्थस्थान में करनेसे अधिक फलदायी होतेहैं, ऐसा विश्वास था [११]। मँगलकार्यों केलिए नारियल की पिटारी में नागकेशरपुष्प की पराग रखतेथे [१२]। मांगलिकलेप केलिए गोरोचन, तीर्थ की मिट्टी तथा दूर्वा के अँकुरों का प्रयोग होताथा [१३]।

जनता का जल की पावनता में विश्वास था। तीर्थयात्रा सुप्रचलित थी। तीर्थ नदीतट पर होतेथे। ऋषि - मुनियों के आश्रमों का दर्शन पुण्यदायक मानाजाताथा [१४]। तीर्थों में स्नान और जलदेवता की वन्दना कीजातीथी [१५]। किसी प्रियजन को भेजते समय वहांतक जातेथे, जहां मार्ग में जलाशय मिलताथा [१६]।

१- शकुन्तला, अंक १, पृ० १९
२- शकुन्तला, १।३४
३- शकुन्तला, अंक १, पृ०
४- शकुन्तला, अंक १, पृ०
५- शकुन्तला, अंक १, पृ० ३०
६- 'द्विधाप्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।' कुमारसम्भव, ७।९०
७- शकुन्तला,
८- शकुन्तला,
९- शकुन्तला, अंक १, पृ० २०
१०- 'भाग्याधीनमत: परम्', शकुन्तला ४।१९
११- शकुन्तला, अंक १, पृ० २४
१२- १३- शकुन्तला, अंक ४, पृ० २६१
१४- शकुन्तला, अंक १, पृ० २५
१५- शकुन्तला, अंक ६, पृ० ४४०
१६- शकुन्तला, अंक ४, पृ० २६१

घर में अनेक देवी - देवताओं की पूजा कीजातीथी [१]। त्रिमूर्ति [२] तथा अष्टमूर्ति शिव की पूजा विशेषरूप से प्रचलित थी [३]। देवमूर्ति की पूजा वेदी पर कीजातीथी। वेदी को लीप - पोतकर स्वच्छ रखतेथे। कुशा और फूलों से देवपूजा करतेथे [४]। अन्य प्रिय वस्तुएं भी देवताओं को श्रद्धापूर्वक अर्पितकरतेथे [५]। अपने निवासस्थान में भी देवताओं का निवास मानाजाताथा। घर की देहली पर द्वारदेवता का वास होताथा। प्रतिदिन प्रातः पुष्प चढ़ाकर उसकी पूजा कीजातीथी [६]। ऐसा करनेसे अनिष्टों का नाश और मँगल की प्राप्ति होतीथी। द्वार पर शँख और पद्म के चिह्न बनाएजातेथे [७]।

मनोरंजन के साधन— मनोरञ्जन के साधन के रूप में चित्रकला बहुप्रचलित थी। नर - नारी दोनों, इसका अभ्यास करतेथे [८]। चित्र कागज, वस्त्र, काष्टपट्टी, भूर्जपत्र तथा शिलाओं पर गेरू आदि से बनातेथे [९]।

सँगीत लोकप्रिय था। गीत बीणा या मृदँग के साथ गाएजातेथे [१०]। ताली देकर पालतू मोरों को नचाना भी समाज में प्रचलित था [११]। सारिका से वार्तालाप करके भी नर - नारी मनबहलाव करतेथे [१२]। बालिकाएँ बचपन में गुड़ियों को बड़े चाव से सजातीथीं [१३]। मन्दाकिनी के तट पर बालू की वेदिकाएँ बनाने और तोड़ने में भी उन्हें बड़ा आनन्द आताथा [१४]। बिवाहिता नारियां भी इस क्रीड़ा का आनन्द लेतीथीं [१५]। गेन्द खेलना नर - नारियों को विशेष रूचिपूर्ण लगताथा [१६]।

काष्ट, धातु और मृतिका के खिलौने प्रचलित थे। छोटे बच्चों केलिए मृतिका के बने मयूर के प्रति विशेष आकर्षण था [१७]। इन मृतिका मयूरों को नानाप्रकार के रङ्गों से इस प्रकार रङ्गाजाताथा कि वे स्वाभाविक प्रतीत होतेथे [१८]।

पारिवारिक जीवन— सम्मिलित बड़े - बड़े परिवारों की प्रथा थी। दास-दासियों और सेवक - सेविकाओं को भी परिवार का अँग मानाजाताथा। परिवार में गुरुजनों के प्रति आदर और श्रद्धा की भावना होतीथी। माता - पिता तथा गुरुजनों के चरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणाम कियाजाताथा। सन्तानहीन या अन्य व्यक्ति भी अनाथों को अपनी सन्तान के समान पाललेतेथे। पालित सन्तान को भी परिवार का अँग समझाजाताथा।

सम्भ्रान्त परिवारों में पुत्र - पुत्रियों की शिक्षा का घर पर प्रबन्ध होताथा [१९]। कुमारावस्था में बालकों को निकट या दूर के आश्रमों में विद्याध्ययन-हेतु भेजाजाताथा।

१- कुमारसम्भव, ५।४   २- कुमारसम्भव, -।४   ३- रघुवंश,
४- कुमारसम्भव , १।६०   ५- मेघदूत, उत्तर, २५   ६- मेघदूत, उत्तर, २७
७- मेघदूत, उत्तर, २०   ८- मेघदूत, उत्तर, २५   ९- मेघदूत, उत्तर, ४७
१०- मेघदूत, उत्तर, ३५   ११- मेघदूत, उत्तर,   १२- मेघदूत, उत्तर,
१३-- मेघदूत, उत्तर, २१   १४- १५- कुमारसम्भव, १।२९   १६- विक्रमोर्वशी, अंक , ५०
१७- कुमारसम्भव, १।२९   १८- शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५२६
१९- 'वर्णचित्रित मृतिकामयूरः' — शकुन्तला, अंक ७, पृ० ५२६

बचपन में, पुत्री का जीवन, घर पर विद्याओं और कलाओं को सीखने तथा घरेलू कार्यों आदि के अभ्यास में बीतताथा [१]। घर में अतिथि की सेवा - सत्कार का कार्य प्रायः कन्याओं को सौंपाजाताथा [२]। योवन आने पर कन्या का सुयोग्य पात्र से बिवाह करना उचित समझाजाताथा।

माता - पिता कन्या को दूसरे की धरोहर मानतेथे [३]। उसका सुयोग्य व्यक्ति से बिवाहकरने में, उन्हें उसीप्रकार की शान्ति मिलतीथी, जिसप्रकार की शान्ति दूसरे की धरोहर उसे सौंपने से मिलतीहै [४]। पुत्री को सुसराल भेजते समय माता - पिता के अश्रु उमड़ आतेथे। पुत्री भी मातृगृह छोड़ते समय बहुत दुखी होतीथी [५]।

बिवाह बड़ी आयु में होतेथे। गन्धर्वबिवाह की प्रथा सुप्रचलित थी। शकुन्तला और उर्वशी, दोनों ने इसी पद्धति से बिवाह कियाथा। मनोवाञ्छित पति प्राप्त करनेहेतु उमा ने तपस्या कीथी [६]।

ब्राह्मबिवाह भी प्रचलित थे। बिवाह का प्रस्ताव पहले वरपक्ष की ओर से कन्या-पक्ष के पास भेजाजाताथा। सुयोग्य वर की सूचना मिलजाने पर भी कन्यापक्षवाले स्वयँ प्रस्ताव न करके वरपक्ष द्वारा प्रस्ताव किएजाने की प्रतीक्षा करतेथे [७]।

समाज में पुरुषों द्वारा एक - से अधिक विवाहकरना साधारण बात थी। नारियां इसे सुप्रचलित सामाजिक प्रथा - मात्र मानतीथीं। माता - पिता दामाद से आशा रखतेथे कि वह उनकी पुत्री के साथ उसीप्रकार का व्यवहार करेगा, जिसप्रकार का वह अपनी दूसरी पत्नियों से करताहै [८]। पारिवारिक सुख - दुखों को वे भाग्याधीन मानकर सन्तोष कर लेतेथे [९]। उनके सम्बन्ध में दामाद से कहना वे उचित नहीं समझतेथे [१०]।

आदर्श बिवाहिता नारी से आशा कीजातीथी कि वह अपने पति के परिवार में गुरुजनों की सेवा के द्वारा प्रसन्न रखेगी [११]। अपनी सौतों के साथ प्यारी सखियों के समान व्यवहार करेगी [१२]। यदि पति कारणवश उसका अपमान भी करे तोभी वह क्रुद्ध होकर उसके प्रतिकूल व्यवहार नहीं करेगी [१३]। तथा धन - वैभव प्राप्त करने भी अभिमान

१- कुमारसम्भव, १।२६ २- शकुन्तला, अंक १, पृ० २४

३- ४- 'अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा चिरस्य निक्षेपमिवार्पयित्वा ॥' — शकुन्तला, ४।२४

५- शकुन्तला, ४।८ ६- कुमारसम्भव, ७- कुमारसम्भव, १।५२

८- 'सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया।
भाग्याधीनमतः परं न खलु तत् स्त्रीबन्धुभिर्याच्यते ॥' — शकुन्तला, ४।१६

९- १३- 'शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥' — शकुन्तला, ४।२०

नहीं करेगी [१]। इस प्रकार शान्ति, प्रेम और नम्रतापूर्वक जीवन बितानेवाली नारियों को समाज में आदर्शगृहिणी मानाजाताथा। इससे विपरीत आचरण करनेवाली नारियां कुलघातिनी कहीजातीथीं [२]।

समाज में मान्यता थी कि पत्नी केलिए सब प्रकार से पति की आज्ञा का पालन करना आवश्यक है। अपनी पत्नियों के ऊपर, पति की सभी प्रकार की प्रभुता समाज को मान्य थी [३]। इस प्रकार की मान्यताओंवाले समाज में पली नारी पति को अपना स्वामी, नाथ, तथा सर्वस्व समझतीथी।

जब पति परदेश में रहता तो पत्नी विरह में बड़ी उदास रहतीथी। वह पति के आगमन की तिथि तक के दिनों की गिनती करतीहुई उन्हें किसी न किसी प्रकार बिताने का प्रयत्न करतीथी। वह मैले वस्त्र पहनती तथा एक बेणी धारणकरतीथी [४]।

पुरुष भी, जब अपने प्रियजनों से दूर रहते तो विरह के दिनों को बड़े कष्ट से बितातेथे। तथा अपने प्रियजनों की 'खुद' (तीव्रस्मृति) से व्याकुल होकर, जिसकिसी को, अपनी जन्मभूमि की ओर जाते देखते, उसीके हाथ सन्देश भेजने को उत्सुक रहतेथे [५]।

तपस्वियों का जीवन— कालिदास के ग्रन्थों में इस जनपद के तपस्वियों के आश्रमों का विशद वर्णन है। शकुन्तलानाटक में कुलपति कण्व और प्रजापति कश्यप के आश्रमों का, रघुवंश में वशिष्ट के आश्रम का, तथा कुमारसम्भव में हिमालय के अन्य आश्रमों का वर्णन है।

आश्रम पहाड़ी ढालों पर नदियों के तट पर प्रायः वन के मध्य में शान्त वातावरण में बनतेथे। वहां जल, कन्द, मूल - फलादि भोजनसामग्री तथा ईंधन सुलभ होतेथे। तपस्वी पशु - पक्षियों और वृक्ष - लताओं के बीच सारी प्रकृति से आत्मीयता का अनुभव करतेथे।

तपस्वियों की पर्णकुटियों के आंगन में सायँकाल को हरिण आकर लेटजातेथे [६]। दूध देनेवाली होमधेनु आश्रम के निकट के वनों में चरकर सन्ध्या को वहीं लौट आतीथीं [७]। तपस्वीजन हवन करनेलगतेथे [८]। चारों ओर खड़े पेड़ - पौधे आश्रमवासियों द्वारा सिंचित होनेसे प्रफुल्लित होजातेथे [९]।

जनसाधारण का विश्वास था कि आश्रम के दर्शन से पुण्यप्राप्ति होतीहै [१०]। यद्यपि तपोवन शान्तिप्रधान होतेहैं पर उनमें गुप्त तथा दाहात्मक तेज छिपारहताहै [११]।

१- शकुन्तला, ४।२६   २- मेघदूत, उत्तर,   ३- शकुन्तला, ७।२१
४- मेघदूत, पूर्व,   ५- शकुन्तला, अंक १, पृ० २५
६- ९- 'आविशद्भिरुटजाङ्गणं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः।
आश्रमाः प्रविशदग्रधेनवो बिभ्रति श्रियमुदीरिताग्नयः॥' — कुमारसम्भव, ८।३८
१०- शकुन्तला, अंक १, पृ० २५   ११- शकुन्तला, २।७

आश्रमों में ब्रह्मचारी, गृहस्थी तथा वैखानस तपस्वी रहतेथे। आश्रमों में प्रायः ब्रह्मचारियों की शिक्षा - दीक्षा का भी प्रबन्ध रहताथा। कुलपति कण्व के आश्रम में सैकड़ों ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करतेथे। उनके भोजन तथा निवास की व्यवस्था आश्रम की ओर से से होतीथी [१]। सम्भवतः आश्रमों में नीवार [२] और श्यामाक [३] की खेती कीजातीथी। आश्रमों में आम, जामुन आदि फलदार वृक्ष भी उगाएजातेथे। वृक्षों, पौधों और सम्भवतः खेतों की सींचाई कूलों से कीजातीथी [४]। घड़ों के जल से भी सींचाई कीजातीथी [५]। इङ्गुदी को विशेषरूप से उगायाजाताथा। उसके बीजों का तेल शिर पर मलने - हेतु [६] तथा भोजन एवँ ओषधि के रूप में प्रयुक्त होताथा [७]।

ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य के तेज से दमकतेथे [८]। वे प्रायः हरिण की खाल ओढ़तेथे [९]। उनके शिर पर जटा होतीथी [१०]। वे हाथों में पलाश का दण्ड लिए रहतेथे [११]।

तपस्वी वल्कल धारणकरतेथे [१२]। वे सिर पर नमेरु (थुनेर) के पुष्पों की माला लपेटतेथे [१३]। शरीर को मैनसिल से रङ्गलेतेथे [१४]। तथा शिलाजीत से पुती शिलाओं पर आसन जमातेथे [१५]। वे वेदी को लीप - पोतकर पुष्पों और कुशा से देवपूजा करतेथे [१६]।

तपस्वी वीरासन लगाते, अपना धड़ सीधाखड़ा और अचल रखते तथा दोनों कन्धे झुकाकर, अपनी गोद में कमल के समान दोनों हथेलियों को ऊपर किएहुए, वे बिना हिलेडुले हुए बैठेरहतेथे [१७]।

शिर पर उनकी जटा बँधीरहतीथी। वे अपने दहिने कान पर रुद्राक्ष की माला को दुहरी करके टांकतेथे। उनके शरीर पर मृगछाला गांठ बांधकर कसीरहतीथी [१८]।

वे भौंहें तानकर, थोड़ा - थोड़ा प्रकाश देनेवाली, निश्चल, उग्र तारोंवाली और अपनी किरणें नीचे डालनेवाली आंखों से नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर बैठेरहतेथे [१९]। शरीर के अन्दर चलनेवाले पवनों को रोककर वे अचल होकर अपने अन्तरात्मा का ध्यान करतेथे [२०]।

१- 'मुनीनां दस साहस्रं योऽन्नपानादिपोषणात्,।
अध्यापयति विप्रर्षिः स वै कुलपतिः स्मृतः।' — उ० शकुन्तला, पृ० २३,

२- शकुन्तला, अंक १, पृ० २६ ३- शकुन्तला, अंक ४ ४- शकुन्तला, अंक १, पृ० १५

५- शकुन्तला, अंक १, पृ० ३० ६- शकुन्तला, - ७- १०- कुमारसम्भव , ८।३८

११- शकुन्तला, अंक ४ १२- १५- कुमारसम्भव, १।५५ १६- कुमारसम्भव, १।६०

१७- २०- 'भुजंगमोन्नद्धजटाकलापं कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम्।
कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम्॥
किञ्चितप्रकाशस्तिमितोग्रतारैर्भ्रूविक्रियायां विरतप्रसङ्गैः।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैर्लक्ष्मीकृतघ्राणमधोमयूखैः॥
अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरंगम्।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम्॥' — कुमारसम्भव, ३।४६-४८

तप करनेवाली नारियां भी जटाजूट रखतीथीं [१]। वे गले में लालरङ्ग का बल्कल हार के समान पहनतीथीं [२]। कमर पर मूँज की तिहरी तगड़ी कसकर बांधतीथीं [३]। वे हाथों पर रुद्राक्ष की माला लपेटतीथीं [४]।

वे अपनी पृथक पर्णकुटी बनातीथीं। उसीमें विधिपूर्वक हवन करतीथीं [५]। वे कुश के आसन पर बैठकर ध्यान लगातीथीं [६]। वे या तो बिना बिछौने के शिर के नीचे हाथ का तकिया बनाकर सोतीथीं, अथवा आसन पर बैठे - बैठे ही अल्पकाल केलिए निद्रा का आश्रय लेलेतीथीं [७]।

दुर्लभ सिद्धि प्राप्त करनेकेलिए शरीर को यातना देनेवाले अनेक प्रकार के कठोर तप भी प्रचलित थे। तपस्वी पुरुष ही नहीं, तपस्विनी नारियां भी इन कठोर तपों का अभ्यास करतीथीं।

तपस्वी नर - नारी ग्रीष्मकाल में अपने चारों ओर अग्नि जलाकर दिनभर खड़े रहकर एकटक दृष्टि से सूर्य को देखतेरहतेथे [८]। इस कठोर व्रत से उनके नेत्रों के कोर सांवले होजातेथे [९]।

वर्षाकाल में वे खुली भूमि पर शिलाओं पर बैठकर वर्षा में भी तप करतेथे [१०]। वे आंधी और वर्षा में भी वहीं बैठकर वृक्षों के समान वर्षा का जल पीतेथे, और रात्रि को चन्द्रकिरणों का पान करतेथे [११]।

पौष - माघ की रात्रियों में, जब पवन हिम बखेराकरताहै, वे कण्ठ तक जल के अन्दर खड़े रहतेथे। उनका केवल शिर जल से बाहर रहताथा [१२]।

वे आहार के सम्बन्ध में भी बड़े कठोर व्रत का पालन करतेथे। कभी वे धरती पर पड़े पत्तों पर ही निर्वाह करतेथे और कभी उनका सेवनकरना भी त्यागदेतेथे [१३]।

तपस्वियों के दो शत्रु उनकी तपस्या में विघ्न डालाकरतेथे। राक्षस और असुर तामसीवृत्तिवाले प्राणी थे, जिन्हें तपस्वियों की तपस्या में विघ्नडालने में विशेष आनन्द आताथा [१४]। अप्सराएँ, स्वतः ही, अथवा इन्द्र की प्रेरणा से आश्रमों के पास आकर एकाकी तपस्वी का शीलभङ्ग करदेतीथीं [१५]। जनसाधारण और तपस्वियों का विश्वास था कि नारी - प्रसंग करनेसे तपस्या का फल नष्ट होजाताहै।

पर्वतवासियों का स्वभाव— कालिदास के ग्रन्थों में गङ्गा - उपत्यका के जिन पर्वतवासियों का वर्णन है, उनमें ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वैखानस, तीनों आश्रमों के नर - नारी

१- कुमारसम्भव, ५।८
२- कुमारसम्भव, ५।९
३- कुमारसम्भव, ५।१०
४- कुमारसम्भव, ५।११
५- कुमारसम्भव, ५।१७
६- ७- कुमारसम्भव, ५।१२
८- कुमारसम्भव, ५।२०
९- कुमारसम्भव, ५।२१
१०- कुमारसम्भव, ५।२५
११- कुमारसम्भव, ५।२२
१२- कुमारसम्भव, ५।२६-२७
१३- कुमारसम्भव, ५।२८
१४- शकुन्तला, अंक २, पृ० १२६
१५- शकुन्तला, अंक १

और बालक - वृद्ध सम्मिलित हैं। सभीको कवि ने सत्यवादी, धर्मभीरु, प्राचीन मान्यताओं का अनुकरण करनेवाला, एवँ छल - कपटरहित चित्रित कियाहै।

पर्वतवासी अपने आश्रमों, तथा वनप्रदेशों में जिस सुख - शान्ति और स्वच्छन्दता का अनुभव करतेथे, वह उन्हें मैदानी नगरों में नहीं मिलतीथी। इससे नगरों में पहुँचकर वे बड़े उन्मने - से रहतेथे। उन्हें भीड़ - भाड़वाला नगर अग्निदग्ध गृह - सा लगताथा[1]।

पर्वतवासियों को नगर के बन-ठनकर रहनेवाले लोगों से मिलने - जुलने में उसी प्रकार की झिझक होतीथी, जिसप्रकार की झिझक का अनुभव स्नान कियाहुआ व्यक्ति तेल लगाए व्यक्ति से, पवित्र व्यक्ति अपवित्र व्यक्ति से, जागताहुआ व्यक्ति सोएहुए व्यक्ति से तथा स्वतन्त्र व्यक्ति परतन्त्र व्यक्ति से मिलने में अनुभव करताहै।

पर्वतवासी सत्यवादी और छल - कपटरहित होतेथे। यदि कोई उनकी निष्ठा पर अविश्वास करता तो उनकेलिए अपनेको सँयम में रखना कठिन होजाताथा। वे अपने पर लगाएगए आक्षेपों का दृढ़तापूर्वक प्रतिरोध करतेथे।

जब दुष्यन्त ने शकुन्तला को अपनी पत्नी माननेसे अस्वीकार करतेहुए उसके कथन को असत्य ठहराया तो गौतमी ने तुरन्त कहा – आपका ऐसा सोचना सर्वथा अनुचित है। यह कन्या तपोवन में पली है। अस्तु छल - कपट से सर्वथा अनभिज्ञ है[३]।

शार्ङ्गरव ने कहा—जिसने जन्मभर किसी प्रकार की दुष्टता नहीं सीखी उसका कथन आप असत्य मानतेहैं और जिसने ढोंग रचकर दूसरों को धोखादेना ही सीखा है, उसे सत्यवादी मानतेहैं[४]?

इस पर भी जब दुष्यन्त ने अविश्वास करतेहुए नारियों की स्वाभाविक चतुरता (चालाकी एवँ छल) पर आक्षेप किया तो शकुन्तला ने क्रोध से फटकारतेहुए कहा – अरे अधम! तू अपने कपटपूर्ण हृदय के समान सबका हृदय समझताहै? झूटे धर्म के आवरण से अपनेको ढके, तृण से ढके कूप के समान, तुझ-सा पाखण्डी और कौन होगा?[५] क्या पुरुष ही शास्त्र, लोक तथा धर्म की मर्यादा को जानतेहैं, और लज्जा से वशीभूत

१- 'तथापदि शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा.
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।' – शकुन्तला, ५।११

२- 'अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि॥' – शकुन्तला, ५।१२

३- 'तपोवन संवर्द्धितः खल्वयंजनः अनभिज्ञः कैतवस्य।' – शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३६०

४- 'आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
पराभिसन्धानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः॥' — शकुन्तला, ५।२८

५- शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३६२

नारियां कुछ जानती ही नहीं [१] ? अच्छा, तुम सोचरहेहो कि एक स्वेच्छाचारिणी वेश्या तुम्हारे सन्मुख खड़ीहै [२] !

और अन्त में वह सीता की भांति धरती से प्रार्थना करतीहै – भगवति वसुन्धरे ! मुझे अपने अंक में स्थान दो [३] ।

दुष्यन्त द्वारा अपमानित और त्यागीजाने पर भी, कई वर्षों के पश्चात् जब दुष्यन्त पश्चाताप करताहुआ शकुन्तला के चरण पकड़नेलगताहै, तो शकुन्तला तुरन्त सारी घटनाओं को भुलाकर, उसी निश्छल हृदय से दुष्यन्त को अपनालेतीहै । वह इसका सारा दोष अपने पूर्वजन्म के किसी पाप को देतीहै [४] ।

गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका के जिन पात्रों का वर्णन कालिदास ने कियाहै, उनमें शकुन्तला का चरित्र - चित्रण सबसे अधिक पूर्ण और स्वाभाविक है तथा समकालीन मान्यताओं पर सुन्दर प्रकाश डालताहै ।

कालिदास की तिथि— विद्वानों का अनुमान है कि कालिदास गुप्तसम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त के समकालीन थे [५] । शकुन्तलानाटक का अभिनय विक्रमादित्य की राजसभा में कियागयाथा[६]। उनके अन्य किसी ग्रन्थ से किसी नरेश के आश्रय का पता नहीं लगता । गुप्तनरेशों के किसी भी अभिलेख में इस महाकवि का उल्लेख नहीं मिलता । उनका उल्लेख सबसे पहले पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल - अभिलेख में मिलताहै, जिसकी तिथि सं० ६९१ वि० (634 ई०) मानीजातीहै [७] ।

यदि कालिदास किसी गुप्तनरेश के आश्रित रहेहोते तो वह नरेश या उसके वंशज अपनी विजयगाथाओं के साथ अपनी सभा के इस महाकवि का उल्लेख अवश्य करते ।

परम्परा के अनुसार कालिदास उज्जयिनी के शकविजेता विक्रमादित्य की राजसभा के रत्न थे । गुप्तनरेशों मेंसे कुछ ने विक्रमादित्य का विरुद धारण कियाथा । किन्तु उनकी राजधानी पाटलीपुत्र थी ।

कालिदास के जीवन का बड़ा भाग उज्जयिनी, विदिशा, विदर्भ के निकटपड़ोस

१- ' यूयमेव प्रमाणं जानीथ धर्मस्थितिञ्च लोकस्य ।
लज्जाविनिर्जिता जानन्ति न किमपि महिला: ?' – शकुन्तला ५।२६

२- शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३६६ ३- शकुन्तला, अंक ५, पृ० ३७६

४- शकुन्तला, अंक, ७, पृ० ५४८-४६

५- भगवतशरण उपाध्याय – कालिदास का भारत, भाग २, पृ० २१६

६- ' आर्ये ! इयं हि रसभावविशेषदीक्षागुरोविक्रमादित्यस्याभिरूप भूयिष्ठा परिषत् । अस्याञ्च कालिदासग्रथितवस्तुनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभि: । '
— शकुन्तला, अंक १, पृ० ६

७- ' स विजयतां रविकीर्ति कविताश्रितकालिदासभारविकीर्ति: । ' – राजबलि पाण्डेय – हिस्टोरिकल ऐंड लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स, पृ० २४५

में बीताथा। ऐसा विदित होताहै कि कालिदास स्थायीरूप से किसी नरेश के आश्रित नहीं रहे। इसलिए किसी नरेश के अभिलेख में कालिदास का तथा कालिदास के अन्य ग्रन्थों में किसी आश्रयदाता नरेश का नाम नहीं मिलता। उनके अन्य नाटकों में विद्वत्परिषद के साथ किसी नरेश के नाम का उल्लेख नहीं है।

कालिदास को गुप्तकालीन सिद्धकरने के सम्बन्ध में जो तर्क दिएजातेहैं वे इतने पुष्ट नहीं हैं, कि उन्हें सर्वथा अकाट्य और पूर्ण प्रामाणिक मानाजासके। इसलिए धीरे-धीरे विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचरहेहैं कि कालिदास वि० पू० ४३ से सँ० ५०७ वि० (100 B. C. - 450 A. D.) के बीच किसीसमय हुएथे [१]।

कालिदास के ग्रन्थों में जिन धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक परम्पराओं और आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख है, वे पतञ्जलि के जीवनकाल से लेकर बाणभट्ट के जीवनकाल तक प्रचलित रहीं।

कालिदास की जन्मभूमि— कालिदास की तिथि के समान उनकी जन्मभूमि भी अनिश्चित है। विद्वानों ने उनकी जन्मभूमि बँगाल [२], विदर्भ [३], मिथिला [४], कश्मीर [५], उज्जयिनी [६] या मालवा [७] में सिद्धकरने का प्रयत्न कियाहै।

कालिदास के ग्रन्थों में सबसे अधिक उल्लेख उज्जयिनी और गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका का मिलताहै। इन दोनों स्थानों पर उनके जीवन का कुछ न कुछ अँश अवश्य बीताथा। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मेघदूत में कालिदास की आत्मगाथा है। इससे कुछ विद्वान् कालिदास की जन्मभूमि हिमालय के किसी भाग में मानतेहैं, जहां से विवश होकर या स्वेच्छा से उन्हें उज्जयिनी की ओर जानापड़ाथा [८]।

गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका के प्राकृतिक सौन्दर्य पर कालिदास अत्यधिक मुग्ध थे। उन्होंने कण्वाश्रम से लेकर गन्धमादन - कैलास तक की छटा का तथा पर्वतवासियों के

१- ' While it is permissible to argue that ' the balance of evidence suggests that the end of the fourth century A. D. is the most probable date of the poet', we must admit that the evidence adduced in support of it is neither difinite, nor direct and decisive. The safest course is to hold that Kalidasa flourished sometime between 100 B. C. and A. D. 450.' —दि क्लासिकल एज, पृ० २०३

२- मिरासी — कालिदास, पृ० ६०

३- चन्द्रबली पांडेय — कालिदास, पृ० ३८ - ४२

४- आदित्यनाथ झा का भाषण, उ० रमाशंकर तिवारी — महाकवि कालिदास, पृ० १६ - १७

५- कल्ला — वर्थ प्लेस आव कालिदास, उ० रमाशंकर तिवारी — पूर्वोक्त, पृ० १७ - २१

६- मिरासी — कालिदास, पृ० ७१ ; वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खंड, पृ० १००

७- रमाशंकर तिवारी — पूर्वोक्त, पृ० २१ - २२

८- हिन्दी बिश्वकोश, खण्ड २, पृ० ४६३

जीवन और स्वभाव का जो वर्णन कियाहै, वह सर्वथा स्वाभाविक है। कालिदास - जैसे महाकवि केलिए, बिना इस भूमि में जन्म लिए इतना स्वाभाविक वर्णन करना असम्भव था, ऐसा कहना असंगत है।

कालिदास के ग्रन्थों में मिलनेवाले उत्तराखण्ड के वर्णन का कुछ अंश पौराणिक गाथाओं और कविसमय पर आधारित है। अलका, हेमकूट, ओषधिप्रस्थ और कण्वाश्रम आदि कवि के जीवनकाल में उसी रूप में थे या नहीं, यह कहना कठिन है।

बङ्गाल में कालिदास की जन्मभूमि माननेवालों का मुख्य तर्क है – कालिदास नाम ही बँगाली नाम है। उन्हें काली की आराधना से कवित्वशक्ति प्राप्तहुईथी [१]। इस तर्क में कोई बल नहीं है। कालिदास नाम सारे भारत में प्रचलित है। कालिदास के किसी ग्रन्थ के आरम्भ में कालीदेवी की स्तुति नहीं मिलती। वे वास्तव में शैव थे। उनके ग्रन्थों में मेंसे केवल कुमारसम्भव में एक स्थान पर कालीदेवी का उल्लेख मिलताहै, वह भी शिवजी के अनुचर के रूप में [२]।

कालिदास के ग्रन्थों में हिमालय का विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन मिलनेसे उनकी जन्मभूमि हिमालय में, कहीं मानीजासकतीहै। प्रो० कल्ला ने कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित स्थानों को कश्मीर में मानाहै।

प्रो० कल्ला की कल्पना है कि मेघदूत में वर्णित अलकापुरी वाला कैलासपर्वत कश्मीर का हरमुकुटपर्वत है। नीलमतपुराण के अनुसार शिवजी प्रयाग से नैमिषारण्य, गङ्गाद्वार, कुरुक्षेत्र, विष्णुपद, हंसद्वार, उत्तरमानसतीर्थ होकर हरमुकुटपर्वत पर गएथे। मेघदूत में मेघ अलका जातेहुए इन स्थानों से होकर जाताहै। यक्ष के घर का वर्णन हरमुकुट के पदतल में बसे प्राचीन मयग्राम, आधुनिक मणिग्राम पर अक्षरशः घटताहै [३]।

पुरूरवा और उर्वशी की मिलनभूमि गन्धमादन, रघुवंश का वशिष्टाश्रम, शकुन्तला में वर्णित कण्वाश्रम और मरीचि - आश्रम, सभी कश्मीर में थे [४]। कालिदास ने नन्दिनी पर झपटनेवाले सिंह को भूतेश्वरपार्श्ववर्ती बतलायाहै। भूतेश्वरतीर्थ कश्मीर में है [५]। सिन्धु तथा मालिनी नामक नदियां, शचीतीर्थ, सोमतीर्थ तथा ब्रह्मसर आदि तीर्थ, और शक्रघाट आदि भी कश्मीर में ही हैं [६]। कथासूत्र की सुविधा केलिए यद्यपि कवि ने वर्णन कियाहै कि शचीतीर्थ और शक्रघाट हस्तिनापुर के पास थे, तोभी पूर्वपरिचित होनेही के कारण उक्त स्थानों के नाम कालिदास को सूझेहोंगे [७-८]।

हम पहिले कालिदास के ग्रन्थों के प्रमाणों से ही दिखाचुकेहैं कि उक्त स्थान कश्मीर में नहीं होसकते। वरन् उनमें से हिमालयवर्ती सभी स्थान गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका, गढ़वाल

१- कालिदास – जन्मपीठ संभार अनुष्ठानपत्र, उ० मिरासी—कालिदास, पृ० ६०
२- कुमारसम्भव, ७।३९
३-४- उ० मिरासी, पूर्वोक्त, पृ० ६६
५-७- उ० मिरासी – पूर्वोक्त, पृ० ६७
८- रमाशंकर तिवारी – महाकवि कालिदास, पृ० २३

में सिद्ध होतेहैं। यदि कालिदास कश्मीरी होते तो कल्हण - जैसे विद्वान् इतिहासलेखक इसका उल्लेख अवश्य करते । इसलिए यदि कविवर्णित स्थानों के आधार पर ही उनकी जन्मभूमि मानीजाए तो कश्मीर की अपेक्षा इस गौरव का अधिकारी गढ़वाल को मानाजासकताहै ।

महाकवि ने अपने जीवन के, सम्भवतः योवन के पूर्वार्द्ध के, कई वर्ष इस भूमि में बिताएथे। जब परिस्थितिवश उन्हें इस भूमि से दूर, विन्ध्यप्रदेश, विदिशा, विदर्भ में जानापड़ा तो वे यहां की अनेक मधुर स्मृतियों का चिरकाल तक स्मरण करतेरहे [1]। जिसकी छाया उनकी रचनाओं में बार - बार दिखाईदेतीहै।

यदि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त के समकालीन थे, तो सम्भव है, रामगुप्त और शक या खशाधिपति की हत्यावाली धटना के पश्चात् उनका परिचय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से हुआहो। मध्यभारत में दो जैनमूर्तियों के पीठिकालेखों से रामगुप्त की ऐतिहासिकता की पुष्टि होचुकीहै [2]। सम्भव है, योवन में कालिदास अपनी मातृभूमि छोड़कर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ चलेगएहों। गुप्तनरेशों की राजधानी पाटलिपुत्र के प्रति उनका विशेष आकर्षण नहीं दिखाईदेता । सम्भवतः जीवन का अधिकांश उन्होंने उज्जयिनी और उसके निकटपड़ोस में बितायाथा। महाकालमन्दिर की पूजा - अर्चा पर वे मुग्ध थे।

परिवार— कालिदास के माता - पिता, तथा पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। उनकी रचनाओं के आधार पर तथा एक प्राचीन गाथा के आधार पर उन्हें ब्राह्मणवँश में उत्पन्न मानाजाताहै । वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्म, शास्त्र, नीति, अर्थ, कामशास्त्र का तथा कर्मकांड, ज्योतिष, मानसार, वास्तुशास्त्र आदि से सम्बन्धित प्राचीन ग्रन्थों का उन्होंने विस्तृत अध्ययन कियाथा । शकुन्तला में उन्होंने एक वेदिकछन्द की भी रचना कीहै । इसलिए उन्हें ब्राह्मणवँश में उत्पन्न मानना सर्वथा सँगत है।

उनके माता - पिता, पत्नी तथा सन्तति के सम्बन्ध में कुछ भी विदित नहीं है। कल्पना कीजातीहै कि कालिदास का बिवाह किसी राजकुमारी से हुआथा। मेरुतुङ्गाचार्य

१- गढ़वाली कवि श्री सदानन्द जखमोला ने अपनी एक अप्रकाशित पुस्तक में, कालिदास को संवत प्रवर्तक विक्रमादित्य का समकालीन तथा गढ़वाल में मन्दाकिनीउपत्यका में कालीमठ के पास स्थित कविट्ठा (कविस्थान) नामक गांव का निवासी सिद्धकरने का प्रयत्न कियाहै। उनकी कल्पना है कि किसी हीनवर्ण की नारी से अवैध सम्बन्ध होजाने के कारण कवि को अपनी मातृभूमि से भागनापड़ाथा। मेघदूत में उन्होंने मेघ के द्वारा अपनी उसी प्रियतमा को सन्देश भेजाथा।

२- नवभारत टाइम्स, दिनांक १४ मार्च ६९

के अनुसार वह राजकुमारी अवन्तिनरेश विक्रमादित्य की पुत्री प्रियँगुमँजरी थी [१]। बौद्ध विद्वान् तारानाथ के अनुसार कालिदास का बिवाह वाराणसीनरेश भीमशुक्ल की पुत्री वासन्ती से हुआथा [२]। चन्द्रबली पांडेय के अनुसार कालिदास की पत्नी विक्रमादित्य साहसांक की दुहिता थी। और महाकवि का कुछ लगाव प्रभावतीगुप्ता से भी था [३]। मेघदूत से अनुमान लगताहै कि कवि की प्रेयसी सुदूर हिमालय में कैलासपर्वत के पदतल में स्थित अलका में रहतीथी। कहाजाताहै कि किसी वेश्या के कुचक्र में पड़कर महाकवि ने प्राण खोएथे [४]।

इन कल्पनाओं या अनुमानों को अभीतक विशेष मान्यता नहीं मिलीहै।

१- प्रवंधचिन्तामणि, पृ० ४-५; उ० चद्रबली पाण्डेय – कालिदास, पृ० ३३ - ३४
२- उ० चन्द्रबली पाण्डेय — पूर्वोक्त, पृ० ३५-३६
३- चन्द्रबली पाण्डेय — पूर्वोक्त, पृ० ३७
४- चन्द्रबली पाण्डेय – पूर्वोक्त, पृ० ४७ - ४९

हूण-आक्रमण

प्रथम हूण-आक्रमण— हूण - आक्रमण ने उत्तरपश्चिमी भारत में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त - विक्रमादित्य द्वारा स्थापित एवँ कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त द्वारा सँरक्षित गुप्तसाम्राज्य को उखाड़फेंका। इस आक्रमण से गुप्तसाम्राज्य के अन्तर्गत विघटनकारी तत्वों को प्रोत्साहन मिला [1]। समकालीन महत्वाकांक्षी व्यक्तियों में अपनेलिए छोटे - बड़े लगभग स्वतन्त्र राज्यों की स्थापनाहेतु होड़लगगई। ऐसा कर्तृपुर और उसके पास - पड़ोस के जनपदों में भी हुआ।

भितरी के स्तम्भलेख से विदित होताहै कि सँ० ५१३ वि० (456 ई०) के आसपास जिस महायुद्ध में स्कन्दगुप्त ने हूणों को मारभगायाथा [2], वह गङ्गाजी की उपरली घाटी में, ऐसे स्थान पर हुआथा, जहां गङ्गाजी की ध्वनि सुनाईदेतीथी [3]।

समुद्रगुप्त ने हूणों का पीछा करतेहुए उन्हें सतलुज के पार खदेड़दियाथा [4]। पराजित होने पर भी मध्य और पश्चिमी पञ्जाब (गान्धार) पर हूणों का अधिकार बनारहा [5]। इसकी पुष्टि हूणों की उन मुद्राओं से होतीहै, जो उन्होंने कुशाणमुद्राओं के अनुकरण पर प्रसारित कीथीं [6]। उनदिनों पञ्जाब - गान्धार पर किदार - कुशाण नरेशों [7] का शासन चलाआताथा। अनुमान कियाजाताहै कि इन किदार - कुशाण नरेशों ने हूणों की अधीनता स्वीकार करलीथी।

१- उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इण्डिया, पृ. ८६

२- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० १०५

३- 'हूणैर्यस्य समागतस्य समरेदोर्भ्यां धरा कम्पिता,
भीमावर्त्तकरस्य शत्रुषु शरा . . . .।
. . . . . . विरचितं प्रख्यापिता (दीप्तिदा),
न द्योति ... नभीषु लक्ष्यत इव श्रोतेषु गाङ्गध्वनिः ॥'

— भितरी - स्तम्भलेख, पंक्ति, १४ - १५

४-५- उपेन्द्र ठाकुर — पूर्वोक्त, पृ० ७५

६- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, १०६

७- किदार का अर्थ है लघु या छोटा। हिमाचलप्रदेश - उत्तराखण्ड में अबतक यह शब्द लघु के अर्थ में चलाआताहै। मिलाइए, छोटी बालिका और बालकों के नाम किदारी, किदारू।

तोरमाण

द्वितीय हूण-आक्रमण— इन आक्रमणकारियों को, यद्यपि भारतीय अभिलेखों में हूण कहागयाहै, पर वास्तव में उनका सम्बन्ध हूणजाति से न होकर हेफतालजाति से था। वे गोरे रँग और ऊँची लम्बी नासिकावाले थे। रूप - रङ्ग, आकार - प्रकार में वे मँगोलवँशी हूणजाति से भिन्न तथा गोरी कुशाणजाति से मिलते - जुलतेथे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि तोरमाण और मिहिरकुल, सम्भवतः किदार - कुशाणवँश से सम्बन्ध रखतेथे [२]। भारतीय इतिहास में जिसे हूणजाति कहागयाहै वह हेफताल और कुशाणजाति के मिश्रण से बनीथी [३]।

सँ० ५२४ वि० (467 ई०) में स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गङ्गाजी और सतलुज के मध्यवर्ती प्रदेश पर गुप्तसम्राटों का अधिकार अतिशिथिल होगया [४]। गुप्तसाम्राज्य के धुरपश्चिमी सीमान्त पर स्थित इस प्रदेश पर मगध से सुदृढ़ नियँत्रण न रहसका। हूण और किदार-कुशाणों की मिलीजुली सेना ने कश्मीर, जम्मू, हिमाचलप्रदेश, पञ्जाब, राजस्थान और मालवा के कुछ भागों पर अधिकार करके [५], भारत में हूणसाम्राज्य की स्थापना की।

साम्राज्य-विस्तार— इन प्रदेशों के कुछ शासकों ने, जो पहले गुप्तसम्राटों के अधीन थे, अब तोरमाण की अधीनता स्वीकार करली। सतलुज से गङ्गाजी तक के सारे प्रदेश पर तोरमाण का अधिकार होगया। कौशाम्बी में प्राप्त उसकी राजमुद्राओं से, जिन पर 'तोरमाण' और 'हूणराज' लेख पढ़ेगएहैं [६], यमुना - गङ्गा - द्वाव पर उसके अधिकार की पुष्टि होतीहै।

एरण (मध्यप्रदेश) में प्राप्त बाराहमूर्ति के अभिलेख से विदित होताहै कि मध्यप्रदेश के बड़े भाग पर उसका अधिकार था [७]। उसके पुत्र मिहिरकुल के ग्वालियर में प्राप्त शिलालेख से भी इसकी पुष्टि होतीहै [८]।

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार तोरमाण ने पूर्व की ओर बढ़कर बनारस पर अधिकार करलिया। उसने शीघ्र ही गुप्तसम्राटों की राजधानी, पाटलिपुत्र के निकट तक के प्रदेश को रौंदतेहुए मगध के कुछ भाग को अपने राज्य में मिलालिया [९]।

पराजित होजाने पर मगधनरेश नरसिंहगुप्त ने हूणनरेश तोरमाण को कर देना स्वीकार करलियाथा [१]। युवान्‌चाङ् के लेख से विदित होताहै कि पहले मगधनरेश हूणनरेश

१- २- क्लासिकल एज, पृ० ५६ ३-४- उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इण्डिया, पृ० ६३

५- उपेन्द्र ठाकुर — पूर्वोक्त, पृ० १०८

६- 'पृथु कीर्त्तौ पृथु द्युतौ। महाराजाधिराज श्री तोरमाणे प्रशासति'। — एरण का बाराहमूर्ति-लेख

७- हिस्टोरिकल ऐण्ड लिटरेरि इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १३९ - ४१

८- उ० उपेन्द्र ठाकुर — पूर्वोक्त, पृ० १११

९- उपेन्द्र ठाकुर — पूर्वोक्त, पृ० १२६

को कर देताथा । पीछे बालादित्य ने तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल को कर देना अस्वीकार करदिया [१] ।

मध्यएशिया के इतिहास से विदित होताहै कि तोरमाण का साम्राज्य वंक्षु-उपत्यका में उत्तरपश्चिम की ओर अरलसागर तक फैलाथा [२]। समरकन्द, बलख और कपिशा उसके साम्राज्य के अन्तर्गत थे [३] । पूर्व की ओर मगध के कुछ भाग पर और दक्षिण की ओर नर्मदा के तट तक उसका साम्राज्य फैलाथा [४] ।

तोरमाण के विशाल साम्राज्य की पुष्टि उसकी मुद्राओं से भी होतीहै, जो कश्मीर, पञ्जाब, उत्तरप्रदेश और राजपूताना में बड़ी सँख्या में मिलीहैं [५] । सतलुज और यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश में मिलनेवाली जिन 'तोर' लेखवाली ताम्रमुद्राओं का सम्बन्ध इस नरेश से जोड़ाजाताहै [६] , उनसे पञ्जाब पर तोरमाण के अधिकार की पुष्टि होतीहै ।

मौखरिनरेशों से पूर्व वर्तमान उत्तरप्रदेश पर हूणशासन था [७] । हूणशासन को हटाकर, जब मौखरिनरेशों ने, इस प्रदेश पर अपना शासन स्थापित किया [८] तो उन्होंने इस प्रदेश में पहलेसे प्रचलित हूणमुद्राओं के अनुकरण पर अपनी मुद्राएं ढालीथीं [९] ।

हिमालय की ढालों पर अधिकार— कश्मीर पर तोरमाण और मिहिरकुल के शासन की पुष्टि राजतरँगिणी [१०] और इन नरेशों की मुद्राओं से होतीहै [११] । हिमाचल-प्रदेश में सँघोल नामक स्थान पर प्राप्त तोरमाण की मुद्राएं उस प्रदेश पर हूणशासन की पुष्टि करतीहैं [१२] ।

हर्षचरित से विदितहोताहै कि प्रभाकरवर्द्धन के राज्य की उत्तरी सीमा पर राज्यवर्द्धन की हूणों से भिड़न्त हुईथी [१३] । हर्ष भी राज्यवर्द्धन के साथ गयाथा । किन्तु वह हूणों से न लड़कर हिमालय की पहाड़ी ढालों के पदतल में आखेट खेलतारहा [१४] । इससे भी उनदिनों तक हिमाचलप्रदेश के किसी भाग पर हूण-अधिकार की सूचना मिलतीहै ।

नृमुण्ड - अभिलेख के आधार पर अनुमान लगताहै कि हूण हिमाचलप्रदेश से आगे बढ़कर सर्ववर्मन् मौखरि द्वारा शासित उत्तराखण्ड पर छापा मारतेथे । सर्ववर्मन् की सेना ने उनका हिमाचलप्रदेश तक पीछा कियाथा [१५] । कुछ विद्वान् नृमुण्ड - अभिलेख के सर्ववर्मन् को मौखरिनरेश नहीं मानते [१६] । इस पर आगे विचार कियाजाएगा ।

१- वाटर्स — आन युवान्चाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, पृ० २८८ - ८९

२- ४- राहुल — मध्यएशिया का इतिहास, खण्ड १, पृ० १२५, मानचित्र

५- ६- कनिंघम — लेटर इण्डो - सिथियन्स, पृ० २५३

७-९- क्लैसिकल एज, पृ० ३९

१०- राजतरंगिणी, तरंग ३, श्लोक १०२-३

११- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २५३

१२- उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इंडिया, पृ० १०८

१३- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २५७

१४- तुषारशैलोपकण्ठेषु क्रीडन्मृगयां कतिपयान्यहानि बहिरेव व्यलम्बत ।'
— हर्षचरित, उ० ५, पृ० २५८

१५- १६- द्र. त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० ५४ - ५५

सतलुज की उपरली उपत्यका पर भी, जो वर्तमान समय में तिब्बत के अन्तर्गत है, इन्हींदिनों हूण (हेफतालों) का अधिकार हुआथा। यह उपत्यका आजतक हूणदेश कहलातीहै। इस उपत्यका के वर्तमान निवासी तिब्बती - मँगोल हैं, जो रङ्ग और मुखाकृति की दृष्टि से हूण - हेफतालों से भिन्न समझेजातेहैं। अनुमान लगताहै कि सातवीं - आठवीं शती में जब तिब्बती - मँगोलों का प्रसार मानसरोवरप्रदेश, सतलुजउपत्यका की ओर हुआ, तो उससे पूर्व ही इस उपत्यका से हूण - अधिकार उठचुकाथा। पर 'हूणदेश' नाम का प्रयोग उसके पश्चात् भी चलतारहा और आजतक चलाआताहै [१]।

इस हूणदेश की दक्षिणी सीमा पर उत्तराखण्ड स्थित है [२]। हिमाचलप्रदेश पर तोरमाण के शासन के पुष्टि उसकी मुद्राओं से हुईहै। पञ्जाब, उत्तरप्रदेश तथा मगध के कुछ भाग पर तोरमाण का अधिकार था। इसलिए हूणदेश के दक्षिण में, तथा उत्तरप्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित उत्तराखण्ड पर हूणअधिकार की या कम से कम प्रभावक्षेत्र की कल्पना को सर्वथा असँगत नहीं कहसकते।

हूणसाम्राज्य उठजाने पर भी हूणजाति के वँशजों की उत्तरभारत में सम्मानीय स्थिति बनीरही। उनकी गणना राजपूतों में होगई। तोरमाण की पत्नी इक्ष्वाकुवँशीय राजा वज्रेन्द्र की पुत्री थी [३]। गढ़वाल - कुमाऊँ में अबतक भोटियानेगी मिलतेहैं, जिनके पूर्वज हूणराजपूत बतलाएजातेहैं [४]। इस प्रदेश में उनके पूर्वजों के आ - बसने की तिथि अनिश्चित होनेके कारण उनका सम्बन्ध हूणआक्रमण से नहीं जोड़सकते। किसी साहित्यिक उल्लेख मुद्रा या अभिलेख आदि से भी इस प्रदेश पर हूणअधिकार या आक्रमण की अभीतक पुष्टि नहीं हुईहै।

फिर भी यह निश्चित है कि पश्चिमी हिमालय के बड़े भाग पर तोरमाण और उसके पुत्र मिहिरकुल का शासन था। मन्दसौर के स्तम्भलेख के अनुसार मिहिरकुल की भुजाओं द्वारा सुरक्षित होनेसे हिमगिरि को दुर्ग (दुर्गम या दुर्ग - मात्र) सँज्ञा प्राप्त हुईथी [५]।

राज्यावधि— विद्वानों का अनुमान है कि सँ० ५४२ वि० (485 ई०) के आसपास तोरमाण का मध्यप्रदेश में, एरण पर अधिकार होगयाथा [६]। पञ्जाब तथा उत्तरप्रदेश पर उसका अधिकार इससे पहले हुआहोगा। सँ० ५६७ वि० (510 ई०) में गोपराज ने सम्राट भानुगुप्त (बालागुप्त) के पक्ष में तोरमाण से घोर युद्धकरके उसे हरायाथा [७]। इस पराजय से हूणों की शक्ति, प्रतिष्ठा और राज्यविस्तार को क्षति पहुँचीथी।

३- ४- स्वेनहेडिन – ट्रांस - हिमालय, जि० ३, मानचित्र

५- राजतरंगिणी–तरंग ३, श्लोक १०५

६- रतूड़ी — गढ़वाल का इतिहास, पृ० १७६

७- 'यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरि दुर्ग शब्दाभिमानम्।' – मन्दसौर - स्तम्भलेख, पंक्ति ६

८- वासुदेव उपाध्याय – गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० १३३

९- वासुदेव उपाध्याय – पूर्वोक्त, पृ० १३४

मिहिरकुल

राज्यविस्तार— तोरमाण के पश्चात् उसके पुत्र मिहिरकुल (=रविकुमार) को हूणसिंहासन मिला। उसने तोरमाण द्वारा विजितप्रदेश में बिशेष अन्तर न आनेदिया। उसके राज्यकाल के पन्द्रहवें वर्ष का एक शिलालेख ग्वालियर में मिलाहै [१]। इससे विदित होताहै कि एरण में प्राप्त पराजय के पश्चात् तोरमाण और मिहिरकुल ने पुनः अपनी शक्ति सँगठित करलीथी। कौशाम्बी में मिहिरकुल की भी एक राज्यमुद्रा मिलीहै [२]।

उसकी राजधानी साकल थी [३]। वहां से वह दो सहस्र रणहस्ती और भारी सेना लेकर उत्तरभारत के विभिन्न नरेशों से युद्ध करता और उनसे कर वसूल करताथा [४]। जब मगधनरेश बालादित्य ने उसे कर देना अस्वीकार करदिया तो मिहिरकुल ने मगध पर आक्रमण किया। युद्ध में मिहिरकुल पराजित हुआ और बन्दी बनालियागया। पीछे अपनी माता के कहनेसे बालादित्य ने उसे मुक्त करदिया [५]। सम्भवतः तबसे उत्तरप्रदेश के पूर्वी भाग से हूणशासन उठगया।

अनुमान कियाजाताहै कि सँ० ५८९ वि० (532 ई०) के आसपास मालवानरेश यशोधर्मन् ने मिहिरकुल को पराजित करके पश्चिमी उत्तरप्रदेश तथा पञ्जाब के पूर्वी भाग पर अधिकार करलियाथा। यशोधर्मन् की इस विजय के पश्चात् भी पञ्जाब के पश्चिमी भाग और कश्मीर तथा हिमाचलप्रदेश पर हूण - किदारकुशाणों का अधिकार बनारहा।

तोरमाण और मिहिरकुल, दोनों अत्याचारी शासक थे। मिहिरकुल ने अनेक बौद्ध मठ - मन्दिरों को विध्वस्त कियाथा [६]। उसके अत्याचारों का कल्हण [७] और युवान् चाङ्, दोनों ने उल्लेख कियाहै [८]।

यशोधर्मन्

हूण-पराजय— मन्दसौर में प्राप्त दो स्तम्भलेखों के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि जब हूणआक्रान्ताओं ने उत्तरपश्चिम की ओर से, तथा वाकटकनरेशों ने दक्षिण की ओर से गुप्तसाम्राज्य के शासितप्रदेशों को छीनकर उसे पँगु बनादिया तो

१- हिस्टोरिकल ऐण्ड लिटरेरि इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १३९ - ४१

२- उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इण्डिया, पृ० १४४

३- ४- वाटर्स — आन युवान् चाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, पृ० २८८

५- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० १८८

६- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० १८८

७- कल्हण — राजतरंगिणी, तरंग ३, श्लोक ४७, ६१

८- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० २८८

मालवा में एक महत्वाकांक्षी सामन्त ने स्वतन्त्रता घोषित करदी [१]।

उसने बालादित्य द्वारा पहले पराजित किएहुए [२] मिहिरकुल को पुनः पराजित किया। पश्चिमी उत्तरप्रदेश और पूर्वीपञ्जाब से उसे खदेड़ताहुआ वह आगे बढ़ा और उसने सम्भवतः सतलुज तक के सारे प्रदेश को हूणों के अत्याचारों से मुक्त करदिया। मन्दसौर-स्तम्भलेख के अनुसार यशोधर्मन् से पराजित होने पर मिहिरकुल ने मस्तक झुकाकर उसके चरणों का अर्चन कियाथा [३]। इससे विदित होताहै कि हूणनरेश ने यशोधर्मन् की अधीनता स्वीकार करलीथी।

साम्राज्य-विस्तार— हूणविजय से उत्साहित होकर, यशोधर्मन् ने चारों दिशाओं में अपनी विजयपताका फहराईथी। मन्दसौर-स्तम्भलेख के अनुसार उसका शासितप्रदेश पूर्व की ओर लौहित्य की उपत्यका, असमप्रदेश से लेकर पश्चिमीसमुद्र या अरबसागर तक विस्तृत था। उत्तर की ओर उसका साम्राज्य उत्तराखण्ड में गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश तक फैलाथा। उसके राज्य की दक्षिणी सीमा महेन्द्रगिरि तक पहुँचीहुईथी [४]।

उसने उन प्रदेशों पर भी अधिकार करलियाथा, जिनपर अपनी सत्ता स्थापित करने में गुप्त और हूण सम्राटों को भी सफलता न मिलीथी [५]। इस समस्त भूखण्ड के सामन्त नम्रतापूर्वक उसके चरणों में नतमस्तक होतेथे [६]। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रशस्ति में यशोधर्मन् के राज्य-विस्तार के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति है।

उत्तराखण्ड पर अधिकार— मन्दसौर-अभिलेख के अनुसार गङ्गाजी का स्रोतप्रदेश यशोधर्मन् के राज्य के अन्तर्गत था। उसी स्तम्भलेख से विदित होताहै कि उनदिनों

१- क्लासिकल एज, पृ० ३९ २- उपेन्द्र ठाकुर — हूण्स इन इंडिया, पृ० १०८

३- 'स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति कृपणतां प्रापितं नोत्तमाङ्गम्,
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरिर्दुर्गशब्दाभिमानम्।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति भुजबलावर्ज्जनं क्लिष्टमूर्द्धा,
चूडापुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुलनृपेणार्च्चितं पादयुग्मम्॥' — मन्दसौर-स्तम्भलेख, पंक्ति ६.

४- ६- 'आलौहित्योपकण्ठातलवलगहनोपत्यकादामहेन्द्रात्,
आगङ्गाश्लिष्ट सानोस्तुहिन शिखरिणः पश्चिमादापयोधेः।
सामन्तैर्यस्य बाहु द्रविण हृतमदैः पादयोरानमद्भिः,
चूडारत्नांशु राजि व्यतिकर शबला भूमिभागा क्रियन्ते॥
ये भुक्ता गुप्तनाथैर्न्न सकलवसुधाक्क्रान्ति दृष्टप्रतापैः,
न्नाज्ञा हूणाधिपानां क्षितिपतिमुकुटाद्ध्यासिनी यान् प्रविष्टा।
देशांस्तान्धन्वशैलद्रुमगहनसरिद् वीरबाहूपगूढान्,
वीर्य्यावस्कन्नराज्ञः स्व गृह परिसरावज्ञया यो भुनक्ति॥' —मन्दसौर - स्तम्भलेख, पंक्ति ४ - ५

मिहिरकुल की भुजाओं से सुरक्षित होनेसे हिमगिरि का 'दुर्ग' नाम सार्थक हुआथा [१]।

अन्य प्रमाणों से भी विदित होताहै कि तोरमाण और मिहिरकुल के शासनकाल में हिमालय का बहुत-सा भाग उनके अधीन था [२]।

सम्भवतः हूणआक्रमण से उत्पन्न अव्यवस्था से लाभ उठाकर उत्तराखण्ड के समकालीन गुप्तनरेशों के किसी सामन्त ने स्वतन्त्रता घोषित करदीथी। जब तोरमाण ने पञ्चनद, मध्यदेश को रौंदतेहुए मगध तक अपनी विजयवाहिनी पहुँचाईथी, तो उत्तराखण्ड के समकालीन शासक ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। कुछ वर्ष पश्चात् जब मिहिरकुल को खदेड़ताहुआ यशोधर्मन् उत्तरपश्चिम की ओर बढ़ा, तो उत्तराखण्ड के समकालीन शासक ने उसके चरणों में नतमस्तक होकर अपने शासितप्रदेश पर अपने अधिकार की रक्षा कीथी।

राज्यावधि— अनुमान कियाजाताहै कि सँ० ५८९ वि० (532 ई०) के आसपास यशोधर्मन् ने मिहिरकुल को पराजित कियाथा। उसका शासन अल्पकालिक रहा। धूमकेतु के समान उत्तरभारत के क्षितिज पर सहसा उदित होकर अल्पकाल में ही उसका राज्यवैभव सहसा अस्त होगया [२]। उसके वँशजों के सम्बन्ध में कुछ भी विदित नहीं है। उसकी मृत्यु के पश्चात् मालवा में पुनः गुप्तशासन की स्थापना होगई। विद्वानों की धारणा है कि यशोधर्मन् का राज्यकाल सँ० ५८७ से ५९७ वि० (530 से 540 ई०) तक रहा [३]।

परवर्ती हूण-आक्रमण— यशोधर्मन् द्वारा मिहिरकुल के पराजित होजाने पर भी हूणराज्य का अस्तित्व लगभग डेढ़ शती पश्चात् तक बनारहा। मौखरिनरेश ईशानवर्मन्[४] और उसके पुत्र सर्ववर्मन्[५] दोनों ने हूणआक्रमणों को विफल कियाथा। हिमाचलप्रदेश पर हूणों का अधिकार था। वे वहां से उत्तराखण्ड पर छापे मारते और लूटमार मचातेथे। हर्ष के राज्यारम्भ के समय भी हिमाचलप्रदेश के कुछ भाग पर हूण-अधिकार था।

१- 'यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरिर्दुर्ग शब्दाभिमानम्।' — मन्दसौर - स्तम्भलेख, पंक्ति ६

२- राहुल — गढ़वाल, पृ० ६७

३- ४- क्लासिकल एज, पृ० ४०

५- आदित्यसेन का अफसाड़ - अभिलेख, श्लोक ११

६- क्लासिकल एज, पृ० ३८ - ३९

स्रुघ्न (?) का नागवंश

नागदत्त

राज्यावधि— प्रयागप्रशस्ति से विदित होताहै कि समुद्रगुप्त ने मध्यदेश के जिन नरेशों का उत्पाटन करके उनके राज्य पर अधिकार करलियाथा, उनमेंसे एक नागदत्त भी था । जयसवाल का अनुमान है कि नागदत्त का सम्बन्ध नाग-राजवँश से था [१]।

जायसवाल के अनुसार इस नरेश का राज्य अम्बालाजिले के निकटवर्ती प्रदेश में फैलाथा [२]। उसकी राजधानी सम्भवत: प्राचीन स्रुघ्ननगर में थी [३]। उसकी राज्यावधि जायसवाल ने सँ० ३८५ - ४०५ वि० (328-348 ई०) निर्धारित कीहै [४]।

जायसवाल की धारणा है कि नागदत्त भारशिवनरेशों के अधीन था [५]। उन नरेशों का अधीनस्थ शासक होनेके कारण उसने अपनी पृथक् मुद्राएँ नहीं प्रसारित कीथीं [६]।

महाराज महेश्वर नाग

राज्यावधि— लाहौर में एक राजमुद्रा मिलीहै, जिसका लेख 'महाराज महेश्वर नाग' पढ़ागयाहै [७]। जायसवाल का अनुमान है कि महाराज महेश्वर नाग पूर्वोक्त नागवँशी नरेश नागदत्त का पुत्र था [८]। उसकी राज्यावधि जायसवाल के अनुसार सँ० ४०५-४२५ वि० (348 - 368 ई०) थी [९]। महाराज महेश्वर नाग समकालीन गुप्तसम्राट का अधीनस्थ एवं करद सामन्त था [१०]।

१- २- जायसवाल – अन्धकारयुगीन भारत, पृ० ६१
३- जायसवाल – पूर्वोक्त, पृ० ६१ तथा ६८
४- जायसवाल – पूर्वोक्त, पृ० ६५
५- जायसवाल – पूर्वोंक्न, पृ० ६१
६- जायसवाल — पूर्वोक्त, पृ० ६२
७- फ्लीट – गुप्त - इन्सक्रिपशन्स, पृ० २८२
८- जायसवाल – पूर्वोक्त, पृ० ६-
९- जायसवाल – पूर्वोक्त, पृ० ६५
१०- जायसवाल — पूर्वोक्त, पृ० ६८

विरोधी मत— स्रुघ्न के नाग - राजवँश सम्बन्धी जायसवाल के अनुमान की पुष्टि अभीतक किसी अन्य स्रोत से नहीं हुईहै। डी० सी० सरकार की धारणा है कि नागदत्त का सम्बन्ध न तो किसी नाग - राजवँश से था, और न प्राचीन स्रुघ्नराज्य से या उसकी राजधानी स्रुघ्ननगर से था [१]। गुप्तकालीन - अभिलेखों में गुप्तसम्राटों के अधीन उत्तरी - बङ्गाल पर शासन करनेवाले कतिपय राज्याधिकारियों की नामावली मिलतीहै। इन अधिकारियों के नामान्त में 'दत्त' शब्द मिलताहै। डी० सी० सरकार की कल्पना के अनुसार नागदत्त उन 'दत्त' नामान्तवाले राज्याधिकारियों का पूर्वज था [२]।

प्रयाग-प्रशस्ति से विदित होताहै कि समुद्रगुप्त के राज्यकाल में यौधेयगण की भूमि उसके साम्राज्य से बाहर थी। उनदिनों यौधेयगण का विस्तार यमुना के पश्चिमी तट से लेकर लगभग सारे पूर्वीपञ्जाब पर था। उन्हींदिनों यमुना की पर्वतीय उपत्यका, यामुनप्रदेश पर शिवभवानी तथा पोणवँशज शीलवर्मन् का अधिकार था [३]। इसके पश्चात् जयदास और उसके वँशजों का अधिकार हुआ [४]। इसलिए अम्बालाजिले में, एवँ स्रुघ्ननगर के निकटवर्ती प्रदेश पर उन नागवँशी नरेशों के अधिकार की कल्पना ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाती।

१- २- प्रो० इण्डियन हिस्टौरिकल कांग्रेस, जि० ७, पृ० ७८; उ० क्लासिकल एज, पृ० ८ टि०

३- द्र० पृ० २७१ - २७८ ४- द्र० पृ० २७९ - २८३

कर्तृपुर का नाग-राजवंश

गुप्तशासन में उत्तराखण्ड — काव्यमीमांसा से विदित होताहै कि जिसदिन चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) ने ध्रुवस्वामिनी के वेष में खशाधिपति की हत्या की, उसदिन से हिमालय के कार्तिकेयनगर की नारियां उस नरेश (चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य) की कीर्ति गानेलगीं [1]। अर्थात् उसदिन से इस जनपद पर गुप्तसम्राट का अधिकार होगया।

गुप्तसाम्राज्य के अन्तर्गत कर्तृपुर जनपद पर शासन करनेवाले विषयपतियों के नाम, तथा उनकी शासन - अवधि, शासनप्रणाली एवँ शासनकाल की प्रमुख घटनाओं के सम्बन्ध में जाननेकेलिए अभीतक कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलीहै। उत्तराखण्ड में विधिवत् पुरातात्विक अन्वेषण होनेपर सम्भव है कि इस जनपद के गुप्तकालीन इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़े।

विषयपति सर्वनाग

बुलन्दशहरजिले के इन्दौर नामक् स्थान से उपलब्ध गुप्तसँवत् १४६=५२२ वि० (465 ई०) के ताम्रशासन से विदित होताहै कि स्कन्दगुप्त के राज्यकाल में अन्तर्वेदी अर्थात् गङ्गा - यमुना - उपत्यका का शासन विषयपति (प्रान्ताधिकारी) सर्वनाग द्वारा होताथा। उसका शासनकाल अस्थायीरूप से सँ० ५२२ से ५४२ वि० (465 से 485 ई०) तक मानसकतेहैं।

सँ० ५२४ वि० (467 ई०) में स्कन्दगुप्त की मृत्यु होजाने पर गुप्तसाम्राज्य के पश्चिमी भागों में गुप्तसम्राटों का शासन अतिशिथिल होगया। हूण - आक्रमण और वाकाटकों के अभ्युदय से उत्पन्न परिस्थिति से महत्वाकांक्षी स्थानीय शासक अपने छोटे - बड़े लगभग स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना करनेलगे।

१- ' तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणक्वणत् किनरे,
गीयन्ते तव कार्तिकेयनगरस्त्रीणां गणैः कीर्तयः। ' — काव्यमीमांसा, पृ० १२४

२- ' विषयपति सर्वनागस्य अन्तर्वेद्यां भोगाभिवृद्धये वर्तमाने ... ' — इन्दौर - ताम्रशासन

यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि सर्वनाग ने उक्त परिस्थिति से लाभ उठायाथा या नहीं। अन्तर्वेदी के विषयपति के रूप में उत्तराखण्ड के यामुन और कर्तृपुर जनपदों पर उसका अधिकार रहाहोगा।

बुलन्दशहरजिले के इन्दौर नामक स्थान के खेड़ा (टीले) से प्राप्त मुद्राओं को नागनरेशों की मुद्राएँ मानाजाताहै [१]। किन्तु उनकी विस्तृत छानबीन किए बिना यह कहना कठिन है कि क्या विषयपति सर्वनाग ने स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् स्वतन्त्रनरेश के रूप में अपनी मुद्राएँ प्रसारित कीथीं या नहीं।

नागनरेशों की राज्यावधि—गोपस्थल (गोपेश्वर) और बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) के त्रिशूल - अभिलेखों से विदित होताहै कि कर्तृपुरजनपद पर पांच नागवँशी नरेशों ने शासन कियाथा। गोपेश्वर के पास सिरोली नामक स्थान पर प्राप्त एक अन्य शिलालेख से विदित होताहै कि उस जनपद पर सँ० ६३३ (576 ई०) के आसपास मौखरिनरेश सर्ववर्मन् का अधिकार होगयाथा।

गोपेश्वर तथा बाड़ाहाट के त्रिशूल - अभिलेखों की लिपि और सर्ववर्मन् मौखरि के पूर्वज हरिवर्मन् मौखरि के हाड़हा - अभिलेख की लिपि में पूर्णतः समानता पाईगईहै [२]। इसलिए लिपि के आधार पर, त्रिशूल - अभिलेखों के नागनरेशों की राज्यावधि, उत्तराखण्ड पर शासन करनेवाले मौखरिनरेश सर्ववर्मन् के अधिकार से, अर्थात् सँ० ६३३ (576 ई०) से पूर्ववर्ती होनीचाहिए।

पांच नागनरेशों की राज्यावधि लगभग नवे वर्ष मानने पर कर्तृपुर के पहले नाग-नरेश, स्कन्दनाग का राज्यारम्भ सँ० ५४२ (485 ई०) के आसपास, अर्थात् विषयपति सर्वनाग के शासनकाल के तुरन्त पश्चात् आरम्भ होताहै।

इससे अनुमान लगताहै कि कर्तृपुर के नागनरेशों का सम्भवतः विषयपति सर्वनाग से निकट सम्बन्ध था। सम्भवतः समकालीन राजनैतिक परिस्थिति से लाभ उठाकर सर्वनाग या उसके वँश से सम्बन्धित किसी व्यक्ति ने, कर्तृपुर में स्वतन्त्र नागराज्य की स्थापना कीथी।

नागनरेशों की नामावली— गोपेश्वर के त्रिशूल - अभिलेख का अभीतक पूरा पाठ नहीं प्रकाशित हुआहै। डा० गाई ने अभिलेख में वर्णित नरेशों की केवल नामावली प्रकाशित कीहै [३]। बाड़ाहाट के त्रिशूल - अभिलेख का शुद्ध पाठ राहुल ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाल' में प्रकाशित किया [४]। उसी पाठ को मैंने उत्तराखण्ड - यात्रा - दर्शन [५] में तथा उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १ में प्रकाशित कियाहै [६]। उसे डा० गाई ने त्रिशूललेख के चित्र से मिलाकर प्रामाणिक पायाहै।

१- जायसवाल — अन्धकारयुगीन भारत, पृ० ३०
२- राहुल — गढ़वाल, पृ० ३४७ - ४८
३- राहुल — गढ़वाल, पृ० ३४८
४- उत्तराखण्ड - यात्रा - दर्शन, पृ० २२०
५- डबराल — उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६३

दोनों त्रिशूल - अभिलेखों से निम्न नागवँशी नरेशों का पता चलताहै :—

अभिलेख	नरेश	पूर्ववर्ती नरेश से सम्बन्ध
गोपेश्वर - त्रिशूललेख	१- स्कन्दनाग	
	२- विभुनाग	?
	३- अंशुनाग	?
	४- गणपतिनाग	?
बाड़ाहाट - त्रिशूललेख	५- गणेश्वर	सम्भवंत: गणपतिनाग का ही दूसरा नाम
	६- गुह	तत्पुत्र

स्कन्द, विभु और अंशुनाग

प्राचीन नागवंशों से सम्बन्ध— गोपेश्वर के त्रिशूल-अभिलेख का पाठ अभीतक प्रकाशित न होनेके कारण इन तीन नागनरेशों के सम्बन्ध में कुछ भी विदित नहीं है।

प्रमाणों के अभाव में यह कहना कठिन है कि इन नागनरेशों का अन्तर्वेदी के विषयपति सर्वनाग के परिवार से क्या सम्बन्ध था।

महाभारत के अनुसार उत्तर में गङ्गाजी के तीर पर अनेक नागबस्तियां थीं। इन बस्तियों के नाग बड़े शक्तिशाली थे [1]। गङ्गाद्वार के पास किसी नागराज का शासन था। उसकी पुत्री उलूपी ने अर्जुन से बिवाह कियाथा [2]। महाभारत के इन उल्लेखों से विदित होताहै कि सम्भवतः महाभारत - सम्पादन के समय उत्तराखण्ड के उत्तरी और दक्षिणी भाग में नागजाति की बस्तियां थीं। इस प्राचीन नागजाति से कर्तृपुर के पूर्वोक्त नागनरेशों का क्या सम्बन्ध था, यह कहना कठिन है।

समुद्रगुप्त के राज्यारम्भ के समय उत्तरभारत में अनेक छोटे - बड़े नाग - राज्य थे, जिनकी सूचना अभिलेखों और मुद्राओं से मिलतीहै। कुशाणसत्ता के अवसान पर नागवंशजों का उत्थान हुआथा। जायसवाल ने प्रयागप्रशस्ति के नागदत्त को स्रुघ्न का नागनरेश मानाहै। [3]। गणपतिनाग, नागसेन और नन्दि को भी नागवँशी नरेश मानाजाताहै [4]।

यद्यपि समुद्रगुप्त ने उत्तरप्रदेश के नागनरेशों का उत्पाटन करके उनके राज्य पर अधिकार करलियाथा, फिर भी अभिलेखों से विदित होताहै कि गुप्त - साम्राज्य में अनेक नागवँशी व्यक्तियों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कियागयाथा। कर्तृपुर के नागनरेशों का

१- ' बहूनि नागवेश्मानि गङ्गातीरे च उत्तरे।
तत्रस्थानपि संस्तौमि महतः पन्नगानिमान्॥ ' आदिपर्व, ३

२- आदिपर्व, २१३।३२-३३

३- जायसवाल — अन्धकारयुगीन भारत, पृ० ६१

४- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० ४७ - ४८

उत्पाटित नाग - राजवँशों से कोई सम्बन्ध था या नहीं, इस सम्बन्ध में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है।

हूण-आक्रमण— स्कन्दगुप्त ने सँ० ५१३ (456 ई०) में हूणों को पराजित कियाथा। सँ० ५२४ (467 ई०) में स्कन्दगुप्त की मृत्यु होगई। सँ० ५४२ (485 ई०) से पूर्व ही हूणनरेश तोरमाण का मध्यप्रदेश पर अधिकार होगयाथा। इसलिए पञ्चनद हिमाचलप्रदेश और पश्चिमी उत्तरप्रदेश पर उसका अधिकार इस तिथि से से पूर्व सँ० ५३७ (480 ई०) के आसपास होगयाथा।

सँ० ५८९ (532 ई०) में यशोधर्मन् से पराजित होकर मिहिरकुल को पूर्वी पञ्चनद से हटनापड़ा। फिर भी कश्मीर तथा हिमाचलप्रदेश पर उसका और उसके वँशजों का अधिकार बनारहा। पराजित होनेसे पूर्व हूणनरेश तोरमाण तथा मिहिरकुल बड़े प्रवल थे। वे मगध और मध्यभारत तक के प्रदेश को रौंद चुकेथे। इस अवधि में सम्भवतः कर्तृपुर के नागनरेशों ने भी हूणनरेशों को उपायनादि देकर सन्तुष्ट कियाहोगा।

अभिलेखों से विदित होताहै कि मौखरिनरेश ईशानवर्मन्[१] और सर्ववर्मन्[२] ने भी हूण - आक्रान्ताओं को पराजित कियाथा। इनदिनों उत्तराखण्ड पर भी हूण - आक्रमण की आशँका बनीरहीहोगी।

गणपतिनाग

गणेश्वर से एकता— गोपस्थल (गोपेश्वर) के त्रिशूललेख के अनुसार उस त्रिशूल की स्थापना स्कन्दनाग, विभुनाग और अँशुनाग के वँशज गणपतिनाग ने कीथी[३]। बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) के त्रिशूललेख के अनुसार गणेश्वर नामक नृपति ने बाड़ाहाट में हिमालय के शिखर के समान उत्तम और दिव्य भव (शिव) के मन्दिर का निर्माण कियाथा[४]। तथा गणेश्वर के पुत्र गुह ने उस बाड़ाहाट के भवमन्दिर के सन्मुख शक्ति (त्रिशूल) की स्थापना कीथी[५]।

कला की दृष्टि से गोपेश्वर और बाड़ाहाट के त्रिशूलों की रचना में आश्चर्यचनक

१- आदित्यसेन का अफसाड़ - अभिलेख, श्लोक ११

२- क्लासिकल एज, पृ० ३८ - ३९

३- डा० गाई का पत्र, दिनांक २७-१२-६७

४- 'आसीद्यः क्षितिपो गणेश्वर इति प्रख्यातकीर्तिन्नरैः,
चक्रे येन भवस्य वेश्म हिमवत्छृंगोच्छ्रतं दीप्तिमत्।'

५- 'पुत्रस्तस्य ...
नाम्ना श्रीगुह इत्युदारचरितः सद्धर्म्मधुर्यस्सतां,
शक्तिं शत्रुमनोरथप्रमथनीं शम्भोश्चकाराग्रतः ।।' — उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० १६२

समानता है [१]। गोपेश्वर के त्रिशूल पर गणपतिनाग के अभिलेख की लिपि में, तथा बाड़ाहाट के त्रिशूल पर गणेश्वर क पुत्र गुह के अभिलेख की लिपि में पूर्ण समानता है [२]। दोनों त्रिशूलों को विद्वानों ने समकालीन माना है [३]। दोनों त्रिशूलों को ध्यानपूर्वक देखने से अनुमान लगताहै कि सम्भवत: उनकी रचना एक ही कलाकार के द्वारा हुईथी। उनके अभिलेख भी सम्भवत: एक हो अंकेता द्वारा खोदेगएथे।

दोनों त्रिशूलों की रचना और उनके अभिलेखों की लिपि की समानता आकस्मिक नहीं होसकती। बाड़ाहाट और गोपेश्वर के वीच की दूरी मानचित्र पर केवल ६० मील और पैदलमार्ग पर ८० मील है। इसलिए अनुमान लगताहै कि दोनों स्थान नागवंशी नरेशों के शासितप्रदेश के अन्तर्गत थे। तथा गणपतिनाग और गणेश्वर सम्भवत: एक ही व्यक्ति के दो नाम थे।

इस अनुमान के विरुद्ध यह बाधा अवश्य है कि गणेश्वर और गुह के नामान्त में जातिसूचक नाग शब्द नहीं जुड़ाहै।

प्रयाग-प्रशस्ति के गणपतिनाग से भिन्नता— प्रयाग-प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने किसी गणपतिनाग का उत्पाटन करके उसके राज्य पर अधिकार करलियाथा। इस गणपतिनाग को गोपेश्वर के त्रिशूललेख का गणपतिनाग नहीं मानाजासकता। त्रिशूललेख की लिपि प्रयागप्रशस्ति की लिपि से लगभग दो - ढाई शती पीछे की है। और हरिवर्मन् मौखरि के हाड़हा - अभिलेख की लिपि से पूर्ण समानता रखतीहै [४]।

जिस प्रदेश में गोपेश्वर और बाड़ाहाट के त्रिशूल स्थित हैं, वह समुद्रगुप्त के राज्यकाल में प्रत्यन्त जनपद था [५]। समुद्रगुप्त के राज्य के अन्तर्गत न था। उसके नृपति ने समुद्रगुप्त की केवल अधीनता स्वीकार कीथी [६]। जबकि उसी प्रशस्ति के गणपतिनाग के प्रदेश को समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य में मिलालियाथा [७]।

गणेन्द्र की मुद्राएं—गोपेश्वर के त्रिशूललेख के गणपतिनाग की मुद्राएँ अभीतक नहीं मिलीहैं। एशियाटिक सोसायटी बँगाल के सँग्रहालय में महाराज गणपति या गणेन्द्र नामक किसी नरेश की १५ ताम्रमुद्राएँ हैं [८]। उसी नरेश की ९ ताम्रमुद्राएँ राष्ट्रीय संग्रहालय कलकत्ता में हैं [९]।

इन मुद्राओं पर लगभग चौथी शती ईसवी की ब्राह्मीलिपि में 'महाराज श्री गणेन्द्र' लेख पढ़ागयाहै। इन पर बिन्दुओं से बने वृत्त के अन्दर पीछे की ओर शिर मोड़ेहुए नन्दी का चित्र है [१०]।

१- राहुल — गढ़वाल, पृ० ३४७
२-३- फूरर—मोन्यूमेंटल ऐंटीक्विटीज आव N. W. P. जि० २, पृ० ४४
४- राहुल — गढ़वाल, पृ० ३४७ - ४८
५- ६- 'रुद्रदेवमतिलनागदत्तचन्द्रवर्मगणपतिनागनागसेनअच्युतनन्दिबलवर्मा अनेक आर्यावर्तराजप्रसभोद्धरणोद्धृत्तप्रभावमहत:।' — प्रयाग - प्रशस्ति
७- प्रयाग - प्रशस्ति
८- १०- स्मिथ — कै० क्वाइन्स इन इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता, पृ० १७८ - ७९

इस महाराज श्रीगणेन्द्र का गोपेश्वर - बाड़ाहाट के गणपतिनाग या गणेश्वर से सम्बन्ध स्थापितकरना कठिन है।

प्रमुख घटनाएं — गणपतिनाग या गणेश्वर के राज्यकाल की घटनाओं पर अधिक प्रकाश डालनेवाले साधन उपलब्ध नहीं हैं। गोपेश्वर के त्रिशूललेख के अनुसार इस नरेश ने उस स्थान पर रुद्रमन्दिर में त्रिशूल की स्थापना कीथी। उस मन्दिर की स्थापना भी गणपतिनाग ने कीथी या उसके किसी पूर्वज ने, इसका पता पूरे त्रिशूललेख के प्रकाशन होने पर लगेगा।

बाड़ाहाट के त्रिशूललेख से विदित होताहै कि वहां गणेश्वर ने हिमालय के शिखर के समान उच्च और दिव्य शिवमन्दिर का निर्माण कियाथा [1]।

त्रिशूललेख में गणेश्वर को प्रख्यातकीर्तिवाला कहागयाहै। उसकी उपाधि क्षितिप कहीगईहै [2]। इससे विदित होताहै कि उसका शासितप्रदेश अधिक विस्तृत न था। उसने मध्यदेश के किसी नरेश की अधीनता स्वीकार कीथी या नहीं, यह अज्ञात है।

श्रीगुह

व्यक्तित्व — श्रीगुह गणेश्वर का पुत्र था। गणेश्वर के स्वर्गवास होनेपर उसे कर्तृपुर का राज्य प्राप्त हुआथा। त्रिशूललेख से विदित होताहै कि श्रीगुह महावलशाली था। उनके नेत्र विशाल थे। वह दृढ़ वक्षस्थलवाला था। वह सौन्दर्य में अनंग से, दान में कुवेर से, तथा नीति या शास्त्रज्ञान में वेदव्यास से बढ़चढ़कर था। यह धार्मिक व्यक्तियों में अग्रणी और अतिउदार चरितवाला था [3]।

शक्ति (त्रिशूल) की स्थापना — बाड़ाहाट में विश्वनाथमन्दिर के आगे २१ फीट ऊँचे, पीतल के बने शक्ति (त्रिशूल) के लेख से विदित होताहै कि उसकी स्थापना राजागणेश्वर के पुत्र श्रीगुह के द्वारा हुईथी [4]।

कालान्तर में इस लेख की लिपि अप्रचलित और अपाठ्य होगई। श्रीगुह की गाथा को जनता भूलगई। फलतः इस शक्ति की स्थापना के सम्बन्ध में कतिपय कल्पनाएं चलपड़ीं।

१- २- बाड़ाहाट - त्रिशूललेख

३- ' पुत्रस्तस्य महाभुजोविपुलहद्‌क पीनोन्नतोरस्थलः,
रूपस्यागनयेरनंगधनदव्यासाततीत्योद्‌गतः।
नाम्ना श्रीगुह इत्युदारचरितः सद्धर्म्मधुर्यस्सतां,
शक्ति शक्तिमनोरथप्रमथनीं शम्भोश्चकाराग्रतः ॥ ' — बाड़ाहाट - त्रिशूललेख, पंक्ति २

४- शक्ति - लेख, पंक्ति २

केदारखण्डग्रन्थ के लेखक की कल्पना है कि इस क्षेत्र में प्राचीनकाल में देवासुर-सँग्राम हुआथा। उस सँग्राम में इस धातु की बनीहुई शक्ति को फेंकागयाथा [1]।

एटकिनसन ने एक स्थानीय परम्परा का उल्लेख कियाहै, जिसके अनुसार उक्त त्रिशूल की स्थापना भोटदेश (तिब्बत) के किसी नरेश ने कीथी [2]। उनदिनों यह प्रदेश तिब्बत के अधीन था [3]। राहुल ने भी एटकिनसन के इस कथन की पुष्टि कीहै [4]।

केदारखण्डग्रन्थ, एटकिनसन द्वारा उल्लिखित परम्परा और राहुल के कथन का खण्डन स्वयँ त्रिशूल के अभिलेख से होजाताहै।

त्रिशूल के अभिलेख की जो प्रतिलिपि ट्रेल ने तय्यार कीथी, वह अधूरी और त्रुटिपूर्ण है। उसके आधार पर डा० मिल का अनुवाद अधूरा और अशुद्ध है [5]। किन्तु इस अनुवाद में भी न तो कहीं भोटनरेश द्वारा इस त्रिशूल की स्थापना का उल्लख है और न कहीं इस प्रदेश पर किसी भोटनरेश के अधिकार की बात कहीगईहै।

इस त्रिशूल - लेख की शुद्ध प्रतिलिपि अबतक चार ग्रन्थों में प्रकाशित होचुकीहै [6]। इसी वर्ष पुरातत्वविभाग द्वारा उस लेख की जो प्रतिलिपि लीगईहै, वह इस प्रकाशित पाठ की शुद्धता की पुष्टि करतीहै [7]। उसके अनुसार शक्ति की स्थापना उदारचरितवाले तथा धर्मज्ञव्यक्तियों में श्रेष्ठ श्रीगुह द्वारा कीगईथी [8]।

श्रीगुह अपने पिता गणेश्वर के समान शैव था। उसके पिता गणेश्वर ने बाड़ाहाट के शिवमन्दिर का निर्माण कियाथा, तथा गोपेश्वर के शिवमन्दिर के सन्मुख त्रिशूल की स्थापना कीथी। इसलिए अपने पिता द्वारा निर्मित शिवमन्दिर के सन्मुख श्रीगुह द्वारा त्रिशूल की स्थापना करना सर्वथा सँगत लगताहै [9]।

उन्हींदिनों भोटदेश में किसी शैवमतानुयायी नरेश के अस्तित्व के प्रमाण अभीतक नहीं मिलेहैं।

शत्रु-उत्पात— त्रिशूल - लेख में उस शक्ति को शत्रु के मनोरथ का प्रमथन करनेवाली कहागयाहै [10]। लेख से विदित होताहै कि किसी शत्रु ने श्रीगुह के राज्य पर

१- 'सौम्यकाशीति विख्याता गिरौ वै वारणावते।
अप्सी च वरुणा चैव द्वे नद्यौ पुण्यगोचरे॥ ११
निक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि संगरे देवताऽसुरैः।
अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयी शुभा॥' १४ — केदारखण्ड, ६३।११, १४

२- ३- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, जि० २, पृ० ५१५   ४- राहुल—गढ़वाल, पृ० ११२

५- प्रो० ए० सो० बंगाल, जि० २, पृ० ३४-३८, प्लेट ६; उ० राहुल — गढ़वाल, पृ० ११२

६- द्र० गङ्गा का पुरातत्वांक; राहुल -- गढ़वाल, पृ० ३७८; उत्तराखण्ड - यात्रा - दर्शन, पृ० ५२० उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६३

७- भारत के प्रमुख एपिग्राफिष्ट डा० गाई का पत्र, दिनांक ४-२-६६   ८-६- त्रिशूल-लेख, पंक्ति २

१०- 'शक्ति शत्रु मनोरथप्रथमनीं शम्भोश्चकाराग्रत:'

आक्रमण कियाथा। अथवा उसके राज्य को किसीप्रकार से गम्भीर हानि पहुँचाने का षडयन्त्र रचाथा। किन्तु उस आक्रमण या षड्यन्त्र को विफलकरने में श्रीगुह को सफलता मिलगई। और उसने, इसे सम्भवतः शिवजी की कृपा समझकर, शिवमन्दिर के सन्मुख शक्ति की स्थापना की। लेख की अन्तिम पँक्ति में उस शक्ति (त्रिशूल) को नित्य शत्रुओं का दमन करनेवाले राजा की स्थिर कीर्ति कहागयाहै [१]।

अभिलेख से उस शत्रु के सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना नहीं मिलती। इसलिए इस बात का निर्णय करना कठिन है कि वह शत्रु राजपरिवार से ही सम्बन्धित कोई व्यक्ति था, अथवा कोई पड़ोसी आक्रान्ता नरेश था।

उनदिनों बाड़ाहाट के निकटप्रदेश में, कर्तृपुरजनपद से सटे यामुनप्रदेश पर सेनवर्मन् यादव के वँशजों का अधिकार था। सेनवर्मन् के राज्य का आरम्भ जयदास के वँशजों के राज्य की समाप्ति के पश्चात् सँवत् ५१७ (460 ई०) के आसपास हुआथा। हमारा अनुमान है कि श्रीगुह का समकालीन यादवनरेश सम्भवतः सिंहवर्मन् था, जो सेनवर्मन् की सातवीं पीढ़ी में हुआथा। सम्भवतः इसी नरेश के नाम से उसकी राजधानी सैंहपुर कहलानेलगीथी [२]। ईश्वरा की प्रशस्ति के अनुसार सिंहवर्मन् राजाओं में सिंह के समान था। उसने अपनी भुजाओं द्वारा शौर्यवान् और दानशील का यश प्राप्त कियाथा। सम्भव है सिंहवर्मन् का श्रीगुह के साथ कोई युद्ध हुआहो।

यदि एटकिनसन द्वारा उल्लिखित परम्परा का कोई ऐतिहासिक आधार है तो वह केवल इतना ही होसकताहै कि राजा गणेश्वर के स्वर्गवास होजाने पर सम्भवतः पश्चिमी तिब्बत में स्थित गूगे के किसी शासक ने भागीरथीघाटी में लूटमार मचानीचाही। किन्तु श्रीगुह ने उसके लुटेरादल को हिमालय के पार खदेड़दियाथा। सम्भवतः इस अवसर पर कठिन या दीर्घकालव्यापी सँघर्ष हुआथा। जिसमें विजय प्राप्तकर श्रीगुह ने, शत्रु की पराजय और अपनी कीर्ति के स्मारक के रूप में शिवमन्दिर के सन्मुख शक्ति की स्थापना कीथी।

मौखरि-आक्रमण— श्रीगुह या उसके उत्तराधिकारी के राज्यकाल में कन्नौज के मौखरिनरेश ईशानवर्मन् की शक्ति बहुत बढ़गईथी। गुह या उसके उत्तराधिकारी ने उसे उपयनादि देकर सन्तुष्ट करने का प्रयत्न कियाथा या नहीं, यह अज्ञात है। गोपेश्वर के पास सिरौली के शिलालेख से विदित होताहै कि ईशानवर्मन् के पुत्र सर्ववर्मन् ने कर्तृपुर पर अधिकार करलियाथा। और इस जनपद पर शासनकरने केलिए अपने विषयपति नरवर्मन् की नियुक्ति कीथी [३]।

महाराजाधिराज सर्ववर्मन् के राज्यकाल के इस शिलालेख से विदित होताहै कि कर्तृपुर के नाग - राजवँश की शासनसत्ता तबसे समाप्त होगई।

१- 'तावत् कीर्ति सुकीतश्चिरमरिंमथनस्यास्तु राज्ञः स्थिरेयम्।' — शक्ति-लेख, पंक्ति ३

२- 'स्वभुजाज्जित शौर्ययशादानवतामुपरि इष्टसमार्थ्यः।
श्री सिंहवर्म्मनामा तत्तनयो राजसिंहोऽभूत ॥' — लाखामंडल - प्रशस्ति, श्लोक ८

३- डा० गाई का पत्र, दिनांक २७-१२-६७

धार्मिक मान्यताएं — गोपेश्वर का शक्ति - लेख पूरा प्रकाशित होजाने पर नागनरेशों के राज्यकाल के सम्बन्ध में अधिक सूचनाएं उपलब्ध होंगी।

नागवंशी नरेशों की शैवमत के प्रति अधिक श्रद्धा थी। उन्होंने स्वयं गोपेश्वर और बाड़ाहाट के शिवमन्दिरों का निर्माण कियाथा तथा उनके सन्मुख धातु के त्रिशूलों की स्थापना कीथी। समकालीन मन्दिरों के अवशेषों से विदित होताहै कि उनकी प्रजा में भी शैवमत की ओर अधिक आकर्षण था।

शिक्षा-प्रसार — बाड़ाहाट और गोपेश्वर के त्रिशूल - अभिलेखों से विदित होताहै कि जनपद में संस्कृतभाषा के पठन - पाठन का सुप्रबन्ध था। नागनरेशों को संस्कृतभाषा में, सुललित छन्दों में प्रशस्तियों की रचना करनेवाले विद्वान् उपलब्ध थे।

गोपेश्वर के त्रिशूल पर अशोकचल्ल (अनेकमल्ल) के अभिलेख के नीचे, त्रिशूल के डण्डे पर नागनरेशों का अभिलेख ताम्रनिहित अक्षरों में अंकित है[1]। बाड़ाहाट के त्रिशूल का लेख तीन पँक्तियों में है। पहली पँक्ति के अक्षर कुछ छोटे हैं। दूसरी पँक्ति के अक्षर अधिक बड़े हैं। तीसरी पँक्ति के अक्षर और भी अधिक बड़े हैं।

पहली और दूसरी पँक्ति में शार्दूलविक्रीडित वृत्त का तथा तीसरी पँक्ति में स्रग्धरा वृत्त का प्रयोग हुआहै। पूरा लेख शुद्ध संस्कृत में है। अक्षर एक - जैसे और सुपाठ्य हैं। सारा लेख धातु पर अभिलेख - अंकनकला का अति उत्कृष्ट उदाहरण है। संस्कृत के सुललित वृत्तों में रचीहुई तथा बड़े श्रम और कौशल से अंकित यह प्रशस्ति प्रतापी नरेश श्रीगुह की अमर कीर्ति है[2]।

आर्थिक स्थिति — हिमालय के शिखर के समान अतिउच्च और दिव्य मन्दिरों के निर्माण से तथा २६ एवं १६ फीट ऊंचे धातुत्रिशूलों की स्थापना से राज्य की सम्पन्नता का आभास मिलताहै। सुवर्ण आदि खनिजों, एवं हिमालय और भोट की वस्तुओं, नमक, सुहागा, ऊन, ऊनीवस्त्र, कस्तूरी, भोजपत्र, चमर, ओषधि तथा तीर्थों के पुनीतजल के व्यापार ने समृद्धि में योग दियाहोगा। गढ़वाल के टंकण और भारद्वाज अश्वों की मध्यदेश में वड़ी मांग थी।

कला-कौशल— सभापर्व से विदित होताहै कि गङ्गाजी की पर्वतीय उपत्यका उत्तम ऊनीवस्त्रों के निर्माण केलिए प्रसिद्ध थी। गुप्तनरेशों के शासनकाल में इस प्रदेश के ऊनीवस्त्र, चमर, कस्तूरी और भोजपत्र की बड़ी मांग थी।

नागनरेशों के शासनकाल में धातुकला में विशेष उन्नति हुईथी। बाड़ाहाट के

१- राहुल — गढ़वाल, पृ० ३३२

२ ' प्रातः प्रातर्म्मयूखैरुरुभिरविलं शार्वरंध्मान्तमन्धन् ,
नालुं चंश्चारुतारानिकरपरिकरोदारशारोदरत्वम् ।
स्वं बिम्बं चित्रबिम्बाम्बरतलतिलकं यावदर्को विधत्ते ,
तावत्कीर्तिः सुकीतश्चिरमरिमथनस्यास्तु राज्ञः स्थिरेयम् ।' — बाड़ाहाट - त्रिशूललेख, पंक्ति ३

२६ फीट ऊँचे त्रिशूल का उपरला भाग लोहे का बनाहै। निचला भाग पीतल का है। नीचे इसकी मोटाई ८′ ९′′=तथा ऊपर १′ १.५ इञ्च है [१]। पिछले चौदह सौ वर्षों से वर्षा, ओस, हिमपात और धूप को झेलतीहुई यह शक्ति आजतक पूर्ववत खड़ीहै। उस पर न तो जँक लगाहै और न उसकी चमकीली पालिश में कोई अन्तर आयाहै। गोपेश्वर का लौह - त्रिशूल १६ फीट ऊँचा है। सुरक्षा की अवहेलना के कारण यह गिरकर खण्डित होगयाहै।

दिल्ली में, कुतुबमीनार के निकट २४ फीट ऊँचा लौहनिर्मित गरुड़ध्वज है जिसपर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का लेख है। राहुल का अनुमान है कि इस गरुड़ध्वज का निर्माण गढ़वाल के शिल्पकारों ने स्थानीय लोहे से कियाथा [२]। राहुल के इस अनुमान की पुष्टि या खण्डन केलिए अभीतक कोई प्रमाणिक सामग्री नहीं मिलीहै। गुप्तशासन के तुरन्त पश्चात् कर्तृपुर के नागनरेशों के राज्यकाल में धातुकला के आश्चर्यजनक कौशल के आधार पर अनुमान लगताहै कि गुप्तकाल में इस प्रदेश में धातुकला समुन्नत थी। अतः राहुल का अनुमान सर्वथा अग्राह्य नहीं होसकता।

स्थापत्य— गुप्तवँशी नरेशों के समान नागनरेश भी अपने स्थापत्य केलिए प्रसिद्ध थे। उन नरेशों के द्वारा स्थापित बाड़ाहाट और गोपेश्वर के शिवमन्दिर शतियों पहले नष्ट होचुकेथे। जिन मन्दिरों के आंगन में उनके द्वारा स्थापित शक्तियां खड़ीहैं, उनका निर्माण या जीर्णोद्धार शतियों पश्चात् कियागया। बाड़ाहाट में विश्वनाथमन्दिर का जीर्णोद्धार सं० १९१४ (1857 ई०) में महाराजा सुदर्शनाह ने कियाथा [३]। गोपेश्वर का वर्तमान मन्दिर दशवीं - ग्यारहवीं शती से पूर्ववर्ती नहीं मानाजाता।

नागनरेशों के राज्यकाल में स्थापित कुछ अन्य मन्दिरों के स्थान पर भी नए मन्दिरों की स्थापना होचुकीहै। मन्दाकिनी - उपत्यका, जो आजतक नागनरेशों की कीर्ति-स्वरूप नागपुर के नाम से प्रसिद्ध है, सैकड़ों प्राचीन मन्दिरों, प्रासादों, बावड़ियों और कतिपय दुर्गों के विध्वँसों से भरीपड़ीहै। इस उपत्यका के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध इन नरेशों को छोटी - बड़ी नदियों के सँगम पर, सरोवरों के तटों पर, छोटे - बड़े टीलों और पहाड़ी ढालों पर, सर्वत्र, मानवेतर शक्तियों का अस्तित्व दिखाईदिया। वे श्रद्धा, भक्ति और समृद्धि से सम्पन्न थे। उन्हें धार्मिक भावना और सुरुचि का वरदान प्राप्त था। उन्हें शास्त्रीय विधि से मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण में दक्ष पण्डितों और कलाकारों का सहयोग उपलब्ध था [४]।

उन्होंने जिन कलाकारों को अपने राज्य में आश्रय दियाथा, उनके राज्य का अवसान होजाने पर भी, उन कलाकारों की सन्तति, शतियों तक, इस जनपद में, उस प्राचीन कला को जीवित रखतीरही। नए राजवँश भी नागनरेशों के सुरुचिपूर्ण निर्माणकार्यों का अनुकरण करतेरहे [५]।

१- ३- राहुल – गढ़वाल, पृ० ३४९

४- ५- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २९९-३००

सैंहपुर का यादव-राजवंश

राजकुमारी ईश्वरा की प्रशस्ति

लाखामण्डल के मन्दिरों में निम्न अभिलेख प्राप्तहुएहैं :—

१- राजा छागलेश (अजेश्वर) की प्रशस्ति – १', १०"×१', ५½" आकार की शिला पर अँकित। जिसकी तिथि डा० छावड़ा ने पांचवीं शती ईसवी मानीहै [१]। इसका उल्लेख पहले होचुकाहै ।

२- गुप्तकालीन शँख - लिपि में अभिलेख – जो १', ११½"×१', ६" आकार की शिला पर अँकित है । इसकी अनेक छोटी - बड़ी पँक्तियों में लिखेगए अभिलेख का अभीतक प्रकाशन नहीं हुआहै [२]।

३- गुप्तकालीन लिपि में बांई ओर का अभिलेख – जो ९"×८" आकार की शिला पर अँकित है। तथा जिसमें केवल पांच पँक्तियां हैं [३]। यह अभिलेख अभीतक प्रकाशित नहीं हुआहै।

४- राजकुमारी ईश्वरा की प्रशस्ति – जो २', १०½×१', ९" आकार की शिला पर अँकित है। इसमें चौदह पँक्तियां हैं। सारा अभिलेख सुरक्षित है, और प्रकाशित होचुकाहै [४]।

५- नागरीलिपि में वि० सँ० १९५४ का अभिलेख – जो २', ३"×१', ४½" आकार की शिला पर अँकित है [५]। और अभीतक अप्रकाशित है।

राजकुमारी ईश्वरा की प्रशस्ति बड़ी सावधानी और कुशलता से अँकित कीगईहै। और अबतक लगभग पूर्णतया सुरक्षित है [६]।

प्रशस्ति की अंकन-तिथि— प्रशस्ति में कोई तिथि अँकित नहीं है। इसमें

१-३- जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सो०, जुलाई १९५४,

४- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० १०

५- जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सो०, जु० १९५४,

६- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० १०

जिन १२ नरेशों का, तथा ईश्वरा के पति का पता चलताहै, उनकी न तो अबतक मुद्राएँ मिलीहैं, और न किसी अभिलेख या ग्रन्थ आदि से उनके सम्बन्ध में किसीप्रकार की सूचना मिलतीहै। इसलिए केवल लिपि के आधार पर राजकुमारी ईश्वरा की प्रशस्ति की तिथि निर्धारित कीगईहै।

लिपि के आधार पर किसी अभिलेख की तिथि निर्धारितकरना ऐतिहासिक दृष्टि से एक साहसिक कार्य है।

इस प्रशस्ति के अक्षर होरिउजी ताड़पत्रों से प्राप्त ब्राह्मीलिपि के अक्षरों से घनिष्ट सम्बन्ध रखतेहैं [१]। साथ ही वे भगवानलालजी द्वारा प्रकाशित नेपाल के अभिलेख सँख्या ६ - २५ तथा कामवन और झालरापाटन के अभिलेखों के अक्षरों से [२] रोचक समानता रखतेहैं [३]। झालरापाटन के अभिलेखों के समान ईश्वरा के अभिलेख में भी अक्षरों पर अलँकृत काण और मात्राएँ लगाईगईहैं [४]।

लिपि के आधार पर भूलर ने ईश्वरा की प्रशस्ति की लेखन - अवधि सँ ६५८- ८५७ वि० (601 - 800 ई०) के बीच मानीहै [५]। साथ ही उन्होंने लिखाहै कि अभिलेख की अँकनतिथि सँ० ६५७ (600 ई०) से कुछ पहले मानने में कोई उलझन नहीं है। ऐसा मानने पर वँश के सँस्थापक सेनवर्मन् का राज्यारोहण चौथी शती ईसवी के आरम्भ में ठहरायाजासकताहै [६]।

अन्य विद्वानों के अनुसार इस प्रशस्ति की अँकनतिथि निम्नाकित हैं :—

डा० जायसवाल [७] — छटी शती ईसवी (सँ० ५५८ - ६५७ वि०)
डा० दयाराम साहनी [८] — " "
डा० छाबड़ा [९] — सातवीं शती ईसवी (सँ० ६५८ - ७५७ वि०)
डा० भूलर [१०] — " "
डा० गौरीशँकर - हीराचन्द ओझा [११] — आठवीं शती ईसवी (सँ ७५८-८५७ वि०)
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल [१२] — " "

१- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० १०

२- इंडियन ऐण्टीक्वायरी, जि० पृ० १६३, जि० १०, पृ० ३४; जिल्द ५, पृ० १८०

३- ५- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० १० - ११

६- ' If we assume that it was incised before, say, about 600 A. D., it offers no difficulties. The accession of Senavarman will thus have to be placed in the beginning of the fourth century A. D. '

— एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० १२-१३

७- जायसवाल — अन्धकारयुगीन भारत, पृ० १६४, टि० २

८- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १८, पृ० १२५

९- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, जुलाई १९४४, पृ० ८१

१०- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० ११

११- ओझा—प्राचीन लिपिमाला, पृ० ६३, टि० १२

१२- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, १९४४, पृ० ६०

लाखामण्डल - प्रशस्ति की अंकनतिथि के सम्बन्ध में विद्वानों के अनुमान तीन शतियों की सुदीर्घ अवधि तक फैलेहैं। इसलिए उन पर आधारित निष्कर्षों को केवल अनुमान-मात्र कहाजासकताहै।

इस लिपि में मिला प्राचीनतम अभिलेख, जिसकी तिथि विदित है, हर्षसंवत् ४८ या सं० ७११ वि० (654 - 55 ई०) का और अन्तिम अभिलेख हर्षसंवत् १५३ या सं० ८१६ वि० (759 - 60 ई०) का है [१]। विद्वानों का अनुमान है कि ऐसी लिपि ५० वर्ष पूर्व अर्थात् सं० ६६१ वि० (604 ई०) तक आरम्भ होचुकीथी और ५० वर्ष पश्चात् तक अर्थात् सं० ८६६ वि० (809 ई०) तक प्रचलित रही [२]।

सैंहपुर— लाखामण्डल - प्रशस्ति की तिथि निश्चितकरने केलिए [३] प्राय: सिंहपुर के सम्बन्ध में चीनी यात्री युवान्‌चाङ् के उस लेख को महत्व दियाजाताहै, जिसके अनुसार सिंहपुर का कोई नरेश नहीं था, और यह जनपद कश्मीरराज्य के अधीन था [४]। किन्तु लाखामण्डल-प्रशस्ति में सिंहपुर का कहीं उल्लेख नहीं है। उसमें जिस सैंहपुरराज्य का उल्लेख है [५], उसकी पहिचान यात्री के सिङ्ग - ह - पु - लो (सिंहपुर) से करना सर्वथा भ्रमपूर्ण है [६]।

चीनी यात्री द्वारा वर्णित सिंहपुर तक्षशिला से ११७ मील पूर्व की ओर नमक की पहाड़ी की तलहटी में स्थित था [७]। उसके नरेश का नाम न देकर यात्री ने उसे कश्मीरराज्य के अधीन बतलायाहै [८]। प्रशस्ति में सैंहपुरजनपद के बारह नरेशों की क्रमबद्ध नामावली दीगईहै, जिससे पतालगताहै कि ईश्वरा के जीवनकाल में, सैंहपुर में यादववंश का राज्य बारह पीढ़ियों से चलाआताथा [९]।

लिपि के आधार पर कहाजासकताहै कि ईश्वरा की प्रशस्ति लगभग उन्हींदिनों लिखीगई जिनदिनों अर्थात् सं० ६८६-७०२ वि० (629-645 ई०) तक, चीनी यात्री भारत में भ्रमण कररहाथा। इसलिए नरेशहीन सिंहपुरराज्य को प्रशस्ति का सैंहपुर नहीं मानाजासकता।

भूलर ने सैंहपुरजनपद को जालन्धरराज्य के अन्तर्गत [१०] तथा जायसवाल ने दोनों को एक मानाहै [११]। एक ही जनपद, दो विभिन्न राज्यों —कश्मीर और जालन्धर— के अधीन नहीं होसकता।

यदि सैंहपुरजनपद जालन्धरराज्य के अन्तर्गत होता तो शिलालेख में ईश्वरा के

१- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० ११
२- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० १२
३- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० ११
४- एपिग्राफिया, इण्डिका, जि० १, पृ० १२
५- 'यदुवंशभुवां राज्ञां सैंहपुरं राज्यमायुगाद् दधताम्।' — लाखामंडल - प्रशस्ति, श्लोक २
६- डबराल — उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २०९
७- ८- उ० कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० १०७
९- डबराल — पूर्वोक्त, भाग १, पृ० २०९
१०-११- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १८, पृ० १२५

पूर्वजों का सम्मान बढ़ाने के हेतु जालन्धरराजवँश की भी कुछ कीर्ति अवश्य गाईगईहोती [१]। इसके विपरीत अभिलेख में ईश्वरा के पति के पिता का नाम तक न आनेसे, उसके वँश के सम्बन्ध में एक भी शब्द न होनेसे, और केवल ईश्वरा के पूर्वजों के ही शौर्य-वीर्य का विस्तृत गुणगान मिलनेसे विदित होताहै कि सैंहपुर एक स्वतन्त्र राज्य था, और जालन्धर-राज्य से किसी प्रकार घटकर न था [२]।

सैंहपुर और जालन्धर का एकीकरण स्वयँ प्रशस्ति से खण्डित होजाताहै। उसमें जालन्धरनरेश को नृप और सैंहपुरनरेशों को भी नृपति, राज्ञ एवँ राजर्षि कहागयाहै [३]। चीनी यात्री के समय जालन्धरजनपद के अधीन चम्बा, मण्डी, सुकेत और शतद्रु (सरहिन्द) के क्षेत्र सम्मिलित थे [४]। इनमेंसे किसी के राजकुमार चन्द्रगुप्त से ईश्वरा का बिवाह हुआथा।

नमक की पहाड़ी के पदतल में स्थित सिंहपुर की राजकुमारी द्वारा इतनी दूर लाखामण्डल के बीहड़ क्षेत्र में अपने पति की स्मृति में मन्दिर बनाने की कल्पना सँगत नहीं लगती [५]।

अभिलेख से प्रतीत होताहै कि ईश्वरा विधवा होनेपर अपने मैके सैंहपुर में रहनेलगीथी, और यहां सम्भवत: अपने पितृकुल की सहायता से उसने अपने पति की सद्‌गति केलिए मन्दिर का निर्माण कियाथा। इसीलिए अभिलेख में केवल उसके पितृकुल की ही प्रशस्ति गाईगईहै [६]।

यमुना के दहिने तट पर, यमुना और गिरिनदी के सँगम पर, कालसी से ८ मील दक्षिण की ओर तथा सुघगांव (प्राचीन स्रुघ्ननगर) से १६ मील उत्तर की ओर, आज भी सिंहपुर नामक गांव मिलताहै [७]। यहां प्राचीन बस्तियों के अवशेषों से, उसकी प्राचीन महत्ता पर प्रकाश पड़ताहै। हमारा अनुमान है कि यही सिंहपुर लाखामण्डल की प्रशस्ति का सैंहपुर है [८]।

स्रुघ्नराज्य के अस्तित्व का विक्रमपूर्व दूसरी शती से निरन्तर उल्लेख मिलताहै। चीनी यात्री के समय सँवत् ६९२ वि० (635 ई०) में स्रुघ्नजनपद की सीमा गिरिनदी से गङ्गाजी तक तथा हिमालय से लेकर अम्बाला और सहारनपुर के भाबरप्रदेश तक फैलीथी [९]।

इसी शताब्दी में, इसी प्रदेश के अन्तर्गत, लाखामण्डल की प्रशस्ति इस जनपद का सैंहपुरराज्य के नाम से उल्लेख करतीहै और उसके यादवनरेशों की १२ पीढ़ियों

१- डबराल — उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २०९ २- डबराल — पूर्वोक्त, पृ० २१०

३- 'यदुवंशभुवां राज्ञां सैंहपुरराज्यमायुगाद्‌दधताम्।',
तथा 'जालन्धरनृपसूनोर्जाया श्री चन्द्रगुप्तस्य।

४- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ०१०७ ५- ६- डबराल — पूर्वोक्त, भाग १, पृ० २१०

७- ९- डबराल — पूर्वोक्त, भाग १, पृ० २११

की नामावली देतीहै। प्रत्येक नरेश की औसत से १५ वर्ष की राज्यावधि मानने पर इस प्रदेश पर यादववँश का अधिकार लगभग दो शताब्दी तक रहने की कल्पना होसकतीहै [१]।

विदित होताहै कि स्रुघ्नराज्य का दूसरा नाम सैंहपुर या सिंहपुर भी था। सम्भवतः प्रशस्ति के सातवें नरेश सिंहवर्मन् ने सैंहपुर नामक नगर की स्थापना करके उसे अपनी राजधानी बनायाथा। फिर राजधानी के नाम से जनपद भी सैंहपुर कहलानेलगा [२]।

यदुवंश— प्रशस्ति के अनुसार यदुवँश के नरेशों का सैंहपुरराज्य पर कलियुग के आरम्भ से ही राज्य चलाआताथा [३]। यदुवँश का मूलपुरुष यदु [४] उत्तराखण्ड के नरेश पुरूरवा का वँशज था। उसे राजा ययाति ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के गर्भ से उत्पन्न कियाथा [५]। यदु अपनी सन्तान सहित हस्तिनापुर में रहताथा [६]। भ्राताओं और पिता का अपमान करने के कारण जब यदु को उसके पिता ययाति ने राज्य से च्युत करदिया [७] तो उसके वँशज यादव सम्भवतः मथुरा के निकट - पड़ोस में बसगएथे।

महाभारत के अनुसार जरासन्ध के भय से यादवों की कुछ टोलियां [८] मथुरा से पश्चिम की ओर जा - बसीथीं। जायसवाल का अनुमान है कि लाखामण्डल - प्रशस्ति के यादववँश का मूलपुरुष उन्हींसे सम्बन्धित था [९]। प्रशस्ति के अनुसार सैंहपुर में यादववँश का राज्य युग (कलियुग) के आरम्भ से ही चलाआताथा [१०]। किन्तु इस कथन की पुष्टि किसी ऐतिहासिक स्रोत से नहीं होती।

वंशक्रम— उत्तराखण्ड के राजवँशों मेंसे केवल सैंहपुर का यादववँश ही ऐसा है जिसकी ग्यारह - बारह पीढ़ियों तक की क्रमबद्ध प्रामाणिक वँशावली मिलतीहै। प्रशस्ति के अनुसार इस वँश में क्रमानुसार निम्न नरेश हुए :–

सँख्या	नरेशों का नाम	पूर्ववर्ती से सम्बन्ध	विरुद या प्रयुक्त विशेषण
१-	श्री सेनवर्मन्	वँशसँस्थापक	राजर्षि
२-	श्री आर्यवर्मन्	तत्पुत्र	नृपति
३-	श्री देववर्मन्	तत्पुत्र	नृपति
४-	श्री प्रदीप्तवर्मन्	तत्पुत्र	भूपाल
५-	श्री ईश्वरवर्मन्	तत्पुत्र	भूपति
६-	श्री वृद्धिवर्मन्	तत्पुत्र	राजा

१- डबराल – उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २१२　२- डबराल – पूर्वोक्त, पृ० २१२
३- 'यदुवंशभुवां राज्ञां सैंहपुरं राज्यमायुगाद् दधताम्।' — लाखामंडल - प्रशस्ति, श्लोक २
४- आदिपर्व, ९५।१०　५- आदिपर्व, ७५।३५; आदिपर्व, ८३।६
६- ७- उद्योगपर्व, १४६। ६ - ११　८- सभापर्व, २७।२०
९- जायसवाल – अन्धकारयुगीन भारत, पृ० १६४　१०- लाखामंडल–प्रशस्ति, श्लोक २

७-	श्री सिंहवर्मन्	तत्पुत्र	राजसिंह
८-	श्री जल (वर्मन्)	तत्पुत्र	नृपति
९-	श्री यज्ञवर्मन्	तत्पुत्र	महीपति
१०-	श्री अचलवर्मन्	तत्पुत्र	राजर्षि, घङ्घल
११-	श्री दिवाकरवर्मन्	तत्पुत्र	नृपतीश, महाघङ्घल, भट्ट
१२-	श्री भाष्करवर्मन्	तद् भ्राता	नृपतिपाल, रिपुघङ्घल

श्री सेनवर्मन्

प्रशस्ति के अनुसार सैंहपुर के यादवनरेशों की वँश - परम्परा में एक नरेश राजर्षि सेनवर्मन् हुआ [१]। यद्यपि प्रशस्ति के आधार पर सेनवर्मन् से पहले भी उसके पूर्वज नरेशों कल्पना होसकतीहै, पर सम्भवतः यादववँश की सैंहपुरवाली शाखा के राजवँश का सँस्थापक सेनवर्मन् ही था।

इस नरेश की ऐतिहासिकता की पुष्टि अन्य किसी स्रोत, अभिलेख, मुद्रा आदि से नहीं होती। भूलर ने इस वँश की ग्यारह पीढ़ियों केलिए २७५ वर्ष की अवधि निर्धारित की है [२]। जायसवाल ने १२ नरेशों केलिए लगभग तीन सौ वर्षों की अवधि देना उचित समझाहै। और यादव राजवँश का आरम्भ सँ० ३०७ वि० (250 ई०) के आसपास मानाहै [३]।

शीलवर्मन् से सम्बन्ध— शीलवर्मन् का समय, जिसने कालसी शिला के ठीक सामने जगतग्राम में अश्वमेघयज्ञ कियाथा, रामचन्द्रन् ने तीसरी शती ईसवी निर्धारित कियाहै [४]। सैंहपुर के यादववँश के सभी नरेशों के नामान्त में वर्मन् मिलताहै। वँश-सँस्थापक सेनवर्मन् का राज्यकाल जायसवाल के अनुसार तीसरी शती ई० में था। अश्वमेधकर्ता शीलवर्मन् के वँशजों का पता नहीं चलता। अस्तु पहले हमने अनुमान लगायाथा कि सम्भवतः शीलवर्मन् और सेनवर्मन् एक ही व्यक्ति के दो नाम थे [५]।

सेनवर्मन् के वँश को प्रशस्ति में यदुवँश कहगयाहै। इष्टकालेख में शीलवर्मन् अपने को वार्षगण्य से सम्बन्धित बतलाताहै। यदि वार्षगण्य वृष्णिगण का ही दूसरा नाम रहाहो, या इष्टिकालेख का शुद्धपाठ वृष्णिगणस्य हो तो इस अनुमान को साधार मानाजासकताथा। क्योंकि वृष्णिगण का सम्बन्ध यदुवँश से था [६]।

अभीतक मुझे कोई ऐसा प्रमाण ऐसा नहीं मिलाहै जिनके आधार पर वार्षगण्य और

१- 'श्री सेनवर्म्मनामा राजर्षिः प्रक्रमेणासीत्।' --- श्लोक, २

२- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १८, पृ० १२

३- जयसवाल — अन्धकारयुगीन भारत, पृ० १२०

४- एनशिएंट इण्डिया, जि०, पृ० १४१

५- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २१२

६- आदिपर्व, २१७-१८

वृष्णिगण की एकता स्थापित होसके। महाभारत के अनुसार वार्षगण्य एक प्राचीन ऋषि थे, जिनसे गन्धर्वराज विश्वावसु ने जीवात्मा-परमात्मा-तत्व का विवेचन सुनाथा [१]। वृष्णि यदुवँशी क्षत्रिय थे जिनके वँशज यादव कहलाए [२]। श्रीकृष्ण इसी वृष्णि के वँशज थे। किन्तु यदि इष्टकालेख का वार्षगण्यपाठ शुद्ध है तो शीलवर्मन् अपने को वार्षगण्य ऋषि का वँशज मानताथा। इस ऋषि का सम्बन्ध यदुवँश से नहीं जोड़ाजासकता।

वंश की राज्यावधि— लाखामण्डल में ही छागलेश (अजेश्वर) और उसके पूर्वजों की प्रशस्ति मिलजाने से उस वँश के ८ नरेशों की राज्यावधि लिपि के आधार पर शीलवर्मन् के पश्चात् रखनीहोगी।

लिपि के आधार पर डा० छाबड़ा ने छागलेश (अजेश्वर) की प्रशस्ति को ईश्वरा की प्रशस्ति से दो शती पूर्ववर्ती मानाहै [३]। उन्होंने पहली प्रशस्ति को ईसा की पांचवी शती की तथा दूसरी को सातवीं शती की ठहरायाहै। इसलिए छागलेश (अजेश्वर) के पश्चात् सैंहपुर के यादववँश का राज्यकाल आरम्भ हुआथा, ऐसा माननापड़ेगा।

हमने छागलेश और उसके पूर्वजों का राज्यकाल अनुमान से सँ० ४०७ - ५१७ वि० (350 - 460 ई०) निश्चित कियाहै। ग्यारह - पीढ़ियों या बारह नरेशों का राज्यकाल १६० वर्ष मानने पर यादववँश के अन्तिम नरेश के राज्यकाल की समाप्ति सँ० ६७७ वि० (620 ई०) के आसपास निकलेगी।

चीनी यात्री के यात्रावर्णन में, सँ० ६९२ वि० (635 ई०) के आसपास स्रुघ्नदेश के किसी नरेश का उल्लेख नहीं मिलता। इसलिए सैंहपुर के यादववँश के अन्तिम नरेश की अन्तिम तिथि सँ० ६९२ वि० (635 ई०) से पूर्ववर्ती होनीचाहिए।

लिपि के आधार पर ईश्वरा की प्रशस्ति की तिथि का इससे कोई विरोध नहीं पड़ता।

इस तिथि के आसपास या इससे १०-१५ वर्ष पश्चात् ईश्वरा ने लाखामण्डल के लाखेश्वरमन्दिर का निर्माण और प्रशस्ति का अँकन करवायाथा।

गुप्त आदि सम्राटों से सम्बन्ध—सैंहपुर के यादववँश की राज्यावधि सँ० ५१७-६७७ वि० (460 - 620 ई०) मानलेने पर उनके राज्य का अस्तित्व स्कन्दगुप्त के राज्यकाल से लेकर बुधगुप्त के राज्यकाल तक, तथा सर्ववर्मन् मौखरि के राज्यकाल से लेकर श्रीहर्ष के राज्यकाल के पूर्वार्द्ध तक माननापड़ेगा।

गुप्तकाल तक स्वतन्त्र नरेशों की उपाधि महाराजाधिराज परम भट्टारक बनचुकीथी। महाराजा विरुद का प्रयोग महाराजाधिराजों के अधीनस्थ नरेश करतेथे। उनदिनों नरेश, नृपति – जैसे विरुद सीमित शक्ति और सीमित शासितप्रदेशवाले राजा कियाकरतेथे। ऐसे नृपति स्वतन्त्र राजा भी होसकतेथे और किसी महाराजा या महाराजाधिराज के करद भी।

१- शान्तिपर्व, ३१८।२९ २- आदिपर्व, २१७।१८
३- जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सो०, जुलाई १९५४, पृ० ९८

अस्तु गुप्त, मौखरि और श्रीहर्ष के राज्यकाल में सैंहपुर के यादववँश के राजाओं का नृपति आदि विरुद धारण करना असँगत नहीं है।

प्रशस्ति में गुप्त, मौखरि या हर्ष के राजवँशों का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः यादववँश के अपने शक्तिशाली पड़ोसी राजवँशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। यादवनरेश उन्हें उपायनादि से सन्तुष्ट रखतेथे। जिससे उनका अपनी भूमि पर ग्यारह पीढ़ियों तक क्रमागत शासन रहसका।

राजर्षि— प्रशस्ति में सेनवर्मन् को राजर्षि कहागयाहै। सम्भवतः उसका शासित-प्रदेश सीमित होनेपर भी वह अपने आदर्श चरित्र और त्याग - तपस्यापूर्ण जीवन केलिए विश्रुत था।

श्री सेनवर्मन् के वंशज

प्रशस्ति में न तो किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का विस्तृत वर्णन मिलताहै और न सेनवर्मन् तथा उसके वँशजों के शासितप्रदेश की सीमाओं का उल्लेख।

प्रशस्ति में नरेशों की जो विशेषताएँ बतलाईगईहैं, उनका सम्बन्ध प्रायः उनके नामों की सार्थक व्याख्या तक सीमित है।

दूसरा नरेश आर्यवर्मन् अपने श्रेष्ठ चरित्र (आर्यव्रतता) के कारण सदाचारी व्यक्तियों में अग्रगण्य था [१]।

तीसरा नरेश श्री देववर्मन् (देवताओं के समान) भयभीत को अभय, दरिद्र को वैभव, अपने कुल को विजय, तथा शत्रुओं को विध्वँस प्रदानकरनेवाला था [२]।

चौथे नरेश श्री प्रदीप्तिवर्मन् के क्रोध की प्रज्ज्वलित अग्नि में उसके अभिमानी शत्रु शलभों के समान भस्म होतेथे [३]।

पांचवां नरेश श्री ईश्वरवर्मन् भव (=ईश्वर=शिव) के समान धनराशि के वितरण में ही ऐश्वर्य (ईश्वर का कृत्य तथा सम्पदा) समझताथा [४], धनराशि के सँग्रह में नहीं [५]।

छटा नरेश अपार सम्पत्ति (प्रवृद्धश्रीः) वाला श्री वृद्धिवर्मन् नेत्रों (और मित्रों) केलिए चन्द्रमा के समान तापहारी और सुखदायी था [६]।

१- लाखामण्डल - प्रशस्ति, श्लोक, ३ २- पूर्वोक्त, श्लोक, ४

३- पूर्वोक्त, श्लोक, ५

४- द्र० छाबड़ा द्वारा संशोधित पाठ, जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, जु० १९४४, पृ० ८०

५- लाखामण्डल - प्रशस्ति, श्लोक, ६ ६- पूर्वोक्त, श्लोक, ७

श्री सिंहवर्मन्

सातवां नरेश श्री सिंहवर्मन् राजाओं में सिंह के समान था। उसने अपनी भुजाओं से (शत्रुओं का दमन करके) शौर्यवान् का, तथा (दरिद्रों को दान देकर) दानशील का विरुद प्राप्त कियाथा [1]।

सम्भवतः यमुना और गिरिनदी के सँगम पर सैंहपुर नगर और राजधानी की स्थापना इसी नरेश ने कीथी। सुघगांव से १६ मील उत्तर की ओर, तथा कालसी से ८ मील दक्षिण की ओर यमुना के दाहिने तट पर यमुना और गिरिनदी के सँगम पर आज भी सिंहपुरगांव मिलताहै। यहां प्राचीन बस्तियों के अवशेषों से, तथा सँगम पर उसकी महत्वपूर्ण स्थिति से उसकी प्राचीन महत्ता पर प्रकाश पड़ताहै।

श्री सिंहवर्मन् के राज्यकाल के सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः उसकी कर्तृपुर के नरेश श्री गुह से झड़प हुईथी।

श्री सिंहवर्मन् के वंशज

आठवां नरेश श्री जल (वर्मन्) अपने जनों के ताप को दूर करनेवाला, तथा कलि - रूपी दावाग्नि को जलवर्षा के समान शान्त करनेवाला था [2]।

नौवें नरेश श्री यज्ञवर्मन् के यज्ञों के धुएँ से उत्पन्न बादलों को वास्तविक बादल समझकर मोर ध्वनि करनेलगतेथे [3]।

'घङ्घल' विरुदधारी नरेश

अन्तिम तीन नरेशों के साथ क्रमशः घङ्घल, महाघङ्घल और रिपुघङ्घल विरुद मिलतेहैं। घङ्घल शब्द संस्कृत के कोषग्रन्थों में नहीं मिलता। भूलर का अनुमान है कि यह देशी (=देशज=लोकभाषा में प्रचलित अज्ञात व्युत्पत्तिवाला) शब्द है, जिसका अर्थ विजयी होताहै। तथा जो घनघोल शब्द से सम्बन्धित है [४-५]।

दसवां नरेश अचलवर्मन् अपने सतयुगी आचरण की दृढ़ता में तथा धीरतादि गुणों

१- लाखामंडल - प्रशस्ति, श्लोक, ८ २- पूर्वोक्त, श्लोक ९ ३- पूर्वोक्त, श्लोक, १०

४-'घङ्घल is not found in dictionaries. It means the conquerer, very likely a देशी word, allied to घनघोल।'—एपिग्राफिया इंडिका, जि० १, पृ० १५, टि०१८

५- मिलाइए, गढ़वाली बोली के शब्द — खङ्घल, खङ्गल, खङ्खल, खङ्खल्याट, खङ्खलनाथ, घणशाली आदि

में अचल था। वह युद्ध में अत्यन्त प्रचण्ड तथा रणहस्तियों से भी भिड़नेवाला होनेके कारण 'घँघल' नाम से प्रसिद्ध था [१]।

ग्यारहवां नरेश दिवाकर के समान तेजस्वी राजा दिवाकरवर्मन् हुआ, जो शत्रुओं के अगणित रणहस्तियों के समूह का मर्दनकरके 'महाघँघल भड़' कहलाया [२]।

श्री भाष्करवर्मन्

दिवाकरवर्मन् का छोटा भ्राता भाष्करवर्मन् बारहवां नरेश हुआ। जो सदा शत्रुओं पर विजय प्राप्तकरताथा और 'रिपुघँघल' कहलाताथा [३]। उसने अपनी भुजाओं से नया राज्य प्राप्तकियाथा। और शत्रुओं का राज्य नष्टकियाथा। उसके हाथ सदा दान देने और शत्रुओं पर प्रहारकरने में लगेरहतेथे [४]।

घोर दुर्गम पर्वतों पर पैरों से चढ़कर उसने कुछ पर्वतीय दुर्गों पर आक्रमण करके उनके नरेशों को पराजित कियाथा [५]। सम्भवत: उसने टोंस की उत्तरी सहायकों, रूपीन् - सूपीन् के स्रोतप्रदेश के नरेश से, अथवा समकालीन टिहरी - गढ़वाल के किसी स्थानीय शासक से कुछ गढियों को छीनलियाथा।

श्री भाष्करवर्मन् की एकमात्र पत्नी रानी जयावली श्री कपिलवर्द्धन की पुत्री थी। उसने देवी (रानी) का पद अपने गुणों से प्राप्त कियाथा। उसे भाष्करवर्मन् प्राणों के समान प्रिय समझताथा [६]। कपिलवर्द्धन के साथ राजा आदि कोई विशेषण न होनेसे भूलर का अनुमान है कि कपिलवर्द्धन एक सामान्य वँश में उत्पन्न राजपूत (क्षत्रिय) था [७]।

ईश्वरा

श्री भाष्करवर्मन् और जयावली की पुत्री ईश्वरा जालन्धरनरेश के पुत्र चन्द्रगुप्त से ब्याही गईथी [९]। वह सावित्री के समान (पतिव्रता) थी। जब हस्ती की पीठ पर (चढ़ते समय) उसके पति का स्वर्गवास होगया तो उसकी सद्गति केलिए ईश्वरा ने भव (शिव) के धर्मस्थान (मन्दिर) का निर्माण करवायाथा [१०]।

ईश्वरा के स्वसुर जालन्धरनरेश और उसके पुत्र चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में किसी ऐतिहासिक या अन्य स्रोत से अभीतक कोई सूचना नहीं मिलीहै। चन्द्रगुप्त स्वयँ नरेश न

२- लाखामंडल - प्रशस्ति, श्लोक, ११ - १२
३- पूर्वोक्त, श्लोक, १३ - १४
४- पूर्वोक्त, श्लोक, १५
५- पूर्वोक्त, श्लोक, १६
६- पूर्वोक्त, श्लोक, १७
७- पूर्वोक्त, श्लोक, १८
८- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० ११
९- लाखामंडल—प्रशस्ति, श्लोक १९
१०- पूर्वोक्त, श्लोक, २०

था। राजकुमार अवस्था में ही उसकी मृत्यु होगईथी। यह कहना कठिन है कि वह जालन्धरनरेश का ज्येष्ठपुत्र था या नहीं [1]।

अतिसुन्दर मन्दिर का निर्माण करके, उसमें सावधानी से अँकित प्रशस्ति लगाकर अन्त में ईश्वरा ने विश्व के सर्ग, स्थिति और लय के हेतु ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम से अपने तीन स्वरूप धारण करनेवाले भव [2] से याचना कीहै :—

जबतक धरती, पर्वत और समुद्र रहें, जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहें, तबतक श्री चन्द्रगुप्त का यह कीर्तिस्थान रहे [3]।

ईश्वरा ने अपने वैधव्य के दिन अपने मायके सेंहपुर में ही बिताए। उसकी सन्तान का उल्लेख नहीं मिलता। प्रशस्ति में उसके सती होने का उल्लेख नहीं है। उस सावित्री के समान साध्वी ने अपने पितृकुल और पतिकुल, दोनों का उद्धार किया। यदि उसकी यह प्रशस्ति न होती तो उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग का लगभग दो शतियों का इतिहास तिमिरावृत्त ही रहता।

वसुदेव भट्ट

ईश्वरा कितनी शिक्षिता थी, यह जानने के साधन उपलब्ध नहीं हैं। कवियों, मूर्तिकारों और वास्तुकारों को उसका आश्रय उपलब्ध था। लाखामण्डल की अतिसुन्दर प्रशस्ति की रचना भट्ट वासुदेव नामक कवि ने कीथी। वह सँस्कृत पद्यों में प्रशस्ति रचने में अति कुशल था। सारी प्रशस्ति शुद्ध सँस्कृत में है। उपमा, श्लेष, अनुप्रास आदि अलँकारों के प्रयोग से कवि ने इस २३ श्लोकों की रचना को आकर्षक काव्य का स्वरूप देदियाहै।

सारी प्रशस्ति में सर्वत्र नरेशों के केवल आदर्श गुणों का उल्लेख कियागयाहै। जयावली और ईश्वरा का उल्लेख करतेहुए कवि ने बड़े सँयत शब्दों का प्रयोग कियाहै। कहीं उनके सौन्दर्य आदि की प्रशँसा नहीं है। जयावली ने अपने गुणों से ही अपने लिए 'देवी' पद अर्जित कियाथा।

ईश्वरा को सावित्री के समान साध्वी कहकर, केवल दो शब्दों (साध्वी सावित्रीव) में ही कवि ने यौवन के आरम्भ में ही पति की मृत्यु होजाने पर पितृगृह में, पति की स्मृति में, वैधव्य की लम्बी आयु को बितानेवाली हिन्दू साध्वीनारी का आदर्श चित्र उपस्थित कियाहै।

मन्दिर का निर्माण करनेवाली ईश्वरा के हृदय में अपने लिए कोई कामना न थी। उसकी एक - मात्र कामना थी – उसके पति की अमरकीर्ति। अपना सर्वस्व, अपनी समस्त

१- द्र० प्रिंसेप – एस्येज, जि० २, यूसफुल टेबिल्स, पृ० २४५, टि० २; एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० ११   २- लाखामंडल - प्रशस्ति, श्लोक १

३- 'यावन्महीमहीधरजलनिधयो यावदिन्दुरवितारा:।
तावदिदमस्तु कीर्तिस्थानं श्रीचन्द्रगुप्तस्य ।।' – श्लोक, २१

कामनाएँ, अपना अस्तित्व वह अपने पति को अर्पित करचुकीथी ।

ईश्वरा तथा कवि के साथ प्रशस्ति-पाठक भी अस्रु बहातेहुए भव से विनय करनेलगताहै :-

'यावन्महीमहीधरजलनिधयो यावदिन्दुरवितारा: ।
तावदिदमस्तु कीर्तिस्थानं श्रीचन्द्रगुप्तस्य ।।'

वसुदेव भट्ट की अन्य किसी रचना का अबतक पता नहीं चलाहै। किन्तु लाखामण्डल-प्रशस्ति, उसकी प्रौढ रचना प्रतीत होतीहै । अवश्य ही उत्तराखण्ड के इस कवि की और भी रचनाएँ रहीहोंगी, जो भूर्जपत्रादि पर लिखी होनेसे, शिला पर अँकित इस रचना के समान स्थायी न होसकीं ।

कवि ने प्रशस्ति के अन्त में अपने पूर्वजों का भी उल्लेख कियाहै । उसके दादा का नाम भट्ट क्षेमशिव था । भट्ट क्षेमशिव के पुत्र भट्टस्कन्द के पुनीत घर में जन्म लेकर उस कवि (वसुदेव भट्ट) ने अपनेको धन्य समझाथा [1] ।

प्रशस्ति में कवि ने अपनेको अयोध्येश: कहाहै । इससे एडवर्ड हाल ने अनुमान लगायाहै कि वसुदेव भट्ट अयोध्या का राजा था [2] । इन दिनों अयोध्या पर मौखरि - नरेशों का अधिकार था । अयोध्या ही नहीं उत्तरभारत के किसी भी राजवँश के नरेशों के नाम के साथ भट्ट शब्द जुड़ा नहीं मिलता ।

भट्ट शब्द ब्राह्मणों के नामों के साथ जुड़ा मिलताहै। अस्तु अयोध्येश: का अर्थ अयोध्यावासी ब्राह्मण लेनाचाहिए । हिमाचलप्रदेश - कुल्लू में अभीतक अयोध्यावासी ब्राह्मण - परिवार मिलतेहै जो कुल्लू और सांगरी के राजाओं के कुलपुरोहित हैं। वे अपने मूलपुरुष को अयोध्या से आयाहुआ मानतेहैं। अयोध्या में अब भी उनके जातिभाई रहतेहैं [3] ।

इससे अनुमान लगताहै कि वसुदेव भट्ट या उसके पूर्वज अयोध्या से आकर सैंहपुर या उसके पास - पड़ोस में बसगएथे । वसुदेव भट्ट तथा उसके पूर्वजों के सम्बन्ध में अन्य किसी स्रोत से कोई सूचना नहीं मिलती । २७ वर्ष पूर्व सँ० १९९९ वि० (1942 ई०) में सांगरी के राजा रघुवीरसिंह और उनके अयोध्यावासी पुरोहित ने मुझे बतलायाथा कि अयोध्यावासियों के पास कुल्लू में अनेक प्राचीन हस्तलिखित सँस्कृतग्रन्थ हैं। किन्तु उन दिनों मुझे उनकी छानबीन करने का अवसर न मिलसका ।

१- 'भट्ट क्षेमशिवात्मज भट्टस्कन्दादवाप्तशुभजन्मा ।
भट्टवसुदेव एनां प्रशस्तिमकरोदयोध्येश: ।।' — श्लोक, २२

२- जौ० रो० एशियाटिक सो० आव ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड, जि० २० पृ० ४५४

३- सीताराम — अयोध्या का इतिहास, पृ०

ईश्वरनाग

प्रशस्ति को नागदत्त के पुत्र सूत्रधार ईश्वरनाग ने शिला के ऊपर उत्कीर्ण कियाथा [१]। ईश्वरनाग शिलालेखों को शुद्धता तथा स्वच्छता से उत्कीर्णकरने में अतिकुशल था। उसने बड़ी सावधानी से प्रशस्ति उत्कीर्ण कीहै [२]। विभिन्न अक्षरों की बनावट प्रायः एक - जैसी मिलतीहै। अबतक सारी प्रशस्ति प्रायः सुरक्षित चलीआरहीहै।

सूत्रधार शिला पर घुटाई करके उसपर सूत्र (सूत की डोरी) बांधकर पँक्तियों केलिए रेखा खींचतेथे। फिर उस शिला पर एक-एक पँक्ति को, सावधानी से, गेरु से लिखतेथे। और स्वयँ या किसी अन्य शिल्पकार द्वारा छेनी से उन पंक्तियों की खुदाई करतेथे। कई अभिलेख अशिक्षित या अल्पशिक्षित अँकेताओं द्वारा खुदे मिलतेहैं। अभिलेखों की शुद्धता सूत्रधार की योग्यता पर निर्भर करतीथी।

ईश्वरनाग शिक्षित सूत्रधार था। सारे अभिलेख में केवल व और ब के अँकन में असावधानी मिलतीहै [३]। अभिलेख के शेष शब्द सर्वथा शुद्ध हैं [४]। व और ब के अँकन में असावधानी अनेक प्राचीन अभिलेखों में मिलतीहै। आज के समान उनदिनों भी उत्तरभारत में व को ब कहने की प्रथा थी [५]।

अभिलेख में उसे रोदीतक का निवासी कहागयाहै। भूलर ने रोदीतक को रोहीतक (रोहतक) मानाहै। रोहतक केलिए रोदीतक का प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलता।

अभिलेख में अन्य नाम— लाखामण्डल - प्रशस्ति की शिला पर ऊपर की ओर श्री हट्टाधिश्वरेभ्यः लिखाहै। इसकी लिपि प्रशस्ति की लिपि की तिथि से परवर्ती है [६]।

दहिनी ओर प्रशस्ति की लिपि में लिखाहै – नारतनस्य [७]।

कोने की ओर लिखाहै – (रा) जा श्रीसाधुकेन [८]।

नारतन और राजा श्रीसाधुक लिपि के आधार पर ईश्वरा के समकालीन थे। उनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

सामाजिक मान्यताएं— यादववँश के राज्यकाल में सामाजिक मान्यताओं का पता लगाने का कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं है। यमुनाघाटी में, उनदिनों, कम से कम उच्च परिवारों की नारियां सती साध्वी का जीवन व्यतीत करतीथीं। विधवा होजाने पर ईश्वरा ने अपना सारा जीवन साध्वी साविन्नी के समान बितायाथा। आज यमुनाघाटी,

---

१- लाखामण्डल - प्रशस्ति, श्लोक, २३

२- ' The inscription seems to be incised with great skill and neatness, and is in an almost perfect state of preservation. '

— एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १, पृ० १०

३- ८- एपिग्राफिया इंडिका, जि० १, पृ० १०

जौनसार - जौनपुर में नारियों को पति बदलने की जो स्वतन्त्रता उपलब्ध है, वह सम्भवत उस युग के सम्भ्रान्त परिवारों में नहीं थी।

शील स्वभाव को नारी का सर्वोत्तम गुण समझाजाताथा। जयावली का जन्म साधारण क्षत्रियपरिवार में हुआथा। उसके गुणों के कारण उसे सैंहपुर के राजपरिवार में देवी अर्थात् रानी का पद प्राप्तहुआथा।

यद्यपि समाज की ओर से अनेक पत्नियां रखने पर कोई प्रतिबन्ध न था, फिर भी राजा भाष्करवर्मन् एकपत्नी व्रतवाला था। मृत व्यक्ति के नाम पर उसकी सद्गति और कीर्ति केलिए मन्दिर आदि बनाने की प्रथा थी।

धार्मिक मान्यताएं— शैवमत का व्यापक प्रचार था। मान्यता थी कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव, तीनों भव (शिव) के रूप हैं, जो उन्होंने क्रमशः विश्व की उत्पत्ति, पालन और सँहार केलिए धारणकिएहैं [१]।

लाखामण्डल की दोनों प्रशस्तियों में कहीं बौद्धमत के अस्तित्व का सँकेत नहीं मिलता। इससे विदित होताहै कि सातवीं शती ईसवी से पहले ही इस जनपद के अधिकांश भागों में बौद्धमत के अनुयायियों की सँख्या बहुत घटगईथी।

भयभीत को अभय देना, शरणागत की रक्षा करना तथा दरिद्र को दानदेना प्रशँसनीय समझाजाताथा [२]। मान्यता थी कि धन का भले कार्य में व्यय करने से ऐश्वर्य में वृद्धि होतीहै [३]। यज्ञ - याग करना राजाओं के कर्तव्यों में गिनाजाताथा [४]। जनसाधारण का परलोक पर विश्वास था। सत्कर्मों से सदगति मिलतीहै, ऐसी सार्वभौम मान्यता थी [५]।

यहां की प्राचीन प्रतिमाओं से, जिन्हें ईश्वरा के समकालीन मानाजाताहै [६], हिन्दु धर्म के स्मार्त सम्प्रदाय के अनेक देवी - देवताओं की मान्यता की सूचना मिलतीहै। अभीतक लाखामण्डल या उसके पास-पड़ोस में कोई ऐसी बौद्ध प्रतिमा, अभिलेख या अन्य पुरातात्विक सामग्री नहीं मिलीहै, जिससे इस प्रदेश में तीसरी शती ईसवी के पश्चात् बौद्धमत के व्यापक प्रसार की पुष्टि होसके।

शैवमत— शिवजी के विभिन्न रूपों तथा शिव - उमा परिवार के देवी - देवताओं की पूजा का व्यापक प्रचार था। शिवजी की लिङ्गरूप में पूजा भी साथ ही सुप्रचलित थी। लाखेश्वरमन्दिर में मुख्य प्रतिमा शिवलिङ्ग है, जिसकी पूजा आजतक चलीआरहीहै [७]। यहां प्राङ्गण में उत्तर की ओर एक विशाल शिवलिङ्ग है, जिसकी गोलाई ६ फीट ८½ इंच है और जो योनि से दो फीट ऊँचा है। अनुमान कियाजाताहै कि वर्तमान स्थान पर इसकी स्थापना ईश्वरा के जीवनकाल के पश्चात् हुईथी [८]।

१- लाखामंडल - प्रशस्ति, श्लोक, १ २- पूर्वोक्त, श्लोक, ४ ३- पूर्वोक्त, श्लोक, ६

४- पूर्वोक्त, श्लोक, १० ५- पूर्वोक्त, श्लोक, २०

६- वत्स तथा अग्रवाल — लेख, जो० यू० पी० हिस्टौरिकल सो० जुलाई १९४४, पृ० ८७

७- वत्स तथा अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ८८ ८- वत्स तथा अग्रवाल — पूर्वोक्त, ८९

शिवमन्दिरों के बाहर नन्दी स्थापित करने की परम्परा चलपड़ीथी। लाखामण्डल में अतिसुन्दर कालीशिला से बने दो नन्दी हैं, जिनमेंसे एक सवा चार फीट और दूसरा सवा तीन फीट ऊँचा है। मानवाकार शिव की प्रतिमाओं के साथ प्रायः उमा, दुर्गा या गौरी की प्रतिमा पूजीजातीथी।

नन्दी सहित शिव की पूजा भी ईश्वरा के जीवनकाल में प्रचलित थी, जैसा लाखामण्डल में मिली एक प्रतिमा से विदित होताहै [१]। इस जनपद के कुणिन्दनरेश छत्रेश्वर की मुद्राओं पर त्रिशूल और परशुधारी खड़े शिव की आकृति अँकित है। कुशाणमुद्राओं पर खड़े नन्दी के आगे त्रिशूलधारी शिव की आकृति मिलतीहै।

लाखेश्वरमन्दिर के भीतर पधराई लकुलीश शिव की मूर्ति को भी उसी युग की मानाजाताहै [२]। विदित होताहै कि लकुलीश शैवसम्प्रदाय का प्रचार उत्तराखण्ड में उन्हीं दिनों होनेलगाथा, जिनदिनों यह सम्प्रदाय सौराष्ट्र तथा राजस्थान में फैलरहाथा।

ईश्वरा के जीवनकाल में, वास्तव में कुशाणकाल से ही, उत्तराखण्ड में जन-साधारण की सर्वाधिक श्रद्धा शैवमत की ओर थी। लाखामण्डल में सौ से अधिक प्रतिमाएं शैवसम्प्रदाय से सम्बधित हैं। पुरातत्वविभाग द्वारा बनाएगए छप्पर में ७० प्रतिमाएं थीं, जिनमेंसे प्रायः सभी शैवमत से सम्बन्धित थीं [३]।

शिव-पार्वती के सम्बन्ध में अनेक मान्यताओं का तबतक व्यापक प्रचार होचुकाथा। लाखामण्डल की एक प्रतिमा में शिवजी पार्वती के साथ कैलासपर्वत पर बैठेहैं [४]। एक दूसरी प्रतिमा में पार्वती तपस्या कररहीहै [५]। यहां शिव-पार्वती तथा हर-गौरी की अनेक प्रतिमाएं हैं, जिन्हें ईश्वरा के समकालीन मानाजाताहै। ये प्रतिमाएँ उस युग में जगत-पितरों (पार्वती-परमेश्वर) की एकसाथ पूजा की सूचक हैं। रघुवँश से विदित होताहै कि जगत-पितरों की पूजा गुप्तकाल में ही सर्वाधिक लोकप्रिय बनचुकीथी [६]।

जगत-पितरों की प्रतिमाओं में शिव को द्विभुज या चतुर्भुज बनायाजाताथा, किन्तु गौरी मानवी के समान द्विभुज होतीथी। कालीमठ की प्रसिद्ध हर-गौरी-प्रतिमा में शिव चतुर्भुज हैं, किन्तु गौरी द्विभुज है [७]। लाखामण्डल में ३½ फीट ऊँची शिव-पार्वती-प्रतिमा में नन्दी के आगे चतुर्भुज शिव द्विभुज पार्वती के साथ खड़े हैं। नन्दी बड़ी श्रद्धा-भक्ति से शिर मोड़कर जगत-पितरों को टकटकी लगाकर देखरहाहै। शिवजी अपने उपरले दो हाथों से बीणा बजारहेहैं। उनके निचले दहिने हाथ पर त्रिशूल है तथा निचला बांया हाथ पार्वती के बांए स्तन को छूताहुआ दिखायागयाहै [८]।

पार्वती अपने हाथ पर एक पुष्पमाला लिएहै, जो उनकी जँघा तक पहुँचीहुईहै।

---

१. वत्स तथा अग्रवाल — लेख, जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सो० जुलाई १९४४, पृ० ८८

२. वत्स तथा अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ८९

३-४. वत्स तथा अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ९०

५. वत्स तथा अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ८८

६. रघुवंश, १।१

७. राहुल — गढ़वाल, पृ० ४४१-४२

८. वत्स तथा अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ९०

ईश्वरा द्वारा निर्मित भवमन्दिर (लाखेश्वर मन्दिर) पर जुड़ा अन्तराल पीछे की रचना है [1]। अन्तराल में वत्स तथा अग्रवाल को चौबीस वर्ष पूर्व सप्तमातृकाओं की निम्न प्रतिमाएँ मिलीथीं [2] :—

पूर्ण विकसित कमल पर आसीन ब्राह्मी,
नन्दी पर आसीन माहेश्वरी,
मानवाकृति वाले एवँ दोनों पँख फैलाएहुए गरुड़ पर आसीन वैष्णवी,
मयूर पर आसीन कौमारी,
चित् लेटे मानव पर आसीन बाराही,
हस्ती पर आसीन, हाथ में वज्र लिए इन्द्राणी,
प्रेत पर आसीन चामुण्डा ।

इन प्रतिमाओं मेंसे कुछमें ऐसी निराली विशेषताएँ हैं, जो पीछे की प्रतिमाओं में नहीं मिलतीं ।

ब्रह्माणी की परवर्ती प्रतिमाओं में उसे हँस पर आसीन दिखायागयाहै। किन्तु यहां वह पूर्ण विकसित कमल पर आसीन है ।

तारा की उपासना — उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग, अहोगङ्ग - भाबरप्रदेश में, यत्र - तत्र बौद्धमत के कतिपय केन्द्रों का अस्तित्व इन दिनों भी बनाहुआथा। पाण्डुवाला की खुदाई में मिले पात्रों से तथा मोरध्वज में प्राप्त बुद्ध की सैंकड़ों लघुमृण्मूर्तियों से इसकी पुष्टि होतीहै ।

इस युग में तारा की विशाल प्रतिमाएँ बननेलगीथीं। तथा अहोगङ्ग के बौद्ध-साधनाकेन्द्रों में रहस्यपूर्ण उपासना प्रचलित होगईथी ।

संशोधन

पृष्ट ३६७ पर पँक्ति १६ से आगे जोड़िए :—
नरेशों के नामान्त में मिलनेवाले भट शब्द का अर्थ है, भड़ या वीर ।

१- २- वत्स तथा अग्रवाल — लेख, यू० पी० हिस्टोरिकल सो० जुलाई १९५४, पृ० ८७

मौखरि-राज्य में

राज्यस्थापना— हूण - आक्रमणों से, उत्तरभारत में, गङ्गाजी से पश्चिम की ओर के जनपदों पर गुप्तसम्राटों की सत्ता सर्वथा शिथिल होगईथी। इससे लाभ उठाकर थानेश्वर के निकटवर्ती प्रदेश में पुष्यभूति के वँशजों ने अपनी शक्ति बढ़ाली। यमुना से पूर्व की ओर मध्यदेश (वर्तमान उत्तरप्रदेश) के बड़े भाग पर मुखर के वँशजों ने अधिकार जमालिया। उन्होंने कान्यकुब्ज (कन्नौज) को अपनी राजधानी बनाया।

इस वँश के प्रथम तीन नरेश हरिवर्मन्, आदित्यवर्मन् तथा ईश्वरवर्मन् सम्भवतः गुप्तनरेशों के सामन्त थे। गुप्तवँशीय नरेशों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके उन्होंने अपनी स्थिति और प्रतिष्ठा बढ़ाली।

ईशानवर्मन्

ईश्वरवर्मन् के पुत्र ईशानवर्मन ने अपनी सैनिकशक्ति में बड़ी वृद्धि की। उसके राज्य पर हूणों का आक्रमण हुआथा, जिसे उसने अपने रणहस्तियों की सहायता से विफल करदिया [२]। उसने गुप्तनरेशों से सम्बन्धविच्छेद करके महाराजाधिराज का विरुद धारण करलिया [३]। हाड़ा - अभिलेख से विदित होताहै कि उसकी पड़ोसी जनपदों के नरेशों से भिड़न्त हुईथी। किन्तु उसे अन्त में मगध के गुप्तनरेश कुमारगुप्त से पराजित होना पड़ाथा।

ईशानवर्मन् अपने हाड़ा - अलिलेख में आन्ध्र, सूलिक तथा गौड़नरेशों तक को

१- चटर्जी – हर्षवर्द्धन, पृ० १२

२- 'यो मौखरेः समितिषूद्धतहूणसैन्यावल्गद् घटा विघटयन् नुरुवारणानाम्'।

— आदित्यसेन का अफसाड़-अभिलेख, पं० ८ - ९

३- चटर्जी – हर्षवर्द्धन, पृ० १३

पराजित करने की घोषणा करताहै [१]। शूलिक की पहिचान चालुक्यों से कीजातीहै [२]। कुछ विद्वान इस जाति को ब्रह्मपुर और चम्बा के राजवँशों से सम्बन्धित मानतेहैं [३]। इस सम्बन्ध में आगे विचार कियाजाएगा।

आन्ध्र और गौड़ तक के नरेशों से भिड़नेवाले तथा अफसाड़ - अभिलेख के अनुसार समुद्र के समान अपार सेनावाले [४] ईशानवर्मन् ने अपने राज्य की उत्तरी सीमा पर स्थित कर्तृपुर और यामुन जनपदों पर अपने प्रभुत्व का विस्तार अवश्य कियाहोगा [५]। गुह या उसके उत्तराधिकारी ने ईशानवर्मन् की अधीनता स्वीकार कीथी या नहीं, यह अज्ञात है।

सर्ववर्मन्

राज्यविस्तार — ईशानवर्मन् के पश्चात् उसके पुत्र सर्ववर्मन् को मौखरि - सिंहासन मिला। कुमारगुप्त ने ईशानवर्मन् को परास्त कियाथा, सर्ववर्मन् ने इसका बदला कुमारगुप्त के पुत्र दामोदरगुप्त का युद्ध में वधकरके लिया [६]। विजयलाभ करने के पश्चात् उसने मगध का कुछ भाग अपने राज्य में मिलादिया [७]।

सर्ववर्मन् अपने पिता से भी अधिक पराक्रमी था। असीरगढ़ में प्राप्त राज्यमुद्रा के अनुसार उसकी उपाधि महाराजाधिराज थी [८]। गोपेश्वर के निकट सिरोली के शिलालेख में भी उसे महाराजाधिराज कहागयाहै [९]।

उत्तराखण्ड पर अधिकार— सिरोली के पूर्वोक्त शिलालेख से विदित होताहै कि महाराजाधिराज सर्ववर्मन् के राज्यकाल में, उसके स्थानीय विषयपति नरवर्मन् ने वहां एक बावड़ी (नौले) का निर्माण कियाथा [१]।

लिपि के आधार पर शिलालेख को छटी - सातवीं शती ईसवी का मानागयाहै [२]। सर्ववर्मन् का राज्यकाल सँ० ६३३ - ६३७ वि० (576 - 580 ई०) निर्धारित किया गयाहै [३]। इस जनपद के निकट शासनकरनेवाले छटी - सातवीं शती के किसी अन्य महाराजाधिराज सर्ववर्मन् का पता नहीं मिलता। इसलिए सिरोली - अभिलेख के महा - राजाधिराज सर्ववर्मन् को कान्यकुब्ज का मौखरिनरेश मानसकतेहैं।

१- 'जित्वान्ध्राधिपतिं सहस्रगणितत्रेधाक्षरदवारणम्,
व्यावल्गन्नियुतातिसंख्यतुरगान् भङ्क्त्वा रणे शूलिकान्॥
कृत्वा चायतिमौचित स्थलभुवो गौडान्समुद्राश्रयान्,
अध्यासिष्टनतक्षितीशचरणः सिंहासनं यो जिती॥' — हाड़ा - अभिलेख, श्लोक, १३

२- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, प्रथम खंड, पृ० १४६

३- गूज — लेख, जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सो० जुलाई १९५३, पृ० ८२

४- 'भीमः श्रीशानवर्म्मक्षितिपतिशशिनः सैन्यदुग्धोद् सिन्धुः' — अफसाड़ - अभिलेख, श्लोक ८

५- राहुल — गढ़वाल, पृ० ६७

६- त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० ३४

७-८- चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ० १६

९-११- डा० गाई का पत्र, दिनांक, २७।१२।६०

इस शिलालेख से विदित होताहै गुह या उसके उत्तराधिकारी के समय सर्ववर्मन् ने कर्तृपुरजनपद पर अधिकार करके वहां अपने राज्याधिकारी को नियुक्त करदियाथा।

हूण - आक्रमण— विद्वानों का अनुमान है कि ईशानवर्मन् और उसके पुत्र सर्ववर्मन्, दोनों के राज्यकाल में हूणों ने मौखरिसाम्राज्य पर आक्रमण कियाथा [१]।

ईशानवर्मन् ने हूणयुद्ध में अपने रणहस्तियों के विशालदल का प्रयोग करके शत्रुओं को पराजित कियाथा [३]। इससे अनुमान लगताहै कि हूणों ने यह आक्रमण पञ्जाब के उत्तरी मैदान से होकर कियाथा।

इस पराजय से सम्भवतः हूणों को विशेष हानि न हुईथी। उन्होंने ईशानवर्मन् के पुत्र सर्ववर्मन् के राज्यकाल में पुनः मौखरिराज्य की पश्चिमी सीमा पर आक्रमण करदिया। इस युद्ध में सर्ववर्मन् ने हूणों को भलीप्रकार पराजित करदिया। उनका पीछा करतेहुए उसकी सेना हिमाचलप्रदेश में सतलुजनदी के तट तक पहुँचीथी।

हिमाचलप्रदेश में सतलुज के तट पर स्थित नृमुण्ड नामक स्थान से प्राप्त एक ताम्रशासन से विदित होताहै कि महाराजा सर्ववर्मन् ने नृमुण्ड के कपालेश्वरमन्दिर में वलि, चरु, सत्र, स्रग तथा धूपदीपादि से उपासना - हेतु कुछ भूमि दान में दीथी [४]।

अरवमुथन और चटर्जी ने इस ताम्रशासन के सर्ववर्मन् को मौखरिनरेश मानाहै [५]। त्रिपाठी ने इस एकीकरण का खण्डन करतेहुए दो तर्क दिएहैं [६] :—

(१) नृमुण्ड - शासन में सर्ववर्मन् की उपाधि केवल महाराजा है।

(२) मौखरिराज्य और नृमुण्ड के बीच स्थाण्वीश्वर में प्रभाकरवर्द्धन का राज्य था। उसे सर्ववर्मन् की सेना तब ही पार करसकतीथी, जब स्थाण्वीश्वरराज्य पर मौखरियों की प्रभुता होती। किन्तु हर्षचरित से विदित होताहै कि स्थाण्वीश्वरनरेश सर्वथा स्वतन्त्र नरेश था।

त्रिपाठी के तर्कों का समाधान करतेहुए चटर्जी ने लिखाहै [७] :—

(१) पहला तर्क विशेष महत्व नहीं रखता।

(२) दूसरे तर्क के सम्बन्ध में चटर्जी का कहना है कि सर्ववर्मन् का समकालीन स्थाण्वीश्वरनरेश आदित्यवर्मन् एक स्थानिक शासक था, जो सम्भवतः मौखरियों के अधीन था। प्रभाकरवर्धन की स्वतन्त्र सत्ता मौखरियों ने किसी अज्ञात युद्ध के पश्चात् स्वीकार

१- क्लासिकल एज, पृ० ७०

२- क्लासिकल एज, पृ० ३९

३- आदित्यसेन का अफसाड़ - शिलालेख, पंक्ति ८ - ९

४- 'भगवतस्त्रिपुरान्तकस्य लोकालोकेश्वरस्य प्रणतानुकम्पिनः सर्वदुःखक्षयकरस्य कपालेश्वरे ... ... कपालेश्वरे - बलि - चरु - सत्र - स्रग् - धूपदीपदानाय . . . .' नृमुण्ड - ताम्रशासन, का० इन्सक्रिपशनरम् इण्डिकारम्, जि० १२, पृ० २८९

५- चटर्जी – हर्षवर्द्धन, पृ० २१ - २२

६- त्रिपाठी—हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० २५४ - ५५

७- चटर्जी – हर्षवर्द्धन, पृ० २१ - २२

कीथी। इसके पश्चात् प्रभाकरवर्धन् की पुत्री राज्यश्री से सर्ववर्मन् के पौत्र ग्रहवर्मन् का बिवाह होजानेपर दोनों राजकुलों में मैत्री स्थापित हुई।

त्रिपाठी के दूसरे तर्क का समाधान मानचित्र में नृमुण्ड और कर्तृपुरजनपद की स्थिति को देखकर भी होजाताहै। सिरोली-शिलालेख के अनुसार कर्तृपुरजनपद पर सर्ववर्मन् का अधिकार था। इस जनपद के पश्चिमी भाग में यमुना और टोंसनदी की उपत्यकाएँ हैं और उनके पश्चिम में सतलुज की उपत्यका आतीहै। सतलुज की उपत्यका से टोंस, यमुना और भागीरथी की उपत्यका में आनेवाले पैदलमार्ग आज भी सुप्रचलित हैं।

हिमाचलप्रदेश में सँघोल तक, सम्भवत: और भी पूर्व की ओर तक हूणराज्य फैलाथा, जैसा कि वहां प्राप्त हूणों की मुद्रानिधि से विदित होताहै। इससे अनुमान लगताहै कि हिमाचलप्रदेश से हूण - आक्रान्ता सर्ववर्मन् के राज्यकाल में कर्तृपुरजनपद पर छापे मारतेथे। उनका पीछा करतीहुई सर्ववर्मन् की सेना पर्वतीय मार्ग से होकर नृमुण्ड तक पहुँचीथी।

हर्षचरित से विदित होताहै कि प्रभाकरवर्द्धन के राज्यकाल तक भी स्थाण्वीश्वर राज्य की उत्तरी सीमा पर हिमालय की निचली ढालों पर हूणों का अधिकार था। इसलिए प्रभाकरवर्द्धन के पूर्वजों के समय, जो उसकी अपेक्षा कम शक्तिशाली थे, हूण आक्रान्ता पञ्जाब में हिमालय की तलहटी से होकर भी मौखरिराज्य पर आक्रमण करसकतेथे। और मौखरिसेना उनका उसी मार्ग से पीछा करतीहुई भी नृमुण्ड तक पहुँचसकतीथी।

अवन्तिवर्मन्

अवन्तिवर्मन् ने अपने पिता सर्ववर्मन् द्वारा विजितप्रदेश पर अपना अधिकार बनाएरखा [1]; सम्भवत: हिमाचलप्रदेश पर सर्ववर्मन् ने अपना स्थायी अधिकार नहीं रखाथा। उसके वँशजों के राज्यकाल में हिमाचलप्रदेश के किसी भाग का उनके अधिकार का उल्लेख नहीं मिलता। पर कर्तृपुरजनपद पर मौखरियों का अधिकार बनारहा।

इनदिनों मध्यदेश में मौखरिराजवँश की प्रतिष्ठा बहुत बढ़गईथी। मौखरि-वँश शिवजी के चरणन्यास के समान समस्त राजवँशों में श्रेष्ठ और सब लोगों द्वारा नमस्कृत मानाजानेलगाथा [2]।

ग्रहवर्मन्

अवन्तिवर्मन् के पश्चाद् उसके पुत्र ग्रहवर्मन् को कान्यकुब्ज का सिंहासन मिला।

१- क्लासिकल एज, पृ० ६९

२- 'धरणीधराणां च मूर्ध्निस्थितो माहेश्वर: पादन्यास इव सकलभुवननमस्कृतो मौखरिवंशः'
— हर्षचरित, उ० ४, पृ० २४१

उसका बिवाह प्रभाकरवर्द्धन् की पुत्री राज्यश्री से हुआथा। इस बिवाह के कारण स्थाण्वीश्वर और कान्यकुब्ज के राजवंशों में मित्रता स्थापित होगई।

कान्यकुब्ज के मौखरियों और मगध के गुप्तनरेशों की पारस्परिक शत्रुता ईशानवर्मन् के राज्यकाल से चलीआरहीथी। ग्रहवर्मन् के बिवाह द्वारा मौखरियों की बढ़ती हुई शक्ति गुप्तनरेशों को असह्य होगई। गौड़नरेश शशांक की सहायता से गुप्तनरेश ने प्रभाकरवर्द्धन् की मृत्यु होतेही कान्यकुब्ज पर आक्रमण करदिया। युद्ध में ग्रहवर्मन् मारागया।

अनुमान कियाजाता है कि ग्रहवर्मन् की कोई सन्तान न थी। उसकी रानी राज्यश्री ने स्वयं शासन करना अस्वीकार करदिया। तब राज्यश्री तथा कान्यकुब्ज के राज्याधिकारियों के अनुरोध से राज्यश्री के भ्राता स्थाण्वीश्वरनरेश श्रीहर्ष ने अपनी बहिन के नाम से मौखरिराज्य पर शासनकरना आरम्भ किया।

यह घटना सं० ६६३ वि० (606 ई०) के आसपास हुई। उस दिन से हर्ष अपने पैत्रिक राज्य और मौखरिराज्य पर कान्यकुब्जनगर से शासन करनेलगा। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ग्रहवर्मन का राज्य हर्ष को इतनी सरलता से नहीं मिलाथा।

राज्यावधि— विद्वानों का अनुमान है कि मध्यदेश में मौखरिराज्य की स्थापना छटी शती ईसवी के पूर्वार्द्ध में हुईथी [1]। हरिवर्मन्, आदित्यवर्मन् और ईश्वरवर्मन् ने लगभग तीस - चालीस वर्षों तक राज्य कियाथा। उनके वंशजों की राज्यावधि का विद्वानों ने इसप्रकार अनुमान लगायाहै [2]।

ईशानवर्मन्	सं० ६०७ - ६३३ वि०	(550 - 576 ई०)
सर्ववर्मन्	सं० ६३३ - ६३७ वि०	(576 - 580 ई०)
अवन्तिवर्मन्	सं० ६३७ - ६५७ वि०	(580 - 600 ई०)
ग्रहवर्मन्	सं० ६५७ - ६१३ वि०	(600 - 606 ई०)

इन मौखरिनरेशों के राज्यकाल में कर्तृपुरजनपद में हुई प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालनेवाली कोई प्रमाणिक सामग्री अभीतक नहीं मिलीहै।

मौखरिराज्य का विस्तार— त्रिपाठी का अनुमान है कि अपने चरम गौरव के दिनों में मौखरिराज्य का विस्तार पश्चिम की ओर अहिच्छत्रा और थानेश्वरराज्य के सीमान्त तक फैलाथा। पूर्व की ओर उस राज्य का विस्तार नालन्दा तक था। उत्तर की ओर उसकी सीमा सम्भवतः तराई के जिलों को छूतीथी। और दक्षिण की ओर सम्भवतः वर्तमान उत्तरप्रदेश की दक्षिणी सीमा से आगे नहीं पहुंचतीथी। असीरगढ़ और नृमुण्ड उसके अन्तर्गत न थे [3]।

१- क्लासिकल एज, पृ० ६७ २- क्लासिकल एज, पृ० ६८

३- ' Excluding Asirgadh and Nirmand, we may, therefore summarlly say

चटर्जी का अनुमान है कि अवन्तिवर्मन् और उसके उत्तराधिकारी ग्रहवर्मन् के समय में मौखरिराज्य पश्चिम में थानेश्वरराज्य की सीमा को स्पर्श करताथा। जलन्धर का जिला मौखरियों के राज्य में सम्मिलित नहीं था, यह बात निश्चित है। मौखरिराज्य की उत्तरी सीमा हिमालयपर्वत की दक्षिणी रेखा थी। दक्षिण में उसका विस्तार आधुनिक सँयुक्तप्रान्त की दक्षिणी सीमा तक था [1]।

त्रिपाठी और चटर्जी को सिरोली का शिलालेख उपलब्ध न था। उस शिलालेख को ध्यान में रखतेहुए कहाजासकताहै कि मौखरिराज्य की उत्तरी सीमा महाहिमालय तक पहुँचीथी। स्रुघ्नजनपद तथा ब्रह्मपुरजनपद के अधिकांश पर वह राज्य फैलाहुआथा।

---

that during it's fullest expansion the Maukhari kingdom of Kanauj extended up to Ahicchatra and the frontier of the Thanesvar Kingdom on the West; to Nalanda on the East; on the North it may have touched the Tarai districts; and on the South, it probably did not go beyond the southern boundaries of the present United Provinces.' — त्रिपाठी—हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० ५५

१. चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ०

हर्ष के साम्राज्य में

हर्ष के पूर्वज— चीनी यात्री युअन्-चाङ् के अनुसार यमुना की पश्चिमी पनढ़ाल से लेकर कालीगङ्गा की पनढाल तक का सारा पर्वतीयप्रदेश, उनदिनों, स्रुघ्न और ब्रह्मपुर नामक दो जनपदों में विभक्त था। ये दोनों जनपद हर्ष के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। हर्ष से पूर्व इन जनपदों पर मौखरियों का अधिकार था।

हर्ष का पैत्रिक राज्य सीमित था। बाण के अनुसार, हर्ष के पैत्रिक राज्य का संस्थापक, पुष्यभूति, श्रीकण्ठदेश में स्थाण्वीश्वर (वर्तमान थानेश्वर) और उसके पास - पड़ोस का स्वामी था [१]। हर्ष के अभिलेखों और राज्यमुद्राओं से उसके चार पूर्वपुरुषों का पता लगताहै। नरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन, आदित्यवर्द्धन और प्रभाकरवर्द्धन [२]। इनमेंसे पहले तीन का विरुद केवल 'महाराज' था [३]। इससे अनुमान लगताहै कि इन तीन नरेशों का शासितप्रदेश सीमित था।

नरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन और आदित्यवर्द्धन की राज्यावधि विद्वानों ने सँ ५५७ से सं० ६३७ वि० (500 - 580 ई०) के बीच निर्धारित कीहै [४]। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् पूर्वी पञ्जाब में गुप्तसत्ता अतिशिथिल होगईथी। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर हर्ष के पूर्वजों ने यमुना के पश्चिम की ओर अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न कियाथा।

बुधगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गङ्गाजी से पश्चिम की ओर के प्रदेश में गुप्तसत्ता समाप्तप्राय: होनेलगीथी। फिर भी हर्ष के इन पूर्वजों को 'महाराजाधिराज' विरुद धारण करने का साहस न होसका। इससे विद्वानों की धारणा है कि हर्ष के पूर्वजों ने परिस्थिति के अनुसार सम्भवत: किसी न किसी रूप में, गुप्त सम्राटों और हूण - आक्रान्ताओं की अधीनता स्वीकार करतेहुए अपनी शक्ति बढातेरहने का प्रयत्न कियाथा [५]। जब गुप्तों और हूणों की शक्ति का ह्रास होनेलगा और कान्यकुब्ज में मौखरिनरेशों की शक्ति प्रवल होगई तो सम्भवत: उन्होंने मौखरियों के प्रभावक्षेत्र में रहना भी स्वीकार कियाथा [६]।

१- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १६८-६९ 　 २- ३- हर्ष का बांसखेड़ा — ताम्रशासन, पंक्ति १-३

४- ६- क्लासिकल एज, पृ० ९७

प्रभाकरवर्द्धन

आदित्यवर्द्धन के पुत्र प्रभाकरवर्द्धन ने 'परम भट्टारक महाराजाधिराज' का विरुद धारण कियाथा [1]। इससे अनुमान लगताहै कि वह अपने शासितप्रदेश और शक्ति में पर्याप्त वृद्धि करने में सफल हुआथा। उसने अपने राज्य की स्वतन्त्र सत्ता घोषित करदी। अनुमान कियाजाताहै कि प्रभाकरवर्द्धन को 'परम भट्टारक महाराजाधिराज' विरुद धारण करने का साहस तब हुआहोगा [2], जब समकालीन मौखरिनरेश की गुप्तनरेश, कुमारगुप्त और दामोदरगुप्त के हाथों पराजय होचुकीथी [3]।

अनुमान कियाजाताहै कि प्रभाकरवर्द्धन ने अपना राज्य पञ्जाब में पश्चिम की ओर व्यासनदी तक तथा पूर्व की ओर यमुनानदी तक फैलादियाथा। उसके राज्य की उत्तरी सीमा पर, हिमालय की ढालों पर हूणों का अधिकार था [4]। दक्षिण की ओर उसके राज्य की सीमा मरुभूमि, राजस्थान को छूतीथी [5]।

प्रभाकरवर्द्धन के दो पुत्र थे। राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन। इनसे छोटी उसकी पुत्री राज्यश्री थी, जिसका बिवाह उसने मौखरिनरेश ग्रहवर्मन् से कियाथा [6]।

राज्यवर्द्धन

प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के समय राज्यवर्द्धन राज्य की उत्तरी सीमा पर हूणों से युद्धकरने गयाथा [7]। पिता की अस्वस्थता का समाचार पाकर जबतक वह लौटसका, तबतक प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु होचुकीथी [8]।

राज्यवर्द्धन राज्यभार सम्भालने केलिए प्रस्तुत न था ; वह प्रव्रज्या लेना चाहताथा [9]। वह वल्कल धारण करनेवाला ही था [10] कि राज्यश्री के दूत ने आकर उसे सूचना दी कि – जिसदिन प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु का समाचार मिला, उसीदिन मालवराज ने कान्यकुब्ज पर आक्रमण करके ग्रहवर्मन् का बध करदिया। राज्यश्री को कान्यकुब्ज के कारागार में डालदिया। और स्थाण्वीश्वर की सेना को नायकहीन समझकर वह उस देश पर आक्रमण करने चलपड़ाहै [11]।

१- हर्ष का बांसखेड़ा ताम्रशासन, पंक्ति, ३ २- क्लासिकल एज, पृ० ९७

३- 'भीमः श्रीशानवर्म्मक्षितिपतिशशिनः सैन्यदुग्धोद् सिन्धु, ल्लंक्ष्मीसम्प्राप्तिहेतुः सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन।' – आदित्यसेन का अफ़साड़ - शिलालेख

४- हर्षचरित, उ० , पृ० ५- क्लासिकल एज, पृ० ९८

६- ७- हर्षचरित, उ० २, पृ० २५७ ८- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३०८ - ९

९- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३१४ - १७ १०- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३२१

११- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३२१ - २२

इस समाचार से उत्तेजित होकर राज्यवर्द्धन ने सेना लेकर कान्यकुब्ज की ओर प्रयाण किया। उसने मालवराज की सेना को सरलता से पराजित करदिया। किन्तु मालवराज के सहायक गौड़ाधिप शशांक के दिखावटी स्वागत - सत्कार पर विश्वास करके वह अकेला शस्त्रहीन दशा में अपने या शत्रुशिविर में मारदियागया [१]।

हर्षवर्द्धन

कान्यकुब्ज (पांचाल) पर अधिकार—समाचार पाकर हर्ष ने सेनालेकर कान्यकुब्ज की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उसे प्राग्ज्योतिष (आसाम) नरेश का दूत मिला, जो अपने स्वामी से मित्रतासन्देश और भेंट लायाथा [२]। कुछदिन पश्चात् हर्ष को सूचना मिली कि राज्यश्री कान्यकुब्ज के कारागार से मुक्तहोकर अपने परिजनों के साथ विन्ध्याचल के वन में चलीगई [३]। अपने पड़ोसी एवँ शत्रु प्राग्ज्योतिषनरेश और हर्षवर्द्धन की मित्रता का, तथा कान्यकुब्ज के निकट हर्ष के आगमन का समाचार पाकर गौड़ाधिप शशांक गौड़ की ओर भागगया।

राज्यश्री को ढूँढकरताहुआ हर्षवर्द्धन विन्ध्याचल के वन में पहुँचा। राज्यश्री चिता बनाकर सती होनेवालीथी कि हर्ष ने पहुँचकर उसे रोकदिया [४]। बौद्ध आचार्य दिवाकरमित्र के उपदेश से राज्यश्री बौद्धमत के प्रति श्रद्धालु बनगई [५]।

गौड़ाधिप को समुचित दण्ड देने का कार्य अपने सेनानायक भण्डि को सौंपकर हर्षवर्द्धन राज्यश्री के साथ कान्यकुब्ज चलागया।

राज्यश्री तथा कान्यकुब्ज के राज्याधिकारियों एवँ अविलोकितेश्वर [६] या बौद्ध आचार्यों के आग्रह से हर्षवर्द्धन ने स्थाण्वीश्वर और कान्यकुब्ज (पांचाल), दोनों राज्यों पर शासन करना स्वीकार करलिया। उसने अपनी राजधानी कन्नौज में स्थापित की।

साम्राज्य-विस्तार— अपने पैत्रिक राज्य तथा राज्यश्री के मौखरिराज्य पर अधिकार होजाने से हर्ष का साम्राज्य पञ्चनद से मगध तक पहुँचगया। चीनी यात्री युअन्-चाङ् के अनुसार हर्ष ने छै वर्ष तक अपना विजयाभिमान चलाया और उसके पश्चात् तीस वर्ष तक शान्तिपूर्वक राज्यकिया [७]। दक्षिण की ओर अपने विजयाभियान में हर्ष को सम्भवतः नर्मदा के तट पर दक्षिणापथ के नरेश पुलकेशिन द्वितीय से पराजित होनापड़ाथा [८]।

१- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३२६
२- हर्षचरित, उ० ७, पृ० ३८२
३- हर्षचरित, उ० ७, पृ० ४०४
४- हर्षचरित, उ० ८, पृ० ४४४
५- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३४६
६- वाटर्स — आन ट्रैवल्स आव युअन् चाङ्, जि० १, पृ० ३४३
७- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३४३
८- 'युधि पतितगजेन्द्रानीकवीभत्सभूतो,
भयविगलित हर्षो येन चाकारि हर्षः।' — ऐहोल—अभिलेख, पंक्ति ११

विद्वानों का अनुमान है कि हर्ष के साम्राज्य में वर्तमान पूर्वीपञ्जाब का कुछ भाग उत्तरप्रदेश, बिहार, बँगाल, कोंगोद सहित उड़ीसा, बल्लभी, पूर्वी मालवा, पश्चिमी मालवा तथा सिन्धु के प्रदेश सम्मलित थे [१]। इनमेंसे कुछ प्रदेश, ऐसे थे, जिनपर हर्ष का अपना शासन था। कुछ ऐसे थे, जो अर्द्ध स्वतन्त्र थे, तथा हर्ष को अपना स्वामी मानतेथे। कुछ ऐसे भी थे जो हर्ष के साथ मैत्री सम्बन्ध में बन्धेथे। यद्यपि वे स्वतन्त्र थे, तोभी हर्ष की श्रेष्ठता स्वीकार करतेथे [२]। उत्तराखण्ड उनदिनों तीन जनपदों में बँटाथा – स्रुघ्न, ब्रह्मपुर तथा गोविषाण। तीनों पर हर्ष का सीधा शासन था।

हर्ष के राज्यविस्तार के सम्बन्ध में विद्वानों की धारणा है कि उत्तरभारत के जिन जनपदों के नरेशों का उल्लेख युअन् - च्वाङ् ने नहीं कियाहै, उन पर हर्ष का अधिकार था। स्रुघ्न, ब्रह्मपुर और गोविषाण के नरेशों का यात्री ने उल्लेख नहीं कियाहै। इसलिए उन्हें हर्ष के अधीन मानाजाताहै।

हर्षचरित से कुछ ऐसे सँकेत मिलतेहैं, जिनके अनुसार हिमालय के उस भाग पर, जो गन्धमादन के निकट था, हर्ष का अधिकार था [३]। हर्ष ने जिस हिमाच्छादित पर्वतीय दुर्गम प्रदेश से कर ग्रहण कियाथा [४], उसकी पहिचान चटर्जी के अनुसार आधुनिक गढ़वाल से करनीचाहिए [५]। हर्षचरित के सम्बन्धित वाक्य का श्लेष से दूसरा अर्थ निकलताहै — यहां सम्राट ने पर्वतीय कन्या दुर्गा का पाणिग्रहण किया [६]। यह असम्भव नहीं है कि हर्ष ने अपने राज्य के अन्तर्गत किसी पर्वतीय या गढ़वाली कन्या से बिवाह कियाहो। किसी अन्य स्रोत से इसकी अभीतक पुष्टि नहीं हुईहै।

विद्वानों को आश्रय— हर्ष स्वयँ विद्वान् था और विद्वानों को आश्रय देताथा। उसने नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका नामक तीन उच्चकोटि के सँस्कृत-नाटक लिखेथे। सँस्कृत के सुभाषित - सँग्रहों में यत्र - तत्र ऐसे श्लोक मिलतेहैं, जिनके रचयिता हर्ष मानेजातेहैं [७]। हर्ष की परिषद् में बाण, मयूर और मातँग दिवाकर नामक लेखक और कवि रहतेथे [८]।

बाण ने हर्षचरित और कादम्बरी नामक दो ग्रन्थ सँस्कृत गद्य में लिखे हैं। हर्षचरित में बाण ने हर्ष के पूर्वजों का तथा हर्ष के जीवन के पूर्वार्द्ध का वर्णन कियाहै। हर्षचरित में बाण ने हर्ष के पूर्वजों का तथा हर्ष के जीवन के पूर्वार्द्ध का वर्णन कियाहै। विन्ध्याचल के वन में राज्यश्री की प्राप्ति के पश्चात् उसे दिवाकरमित्र का उपदेश मिलने की घटना पर यह ग्रन्थ समाप्त होजाताहै।

१- चटर्जी – हर्षवर्द्धन, पृ० १६६
२- चटर्जी – हर्षवर्द्धन, पृ० ११७
३- 'आ गन्धमानाद, सर्वेषां राज्ञां सज्जीक्रियतां कराः करदानाय शस्त्रग्रहणाय वा।' — हर्षचरित
४- 'अत्रपरमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीतो करः' – हर्षचरित
५- चटर्जी – हर्षवर्द्धन, पृ० १०२
६- त्रिपाठी – हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० ९८
७- चटर्जी – पूर्वोक्त, पृ० २२६
८- चटर्जी — पूर्वोक्त, २३२

असमय पर मृत्यु होजाने के कारण बाण कादम्बरी को भी अधूरा छोड़गयाथा। उसे बाण के पुत्र भूषणभट्ट या (पुलिन्दभट्ट) ने पूराकिया [१]। सम्भवत: बाण का पुत्र हर्ष का आश्रित न था। इसलिए हर्षचरित को पूर्ण करने की उसे लालसा न हुई।

हर्षचरित के आरम्भ में बाण ने अपने पूर्वजों का तथा अपने आरम्भिक जीवन का भी विस्तृत परिचय दियाहै।

युअन-च्वाङ् की भारत-यात्रा— हर्ष के राज्यकाल में चीनी यात्री युअन् - च्वाङ् बौद्धमत के मूलग्रन्थों का अध्ययन करने तथा बौद्धतीर्थों की यात्रा करने की लालसा से मध्यएशिया होकर भारत में आयाथा। उसने आश्विन ६८७ से आषाढ़ ७०१ (अक्टोवर 630 से जुलाई 644 ई०) तक भारत के विभिन्न भागों में भ्रमण किया [२]। जहां उसे बौद्ध सिद्धान्तों के विशिष्ट पण्डित मिले, वहां उसने कुछ काल तक ठहरकर उनकी सहायता से बौद्धग्रन्थों का अध्ययन किया। नालन्दा विश्वविद्यालय में उसने अनेक वर्षों तक बौद्ध-ग्रन्थों का अध्ययन कियाथा।

हर्ष और भारत के कई नरेशों ने उसका सत्कार किया। हर्ष ने महायान के सिद्धान्तों की पुष्टि में कन्नौज में एक महान् अधिवेशन कियाथा। इस अधिवेशन का अध्यक्ष युअन् - च्वाङ् को बनायागयाथा।

उसने प्रयाग में हर्ष की महामोक्षपरिषद् की कार्यवाही भी देखीथी, जिसमें हर्ष प्रति पांचवें वर्ष अपने सारे राज्यकोष को बौद्ध, हिन्दु और जैन साधुओं में वितरित करदेताथा।

१६ वर्ष के पश्चात् युअन् - च्वाङ् अनेक भारतीय ग्रन्थों की प्रतिलिपियों तथा मूर्तियों को लेकर पुन: मध्यएशिया के मार्ग से चीन को लौटगया। उसने अपने यात्रावर्णन में समकालीन भारत का अति रोचक और यथातथ्य चित्रण कियाहै। समकालीन जनपदों की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति जानने केलिए उसका यात्रा-वर्णन अति उपयोगी है। उसका यात्रावर्णन उत्तराखण्ड के समकालीन जीवन पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालताहै।

हर्ष का व्यक्तित्व — अनुमान कियाजाताहै कि हर्षवर्द्धन ने सं० ६६३ से ७०४ वि० (606 ई० से 647 ई०) तक शासन किया। उसके शासनकाल में उत्तरभारत में शान्ति और सुव्यवस्था रही। गुप्तनरेशों के अधीन ललितकलाओं के विकास का जो युग आरम्भ हुआथा, वह हर्ष के राज्यकाल तक चलतारहा। उसके राज्यकाल में उत्तर-

---

१- 'याते दिवं पितरि तद्वचसैवसार्द्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥'

— कादम्बरी, उत्तरभाग

२- स्मिथ का लेख --- आन युअन् च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० २, पृ० ३३५

भारत के व्यापार और समृद्धि में वृद्धि हुई। विदेशी शक्ति को देश पर आक्रमण करने का साहस न हुआ। उसकी गणना भारत के महानतम शासकों में कीजातीहै।

यद्यपि चालुक्यनरेश के अभिलेखों में हर्ष को 'सकलउत्तरापथनाथ' कहागयाहै, पर वास्तव में उसका साम्राज्य इतना विस्तृत न था। उससे पूर्ववर्ती गुप्तसम्राटों का, तथा उससे परवर्ती प्रतिहारसम्राटों का शासितप्रदेश हर्ष के शासितप्रदेश से अधिक विस्तृत था [१]। उसकी कोई सन्तान न होनेसे, तथा स्वयँ किसी सुयोग्य उत्तराधिकारी का प्रबन्ध न करने के कारण, उसका साम्राज्य उसकी मृत्यु होते ही बिखरगया [२]।

हर्ष ने बौद्धमत को नवजीवन देने का प्रयत्न कियाथा। उस युग की जनभावना इसके विपरीत होनेके कारण उसे अपने प्रयत्न में सफलता न मिलसकी।

गुप्तसम्राटों के समान हर्ष में राष्ट्र को एकताबद्ध करने की विशेषता न थी। उसका चरित्र आदर्श था। उसकी विशाल सेना थी। वह उत्सवों को धूमधाम से मनाताथा। वह अपने सारे राज्यकोष को धार्मिकवृत्ति वाले समाज में बखेर देताथा। फिर भी गुप्तसाम्राज्य के सँस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम को जो सफलता मिली, वह उसे न प्राप्त होसकी [३]। वह विजेता था, निर्माता न था [४]।

समकालीन उत्तराखण्ड

सूचना-स्रोत— हर्ष के साम्राज्य में उत्तराखण्ड की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवँ धार्मिक स्थिति के अध्ययन केलिए बाणभट्ट की रचनाओं, हर्षचरित तथा कादम्बरी से केवल सामान्य सहायता मिलतीहै। अभीतक कोई शिलालेख या अन्य ऐसी पुरातात्विक सामग्री नहीं मिलीहै, जो इस विषय पर प्रकाश डालसके। समकालीन उत्तराखण्ड का परिचय प्राप्तकरनेकेलिए प्रमुख साधन चीनी यात्री युअन् - च्वाङ् का 'यात्रावर्णन' है। अलँघ्य पर्वतों, नदी - घाटियों और मरुभूमि से होकर जानेवाले सहस्रों मील लम्बे दुर्गम मार्ग पर चलकर यह यात्री भारत में पहुँचा। उसने भारत के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों की यात्रा की और समकालीन स्थिति का आंखों - देखा तथा कानों - सुना विस्तृत विवरण लिखा। वह उत्तराखण्ड भी पहुँचाथा।

चीनदेश में युअन् - च्वाङ् की गणना 'भारतीय बौद्धमत पर प्रकाशडालनेवाले प्रमुख तीन दर्पणों' में कीजातीहै [५]। हमारे देश के इतिहास पर भी उनका लेख उतनाही महत्वपूर्ण प्रकाश डालताहै [६]। यदि इस यात्री ने अपनी यात्रा का सँ० ६८६ - ७०२ वि० (629 - 645 ई०) विवरण इतने परिश्रम से न लिखाहोता तो हमारे देश के एक

१- ३- क्लासिकल एज, प्रीफेस, पृ० xvii

४- क्लासिकल एज, प्रीफेस, पृ० xviii

४- ६- पवलिशर्स नोट — वाटर्स — ग्रान युअन्- च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया

स्वर्णयुग के इतिहास का महत्वपूर्ण अंश आज लुप्त होगयाहोता [१]। उत्तराखण्ड के इतिहास केलिए तो यह कथन और भी अधिक सत्य है। वह पहला लेखक है जिसने समकालीन उत्तराखण्ड का इतना विस्तृत विवरण लिखाहै।

अनुमान लगताहै कि युअन् - च्वाङ् के मूल 'यात्रावर्णन' में पाइन - ची नामक चीनी लेखक ने यत्र - तत्र कुछ टिप्पणियां जोड़दीथीं [२]। इस लेखक को चीन के सम्राट ने भारतीयग्रन्थों का चीनीभाषा में अनुवाद करनेके कार्य में युअन् - च्वाङ् की सहायताहेतु नियुक्त कियाथा [३]। पीछे किसी अन्य लेखक ने भी उसमें कुछ टिप्पणियों की वृद्धि करदी [४]।

युअन् - च्वाङ् की 'जीवनी' पर भी चीनीभाषा में एक ग्रन्थ मिलताहै, जिसमें उसके यात्रा - वर्णन को भी संक्षिप्तरूप में सम्मिलित कियागयाहै। इसके अतिरिक्त युअन् - च्वाङ् के यात्रा - वर्णन से सम्बन्ध रखनेवाला एक तीसरा ग्रन्थ Shih - Ka - fang - Chih भी है जिसे Fang - Chih 'फँग - चि' भी कहतेहैं। इन ग्रन्थों में और युअन् - च्वाङ् के 'यात्रावर्णन' में यत्र - तत्र ऐसे उल्लेख मिलतेहैं, जो एक - दूसरे से मेल नहीं खाते।

युअन् - च्वाङ् की मुख्य लालसा बौद्धमत के सम्बन्ध में अपने ज्ञान की वृद्धि तक सीमित थी। वे प्राचीन परम्पराओं का पालन करनेवाले, आस्तिक और श्रद्धालु व्यक्ति थे। सँकटों को वे साहस से झेलतेथे। विपत्ति के समय वे प्रार्थना से सान्त्वना प्राप्तकरने का प्रयत्न करतेथे। धार्मिकवृत्ति और श्रद्धा की भावना से भरेहुए वे आश्चर्यजनक बातों पर भी विश्वास करलेतेथे [५]। इसलिए वे भलीभांति छानबीन करके अपने 'यात्रावर्णन' को अधिक सन्तोषजनक न बनासके [६]। उन्होंने अपनी लम्बी और दीर्घकालीन यात्रा में जो देखा - सुना होगा, उसके केवल अतिअल्प अंश को ही उन्होंने अपने 'यात्रावर्णन' में स्थान दिया [७]।

युअन् - च्वाङ् ने अपने 'यात्रावर्णन' में विभिन्न स्थानों की दूरी चीन में प्रचलित दूरीसूचक माप 'लि' में दीहै। वाटर्स ने 'लि' को मील के पांचवें भाग के समान मानाहैं। राहुल के अनुसार लि को मील का छटा भाग समझना चाहिए [८]। युअन् - च्वाङ् द्वारा दीगई दूरियों को पूर्णतः सही नहीं मानाजासकता। उन्होंने पैदल चलकर अथवा लोगों से पूछकर दूरियों को लिखाहै। आज के समान उनदिनों भी कोस, प्रसँग, योजन आदि की दूरी मुख्यतः अनुमान पर निर्भर थी।

राजनीतिक स्थिति— युअन् - च्वाङ् के अनुसार हर्ष के राज्यकाल में यमुना की पश्चिमी पनढाल से लेकर करनाली - कालीगङ्गा तक का प्रदेश, जिसका इस ग्रन्थ में

१- पबलिशर्स नोट — वाटर्स — आन युअन् - च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया

२- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३ ३- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० २ ४- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३

५- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० १४ - १५ ६- ७- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० १५

८- राहुल — गढ़वाल, पृ० ६८

उत्तराखण्ड के नाम से उल्लेख कियागयाहै, तीन जनपदों में विभक्त था।

(१) स्रुघ्नजनपद — यमुना की पश्चिमी पनढाल से गङ्गाजी तक,
(२) ब्रह्मपुरजनपद — गङ्गाजी से करनाली - कालीगङ्गा तक, तथा
(३) गोविषाण जनपद — जिसमें नैनीताल के भाबर-तराईप्रदेश के अतिरिक्त दक्षिण - पूर्व की ओर का कुछ मैदानी भाग भी सम्मिलित था।

इन तीनों जनपदों के नरेशों का उल्लेख युअन् - च्वाङ् ने नहीं कियाहै। इसलिए विद्वानों का अनुमान है कि इन जनपदों पर हर्ष का सीधा शासन था[१]।

स्रुघ्नजनपद — स्थाण्वीश्वर से उत्तर - पूर्व की ओर ४०० लि या ६६ मील चलने पर यात्री Su-lu-kin-na जनपद में पहुँचा[२]। 'जीवनी' में इस जनपद का नाम Lu-kin-na बतायागयाहै[३]।

'यात्रावर्णन' की कुछ प्रतियों में इस जनपद का नाम Su-lu-kie (ka)-kun दियाहुआहै, जिसका मूल भारतीय रूप स्रुखिन या स्रुघिन होनाचाहिए[४]। इसकी पहिचान कनिंघम ने स्रुघ्ननगर और जनपद से कीहै[५]। यद्यपि वाटर्स ने कनिंघम की इस पहिचान के प्रति शँका व्यक्त कीहै[६], किन्तु अन्य कई विद्वानों ने इस पहिचान को सही मानाहै[७]। राहुल के अनुसार छै लि को एक मील के बराबर माननेसे स्थाण्वीश्वर से स्रुघ्ननगर या जनपद की सीमा की दूरी लगभग ६६ मील निकलतीहै, जिसमें इन नगरों के बीच की वास्तविक दूरीसे लगभग १५ मील का अन्तर है। जनपद का स्रुघ्न नाम अति प्राचीनकाल से चलाआताथा[८]। कुणिन्द - राज्यकाल में भी यह नाम जनपद और उसकी राजधानी, दोनों केलिए प्रयुक्त होताथा[९]।

यात्री के अनुसार स्रुघ्नजनपद की परिधि ६००० लि अर्थात् १००० मील थी[१०]। जनपद की पूर्वी सीमा पर गङ्गाजी बहतीथी। यमुनानदी जनपद के मध्य में बहतीथी। जनपद की उत्तरी सीमा पर महान पर्वत (महाहिमालय) खड़ाथा[११]। इस वर्णन के आधार पर स्मिथ की धारणा है कि स्रुघ्नजनपद के अन्तर्गत वर्तमान अम्बालाजिले का उत्तरपूर्वी भाग, सहारनपुरजिले का (उत्तरी) भाग, देहरादूनजिला और देहरादूनजिले से सटे पहाड़ी राज्यों मेंसे कुछ सम्मिलित थे[१२]।

१- त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० ११६; चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ० १६७

२- ४- वाटर्स — आन युअन - च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३१७

५- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० २६२

६- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३१८

७- चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ० १६०

८- द्र० उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० १८

९- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग ३, पृ० १२७

१०- ११- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३१८

१२- स्मिथ — इटिनेरेरी आव युअन-च्वाङ्, वाटर्स — पूर्वोक्त, भाग २, पृ० ३३७ - ३८

कनिंघम के अनुसार स्रुघ्नजनपद में अम्बाला और सहारनपुरजिलों के कुछ भाग के साथ गिरिनदी से लेकर गङ्गाजी तक फैले, सिरमौर और गढ़वाल (टिहरी) के पहाड़ी राज्य सम्मिलित थे [१]। कनिंघम ने देहरादूनजिले का उल्लेख नहीं कियाहै। अम्बाला - सहारनपुर से सिरमौर - गढ़वाल तक विस्तृत जनपद के अन्तर्गत देहरादूनजिला स्वतः ही आजाताहै।

कनिंघम के अनुसार इस सारे प्रदेश की परिधि मानचित्र पर ५०० मील से अधिक नहीं है। अर्थात् युअन् - च्वाङ् के अनुमान से आधी है [२]। इस विभिन्नता का समाधान कनिंघम ने दो प्रकार से कियाहै :-

(१) पहाड़ी प्रदेश में चढ़ाई - उतार के कारण दो स्थानों की मानचित्र में मिलनेवाली दूरी से वास्तविक दूरी बहुत अधिक होतीहै। इस बात का ध्यान रखतेहुए स्रुघ्न- जनपद की परिधि, पैदलमार्ग से लगभग ७५० मील निकलेगी [३]।

(२) इसके अतिरिक्त युअन्-च्वाङ् ने यमुना से गङ्गाजी तक की दूरी का अनुमान ८०० लि या १३३ मील कियाथा [४], जबकि मानचित्र पर पर्वतश्रेणी के पदतल में, वास्तविक दूरी ३०० लि या ५० मील है [५]। कनिंघम का अनुमान है कि यदि यात्री ने यमुना से गङ्गाजी तक की दूरी का इसप्रकार त्रुटिपूर्ण अनुमान न लगायाहोता तो स्रुघ्न- जनपद की परिधि केवल ८३३ मील निकलती [६]। कनिंघम ने स्रुघ्नजनपद की समकालीन परिधि का अनुमान इससे ८३ मील कम, अर्थात् ७५० मील लगायाहै [७]।

कनिंघम का यह कथन 'यात्रावर्णन' की उस पंक्ति पर आधारित है, जिसके अनुसार स्रुघ्न के पास यमुना पार करके ८०० लि या १३३ मील चलने पर यात्री गङ्गाजी के तट पर पहुँचाथा [८]। किन्तु 'जीवनी' और 'फङ् - चि' के अनुसार यात्री ८०० लि चलकर गङ्गाजी के स्रोत Source of the Ganges तक पहुँचाथा [९]। यदि गङ्गास्रोत का तात्पर्य गँगोत्तरी से हो तो 'जीवनी' और 'फङ् - चि' द्वारा दीगई दूरी त्रुटिपूर्ण नहीं है। वाटर्स की धारणा है कि गँगास्रोत से यात्री का तात्पर्य गँगाद्वार (हरिद्वार - ऋषिकेश) से है [१०]। स्रुघ्न से इस स्थान की दूरी पैदलमार्ग पर ६४ मील के लगभग है।

यात्री द्वारा दीगई परिधि की लम्बाई को सिद्धकरने केलिए खींचतान की आवश्यकता नहीं है। यात्री ने दूसरों से सुनकर विभिन्न जनपदों की परिधि का उल्लेख कियाहै। इसे केवल अनुमान - मात्र समझनाचाहिए। यात्री केलिए, और उसे सूचना देनेवालों केलिए परिधि की वास्तविक लम्बाई नापकर बताना सम्भव न था। आज भी दिल्लीनगर या भारत के किसी भी जनपद की परिधि की वास्तविक माप विरले व्यक्ति ही बतलासकतेहैं।

१- ३- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० २६३

४-- वाटर्स — आन युअन्- च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३१६

५- ७- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २६३ ८- १०- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३१६

सारी बातों पर दृष्टि रखतेहुए हमारा अनुमान है कि स्रुघ्नजनपद यमुना की पश्चिमी पनढाल से लेकर गङ्गाजी की पश्चिमी पनढाल तक फैलाथा। दक्षिण की ओर अम्बाला और सहारनपुर के भाबरप्रदेश से लेकर उत्तर की ओर उसका विस्तार बन्दरपूँछ और जन्सकरश्रेणी तक था। रूपीं, सूपीं, पबार, टोंस, गिरिनदी और यमुना की उपत्यकाएं उसके अन्तर्गत थीं। एटकिनसन की धारणा है कि बाड़ाहाट (वर्तमान उत्तरकाशी) में ब्रह्मपुरराज्य की राजधानी थी[1]। इस धारणा के अनुसार स्रुघ्नजनपद की पूर्वी सीमा भागीरथी के द्वारा बनतीथी और देवप्रयाग से आगे अलकनन्दा और भागीरथी की सम्मिलित धारा से।

ब्रह्मपुरजनपद— युअन् - च्वाङ् के यात्रावर्णन के अनुसार 'वहां से' ३०० लि अर्थात् ५० मील उत्तर की ओर चलकर यात्री Po - lo - ki - mo जनपद में पहुँचा[2]। पो - लो - कि - मो नाम को जूलियन और कनिंघम ने संस्कृत के ब्रह्मपुर का भाषान्तर मानाहै[3]। यात्री के अनुसार इस जनपद का घेरा ४००० लि या ६६६ मील था। उसके चारों ओर पर्वतमालाएँ थीं[4]।

ब्रह्मपुरजनपद की पहिचान में सबसे बड़ी बाधा 'वहां से' है। 'यात्रावर्णन' से यह स्पष्ट नहीं है कि यात्री ५० मील उत्तर की ओर मयूर से चलाथा या मतिपुर से[5]। 'फङ् - चि' के अनुसार यात्री मयूर से, जिसकी पहिचान कनिंघम ने मायापुर - हरिद्वार से कीहैं[6], ५० मील उत्तर की ओर चलकर ब्रह्मपुर पहुँचा[7]। किन्तु वाटर्स का अनुमान है कि यात्री मतिपुर से ५० मील उत्तर की ओर चलाथा[8]। इसकी पुष्टि में उनका कहना है कि 'जीवनी' में यात्री के मयूर जाने का कोई उल्लेख नहीं है[9]।

कनिंघम के अनुसार भी यात्री मतिपुर से चलाथा[10]। कनिंघम ने मतिपुर की पहिचान बिजनौरजिले के मँडावर से कीहै और ब्रह्मपुर की अलमोड़ाजिले के लखनपुर वैराट पट्टन से। उनकी पहिचान में सबसे बड़ी बाधाएँ मँडावर से लखनपुर वैराटपट्टन की दूरी और दिशा हैं। लखनपुर वैराटपट्टन मँडावर से उत्तरपूर्व दिशा में ८० मील दूर है। इन बाधाओं का समाधान करने केलिए कनिंघम ने निम्न रोचक कल्पनाएँ कीहैं:—

(१) यात्री ने उत्तरपूर्व दिशा में यात्रा कीथी, किन्तु भ्रमवश उत्तरदिशा का उल्लेख करदिया[11]।

(२) ५० मील की दूरी मँडावर से न लेकर मँडावरराज्य की उत्तरपूर्वी सीमा पर स्थित कोटद्वार से माननीचाहिए, जहां से लखनपुर वैराटपट्टन ठीक ५० मील दूर है[12]।

१- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, जि० २, पृ० ४५३ - ५४

२- वाटर्स — आन युअन् च्वाङ् स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३२६

३- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी पृ० २६६

४- ५- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३२६

६- कनिंघम — पूर्वोक्त, २६५

७- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३२६ - ३०

८- ९- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३३०

१०- १२- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २६६

(३) सम्भवतः दिशा और दूरी का उल्लेख करते समय यात्री ने भ्रमवश मँडावर के स्थान पर गोविषाण से लखनपुर वैराटपट्टन की दिशा और दूरी का उल्लेख करदिया [१]। ब्रह्मपुर से यात्री गोविषाण गयाथा। वैराटपट्टन गोविषाण से ठीक ५० मील उत्तर की ओर है [२]।

कनिंघम की खींचतान के दो कारण हैं :—

(१) 'यात्रावर्णन' की पँक्तियों पर भलीप्रकार ध्यान न देना। तथा

(२) ब्रह्मपुर की लखनपुर वैराटपट्टन से पहिचान की पूर्वधारणा बनालेना। वाटर्स के अनुसार 'यात्रावर्णन' में सम्बन्धित उल्लेख इस प्रकार है :—

'Our pilgrim proceeds to relate that going north 'from this' above 300 li he came to the Po-lo-hih-mo-pu-lo country. This was more than 4000 li in circuit with mountains on all sides, its capital being above 20 li in circuit'. [३]

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस स्थान से, जिसे वाटर्स और कनिंघम मतिपुर मानतेहैं, ५० मील उत्तर की ओर चलकर यात्री ब्रह्मपुरजनपद में (न कि ब्रह्मपुरनगर में) पहुँचाथा। अर्थात् ब्रह्मपुरजनपद की दक्षिणी सीमा मतिपुर से ५० मील उत्तर से आरम्भ होतीथी। मतिपुर की पहिचान सेंट मार्टिन और कनिंघम ने मँडावर से कीहै [४]। किन्तु वाटर्स इस पहचान से सहमत नहीं हैं [५]। वाटर्स का तर्क है कि यात्री के अनुसार मतिपुर स्रुघ्न से पूर्व की ओर था और 'गङ्गास्रोत' (गङ्गाद्वार) से भी पूर्व की ओर था। जबकि कनिंघम के मानचित्र सँख्या १० में मँडावर स्रुघ्न से दक्षिणपूर्व में और गङ्गाद्वार से दक्षिण में स्थित है [६]। इस त्रुटिपूर्ण पहिचान से मतिपुरजनपद की और उसकी राजधानी की जो परिधि यात्री ने बतलाईहैं, उनका मेल न खाना स्वाभाविक है [७]। स्मिथ के अनुसार मतिपुरजनपद वर्तमान बिजनौरजिला या उसके पूर्वी भाग का नाम था [८]। किन्तु मतिपुर-नगर की पहिचान मँडावर से नहीं होसकती [९]।

गँगाद्वार से सीधे पूर्व की ओर गढ़वालजिले का दक्षिणी भाग सलाणप्रदेश पड़ताहै। इस पर्वतीय क्षेत्रमें मतिपुरनगर की स्थिति नहीं मानीजासकती, क्योंकि यात्री ने उसे पर्वतीय क्षेत्र में नहीं बतलायाहै। वास्तव में सारे भ्रम का कारण 'यात्रावर्णन' के उल्लेख पर भलीप्रकार ध्यान न देनाहै। गँगाजी को पारकरके यात्री उसके पूर्वी तट पर स्थित मतिपुरजनपद में (न कि मतिपुरनगर में) पहुँचाथा [१०]। मतिपुरजनपद गँगाद्वार के

१- २- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० २९९

३-- वाटर्स — आन युआन् - च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३२९

४- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २९३

५- ७- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२२

८- ९- स्मिथ — इटिनेरेरी आव युआन् - च्वाङ्, वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० २, पृ० ३३८।

१- 'The pilgrim proceeds to narrate that crossing to the east bank of

पास गँगाजी के पूर्वीतट पर स्थित था। इसलिए उसकी पहिचान बिजनौरजिले से, या उसके पश्चिमी भाग में, गँगातट से सटे प्रदेश से होसकतीहै। इस जनपद में स्थित मतिपुर-नगर से ब्रह्मपुरजनपद की सीमा ५० मील दूर थी।

मतिपुरनगर की पहिचान अनिश्चित होनेसे, उससे ५० मील उत्तर की ओर ब्रह्मपुरजनपद की दक्षिणी सीमा का निश्चय करना कठिन है। 'यात्रावर्णन' के अनुसार मयूरनगर मतिपुर (नगर) से उत्तर - पश्चिम की ओर था [१]। इससे अनुमान लगताहै कि ब्रह्मपुरजनपद की दक्षिणी सीमा शिवालिक की तलहटी में पूर्व की ओर चलीगईथी। सम्भवत: भाबर की सँकरी पट्टी का कुछ भाग उनदिनों भी मतिपुरजनपद के अन्तर्गत था।

यात्री के अनुसार ब्रह्मपुरजनपद की परिधि ४००० लि से अधिक अर्थात् ६६६ मील से अधिक थी [२]। जनपद चारों ओर से पर्वतों से घिराथा [३]। इस जनपद की उत्तरी सीमा पर महाहिमालय की श्रेणियों के अन्तर्गत सुवर्णगोत्र नामक देश था। इस देश में उत्तम सुवर्ण मिलने के कारण उसे यह नाम मिलाथा।

सुवर्णगोत्र देश चीनीलोगों में 'पूर्वी स्त्रीराज्य' के नाम से भी प्रसिद्ध था [४]। इस देश के पूर्व की ओर तिब्बत, पश्चिम की ओर मलय तथा उत्तर की ओर खोतान था [६]। वाटर्स के अनुसार सुवर्णगोत्र एक काल्पनिक देश था [७]। किन्तु एटकिनसन [८] और राहुल ने सुवर्णगोत्र या सुवर्णभूमि की पहिचान पश्चिमी तिब्बत में स्थित ड० - री - कोर - सुम से कीहै [९], जहां उत्तम सुवर्ण उत्पन्न होताहै।

इस वर्णन के आधार पर एटकिनसन ने ब्रह्मपुरजनपद की पहिचान प्राचीन गढ़वालराज्य या गढ़वाल के वर्तमान चारों जिलों से कीहै। अपनी पहिचान की पुष्टि में उन्होने मारकण्डेयपुराण का उद्धरण दियाहै, जिसके अनुसार ब्रह्मपुरजनपद यमुनातट पर स्थित वनराष्ट्र और खशदेश (कुमाऊँ) तथा सुवर्णभूमि (तिब्बत में ड०-री-कोर्-सुम) से घिराथा [१०]। स्मिथ भी इस पहिचान से सहमत हैं [११]। यात्री द्वारा वर्णित ब्रह्मपुर-जनपद की परिधि के आधार पर कनिंघम की धारणा है कि उस जनपद के अन्तर्गत अलकनन्दा से लेकर करनाली तक फैला सारा पर्वतीयप्रदेश था, जो वर्तमान गढ़वाल (चमोली सहित) तथा कुमाऊँ (पिथौरागढ़, अलमोड़ा, नैनीताल) के अन्तर्गत है [१२]। मानचित्र के ऊपर इस प्रदेश की परिधि पांच - छै सौ मील के लगभग निकलतीहै, जिसमें यात्री द्वारा उल्लिखित परिधि से अधिक अन्तर नहीं है [१२]।

---

the river (that is the Ganges) he came to the Mo-ti-pu-lo (Matipur) country.' — वाटर्स — आन युअन् च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३२२

१- वाटर्स – पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२८

२- ७- वाटर्स – पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३३०

८- एटकिनसन – हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, जि० २, पृ० ३६२

९- राहुल – गढ़वाल, पृ० ६८

१०- एटकिनसन — पूर्वोक्त, पृ० ३६२

११- स्मिथ – इटिनेरेरी आव युअन - च्वाङ्; वाटर्स – पूर्वोक्त, जि० २, पृ० ३३८

१२-१३- कनिंघम – एनशिएंट जियोग्राफी पृ० ३००

सारी बातों पर दृष्टि रखतेहुए अनुमान लगताहै कि ब्रह्मपुरजनपद स्रुघ्नजनपद की पश्चिमी सीमा से लेकर करनाली - कालीगँगा तक फैलाथा। उसकी उत्तरी सीमा सम्भवतः आज के समान उनदिनों भी जँस्करश्रेणी तक पहुँचीहुईथी। दक्षिण की ओर गढ़वाल - भाबर और नैनीताल - भाबर का कुछ अँश मतिपुरजनपद और कुछ गोविषाण-जनपद के अन्तर्गत था।

गोविषाणजनपद— ऐसा प्रतीत होताहै कि ब्रह्मपुर से यात्री पुनः मतिपुर पहुँचा। वहां से दक्षिणपूर्व दिशा में ४०० लि से कुछ अधिक अर्थात् ६६ मील से कुछ अधिक चलकर वह Ku-pi-shuang (or sang)-na जनपद में पहुँचा। इस जनपद की परिधि २००० लि या ३३३ मील थी। इस जनपद की पहिचान गोविषाणजनपद से कीगईहै [१], जिसके अन्तर्गत कनिंघम के अनुसार वर्तमान काशीपुर, रामपुर और पीलीभीत जिले थे [२]। इसका विस्तार रामगङ्गा और शारदा - घाघरा की मध्यवर्ती उपत्यका पर रहाहोगा [३]। इसप्रकार नैनीतालजिले का भाबर - तराईप्रदेश उनदिनों गोविषाणजनपद के अन्तर्गत था।

स्रुघ्न, ब्रह्मपुर और गोविषाणजनपद हर्ष के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। किन्तु मतिपुरजनपद पर एक स्वतन्त्र शूद्रनरेश का अधिकार था। परम प्रतापी ईशानवर्मन् और सर्ववर्मन् के राज्य की सीमा पर मतिपुरजनपद एक शूद्रनरेश के अधीन कैसे स्वतन्त्र बनारहा, इसका समाधान अभीतक नहीं हुआहै।

प्रमुखनगर : स्रुघ्न— युअन् - च्वाङ् ने उत्तराखण्ड के जिन नगरों का वर्णन कियाहै, उनमें स्रुघ्ननगर दक्षिणी - पश्चिमी कोने पर स्थित था। युअन् - च्वाङ् स्वयँ इस नगर में पहुँचाथा [४]। किन्तु उसके वर्णन के आधार पर यह कहना कठिन है कि स्रुघ्नजनपद की दक्षिणी, पश्चिमी एवँ पूर्वी सीमाएँ इस नगर से कितनी दूर थीं। स्रुघ्ननगर में स्रुघ्नजनपद की राजधानी थी। इसलिए यह नगर जनपद के सर्वथा सीमान्त पर न रहाहोगा।

स्रुघ्ननगर यमुना के पश्चिमी तट पर स्थित था [५]। नगर की परिधि २० लि या ३ मील से अधिक थी [६]। कुणिन्दनरेशों के राज्यकाल का यह समृद्धशाली नगर उनदिनों उजाड़ होनेलगाथा [७]। राजधानी के दक्षिणपूर्व में, यमुना के पश्चिमी तट पर एक विशाल बौद्धमठ था। इस मठ के पूर्वी तोरण के बाहर अशोक द्वारा निर्मित स्तूप उनदिनों भी खड़ाथा [८]। इस स्तूप के पास बहुत से अन्य स्तूप थे, जिनमें बुद्ध, सारिपुत्र, मौद्गलायन और अन्य अर्हतों के अवशेष थे [९]।

१- वाटर्स — आन युअन - च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३३१

२-५-कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० ३०२

४- वाटर्स --- पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३१७

८- ९- वाटर्स -- पूर्वोक्त, पृ० ३१९

५- ७- वाटर्स—पूर्वोक्त, पृ० ३१८

१०- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २९१

सुघ्ननगर की पहिचान कनिंघम ने अम्बालाजिले में यमुना की पुरानी धारा से तीन ओर से घिरे सुघगांव से कीहै [१]।

मयूरनगर — यात्री के अनुसार मतिपुर से उत्तरपूर्व की ओर, गङ्गाजी के पूर्वी तट पर Mo-yu-lo या मयूरनगर बसाथा [२]। इसकी परिधि ३० लि से अधिक अर्थात् लगभग ३½ मील थी [३]। इसकी जनसँख्या घनी थी [४]। इस नगर के पास स्वच्छ जलवाले नाले बहतेथे [५]। नगर के पास, गङ्गाजी के तटपर एक देवमन्दिर था जो अपने आश्चर्यजनक माहात्म्यों केलिए विख्यात था [६]। मन्दिर की सीमा के अन्तर्गत एक कुण्ड था, जिसके तटों पर शिलाओं के घाट थे [७]। इस कुण्ड को गङ्गाजी से एक कृमित्र नहर के द्वारा जल से भराजाताथा [८]।

यह स्थान या मन्दिर गँगाद्वार कहलाताथा [९]। यहां लोग पुण्य - अर्जन और पापों से छुटकारा पाने केलिए दान करतेथे [१०]। नगर में अनेक पुण्यशालाएँ थीं, जिनमें धर्मात्मा नरेशों की ओर स अनाथों को निशुल्क स्वादिष्ट भोजनदेने और उनकी निशुल्क चिकित्सा करने का प्रबन्ध था [११]।

कनिंघम ने मयूर की पहिचान हरिद्वार और कनखल के बीच गँगाजी के पश्चिमी तट पर स्थित मायापुर कस्बे से कीहै [१]। उनका अनुमान है कि पहले सम्भवतः इस स्थान का दूसरा नाम मयूरपुर भी था [१३]। २ त्री के अनुसार मयूरनगर गँगाजी के पूर्वी तट पर बसाथा। इस सम्बन्ध में कनिंघम का अनुमान है कि पहले सम्भवतः मायापुर, कनखल से लेकर ज्वालापुर तक गँगाजी इन कस्बों से पश्चिम की ओर बहतीथी। पीछे गँगाजी ने अपना मार्ग बदलदिया [१४]। गँगाद्वार - मन्दिर से आगे गँगाजी की पुरानी धारा के चिह्न अब नहीं मिलते। उस स्थान पर हरिद्वार के भवन खड़ेहोगएहैं [१५]।

वाटर्स और स्मिथ कनिंघम की कल्पना से सहमत नहीं हैं। वाटर्स का कहना है कि चीनी शब्द Mo-yu-lo मायापुर का रूपान्तर नहीं होसकता [१६]। स्मिथ, कनिंघम द्वारा गँगाजी के मार्ग बदलने की कल्पना को अस्वीकार करतेहैं। उनका कहनाहै कि मयूर हरिद्वार के निकट गँगाजी के पूर्वीतट पर एक पृथक नगर था [१७]।

वाटर्स के अनुसार यात्री स्वयँ मयूरनगर में नहीं गयाथा। उसने मयूरनगर - सम्बन्धी सूचनाएँ दूसरों से पूछकर लिखीहैं [१८]। गँगाजी द्वारा अपना मार्ग बदलने के सम्बन्ध में कनिंघम की कल्पना को असम्भव नहीं मानसकते। यात्री के अनुसार मयूरनगर के पास स्वच्छ जल के नाले थे। यह सम्भव होसकताहै कि मयूरनगर की स्थिति गँगाजी की

१- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी, पृ० २८१

२- ११- वाटर्स — आन युआन् - च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३२८

१२-१५- कनिंघम — पूर्वोक्त, पृ० २६५-६६   १६- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२९

१७- स्मिथ — इटिनेरेरी आव युआन् - च्वाङ्, वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० २, पृ० ३३८

१८- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२९

वर्तमान नीलधारा के पूर्वीतट पर चण्डीघाट के आसपास रहीहो। मारकण्डेयपुराण के अनुसार शिवालिक की निचलीश्रेणी, जो अहोगङ्ग, गङ्गाद्वार के पास है, मयूरगिरि कहलातीथी [१]। इस श्रेणी के पदतल में आज भी कतिपय ऐसे स्थान है, जिनके नाम के साथ मोर (मयूर) जुड़ाहै। यहां पर्वत से उतरनेवाले स्वच्छजल के नालों का होना सम्भव था। मोरगिरि के बुद्धभक्तों के दान का उल्लेख पहले होचुकाहै [२]। चण्डीघाट के आसपास मीलों तक प्राचीन खण्डहर फैलेहैं, जिनमेंसे कुछ को काटकर गङ्गाजी बहालेगईहैं।

ब्रह्मपुर (नगर)—ब्रह्मपुरजनपद की राजधानी, ब्रह्मपुर (नगर) की परिधि २० लि से अधिक अर्थात् लगभग ३½ मील थी [३]। इस नगर की पहिचान के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है :—

१- एटकिनसन [४], ओकले [५] तथा राहुल [६] के अनुसार – बाड़ाहाट (उत्तरकाशी),
२- कनिंघम [७] और गुप्ते [८] के अनुसार – लखनपुर वैराटपट्टन;
३- सेंट मार्टिन [९] और मुकन्दीलाल के अनुसार – श्रीनगर ;
४- फूरर के [१०] अनुसार – लालढांग के पास पाण्डुवालासोत ;
५- कतिपय विद्वानों के अनुसार [११]– नजीबाबाद से १२ मील उत्तरपूर्व में बढ़ापुर।

बिजनौरजिले में गङ्गाजी के पूर्वीतट पर मुअजमपुरनारायण स्टेशन के पास आज भी एक ब्रह्मपुरगांव है, जहां एक खेड़ा (टीला) किसी प्राचीन नगर के खण्डहर का द्योतक अबतक विद्यमान है।

'यात्रावर्णन' का साक्ष्य — चीनीयात्री के अनुसार ब्रह्मपुरजनपद चारों ओर पर्वतों से घिराथा [१२]। अस्तु उसकी राजधानी पर्वतीयक्षेत्र में कहीं होनीचाहिए। इस जनपद की दक्षिणी सीमा मयूर या मतिपुर से पचास मील उत्तर की ओर थी [१३]। यात्री मयूर या मतिपुर से ब्रह्मपुर गयाथा [१४], तथा गोविषाण जाने से पूर्व वापिस मतिपुर आयाथा। उसकी गोविषाण की यात्रा मतिपुर से आरम्भ हुईथी [१५]। ऐसी अवस्था में ब्रह्मपुर की पहिचान लखनपुर वैराटपट्टन से नहीं होसकती। क्योंकि लखनपुर वैराटपट्टन से गोविषाण जाने केलिए पुनः मतिपुर आने की आवश्यकता नहीं है।

१- मारकण्डेयपुराण, ५५।१३
२- द्र० पृ० ११७
३- वाटर्स – आन युवान - च्वाङ्स ट्रैवल्स, जि० १, पृ० ३२९
४- एटकिनसन – हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, जि० २, पृ० ४५४
५- ओकले – होलि हिमालय, पृ० ९२
६- राहुल – गढ़वाल, पृ० ६८
७- कनिंघम – एनशिएंट जिग्रोग्राफी, पृ० २९९
८- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० ११४
९- एटकिनसन – पूर्वोक्त, पृ० ४५४
१०- मोन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ४५-४६
११- एटकिनसन – पूर्वोक्त, पृ० ४५४
१२- वाटर्स – पूर्वोक्त पृ० ३२९
१३- १४- वाटर्स – पूर्वोक्त, ३२९
१५- वाटर्स – पूर्वोक्त, पृ० ३३०

किन्तु मतिपुर से गोविषाण की यात्रा के सम्बन्ध में 'जीवनी' में कोई उल्लेख नहीं है [१]। 'यात्रावर्णन' और 'फङ्ची' के अनुसार यात्री मतिपुर से दक्षिण-पूर्व की ओर ४०० लि से अधिक या ६६ मील से अधिक चलकर गोविषाण पहुँचाथा [२]। 'जीवनी' ने एक और समस्या उत्पन्न करदीहै। उसके अनुसार यात्री ब्रह्मपुर से दक्षिण-पूर्व की ओर ४०० लि या ६६ मील से अधिक चलकर अहिच्छत्रा पहुँचाथा [३]। 'जीवनी' के इस उल्लेख के अनुसार ब्रह्मपुर को गोविषाण से अधिक दूर न होनाचाहिए। 'जीवनी' का यह उल्लेख बाड़ाहाट, श्रीनगर, पाण्डुवाला, लखनपुर वैराटपट्टन तथा मुअ्रजमपुरनारायण के पास ब्रह्मपुर मेंसे किसी भी स्थान पर नहीं घटता। अस्तु 'जीवनी' में गोविषाण के स्थान पर भ्रम से ब्रह्मपुर का उल्लेख हुआहै, ऐसा मानसकतेहैं।

तालेश्वर-शासनों का साक्ष्य— अलमोड़ाजिले में तालेश्वर नामक स्थान पर ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों के जो दो शासन प्राप्तहुएहैं, उनसे विदित होताहै कि पर्वताकरराज्य की राजधानी ब्रह्मपुर (नगर) धरती पर पुरन्दर (इन्द्र) की नगर के समान था [४]। ब्रह्मपुर (विषय=जिला) के अन्तर्गत कार्तिकेयपुर नामक ग्रामक (गँवाड़ा) था [५]। इस राज्य या नगर में अनन्त के अवतार वीरणेश्वर नामक नागदेवता का मन्दिर था। यह नाग पौरवनरेशों का आराध्य था [७]। इस राज्य में वरुणाश्रम, गोमतीसारी आदि स्थान तथा करवीरगर्ता (करवीरगाड), कपिलगर्ता (कपिलागाड) एवं पितृगङ्गा नामक नदी - नाले थे [६]। प्राचीन करवीरपुर बैजनाथ के निकट था, जहां परवर्ती कत्यूरीनरेशों की राजधानी थी।

लखनपुर से पहिचान— वीरणेश्वरनाग की पहिचान अनिश्चित है। शब्दसाम्य के आधार पर उसकी पहिचान अलमोड़ा में स्थित बेरीनाग से होसकतीहै। यदि गोमतीसारी का अर्थ गोमतीनदी के तट के शालिखेत वाला गांव लियाजाए तो बेरीनाग और गोमतीनदी के निकटवर्ती प्रदेश में बैजनाथ या बागेश्वर के आसपास प्राचीन ब्रह्मपुर की स्थित मानी-जासकतीहै। इसीके निकटप्रदेश में कनिंघम ने रामगँगा के तट पर स्थित प्राचीन लखनपुर वैराटपट्टन के खण्डहरों की पहिचान ब्रह्मपुर से कीहै [८]। ब्रह्मपुर की लखनपुर वैराटपट्टन से पहिचान 'यात्रावर्णन' से मेल नहीं खाती। इस स्थान तक यात्री को पहुँचाने केलिए कनिंघम को जो कल्पनाएँ करनी पड़ीहैं, उन्हें सँगत नहीं मानाजासकता। बेरीनाग के निकटवर्ती स्थानों के नाम ब्रह्मपुरशासनों के ग्रामनामों से नही मिलते। बेरीनाग इतना प्राचीन स्थान भी नहीं विदित होता।

१- वाटर्स — आन युअन - च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३३१
२- वाटर्स — पूर्वोक्त, ३३०
३- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३३२
४- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० १
५- 'ब्रह्मपुरे कार्तिकेयपुर ग्रामकः......' द्युतिवर्मन् का शासन, पं० २०
६- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० १, २
७- द्युतिवर्मन् और विष्णुवर्मन् के शासन
८- कनिंघम — एनशिएंट जियोग्राफी पृ० २९९ - ३००

बाड़ाहाट से पहिचान — एटकिनसन और राहुल ने ब्रह्मपुर की पहिचान बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) से कीहै। अपनी पहिचान के पक्ष में एटकिनसन का कहनाहै कि :-

बाड़ाहाट प्राचीन नगर है, जिसकी प्राचीनता बाड़ाहाट के त्रिशूल पर (राजा गुह तथा) अनेकमल्ल के लेखों से सिद्ध होतीहै [१]। यह स्थान मयूर (हरिद्वार) से ठीक पचास मील उत्तर में स्थित है। ब्रह्मपुर के जलवायु , उपज, खनिज तथा मतिपुर (मँडावर) और सुवर्णगोत्र एवँ उसकी स्थिति के सम्बन्ध में यात्री ने जो कुछ लिखाहै , वह बाड़ाहाट के सम्बन्ध में पूरी तरह सही निकलताहै [२]। बाड़ाहाट में प्राचीन वस्ती के अवशेष गँगाजी के उत्तर-पूर्व में, ऊँचीश्रेणी के पदतल में, जहां चौरस भूमि है, आज भी मिलतेहैं [३]।

यात्री ब्रह्मपुर से लौटकर मतिपुर गया और वहां से गोविषाण पहुँचा। यदि ब्रह्मपुर बाड़ाहाट में न होकर लखनपुर में होता तो उसे गोविषाण जानेकेलिए मतिपुर लौटने की आवश्यकता न थी। उसका मार्ग कोसी की घाटी से होकर गोविषाण पहुँचताथा [४]।

लखनपुर का प्राचीन नाम वैराट था। स्थानीय परम्परा के अनुसार कोसी की उपत्यका में ढ़िकुली के पास के खण्डहर उसके अवशेष मानेजातेहैं। लखनपुर में कत्यूरी-नरेशों की प्राचीन बस्ती थी , इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सातवीं शती में भी उनका निवास लखनपुर में था , यह मानना कठिन है [५]। क्योंकि शिलालेख, वँशावली और स्थानीय परम्परा के अनुसार लखनपुर की स्थापना तेरहवीं शती के आरम्भ में हुईथी [६]।

पांडुवाला सोत — बाड़ाहाट और श्रीनगर को ब्रह्मपुर मानने के विपक्ष में एक तर्क यह भी होसकताहै कि इसके निकट कोई ऐसा प्राचीन नागमन्दिर नहीं है, जिसकी पहिचान अनन्त के अवतार वीरणेश्वर से कीजासके। पाण्डुवाला सोत के पास अनन्त के अवतार लक्ष्मण ने तपस्या कीथी। वहां शेषनाग का स्थान है [७]। कनखल - नरेश दक्ष प्रजापति की पत्नी का नाम वीरिणी था [८]। उसके नाम का सम्बन्ध भी वीरणेश्वर से जोड़ाजासकताहै। पाण्डुवाला सोत की बस्ती की खुदाई में मुझे जो पात्र मिलेहैं, पुरातत्व विभाग ने उनकी तिथि चतुर्थ शती निर्धारित कीहै। युअन् - च्वाङ् जिनदिनों भारत में भ्रमण कररहेथे, उनदिनों पाण्डुवाला सोत की बस्ती का अस्तित्व था, ऐसा मानसकतेहैं। यह स्थान शिवालिकश्रेणी के पदतल में है।

आदिबदरी के निकट— केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार पिंडारनदी की उपरली घाटी में ब्रह्मपुत्रेश्वर नामक महाद्भुत शिवलिंग है [९]। उत्तर की ओर थोड़ी दूरी पर शिवजी के शिर पर निवास करनेवाले सारे नागों के मूलपुरुष अनन्तनाग का स्थान है [१०]।

२- २- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्टस, जि० २, पृ० ४५३

३-५- एटकिनसन — पूर्वोक्त, पृ० ४५४

६- एटकिनसन — पूर्वोक्त, पृ० ४५५

७- केदारखण्ड — १२३ । १०

८- आदिपर्व, ७५ । ६

९- केदारखण्ड, ७१।४० - ४१

१०- केदारखण्ड, ७१।४६ - ४७

यहीं पवित्र काबेरीनदी है, जिसमें पितरों का श्राद्ध - तर्पण करने से पितरों की अनन्तकाल तक तृप्ति होतीहै [१]। इसी घाट में ब्रह्मसर नामक दुर्लभ तीर्थ है, जहां महापुण्यदायक ब्रह्मेश्वर शिव का स्थान है [२]। यहां अति सुन्दर स्वर्णवर्ण वाला तथा मणि धारणकरनेवाला धनञ्जय नाग रहताहै [३]।

केदारखण्ड के पूर्वोक्त वर्णन में ब्रह्मपुर, अनन्तनाग का स्थान, काबेरी या करवीरगर्त्ता, पितृगँगा का उल्लेख पौरवनरेशों के शासनों के उल्लेख से मेलखाताहै। फिर भी अभी तक मुझे ऐसे प्रमाण नहीं मिलेहैं जिनके आधार पर ब्रह्मपुर की वास्तविक स्थिति का निश्चय कियाजासके।

गोविषाणनगर — गोविषाणजनपद की राजधानी गोविषाणनगर की परिधि १४ या १५ लि अर्थात् २½ मील थी [४]। प्रकृति ने ही इसे सुरक्षित दुर्ग का स्वरूप देदियाथा [५]। चारों ओर हरे - भरे वन और सरोवर थे [५]। जनसँख्या घनी और समृद्ध थी [६]। नगर के निकट ही अशोक द्वारा निर्मित एक स्तूप था। यह स्तूप उस स्थान पर खड़ाथा, जहां बुद्ध ने एक मास तक उपदेश दियाथा [७]। इसके अतिरिक्त यहां चार विगत बुद्धों की चंक्रमणभूमियां थीं। यहां दो स्तूप थे, जिनमें बुद्ध के केश और नख रखेहुएथे [८]।

मोरध्वज— मयूरध्वज या मोरध्वज का उल्लेख यात्री ने नहीं कियाहै। मोरध्वज स्तूप की खुदाई में प्राप्त वस्तुओं से विदित होताहै कि उसकी स्थापना सातवीं शती में कीगईथी। यह निश्चय रूप से कहना कठिन है कि स्तूप का आरम्भ हर्ष के राज्यकाल में होगयाथा या नहीं। हर्ष बौद्धमत को प्रोत्साहन देताथा। इसलिए यह असँभव नहीं कि स्तूप की स्थापना उसके राज्यकाल में हुईहो। उनदिनों मोरध्वज में और उसके निकटप्रदेश में घनी बस्ती थी। मोरध्वज के आसपास. चन्दनपुर आदि गांवों में दूर - दूर तक खेतों में उसीप्रकार की विशाल ईंटें मिलतीहैं, जिसप्रकार की ईंटों का प्रयोग मोरध्वजस्तूप के निर्माण केलिए हुआथा।

देवप्रयाग — चीनी यात्री ने देवप्रयाग का उल्लेख नहीं कियाहै। किन्तु वहां प्राप्त कतिपय अभिलेखों से विदित होताहै कि सातवीं शती में भी तीर्थयात्री देवप्रयाग पहुंचतेथे। देवप्रयाग के पास पलेठा नामक स्थान पर हर्ष की मृत्यु के कुछ ही वर्ष पश्चात् महाराजाधिराज कल्याणवर्मन् ने भानुमन्दिर का निर्माण कियाथा।

जलवायु— यात्री के अनुसार स्रुघ्न की जलवायु स्थाण्वीश्वर की जलवायु के समान थी [१०]। भाबरप्रदेश में स्थित होनेके कारण स्रुघ्ननगर थानेश्वरनगर के समान शुष्क जलवायुवाला रहाहोगा। किन्तु स्रुघ्नजनपद के ऊँचे भागों की जलवायु, जो हिमालय

१- केदारखण्ड, ७९।६० - ६३ २- केदारखण्ड, ८१।४५

३- केदारखण्ड, ८१।६९ ४- ७- वाटर्स — आन युवान - च्वाङ्स ट्रैवल्स, जि० १, पृ० ३३०

८- ९- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३३१ १०- वाटर्स — पूर्वोक्त पृ० ३१८

की ढालों पर थे, शीतल रहीहोगी। ब्रह्मपुर की जलवायु को भी यात्री ने कुछ ठण्डा बतलायाहै [१]। गोविषाण की जलवायु, तराई में स्थित होनेके कारण मतिपुर के जलवायु के समान थी [२]।

उपज— स्रुघ्न की मिट्टी स्थाण्वीश्वर के समान उपजाऊ थी। स्थाण्वीश्वर में होने वाली फसलें स्रुघ्न में भी होतीथीं [३]। ब्रह्मपुर की मिट्टी उपजाऊ थी। उसमें नियमितरूप से दो फसलें होतीथी [४]। गोविषाण में वे सब फसलें उत्पन्न होतीथीं जो गङ्गाजी के उत्तरी मैदान में, मतिपुर में होतीथीं [५]। इन प्रदेशों में धान, गेहूँ, जौ, चना, गन्ना, दालें, फल और साग - सबजियों को उत्पन्न कियाजाताथा [६]।

ब्रह्मपुरजनपद में ताम्बे और स्फटिक (rock crystal) की खानें थीं [७]। ब्रह्मपुरनगर तथा मयूरनगर में इनकी वस्तुएँ भी विक्रय केलिए बनाईजातीथीं। मयूरनगर में विक्रय केलिए आभूषण भी बनतेथे [८]। सुवर्णगोत्र (तिब्बत) के पिपीलिक, सुवर्णचूर्ण, चमर, ऊनी वस्त्र, ऊन, कस्तूरी, सुहागा, नमक और खनिजों का तथा शिलाजीत एवं जड़ी - बूटियों का व्यापार भी पर्वतवासी करतेथे। गढ़वाल के भारद्वाज अश्वों और तँगण (भोटिया) अश्वों की बड़ी मांग थी। हर्ष की सेना में तँगण या भोटिया अश्वों के पृथक सैनिकगुल्म थे। अश्वारोही उन घोड़ों की प्रशँसा करतेथे [९]। हर्ष की अश्वशाला में भारद्वाज अश्वों को भी स्थान दियागयाथा [१०]।

नगरों में हिमालय के हिम की बड़ी मांग थी। तीव्रज्वर के रोगियों के ललाट पर हिम लपेटतेथे [११]। तक्रादि की मटकियों को भी शीतल रखने केलिए पर्वतों से लाएगए हिम में लपेटकर रखतेथे [१२]।

निवासी— यात्री ने स्रुघ्न, ब्रह्मपुर, मयूर और गोविषाण में घनी जनसँख्या बतलाईहै। सम्भवतः यात्री का तात्पर्य इन नगरों की जनसँख्या से था, जनपदों की सारी औसत जनसँख्या से नहीं। ऊबड़ - खाबड़ पर्वतीय भागों में अवश्य जनसँख्या विरली रहीहोगी।

१- वाटर्स — आन युअन् च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० ३२९
२- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३३०
३- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३१८
४- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२९
५- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३३०
६- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० १७८
७- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२९
८- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२८
९- ' सरभसचरणनिपतन-निश्चलगमन-सुखायमान - खवखटस्तूयमानतुङ्गत तङ्गणगुणे '
— हर्षचरित, उ० ७, पृ० ३६०
१०- ' पश्च वनायुजैः आरट्टजैः काम्बोजैः भारद्वाजैः सिन्धुदेशजैः पारसीकैश्च ... ... '
— हर्षचरित, उ० २, पृ० १०६ - ७
११- १२- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २७६

यात्री के अनुसार स्रुघ्न के निवासी स्वभाव से ही विश्वासपात्र थे [1]। वे बौद्ध नहीं थे [2]। इसलिए उनकी विश्वस्तता के सम्बन्ध में यात्री का यह कथन और भी अधिक महत्व रखताहै। स्रुघ्ननिवासी विद्वानों का आदर करतेथे। तथा धार्मिक एवँ दार्शनिक विद्वानों के प्रति विशेष श्रद्धा रखतेथे [3]।

इसके विपरीत ब्रह्मपुर के निवासियों को यात्री ने बड़े रूखे स्वभाव का पाया [4]। विद्या और विद्वानों के प्रति उनके हृदय में कुछ भी आकर्षण न था। वे धन कमाने में ही मग्न रहतेथे [5]। जनपद में बौद्धमत के अनुयायी विरले थे।

गोविषाण के निवासी विश्वासपात्र और सत्यवादी थे [6]; वे विद्याध्ययन की ओर विशेष ध्यान देतेथे। उन्हें धार्मिक कृत्य करने में आनन्द आताथा। अधिकांश जनता बौद्धमत के प्रति श्रद्धा नहीं रखतीथी। और भौतिकजीवन को सुखमय बनाने के प्रयत्न में लीन रहतीथी [7]।

आश्रम-व्यवस्था— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ या परिव्राजक, तीन आश्रमों की स्थिति बनीहुईथी। बालक - बालिकाओं की शिक्षा - दीक्षा घर पर या ब्राह्मणों के छोटे - बड़े गुरुकुलों में होतीथी। ब्राह्मणों के गृह निरन्तर अध्ययन की ध्वनि से मुखरित होतेरहतेथे [8]। ब्राह्मण अँगों सहित वेदों का सम्यक स्वाध्याय करतेथे [9]। अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों का स्वाध्याय करके उन पर वाद - विवाद करतेथे [10]। ब्राह्मण अपने घरों पर बटुओं (ब्रह्मचारियों) को शिक्षा देतेथे। उनके छोटे - छोटे गुरुकुलों में प्रतिदिन वेदपाठ और व्याकरण पर व्याख्यान होतेथे। मीमांसा की चर्चा चलतीथी तथा सुभाषितों की रचना कीजातीथी [11]।

गुरुकुलों की दिनचर्या बड़ी रोचक होतीथी। उपाध्याय और उनके शिष्य थोड़े में सन्तोष करते तथा नित्य विद्या के विनोद में लगेरहतेथे। प्रातः स्नान करके वे तीर्थ की मृतिका और गोरोचन का तिलक करतेथे। आंवले का तेल मलकर शिखा पर पुष्प बांधतेथे। वे पान चबाते और आंखों में अँजन लगातेथे [12]।

सांयकाल को धूप समाप्त होने पर वल्कल बटोर लेतेथे। उपाध्याय की पत्नी अग्निहोत्र केलिए अग्नि तय्यार करतीथी। हरे - हरे श्यामाक के पुयाल की पूलियां छींटकर होमधेनुओं का दुहना आरम्भ होताथा। उपाध्याय हवन करतेथे। जटा बढ़ाएहुए बटुजन कृष्णाजिन ओढे पवित्र आसन पर बैठकर जप करतेथे। योगीजन ब्रह्म का ध्यान करतेथे [13]।

१- ३- वाटर्स — आन युवान - च्वाङ्स ट्रैवल्स, जि० १, पृ० ३१८
४- ५- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३२९
६- ७- वाटर्स — पूर्वोक्त पृ० ३३०
८- हर्षचरित, उ० २, पृ० ७७
९- १०- हर्षचरित, उ० २, पृ० १३५
११- १२- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १४४
१३- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १४५
१४- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १५७

बटुओं को भोजन और वस्त्र गुरुकुल में मिलतेथे। शिष्य गुरु के प्रति विशेष आदर प्रदर्शित करतेथे। गुरु के आसन का उल्लँघन वर्जित था [१]।

बौद्धमठों में बौद्धमत के सम्बन्धी ग्रन्थों का पठन - पाठन होताथा। महामयूरी - जैसे ग्रन्थों के माहात्म्य पर सभी मतावलम्बी विश्वास करतेथे [२]।

बिवाह प्राय: बड़ी आयु में होतेथे। पुरुषों को एक से अधिक बिवाह की छूट थी। अपने से छोटे वर्ण की नारियों से भी बिवाह करसकतेथे। बाण की एक सौतेली माता शूद्रवर्ण कीथी [३]। परदे की प्रथा न थी।

पुत्रजन्म का उत्सव धूमधाम से मनायाजाताथा। बच्चों की रक्षाहेतु उनके मस्तक पर सरसों रखते, गोरोचन का उवटन लगाते तथा व्याघ्र के नखों को चांदी - सुवर्ण में मढ़वाकर ग्रीवा में पहनातेथे [४]।

पति की मृत्यु पर कुछ नारियां सती होजातीथीं [५]। अशौच के दिनों में क्षौरकर्म नहीं करतेथे [६]। प्राय: उपवास रखतेथे [७]। शव का दाह करने पर प्रेतपिण्ड खानेवाले ब्राह्मण को भोजन खिलायाजाताथा। मृतक के उपयोग की वस्तुएँ उसे देदीजातीथीं। चिता की अवशिष्ट अस्थियां तीर्थो में मज्जित करने भेजीजातीथीं। चिता के स्थान पर चैत्य का चिह्न चूने की गजकारी से बनायाजाताथा [८]।

जनता का ज्योतिष और तन्त्र - मन्त्रों पर विश्वास था। ग्रह-सँहिताओं में पारँगत व्यक्तियों का बड़ा आदर होताथा [९]। साधुओं के आश्रमों में तथा गृहस्थों के गृहों में पुराणों का आदर से अध्ययन कियाजाताथा। कथावाचक पुराणों की कथा सुनातेथे [१०]।

भाषा— जनसाधारण की भाषा अपभ्रँश थी, उसे 'भाषा' भी कहतेथे। उसमें साहित्यसर्जन होताथा। बाण का एक मित्र ईशान 'भाषा-कवि' था [११]। सारे देश में राजकार्य सँस्कृतभाषा में होतेथे। नगरों में, सम्भ्रान्त परिवारों में, बोलचाल में सँस्कृत का प्रयोग होताथा। विद्यालयों के सँस्कृत की शिक्षा दीजातीथी। 'भाषा' के शब्द सँस्कृत में घुसनेलगेथे।

उत्तराखण्ड में सातवीं शती ईसवी के शिलालेख शुद्ध सँस्कृत में हैं। इनसे विदित होताहै कि उत्तराखण्ड में सँस्कृत के पठन - पाठन की सुव्यवस्था थी। सँस्कृत के ललित छन्दों में रचना करनेवाले कवि उपलब्ध थे।

पाशुपत-कापालिक— अनेक मत - मतान्तरों का प्रचार था। उनमें पाशुपत शैव,

---

१- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १८०
२- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २६६
३- हर्षचरित, उ० १ पृ०
४- हर्षचरित, उ० ४, पृ० २२८
५- हर्षचरित, उ० ४, पृ० २७८
६- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३१०
७- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३१३
८- हर्षचरित, उ० ६, पृ० ३०८
९- हर्षचरित, उ० ४, पृ० २१८
१०- चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ० ३८२
११- हर्षचरित, उ० १,

कापालिक, पांचरात्रिक, भागवत, लोकायतिक (चार्वाक), बौद्ध तथा जैन मुख्य थे[१]।

पाशुपत या शैवों का शिव के शान्त और रौद्र दोनों स्वरूपों के प्रति विशेष आकर्षण था। अनेक दाक्षिणात्य शैव उपासक उत्तरभारत में आकर चण्डिका, शिव, भैरव आदि के मन्दिरों में रहनेलगेथे[२]। उनकी विचित्र - रीतिनीतियों और विकट तपस्या का जनता पर विशेष आतँक और प्रभाव पड़ताथा। उत्तराखण्ड के प्रति शैवसाधकों केलिए विशेष आकर्षण था।

शैव साधु प्रातः ही स्नान करतेथे, तथा अष्टमूर्ति को अष्ट मालाएँ और पुष्पिका अर्पित करके, अग्निहोत्र सम्पन्न करतेथे। वे मैनसिल का तिलक लगाते, ललाट पर भस्म का त्रिपुण्ड बनाते और अपनी शिखा के जटापाश में रुद्राक्ष और शँख की पुटिका धारण करतेथे[३]। वे कानों में स्फटिक के भारी कुण्डल पहनतेथे[४]। उनके बांयें हाथ में लोहे के कड़े में पिरोया शँख का टुकड़ा होताथा जिसमें अनेक ओषधियों के साथ मन्त्र लिखे पत्र बँधेहोतेथे। दहिने हाथ से वे रुद्राक्ष की माला जपतेरहतेथे[५]। वे कोपीन धारण करते, खड़ाऊँ पहनते और वीरासन लगातेथे[६]। वे अपने पास बांस की वैशाखी रखतेथे। तथा अनेक नदियों और पुण्यतीर्थों में स्नान करतेहुए विचरतेथे[७]।

विकट साधना करनेवाले शैव धन की ओर दृष्टिपात न करते, धन केलिए देह न वेचते, केवल भिक्षा से निर्वाह करतेथे। वे शास्त्राभ्यास कम करतेथे, केवल अपने सम्प्रदाय के ग्रन्थों एवँ पूजापद्धतियों का अभ्यास करतेथे[८]।

वे विधिपूर्वक शैव दीक्षा लेतेथे[९]। वे काली माला, काला वस्त्र तथा काला चन्दन धारण करके महाश्मशान में महाकालहृदय नामक शक्तिशाली महामन्त्र का एक कोटि जप करतेथे[१०]। उनकी साधनाभूमि निर्जन, गम्भीर और भयँकर होतीथी। उसे वे वलिदीप से प्रकाशित करते, तथा गुग्गुल के धुएँ की सुगन्धि से भरतेथे। अग्नि में रक्षासर्षप फेंककर भस्म से पूरेगए महामण्डल के मध्य में वे साधनाकरने बैठतेथे[११]। तब वे रक्तचन्दन से चर्चित लाल माला धारण करते, तथा लाल वस्त्र से अलँकृत होकर उतानपड़े शव की छाती पर बैठकर उसके मुख में अग्नि जलाकर हवन करतेथे[१२]।

वेताल - साधना में वे रुधिर की वलि चढ़ातेथे, और वेतालों की जिह्वाएँ लपलपाकर उसे चाटतीथीं[१३]। वे असुर - विवरप्रवेश - जैसी विकट एवँ रहस्यपूर्ण साधनाएँ करतेथे। तथा श्मशान से महामांस (मनुष्य - मांस) लाकर अपने इष्टदेव को अर्पित करतेथे[१४]।

१- हर्षचरित, उ० ८, पृ० ४२३
२- हर्षचरित, उ० ५, पृ० १७१
३- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १७५
४- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १७६
५- ६- हर्षचरित, उ० ५, पृ० १७७
७- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १७८
८- हर्षचरित, उ० ३, पृ० ३८० - ८१
९- १०- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १८२
११- १२- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १८८
१३- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १८५
१४- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १७५

गृहस्थीजन शिवपूजा में गुग्गुल की धूप, दुग्धस्नान तथा विल्वपत्र की मालाएं अर्पित करतेथे [१]। श्रद्धालु भक्त शिवमन्दिरों में श्वेत वृषभ, स्नान करने के कलसे, अर्घ्य के पात्र, धूप के पात्र, उत्तम वस्त्र, यष्टिप्रदीप, यज्ञोपवीत और शिवलिङ्ग पर चढ़ाए जानेवाले मुखकोष श्रद्धा और वित्त के अनुसार अर्पित करतेथे [२]।

अनिष्ट के निवारण केलिए रुद्र - एकादशी का पाठ करवाते तथा भगवान् शंकर को दुग्ध के सहस्त्र कलसों से स्नान करवातेथे [३]। अपने शिर पर गुग्गुल जलाकर भी महाकाल की करुणा आकर्षित करने का प्रयत्न कियाजाताथा [४]। शँकर की आराधना उपवास रखकर करने से शीघ्र फल देतीहै, ऐसा विश्वास था [५]।

सौर— शिव के पश्चात् दूसरा बहुमान्य देवता सूर्य था। हर्ष के पूर्वपुरुष शैव और सौर थे। सूर्य की उपासनाकरनेवाले सौर कहलातेथे। वे सूर्योदय के समय स्नान करते, श्वेत दुकूल पहनते, शिर को श्वेतवस्त्र से ढकते, पूर्व की ओर मुख करके, घुटनों के वल बैठकर, रक्तकमल से तथा कुंकुम से बनाएहुए सूर्यमण्डल में अर्घ्य देतेथे। वे प्रातः मध्याह्न तथा सांयकाल को आदित्यहृदय का जप करतेथे [६]। उत्तराखण्ड में सूर्यपूजा बहुप्रचलित थी। इसी शती में पलेठा के भानुमन्दिर का निर्माण हुआथा।

जनसाधारण का विश्वास था कि विष्णु और शिव के विभिन्न रूपों तथा महाकाल, सूर्य, ग्रह, चण्डिका [७], सप्तमातृका [८], कुलदेवता [९] आदि की पूजा करने से कष्टों का हरण होताहै। यक्षों की पीड़ा की शान्ति केलिए महामयूरी ग्रन्थ का पाठ कियाजाताथा [१०]। भूतों से रक्षा केलिए उन्हें वलि देतेथे [११]। राजा - जैसे शक्तिशाली व्यक्तियों की प्राण रक्षाहेतु मनुष्य का वलिदान कियाजाताथा [१२]। तथा देवताओं को महामांस अर्पित कियाजाताथा [१३]। वेताल को मनुष्य का मुण्ड अर्पित कियाजाताथा [१४]।

जैन — जैन साधु अल्पाहार करतेथे [१५]। प्रायः वे स्नान कम करतेथे। कुछ नँगे रहते और मैल बटोरतेथे [१६]। कुछ श्वेतपट धारण करतेथे [१७]। उत्तराखण्ड में इन दिनों जैनमत के व्यापक प्रसार के प्रमाण नहीं मिलते।

बौद्ध—बौद्धमत का ह्रास होरहाथा। बौद्धमठों में राजाओं और धनिकों द्वारा अर्पित अपार सम्पत्ति थी। हर्ष स्वयँ बौद्धमत और महायान का सँरक्षक था। प्रति पांचवें वर्ष अपने राज्यकोष का अधिकांश वह बौद्धों में वितरित करदेताथा। बौद्ध मठाधीश

१- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १७०
२- हर्षचरित, उ० ३, पृ० १७१
३- हर्षचरित, उ० ५ पृ० २८०
४- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २६३
५- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २६३
६- हर्षचरित, उ० ४, पृ० २०८
७- ८- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २६३
९- ११- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २६५
१२- हर्षचरित, उ० ४, पृ० २१८
१३-१४- चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ० ३८२
१५- हर्षचरित, उ० ५, पृ० ३०२
१६- हर्षचरित, उ० ५, पृ० २६१
१७- हर्षचरित, उ० ८, पृ० ४५३

वर्तमान मण्डलेश्वरों के समान आनन्द का जीवन व्यतीत करतेथे। वे हाथियों पर सवारी करतेथे [१]।

सम्भवतः मठों में वज्रयान का प्रारम्भिक स्वरूप विकसित होनेलगाथा। तारा की विशाल प्रतिमाएँ बननेलगीथीं [२]। बोधिवृक्ष और स्तूपों की पूजा होतीथी [३]। स्तूपों के सम्बन्ध में अनेक अलौकिक चमत्कारों की कथाएँ प्रचलित थीं [४]। रोग और कष्टों की निवृत्ति-हेतु श्रद्धालु जनता दूर-दूर से आकर स्तूपों की पूजा और परिक्रमा करतीथी [५]। मठों की इससे बड़ी आय होतीथी। मठों में यदि बुद्ध या किसी अर्हंत के दांत, नख, केश, कमण्डलु आदि होते तो दर्शनार्थियों से निश्चित राशि लेकर उनके दर्शन कराए जातेथे [६]। हिन्दुतीर्थों के वर्तमान पण्डों के समान उनदिनो बौद्ध मठाधीशों ने अर्हंतों या बुद्ध के अवशेषों को अपनी आय का साधन बनालियाथा।

देश में बौद्ध विद्वानों की कमी न थी। जनता की उनके प्रति अपार श्रद्धा भी थी। फिर भी बौद्धमत का वेग से ह्रास होरहाथा। स्रुघ्नजनपद के अधिकांश निवासी हिन्दु थे, बौद्ध नहीं [७]। नगर में पांच बौद्ध मठ थे। जिनमें १००० से अधिक भिक्षु रहतेथे। उनमें से अधिकांश हीनयानी थे। उनमें से थोड़े-से ही महायान या अन्य निकायों के प्रति श्रद्धालु थे [८]।

स्रुघ्ननगर के भिक्षु विद्वान् और बुद्धिमान थे। वे दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या प्रशँसनीय ढंग से करतेथे। दूसरे जनपदों से अनेक प्रख्यात भिक्षु भी अपनी शँकाओं का समाधान करनेहेतु उनके पास पहुँचतेथे।

स्रुघ्ननगर में उनदिनों बौद्धमत के प्रकाण्ड विद्वान् जयगुप्त रहतेथे। यात्री ने सारे शीतकाल में, तथा अगली बसन्त के पूर्वार्द्ध तक स्रुघ्ननगर में जयगुप्त के पास टिककर विभाषा और सौतान्त्रिक सिद्धांतों का अध्ययन कियाथा [९]।

उनदिनों सर्वसाधारण का विश्वास था कि बुद्ध भगवान् अपने जीवनकाल में स्रुघ्न पहुँचेथे और उन्होंने एक ब्राह्मणकुमार इन्द्र के मोह को दूर कियाथा। इस कथा का उल्लेख दिव्यावदान में भी है [१०]। कहतेहैं कि बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् यहां के निवासियों ने जब बौद्धमत को त्यागदिया तो विभिन्न स्थानों के बौद्ध आचार्यों ने आकर यहां तीर्थिकों और ब्राह्मणों को हराकर, पुनः बौद्धमत की स्थापना कीथी। जिस स्थान पर शास्त्रार्थ हुएथे, उस स्थान पर इस धम्मविजय की स्मृति में पांच बौद्धमठों की स्थापना कीगईथी [११]। किन्तु युअन्-च्वाङ् के समय तक स्रुघ्न में बौद्धमत लगभग समाप्त

१- वाटर्स --- आन युअन् च्वाङ्स ट्रैवल्स इन इण्डिया, जि० १, पृ० १६२

२- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० १०७

३-५- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० २०४

६- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० १६८

७-८- वाटर्स --- पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३१८

९- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२१-२२

१०- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, पृ० ३२२

११- वाटर्स — पूर्वोक्त, जि० १, ३१९

होगयाथा। अधिकांश जनता ने हिन्दुधर्म अपनालियाथा। नगर में (तथा जनपद) में एक सौ देवमन्दिरों की स्थापना होचुकीथी [१]।

मयूर के अधिकांश निवासी हिन्दू थे। उनका गङ्गाजी की पावनता पर दृढ़ विश्वास था [२]। ब्रह्मपुरजनपद में बौद्धमतावलम्बियों की सँख्या सर्वथा नगण्य थी। यद्यपि वहां पांच बौद्धमठ थे। किन्तु उनमें रहनेवाले भिक्षुओं की सँख्या अत्यल्प थी [३]। हिन्दुधर्म की ओर विशेष आकर्षण था। हिन्दुदेवताओं के दस मन्दिर थे। विभिन्न सम्प्रदायों के लोग मिलजुलकर रहतेथे [४]।

गोविषाण की अधिकांश जनता बौद्धमत को नहीं मानतीथी [५]। वह अपने भौतिक सुखों को जुटाने में व्यस्त रहतीथी [६]। नगर में दो बौद्धमठ थे, जिनमें एक सौ से अधिक भिक्षु रहतेथे। वे सभी हीनयानी थे [७]। जनता में हिन्दूधर्म के प्रति विशेष आकर्षण था। हिन्दुदेवताओं के मन्दिरों की सँख्या तीस से अधिक थी। विभिन्न सम्प्रदायों के लोग मिलजुलकर रहतेथे [८]।

बाण और युअन् - च्वाङ् के वर्णन से विदित होताहै कि शैवमत ने उनदिनों उस स्वरूप को ग्रहण करलियाथा, जिसका विकास आगे चलकर नाथपन्थ में हूआ। बौद्धमठों में वज्रयान अँकुरित होनेलगाथा, जिसका विकास सिद्धसम्प्रदाय में हुआ। बौद्धमत उत्तराखण्ड और उसके पास - पड़ोस में अपनी मान्यता खोचुकाथा। अधिकांश जनता पँचस्मार्त हिन्दुधर्म को माननेवालीथी। साधु - महात्माओं तथा साधकों के चमत्कारों के प्रति जनता में विशेष आकर्षण था।

गँगाजी की पावनता पर जनसाधारण का दृढ़ विश्वास था। गँगाजी को पुण्योदक मानाजाताथा [९]। मान्यता थी कि गँगाजी में स्नान करने से जन्म - जन्मान्तर के पाप नष्ट होतेहैं [१०]। गँगाजी में थपथपी लगाकर लहरें उठाने और जल को स्रोत की ओर धकेलने से पतितों का उद्धार होताहै [११]। जिनकी अस्थियां गँगाजी में डालीजातीहैं, उन्हें नरक नहीं जानापड़ता [१२]। मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग का सुख पाने केलिए अनेक व्यक्ति गँगाजी में डूबकर प्राणान्त करतेथे [१३]। यात्री के इस कथन की पुष्टि समकालीन अनेक स्मृतिवाक्यों और अभिलेखों से भी होतीहै। कुछ लोग गंगाद्वार में या उत्तराखण्ड के तीर्थों में पहुँचकर अनशन करके प्राणत्याग करतेथे। इसकी पुष्टि जोधपुरनरेश बाउक के

१- वाटर्स — आन युअन - च्वाङ्स ट्रैवल्स, जि० १, पृ० ३१८

२- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३१६

३- वाटर्स — पूर्वोक्त पृ० ३२६

४- ५- वाटर्स — पूर्वोक्त, ३३०

६- ७- वाटर्स — पूर्वोक्त, ३३१

८- १३- वाटर्स — पूर्वोक्त, पृ० ३१६

सं० ७०७ वि० (650 ई०) के लगभग के शिलालेख से भी होतीहै [१]।

उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा सुप्रचलित थी। बाण ने श्लेष से शीतऋतु के अन्त में उत्तर में हिमालय की ओर जानेवाली जात (तीर्थयात्रा) का उल्लेख कियाहै [२]। शैवमत की सार्वभौमता के साथ भृगुपँथ - केदारनाथ की यात्रा बहुप्रचलित होगईथी। भृगुपँथ से निकलनेवाली तथा केदारनाथ के निकट से बहनेवाली मन्दाकिनी को गङ्गाजी की शाखाओं में सबसे अधिक पुनीत समझाजाताथा। मान्यता थी कि मन्दाकिनी कैलास, मन्दराचल और सुमेरुपर्वत से होकर बहतीहै [३]। उसके तट पर सिद्ध, विद्याधर, वालखिल्य तथा सप्तर्षियों का वास है [४]। सिद्धलोग उसके तट पर बालुका के शिवलिङ्ग बनाकर पूजतेहैं [५]। उसके तट पर पितरों को तिलोदक तथा पिण्डदान देना अति पुनीत कृत्य समझाजतााथा [६]।

भृगुपँथ से कूदकर प्राणत्याग करना बड़ा पुनीतकृत्य मानाजाताथा [७]। जो लोग ऐसा साहस नहीं करसकतेथे वे तीर्थ में कुश बिछाकर, आहार त्यागकर, प्रायोपवेशन के लम्बे उपवास करतेथे [८]। चारों ओर अग्नि जलाकर, पंचाग्नि तपतेथे अथवा मौनव्रत ले हिमालय की शरण में रहतेथे [९], और वहीं बसजातेथे [१०]।

अनुमानित तिथि-क्रम

कर्तृपुर के नागवँशी नरेश	सँ० ५४२ - ६३३ वि० (415 - 576 ई०)
सिंहपुर का यादव - राजवँश	सँ० ५१७ - ६७७ वि० (460 - 620 ई०)
तोरमाण-मिहिरकुल	सँ० ५४२ - ५८९ वि० (485 - 532 ई०)
यशोधर्मन्	सँ० ५८७ - ५९७ वि० (530 - 540 ई०)
मौखरि-अधिकार	सँ० ६३३ - ६६३ वि० (576 - 606 ई०)
सम्राट हर्षवर्द्धन्	सँ० ६६३ - ७०४ वि० (606 - 647 ई०)

१- 'यूना राज्यं कृतं येन पुनः पुत्राय दत्तवान्।
गङ्गाद्वारं ततो गत्वा वर्षाण्यष्टादश स्थितः ॥
अन्ते चानशनं कृत्वा स्वर्गलोकं समागतः ।
— बाउक का जोधपुर - शिलालेख, पंक्ति, १६

२- 'हिमदग्ध सकलकमलिनीकोपेनेव हिमालयाभिमुखीं यात्रामदादंशुमाली'।
— हर्षचरित, उ० २, पृ० ८०

३- हर्षचरित, उ० १, पृ० ३३ - ३४
४- हर्षचरित, उ० १, पृ० ३२ - ३३
५- हर्षचरित, उ० १, पृ० ३३
६- हर्षचरित, उ० १, पृ० ३२ - ३३
७- १०- हर्षचरित, उ० ५, पृ० ३०२

देवप्रयाग के वर्मन् और वर्द्धन्

हर्ष के पश्चात्— सं० ७०४ वि (६४७ ई०) में हर्ष की मृत्यु होगई। उसका कोई पुत्र न था। न उसने किसी सुयोग्य व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कियाथा। फलतः उसकी मृत्यु होतेही उसके साम्राज्य के अन्तर्गत उथल - पुथल मचगई। स्थानीय शासक अपने लिए स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना में जुटगए। उसके साम्राज्य के सीमान्त पर स्थित राज्यों के शासकों ने अपने राज्य के पड़ोस में स्थित हर्ष के साम्राज्य के कतिपय प्रदेशों पर अधिकार करलिया। कामरूपनरेश ने अपनी राज्यसीमा पश्चिम और दक्षिण की ओर बढ़ाली। मगध में परवर्ती गुप्तनरेश आदित्यसेन ने अपनी शक्ति बढाली और महाराजाधिराज का विरुद धारण करलिया।

भोट (तिब्बत) तथा नेपाल का आक्रमण— भारत में अभीतक कोई ऐसी पुरातात्विक या साहित्यिक सामग्री नहीं मिलीहै, जिससे हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कान्यकुब्ज और स्थाण्वीश्वर की समकालीन राजनीतिक स्थिति का निर्णय होसके। हर्ष की मृत्यु से लगभग ७५ वर्ष पीछे तक पांचाल - कान्यकुब्ज के किसी शक्तिशाली नरेश का पता भारतीय इतिहास से नहीं लगता।

चीन के कतिपय ऐतिहासिक ग्रन्थों से पता चलताहै कि हर्ष ने अपने राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में चीन के सम्राट के पास अपना शिष्टमण्डल भेजाथा। उसके उत्तर में चीन के सम्राट ने वाङ् - ही के नेतृत्व में अपना शिष्टमण्डल भेजा। जब चीनी शिष्टमण्डल तिब्बत-नेपाल होकर भारत में पहुँचा, तबतक हर्ष की मृत्यु होचुकीथी। और चीनी स्रोतों के अनुसार उसके सिंहासन पर अर्जुन या अरुणाश्व नामक किसी व्यक्ति ने अधिकार करलियाथा [1]।

अर्जुन ने चीनी शिष्टमण्डल के नेता का स्वागत करने के विपरीत उसे बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। वाङ् - हि ने भागकर तिब्बतनरेश स्रोङ् - गचन् - गसुम् - पो तथा

१- उ० क्लासिकल एज, पृ० १२४

नेपालनरेश अँशुवर्मन् से सहायता मांगी। तिब्बत के १२०० सैनिकों[१] तथा नेपाल के ७००० अश्वारोहियों की सहायता से वाङ्-हि ने मध्यदेश की राजधानी cha-puo-ho-lo पर अधिकार करलिया। दुर्ग के तीन सहस्र व्यक्ति मारेगए तथा दस सहस्र नदी में डुबाएगए। अर्जुन को बन्दी बनालियागया। उसके एक सहस्र सैनिकों के शिर काट डालेगए[२]। Kien-to-wei नदी के पास दूसरे युद्ध में वाङ्-हि ने अर्जुन के अन्त:पुर के रक्षक सैनिकों को पराजित करके उसके स्त्री-बच्चों को तथा बारह सहस्र व्यक्तियों को बन्दी बनालिया। और उनके तीन सहस्र पशु छीनलिए।

सारा भारत आतँकित होगया। दुर्गों से घिरे ५८० नगरों ने वाङ्-हि की अधीनता स्वीकार करली। सँ० ७५० वि० (648 ई०) में अर्जुन को बन्दी रूप में अपने साथ लेकर वाङ्-हि चीनदेश लौटगया[३]।

हिमालय पर भोट के अधिकार की कल्पना— चीनी ग्रन्थों के इस वर्णन के आधार पर पहले कल्पना कीजातीथी कि सम्भवत: इनदिनों सारे हिमालयप्रदेश पर तिब्बत का अधिकार होगयाथा। किन्तु अब विद्वानों की धारणा है कि cha-puo-ho-lo मध्यदेश की राजधानी का नाम नहीं होसकता। यह नाम तीरभुक्ति (तिरहुत) का तथा Kien-to-wei गण्डकीनदी का चीनी रूपान्तर है[४]। भोट और नेपाल की सेना की सहायता से नेपाल की दक्षिणी सीमा पर स्थित तिरहुत के किसी शासक से वाङ्-हि की झड़पहुईथी। मध्यदेश की राजधानी कान्यकुब्ज तक भोट और नेपाल की सेना के पहुँचने की कल्पना सर्वथा निराधार और असम्भव है[५]।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् ७५ वर्ष तक मध्यदेश के किसी शक्तिशाली नरेश का पता अभीतक नहीं लगाहै। यह भी विदित नहीं है कि इस लम्बी अवधि में इस भूभाग पर किन छोटे-बड़े नरेशों का शासन रहा। आठवीं शती विक्रमी के उत्तरार्द्ध में, किसी समय कान्यकुब्ज में एक शक्तिशाली नरेश यशोवर्मन् हुआ, जिसने अपने राज्य की सीमा चारों दिशाओं में बढ़ाने का प्रयत्न किया। किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् फिर २० - २५ वर्ष तक कान्यकुब्ज के किसी नरेश की सूचना नहीं मिलती।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक की अवधि में उत्तराखण्ड के इतिहास केलिए भी पहले कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध न थी। स्रोङ्-गचन्-गसम्-पो से आतँकित होकर नेपालनरेश अँशुवर्मन ने उसे अपनी कन्या प्रदान कीथी[६] और सम्भवत: उसकी अधीनता भी स्वीकार कीथी। नेपाल के इतिहास से विदित होताहै कि उस देश के नरेश अपनी सुविधानुसार समय-समय पर तिब्बत के शक्तिशाली नरेशों की अधीनता या उनके प्रभावक्षेत्र में रहना स्वीकार करलेतेथे।

नरेन्द्रदेव लिच्छवि ने, जो हर्ष की मृत्यु से लगभग तीन - चार वर्ष पूर्व तिब्बतनरेश

१- द्र० रिचर्डसन — तिबेट ऐंड इट्स हिस्टरी, पृ० २६

२- ५- क्लासिकल एज, पृ० १२४

६- राहुल — तिब्बत में बौद्धधर्म, पृ० ६

की सहायता से नेपाल के सिंहासन पर बैठाथा, तिब्बतनरेश की अधीनता स्वीकार कीथी [१]। तिब्बत-नरेश ने गिल्गित तक भी अपनी सत्ता का प्रसार कियाथा [२-३]। इससे विद्वानों की धारणा होगईथी कि हर्ष की मृत्यु के पश्चात् की दो शताब्दियों तक असम से गिल्गित तक का सारा हिमालय तिब्बतीनरेशों के प्रभावक्षेत्र में रहा [४]। यहां के निवासियों की भाषा पर तिब्बती भाषा की और मुखों पर मंगोल-मुखमुद्रा की छाप इन्हीं दो शताब्दियों में चिरस्थायी रूप से पड़ी [५]। तिब्बत के सम्राटों ने नेपाल और भारत में हिमालय की ढालों पर बसी पहाड़ी जातियों को अपने प्रभावक्षेत्र में लेलिया और उत्तरी वर्मा तक छापे मारनेलगे [६]।

पलेठा के शिलालेख— अब पलेठा और तालेश्वर के अभिलेखों की प्राप्ति से इस कल्पना का खण्डन होगयाहै। देवप्रयाग के पास पलेठा नामक स्थान के शिलालेखों की ओर मेरे द्वारा बार-बार पुरातत्वविभाग का ध्यान आकर्षित कराएजाने पर पुरातत्वविभाग ने पिछले वर्ष उनकी प्रतिलिपियां लेलीहैं। ये शिलालेख सूर्य और बुधमन्दिर के बाहर पड़ी शिलाओं पर हैं। इनमें आदिवर्मन्, परम भट्टारक महाराजाधिराज कल्याणवर्मन्, आदित्यवर्द्धन् तथा करकवर्द्धन् का उल्लेख है [८]। लिपि के आधार पर इन नरेशों को सातवीं शती ईसवी सँ० ६५८-७५७ बि० (601 - 700 ई०) का मानागयाहै। इसलिए इन नरेशों ने हर्ष की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग पर शासन कियाहोगा।

तालेश्वर-शासन— अलमोड़ाजिले के तालेश्वर नामक स्थान पर खेतों की दीवारों (भींड़ा) की मरोम्मत करते समय खुदाई में दो ताम्रशासन पाप्तहुएहैं, जिनके अनुसार उत्तराखण्ड के पर्वताकरजनपद पर पांच पौरवनरेशों ने शासन कियाथा। इन नरेशों में से तीन का विरुद परम भट्टारक महाराजाधिराज था। लिपि के आधार पर इन शासनों को गुप्ते ने ईसा की छटी शती से आठवीं शती तक मानाहै [७]। मध्यदेश की समकालीन राजनीतिक परिस्थिति को देखतेहुए इन पौरवनरेशों का राज्यकाल हर्ष के राज्यकाल के पश्चात् तथा कान्यकुब्जनरेश यशोवर्मन् के राज्यकाल सँ० ७८२-८०९ वि० (725 - 752 ई०) से पूर्ववर्ती मानाजासकताहै।

लिपि के आधार पर अनुमान लगताहै कि देवप्रयाग और पर्वताकर के नरेशों के वँशस्थापकों ने हर्ष की मृत्यु के पश्चात् अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करदीथी। आरम्भ में देवप्रयाग के नरेशों का उत्तराखण्ड के दक्षिण-पश्चिमी भाग पर तथा पौरवनरेशों का उत्तरपूर्वी भाग पर अधिकार रहाहोगा। सम्भवत: इन दोनों राजवँशों के आरम्भिक नरेश समसामयिक थे। सम्भवत: जिनदिनों आदिवर्मन ने देवप्रयाग के आसपास अपने राज्य की

१- क्लासिकल एज, पृ० १३० से १३७ टि०   २- राहुल --- तिब्बत में बौद्धधर्म, पृ० ५

३- रिचर्डसन — तिबेट ऐंड इट्स हिस्टरी, पृ० २९

४-५- राहुल — गढ़वाल, पृ० ६९   ६- रिचर्डसन — पूर्वोक्त, पृ० २९ - ३०

७- ऐनुयल रिपोर्ट ग्रान इण्डियन एपिग्राफी, १९६८ - ६९

स्थापना कीथी, उन्हीं दिनों विष्णुवर्मन् प्रथम ने पर्वताकर में पृथक् राज्य की नीव डालीथी। विष्णुवर्मन् प्रथम और वृषवर्मन् सीमित शक्तिवाले नरेश थे। सम्भव है परमभट्टारक महाराजाधिराज कल्याणवर्मन् का अधिकार या प्रभावक्षेत्र अपने समकालीन वृषवर्मन् के शासितप्रदेश पर्वताकर पर भी रहाहो। किन्तु निश्चितरूप से कुछ कहना कठिन है।

आदिवर्मन्

सामग्री का अभाव— पलेठा में प्राप्त पहला शिलालेख, जो बुधमन्दिर के बाहर की शिला पर अंकित कियागयाथा, बारह सौ वर्षों की धूप और वर्षा के कारण घिसगयाहै। उसकी बांई ओर का आधा भाग इतना घिसचुकाहै कि उसे पढ़ना कठिन है। शेष भाग के जो अंश पठनीय हैं, उनमें आदिवर्मन्, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर कल्याणवर्मन्, आदित्यवर्द्धन् और उसके दौहित्र करकवर्द्धन् के नाम पढेगएहैं[२]। पूरा शिलालेख अभीतक प्रकाशित नहीं हुआहै।

उपलब्ध अति सँक्षिप्त सूचना के आधार पर आदिवर्मन् के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। अनुमान लगताहै कि सम्भवतः आदिवर्मन् इस राजवंश का सँस्थापक था। उसके वँश के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। केवल वर्मन् नामान्त के आधार पर उसका मौखरि, पौरव या अन्य राजवँशों से सम्बन्ध नहीं जोड़ाजासकता। उनदिनों वर्मन् नामान्त के नरेश अनेक राजवँशों में हुएथे।

अनुमान लगताहै कि आदिवर्मन् हर्ष के राज्यकाल में उत्तराखण्ड के दक्षिण-पश्चिमी भाग का शासक था। यदि यह अनुमान सत्य भी हो तो भी यह कहना कठिन है कि आदिवर्मन् का शासितप्रदेश कहां तक फैलाथा। अभीतक इन नरेशों के कोई अन्य अभिलेख नहीं मिलेहैं और न किसी अन्य स्रोत या मुद्रा आदि से उनके सम्बन्ध में कोई सूचना मिलसकीहै।

हर्ष के समय उत्तराखण्ड का दक्षिण-पश्चिमी भाग स्रुघ्नजनपद के अन्तर्गत था। जिसकी पूर्वी सीमा गङ्गाजी के तट तक पहुँचीथी। देवप्रयाग, अलकनन्दा और भागीरथी के सँगम पर बसा है। सम्भवतः यह नगर स्रुघ्नजनपद की धुरपूर्वी सीमा पर स्थित था।

राजधानी— पलेठा नामक स्थान टिहरी गढ़वाल में देवप्रयाग तहसील के अन्तर्गत है। उस स्थान पर, या उसके आसपास किसी महत्वपूर्ण प्राचीन बस्ती के अवशेष नहीं मिलेहैं। सम्भवतः पलेठा में इन नरेशों की राजधानी नहीं थी। पलेठा के पास देवप्रयाग अति प्राचीन स्थान है। रघुनाथमन्दिर के बाहर की शिला के अभिलेखों से विदित होताहै कि गुप्तराज्यकाल के आरम्भिक दिनों से ही यह स्थान प्रसिद्धि प्राप्त करचुकाथा। तबसे आजतक तीर्थस्थान के रूप में उसका अस्तित्व चलाआरहाहै।

१- गुप्ते — एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० ११?

२- ऐनुएल रिपोर्ट आव इण्डियन एपिग्राफी, १९६८ - ६९

भागीरथी और अलकनन्दा की घाटियों से होकर जानेवाले तीर्थयात्रा - मार्ग देवप्रयाग होकर जातेहैं । नीति, माणा तथा जेलूखगा के गिरिद्वारों से होकर आनेवाले तिब्बत और भारत के मध्य व्यापार के मार्ग भी यहां मिलतेहैं । इस प्रकार देवप्रयाग अतिप्राचीनकाल से उत्तराखण्ड के प्रमुख तीर्थयात्रा - मार्गों तथा व्यापारिक मार्गो का प्रहरी रहाहै ।

हमारा अनुमान है कि सम्भवत: पलेठा - शिलालेखों के नरेशों के राज्यकाल में देवप्रयाग को उनकी राजधानी अथवा उनके राज्य में एक अतिमहत्वपूर्ण नगर होने का गौरव प्राप्त था । केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार सतयुग में देवशर्मा नामक श्रेष्ठ मुनि ने देवप्रयाग में तपस्या कीथी [१] । उसे साक्षात् नारायण ने दर्शन दिएथे । उसके नाम से इस स्थान का नाम देवप्रयाग हुआ [२] । अपने राज्यकाल की समाप्ति पर रामचन्द्रजी ने देवप्रयाग में आकर देवशर्मा को दर्शन दिएथे [३] । देवशर्मा ने कब देवप्रयाग की स्थापना कीथी, यह अज्ञात है ।

कल्याणवर्मन्

कल्याणवर्मन् का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था [४] । इससे विदित होताहै कि उसीने अपने स्वतन्त्र राज्य की घोषणा कीथी । उसका आदिवर्मन् से क्या सम्बन्ध था ? यह अभीतक अज्ञात है । सम्भवत: वह आदिवर्मन् का उत्तराधिकारी था। उसके राज्यविस्तार आदि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है । उसने पलेठा में भानु (सूर्य) मन्दिर की स्थापना कीथी । उसने पलेठा में बुधमन्दिर के बाहर जो शिलालेख अंकित करायाथा, उसके बाईं ओर का आधा भाग अपठनीय होचुकाहै । इसीके पास की दूसरी शिला पर अंकित उसका दूसरा अभिलेख भी अपठनीय बनचुकाहै । तथा उस शिला के दो टुकड़े होगएहैं [५] जिस पर वह अंकित है ।

आदित्यवर्द्धन्

पलेठा के दोनो शिलालेखों में आदित्यवर्द्धन् का नाम मिलताहै । कल्याणवर्मन् से उसका क्या सम्बन्ध था, यह अज्ञात है । सम्भवत: वह कल्याणवर्मन् के अधीन महत्वपूर्ण राज्याधिकारी था । उसके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है ।

करकवर्द्धन्

करकवर्द्धन् का उल्लेख बुधमन्दिर के बाहर के शिलालेख में मिलताहै । शिलालेख में उसे आदित्यवर्द्धन् का दौहित्र बतायागयाहै । उसके सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं है ।

आदित्यवर्द्धन् और करकवर्द्धन् ने क्या परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर कल्याणवर्मन् के पश्चात् शासन कियाथा, सामग्री के अभाव में इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहाजासकता ।

१- केदारखंड, १२०।१८-१६ २- केदारखंड, १५०।६१ ३- केदारखंड, १५०।८२
४- ऐनुयल रिपोर्ट आव इण्डियन एपिग्राफी, १६६८ - ६६

पर्वताकर का पौरव-राजवंश

तालेश्वर - अभिलेख— अलमोड़ाजिले के तालेश्वर नामक स्थान पर प्राप्त अष्टधातु तथा ताम्र पर अंकित दो शासनों से पर्वताकरराज्य के पांच पौरवनरेशों के नाम मिलतेहैं, जिनकी राजधानी ब्रह्मपुर थी। पर्वताकर की पहिचान गिर्य्यावली या गढ़वाल से कीजातीहै [1]। इन शासनों से विदित होताहै कि पर्वताकर राज्य के अन्तर्गत ब्रह्मपुरजनपद अर्थात् वर्तमान गढ़वाल - कुमाऊँ के साथ भाबर - मैदान की पट्टी भी सम्मिलित थी। अपने चरम उत्कर्ष के दिनों में पर्वताकर के नरेशों के शासन में स्रुघ्नजनपद का कितना भाग आगयाथा, यह कहना कठिन है।

पौरवनरेशों की राज्यावधि— लिपि के आधार पर गुप्ते ने तालेश्वर - शासनों को छटी शती ईसवी से आठवीं शती ईसवी तक का मानाहै [2]। पलेठा के शिलालेखों को डा० गाई ने सातवीं शती ईसवी का मानाहै। तालेश्वर - शासनों के पांच नरेशों ने कुल मिलाकर लगभग अस्सी वर्षों तक राज्य कियाहोगा। उनका राज्यकाल हर्ष के राज्यकाल के पश्चात् तथा यशोवर्मन् के राज्यकाल से पूर्व होनाचाहिए।

पौरवनरेश निश्चय ही हर्षवर्द्धन् के पश्चात् हुएथे। विष्णुवर्मन् द्वितीय के ताम्र-शासन की आरम्भिक पंक्तियों में बाण की शैली का अनुकरण मिलताहै। हर्ष के बांसखेड़ा तथा मधुवन - शासनों की छाया विष्णुवर्मन् द्वितीय के ताम्रशासन पर स्पष्ट दिखाईदेतीहै [3]। हर्ष के ताम्रशासन के समान ही पौरवनरेशों के शासनों में स्मृतियों के दानपरक श्लोकों को केवल अधूरा ही उद्धृत कियागयाहै।

1- गुप्ते — गुप्ते, पूर्वोक्त, पृ० ११२

2- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० ११२

3- मिलाइए — 'एकचक्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहर: परम आदित्यभक्त: परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्द्धन: ...' — हर्ष का बांसखेड़ा - ताम्रशासन, पंक्ति ३; मधुवन - ताम्रशासन पंक्ति २ - ३

'चक्रधरइव प्रजानामार्तिहर: परम पितृभक्ति: परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री विष्णुवर्म्मा' — विष्णुवर्मन् द्वितीय का ताम्रशासन, पं० ५ - ६

जिस प्रदेश पर पौरवनरेशों का शासन था, उसी पर आगे चलकर कत्यूरीनरेशों का अधिकार होगया। पौरवनरेश निश्चय ही कत्यूरीनरेशों से पूर्ववर्ती थे। इसकी पुष्टि केवल दोनों राजवँशों के शासनों की लिपि से ही नहीं होती, वरन् उन शासनों में वर्णित कतिपय सूचनाओं से भी होतीहै। कत्यूरीनरेशों की राजधानी कार्तिकेयपुर का उल्लेख पौरवशासनों में एक ग्रामक (गँवाडा) मात्र के रूप में हुआहै [१]। पौरवशासनों में राज्याधिकारियों की नामावली हर्ष के ताम्रशासनों में वर्णित नामावली से अधिक तथा कत्यूरीशासनों में वर्णित नामावाली से कम है। पौरव और कत्यूरी, दोनों राजवँशों की मुद्राओं पर गर्दन मोड़े हुए नन्दी का लांछन है।

इन प्रमाणों से विदित होताहै कि पौरवनरेशों ने हर्ष के राज्य के पश्चात् और कत्यूरीराज्य से पूर्व उत्तराखण्ड पर शासन कियाथा। कत्यूरी - शासन से पूर्व, पाञ्चालनरेश यशोवर्मन् ने उत्तराखण्ड के गिरिद्वारों की रक्षा करके तिब्बत से होनेवाले आक्रमणों को रोकने में सफलता प्राप्त कीथी। यशोवर्मन् का शासनकाल सँ० ७८२ से ८०९ वि० (725 से 752 ई०) तक मानाजाताहै। इसलिए पौरवनरेशों की राज्यावधि हर्ष की मृत्यु सँ० ७०४ से ७८२ वि० (647 से 725 ई०) तक मानसकतेहैं।

तालेश्वर-शासनों की प्रामाणिकता— तालेश्वर - शासनों का सम्पादन करतेहुए श्री गुप्ते ने उन्हें जाली ठहरायाहै। उन्होंने अपनी धारणा की पुष्टि में निम्न तर्क दिएहैं :—

(१) इन शासनों पर जो राज्यमुद्रा लगीहै, उसके अक्षरों और गुप्तब्राह्मी के अक्षरों में कतिपय समानताएँ मिलतीहैं, किन्तु जिस लिपि में शासन लिखेगएहैं, वह पर्याप्त पीछे की लिपि है [२]। शासनों पर लगी राज्यमुद्राएँ भी प्रामाणिक नहीं विदित होतीं। ऐसा प्रतीत होताहै कि उन्हें असली राज्यमुद्राओं के आधार पर ढालागयाहै [३]।

(२) राज्यमुद्राओं में दीगई वंशावली शासनों में दीगई वंशावली से मेल नहीं खाती। राज्यमुद्राओं के अनुसार वंशारम्भ विष्णुवर्मन् से हुआ। किन्तु शासनों में आरम्भिक नरेश का नाम अग्निवर्मन् दियागयाहै; और उसे एक शासन में अश्निवर्मन् लिखागयाहै [४]।

(३) इन शासनों में पहले दीगई अग्रहारभूमि का विवरण देकर उसकी पुष्टि कीगईहै। किन्तु कहीं यह उल्लेख नहीं कियागयाहै कि वह भूमि पहले किस नरेश ने दीथी। तथा यह भी नहीं बतायागयाहै कि इसकी जांच-पड़ताल राजकीय अभिलेखों से करलीगईथी [५] या नहीं।

१- 'ब्रह्मपुरे कार्यिकेयपुर - ग्रामेक:' — द्युतिवर्मन् का द्युषताप - शासन, पं० २०
२- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० १०९
३- ५- एपिग्राफिया इंडिका, जि० १३, पृ० ११०

(४) जिस प्रदेश (गढ़वाल - कुमाऊँ) से इन शासनों का सम्बन्ध है, उसमें चौथी शती से लेकर आठवीं - नौवीं शती तक अराजकता के कारण बहुतकम शासन उपलब्ध हुएहैं । इस कारण यह सोचलियागयाहोगा कि जाली शासनों का पता लगाना सम्भव न होसकेगा [१]।

(५) पहले शासन में अग्निवर्मा के स्थान पर अश्निवर्मा अंकित है; ढालते समय राज्यमुद्रा की दूसरी पंक्ति में अग्निवर्मा नाम स्पष्ट नहीं आयाहै। जाली शासन बनाते समय अग्निवर्मा नाम नहीं पढ़ाजासका । तथा यह जाल तब रचागया जब नरेश का वास्तविक नाम भुलादियागयाथा [२]।

(६) ऐसा लगभग दो शतियों के पश्चात् हुआहोगा। लिपि से भी विदित होताहै कि राज्यमुद्राएँ शासनों से दो शताब्दी पहले की हैं [३]।

(७) राज्यमुद्रा में वंश को सोमवंश कहागयाहै । किन्तु शासनों में उसे 'सोमदिवाकरान्वय' कहागयाहै। यह अति गम्भीर आपत्ति है [४]।

(८) दोनों शासनों को सौवर्णिक अनन्त ने उत्कीर्ण कियाथा। जाली शासन बनाने केलिए दो की अपेक्षा एक व्यक्ति से काम लेना अधिक सरल था। सम्भवतः ऐसे कृत्य केलिए चतुर होनेके कारण सुवर्णकार अनन्त को इस कार्य केलिए चुनागयाथा [५]।

गुप्ते ने राज्यमुद्राओं और शासनों को जाली ठहराने केलिए जो तर्क दिएहैं, उनमें से पहला अर्थात् लिपि सम्बन्धी तर्क, यदि साधार हो तो अवश्य विचारणीय है। छठा तर्क उसी पर आधारित है। शेष तर्क शासनों को जाली सिद्ध करने केलिए पर्याप्त नहीं हैं।

मैंने राज्यसंग्रहालय लखनऊ में दोनों शासनों को स्वयं देखाहै। राज्यमुद्रा के अक्षर शासनों के अक्षरों की अपेक्षा कुछ छोटे हैं। शासन के अक्षरों तथा राज्यमुद्रा के अक्षरों में कुछ भिन्नता होसकतीहै। राज्यमुद्रा पहले से बनीहोतीथी, जिसे नरेश के आदेशानुसार किसी भी समय अंकित शासन पर लगायाजासकताथा। मैं लिपिविशेषज्ञ नहीं हूँ। भारत के प्रमुख अभिलेखाधिकारी डा० डी० सी० सरकार ने लिखाहै — 'तालेश्वर - अभिलेखों के सम्पादक ने उन्हें जाली ठहरायाहै। किन्तु अपनी धारणा की पुष्टि में उन्होंने जो तर्क दिएहैं, वे इतने युक्तियुक्त नहीं है कि उनके आधार पर इन शासनों को जाली ठहरायाजासके [१]।

१- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० ११२
२- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० १११-१२
३- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० ११२
४- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० १११
५- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० ११३
६- 'The editor (of the Taleshvar Plates, published in Epigraphia Indica, XIII, Pages 190–) regarded them to be forged without sufficient justification.' — एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १३१, टि० ४६

शासन आदि अभिलेख जनता और शासकवर्ग को समय - समय पर दिखाने पड़तेहैं। समकालीन सुवर्णकार अनन्त से जाली शासन उत्कीर्ण कराने पर रहस्य तुरन्त प्रकट होसकताथा। यदि शासन जाली है, तो अनन्त आदि अनेक व्यक्तियों को भी काल्पनिक माननापड़ेगा। दोनों शासनों में दिविरपति धनदत्त तथा देवपूजाविभाग के अध्यक्ष त्रात का उल्लेख उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि करताहै। प्रथम शासन को देते समय अमात्य भद्रविष्णु की उपस्थिति गुप्ते के तीसरे तर्क का खण्डन करदेतीहै। दोनों शासनों में ऐसे अनेक स्थाननाम हैं, जिनसे मिलते - जुलते ग्रामनाम उत्तराखण्ड में आज भी मिलतेहैं। इस तथ्य को गुप्ते ने भी स्वीकार कियाहै [१]।

नरेशों की नामावली— तालेश्वर - शासनों से निम्न नरेशों के नाम मिलतेहैं :-

संख्या	नरेश का नाम	पूर्ववर्ती नरेश से सम्बन्ध	विरुद
१-	विष्णुवर्मन् (प्रथम)	—	—
२-	वृषवर्मन्	—	—
३-	श्री अग्निवर्मन्	तत्पुत्र	परमभट्टारक महाराजाधिराज
४-	द्युतिवर्मन्	तत्पुत्र	परमभट्टारक महाराजाधिराज
५-	विष्णुवर्मन् (द्वितीय)	तत्पुत्र	परमभट्टारक महाराजाधिराज

इन लेखों में हर्ष या कत्यूरी - नरेशों के अभिलेखों के समान राजमहिषियों के नाम नहीं मिलते।

पौरव-राजवंश— द्युतिवर्मन् के शासन की राज्यमुद्रा में उसका सम्बन्ध सोमवंश से जोड़ागयाहै [२]। शासन में उसे सोमदिवाकरान्वय अर्थात् चन्द्र - सूर्य - वँश में उत्पन्न कहागयाहै [३]। विष्णुवर्मन् द्वितीय के शासन में भी उसके वँश का सम्बन्ध सोम - दिवाकर से जोड़ागयाहै [४]। द्युतिवर्मन् के शासन में उसके पिता श्रीअग्निवर्मन् को पौरव - राजवँश में उत्पन्न तथा उसे वँश के सँस्थापक राजा पुरूरवा का वँशज बतलायागयाहै [५]। पौरव - राजवँश सोम (चन्द्र) वँश की ही एक शाखा का नाम था [६]। सोम - दिवाकरान्वय का अर्थ पिता और माता की ओर से चन्द्र और सूर्य, दोनों वँशों से सम्बन्ध रखनेवाला होसकताहै। पुरूरवा की माता इला वैवस्वत मनु की पुत्री होनेके कारण सूर्यवँश से सम्बन्ध

१- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० ११३

२- 'सोमवंशोद्भवो राजा जयत्यमितविक्रमः' — द्युतिवर्मन् की राज्यमुद्रा का लेख

३- 'सोम - दिवाकरान्वयो गोब्राह्मणहितैषी ...' — द्युतिवर्मन् का शासन, पं० २

४- 'सोमदिवाकरप्राङ्शु - वङ्श - वेश्मप्रदीपः' — विष्णुवर्मन् द्वितीय का शासन, पं० ३

५- 'श्री पुरूरवः प्रभृतिविच्छिद्यमान पौरव राजवङ्शोग्निरिव वैपक्षकक्षदहनोश्चग्निवर्मा।'
— द्युतिवर्मन् का शासन, पं० २

६- अनुशासनपर्व, १४७।२६ से आगे

रखतीथी। पुरूरवा का पिता बुध चन्द्रमा का पुत्र होनेके कारण चन्द्रवंश से सम्बन्ध रखताथा। इसलिए पौरव - राजवंश को सोम - दिवाकर - वंश कहागयाहै।

शूलिक-राजवंश से सम्बन्ध— मौखरि - अभिलेखों में शूलिक - राजवंश का उल्लेख आताहै, जो अपनी विशाल अश्वारोही सेना केलिए प्रख्यात था [१], और जिसे ईशानवर्मन् मौखरि ने पराजित कियाथा। गूज की धारणा है कि ब्रह्मपुर के पौरवनरेश उसी शूलिक-वँश से सम्बन्ध रखतेथे [२]।

गूज के अनुसार छटी शती ईसवी के मध्य के लगभग मध्यएशिया की शूलिकजाति ने मध्यएशिया की गूजरजाति को साथ लेकर उत्तरभारत को रौंदडाला। किन्तु जब उन्हें मौखरिनरेशों ने पराजित करदिया तो उन्होंने मौखरियों के सामन्त के रूप में ब्रह्मपुरराज्य की स्थापना की, जिसका विस्तार कुमाऊँ से लेकर चम्बा तक था [३]। इस ब्रह्मपुरराज्य की पहली राजधानी कुमाऊँ में तालेश्वर नामक स्थाम पर थी। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् इस राजधानी को तिब्बत - नरेश स्रोड़ - वच्न् - सग्म् - पो की सेना से उजाड़दिया। अपनी इस धारणा की पुष्टि में गूज ने आर० सी० मजूमदार [४] और सिलवन - लेवि के मतों को भी उद्धृत कियाहै [५]।

इसके पश्चात् शूलिकवँश के दूसरे परिवार में उत्पन्न मेरुवर्मन् ने हिमाचलप्रदेश के अन्तर्गत चम्बा में ब्रह्मपुर (वर्तमान भरमौर) राज्य की स्थापना की [६]। इस शूलिक-गुर्जर आक्रमण के अवशेष हिमाचलप्रदेश के राणा, राठी और कुछ ठाकुर परिवार अबतक चलेआतेहैं [७]। उन पश्चिमी पहाड़ीबोलियों में, जो प्राचीन ब्रह्मपुरराज्य की सीमा के अन्तर्गत (कुमाऊँ से चम्बा तक) बोलीजातीहैं, अभीतक गूजरीबोली से बड़ा साम्य मिलताहै [८]। इस क्षेत्र में चूड़ा, वरुण और गूगा नामक जिन ग्रामदेवताओं की पूजा अबतक होतीहै, वे भी शूलिक - गुर्जर - आक्रमण की देन हैं [९]।

भरमौरनिवासियों का विश्वास है कि ब्रह्मपुर या भरमौर का नामकरण ब्राह्मणीदेवी के नाम पर कियागयाहै। किन्तु कुछ विद्वानों का कहनाहै कि भरमौरराज्य बसने से पूर्व वर्तमान गढ़वाल और कुमाऊँ में ब्रह्मपुरराज्य था [१०]।

अनेक विद्वान् इन कल्पनाओं से सहमत नही हैं। ईशानवर्मन् मौखरि के राज्यकाल से लेकर हर्ष के राज्यकाल के आरम्भिक दिनों तक हिमाचलप्रदेश में हूण (हेफतालों) का

---

१. 'जित्वान्ध्राधिपतिं सहस्रगणितत्रेधाक्षरद्वारणम्,
व्यावल्गान्नियुतातिसंख्यतुरगान्भङ्क्त्वा रणे शूलिकान्' — ईशानवर्मन् का हाड़हा - अभिलेख

२- ३- गूज — लेख, जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, १९२३, जि० १, पृ० ८२

४- आर० सी० मजूमदार — लेख, जो० ए० सो० जि० १९, पृ० ३७

५- सिलवन लेवि — नेपाल, जि० २, पृ० १४८

६- गूज — लेख, पूर्वोक्त, पृ० ८२

७- ८- गूज — लेख, पूर्वोक्त, पृ० ८३

९- गूज — लेख, पूर्वोक्त, पृ० ८३ - ८४

१०- हुचिसन तथा बोगेल — हिस्टरी आव पंजाब हिल स्टेट्स, पृ० २७८ टि०

राज्य था। इसलिए उन्हीदिनों शूलिक - गुर्जरों द्वारा उसी प्रदेश में अपने राज्य को स्थापित करने की कल्पना असँगत है।

ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों और चम्बा में भरमौरनरेशों के वँश का सम्बन्ध एक-दूसरे से अथवा शूलिक - गुर्जर - वँशों से जोड़ना भी इसीप्रकार असँगत है। पौरवनरेशों के शासनों में उन्हें सोमवँशी, सोमसूर्यवँशी और पौरव कहागयाहै। दूसरी ओर चम्बानरेशों की वँशावली विष्णु (नारायण) से आरम्भ होतीहैं [१]। उनके अभिलेखों में उन्हें सूर्यवँशी कहागयाहै। अभिलेखों के अनुसार उनके मूलपुरुष अयोध्या के निवासी थे [२]। पीछे वे अयोध्या से गङ्गाजी की उपरली घाटी में कलापग्राम में जाबसे। वहां से उन्होंने ब्रह्मपुर (भरमौर) चम्बा में पहुँचकर अपने राज्य की स्थापना कीथी [३]।

विद्वानों का अनुमान है कि भरमौरराज्य की स्थापना सँ० ६५७ वि० (600 ई०) या सम्भवतः इससे भी पहले सँ० ६०७ वि० (550 ई०) में होचुकीथी [४]। इसलिए स्रोङ् वच्न् सग्म्-पो द्वारा हर्ष की मृत्यु के पश्चात् प्राचीन ब्रह्मपुर (जिसे गूज तालेश्वर मानतेहैं), के विध्वँस के पश्चात् चम्बा में ब्रह्मपुर (भरमौर) राज्य बसाएजाने की कल्पना तिथिक्रम के विरुद्ध पड़तीहै। क्योंकि हर्ष की मृत्यु इस राज्य की स्थापना से लगभग ८७ या ३७ वर्ष पश्चात् हुई।

अनेक विद्वानों की धारणा है कि शूलिकजाति का हिमालय से कोई सम्बन्ध न था। चटर्जी ने शूलिकजाति की पहिचान दक्षिणभारत के उत्तरपश्चिमी भाग में रहनेवाले चालुक्यों से कीहै [५]। रायचौधरी का भी यही मत है [६]। उनका कहना है कि शूलिक चालुक्य का ही दूसरा रूप है। रायचौधरी वृहत्सँहिता और मारकण्डेयपुराण के आधार पर शूलिकजाति का निवासस्थान दक्षिणपूर्व में कलिंग, विदर्भ और चेदि के निकट बतलातेहैं [६]। आर० सी० मजूमदार की धारणा है कि शूलिक उड़ीसा के स्थानीय शासक थे [७], जिनकी ईशानवर्मा से भिड़न्त हुईथी, तथा हाड़हा - शिलालेख के अनुसार जिनकी अगणित अश्वारोही सेना थी [८]। उड़ीसा के इस शूलिक - राजवँश के अबतक अनेक अभिलेख प्राप्त होचुकेहैं [९]। अस्तु शूलिक-गुर्जरजाति से ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों का वँशसम्बन्ध जोड़ना संगत नहीं होसकता।

विष्णुवर्मन् और वृषवर्मन्

इन नरेशों के सम्बन्ध में शासनों से कुछ भी सूचना नहीं मिलती। द्युतिवर्मन् के वृषतापशासन पर लगी राज्यमुद्रा से इनके नामों का पता चलताहै। सम्भवतः

१- विष्णुवर्मन् का शासन

२- हुचिसन तथा वोगेल — हिस्टरी आव पंजाव हिल स्टेट्स, पृ० २७८ टि०

३- हुचिसन तथा वोगेल -- पूर्वोक्त पृ० २६९

४- चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ० १३

५- रायचोधरी — पौलिटिकल हिस्टरी आव एनशिएंट इण्डिया, पृ० ४०६

६- त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नोज, पृ० ४१

७- क्लासिकल एज, पृ० ६८

८- ९- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ७७

विष्णुवर्मन् हर्ष के राज्यकाल में ब्रह्मपुरजनपद का शासक था। यात्री ने ब्रह्मपुरजनपद के किसी नरेश का उल्लेख नहीं कियाहै। इससे अनुमान लगताहै कि विष्णुवर्मन् का ब्रह्मपुर में पैत्रिक राज्य न था। सम्भवत: उसके पुत्र वृषवर्मन् ने हर्ष की मृत्यु से उत्पन्न परिस्थिति से लाभ उठाकर ब्रह्मपुर को अपने पैत्रिकराज्य का स्वरूप देदिया। पर उसने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज-जैसा स्वतन्त्रनरेश - सूचक विरुद धारण नहीं किया।

श्री अग्निवर्मन्

द्युतिवर्मन् के वृषतापशासन की राज्यमुद्रा तथा शासन, दोनों में उसका नाम श्री+अग्निवर्मन् में सन्धि करके श्र्यग्निवर्मन् लिखागयाहैं [१]। प्राचीन अभिलेखों में, जैसा लाखामण्डल में प्राप्त ईश्वरा के शिलालेख में, नाम से पूर्व श्री के साथ सन्धि नहीं कीगईहै। श्री ईश्वरवर्मा को श्रीश्वरवर्मा नहीं लिखागयाहै [२]। अग्निवर्मा को शासन में गो - ब्राह्मण - हितैषी बतायागयाहै। हर्ष के बांसखेड़ा - शासन में प्रभाकरवर्द्धन को वर्णाश्रमव्यवस्थापन-प्रवृत्तचक्र कहागयाहै। ईशानवर्मन् मौखरि के हाड़हा - शिलालेख में आदित्यवर्मन् को वर्णाश्रमाचार - विधि का सँस्थापक कहागयाहै [३]।

विद्वानों का अनुमान है कि हूणों के आक्रमण से उत्तरभारत में वर्णसँकरता फैलगईथी [४]। इन नरेशों ने वर्णसँकरता को रोककर वर्णाश्रम - व्यवस्था की स्थापना में योग दियाथा [५]। अग्निवर्मा का सम्बन्ध पुरूरवा से आरम्भ होनेवाले पौरव राजवँश से जोड़ागयाहै [६]। उसे शत्रुओं को शुष्क तृणवत् दग्धकरने में समर्थ कहागयाहै [७]। उसकी यह प्रशँसा उसके अग्निवर्मन् नाम को सार्थक सिद्धकरने - हेतु कीगईहै। अभिलेखों से इस नरेश के राज्यकाल की किसी घटना का पता नहीं चलता। फिर भी उसे राजवँश का सँस्थापक मानसकतेहैं। उसका पुत्र द्युतिवर्मन् अपने शासन में अपने पिता श्री अग्निवर्मन् के प्रसाद से राज्यप्राप्ति की चर्चा करताहै [८]।

द्युतिवर्मन्

नाम— अभिलेखों की राज्यमुद्रा पर उसका नाम द्विजवर्मन् पढ़ागयाहै। उसके शासन में तथा उसके पुत्र विष्णुवर्मन् द्वितीय के शासन में उसका नाम द्युतिवर्मन् पढ़ागयाहै [९]। उसे शत्रुओं की द्युति हरनेवाला कहागयाहै। इसलिए उसका नाम द्युतिवर्मन् ही मानना उचित है।

१- 'श्र्यग्निवर्म्म सुतस्येह शासनं द्विजवर्म्मणः' तथा 'वैपक्ष - कक्ष - दहनो श्र्यग्निर्वम्र्मा'।

२- 'श्री ईश्वरवर्मेति सुतस्तस्याभूत्' — लाखामण्डल - प्रशस्ति, श्लोक ६

३- 'तस्मात् पयोधेरिव शीतरश्मिरादित्यवर्म्मानृपतिर्व्वभूव ।
वर्णाश्रमाचार विधि प्रणीतेर्यं प्राप्य साफल्यमियाय धाता ॥' — हाड़हा-शिलालेख, पं० ५-६

४- ५- चटर्जी — हर्षवर्द्धन, पृ० १५

६- ७- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० २

८- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० ३

राज्यविस्तार— द्यु तिवर्मन् के राज्य का नाम पर्वताकर था। पर्वताकर की पहिचान गिर्य्यावली या गढ़वाल से कीजातीहै। उसके शासन से विदित होताहै कि कुमाऊँ का कुछ भाग भी उसके राज्य के अन्तर्गत था। उसने परमभट्टारक महाराजाधिराज का विरुद धारण कियाथा। उसे सूर्य के समान शत्रुओं की द्यु तिहरण करनेवाला कहागयाहै। सम्भवतः उसने अपने शत्रुओं को पराजित करके अपने पैत्रिक राज्य में वृद्धि करने के पश्चात् महाराजाधिराज का विरुद धारण कियाथा।

उसकी राजधानी ब्रह्मपुर में थी। इस नगर को धरती पर पुरन्दरपुर (इन्द्रपुरी) के समान बतायागयाहै। सम्भवतः हर्ष के राज्य के अन्तर्गत उल्लिखित सारे ब्रह्मपुरजनपद पर उसका अधिकार था। उसके राज्याधिकारियों में पीलुपति और गजपति का उल्लेख मिलताहै। यदि यह उल्लेख केवल परम्परा निभाने के कारण न हुआहो तो उसके राज्य का विस्तार सम्भवतः भाबर - तराई तक रहाहोगा, जहां गजसेना रखना सार्थक होसकताथा। उसने गुप्तसम्राटों के समान 'अमितविक्रम' विरुद धारण कियाथा।

भूमिदान — ब्रह्मपुर के पौरवनरेशों का कुलदेवता वीरणेश्वर नाग था। उसे अनन्त का अवतार बतायागयाहै। इस नागदेवता की बड़ी मान्यता थी। द्यु तिवर्मन् के पूर्वज, महाराजाओं ने तथा अन्य नरेशों एवँ दूसरे श्रद्धालु व्यक्तियों ने इस देवता के मन्दिर को अग्रहार भूमि प्रदान कीथी। जिन ताम्रपट्टों, पट (वस्त्रों) या वृषताप (अष्टधातु-निर्मित पत्रों) पर उस अग्रहार दीगई भूमि का उल्लेख था, वे अग्नि में भस्म होगएथे। इसलिए द्यु तिवर्मन् ने अपने धर्माधिकारी आदि राज्याधिकारियों और अमात्य के कहनेसे भस्महुए अभिलेखों के बदले नवीन वृषतापशासन प्रदान कियाथा। उसकी राज्यमुद्रा पर उसे (प्रजा) पर अनुग्रह करनेवाला तथा साधुओं को सँरक्षण देनेवाला कहागयाहै।

विष्णुवर्मन्, द्वितीय

विष्णुवर्मन् द्वितीय को, उसके ताम्रशासन में नय, विनय, शौर्य, धैर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य औदार्य आदि गुणों की मूर्ति कहागयाहै। कत्यूरी नरेशों के शासनों में भी नरेशों पर इन्हीं गुणों का अरोप कियागयाहै। विष्णुवर्मन् चक्रधर विष्णु के समान प्रजा के कष्टों को दूरकरने में तत्पर रहताथा। उसे परम पितृभक्त बतायागयाहै।

उसने भी अपने राज्य के बीसवें वर्ष में मार्गशीर्ष की पांचवीं तिथि को अपने पिता द्यु तिवर्मन् के समान मारिपतशर्मन् को उस भूमि केलिए ताम्रशासन प्रदान कियाथा, जो उसे उदार दाताओं द्वारा दीगईथी तथा जिसका वह चिरकाल से अविच्छिन्न रूप से भोग कररहाथा। यह भूमि वामनस्वामी के मन्दिर केलिए अर्पित कीगईथी। तथा इसका उपयोग महासत्र चालू रखने केलिए होताथा।

विष्णुवर्मन् के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में अभीतक कोई सूचना किसी स्रोत से नहीं मिलीहै। अनुमान लगताहै कि उसके राज्यान्त में या उसकी मृत्यु के पश्चात्

उसके उत्तराधिकारी के राज्यकाल में उत्तराखण्ड पर तिब्बत के नरेश ने आक्रमण करने आरम्भ करदिए। मध्यदेश केलिए उत्पन्न इस संकट को रोकने केलिए पांचालनरेश यशोवर्मन् ने उत्तराखण्ड पर अधिकार करके तिब्बत जानेवाले गिरिद्वारों पर अपनी सैनिक छावनियां बिठादीथीं। तब या तो पौरवनरेशों का वँश समाप्त होगया, अथवा उन्हें यशोवर्मन् का करद बननापड़ा।

शासन-व्यवस्था— पौरव - शासनों से उनकी शासन - व्यवस्था पर विस्तृत प्रकाश पड़ताहैं। उनके शासनों में हमें पहलीबार राज्याधिकारियों की लम्बी सूची मिलतीहै, जिसे विश्वसनीय मानसकतेहैं।

राज्य का सबसे बड़ा अधिकारी सार्वभौम नरेश था। उसका विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज था। अग्निवर्मन्, द्युतिवर्मन् और विष्णुवर्मन् द्वितीय ने इस विरुद को धारण कियाथा। ये तीनों स्वतन्त्र नरेश थे।

पौरवनरेश हिन्दुधर्म और वर्णाश्रम - व्यवस्था के सँरक्षक थे। वे अपने को गो - ब्राह्मणहितैषी बतलातेथे [१]। मान्यता थी कि नरेश को नय, विनय, शौर्य, धैर्य, स्थिरता, गम्भीरता तथा उदारता आदि गुणों से युक्त होनाचाहिए [२]। शासनों में पौरवनरेशों को चक्रधर विष्णु के समान प्रजा के कष्टों को दूर करनेवाला तथा नित्य प्रजा के हित में सँलग्न रहनेवाला बतायागयाहै [३]। पौरवनरेश आस्तिक एवँ श्रद्धालु थे। उनका विश्वास था कि देवमन्दिरों में पूजादि की परम्परा चालूरखने - हेतु भूमिदान देने से धर्म, श्रेय और पुण्य की वृद्धि होतीहै [४]।

पौरवशासनों में 'महाराज' नामक अधिकारियों का उल्लेख है। गुप्तशासनों के अनुसार 'महाराज' नामक अधिकारी राज्य के अन्तर्गत सीमितक्षेत्र या जनपद के प्रान्तों पर शासन करनेवाले सामन्त थे [५]।

मन्त्रिपरिषद — राज्य में सुव्यवस्था रखने एवँ महाराजाधिराज को परामर्श देनेकेलिए अमात्य, बलाध्यक्ष, सान्धिविग्रहिक, राजदौवारिक, कोटाभिकरणिक, कुमारामात्य, सर्वविषयप्रधान तथा देवद्रोण्यधिकृत - जैसे राज्याधिकारी होतेथे। ये सभी राज्याधिकारी मिलकर प्राचीन मन्त्रिपरिषद् के रूप में कार्य करतेथे। पौरव - शासनों से विदित होताहै कि महत्वपूर्ण कार्यों को करते समय महाराजाधिराज उनसे परामर्श लेताथा। द्युतिवर्मन् ने अग्रहार भूमि का वृषताप - शासन देनेसे पूर्व देवद्रोण्यधिकृत, महासत्रपति, परिव्राड् - ब्रह्मचारि - गौग्गुलिक - परिषद्, राजदौवारिक, कारँगिक, कोटाधिकरणिक तथा अमात्य से परामर्श लियाथा [६]। देवद्रोण्यधिकृत एकाकीस्वामिन् और मारिपतशर्मन् तथा अमात्य भद्रविष्णु के नाम पौरवशासनों में सुरक्षित हैं [७]। शासनों से यह भी विदित होताहै कि

१- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० २
२- विष्णुवर्मन् का शासन, पं० ५
३- विष्णुवर्मन् का शासन, पं० ५ - ६
४- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० १३ - १४
५- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० ७
६- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० ४ - ८
७- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० ६ - ७

महाराजाधिराज से किसी महत्वपूर्ण कार्य की स्वीकृति लेने केलिए अमात्य से निवेदन करना तथा उसे साथ लेजाना आवश्यक होताथा।

बलाध्यक्ष— सेना का सर्वोच्च अधिकारी बलाध्यक्ष कहलाताथा। उसके अधीन सेना तीन भागों में बँटीहोतीथी। गजारोही, अश्वारोही और पदातिक। इन तीनों के सेनानायक गजपति, अश्वपति और जयनपति कहलातेथे। पीलुपति उस अधिकारी का नाम था, जो गजशालाओं एवँ अश्वशालाओं का प्रबन्ध करताथा। युद्ध और सन्धि से सम्बन्धित विभाग का अध्यक्ष सान्धिविग्रहिक या सान्धिकरण कहलाताथा।

कोट (दुर्ग) के अधिकारी— महाराजाधिराज और उसके परिवार का निवास राजधानी में कोट (दुर्ग) के अन्दर होताथा। कोट की रक्षा एवँ कोट में नियुक्त सेवकादि को नियन्त्रण में रखने का कार्य कोटाधिकरण नामक अधिकारी को सौंपाजाताथा। प्रतिहार के ऊपर राजपरिवार की रक्षा का भार होताथा [१]। राजदौवारिक सम्भवत: राजप्रासाद में अधिकारियों के आगमन और निर्गमन की व्यवस्था करताथा। कारङ्गिक सम्भवत: राजाज्ञाओं को अधिकारियों के पास पहुँचाने तथा अधिकारियों के आवेदनपत्रादि को महाराजाधिराज के पास पहुँचाने का कार्य करताथा। कारँगिक का वर्तमान प्रतिनिधि 'कारिंदा' होसकताहै। राजपरिवार के भोजनादि की व्यवस्था सूपकारपति द्वारा कीजातीथी। राजप्रासाद के सेवक तथा छोटे कर्मचारियों की गणना सम्भवत: अनुजीविवर्ग के अन्तर्गत कीजातीथी।

पुलिस-व्यवस्था— राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था केलिए सेना के अतिरिक्त पुलिस - विभाग भी था। पौरवशासनों में उल्लिखित दण्डोपरिक ,दाण्डवासिक, राजपुत्र - जैसे राज्याधिकारियों का कार्य शान्ति एवँ सुव्यवस्था रखना था। गुप्तनरेशों के राज्यकाल में पुलिस का सबसे बड़ा अधिकारी दण्डपाशिक कहलाताथा [२]। पौरव - शासनों का दाण्ड - वासिक दण्डपाशिक का ही नामान्तर प्रतीत होताहै। दण्डोपरिक और कटुक भी शान्ति एवँ व्यवस्था रखनेवाले अधिकारी विदित होतेहैं। राहुल ने उपरिक को वर्तमान राज्य - पाल मानाहै [३]।

कर - संग्रह— राज्य की आय के मुख्य साधन प्रजा पर लगाएगए अनेक प्रकार के कर थे। पौरव - शासनों में विभिन्न करों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। किन्तु 'भागिक' और 'भोगिक' नामक अधिकारियों का उल्लेख है, जो 'भाग' और 'भोग' नामक करों को वसूल करतेथे। 'भाग' नामक कर कृषि की आय पर लगताथा, तथा उत्पन्न अन्नादि के रूप में लियाजाताथा [४]। लेखों और स्मृतिग्रन्थों से विदित होताहै कि कृषि - आय का छटा भाग 'भाग' नामक कर के रूप में लियाजाताथा [५]। 'भोग' कर छोटे - छोटे कर

१- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० १५

२- वासुदेव उपाध्याय—पूर्वोक्त, पृ० १३

३- राहुल — गढ़वाल, पृ० ८८

४- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १७

५- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० १८

थे, जो प्रतिदिन देनेपड़तेथे [1]। 'करिक' और 'कुलचारिक' भी सम्भवतः कर वसूल करनेवाले कर्मचारी थे।

युअन्-च्वाङ् ने उत्तराखण्ड की खनिजसम्पत्ति का उल्लेख कियाहै। सम्भवतः कृषिभूमि पर लगाएगए कर के अतिरिक्त जनपद की समृद्धि खनिजसम्पत्ति और वनसम्पत्ति पर निर्भर थी। भोट और भारत के बीच होनेवाले व्यापार ने भी उत्तराखण्ड की समृद्धि में योग दियाहोगा। कर प्रायः खेतों तथा पशुओं से प्राप्त वस्तुओं के रूप में लिएजातेथे। विष्टि या बेगार भी लीजातीथी। राज्य में सुवर्ण या स्वर्णमुद्राएँ प्रचलित थीं [2]। रजत-मुद्राओं और ताम्रमुद्राओं का उल्लेख नहीं मिलता। पर उनका भी प्रचलन रहाहोगा।

भू-व्यवस्था— पौरव - शासनों में दिविरपति तथा कायस्थ का उल्लेख मिलताहै। इनका कार्य जनपद की आय तथा व्यय का लेखाजोखा एवं भूमि - सम्बन्धी सूचनाओं को नियमितरूप से अंकितकरना था। भूमि के स्वामित्व - सम्बन्धी लेखाजोखा में ग्राम तथा पल्ली (लगा गांव) का नाम, एवं उस भूमि पर बसे या कृषि करनेवाले परिवारों का नाम और उनका व्यवसाय लिखाजाताथा। ग्राम और पल्ली अनेक क्षेत्रों (तोक) में बंटेहोतेथे। उन क्षेत्रों का उल्लेख भी भूमि के लेखाजोखा में कियाजाताथा।

सींचाईवाली भूमि 'केदार' कहलातीथी। बिना सींचाईवाली चौरस भूमि, जिस पर शालि (धान) की खेती होसकतीथी, 'सारी' कहलातीथी। सीधी खड़ी चढ़ाई वाला क्षेत्र आज के समान उनदिनों भी 'भेल' कहलाताथा। भेल के ऊपर कृषि योग्य भूमि का पौरवशासनों में 'भेलमस्तके' कहकर उल्लेख कियागयाहै [४]। भू - सम्बन्धी लेखाजोखा में ग्राम, पल्ली, क्षेत्र आदि की सीमा, उनके अन्तर्गत आनेवाले वन, नदी - नाले तथा कृषियोग्य बंजर का भी उल्लेख कियाजाताथा।

भूमि की माप— खेतों की माप उनमें बोएजानेवाले बीज की माप के अनुसार कीजातीथी। जिस खेत में एक द्रोण (दूण = १६ पथे = ३२ सेर) बीज बोयाजाता, उसे 'द्रोणवापम्' [४], एक खारी (= २० दूण) बीजवाले को 'खारीवापम् [५]' तथा एक कुल्य बीजवाले को 'कुल्यवापम्' कहतेथे [६]। उत्तराखण्ड में आज भी खेतों की माप इसी प्रकार कीजातीहै। द्रोण (दूण) और खारी आज भी प्रचलित हैं। कुल्य की माप अनिश्चित है। सम्भवतः ८ द्रोण का एक कुल्य होताथा।

भू-स्वामित्व — भूमि का स्वामी राजा होताथा। भूमि पर कृषि करनेवाले, 'कुटुम्ब' (परिवार) उस पर स्थायीरूप से कृषि करतेथे। इसीप्रकार भूमि पर बसे अन्य व्यवसायवाले परिवार भी उस भूमि पर स्थायीरूप से बसेहुए समझेजातेथे। यदि राजा

१- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० १७
२- विष्णुवर्मन् का शासन, पं० २४ - २५
३- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० १८
४- विष्णुवर्मन् का शासन, पं० १४, २०
५- विष्णुवर्मन् का शासन, पं १७
६- विष्णुवर्मन् का शासन, पं० १३

किसी को भूमि अग्रहार, दान या पुरष्कार में देदेता तो उस पर बसे कृषक या अन्य व्यवसाय करनेवाले परिवार नहीं हटाएजातेथे। वे तब राजा को कर न देकर, जिसे राजा भूमि देताथा, उसे कर देतेथे [१]।

भूमि का स्वामित्व उन व्यक्तियों को प्राप्त होजाताथा, जिन्हें राजा से भूमि अग्रहार, दान या पुरष्कार रूप में प्राप्त होतीथी। ऐसे व्यक्तियों द्वारा भूमि बेचेजाने पर उसका स्वामित्व क्रेता को प्राप्त होजाताथा। विष्णुवर्मन् द्वितीय के ताम्रशासन में बलाध्यक्ष लवचन्द्र तथा कायस्थ नन्नक द्वारा भूमि बेचने का उल्लेख है [२]।

भूमि-विक्रय — भूमि का विक्रय करते समय विक्रयपत्र लिखेजातेथे। विक्रयपत्रों में बेचीगई भूमि का पूरा विवरण लिखाजाताथा। यदि भूमि पर वृक्ष और मकान भी होते तो उनका उल्लेख विक्रयपत्रों में 'समूलम्', 'समात्रकमु' लिखकर कियाजाताथा [३]। भूमि का मूल्य सुवर्ण या स्वर्णमुद्रा में चुकायाजाताथा। एक खारी बीजवाले उपजाऊ खेत का मूल्य प्रायः एक सुवर्ण होताथा। यदि उसमें वृक्ष और मकान भी होते तो मूल्य कुछ अधिक लियाजाताथा [४]।

ग्राम-नाम—पौरव-शासनों से पर्वताकरराज्य के ग्रामनामों के सँबँध में अनेक रोचक सूचनाएं प्राप्त होतीहैं। जनसाधारण की भाषा सँस्कृत न होकर अपभ्रंश या देशभाषा थी, जिसका विकास आगे चलकर उत्तराखण्ड की वर्तमान बोलियों में हुआ। ग्राम तथा खेतों के नाम समकालीन देशभाषा में थे। पौरव-शासनों में उन नामों को सँस्कृतरूप देकर अंकित कियागयाथा। शासनों में अनेक ग्रामों और खेतों के नाम उत्तराखण्ड के वर्तमान ग्रामों और खेतों के नामों से मिलते-जुलतेहैं [५]।

१- हर्ष का मधुवन-शासन, पं० १५ २- विष्णुवर्मन् का शासन, पं० २४-२५

३- विष्णुवर्मन् का शासन, पं० २४ ४- विष्णुवर्मन् का शासन, पं २४-२६

५- यथा :—

उदुम्बरवास - गोविलबास, कपिलगर्ता - कपिल्यागाड, कोल्लपुरी - कोलिगांव,
खण्डाकपल्लिका - खंडगांव, खट्टलिका - खाटली, खोहि्लका - खोली,
गोहट्टवाटक - गोरबाट, चम्पक - चम्या, चन्दुलाकपल्लिका - चखडा-पाली,
छिद्रगर्ता - ओडियारी, जयभटपल्लिका-जैंगांव-भटगांव, जम्बुशालिका - जामणसारी,
डिण्डिका - डिखडा, डुभाया - डोभा, तोली - तोली,
तापल्ली - थापली, द्रोणी - दूणी, दून, देवखल - दिखेत,
दीपपुर - दिउला, दुण्णा - दूणी, नागिलक्षेत्र - नागरजातोक,
निम्बसारी - नीमसारी, पल्ली - पाली, पटलिकाग्रामक - पटियालगांव,
पुष्पदन्तिका - फुल्यारगांव, बुरासिका - बुरांसी, वृद्धतर पल्लिका - बड़ी पाली,
बंजालि - बंजागांव, भट्टिपल्लिका - भटगांव, भूतपल्लिका - भुतगांव,
मालवकक्षेत्र - मालूखेत, रजकस्थल - धोबीघाट, लवणोदक - लुणियासोत,
शृगालखोहलिका-स्याल् की खोली, सेम्मकक्षेत्र - सीम, सेम्मद्विका - सिमलना

नगर : स्रुघ्न— हर्ष के राज्यकाल से ही स्रुघ्न का वैभव समाप्त होनेलगाथा। कान्यकुब्ज में उत्तरभारत की राजधानी बनजाने पर स्थाण्वीश्वर और स्रुघ्न ने राजनीतिक महत्व खोदिया। स्रुघ्न की खुदाई में डा० छाबड़ा को एक अतिसुन्दर मृण्मूर्ति मिलीहै, जिस पर श्रीकृष्ण गुरु सन्दीपनी के आश्रम में वर्णमाला लिखने का अभ्यास करतेहुए अंकित किएगएहैं। लिपि के आधार पर इस मृण्मूर्ति को शुङ्गकालीन मानागयाहै [1]। इससे उपरली परतों पर मिलीहुई सामग्री इतनी कलापूर्ण नहीं है। विदित होताहै कि अमोघभूति के राज्यकाल के पश्चात् शक - पह्लव लुटेरों के छापों से स्रुघ्न अपनी समृद्धि खोबैठा। कुशाण - शासन में हिमालय के पदतल से होकर जानेवाले व्यापार से इस नगर को जो समृद्धि प्राप्तहुई, उसे हूणों ने हरलिया।

कालसी— युअन् - च्वाङ् स्रुघ्न में कई मास तक रहा। वह अशोक द्वारा स्थापित शिलाओं, स्तम्भों और स्तूपों को बड़ा उत्साह से देखता और उनका वर्णन करताथा। उसने कालसी - शिला का उल्लेख नहीं कियाहै। इससे विद्वानों का अनुमान है कि छठी - सातवीं शती में कालसी के आसपास का प्रदेश उजाड़ होगयाथा। वहां वन उगआएथे। लोग शिला को भूलचुकेथे [2]।

लाखामण्डल— तीर्थस्थान और विषय का मुख्यालय होनेके कारण लाखामण्डल की समृद्धि अबतक चलीआतीथी। यहां प्राप्त कुछ मूर्तियों को वत्स और अग्रवाल ने सातवीं-आठवीं शती का मानाहै [3]।

मोरध्वज— स्रुघ्न से गोविषाण जानेवाले मार्ग पर स्थित होने तथा ब्रह्मपुरराज्य के दक्षिणी सीमान्त पर बसे मयूरध्वज (मोरध्वज) का व्यापारिक और राजनीतिक महत्व था। छटी - सातवीं शती में यहां किसी नरेश ने एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कियाथा, जिसकी ईंटें १३½″ × ८½″ × २½″ आकारवाली थीं। नीवों में और भी बड़ी ईंटें लगाई गईथीं। दुर्ग के बाहर ६० फीट चौड़ी, तथा ६ फीट गहरी खाईथी। उसके बाहर मुख्य प्राकार से लगभग १००० फीट की दूरी पर दूसरी प्राकार थी [4]। पूर्व की ओर एक विशाल स्तूप था, जिसका घेरा ३०८ फीट था। आज से एक शती पहले भी इस स्तूप का टीला निकट की भूमि से भीतर की ओर ३५ फीट तथा बाहर की ओर ४३ फीट ऊँचा था [5]। सं० १९४४ वि० (1887 ई०) में मरखाम ने स्तूप की खुदाई कीथी। उससे पूर्व ही कोई व्यक्ति धातुमँजूषा आदि बहुमूल्य सामग्री को उठा लेगयाथा। मरखाम को वहां अग्नि में भलीप्रकार पकाईहुई लगभग एक सहस्र मृण्मूर्तियां मिलीथीं, जिन पर एक ही सांचे से किसी अचैल ध्यानमग्न योगी की आकृति अंकित कीगईथी। जो ध्यानमग्न बुद्ध की

२- देहरादून-गजेटियर, पृ० १६८

१- नवभारत टाइम्स, दिनांक,

३- जो० यू० पी० हिस्टोरिकल सो० जुलाई १९४४, पृ० ८८

४- फूरर — मोन्यूमेंटल ऐंटीक्विटीज, जि० २, पृ० ३२

५- मरखाम — लेख, जो० ए० सो० बंगाल, १८९१, जि० ६०, पृ० २

आकृति से मिलती - जुलती थी [१]। दो वृताकार मृण्मूर्तियों पर चैत्य के अन्दर बैठे बुद्ध का चित्र अँकित था। तथा चैत्य के नीचे 'ये धर्म्मा०, आदि लिखाहुआथा। दो दर्जन छोटी-छोटी मृण्मूर्तियां मिलीथीं, जिनमें ध्यानमग्न बुद्ध की आकृति अँकित थी। और दोनों ओर दो भिक्षु खड़ेथे [२]।

भारहुत और सांचीं में स्तूप के बाहर जैसी काष्टवेष्टनियां मिलीहैं, वेसी मोरध्वज में नहीं मिलीहैं। यहां स्तूप का अलँकरण जिन चित्रित शिलाओं द्वारा कियागयाथा, उनके अधिकांश का प्रयोग नजीबाबाद के पास पत्थरगढ़ के दुर्ग पर कियागयाहै [३]।

मोरध्वजदुर्ग का निर्माता— अनुश्रुति के अनुसार मोरध्वजदुर्ग का निर्माण महाभारतकालीन किसी मोरध्वज नामक नरेश ने कियाथा, जिसका पुत्र पीतध्वज बिजनौर के निकटवर्ती प्रदेश का शासक था [४]। दुर्ग और स्तूप पर लगी ईंटों से विदित होताहै कि दुर्ग और स्तूप, दोनों के निर्माणकाल में अधिक अन्तर न था। स्तूप में मिली मृण्मूर्तियों के लेख की लिपि के आधार पर, उनका निर्माणकाल आठवीं शती ईसवी निर्धारित किया गयाहै [५]। इसलिए दुर्ग तथा स्तूप का निर्माणकाल सातवीं शती से पूर्ववर्ती नहीं होसकता। पर्वताकर के नरेशों के राज्य में भाबर-मैदान की पट्टी भी सम्मिलित थी। अस्तु मोरध्वजदुर्ग पर उनका अधिकार रहाहोगा।

आजीविका के साधन— जनसाधारण की आजीविका का मुख्य साधन कृषि था। कृषि मुख्यतः वर्षा पर निर्भर थी। भावरप्रदेश में अनेक तालाबों के अवशेषों से विदित होताहै कि उनदिनों भी भाबर में यथेच्छ वर्षा नहीं होतीथी। बरसाती जल के सँग्रह का उपयोग सींचाई, पशुओं को पिलाने तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए होताथा। मोरध्वज की खुदाई में तालाबों के अवशेषों के पास मिली यक्षमूर्तियों से विदित होताहै कि वर्षा केलिए उनकी मनौती मानीजातीथी [६]। व्यापार से भी कुछ लोगों की आजीविका चलतीथी। जनता की आवश्यकताएं कम थीं। लोग मितव्ययी, शान्त, सुखी, श्रद्धालु और धार्मिकवृत्तिवाले थे। तिब्बत और उत्तराखण्ड के सुवर्ण आदि वस्तुओं के व्यापार से राज्य में समृद्धि थी। सुवर्ण या स्वर्णमुद्रा का प्रचार था।

वेशभूषा— मोरध्वज से प्राप्त मृण्मूर्तियों से समकालीन वेशभूषा पर रोचक प्रकाश पड़ताहै। नर-नारी प्रायः एक छोटी धोती पहनतेथे। वह कमर पर कसकर बँधी होतीथी। उसके ऊपर पटुका बन्धा होताथा। कुछ व्यक्तियों, विशेषकर, नारियों के पटुका से कोई आभूषण नीचे लटकतारहताथा। धोती के ऊपर शरीर नग्न रहताथा [७]।

१- मरखाम — लेख, जो० ए० सो० बंगाल, १८९१, जि० ६०, पृ० ४ २- मरखाम — पूर्वोक्त, पृ० ३
३- फूरर — मोन्यूमेंटल ऐंटीक्विटीज जि० २, पृ० ३२
४- बिजनोर-गजेटियर, पृ० २६६ ५- मरखाम — पूर्वोक्त, पृ० ७
६- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २३१ ७- मरखाम — पूर्वोक्त, जि० ६०, पृ० २

नर - नारी बालों का जूड़ा बनालेतेथे। नारियां गले में हार चाव से पहनतीथीं। योगी या महापुरुष आसन बांधकर बैठतेथे। उनके मुख पर ज्योति दमकतीरहतीथी। उनके सेवक या भक्त उन पर चँवर डुलातेथे [1]। नर - नारी अँजन बड़े चाव से लगातेथे। मोरध्वज की खुदाई में अँजन लगाने की सलाइयां मिलीहैं [2]।

जनपद की अधिकांश जनता हिन्दुधर्मावलम्बी थी। केवल दक्षिणी भाग में थोड़े-से बौद्ध तथा अचैल योगी के उपासक रहतेथे। नाग, सूर्य, वामनस्वामी, यक्ष, ग्रह एवँ अनेक ग्रामदेवी - देवताओं की पूजा प्रचलित थी। देवी - देवताओं के मन्दिरों को भूमिदान देना अतिपुनीत कृत्य समझाजाताथा। जनता, अधिकारी एवँ नरेश भी इस पुण्यकार्य में वित्तानुसार योग देतेथे [3]। फलतः छोटे - बड़े मन्दिरों की सँख्या वेग से बढ़रहीथी।

देवमन्दिरों की व्यवस्था केलिए राज्य की ओर से एक पृथक विभाग था। उसका मुख्याधिकारी देवद्रोण्यधिकृत कहलाताथा [4]। देवद्रोणी शब्द से पता चलताहै कि उनदिनों भी देवी - देवताओं की जात या उत्सवयात्राएँ उसीप्रकार चलतीथीं, जिसप्रकार आज भी उत्तराखण्ड में नन्दा, लाटू तथा घण्डियाल की जात चलतीहैं।

मन्दिरों में सत्र अर्थात् दर्शनार्थियों को भोजन - प्रसाद देनेकी व्यवस्था थी, जैसी बदरीनाथ के मन्दिर में आजतक चलीआतीहै। मन्दिर को अग्रहार दीगई भूमि पर सत्र केलिए कृषि कीजातीथी। अग्रहारभूमि पर पहले से कृषि करनेवाले परिवार कर - रूप में, मन्दिर को सत्र केलिए उपज का निश्चित भाग देतेथे। सत्रों की देखरेख महासत्रपति नामक अधिकारी करताथा। इन दोनों पदों पर सुयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त कियाजाताथा। द्युतिवर्मन् के राज्यकाल में देवद्रोण्यधिकृत तथा महासत्रपति के पद पर एक ही व्यक्ति एकाकीस्वामिन् को नियुक्त कियागयाथा। वह नीतिशास्त्र में पारँगत, विनय से सम्पन्न, शास्त्रज्ञ एवँ बहुश्रुत तथा वृत्तसम्पन्न अर्थात् आदर्श चरित्रवाला था [5]।

इन धर्माधिकारियों की सहायता केलिए एक परिषद् होतीथी। जिसमें जनपद के प्रतिष्ठित परिव्राजक (साधु - सन्यासी), ब्रह्मचारी और गौग्गुलिक (शिवमन्दिरों में शिर पर गुग्गुल जलाकर साधना करनेवाले) हुआकरतेथे। परिषद् सम्भवतः धार्मिकस्थानों की सुव्यवस्था, एवँ अग्रहारभूमि के उचित प्रयोग आदि का ध्यान रखतीथी।

मन्दिरों में देवप्रतिमा की वलि से पूजा कीजातीथी। वलि के अन्तर्गत पशुवलि तथा अन्नादि का भोग, दोनों आतेहैं। चरु से हवन कियाजाताथा। देवप्रतिमा को दूध, दही और घृत से स्नान कराने के पश्चात् उस पर सुगन्धित द्रव्यों का अनुलेपन कियाजाताथा। मन्दिर में धूप और दीप जलाएजातेथे, तथा पुष्प चढ़ाएजातेथे [6]। वाद्य - नृत्य का उल्लेख न मिलनेसे विदित होताहै कि तबतक देवदासी - प्रथा प्रचलित न थी।

१- मरखाम — जौ० ए० सो० बंगाल, जि० ६०, पृ० २
२- मरखाम — पूर्वोक्त, पृ० २, ४, ६
३- विष्णुवर्मन् का शासन, पं०
४- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० ६
५- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० ६ - ७
६- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० ८ - ९

मन्दिर और उसके आंगन की सफाई, लिपाई - पुताई तथा टूटफूट की मरोम्मत का व्यय भी अग्रहारभूमि की आय से कियाजाताथा। अग्रहारभूमि पर अन्न, पुष्प और केशर आदि गन्धद्रव्य भी उगाएजातेथे।

अग्रहार में दीगई भूमि पर बसे परिवार राज्य को कर न देकर मन्दिर को देतेथे। उनसे विष्टि या बेगार भी मन्दिर के पुजारी ही लेतेथे। अग्रहार में दीगई भूमि की सूचना उपरिक, प्रमातार, प्रतिहार, कुमारामात्य तथा विषयपति, बलाध्यक्ष आदि अधिकारियों को एवं कर वसूल करनेवाले भागिक, भोगिक आदि कर्मचारियों को दीजातीथी, जिससे वे अधिकारी भविष्य में अग्रहार में दीगई भूमि पर बसी जनता को कर और बेगार आदि देनेकेलिए वाध्य न करें।

बौद्धमत— बौद्धमत का सर्वथा लोप न हुआथा। भाबर की पट्टी में, मोरध्वज के आसपास बौद्धमतावलम्बियों की वस्तियां थीं। उनमें चैत्य के अन्दर बैठे ध्यानमग्न बुद्ध की पूजा सुप्रचलित थी। बुद्ध की छोटी - छोटी मृण्मूर्तियां सांचे से बनाईजातीथीं। उनके नीचे 'ये धर्मा हेतुप्रभवा०' आदि अंकित होताथा[२]। उन्हें अग्नि में भलीप्रकार पका कर स्तूप आदि की भेंट करतेथे। घर में ऐसी मृण्मूर्तियों को रखना मंगलप्रद समझाजाताथा।

मोरध्वज में प्राप्त कुछ मूर्तियों में बुद्ध एक अतिसुन्दर चैत्य के अन्दर बैठेहैं। बुद्ध के शिर के चारों ओर प्रभामण्डल है। चैत्य ऊपर उठकर सँकीर्ण होतागयाहै। उसके दोनों ओर पुष्पहारों से सजायागयाहै। ऊपर, दोनों ओर, दो गन्धर्व ढ़ोल आदि वाद्य बजातेहुए उड़रहेहैं। चैत्य के दोनों ओर दो व्यक्ति खड़े हैं, जिनमें से एक सम्भवत: नारी है। उनके हाथों में सम्भवत: चंवर हैं। उनकी आकृतियां ध्यानस्थ बुद्ध की आकृति से लम्बी हैं। नीचे 'ये धर्मा हेतुप्रभवा०' आदि लेख है [२]।

अचैल योगी की उपासना— मोरध्वज में प्राप्त अनेक मृण्मूर्तियों में आसनस्थ एवं ध्यानस्थ योगी को अचैल अंकित कियागयाहै। योगी के शिर पर जटा बँधी है। गांठ के ऊपर सम्भवत: मोरपंख बनेहैं। योगी के शिर के चारों ओर प्रभामण्डल है। दोनों ओर छोटे आकार के दो नग्न व्यक्ति हाथ में कोई वस्तु लिए खड़े हैं। मरखाम ने इन्हें भी बुद्ध की मूर्तियां मानाहै। किन्तु बौद्ध मूर्तियों में बुद्ध को सचैल दिखाने की प्रथा है। अचैल मूर्तियों का सम्बन्ध प्राय: जैनमत से जोड़ाजाताहै [४]।

विश्वास— जनता श्रद्धालु थी। मन्दिरों और स्तूपों के निर्माण, तथा पूजा-अर्चा केलिए भूमि आदि वस्तुएं अर्पित करना एवं उनके दर्शन करना पुनीत कृत्य समझाजाताथा। राजवंशों में देवकुल बनाने की प्रथा थी। कुशाणनरेशों के मथुरा में प्राप्त देवकुल से विदित होताहै कि मृत नरेशों की पुरुष-परिमाण मूर्तियां बनाकर देवकुल में रखीजातीथीं। पौरव - शासनों में उल्लिखित ब्रह्मेश्वर देवकुल के अवशेष अभीतक नहीं मिलेहैं।

१- मरखाम — जो० ए० सो० बंगाल, १८६१, जि० ६०, पृ० ४-५ २- मरखाम — पूर्वोक्त, पृ० ५
३- मरखाम — पूर्वोक्त, १८६१, जि० ६०, पृ० ३

यशोवर्मन् के राज्य में

समकालीन उत्तरापथ— हर्ष की मृत्यु के ६५ वर्ष पश्चात्, जिनदिनों उत्तराखण्ड पर पोरवनरेशों का शासन था, सिन्ध पर सँ० ७६६ वि० (712 ई०) में अरब सेनापति मुहम्मद - इब्न - कासिम ने आक्रमण करदिया। देशद्रोहियों के सहयोग से उसने सिन्धनरेश दाहर को पराजित करके सिन्धुनदी के मुहाने से लेकर मुलतान तक के प्रदेश पर अधिकार करलिया। सिन्ध में अपनी सत्ता सुदृढ़ करलेने पर सिन्ध के अरब शासक कश्मीर, पँजाब, भीनमाल, गुजरात तथा उज्जैन तक छापे मारनेलगे। वे मन्दिरों का विध्वँसकरते, लूटमार मचाते तथा नर - नारियों को दास - दासी बनाने केलिए हांक लेजातेथे।

काबुल और पश्चिमी पँजाब पर इनदिनों शाहीनरेशों का अधिकार था। कश्मीर में शक्तिशाली नृपति ललितादित्य मुक्तापीड का शासन था। कश्मीर से पूर्व की ओर हिमालय की श्रेणियों पर छोटे - छोटे पर्वतीय राज्य थे। हिमालय के पार भोट (तिब्बत) में इनदिनों महान् सम्राट स्रोङ् - गचन् के वँशज शासन कररहेथे[1]। वे भी अपने साम्राज्य की वृद्धि केलिए प्रयत्नशील थे। और नेपाल तथा हिमालय की श्रेणियों पर स्थित भारतीय जनपदों पर छापे मारतेथे। इनदिनों कश्मीरनरेश ललितादित्य और पांचालनरेश यशोवर्मन् ने भोट के आक्रमणों से हिमालय की श्रेणियों के जनपदों की तथा अरबों के आक्रमणों से पंजाब - मध्यदेश की रक्षा का बीड़ा उठायाथा।

यशोवर्मन् का प्रारम्भिक जीवन— हर्ष की मृत्यु के लगभग ७५ वर्ष पश्चात् तक पांचाल के इतिहास केलिए अभीतक कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलीहै। इस अवधि को पांचाल के इतिहास में तिमिराच्छन्न युग मानाजाताहै[2]। सँ० ७८२ वि० (725 ई०) के लगभग कान्यकुब्ज के सिंहासन पर यशोवर्मन् नामक एक वीर पुरुष ने अधिकार करलिया, जिसकी विजययात्रा की गाथा उसके सभा-कवि वाक्पति ने 'गौड़-वहो' (गौड़-वध) नामक प्राकृत भाषा के काव्य में वर्णित कीहै।

१- स्रोङ् - गचन् - गस्म् - पो (617-698), मङ् - स्रोङ् - मङ् - ब्चन् (698 - 712)
दुर् - स्रोङ् (712 - 730) ख्रि - ल्दे - ग् चुग्ब्र्तन् (730 - 802)
— राहुल -- तिब्बत में बौद्धधर्म, पृ० ५ - ६

२- त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० १६२

यशोवर्मन् के पूर्वजों के तथा उसके प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी विदित नहीं है। कुछ विद्वानों ने उसे चन्द्रगुप्तमौर्य का [१] तथा कुछ ने मौखरियों का वँशज बतलायाहै [२]। किन्तु अभीतक किसी प्रामाणिक स्रोत से इन कल्पनाओं की पुष्टि नहीं हुईहै [३]। गौड़ - वहो काव्य के अनुसार यशोवर्मन् चन्द्रवँश का भूषण था। इससे अनुमान कियाजाताहै कि उसका जन्म किसी उच्च क्षत्रियवँश में हुआथा [४]।

विजययात्रा — गौड़ - वहो के अनुसार वर्षाऋतु के अन्त में यशोवर्मन् ने अपनी सेना लेकर विजययात्रा आरम्भ की। विन्ध्यपर्वत पर विन्ध्यवासिनीदेवी को नरवलि देकर सँतुष्ट करने के पश्चात् यशोवर्मन् ने मगधनरेश को युद्ध में पराजित किया। समुद्रतट की ओर बढ़कर उसने वँग पर आक्रमण किया। पराजित होकर वँगनरेश ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। मलयपर्वत की ओर प्रयाण करके उसने दक्षिण के नरेश को अपनी अधीनता स्वीकार करने केलिए विवश किया। दक्षिण की ओर वह समुद्रतट पर उस क्षेत्र तक पहुँचा जहां बालि ने महाबली रावण को अपनी कांख में दबालियाथा [५]।

पारसीकों को पराजित करके उसने सह्याद्रि के नरेशों से उपायन प्राप्तकिए। तब नर्मदा को पार करके वह मरुदेश (राजस्थान) में होताहुआ श्रीकण्ठदेश (स्थाण्वीश्वर) पहुँचा। उसे जीतकर कुरुक्षेत्र होताहुआ अयोध्या चलाआया [६]। तब, जिस मन्दरपर्वत पर यक्षराज कुवेर का वास है तथा जो देवदारु वृक्षों के रस की सुगन्धि से सुरभित रहताहै, उस पर्वत के निवासियों ने यशोवर्मन् की अधीनता स्वीकार करली [७]।

इसप्रकार दिग्विजय करके यशोवर्मन् अपनी राजधानी कान्यकुब्ज में लौटगया। उसने पराजित नरेशों को भी, जिन्हें वह अपने साथ लायाथा, अपने राज्यो में लौटने की अनुमति प्रदान की [८]।

गौड - वहो में यशोवर्मन् की दिग्विजय का वर्णन अत्युक्तिपूर्ण है। फिर भी विद्वानों की धारणा है कि वह निश्चय ही शक्तिशाली नरेश था। उसने लगभग सारे मध्यदेश पर, सतलुज से मगध तक तथा हिमालय से विन्ध्याचल तक फैले प्रदेश पर अधिकार करलियाथा [९]। राजतरँगिणी से विदित होताहै कि यशोवर्मन् का राज्य यमुना से कालीनदी तक फैलाथा [१०]।

१- बप्पभट्टसूरिचरित तथा प्रभावकचरित, उ० त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० १९४

२- कनिंघम — आर्कॅलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० १५, पृ० १६४

३- त्रिपाठी — पूर्वोक्त, पृ० १९४

४- त्रिपाठी — पूर्वोक्त, पृ० १९३

५- गौड़-वहो — उ० क्लासिकल एज, पृ० १२८

६- गौड़-वहो— उ० क्लासिकल एज, पृ० १२९

७- गौड़ - वहो — उ० त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० १९९

८- गौड़ - वहो — उ० क्लासिकल एज , पृ० १२९

९- द्र० क्लासिकल एज, पृ० १२९ - ३० ; त्रिपाठी — पूर्वोक्त, पृ० १९७ - २०१

१०- राजतरङ्गिणी, ४ । १४५

भोट (तिब्बत) का आक्रमण— मन्दरपर्वत अर्थात् उत्तराखण्ड के निवासियों ने यशोवर्मन् की अधीनता स्वीकार कीथी। यह घटना ' परमभट्टारक महाराजाधिराज ' विरुद धारण करनेवाले विष्णुवर्मन् द्वितीय के राज्यकाल के अन्त में या उसके उत्तराधिकारी के राज्यकाल के आरम्भिक वर्षों में हुईहोगी।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् तिब्दत के नरेश नेपाल और लद्दाख पर छापे मारनेलगेथे। नेपालनरेश नरेन्द्रदेव ने तिब्बत के नरेश स्रोङ् - गचन् - गसम्पो की अधीनता स्वीकार कीथी। यशोवर्मन् के राज्यकाल में भी तिव्वतीनरेश या लुटेरे उत्तराखण्ड के उत्तरी भागों पर छापा मारतेथे। लद्दाख की ओर भी तिव्बतियों का प्रसार बढ़रहाथा। दक्षिणपश्चिम में सिन्ध पर अरबों का अधिकार था। सिन्ध के अरब शासक उत्तर में कश्मीरराज्य की दक्षिणी सीमा पर तथा यशोवर्मन् के राज्य की पचिश्मी सीमा पर छापे मारतेथे। इसलिए यशोवर्मन् ने तिब्बत और अरबों के प्रसार को रोकने केलिए कश्मीर के समकालीन नरेश ललितादित्य मुक्तापीड़ा से सन्धि करली [१]।

चीनी स्रोतों से विदित होताहै कि मध्यदेश के नरेश Yi-sha-fu-mo (यशोवर्मन्) ने अपने मँत्री बुद्धसेन को सँ० ७८८ वि० (731 ई०) में चीननरेश के पास, तिब्बतियों और अरबों के आक्रमणों को रोकने - हेतु सहायता मांगने भेजाथा [२]। पांच वर्ष पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड़ा ने भी अरबों और तिब्बतियों के आक्रमणों को रोकने केलिए चीन नरेश से सहायता मांगीथी [३]। चीननरेश ने कोई सहायता नहीं दी। फिर भी यशोवर्मन् और ललितादित्य मुक्तापीड़ा ने अरबों को पराजित करके सिन्ध की ओर खदेड़दिया [४]।

उन्हें अपने राज्यों की उत्तरी सीमा पर बढ़तेहुए तिब्बतियों के प्रसार को रोकने में भी पूरी सफलता मिलीथी [५]। चीनी यात्री अउ - कौङ् Ou - Kong के यात्रा वर्णन से विदित होताहै कि कश्मीरनरेश Mung - ti (मुक्तापीड़ा) ने तिब्बती आक्रमण रोकने केलिए मध्यदेश के नरेश से सन्धि करलीथी। इन दोनों नरेशों की सेनाओं ने हिमालय के उन पांच घाटों को रुद्ध करदिया जिनसे होकर तिब्बती इनके राज्यों पर छापा मारतेथे [६]।

चीनी यात्री के पूर्वोक्त उल्लेख से अनुमान लगताहै कि सम्भवतः तिब्बती कश्मीर में जो - जी - ला से, गढ़वाल में माणा और नीती से तथा कुमाऊँ में दरमा और लिपु-लेख घाटों से या इनके निकट के अन्य घाटों से कश्मीर और उत्तराखण्ड पर छापा मारतेथे। यशोवर्मन् के राज्य की उत्तरी सीमा के गिरिद्वार निश्चय ही गढ़वाल - कुमाऊँ के गिरिद्वार थे, जिनकी यशोवर्मन् ने रक्षा कीथी।

मध्यदेश के बड़े भाग पर अधिकार करके यशोवर्मन्
ललितादित्य से युद्ध — दरद, कम्बोज और तुर्कों
बड़ा शक्तिशाली बनगयाथा। ललितादित्य भी भुट्ट (तिब्बती),

३- राजतरंगिणी, ४।१३४ पर स्टेन की टिप्पणी

१- २- क्लासिकल एज, पृ० १३०

४- क्लासिकल एज, पृ० १७३ - ७४

५- राजतरंगिणी, ४।

६- उ०, त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० २०३

को पराजित करने के पश्चात् उत्तरभारत का सम्राट बनने की अभिलाषा करनेलगा। फलतः दोनों मित्र शत्रु बनकर आपस में लड़नेलगे। ललितादित्य ने तुरन्त छापा मारकर कान्यकुब्ज पर अधिकार करलिया [१]। यशोवर्मन् की शक्ति क्षीण होगई। अनुमान कियाजाताहै कि उसके एक - दो वँशज कान्यकुब्ज के निकटवर्ती प्रदेश पर कुछ वर्षों तक शासन करतेरहे [२]।

यशोवर्मन् का व्यक्तित्व— सहसा उदित होकर यशोवर्मन् सहसा अस्त होगया। अज्ञात कुल में जन्म लेकर उसने कान्यकुब्ज को पुनः उसीप्रकार राजनीतिक महत्व प्रदान करदिया जिसप्रकार उसे हर्ष ने प्रदान कियाथा। उसके राज्यकाल में कान्यकुब्ज पर अधिकार करके उत्तरापथ का सम्राट बनने की जो परम्परा ललितादित्य ने आरम्भ की वह चिरकाल तक बनीरही। तिब्बतियों और अरबों के आक्रमणों को रोकने में उसने जिस वीरत्व, साहस और राजनीति से कार्य लियाथा, उसे ललितादित्य से दूसरी सन्धि करते समय भुलादिया। उत्तरभारत के इतिहास में वह पहला नरेश था जिसने मध्यदेश की रक्षा केलिए उत्तराखण्ड के गिरिद्वारों का महत्व समझाथा और तत्परतापूर्वक उनकी रक्षाकरने में सफल हुआथा।

वह विद्वानों का आदर करताथा। उसकी सभा में प्राकृत के कवि वाक्पति और संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति तथा अन्य कवि रहतेथे। राजतरँगिणी के अनुसार यशोवर्मन् स्वयँ भी कवि था [३]। राजतरँगिणी के अनुसार उसने पराजित होकर ललितादित्य की स्तुति कीथी। उसकी रचनाएँ अभीतक उपलब्ध नहीं हुईहैं।

राज्यावधि— यशोवर्मन् की राज्यावधि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने उसकी राज्यावधि सँ० ७५७ से ७९७ वि० (700 से 740 ई०) के बीच किसी समय मानीहै [४]। त्रिपाठी ने उसके राज्यकाल में हुई घटनाओं का विश्लेषण करतेहुए उसकी राज्यावधि सँ ७८२ से ८०९ वि० (725 से 752 ई०) तक निर्धारित कीहै [५]। ललितादित्य द्वारा यशोवर्मन् की पराजय की तिथि जैकोबी ने सँ० ७९० वि० (733 ई०) निश्चित कीहै। त्रिपाठी ने भी इससे सहमति प्रकट कीहै। स्टेन की धारणा है कि यह घटना यशोवर्मन् द्वारा चीन को दूत भेजने के पश्चात् अर्थात् सँ० ७९३ वि० (736 ई०) के कुछ वर्ष पश्चात् हुई [६]। स्मिथ ने घटना की तिथि सँ० ८०२ वि० (745 ई०) में मानीहै [७]।

सम्भवतः उनदिनों उत्तराखण्ड का शासन यशोवर्मन् की अधीनता में कत्यूरी राजवँश के सँस्थापक मसन्तन या बसन्तन के द्वारा होताथा। ललितादित्य के हाथों यशोवर्मन् की पराजय होजाने पर बसन्तन या उसके वँशज ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित करदी।

१- राजतरंगिणी, ४।१४४-४६
२- त्रिपाठी – पूर्वोक्त, पृ० २०३ - ४; २११-१२
३- राजतरङ्गिणी, ४। १४४
४- क्लासिकल एज, पृ० १३१
५- त्रिपाठी – हिस्टरी आव, कन्नोज, पृ० १९७
६- उ० त्रिपाठी — पूर्वोक्त, पृ० २०४-६
७- स्मिथ – अर्लि हिस्टरी आव इंडिया, पृ० ३९२

पांचाल में युगान्तर

यशोवर्मन् के पश्चात्— आठवीं शती विक्रमी के अन्त में पांचालनरेश यशोवर्मन् के पतन से लेकर ग्यारहवीं शती विक्रमी के मध्य में पांचाल के प्रतिहारनरेशों के पतन तक की लगभग ढ़ाई सौ वर्षों की अवधि में उत्तराखण्ड पर परमप्रतापी कत्यूरीनरेशों का शासन रहा। कहाजाताहै कि चरम उत्कर्ष के दिनों में उनके राज्य का विस्तार सतलुजनदी से लेकर गण्डकीनदी तक, तथा महाहिमालय से लेकर वर्तमान सारे रोहिलखण्ड तक हुआथा[१]। इन नरेशों मेंसे अधिकांश ने परमभट्टारक महाराजाधिराज विरुद धारण कियाथा। उनकी सेना में पदातिक और अश्वारोही ही नहीं, वरन् गजारोही और ऊष्ट्रारोही गुल्म भी थे[२]। उनकी दानशीलता की गाथाएँ दूर-दूर तक फैलीथीं। चारों दिशाओं से उनके पास आनेवाले विद्वान् ब्राह्मणों का वे सुवर्णादि से निरन्तर सत्कार करतेथे[३]। उनकी राजसभा में संस्कृत गद्य-पद्य में सुन्दर रचना करनेवाले विद्वान् रहतेथे, जिन्होंने उनके अभिलेखों के मूलपाठ की रचना कीथी।

इन प्रतापीनरेशों को ढाई सौ वर्षों तक अपनी स्वतन्त्रसत्ता और समृद्धि बनाए रखने में कैसे सफलता मिली, इसे समझने केलिए इस अवधि में पांचाल के राजनीतिक उत्थान-पतन की गाथा से परिचित होना आवश्यक है। निश्चय ही उत्तराखण्ड के ये नरेश केवल उन्हींदिनों अपनी स्वतन्त्रसत्ता की घोषणा करसकतेथे, जिनदिनों पांचाल का शासन किसी दुर्बल नरेश के हाथों में रहताथा। जिन कत्यूरीनरेशों के नामों के साथ स्वतन्त्रसत्ता-सूचक विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज नहीं पायाजाता, वे निश्चय ही उस अवधि में हुएहोंगे, जब पांचाल पर किसी शक्तिशाली नरेश का अधिकार था। ऐसे कत्यूरी नरेशों ने किसी न किसी रूप में अपने शक्तिशाली दक्षिणी पड़ोसी को उपायनादि देकर सन्तुष्ट रखाहोगा[४]।

१- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

२- ललितशूर का ताम्रशासन, १, पं०, १२-१३

३- पद्मट का ताम्रशासन, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८१

४- राहुल — गढ़वाल, पृ० २४

मुक्तापीड़ के हाथों ललितादित्य से पराजित होकर सं० ७९३ या ७९७ वि० (736 या 740) के लगभग यशोवर्मन् अपनी समृद्धि, शक्ति और प्रतिष्ठा को खोचुकाथा। यद्यपि उसका और उसके वँशजों का इस तिथि के पश्चात् भी कुछ वर्षों तक पांचाल की राजधानी कान्यकुब्ज और उसके पड़ोसी प्रदेश पर अधिकार बनारहा [1], किन्तु अब उत्तराखण्ड की राजनीति में हस्तक्षेप करना उनकेलिए सम्भव न था। इससे अनुमान लगताहै, कि जिनदिनों यशोवर्मन् के पतन से मध्यदेश के स्थानीय महत्वकांक्षी शासक राजनीतिक लाभ उठानेकेलिए प्रयत्नशील थे, सम्भवतः उन्हींदिनों बसन्तन या वासुदेव ने उत्तराखण्ड में कत्यूरीराज्य की स्थापना कीथी।

वज्रायुध

यशोवर्मन् की मृत्यु सं० ८०९ वि० (752 ई०) से लगभग १८ वर्ष पश्चात् पांचाल की राजधानी कान्यकुब्ज पर एक नए राजवंश का अधिकार होगया। इस वँश में केवल तीन नरेश हुए, वज्रायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध। ये तीनों दुर्बल नरेश थे। इनकी राज्यावधि सं० ८२७ से ८७३ (770 से 816) तक मानीजातीहै। इनके राज्यकाल के अन्तिमा छै वर्षों को छोड़कर शेष चालीस वर्षों तक पांचालनरेशों की शक्ति और शासित प्रदेश सीमित रहे।

अनुमान कियाजाताहै कि वज्रायुध सँ० ८२७ वि० (770 ई०) के आसपास कान्यकुब्ज के सिंहासन पर बैठा [2]। उसके पूर्वपुरुषों के सम्बन्ध में तथा उसके आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। राजतरँगिणी से विदित होताहै कि कश्मीरनरेश विनयादित्य जयापीड, जिसका राज्यकाल सँ० ८३६ - ८६७ (779 - 810 ई०) तक मानाजाताहै, कान्यकुब्जनरेश को पराजित करके उसके सिंहासन और छत्र को उठा लेगयाथा [3]। अनुमान कियाजाताहै कि कश्मीरनरेश का यह आक्रमण वज्रायुध के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में, अथवा उसके उत्तराधिकारी इन्द्रायुध के राज्यकाल के आरम्भिक वर्षों में हुआथा [4]।

इन्द्रायुध

जैनग्रन्थ हरिवंश के अनुसार उत्तरदिशा का नरेश इन्द्रायुध सँ० ८४० वि० (783 - 84 ई०) में शासन कररहाथा [5]। हर्ष के राज्यकाल में कान्यकुब्जनगर को उत्तरापथ में जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुईथी, वह किसी न किसी रूप में अबतक चलीआरहीथी [6]।

१- त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नोज, पृ० २११ - १२   २- त्रिपाठी — पूर्वोक्त, पृ० २१३
३- राजतरङ्गिणी, ४। ४७१   ४- त्रिपाठी — पूर्वोक्त, पृ० २१३
५- ६- ७- त्रिपाठी — पूर्वोक्त, पृ० २१४

उनदिनों कान्यकुब्जनगर पर अधिकार करके 'सकलउत्तरापथनाथ' बनने केलिए तीन शक्तिशाली नरेश तड़परहेथे :—

(१) वँग - मगध - नरेश, धर्मपाल—जिसकी राज्यावधि सं० ८२७-८६७ (770-810) मानीजातीहै।

(२) अवन्ति का प्रतिहारनरेश—वत्सराज, जिसकी मृत्यु सं० ८६२ (805) में हुई।

(३) मान्यखेट का राष्ट्रकूटनरेश, ध्रुव—जिसकी राज्यावधि सं० ८३६ - ८५२ (779 - 795) मानीजातीहै।

कान्यकुब्जनगर पर अधिकार करनेकेलिए इन तीनों के मध्य जो संघर्ष चलाथा, उसके घटनाक्रम के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। अनुमान कियाजाताहै कि जब धर्मपाल गंगाजी के मैदान में पश्चिम की ओर बढ़रहाथा तो अवन्ति के प्रतिहारनरेश वत्सराज ने आक्रमण करके धर्मपाल को पराजित करदिया और उसके राजच्छत्र को छीनलिया [१]।

लगभग इसी समय मान्यखेट के राष्ट्रकूटनरेश ध्रुव ने उत्तर की ओर बढ़कर अवन्ति पर अधिकार करलिया और प्रतिहारनरेश वत्सराज को पराजित करके उसे मरुभूमि की ओर खदेड़दिया [२]।

राष्ट्रकूटनरेश ध्रुव ने अब गङ्गा - यमुना-द्वाब को जीततेहुए कान्यकुब्जनगर पर
अधिकार करलिया। इन्द्रायुध ने सम्भवत: वँग - मगधनरेश धर्मपाल से सहायता मांगी।
किन्तु ध्रुव ने उसे भी पराजित करदिया। उसने भागतेहुए धर्मपाल का पीछा करके
उससे उसके श्वेत राजच्छत्रों को छीनलिया [३]। इन्द्रायुध ने राष्ट्रकूट ध्रुव की अधीनता
स्वीकार करली। गङ्गा - यमुना - द्वाब पर अपने अधिकार के उपलक्ष में ध्रुव ने अपने
परिच्छद (राजचिह्नों) में गङ्गा - यमुना को भी अंकित करना आरम्भ करदिया [४]।
किन्तु शीघ्र ही ध्रुव को पुनः दक्षिण में, अपने राज्य की ओर लौटना पड़ा।

चक्रायुध

अपेक्षा अधिक लाभ हुआथा।
राष्ट्रकूट ध्रुव के आक्रमण से धर्मपाल को हानि की
प्रतिद्वन्दी अवन्तिनरेश प्रतिहार वत्सराज की शक्ति, प्रतिष्ठा और
ध्रुव ने उसके शत्रु और
शासितप्रदेश को इतनी हानि पहुंचादीथी, कि वह धर्मपाल से भिड़ने में असमर्थ होगया [५]।
ध्रुव द्वारा दक्षिण की ओर प्रयाण करतेही धर्मपाल पुनः अपनी सेना के साथ मध्यदेश की
ओर बढ़ा।

१- २- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४५

३- 'गङ्गायमुनयोर्म्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यत: ।
लक्ष्मीलीलारविन्दानि श्वेतच्छत्राणि यो हरेत् ॥'—अमोघवर्ष का सञ्जन-ताम्रशासन

४- एपिग्राफिया इण्डिका जि० १८, पृ० २३६ टि० ४ ५- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४५

अनुमान कियाजाताहै कि नेपाल ने उसकी अधीनता स्वीकार करलीथी [१]। मध्यदेश के बड़े भाग पांचाल और कुरु (पूर्वी पँजाब) भी उसके प्रभावक्षेत्र के अन्तर्गत आगएथे [२]। उसने इन्द्रायुध को सरलता से पराजित करके उसे सिंहासन से उतारदिया। उसके स्थान पर उसने उसी परिवार के एक दूसरे व्यक्ति चक्रायुध को कान्यकुब्ज के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करदिया [३]। अनुमान कियाजाताहै कि यह घटना सँ० ८५७ वि० (800 ई०) के लगभग हुईथी।

मगध - सम्राट धर्मपाल

कान्यकुब्जनगर पर अधिकार करलेने तथा पूर्वीपँजाब और नेपाल तक अपना प्रभावक्षेत्र बढ़ालेने पर धर्मपाल ने कान्यकुब्जनगर में धूमधाम से दरबार किया, जिसमें उसके इंगितमात्र से भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गन्धार तथा कीर (कांगड़ा) के नरेशों ने उपस्थित होकर उसे प्रणाम किया। उसके द्वारा कान्यकुब्ज के सिंहासन पर चक्रायुध को प्रतिष्ठित करने के कार्य की प्रशंसा की। तथा पांचाल के वृद्धों ने उसके अभिषेक केलिए स्वर्णकलस को उठाया [४]।

जिन राज्यों के नरेशों के प्रतिनिधि दरबार में उपस्थित हुएथे उनमेंसे भोज वर्तमान बरार में, मत्स्य अलवर, जयपुर और भरतपुर में, मद्र रावी और चिनाव के द्वाब में, कुरु कुरुक्षेत्र के पड़ोस में, यदु मथुरा के आसपास अवन्ति मालवा में, गान्धार उत्तर पश्चिमी पँजाब में, तथा कीर कांगड़ा में बसेथे [५]। इन राज्यों के प्रतिनिधियों का कान्यकुब्ज-नगर के दरबार में उपस्थित होनेसे विदित होताहै कि कान्यकुब्ज के उत्थान - पतन की घटनाओं को इन राज्यों के नरेश सतर्कता से देखतेरहतेथे।

उपस्थित नरेशों में, जहां सुदूर कुरु, मद्र और गान्धार तक के नरेशों का उल्लेख है, वहां अतिनिकटस्थ उत्तराखण्ड के कार्तिकेयपुर, ब्रह्मपुर और स्रुघ्न मेंसे किसी के भी नरेश का उल्लेख न होना विशेष विचारणीय है। क्या उत्तराखण्ड पर कान्यकुब्जनरेश इन्द्रायुध - चक्रायुध का या सम्राट धर्मपाल का सीधा अधिकार था, जिससे उसके नरेश के उल्लेख की आवश्यकता नहीं पड़ी ?

खालिमपुर - शासन के यदु की पहिचान जायसवाल ने लाखामण्डल - प्रशस्ति में वर्णित सिंहपुर (वास्तव में सैंहपुर) के यादवों से कीहै। इस भ्रान्तिपूर्ण पहिचान के

१- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ४६

२- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ४७

३- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ३६

४- ' भोजैर्मत्स्यैः समद्रैः कुरुयदुयवनावन्ति गान्धारकीरैः
भूपैर्व्यालोलमौलि प्रणति परिणतैः साधु संगीर्यमाणः।
हृष्यत्पञ्चालवृद्धोद्धृत कनकमयस्वाभिषेकोद कुम्भो
दत्तः श्री कन्यकुब्जस्सललितचलितभ्रूलतालक्ष्म येन ॥'—धर्मपाल का खालिमपुर-शासन, पं० २१-२२

५- त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नोज, पृ० २१७-१८

सम्बन्ध में हम पहले विचार करचुकेहैं। चीनीयात्री युअन् - च्वाङ् के आगमन से पूर्व ही सैंहपुर के यदुवँश का लोप होचुकाथा।

जिनदिनों धर्मपाल ने चक्रायुध को कान्यकुब्ज के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कियाथा, सम्भवत: उन्हीदिनों उसके कतिपय राज्याधिकारियों ने केदारनाथ की तीर्थयात्रा कीथी। और वहां यथाविधि स्नान - तर्पणादि सम्पन्न किएथे[1]। धर्मपाल के पुत्र देवपाल के मुंगेर - ताम्रशासन[2] तथा मँगलवारि (दीनाजपुर) के गरुड़स्तम्भलेख के अनुसार[3] उसके राज्य का विस्तार गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश तक था। इन समकालीन अभिलेखों से विदित होताहै कि धर्मपाल और उसके पुत्र देवपाल का उत्तराखण्ड पर किसी न किसी रूप में अधिकार था। निंवर के परिवार के कत्यूरीनरेशों के अभिलेखों पर पालनरेशों के अभिलेखों के प्रभाव से भी विदित होताहै कि इस परिवार के नरेशों के धर्मपाल और देवपाल से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे।

सारी परिस्थिति पर विचार करने से अनुमान लगताहै कि जिनदिनों धर्मपाल ने इन्द्रायुध को कान्यकुब्ज के सिंहासन से उतारकर उसपर चक्रायुध को प्रतिष्ठित कियाथा, उन्हींदिनों, सम्भवत: धर्मपाल के इंगित पर निंवर ने बसन्तन के परिवार के अन्तिम नरेश त्रिभुवनराज से कार्तिकेयपुर का सिंहासन छीनाथा।

राष्ट्रकूट सम्राट गोविन्द तृतीय

धर्मपाल द्वारा कान्यकुब्ज के सिंहासन पर अपने अधीनस्थ चक्रायुध को बिठाना और उत्तरापथ का सार्वभौम सम्राट बनजाना उसके शत्रु और प्रतिद्वन्दी प्रतिहारनरेशों को सह्य न था। प्रतिहारनरेश वत्सराज के पुत्र नागभट द्वितीय ने अपनी राज्यलक्ष्मी को पुन: स्थिर करके उत्तर की ओर विजय की योजना बनाई। उसने विशाल सेना लेकर कान्यकुब्जनगर पर अधिकार करलिया। उससे पराजित होकर चक्रायुध को भागनापड़ा[4]।

१- 'केदारे विधिनोपयुक्त पयसां गङ्गासमेताम्बुधौ
गोकर्णादिषु चाप्यनुष्ठितवतां तीर्थेषु धर्म्याः क्रियाः।
भृत्यानां सुखमेव यस्य सकलानुद्धृत्य दुष्टानिमान्,
लोकान् साधयतो नुषङ्गजनिता सिद्धिः परत्राप्यभूत ॥' —देवपाल का मुंगेर-ताम्रशासन, पं०१०-१२

२- 'आगङ्गामहिमात् सपत्नशून्या मासेतोःप्रथित दशास्यकेतु कीर्तेः।
उर्व्वीमावरुणनिकेतनाच्च सिन्धोरालक्ष्मीकुलभवनाच्च यो बुभोज ॥'
— देवपाल का मुंगेर - ताम्रशासन, पं० २३ - २४

३- 'आरेवाजनकान्मतंगजमदस्तिम्यच्छिलासंहते
रागौरीपितुरीश्वरेन्द्र किरणैः पुष्यसितिम्नो गिरेः।
मार्त्तण्डास्तमयोदयारुण जलादावारिराशि द्वयात्
नीत्या यस्य भुवं चकार करदा श्रीदेवपालो नृपः॥' — मंगलवारि गरुड़स्तम्भ - लेख

४- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ४७

अपने आश्रित चक्रायुध की रक्षा केलिए धर्मपाल को आगे बढ़ने का अवसर न देकर प्रतिहारनरेश नागभट ने उसके राज्य पर आक्रमण करदिया। मुंगेर के भीषण युद्ध में नागभट ने धर्मपाल को पराजित करदिया [१]।

विद्वानों का अनुमान है कि इस अवसर पर चक्रायुध और धर्मपाल ने राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव के पुत्र और उत्तराधिकारी गोविन्द तृतीय से सहायता की प्रार्थना करतेहुए उसकी अधीनता स्वीकार करली [२]। गोविन्द तृतीय ने विशाल सेना लेकर उत्तरभारत पर आक्रमण किया। और प्रतिहारनरेश नागभट को युद्ध में पराजित करके चक्रायुध और धर्मपाल की रक्षा की। उसने प्रतिहारनरेश नागभट द्वारा कान्यकुब्ज का स्वामी बनकर उत्तरापथ में अपना साम्राज्य फैलाने के स्वप्न को नष्ट करदिया [३]।

मगधनरेश का प्रभावक्षेत्र कुरु-पांचाल से लेकर नेपाल, मगध और वंग तक विस्तृत था। उत्तराखण्ड का समकालीन कत्यूरीनरेश भी किसी न किसी रूप में धर्मपाल के प्रभावक्षेत्र के अन्तर्गत था। अस्तु चक्रायुध और धर्मपाल द्वारा राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की अधीनता स्वीकार करलेने पर गोविन्द तृतीय का प्रभावक्षेत्र हिमालय में उत्तराखण्ड तक पहुंचगयाथा। इस गौरव को राष्ट्रकूटनरेश के अभिलेख में व्यक्त करतेहुए कहागयाहै :—

गोविन्द (तृतीय) के अश्वों ने हिमालय के निर्झरों के जल का पान किया। उसके हस्तियों ने गङ्गाजी के जल में निमज्जन किया। उसके तूर्य वाद्यों के घोष से हिमालय की कन्दराएं द्विगुणित वज्रनिनाद से गूंजउठीं। धर्म (धर्मपाल) तथा चक्रायुध ने स्वयं ही उसकी अधीनता स्वीकार कीथी। इसप्रकार वह भी हिमालय के समान कीर्तिमान कीर्तिनारायण बनगया [४]।

किन्तु गोविन्द तृतीय को शीघ्र ही दक्षिण में, अपने राज्य की ओर लौटनापड़ा। सञ्जन ताम्रशासन के आधार पर केवल इतना कहाजासकताहै कि उत्तराखण्ड के समकालीन कत्यूरीनरेश ने उपायनादि देकर राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय को सन्तुष्ट कियाथा।

प्रतिहारनरेश नागभट द्वितीय का कान्यकुब्ज पर अधिकार केवल अल्पकाल केलिए हुआथा। राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ने चक्रायुध को पुनः कान्यकुब्ज के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करदियाथा। तथा उसके संरक्षक धर्मपाल को पुनः उत्तरापथ पर अपना प्रभुत्व सुदृढ़ करने का अवसर देदियाथा [५]। धर्मपाल ने परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज का विरुद

१- भोज का ग्वालियर -- अभिलेख, एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १८, पृ० ११२

२- ३- एजं आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४८

४- ' हिमवत्पर्व्वतनिर्झराम्बु तुरगैः पीतञ्च गाङ्गं –
दूध्वंनितं मज्जनतूर्यकैर्द्विगुणितं भूयोपि तत्कन्दरे।
स्वयमेवोपनतौ च यस्य महतस्तौ धर्म्मचक्रायुधौ,
हिमवान् कीर्तिसरूपतामुपगतस्तत्कीर्तिनारायणः ॥ '—अमोघवर्ष का सञ्जन-ताम्रशासन, पं० २१-२२

५- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ४८

धारण कियाथा। उसकी मृत्यु सँ० ८६७ वि० (810 ई०) के आसपास हुई।

मगध - सम्राट देवपाल

धर्मपाल की मृत्यु के पश्चात् देवपाल को मगध का सिंहासन प्राप्त हुआ। उसकी राज्यावधि सँ० ८६७ से ९०७ वि० (810 से 850 ई०) तक मानीजातीहै। वह अपने पराक्रमी पिता का सुयोग्य पुत्र था। उसने अपने पिता से प्राप्त विशाल साम्राज्य को केवल सुरक्षित ही नहीं रखाथा, वरन् उसमें कुछ वृद्धि भी कीथी [१]। उसके मुंगेर-ताम्रशासन से [२] तथा मंगलवारि (दिनाजपुर) के गरुड़स्तम्भ-लेख से [३] विदित होताहै कि वह उत्तरभारत के समस्त राज्यों से, जो हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक, तथा पश्चिमी समुद्र (अरब सागर) से लेकर पूर्वी समुद्र (बँगाल की खाड़ी) तक फैलेथे, कर ग्रहण करताथा।

उसने किसी हूणराज को, जिसकी स्थिति हिमालयश्रेणियों के पास मानीजातीहै, पराजित कियाथा। देवपाल के समय तक हिमालयप्रदेश में हूणराज्य का अस्तित्व सम्भवतः नहीं था। उसका स्थान सम्भवतः चम्बा और त्रिगर्त के राजवंशों ने लेलियाथा। हमारा अनुमान है कि पाल, सेन और कत्यूरीनरेशों के अभिलेखों में हूण शब्द का प्रयोग सम्भवतः तिब्बतियों केलिए हुआहै। तिब्बत का एक भाग, जो सतलुज की उपरली उपत्यका में है, आज भी हूणदेश कहलाताहै।

देवपाल को प्रतिहारनरेश नागभट द्वितीय से भिड़नापड़ाथा। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि नागभट ने कान्यकुब्जनगर पर अधिकार करलियाथा। किन्तु सम्भवतः उसे देवपाल ने तुरन्त वहां से भगादिया [४]। नागभट द्वितीय का उत्तराधिकारी रामभद्र दुर्बल नरेश था। रामभद्र के पुत्र भोज को, यद्यपि आरम्भ में कुछ सफलता मिलीथी, किन्तु वह अपने साम्राज्य की प्रतिष्ठा और सीमा का उत्तर में तबतक विस्तार न करसका, जबतक सम्राट देवपाल जीवित रहा [५]।

धर्मपाल और देवपाल, दोनों परम प्रतापी सम्राट थे। वे बौद्धमत के प्रति विशेष श्रद्धालु थे। नालन्दा विश्वविद्यालय को उनसे विशेष सहायता प्राप्त हुईथी। अरब लेखक सुलेमान के अनुसार पालनरेश की सेना गुर्जर (प्रतिहार) तथा राष्ट्रकूट दोनों नरेशों की सेनाओं से अधिक थी। उसकी गजसेना में २५ सहस्र रणहस्ती थे। जब उसकी सेना प्रयाण करतीथी तो दस-पन्द्रह सहस्र व्यक्तियों को सेना की सेवा, परिचर्या तथा वस्त्रादि स्वच्छ करने हेतु जानापड़ताथा [७]।

१- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५०

२- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६६

३- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६७

४- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५०

५- ६- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५१

७- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५२

पालनरेशों के राज्यकाल में बौद्धमत में वज्रयान का पूर्णरूपेण प्रचार चलपड़ाथा। ८४ सिद्धों मेंसे अनेक धर्मपाल और देवपाल के समकालीन थे [२]। लूइपा, विरूपा, सरहपा, जालन्धरपा, मीनपा और गोरखपा, इन पालनरेशों के राज्यकाल में विद्यमान थे [३]। अनुमान कियाजाताहै कि गोरखनाथ ने उत्तराखण्ड में धौला उड्यारी (धवलगुहा) नामक गुफा में तपस्या कीथी [४]।

तिब्बती स्रोतों से विदित होताहै कि धर्मपाल और देवपाल की तिब्बत के नरेशों से झड़पें हुईथीं। एक बार तो धर्मपाल को तिब्बतनरेश की अधीनता स्वीकार करनी पड़ीथी [५]। भारतीय स्रोतों से इसकी पुष्टि नहीं होती [६]।

धर्मपाल और देवपाल उत्तराखण्ड के कत्यूरीनरेशों के सहायक और मित्र थे। पांचाल में होनेवाली राजनीतिक उलटफेरों में सम्भवतः ये नरेश धर्मपाल और देवपाल के इंगित पर पालनरेशों के प्रतिद्वन्दी प्रतिहारनरेशों के राज्य की उत्तरी सीमा पर अव्यवस्था उत्पन्न करके पालनरेशों की सहायता करसकतेथे।

प्रतिहार नरेश भोज

रामभद्र के पुत्र भोज को सं० ८९० वि० (833 ई०) के लगभग प्रतिहार-सिंहासन प्राप्त हुआ [६]। सं० ८९३ वि० (836 ई०) के लगभग उसे अपनी राजधानी कान्यकुब्जनगर में स्थापितकरने में सफलता मिलगई [७]। किन्तु सं० ९०० वि० (843 ई०) तक उसे मध्य और पूर्वी राजपूताना में अपनी सत्ता सुदृढ़ करने में व्यस्त रहनापड़ा [८]। जब उसने उत्तर की ओर साम्राज्य बढ़ाने और उसकी सुव्यवस्था की सोची तो देवपाल के साथ के युद्ध में पराजित होकर उसे अपनी गतिविधियां दक्षिण की ओर सीमित रखनीपड़ीं [९]।

सं० ९०२ से ९१७ वि० (845 से 860 ई०) के बीच उसने राष्ट्रकूट - राज्य पर आक्रमण किया। किन्तु उस राजवंश की गुजरात - शाखा के नरेश ध्रुव के हाथों पराजित होगया [१०]। कलचुरीनरेश कोकल्ल ने भी, जिसकी राज्यावधि सं० ९०२ - ९३७ वि० (845 - 880 ई०) मानीजातीहै, इसी अवधि में प्रतिहारनरेश भोज को पराजित किया [११]। इसप्रकार पाल, राष्ट्रकूट और कलचुरी नरेशों से पराजित होकर भोज की शक्ति, प्रतिष्ठा और साम्राज्य - विस्तार की लिप्सा को घोर आघात पहुंचा [१२]। अभिलेखों से विदित होताहै कि भोज से राजपूताना के उस भाग को, जो जोधपुर के निकट है, प्रतिहार राजवंश की जोधपुरशाखा ने सं० ९०० तथा ९१८ वि० (843 तथा 861 ई०) के मध्य किसी समय छीनलियाथा [१३]।

१- २- राहुल — पुरातत्व - निबन्धावली, पृ० १४८
३- बड़थ्वाल — योगप्रवाह, पृ० १९९
४- ५- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ५२
६- ७- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २९
८- १३- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३०

सँ० ६०७ वि० (850 ई०) में देवपाल की मृत्यु होगई । उसके अधिकारी धर्मपाल और देवपाल के समान संघर्षशील और पराक्रमी न थे। अस्तु प्रतिहार भोज केलिए उत्तर की ओर अपने राज्य के विस्तार में वाधा डालनेवाला कोई न रहा।

भोज के एक अभिलेख से, जिसकी तिथि सँ० ६३३ वि० (876 ई०) मानी जातीहै, पता लगताहै कि उसने अपनी सेना को सँगठित करके दिग्विजय की घोषणा कीथी [१]। इनदिनों मगध के नरेश शान्तिप्रिय और दुर्वल थे। राष्ट्रकूटनरेश अमोघवर्ष भी, जिसका राज्यकाल सँ० ८७१ से ६३५ (814 से 878 ई०) तक मानाजाताहै, धार्मिक वृत्ति का शान्तिप्रिय शासक था। भोज ने मगध के पाल - नरेश नारायणपाल के राज्य पर आक्रमण करके उसके राज्य के पश्चिमी भाग को छीनलिया [२]।

भोज के इस विजयाभियान का प्रभाव उत्तराखण्ड पर भी पड़ा। पालनरेशों के सहायक और मित्र निम्बर के अन्तिम वँशज भूदेव से कत्यूरी राजवँश के तीसरे परिवार के संस्थापक सलोणादित्य ने सिंहासन छीनलिया। यह घटना सँ० ६३३ - ६३५ वि० (876 - 878 ई०) के आसपास हुई।

दक्षिण में मालवा और गुजरात के तथा काठियावाड़ के कुछ भाग पर भी प्रतिहार भोज ने अपनी शक्ति सुदृढ़ करली [३]। उत्तरपश्चिम की ओर उसका राज्य पंजाब तक फैलाथा [४]। गोरखपुर के कालचुरीनरेश उसके अधीनस्थ थे [५]। सम्भवतः सारा अवधप्रान्त उसके राज्य के अन्तर्गत था [६]। बुन्देलखण्ड के चन्देलनरेश भी उसकी अधीनता स्वीकार करतेथे [७]। उत्तराखण्ड के कत्यूरीनरेश सलोणादित्य को भी किसी न किसी रूप में भोज प्रतिहार के अधीन मानसकतेहैं।

अरब पर्यटक सुलेमान कहताहै–'गुर्जर प्रतिहारनरेश (भोज) की सेना अति विशाल है। उसकी अश्वारोही सेना विशेष दक्ष है। वह अरबों से शत्रुता रखताहै और इस्लाममत का विरोधी है। उसके राज्य में विनिमय के साधन के रूप में रजत और सुवर्णचूर्ण का प्रयोग होताहै। उसके राज्य में इन धातुओं की खानें बतलाईजातीहैं। भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा उसके राज्य में चोर - डाकुओं का भय नहीं है [८]'।

मध्यदेश के मैदानी भाग में सोने - चान्दी की खानों का उल्लेख नहीं मिलता। उत्तराखण्ड में अलकनन्दा, सोनानदी, रामगँगा आदि के रेते में अब भी सुवर्ण मिलताहै। इससे भी विदित होताहै कि सम्भवतः उत्तराखण्ड प्रतिहार भोज के प्रभावक्षेत्र के अन्तर्गत था।

वह भगवती का भक्त था। वह प्रभास, आदिबराह तथा मिहर नाम से भी विख्यात था [९]। सँ० ६४२ (885 ई०) के लगभग भोज की मृत्यु होगई।

१- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३०

२- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३१

३- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३१ - ३२ ; त्रिपाठी — हिस्टरी आव कन्नौज, पृ० १४४ - ४६

४-७- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३२

८- ६- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३२

प्रतिहारनरेश महेन्द्रपाल

महिर भोज के उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल से कश्मीरनरेश शँकरवर्मन् ने पँजाब का कुछ भाग छीनलिया [१]। किन्तु पूर्व की ओर उसे अपने राज्य का विस्तार करने में सफलता मिलीथी। उसका राज्य हिमालय से विन्ध्यपर्वत तक तथा पूर्वीसागर (बँगाल की खाड़ी) से पश्चिमीसागर (अरबसागर) तक फैलाथा। काठियावाड़ उसके राज्य के अन्तर्गत था [२]। उसकी राजसभा में उसका गुरु तथा सँस्कृत का प्रसिद्ध कवि राजशेखर रहताथा। महेन्द्रपाल की मृत्यु सँ० ९६५ (908 ई०) के आसपास हुई। उत्तराखण्ड महेन्द्रपाल के प्रभावक्षेत्र में रहाहोगा।

प्रतिहारनरेश महीपाल

महेन्द्रपाल के पश्चात् कान्यकुब्ज के सिंहासन पर उसका पुत्र भोज और पौत्र महीपाल बैठा। वे दुर्बल शासक थे। महेन्द्रपाल की मृत्यु के केवल आठ - दस वर्ष पश्चात् सँ० ९७५ वि० (918 ई०) के आसपास राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय की सेना ने कान्यकुब्जनगर के तोरणों को नष्ट करके नगर का विध्वँस करदिया [३]। महीपाल को प्राण बचाने अपने प्रासाद से भागनापड़ा [४]।

राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय को शीघ्र ही दक्षिण की ओर जानापड़ा। अपने सामन्त बुन्देलखण्ड के चन्देलनरेश हर्ष, गोरखपुर के कलचुरीनरेश भामान तथा गुहिलोत नरेश भट्ट की सहायता से महीपाल को अपने राज्य के कुछ भाग पर पुनः अधिकार जमाने में सफलता मिलगई। किन्तु उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा, दोनों को भारी आघात पहुँचचुकाथा [५]। राष्ट्रकूट-सेना ने सं० ९९७ वि० (940 ई०) के लगभग महीपाल के राज्य के दक्षिणी भाग पर आक्रमण कियाथा [६]। महेन्द्रपाल का गुरु राजशेखर महीपाल की राजसभा में रहताथा। उसकी सँस्कृत रचनाओं मेंसे कर्पूरमँजरी, बाल - रामायण, विद्धशालभँजिका, बाल - भारत तथा काव्य-मीमांसा विशेष प्रसिद्ध हैं। महीपाल की मृत्यु सँ० १००१ वि० (944 वि०) के आसपास हुई।

महीपाल के उत्तराधिकारी दुर्बल और अयोग्य थे। उनके राज्यकाल की घटनाओं के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। ईसा की दसवीं शती के मध्य तक प्रतिहारनरेशों की शक्ति बहुत क्षीण होगई। उनका शासितप्रदेश केवल कान्यकुब्जनगर के आसपास के सीमितक्षेत्र में ही रहगया [७]। कान्यकुब्ज पर सं० १०१७ वि० (960 ई०) में विजयपाल का शासन था। उसके पश्चात् लगभग आधी शती तक कान्यकुब्ज के प्रतिहारनरेशों का कोई अभिलेख नहीं मिलता [८]।

१- २- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ३३
३- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ३५
४- ५- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ३६
६- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ३७
७- ८- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ३८

चन्देलनरेश यशोवर्मन्

महीपाल का एक वँशज देवपाल था, जो सँ० १००५ वि० (948 ई०) में विद्यमान था। उसके राज्यकाल में प्रतिहारनरेशों के सामन्त चन्देलनरेश बड़े प्रबल होगएथे। चन्देलनरेश हर्ष के पुत्र यशोवर्मन् ने अपने खजुराहो-अभिलेख में खशनरेश के बल को तोलने, कश्मीर की सेना को परास्त करने तथा कुरुनरेश को अतिशय हानि पहुँचाने की घोषणा कीहै [१]। यशोवर्मन् को सँ० ६८२ वि० (925 ई०) के लगभग चन्देल - सिंहासन मिलाथा। वह अपने को किसी न किसी रूप में देवपाल का अधीनस्थ मानताथा। उसके पुत्र धङ्ग ने सँ० १००१ वि० (954 ई०) के लगभग प्रतिहार नरेशों से सम्बन्धविच्छेद करके अपनी स्वतन्त्रता घोषित कीथी [२]।

अनुमान कियाजाताहै कि सलोणादित्य के वँशजों मेंसे देशट या पद्मट की अपने राज्य की दक्षिणी सीमा पर प्रतिहारनरेश देवपाल से झड़प हुईथी। इस युद्ध में चन्देलनरेश यशोवर्मन् ने प्रतिहार देवपाल के सहायक सामन्त के रूप में खशनरेश से लोहा लियाथा। सम्भवतः युद्ध में किसीको निश्चित विजय न मिलीथी। यशोवर्मन् ने खशनरेश की शक्ति को तोलकर ही सन्तोष करलिया।

कत्यूरी - राजवंश

पांचाल के राजनीतिक उलटफेरों का अध्ययन करके पता लगताहै कि :—

(१) यशोवर्मन् के पतन से लेकर इन्द्रायुध की राज्यच्युति तक अर्थात् सँ० ७६७ से ८५७ वि० (740 से 800 ई०) तक, उत्तराखण्ड में कत्यूरी - राजवँश के अन्तर्गत वसन्तन या वासुदेव के परिवार की राज्यावधि मानीजासकतीहै।

(२) चक्रायुध के अभिषेक से लेकर भोज प्रतिहार द्वारा दिग्विजय - अभियान आरम्भ करने के तिथि तक, अर्थात् सँ० ८५७ से ९३३ वि० (800 से 876 ई०) तक कत्यूरीराजवँश के निम्बर के परिवार की राज्यावधि मानीजासकतीहै।

(३) भोज के दिग्विजय - अभियान से लेकर ईसा की दसवीं शती के अन्त तक अर्थात् सँ० ९३३ से १०५७ वि० (876 से 1000 ई०) तक कत्यूरीराजवँश के सलोणादित्य के परिवार की राज्यावधि मानीजासकतीहै।

१- 'गौड क्रीडालतासिस्तुलितखसबल कोशलः कोशलानाम्,
नश्यत्कश्मीरवीरः शिथिलित मिथिलः कालवन्मालवानाम्।
सीदत्सावद्यचेदिः कुरुतरु - मरुत्संज्वरो गूर्जराणाम्,
तस्मास्तस्यां स जज्ञे नृपकुलतिलकः श्री यशोवर्मराजः॥' —खजुराहो - शिलालेख, पं० १३ - १४

२- एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृ० ८४

कार्तिकेयपुर का कत्यूरी-राजवंश

मूलवंश— कार्तिकेयपुर, वर्तमान जोशीमठ के जिस राजवँश का वर्णन इस अध्याय में कियाजाएगा, उसे कत्यूरी - राजवँश कहाजाताहै। किन्तु इस वँश के अभिलेखों में कोई वँशसूचक नाम नहीं मिलता। न किसी मुद्रालेख या प्राचीन साहित्यिक उल्लेख में कार्तिकेयपुर के नरेशों को कत्यूरी कहागयाहै।

कहाजाताहै कि इस राजवँश का विघटन वीरदेव नामक नरेश की मृत्यु के पश्चात् हुआ। इस वीरदेव को जागरों में कत्यूरीनरेश कहागयाहै [1]। किन्तु केवल इसी आधार पर कार्तिकेयपुर के नरेशों को भी कत्यूरी नहीं कहाजासकता। क्योंकि वीरदेव कुमाऊँ में कत्यूर-उपत्यका का राजा था। उसका प्रासाद कौसानी के निकट स्थित 'हथछिना' नामक झरने से सीधे मार्ग से ३-४ मील की दूरी पर था। वीरदेव इस झरने का जल पियाकरताथा [2]। ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिसके आधार पर उसे प्राचीन कार्तिकेयपुर का राजा मानाजासके।

कत्यूर - उपत्यका के राजवँश के विघटन पर पाली, असकोट और डोटी में जो क्षुद्र ठकुराइयां उत्पन्न हुईं, उन्हें जागरों में कत्यूरी कहागयाहै। इन ठकुराइयों के वर्तमान वँशज अपनी मूलभूमि कत्यूर - उपत्यका में मानतेहैं। उनकी कल्पना है कि कार्तिकेयपुर के नरेश उनके पूर्वज थे [3]।

पाली, असकोट और डोटी की कत्यूरी ठकुराइयों की वँशावलियों में कार्तिकेयपुर के नरेशों के नाम नहीं मिलते। अस्तु उन ठकुराइयों का सम्बन्ध कार्तिकेयपुर के नरेशों से जोड़ना वँशावलियों के विपरीत है।

एटकिनसन द्वारा सँग्रहीत अनुश्रुति के अनुसार कार्तिकेयपुर के नरेश कत्यूरी राजवँश के थे। और डोटी, असकोट तथा पाली में उसी राजवँश की शाखाओं ने अपनी ठकुराइयां स्थापित कीथीं। इस अनुश्रुति की पुष्टि केलिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध

---

१. २. राहुल—कुमाऊ, पृ० ६०   ३- एटकिनसन - हिमालयन डिस्ट्रक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

न होने पर भी इसे अस्थायीरूप से तबतक मानसकतेहैं, जबतक दोनों राजवँशों की विभिन्नता सूचित करनेवाला कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

कटोर और कत्यूरी— कत्यूरीनरेशों के राज्यकाल में निर्मित कटारमल्ल का सूर्यमन्दिर आजतक चलाआताहै । कल्पना कीजातीहै कि कटारमल्ल में कटार शब्द कत्यूर शब्द का रूपान्तर है [१] । और कत्यूरी या कटार काबुल और पश्चिमी हिमालय की ढालों पर बसीहुई कटोर या कटोरमान नामक आयुधजीवी जाति के वँशज थे [२] ।

डोटी और असकोट, दोनों राजपरिवारों की वँशावलियों में कटारमल्ल नामक नरेश का नाम आताहै [३] । जो सम्भवत: कटारमल्ल के सूर्यमन्दिर का संस्थापक था । इसलिए कटार को कत्यूरी का रूपान्तर मानकर कत्यूरीवँश का कटोरवँश से साम्य स्थापित करना ऐतिहासिक तथ्यों पर उतना आधारित नहीं है , जितना शब्दसाम्य पर है ।

काबुल का अन्तिम कटोर या कटोरमान नरेश वासुदेव था, जिसके उत्तराधिकारी कनक से उसके मन्त्री ने राज्य छीनलियाथा [४] । कत्यूरीनरेशों का मूलपुरुष भी वासुदेव था [५] । काफिरस्तान और चितराल के शासक आज भी शाहकटोर कहलातेहैं [६] । महमूद गजनी के हिन्दू सेनापति तिलक के अधीन कटोर युवकों की सेना उसके पक्ष में लड़तीथी [७] । तैमूर के आक्रमण के समय कटोर वीरों ने उससे लोहा लियाथा [८] । अभिलेखों से विदित होताहै कि कटोर आयुधजीवियों ने हिमालय की ढालों पर अनेक छोटे - बड़े राजवँशों की स्थापना कीथी [९] ।

नामसाम्य तथा कुमाऊँ में कटोरों (कत्यूरियों) के आबसने की तिथि के आधार पर अनुमान कियाजाताहै कि कुमाऊँ के ये कटोर (कत्यूरी) नरेश उन्हीं कटोरों के वँशज थे, जो तिलक के अधीन महमूद के पक्ष में लड़े थे [१०] । हम आगे देखेंगे कि कार्तिकेयपुर में कत्यूरी - राजवँश की स्थापना तिलक के जीवनकाल से लगभग दो शती पहले होचुकीथी । प्राचीन आयुधजीवी कटोरों द्वारा पश्चिमी हिमालय में फैलने की कल्पना साधार होसकतीहै, पर कटोर और कत्यूरी का एकत्व स्थापित करने केलिए अभीतक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलाहै ।

१- राहुल — कुमाऊं, पृ० ५४ २- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ३८१

३- राहुल—कुमाऊं, पृ० ५९ ४- ईलियट तथा डोसन —हिस्टरी आव इण्डिया, जि०२, पृ० ४०४-५

५- एटकिनसन — पूर्वोक्त, जि० २, पृ० ३८१

६- ८- ईलियट तथा डोसन — पूर्वोक्त, जि० २, पृ० ४०४ ९- एटकिनसन—पूर्वोक्त, पृ० ३८१

१०- ‘The identity of name and the period of the establishment of the Kators in Kumaun, appear to render it possible that we have in them the descendants of those Kators who faught under the banners of the first Muhammadan conquerers’.

— ईलियट तथा डोसन — पूर्वोक्त, पृ० ४०६

शक-कुशाणों से सम्बन्ध— कनिंघम के अनुसार कटोरमान या किटोरान 'किदार - कुशाण' का रूपान्तर है [१]। राहुल के अनुसार कत्यूरीवंश का सम्बन्ध शकों की कुशाण शाखा से था। कत्यूरीनरेशों की वंशावलियों में शालिवाहन का नाम आताहै [२]।

जिसप्रकार शकों के शकाव्द को शालिवाहन शकाब्द कहाजाताहै, उसीप्रकार शक केलिए शालिवाहन का प्रयोग होनेलगा [३]। गढ़वाल और कत्यूर के राजाओं के पूर्वज शालिवाहन के पुत्र रिसालू की राजधानी देहरादून के पास हरिपुर नामक स्थान पर बताईजातीहै [४]। कत्यूरीनरेशों द्वारा स्थापित गोपेश्वर, कटारमल्ल, बागेश्वर, द्वाराहाट आदि के मन्दिरों में बूटधारी सूर्य की प्रतिमाएँ हैं, जिन्हें शकों की देन कहाजाताहै [५]। राहुल के अनुसार शब्दसाम्य, सूर्यपूजासाम्य आदि से कत्यूरी और कटोर एक ही वंश के होसकतेहैं [६]।

खशजाति से सम्बन्ध— राहुल की मान्यता है कि कत्यूरीराजवंश का सम्बन्ध शकजाति से था, खशजाति से नहीं [७]। किन्तु कत्यूरीनरेशों के समकालीन यशोवर्मन् चन्देल के खजुराहो - शिलालेख के अनुसार उसने खशनरेश की शक्ति को तोला था [८]। यह खशनरेश, निश्चय ही पांचाल के उत्तर में स्थित उत्तराखण्ड का कत्यूरीनरेश रहाहोगा। कत्यूरीनरेशों के समकालीन धर्मपाल, देवपाल, नारायणपाल [९] और मदनपाल के अभिलेखों में खशनरेश या खशदेश को उनके अधीन बतायागयाहै [१०]। कत्यूरीराज्य के उत्पाटनकर्त्ता अशोकचल्ल के बोधगया - शिलालेख में उसे खशदेश का नरेश कहागयाहै [११]। इसलिए यह मानाजासकताहै कि कत्यूरीवंश का सम्बन्ध खशजाति से था, जिसे कार्तिकेयपुर या कार्तिकपुर > कात्तियपुर > कत्तिउर > कत्यूर में [१२] बसजासेपर कत्यूरी नाम पड़ाहो।

कत्यूरीवंश की सामाजिक स्थिति भी उसका सम्बन्ध खशजाति से जोड़तीहै। प्राचीनकाल में उत्तराखण्ड की ब्राह्मण - राजपूत जातियों में ऊँच - नीच का भेदभाव अधिक व्यापक था। उच्च जातियों के राजपूत खशजाति के वंशजों को हेय समझतेथे। एक लोकगाथा के अनुसार मायापुरहाट के पुण्डीरनरेश, कत्यूरियों को अपने से छोटी जाति का समझकर, उन्हें अपनी पुत्रियां नहीं देतेथे [१३]। कुमाऊँ के चन्दवंशी नरेश समकालीन कत्यूरी-परिवारों से उनकी पुत्रियां तो लेलेतेथे, किन्तु उन्हें अपनेसे छोटी जाति का समझकर उन्हें अपनी पुत्रियां नहीं देतेथे [१४]।

१- कनिंघम — लेटर सिथियन्स, पृ० १८९   २- डोटी तथा असकोट की वंशावलियों में प्रथम नरेश
३- राहुल—गढ़वाल, पृ० १०१ - १०२   ४- वाल्टन — देहरादून - गजेटियर, पृ० १६८
५- ७- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० १०२
८- 'गौड क्रीडालतासिस्तु लतखसबल कोशल: कोशलानाम्' — खजुराहो - शिलालेख, पं० १३
९- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६३   १०- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६४
११- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४०३   १२- राहुल — पूर्वोक्त, पृ० १०१
१३- ओकले तथा गैरोला — हिमालयन फोकलोर, पृ० १५
१४- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स जि० २, पृ० ४९६

कत्यूर से कत्यूरी— एटकिनसन की मान्यता है कि कटोर (कत्यूरी) नरेशों के आबसने के कारण उस प्रदेश का नाम कत्यूर या कार्तिकेयपुर पड़ा [१]। किन्तु पौरवनरेशों के शासनों से विदित होताहै कि कत्यूरीनरेशों से एक शती पहले से ही कार्तिकेयपुर प्रसिद्धि प्राप्तकरचुकाथा। एटकिनसन की यह कल्पना कि कत्यूरियों के बसने से उपत्यका का नाम कत्यूर पड़गया, उत्तराखण्ड में प्रचलित प्रथा के विपरीत है। इस प्रदेश में ब्राह्मण-राजपूतों की सैकड़ों उपजातियों का नामकरण उस गांव के नाम पर आधारित मिलताहै, जिस गांव में उस उपजाति के मूलपुरुष जाकर बसेथे [२]।

उत्तराखण्ड में दीर्घकाल तक रहे पादरी ओकले ने भी एटकिनसन की कल्पना पर अविश्वास करतेहुए लिखाहै :— ‘ कत्यूर, कटोर और उनकी राजधानी कार्तिकेयपुर के नामों में मिलनेवाली समानता या तो आकस्मिक है, अथवा राजवँश का नामकरण उस नगर (कार्तिकेयपुर, कार्तिकपुर) के कारण हुआ, जहां उस राजवँश की राजधानी थी [३]।

नेपाल से सम्बन्ध— अनुश्रुति के अनुसार कत्यूरीवँश का सँस्थापक वासुदेव था। काबुल के कटोरमान वँश का अन्तिम नरेश भी वासुदेव था। एटकिनसन दोनों को एक मानने के पक्ष में हैं। किन्तु बागेश्वर में प्राप्त त्रिभुवनराज के शिलालेख से विदित होताहै कि प्रथम कत्यूरीनरेश का नाम वसन्तनदेव था, वासुदेव नहीं। कत्यूरीनरेश ललितशूर की राज्यावधि को ध्यान में रखकर वसन्तनदेव का राज्यकाल यशोवर्मन् के पतन के पश्चात् सँ० ७९७ से ८०९ वि० (740 से 752 ई०) के बीच किसी समय आरम्भ होताहै।

नेपाल के इतिहास से पता चलताहै कि इन्हींदिनों नेपाल में मानगृह के लिच्छविवँश में उत्पन्न वसन्तदेव सँ० ८११ वि० (754 ई०) में शासन कररहाथा [४]। कत्यूरीनरेशों का राज्य नेपाल के पश्चिमी भाग में, डोटीप्रदेश (कालीगंगा - गँडकीनदी की मध्यवर्ती उपत्यका) पर कई शतियों तक बनारहा।

वसन्तदेव और वसन्तनदेव को एक मानकर यह कल्पना होसकतीहै कि कत्यूरीनरेशों की मूलभूमि नेपाल के डोटीप्रान्त में थी। जब वे कत्यूर - उपत्यका में आबसे तो वे कत्यूरी कहलानेलगे। किन्तु प्रमाणों के अभाव में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है।

१- ‘The dynasty must have had a tribal name before Kartikeyapur was occupied and it would be contrary to all precident that this should be changed for a corrupt form of the name of their new capital city. It is, therefore, much more likely that the dynasty gave their tribal name to the valley and that this name was Kator or Katyuri.’ — एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६८

२- यथा, रतूड़ा में बसने से रतूड़ी ; नउन में बसने से नउनी ; कोठार से कोठारी ; मन्यार से मन्यारी आदि, द्र० रतूड़ी — गढ़वाल का इतिहास, पृ० १४० -

३- ओकले — होलि हिमालय, पृ० ९८

४- वलदेवप्रसाद मिश्र — नैपाल का इतिहास, पृ० ४८

सूचनास्रोत—

कार्तिकेयपुर के नरेशों के अबतक ८ अभिलेख मिलेहैं। कालीमठ में भट्ट भवशर्मन् का शिलालेख भी उन्हींके राज्यकाल का है। बढ़ापुर की जैनमूर्ति का लेख भी उनके राज्यकाल के अन्तिम दिनों का होसकताहै।

सँख्या	प्राप्तिस्थान	अभिलेख	नरेश	राजधानी	राज्यसँवत्सर
१-	जोशीमठ [1]	शिलालेख	वासुदेव	? सँभवत: जोशीमठ	?
२-	बागेश्वर	शिलालेख	त्रिभुवनराजदेव	?	?, ११
३-	पाण्डुकेश्वर	ताम्रशासन	ललितशूर	कार्तिकेयपुर	२१
४-	,,	,,	,,	,,	२२
५-	बागेश्वर	शिलालेख	भूदेव	?	४
६-	बालेश्वर	ताम्रशासन	देशटदेव	,,	५
७-	पांडुकेश्वर	,,	पद्मटदेव	,,	२५
८-	,,	,,	सुभिक्षराजदेव	सुभिक्षपुर	४
९-	कालीमठ	शिलालेख	?	?	?
१०-	बढ़ापुर	मूर्तिपीठिकालेख	?	?	सँ० १०६७ वि०

लिपि— सभी कत्यूरी - अभिलेखों की लिपि कुटिला है। जो नौवीं - दसवीं शती के मगध के पालवँशी नरेशों के अभिलेखों में तथा कुछ पीछे तिब्बत से प्राप्त तालपत्रों में मिलतीहै [2]।

लाँछन — कत्यूरी - अभिलेख सुन्दर ताम्रपत्रों पर बड़े परिश्रम से एवँ कलापूर्ण ढंग से खोदेगएहैं। ललितशूर के ताम्रशासनों पर लगी राज्यमुद्रा में नन्दी बैठाहै। उसके गले में घँटियां हैं। वह शिर थोड़ा ऊपर उठाएहुएहैं। उसके पिछले दो पैर धरती पर टिकेहैं। अगले पैरों मेंसे बायां तनिक ऊपर उठाहै, तथा दहिना धरती पर मुड़ाहै। नन्दी के नीचे लेख अँकित है। लगभग इसीप्रकार से बैठेहुए नन्दी श्रीनगर के कमलेश्वरमन्दिर में तथा बिनसर के मन्दिर में हैं। पौरव - शासनों पर भी नन्दीलांछन मिलताहै।

अभिलेखों का प्रकाशन— सँ० १९३२ (1875) में एटकिनसन ने पांडुकेश्वर के चार ताम्रशासनों का अँगरेजी अनुवाद प्रकाशित करके उन पर विद्वानों की सम्मति मांगीथी [3]। दो वर्ष पश्चात् उनमेंसे केवल ललितशूर के एक शासन के पाठ का सम्पादन के० एल० मित्र ने किया [4]। सँ० १९५३ (1896) में प्रो० कीलहौर्न ने उसीका नवीन सम्पादन इण्डियन ऐण्टीक्वायरी में प्रकाशित किया[5]। तथा ललितशूर के ताम्रशासनों में दीगई

१- एटकिनसन हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७ २- राहुल—कुमाऊं, पृ० ३८

३- एपिग्राफिया इण्डिका जि० ३१, भाग ६, पृ० २७७

४- प्रोसीडिंग्ज आव एसियाटिक सोसायटी, बंगाल, १८७१, पृ० ७१ --

५- इण्डियन ऐंटीक्वायरी, जि० २५, १८९६, पृ० १७७—

तिथि आदि सूचनाओं के आधार पर उनका प्रसारणकाल सं० ९१० और ९११ वि० (853 तथा 854 ई०) में निर्धारित किया [1]।

एटकिनसन ने अभिलेखों की जिन प्रतियों पर कत्यूरी - राज्यकाल के सम्बन्ध में अपना मत निर्धारित कियाथा, वे अशुद्ध निकलीं। अस्तु डा० डी०सी० सरकार ने लखनऊ संग्रहालय से दो अप्रकाशित ताम्रशासनों की प्रतिलिपियां मँगाकर उनका सम्पादन एपिग्राफिया इण्डिका में प्रकाशित किया [2]। यद्यपि उनके लेख का शीर्षक 'पाण्डुकेश्वर के तीन अभिलेख' है, पर लेख में केवल दो ही ताम्रशासनों का सम्पादन कियागयाहै। बागेश्वर के शिलालेख पर केवल टिप्पणी - मात्र दीगईहै।

पाण्डुकेश्वर के तीन ताम्रशासनों की प्रतिलिपियां, जो पण्डित रुद्रदत्त पन्त ने तय्यार कीथीं, बदरीनाथमन्दिर के कार्यालय में हैं। मूल ताम्रशासनों के अभाव में, यद्यपि उनकी शुद्धता पर पूरा विश्वास नहीं कियाजासकता, तो भी राहुल के अनुसार दूसरी प्रतिलिपियों की अपेक्षा वे अधिक शुद्ध हैं [3]।

बागेश्वरमन्दिर में एक शिला पर दो अभिलेख थे, एक त्रिभुवनराजदेव का और दूसरा भूदेव का। इनका जो अँगरेजी अनुवाद एशियाटिक सो० वँगाल की पत्रिका में छपाथा [4], वह अशुद्ध प्रतिलिपियों पर आधारित हैं [5]। दुर्भाग्य से अभिलेखोंवाली शिला, कई वर्ष पूर्व लुप्त होगईहै। इससे अभिलेखों की प्रामाणिक प्रतिलिपियां प्राप्तकरना असम्भव - सा होगयाहै [6]।

वंशावलियां — बागेश्वरमन्दिर के शिलालेख के अनुसार उस मन्दिर के दक्षिणी भाग में विद्वत् - रचित राजवँशावली अंकित थी। दुर्भाग्य से अब यह वँशावली नहीं मिलती। कत्यूरीराजवंश की डोटी, असकोट और पाली (द्वाराहाट) शाखाओं की वँशावलियों का सँग्रह कई शतियों पश्चात् कियागया। उनमें कत्यूरी - अभिलेखों में वर्णित नरेशों के नाम न मिलनेसे कत्यूरीराजवँश के दसवीं शती तक के इतिहास केलिए वे निरर्थक हैं।

तीन परिवार— कत्यूरी - अभिलेखों से विदित होताहै कि एक ही राजवंश के तीन परिवारों ने कार्तिकेयपुर या उसके पास - पड़ोस में अपनी राजधानी स्थापित करके एक - दूसरे के पश्चात् शासन कियाथा। इन राजपरिवारों के सँस्थापक भसन्तनदेव (बसन्तनदेव), निम्बरदेव और सलोणादित्य थे। अभिलेखों की शब्दावली, अधिकारियों के नाम तथा अन्य सूचनाओं से विदित होताहै कि सलोणादित्य के परिवार ने निम्बरदेव के परिवार के पश्चात् राज्य प्राप्त कियाथा [7]।

१- इण्डियन ऐंटीक्वायरी, जि० २५, १८९६, पृ० १७७-
२- एपिग्राफिया इण्डिका जि० ३१, भाग ६, पृ० २७७ —
३- राहुल—गढ़वाल, पृ० ४७८
४- जो०ए०सो० बंगाल, १८३८, पृ० १०५६ - ५८
५- ७- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, भाग ६, पृ० २७८, २८५

वसन्तनदेव के परिवार का उल्लेख केवल बागेश्वर-शिलालेख में मिलताहै। उसके आधार पर यह निश्चय करना कठिन है कि वसन्तनदेव के परिवार ने सबसे पहले शासन कियाथा या सबसे अन्त में। परम्परा के अनुसार कार्तिकेयपुर के कत्यूरीराजवँश का सँस्थापक वासुदेव था [1]। उस वासुदेव से वसन्तनदेव की एकता की कल्पना करतेहुए एटकिनसन और राहुल ने वसन्तनदेव के परिवार को सबसे पूर्ववर्ती मानाहै [2]। बागेश्वर शिलालेख की शुद्ध प्रति उपलब्ध न होनेसे इस कल्पना को सर्वथा प्रामाणिक नहीं मानाजासकता।

नरेशों की नामावली—अभिलेखों से कार्तिकेयपुर के १४ नरेशों का पताचलताहै—

अभिलेख	नरेश	रानी	पर्ववर्ती नरेश से सम्बन्ध	विरुद		
बागेश्वर-शिलालेख	१- वसन्तनदेव	सज्यनरा	—	परमभट्टारक	महा०	परमेश्वर
(प्रथम)	२- ?	?	तत्पुत्र	,,	,,	,,
	३- खर्परदेव	?	तत्पुत्र	,,	,,	,,
	४- अधिधजदेव[3]	लद्धादेवी	तत्पुत्र	,,	,,	,,
	५- त्रिभुवनराजदेव	?	तत्पुत्र	—	—	—
बागेश्वर-शिलालेख	६- निम्बरदेव	नाशूदेवी	?	—	—	—
(द्वितीय)	७- इष्टगणदेव	धरा(वेंग)देवी	तत्पुत्र	परमभट्टारक	महा०	परमेश्वर
ललितशूरदेव के	८- ललितशूरदेव	लयादेवी	तत्पुत्र	,,	,,	,,
दो ताम्रशासन	९- भूदेव	?	तत्पुत्र	,,	,,	,,
देशटदेव,	१०-सलोणादित्य	सिंधवलीदेवी	?	—	—	—
पद्मटदेव,	११-इच्छटदेव	सिन्धुदेवी	तत्पुत्र	परमभट्टारक	महा०	परमेश्वर
सुभिक्षराजदेव	१२-देशटदेव	पद्मल्लदेवी	तत्पुत्र	,,	,,	,,
के ताम्रशासन	१३-पद्मटदेव	दिशालदेवी	तत्पुत्र	,,	,,	,,
	१४-सुभिक्षराजदेव	?	तत्पुत्र	,,	,,	,,

वसन्तनदेव और उसके वंशज

नाम— अनुश्रुति के अनुसार कत्यूरीवँश का सँस्थापक वासुदेव था। किन्तु उसका नाम किसी अभिलेख या वँशावली में नहीं मिलता। एटकिनसन का अनुमान है कि

१- राहुल—गढ़वाल, पृ० १०० - १०४   २- एटकिनसन—हिंमालयन डिस्ट्रिक्ट्स जि० २, पृ० ४६६

३- एटकिनसन के अनुसार कल्याणराजदेव, पूर्वोक्त, जि० २, पृ० ४६६

इस वासुदेव को और काबुल के अन्तिम कटोरमान नरेश वासुदेव को एक मानाजासकताहै। किन्तु इस अनुमान की पुष्टि या खण्डन केलिए ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है।

त्रिभुवनराजदेव के बागेश्वर - शिलालेख की प्रतिलिपि में उसके प्रथम पूर्वज नरेश का नाम डी० सी० सरकार ने भसन्तनदेव पढ़ाहै [१]। जिसे पहले मसन्तनदेव पढ़ागयाथा [२]। शिलालेख के अनुवाद में एटकिनसन ने उसे वसन्तनदेव बनादियाहै [३]। भसन्तन या मसन्तन नामों का प्रचार नहीं मिलता [४]। शिलालेख लुप्त होजाने से सही नाम का पता लगाना असम्भव - सा होगयाहै।

पाली की कत्यूरी - वँशावली में प्रथम और द्वितीय नरेशों के नाम असन्तिदेव और वसन्तिदेव हैं। डोटी और असकोट की कत्यूरी वँशावलियों में उन्हें क्रमशः बीसवें और इक्कीसवें तथा इकतीसवें और बत्तीसवें स्थान दिएगएहैं। एटकिनसन के समान राहुल ने भी वसन्तनदेव और वासुदेव को एक मानकर उसे कत्यूरीराजवँश का सँस्थापक बतलायाहै।

राज्यस्थापना— राहुल की कल्पना है कि वसन्तन के राज्यारोहण से पूर्व दो शतियों तक हिमालय के इस भाग (उत्तराखण्ड) पर भोट (तिब्बत) का अधिकार चलाआताथा। तिब्बती शासक बौद्ध होनेके कारण सँभव है कभी - कभी बौद्धों के प्रति पक्षपात तथा ब्राह्मणों के प्रति कुछ द्वेष का व्यवहार करतेरहेहों। सँभव है उन्होंने कभी-कभी जन - साधारण पर भी अत्याचार किएहों। जब तिब्बती राजशक्ति विकेन्द्रित होनेलगी और केदारखण्ड पर से उसका दबाव हटनेलगा, तो यहां शक्ति हथियाने केलिए विदेशी (भोट) क्षत्रप तथा स्वदेशी सामन्तों में द्वन्द मचा, जिसमें स्वदेशीय जातीयता के समर्थक सामन्तों की शक्ति बढ़गई। शकवँशीय वसन्तन या वासुदेव ने हवा का रुख देखकर बौद्धधर्म को छोड़ ब्राह्मणधर्म की शरण लीहोगी। राजनीतिक युद्ध में जौ के साथ घुन की भांति बौद्धधर्म पिसगया। और अलकनन्दा - घाटी का एक ठाकुर केदारखण्ड का राजा बनबैठा [५]।

हम देखचुकेहैं कि यशोवर्मन् ने, जिसका राज्यकाल सँ० ७८२ - ८०९ वि० (725 - 752 ई०) मानाजाताहै, तिब्बती लुटेरों को हिमालय के पार खदेड़कर उत्तराखण्ड के गिरिद्वारों की रक्षा कीथी। वसन्तन के राज्यकाल से पूर्व उत्तराखण्ड पर यशोवर्मन् का अधिकार था, किसी भोटदेशीय (तिब्बती) क्षत्रप का नहीं। इसलिए तिब्बती क्षत्रप और स्वदेशीय सामन्तों के मध्य द्वन्द मचने की कल्पना निराधार है। वसन्तन या वासुदेव पहले बौद्धमतावलम्बी था, ऐसा मानने केलिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। राजनीतिक युद्ध में बौद्धमत के पिसने की कल्पना की भी ऐतिहासिक तथ्यों से पुष्टि नहीं होती। शुङ्गकाल से ही, या कम से कम यामुनप्रदेश के अश्वमेधकर्त्ता नरेशों के राज्यकाल से ही, उत्तराखण्ड से बौद्धमत का लोप होनेलगाथा। सातवीं शती में, चीनी यात्री के अनुसार उत्तराखण्ड से बौद्धमत लगभग लुप्त होचुकाथा।

१-४- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० ३१, भाग ३, पृ० २७८

५- राहुल — गढ़वाल, पृ० १०५

राज्यावधि— आठवें कत्यूरीनरेश ललितशूर का राज्यारम्भ सँ० ८८९ वि० (832 ई०) में होनेसे उससे पूर्ववर्ती ७ नरेशों के राज्यकाल केलिए लगभग एक शताब्दी की अवधि चाहिए। अस्तु वसन्तन या वासुदेव का राज्यारम्भ सँ० ७८९ वि० (732 ई०) के आसपास मानसकतेहैं। सम्भवतः स्वतन्त्रता घोषित करने से पूर्व वह यशोवर्मन् का सामन्त या सेनानायक था, जिसे उत्तराखण्ड के गिरिद्वारों की रक्षा का भार सौंपागयाथा। सँ ६९० से ७०२ वि० (633 से 645 ई०) के बीच किसी समय ललितादित्य मुक्तापीड़ से पराजित होकर यशोवर्मन् अपनी शक्ति, प्रतिष्ठा और शासितप्रदेश का पर्याप्त भाग खोबैठा। इससे वसन्तन को स्वतन्त्रता घोषित करने का अवसर मिलगया।

राजधानी— बागेश्वर - शिलालेख में वसन्तन की राजधानी का कोई उल्लेख नहीं है। यदि वसन्तन और वासुदेव एक ही व्यक्ति थे, तो जोशीमठ के शिलालेख के आधार पर, जिसमें वासुदेव को ' गिरिराज - चक्र - चूड़ामणि ' कहागयाहै, अनुमान लगताहै कि उसकी राजधानी जोशीमठ में रहीहोगी, जिसे कत्यूरी - अभिलेखों में कार्तिकेयपुर कहागयाहै, तथा जहां निम्बर के परिवार की एवँ सलोणादित्य के परिवार की राजधानी थी। कार्तिकेयपुर तिब्बत जानेवाले मार्गों पर नीतीद्वार और माणाद्वार का प्रहरी है। वहां से कुमाऊँ के गिरिद्वारों की रक्षाहेतु भी सरलता से सेना भेजीजासकतीहै। स्वतन्त्र होजाने पर भी तिब्बत के आक्रमणों को रोकने केलिए कार्तिकेयपुर में सुदृढ़ सैनिक छावनी की आवश्यकता थी। इसलिए कत्यूरीनरेशों ने उसी नगर में अपनी राजधानी की स्थापना की। राज्य के मध्य एवँ दक्षिणी भागों की सुरक्षा एवँ सुव्यवस्था - हेतु अन्य प्रमुख स्थानों पर भी सैनिक छावनियां तथा कार्यालय रहेहोंगे।

डी० सी० सरकार ने कत्यूरी - अभिलेखों के कार्तिकेयपुर की पहिचान अलमोड़ा जिले के वैद्यनाथ (वर्तमान बैजनाथ) से कीहै [१]। किन्तु एटकिनसन [२] और राहुल [३] इससे सहमत नहीं हैं। उनकी धारणा है कि प्राचीन कार्तिकेयपुर जोशीमठ में था। जिसके पतन पर यह नाम गोमती - उपत्यका में स्थित कत्यूरीवँशजों की नई राजधानी वैद्यनाथ (बैजनाथ) केलिए व्यवहृत होनेलगा। वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर का सर्वप्रथम उल्लेख तेरहवीं शती में त्रिभुवनपालदेव के शिलालेख में मिलताहै [४]। त्रिभुवनपालदेव के पूर्वज ललितशूरदेव और पद्मटदेव के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर के पास अन्तराग और टँकणपुर विषय, टँकणपुर, बदरिकाश्रमीय तपोवन, बदरिकाश्रम, योशिका, गरुड़ाश्रम, पलसारी, विष्णुगँगा आदि का उल्लेख मिलने और अन्य प्रमाणों से विद्वानों की धारणा है कि कत्यूरीनरेशों की आदि राजधानी कार्तिकेयपुर (कत्यूर) जोशीमठ में थी [५]। पीछे जब उन्हें जोशीमठ छोड़कर बैजनाथ में अपनी राजधानी बनानीपड़ी तो उन्होंने उसे वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर नाम देदिया [६]।

१- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० ३१, भाग ६, पृ० २७९

२- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

३- राहुल—कुमाऊं, पृ० २६ ४- राहुल — कुमाऊं, पृ० ६१ ५- ६- राहुल—कुमाऊं, पृ० ६५

राहुल की मान्यता है कि कत्यूरियों के पूर्वज कुशाण - शक अपनी मुद्राओं पर कार्तिकेय - स्कन्द की मूर्ति अंकित करतेथे। इसलिए उनके वंशजों का अपने वंश - गौरव तथा वीरत्व की सूचना केलिए देवसेनानी के नाम पर अपनी राजधानी को कार्तिकेयपुर कहना स्वाभाविक था[1]। हम देखचुकेहैं कि समुद्रगुप्त के राज्यकाल में कर्त्रिपुर को[2], जिसे राजशेखर ने कार्तिकेयपुर बतलायाहै[3], खशाधिपति की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त था। गुप्त - शासनकाल में उसका महत्व घटगया। पौरव - शासनकाल में वह ग्रामक (गँवाड़ा) - मात्र रहगया[4]। उसे फिरसे राजधानी बनाने का श्रेय सम्भवतः कत्यूरीनरेश वसन्तन को है।

चरित्र — अभिलेखों से विदित होताहै कि वसन्तन धार्मिकवृत्ति वाला नरेश था। सम्भवतः जोशीमठ के नृसिहमन्दिर का, जिसकी दीवार पर उसका नाम अंकित है, निर्माण उसीके द्वारा हुआथा। उसने वैष्णवों को शरणेश्वर नामक ग्राम अग्रहार में दियाथा[5]। उसकी रानी सज्यनरादेवी को शिलालेख में पतिपरायणा बतायागयाहै[6]। वसन्तन शक्तिशाली नरेश था। जोशीमठ के शिलालेख में उसे 'गिरिराजचक्रचूड़ामणि' की उपाधि से विभूषित कियागयाहै। बागेश्वर - शिलालेख के अनुसार उसका विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज था। उसने जिस राजवंश की नींव डाली उसने ढाई - तीन शतियों तक उत्तराखण्ड को शान्ति, समृद्धि और स्थिरशासन प्रदान किया।

अज्ञातनामा नरेश

वसन्तन के पश्चात् उसके पुत्र को सिंहासन मिला। उसका नाम शिलालेख में अपाठ्य होजाने के कारण लुप्त होगयाहै। उसका विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था। उसे शिलालेख में परमसम्मानित, श्रद्धाभाजन तथा अतिविभवसम्पन्न बतलायागयाहै[7]।

यह नरेश शिवभक्त था। शिव की पूजा केलिए उसने कई वृत्तियां प्रदान कीथीं[8]। अम्बलि गांव के व्याघ्रेश्वरदेवता की पूजा केलिए उसने पुष्प, धूप, दीप, अनुलेपन आदि द्रव्यों का प्रबन्ध कियाथा[9]। उसके पिता वसन्तन ने शरणेश्वर नामक ग्राम वैष्णवों को प्रदान कियाथा। उस ग्राम को इस नरेश ने व्याघ्रेश्वरमन्दिर को अर्पित करदिया[10]।

यह नरेश सार्वजनिक हित के कार्य करने में तत्पर रहताथा। उसने जयकुल-भुक्तिका को जानेवाले कई सार्वजनिक मार्गों का निर्माण कियाथा[11]। उन मार्गों के किनारों पर उसने पांथशालाएं बनवाईथीं। अभिलेखों में उसकी कीर्ति यावत्

१- राहुल—कुमाऊं, पृ० ५६
२- प्रयाग - प्रशस्ति, पं० २२
३- काव्यमीमांसा, पृ० १२४
४- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० २०
५- ६- बागेश्वर - शिलालेख, उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७८

चन्द्र - दिवाकर रहने की कामना कीगईहै। उत्तराखण्ड में अशोक के पश्चात् वही ऐसा नरेश हुआ जिसके द्वारा सार्वजनिक मार्गों और उनके किनारों पर पांथशालाओं के निर्माण का लिखित प्रमाण मिलताहै। दुर्भाग्य से इस प्रजाहितैषी नरेश का नाम शिलालेख में अपाठ्य होगयाहै।

खर्परदेव

उस नरेश के पुत्र खर्परदेव ने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर का विरुद धारण कियाथा। उसके राज्यकाल के सम्बन्ध में शिलालेख से कुछ भी सूचना नहीं मिलती। उसकी रानी का नाम भी शिलालेख में अपाठ्य होगयाहै।

अधिधज

एटकिनसन के अनुसार खर्परदेव के पुत्र अधिघज का दूसरा नाम कल्याणराजदेव था[1]। इस नरेश ने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज विरुद धारण कियाथा। उसे शिलालेख में वित्त-विद्या-मान-समन्वित कहागयाहै[2]।

उसकी रानी का नाम लद्धादेवी था। जिससे उसका पुत्र और उत्तराधिकारी त्रिभुवनराजदेव उत्पन्न हुआथा। इस नरेश के एक दूसरे पुत्र का भी उल्लेख शिलालेख में है[3]। अधिधज के सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना अभिलेख से नहीं मिलती।

त्रिभुवनराजदेव

त्रिभुवनराजदेव के नाम के साथ उसके पूर्वजों का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज नहीं लगाहै। इससे विदित होताहै कि अपने किसी शक्तिशाली पड़ोसी के आतंक के कारण वह ऐसा करने में असमर्थ था। सँ० ८५७ वि० (800 ई०.) के लगभग इन्द्रायुध को कान्यकुब्ज के सिंहासन से उतारकर धर्मपाल ने चक्रायुध को कान्यकुब्ज का अधिपति बनायाथा[4]। और धर्मपाल के राज्यकर्मचारियों ने केदारनाथतीर्थ की यात्रा कीथी[5]। ऐसी उथल - पुथल के समय में त्रिभुवनराज केलिए स्वतन्त्र सम्राट का विरुद धारण करना सम्भव न था।

उसने भी जयकुलभुक्तिका में दो द्रोण बीजवाला एक उपजाऊ खेत व्याघ्रेश्वर के मन्दिर को दान कियाथा। तथा उस पर व्याघ्रेश्वरदेवता की पूजा केलिए गन्धादिद्रव्य

१- एटकिनसन – हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स जि० २, पृ० ४६६

२ ३· बागेश्वर - शिलालेख, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७८ - ७६

४- धर्मपाल का खालिमपुर - शासन, पं० २०-२१   ५- देवपाल का मुंगेर-शासन, पं १० - ११

(पुष्प, केशर आदि) उत्पन्न करने का आदेश दियाथा [१]। त्रिभुवनराज ने कम से कम ग्यारह वर्ष तक राज्य कियाथा। उसके राज्य के ग्यारहवें वर्ष में उसके भ्राता ने दो द्रोण बीजवाली भूमि दान में दीथी और उसका शिलालेख अंकित करायाथा [३]।

त्रिभुवनराज के एक परम मित्र किरात - पुत्र का उल्लेख भी शिलालेख में है। उसने व्याघ्रेश्वर केलिए तथा गँबियपिण्ड देवता केलिए ढाई द्रोण भूमि प्रदान कीथी [३]। यह किरात - पुत्र कौन था ? कहना कठिन है।

अज्ञातनामा राजकुमार

अधिधज के एक दूसरे पुत्र ने, जिसका नाम शिलालेख में नहीं है, अपने भ्राता त्रिभुवनराज से भी अधिक भूमि दान में दीथी। उसने भरके (भटकू ?) देवता, व्याघ्रेश्वरदेव तथा चण्डालमुण्डा (चामुण्डा ?) देवी को भूमि प्रदान कीथी [४]। उसने व्याघ्रेश्वर के सम्मान में एक प्याऊ भी स्थापित कियाथा। इस राजकुमार ने त्रिभुवनराज के राज्यकाल के ११ वें वर्ष में भूमिदान का जो शिलालेख अंकित करायाथा, वह अभीतक प्राप्त नहीं हुआहै [५]।

निम्बर और उसके वंशज

नाम— ललितशूर के पाण्डुकेश्वर-ताम्रशासनों में इस नरेश का नाम श्रीनिम्बरस् अंकित है। भूदेव के बागेश्वर - शिलालेख में उसे निम्बर्त कहागयाहै। ललितशूर के ताम्रशासनों और भूदेव के शिलालेख में दीगई राजवँशावली में अन्तर न होनेके कारण निम्बर और निम्बर्त को एक ही व्यक्ति मानसकतेहैं। बागेश्वर - शिलालेख की मूल सँस्कृत प्रति उपलब्ध नहीं है। अस्तु ललितशूर के दोनों ताम्रशासनों में उल्लिखित निम्बर नाम को ही प्रामाणिक मानसकतेहैं।

राज्यप्राप्ति— ललितशूर के ताम्रशासन से विदित होताहै कि निम्बर ने भगवान् धूर्ज्जटि (शिव) के प्रसाद से शत्रु-तिमिर को हटाकर अपनी भुजाओं के बल से राज्य प्राप्त कियाथा [६]। इससे अनुमान लगताहै कि त्रिभुवनराज की मृत्यु के पश्चात् उसके वंशजों से लड़कर अथवा स्वयं त्रिभुवनराज से ही लड़कर निम्बर ने उसके राज्य को हस्तगत कियाथा।

धर्मपाल ने सँ० ८५७ वि० (800 ई०) के आसपास इन्द्रायुध को कान्यकुब्ज के सिंहासन से उतारकर चक्रायुध को कान्यकुब्ज का अधिपति बनायाथा। चक्रायुध के

१-५- बागेश्वर - शिलालेख, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७९

६- ललितशूर का ताम्रशासन, पं० ३

अभिषेक के समय उसने जो दरबार कियाथा उसमें गान्धार, मद्र, कुरु, कीर, अवन्ति आदि के नरेश (या उनके प्रतिनिधि) उपस्थित हुएथे [१]। इस सूची में कार्तिकेयपुर के नरेश का उल्लेख नहीं है [२]। इसके दो कारण होसकतेहैं। या तो उनदिनों कार्तिकेयपुर कान्यकुब्ज के अधीन था, इसलिए उसके पृथक उल्लेख की आवश्यकता नहीं समझीगई। अथवा त्रिभुवनराज या कार्तिकेयपुर के समकालीन नरेश को राजसभा में उपस्थित होनेका निमन्त्रण दियागया किन्तु वह उपस्थित न हुआ। पहला कारण असंगत लगताहै। चक्रायुध से पूर्ववर्ती नरेश वज्रायुध और इन्द्रायुध दुर्बल नरेश थे। इसके विपरीत वसन्तन, खर्पर और अधिधज, त्रिभुवनराजदेव के इन तीनों पूर्वपुरुषों का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था। अस्तु उन्हें कान्यकुब्जनरेश का अधीनस्थ नहीं मानसकते।

इस दरबार के समय धर्मपाल के राज्याधिकारियों ने केदारनाथतीर्थ की यात्रा कीथी [३]। जागेश्वर के मृत्युञ्जय आदि मन्दिरों के शिलालेखों से विदित होताहै कि इनदिनों अनेक पूर्वदेशीय तीर्थयात्री उत्तराखण्ड के मन्दिरों में पहुँचतेथे [४]। निम्बर के वंशजों का पालनरेशों के प्रति विशेष आकर्षण था। पालनरेशों ने उत्तराखण्ड पर अपने अधिकार की चर्चा कीहै [५]। देवपाल और नारायणपाल के अभिलेखों और निम्बर के वंशजों के अभिलेखों में अतिरोचक समानता है [६]। पालनरेशों और इन कत्यूरीनरेशों के अभिलेखों के अंकेता एक ही वंश के थे [७]। इसलिए अनुमान लगताहै कि धर्मपाल के इंगित पर, सम्भवतः उसके राज्याधिकारियों की केदारयात्रा के समय, निम्बर ने त्रिभुवनराज या उसके उत्तराधिकारी से सं० ८५७ वि० (800 ई०) के आसपास कार्तिकेयपुर का सिंहासन छीनलियाथा।

निम्बर की प्रशस्ति— निम्बर के राज्यकाल की अन्य किसी घटना का पता अभिलेखों से नहीं चलता। उसके पौत्र ललितशूर के ताम्रशासनों में उसके उज्ज्वलचरित्र की बड़ी प्रशंसा कीगईहै। उसे दया, दाक्षिण्य, सत्य, सत्व, शील, शौच, औदार्य, गाम्भीर्य, मर्यादा, आर्यवृत्ति आदि गुणोंवाला तथा आश्चर्यजनक कार्य करने में कुशल बतायागयाहै [८]। उसने अनेक सुकृत किएथे। वह सतयुग के नरेशों के समान ललित कीर्तिवाला था। भगवती नन्दादेवी के चरणों में विराजनेवाली लक्ष्मी ने उस पर अनुग्रह कियाथा [९]। उसकी अग्रमहिषि का नाम नाशूदेवी था [१०]।

१- २- खालिमपुर - ताम्रशासन, पं० २१ ३- देवपाल का मुंगेर - ताम्रशासन, पं १० - १२
४- द्र० बागेश्वर - शिलालेख, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४११ - १४
५- नारायणपाल का भागलपुर - ताम्रशासन, पं० ३६ ; पूर्वोक्त, पं० २२ - २३
६- द्र० राहुल — गढ़वाल, पृ० ८८ - ९०
७- मिलाइए, पाल - अभिलेखों के अंकेता — विन्दाभद्र, भट्टगौरव, विन्दभद्र तथा ललितशूर, देशट, पद्मट और सुभिक्षराज के ताम्रशासनों के अंकेता गंगभद्र, भद्र और नन्दभद्र
८- ललितशूर का ताम्रशासन (१), पं० ३-४ ९- पूर्वोक्त, पं० ४
१०- पूर्वोक्त, पं० २ - ६

शंकराचार्य का आगमन— विद्वानों की धारणा है कि शँकराचार्य का जन्म सं० ८४५ वि० (788 ई०) में केरलप्रदेश में हुआथा। ३२ वर्ष की आयु में उन्होंने केदारनाथ में अपना शरीर त्याग दिया। बदरिकाश्रम में उन्होंने अपने प्रमुख ग्रन्थों की रचना की। बदरिकाश्रम (बदरीनाथ) मन्दिर में वर्तमान मूर्ति की स्थापना भी उन्हींके द्वारा हुई, ऐसी मान्यता है। शँकराचार्य का आगमन निम्बरदेव के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में, या इष्टगणदेव के राज्यकाल के आरम्भिक वर्षों में हुआ। इस सम्बन्ध में आगे विचार कियाजाएगा।

इष्टगणदेव

निम्बर के पुत्र इष्टगणदेव ने कान्यकुब्जनरेश को सँकट में फँसा देखकर, तथा सम्भवत: देवपाल के इंगित पर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर का विरुद धारण कियाथा [१]। ताम्रशासन में उसे परममाहेश्वर (परमशैव) तथा परमब्रह्मण्य (परम ब्राह्मणभक्त) कहागयाहै [२]। उसने अपनी उज्ज्वल कृपाण के द्वारा मत्त हस्तियों का मस्तक विदीर्ण करके अपनी यशपताका फैलाईथी [३]।

इससे विद्वानों का अनुमान है कि इष्टगणदेव के राज्य पर किसी मैदानी नरेश ने आक्रमण कियाथा। पर्वतीय भागों के नरेश धरातल की विषमता के कारण एक - दूसरे के विरुद्ध युद्ध में रणहस्तियों का प्रयोग नहीं करसकते [४]। इष्टगणदेव ने स्वयँ युद्ध में उपस्थित होकर किसी पर्वतीय घाटे के पास मैदानी नरेश के हस्तिदल का उच्छेदन कियाथा [५]। इष्टगणदेव से भिड़नेवाला यह नरेश प्रतिहारनरेश नागभट्ट का कोई सामन्त होसकताहै। उसकी राजमहिषी का नाम वेगदेवी था [६]। भूदेव के शिलालेख में उसकी एक अन्य रानी का, या उसीका दूसरा नाम धरादेवी दियागयाहै [७]।

ललितशूरदेव

ताम्रशासन— इष्टगणदेव के पुत्र ललितशूर के दो ताम्रशासन प्राप्त हुएहैं। दोनों के आरम्भिक अंश में, जिसमें ललितशूर और उसके पूर्वजों की प्रशस्ति है, पूरा साम्य है। पहिले ताम्रशासन के अन्तिम भाग में दूसरे की अपेक्षा २ श्लोक अधिक हैं। दोनों शासनों में ललितशूर का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मिलताहै। अपने पिता के समान वह भी अपनेको परममाहेश्वर परमब्रह्मण्य घोषितकरताहै। उसे कलिकलँक-पँक

१- ४- ललितशूर का ताम्रशासन (१), पं० ५ - ६

५- भूदेव का शिलालेख, उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७९

६- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

७- ओकले — होलि हिमालय, पृ० ९८

में मग्न धरणी के उद्धार केलिए बराहावतार के समान बतायागयाहै। शौर्य - वीरत्वादि गुणों में उसकी समता कीर्तिबीज, पृथु और गोपाल से कीगईहै [१]। ललितशूर के शासनों के इस अंश पर पाल - अभिलेखों का प्रभाव स्पष्ट दिखाईदेताहै [२]। जहां ललितशूर की प्रशंसा में इतनी प्रतिभा बखेरीगईहैं, वहां उसके राज्यकाल की, भूमिदान के अतिरिक्त, अन्य किसी ऐतिहासिक घटना के सम्बन्ध में दोनों ताम्रशासन सर्वथा मौन हैं। इन ताम्रशासनों में राज्याधिकारियों को एक लम्बी सूची दीगईहै जो स्पष्टत: पालनरेशों के अभिलेखों से लीगईहै। अन्त में स्मृतियों से उद्धृत भूदान - सम्बन्धी श्लोकों से समकालीन मान्यताओं पर रोचक प्रकाश पड़ताहै।

मन्दिरों को भूमिदान— वसन्तन के राज्यकाल में उत्तराखण्ड में वैष्णवों के आगमन का उल्लेख होचुकाहै। शंकराचार्य ने, अनुश्रुति के अनुसार, बदरिकाश्रम में नारायण की मूर्ति की स्थापना कीथी। ललितशूर की एक रानी सामादेवी ने कार्तिकेयपुर के पास गोरुन्नासा नामक ग्राम में भगवान् नारायण के मन्दिर की स्थापना कीथी [३]। उसके राज्य में श्रीपुरुष भट्ट नामक किसी व्यक्ति ने भी गरुड़ाश्रम में नारायण के एक अन्य मन्दिर की स्थापना कीथी [४]। ललितशूर ने इन दोनों मन्दिरों को भूमि प्रदान कीथी। उसके शासनों में बदरिकाश्रमीय तपोवन का भी उल्लेख है [५]।

परिवार— ललितशूर की दो रानियां थीं। उसकी एक रानी का नाम लयादेवी था, जिससे उसके पुत्र और उत्तराधिकारी भूदेव का जन्म हुआथा [६]। ललितशूर की एक अन्य रानी का नाम सामादेवी था, जिसने गोरुन्नासा गांव में नारायण के मन्दिर की स्थापना कीथी [७]। इस रानी को अभिलेख में महादेवी (प्रधान रानी) कहागयाहै [८]। उसकी सन्तति का अभिलेखों में कोई उल्लेख नहीं है।

राज्यावधि—ललितशूर ने अपने राज्य के २१वें और २२वें वर्ष में दो ताम्रशासन प्रसारित किएथे। उनमें दीहुई तिथि आदि सूचनाओं के आधार पर प्रोफेसर कीलहॉर्न उनकी निश्चित तिथि ज्ञात करने में सफलहुएहैं [९] :-

प्रथम शासन – प्रवर्द्धमान विजयराज्य सँवत्सर एकविंशतितमे (२१), माघवदि ३, उत्तरायण-सँक्रान्ति = 22 दिसम्बर 853 = माघवदि ३, सँ० ९१० वि०

१- ललितशूर का ताम्रशासन, (१), पं० ७

२- एटकिनसन – हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स जि० २, पृ० ४८३

३- ललितशूर का ताम्रशासन, (१), पं० २०

४- ललितशूर का ताम्रशासन (२) ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७५

५- ललितशूर का ताम्रशासन (२) ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७६

६- भूदेव का शिलालेख, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७९

७- ८- ललितशूर का ताम्रशासन, (१), पं० २०

९- इण्डियन ऐंटीक्वायरी, जि० २५, १८९६, पृ० १७८

द्वितीय शासन–प्रवर्द्धमान् विजयराज्य सँवत्सर द्वाविंशतितमे (२२), कार्तिकवदि १५ [1]

तुला - विशुव - सँक्रान्ति = 25 सितम्बर 854

= कार्तिकवदि १५ सँ० ९११ वि० (पूर्णिमान्त कार्तिक) ।

ईसा की नौवीं शती में केवल यही एक साथ आनेवाले दो वर्ष, 853 तथा 854 हैं, जिनमें ताम्रशासनों में दीगई तिथि - सम्बन्धी सूचनाएँ ठीक उतरतीहैं। और शासनों के लिपिकाल से कोई विरोध नहीं पड़ता।

इन तिथियों के आधार पर ललितशूर का राज्यारम्भ सँ० ८८९ वि० (832 ई०) में मानाजासकताहै। उसकी मृत्यु सँ० ९११ वि० (854 ई०) के पश्चात् किसी समय हुई। ललितशूर की राज्यावधि निश्चित होजाने से, उसके पूर्ववर्ती और परवर्ती नरेशों की राज्यावधि का स्थूल अनुमान लगाना सरल होगयाहै। उसके पूर्वज निम्बर और इष्टगणदेव की राज्यावधि अनुमान से सँ० ८५७ से ८८९ वि० (800 से 832 ई०) तक मानसकतेहैं।

भूदेव

भूदेव का मूल शिलालेख अप्राप्य है। उस शिलालेख के केवल कुछ अंश का ही अनुवाद एटकिनसन ने प्रकाशित कियाहै। इस शिलालेख को भूदेव ने अपने राज्य के चौथे वर्ष में अँकित कियाथा। शिलालेख के जिस अंश का अनुवाद प्रकाशित हुआहै, उसमें अँकेता आदि का नाम नहीं है। शिलालेख में भूदेव की शरीराकृति और गुणों की चर्चा है। वह सुवर्ण वर्ण का था। उसके नेत्र नील सरोज के समान सुन्दर और चपल थे। उसे सत्यप्रिय, सुन्दर, विद्वान् तथा सदा धर्मानुष्ठान में तत्पर बतायागयाहै।

उसका विरुद भी परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था। उसे परम ब्राह्मणभक्त तथा बुद्ध-श्रवण (श्रमण)- शत्रु कहागयाहै। इससे विदित होताहै कि उसकी वर्णाश्रम पर कट्टर निष्ठा थी। बुद्धश्रमणशत्रु विरुद से पतालगताहै कि उसे बौद्धमत से घृणा थी। अभीतक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलाहै जिससे यह मानसकें कि उसके राज्य में जनता का जो अंश बौद्धमतावलम्बी था, उससे वह दुर्व्यवहार करताथा।

एटकिनसन की कल्पना है कि कत्यूरी नरेशों ने बौद्धमठों और बौद्धपरिवारों को लूटाथा [2]। चीनी यात्री के अनुसार सातवीं शती में ही उत्तराखण्ड में बौद्धमत लगभग लुप्त होचुकाथा। अस्तु एटकिनसन की कल्पना को महत्व नहीं दियाजासकता।

सँ० ९३३ वि० (876 ई०) के लगभग भूदेव के साथ कत्यूरी - राजवंश के दूसरे परिवार का अन्त होगया।

१- राहुल – गढ़वाल, पृ० ८० पर, तथा उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७६ पर भूल से शुदि १५ छपगयाहै, वदि १५ होनाचाहिए।

२- एटकिनसन—हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

सलोणादित्य और उसके वंशज

राज्यप्राप्ति— सलोणादित्य के वँशजों मेंसे केवल देशट, पद्मट और सुभिक्षराज के ताम्रशासन प्राप्त हुएहैं। तीनों में सलोणादित्य के साथ कोई स्वतन्त्र नरेश सूचक विरुद नहीं मिलता। उसे अपनी भुजाओं द्वारा राज्य प्राप्त करनेवाला तथा अनेक रिपुओं के चक्र को नष्ट करनेवाला बतायागयाहै [१]। इससे अनुमान लगताहै कि उसने भूदेव या उसके वँशज से राज्य छीन लियाथा। तथा उसने समकालोन किसी शक्तिशाली नरेश की किसी न किसी रूप में अधीनता स्वीकार कीथी। सँ० ८९३ वि० (836 ई०) में प्रतिहारनरेश भोज ने कान्यकुब्ज में अपनी राजधानी स्थापित करदीथी। किन्तु राष्ट्रकूटों और अन्य विरोधियों के कारण वह कान्यकुब्ज के निकटपड़ोस में स्थित उत्तरभारत के जनपदों को अधीन करने का अवसर न पासका। सँ० ९३३ वि० (876 ई०) में उसने इस ओर ध्यान दिया। और उत्तरभारत में दिग्विजय की योजना बनाई [२]।

देवपाल की मृत्यु होजाने पर उसके मार्ग का कांटा दूर होगयाथा [३]। देवपाल के वे वँशज, जिन्होंने ईसा की नौवीं शती के उत्तरार्द्ध में शासन किया, दुर्वल और शान्तिप्रिय नरेश थे [४]। अस्तु पालनरेशों के भरोसे अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए रखनेवाले ललितशूर के पुत्र भूदेव को परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्दर बने रहने का अवसर सँ ९३३ वि० (876 ई०) के पश्चात् नहीं मिलसकताथा।

राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष ने पाल-राज्य पर आक्रमण करके उसे क्षति पहुँचाईथी। भोज ने इसके पश्चात् आक्रमण करके पालनरेश नारायणपाल के राज्य का कुछ अँश छीन लियाथा [५]। उसका राज्य दक्षिणपश्चिम में काठियावाड़ तक, उत्तरपश्चिम में पँजाब के कुछ भाग तक, उत्तर में गोरखपुर और सारे अवधप्रान्त पर फैलाथा। बुन्देलखण्ड के चन्देलनरेश उसके अधीन थे [६]।

भोज की मृत्यु सँ० ९४२ (885) में होगई। उसके पुत्र महेन्द्रपाल ने भी अपने पिता के राज्य को न केवल सुरक्षित रखा वरन् पूर्वदिशा में कुछ क्षेत्र जीतकर उसमें वृद्धि की। महेन्द्रपाल की सँ० ९६५ वि० (908 ई०) के आसपास मृत्यु होगई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके वँशजों में उत्तराधिकार केलिए जो छीनाझपटी आरम्भ हुई उसने प्रतिहारों की शक्ति और आतँक को दुर्वल करदिया [७]। इसलिए सलोणादित्य के पुत्र इच्छटदेव को परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर विरुद धारण करने का अवसर मिलगया।

प्रशस्ति— निम्बरदेव के वँशजों ने अपने अभिलेखों में अपने राज्यस्थापक निम्बर-

---

१- पद्मट का ताम्रशासन,
२- ४- एज आब इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३०
५- एज आब इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३१
६- एज आब इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३२
७- एज आब इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३ - ३४

देव की प्रशँसा में जिस शब्दावली का प्रयोग कियाहै, उससे भी बढचढकर शब्दावली का प्रयोग सलोणादित्य के वँशजों ने अपने राज्यस्थापक केलिए कियाहै। उसे भगवान् चन्द्रशेखर के चरणकमल की रज से पुनीत बनाहुआ, समस्त कलिकलंक से दूर तथा तपोवदात देहवाला कहागयाहै [१]। दान, दम, सत्य, शौर्य, धैर्य, क्षमा आदि अपरिमित गुणों में वह सतयुग के सगर, दिलीप, मान्धाता, धुन्धुमार, भगीरथ आदि नरेशों से भी आगे बढ़गयाथा। उसे त्रैलोक्य को आनन्द देनेवाली भगवती नन्दादेवी के चरण - कमल - कमला का वरदान प्राप्त हुआथा। वह सलोणादित्य निखिल भुवनों के प्रकाशक आदित्य के समान था [२]। उसकी रानी का नाम महादेवी सिंधवलीदेवी था [३]।

सलोणादित्य के राज्यकाल की किसी घटना का पता उसके वँशजों के अभिलेखों से नहीं लगता।

मेधातिथि की तपस्या— मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार मेधातिथि सलोणादित्य के समकालीन थे। मनुस्मृति पर मेधातिथि की टीका अबतक प्राप्त टीकाओं में सबसे प्राचीन है। मेधातिथि प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे धर्मशास्त्रों और मीमांसा में पारँगत थे [४]। उन्होंने अपनी टीका में असहाय और कुमारिल नामक विद्वानों की रचनाओं से उद्धरण दिएहैं [५]। यद्यपि उन्होंने शँकराचार्य के नाम का उल्लेख नहीं कियाहै, किन्तु उनकी टीका में यत्र - तत्र ऐसे वाक्य मिलतेहैं, जो सम्भवतः शँकराचार्य के विचारों पर आधारित हैं [६]। विज्ञानेश्वर ने मेधातिथि को धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में प्रमाण मानाहै। इससे विद्वानों का अनुमान है कि मेधातिथि का जीवनकाल सँ० ८८२ - ९५७ वि० (825 - 900 ई०) के बीच होनाचाहिए [७]।

मेधातिथि-रचित टीका से विद्वानों ने अनुमान लगायाहै कि वे उत्तरभारत के निवासी थे। और सम्भवतः उनकी जन्मभूमि कश्मीर में थी [८]। कश्मीर में मेधातिथि की जन्मभूमि मानने केलिए अभीतक कोई समकालीन या परवर्ती उल्लेख नहीं मिलाहै। केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार मेधातिथि ने उत्तराखण्ड में देवप्रयाग में तपस्या कीथी [९]। केदारखण्डग्रन्थ में उल्लिखित मेधातिथि निश्चय ही मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि थे, यह सिद्ध करना कठिन है। फिर भी विद्वानों को इस प्रसँग पर विचार करनाचाहिए। क्योंकि मेधातिथि के जीवन के सम्बन्ध में केवल यही एक लिखित सूचना अबतक मिलसकीहै।

१- ३- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८४

४- ८- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २०२

९- 'पुरा मेधातिथिर्नाम बभूव द्विजसत्तमः। सूर्य्यभक्तिरतो नित्यं सूर्य्यमेवाभजत् सदा॥
सदैव सौरमन्त्रं वै जपंस्तस्थौ तु स्वे गृहे। एकदा मुनिशार्दूल गतो मेधातिथिर्मुनिः।
देवप्रयागके क्षेत्रे तीर्थानामुत्तमोत्तमे। सौरकुण्डे महातीर्थे तीर्थानां प्रवरे शुभे।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ तपश्चक्रे महामतिः। निराहारो यतात्मा वै निर्ममो निःस्पृहः सुधीः'॥
— केदारखंड, १५५। ४ - ८

इच्छटदेव

राज्यावधि— सलोणादित्य के पुत्र इच्छटदेव का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था। उसे परममाहेश्वर, परमब्रह्मण्य भी कहागयाहै। उसके वँशज, देशट, पद्मट और सुभिक्षराज तीनों के ताम्रशासनों में उसका केवल विरुद सहित नाम-मात्र का उल्लेख है। इस नरेश का कोई अभिलेख नहीं मिलाहै। उसकी रानी का नाम महादेवी सिन्धुदेवी था। उसकी राजधानी कार्तिकेयपुर थी [१]।

उसने प्रतिहारनरेश महेन्द्रपाल की मृत्यु सँ० ९६५ वि० (908 ई०) के पश्चात् स्वतन्त्रनरेश - सूचक विरुद धारण कियाहोगा। उनदिनों कान्यकुब्ज के प्रतिहारनरेशों की शक्ति, प्रतिष्ठा और आतँक को बहुत क्षति पहुँचीथीं। राष्ट्रकूटनरेश कृष्णद्वितीय ने गङ्गा-यमुना - द्वाव पर आक्रमण करके उसे हस्तगत करलियाथा [२]। सँ० ९७५ वि० (918 ई०) के लगभग राष्ट्रकूट सेना प्रतिहार - राजधानी कान्यकुब्जनगर के द्वार तक पहुँचगईथी [३]।

देशटदेव

प्रशस्ति— इच्छटदेव के पुत्र देशटदेव ने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर का विरुद धारण कियाथा। उसके पुत्र पद्मट और पौत्र सुभिक्षराज के ताम्रशासनों में उसे परममाहेश्वर, परमब्रह्मण्य कहागयाहै। वह दीन, अनाथ, दुखी तथा शरणागतों पर कृपा करनेवाला था [४]। वह पूर्व, उत्तर, पश्चिम और दक्षिण में स्थित प्रदेशों से आनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को निरन्तर, सुवर्णदान करतारहताथा। उसने शत्रुओं के समस्त कुचक्रों को विफल कियाथा [५]; उससे कलियुग के कलुष नष्ट होगएथे। वह सतयुग के धर्म का अवतार - स्वरूप था [६]।

प्रतिहारनरेश से झड़प— खजुराहो - शिलालेख के अनुसार चन्देलनरेश हर्ष ने, जिसने सँ० ९५७ से ९८२ वि० (900 से 925 ई०) तक शासन कियाथा, प्रतिहारनरेश क्षितिपालदेव के सिंहासन की रक्षा कीथी [७]। इससे विद्वानों का अनुमान है कि सँ० ९७५ वि० (918 ई०) में जब राष्ट्रकूटनरेश इन्द्र तृतीय ने कान्यकुब्जनगर पर अधिकार करलिया तो प्रतिहारनरेश महीपाल (क्षितिपाल) के सामन्त हर्ष चन्देल ने वीरतापूर्वक युद्धकरके राष्ट्रकूटनरेश को लौटजाने केलिए वाध्य करदिया और इसप्रकार प्रतिहारनरेश के सिंहासन की रक्षा कीथी [८]। खजुराहो-शिलालेख के अनुसार हर्ष चन्देल ने किसी युद्ध में खशनरेश के बल को तोलाथा।

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८४ - ८५

२- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३४ - ३५

३- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३५

४- ६- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८५

७- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३६

८- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ८३

महीपाल की राज्यसभा के कवि राजशेखर ने कार्तिकेयनगर के नरेश को खशाधिपति बतलायाहै [१]। इसलिए समकालीन खजुराहो-शिलालेख में उल्लिखित खशनरेश निश्चय ही उत्तराखण्ड का कत्यूरीनरेश था। अनुमान लगताहै कि महीपाल पर सँकट आयाहुआ देखकर देशट ने भी मैदान की ओर प्रसार करने की योजना बनाईथी, जिसे हर्ष चन्देल ने तुरन्त विफल करदिया। किन्तु इमसे किसी पक्ष को भी विशेष हानि न हुई। सुभिक्षराज के ताम्रशासन के अनुसार देशट ने शत्रुओं के समस्त कुचक्रों को विफल करदियाथा [२]।

भूमिदान — देशटदेव के अपने ताम्रशासन के अनुसार उसने अपने राज्यकाल के पांचवें वर्ष में विजयेश्वर मन्दिर को एसाल विषय के अन्तर्गत यमुना ग्राम अग्रहाररूप में दियाथा [३]।

जागेश्वरमन्दिर के शिलालेखों से विदित होताहै कि उनदिनों पूर्वदेश, विहार, वंग-मगध की ओर के, तथा भारत के अन्य भागों के यात्री उत्तराखण्ड के मन्दिरों की तीर्थयात्रा करतेथे[४]। देशटदेव ने विद्वान् ब्राह्मणों को आश्रय और आर्थिक सहायता देने में प्रसिद्धि प्राप्ति कीथी। उसकी रानी का नाम महादेवी पद्मल्लदेवी था। उसकी राजधानी कार्तिकेयपुर थी।

पद्मटदेव

प्रशस्ति— देशट के पुत्र पद्मट के अपने ताम्रशासन में उसका विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर है। उसके पूर्वजों के समान उसे भी परममाहेश्वर, परमब्रह्मण्य कहागयाहै। उसके पुत्र सुभिक्षराज के शासन में कहागयाहै कि देशट ने अपने बाहुबल से समस्त दिशाओं को जीतकर अपने चरणों में नत करवायाथा। वह चारों समुद्रों से घिरी समस्त धरती का पालक था। हस्ती, अश्व और आभूषणों का निरन्तर दान करते रहने में उसने बलि, वैकर्तन, दधीचि तथा चन्द्रगुप्त, सभी को तिरस्कृत करदियाथा [५]। उसकी रानी का नाम महादेवी दिशालदेवी थी। उसकी राजधानी कार्तिकेयपुर में थी।

प्रतिहार-आक्रमण— पद्मट सम्भवतः शक्तिशाली नरेश था। उसे कान्यकुब्ज के प्रतिहारनरेश देवपाल तथा चन्देलनरेज यशोवर्मन् का समकालीन मानसकतेहैं। यशोवर्मन् चन्देल अपने खजुराहो - शिलालेख में लिखताहै कि उसकी सेना हिमालय के उन दुर्गम भागों में भी पहुँचीथी, जिनमें सैनिकों के प्रयाण के कोलाहल से जागेहुए सिंहों की गर्जन से व्याकुल होकर हस्ती तथा गङ्गाजी की झरनों की ध्वनि से भयभीत होकर अश्व भाग

१- काव्यमीमांसा, पृ० १२४

२- उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८५

३- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४७१

४- उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ४११-१२

५- सुभिक्षराज का ताम्रशासन ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८५

पड़तेथे। तथा जहां स्वर्ग के कल्पवृक्षों से उमा ने पुष्पराशि एकत्रित कीथी [१]।

यशोवर्मन् चन्देल को सँ० ९८२ वि० (925 ई०) के पश्चात् राज्यप्राप्त हुआथा। वह अपने राज्यकाल में प्रतिहारनरेश देवपाल की अधीनता किसी न किसी रूप में स्वीकार करतारहा [२]। उसका पुत्र धङ् चन्देल भी प्रतिहार देवपाल के पुत्र विनायकपाल की नाममात्र की अधीनता कम से कम सँ० १०११ वि० (954 ई०) तक स्वीकार करतारहा [३]। इसलिए यशोवर्मन् का गङ्गाजी के स्रोतप्रदेश पर आक्रमण प्रतिहार देवपाल की सहायता - हेतु ही होसकताहै। अभिलेख में विजय का कोई उल्लेख न होनेसे विदित होताहै कि इस आक्रमण में प्रतिहार देवपाल और उसके सामन्त यशोवर्मन् चन्देल को विशेष सफलता न मिली।

सम्भवत: वे उत्तराखण्डनरेश से कतिपय उपयनादि लेकर सन्तुष्ट होगए। पद्मटदेव तथा उसके पुत्र सुभिक्षराज, दोनों के विरुद से विदित होताहै कि वे स्वतन्त्र नरेश बनेरहे।

भूदान--पद्मटदेव ने अपने राज्य के २५ वें वर्ष में भगवान् बदरिकाश्रम के मन्दिर के नाम पर कुछ भूमि दान में दीथी। जिससे उक्त मन्दिर में वलि, प्रदीप, गन्ध, सत्र , नैवेद्य, धूप, पुष्प, गेय, वाद्य, नृत्य, पूजाप्रर्वतन तथा खण्डस्फुटित का सँस्कार होसके [४]।

सुभिक्षराज

प्रशस्ति— पद्मट के पुत्र सुभिक्षराज ने अपने राज्य के चौथे वर्ष में भगवती दुर्गादेवी, भगवान् नारायण तथा भगवान् ब्रह्मेश्वर को कुछ भूमि दान में दीथी। उसने अपने ताम्रशासन में अपना विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर बतलायाहै। उसे परमवैष्णव तथा परमब्रह्मण्य कहागयाहै। ताम्रशासन के अनुसार वह शास्त्रों के आदेशानुसार शासन करताथा [५]। कलियुग का तिमिर उससे दूर रहताथा। शत्रुओं की पत्नियों को वैधव्य की दीक्षादेने में वह कुशल था। उसकी दुर्दमनीय शक्ति की ख्याति सारे भुवन में फैलीहुईथी। वह शत्रुओं की राजलक्ष्मी के अपहरण केलिए प्रख्यात था। उसने अनेक प्रचण्ड व्यक्तियों के दर्प का अपहरण कियाथा [६]।

राजधानी— सुभिक्षराज की राजधानी सुभिक्षपुर थी [७]। विद्वानों का अनुमान

१- गङ्गानिर्झरघर्घरध्वनिभयभ्राम्यत्तुरङ्गव्रजा: सद्यसुप्तविबुद्धकेसरि - रवात्त्रस्यत्करीन्द्रा कुला:।
यत्सैन्यै: प्रतिकल्पपादपमुमालूनोप्रसूनोच्चया: प्रालेयाचलमेखला: कथमपि क्रान्ता: शनैर्दिग्जये'।

— यशोवर्मन् चन्देल का खजुराहो - शिलालेख, पं० १७-१८

२- ३- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ८४

४- पद्मट का ताम्रशासन, उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८२

५- ६- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८५

७- सुभिक्षराज का ताम्रशासन ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८४

है कि या तो इस नरेश ने कार्तिकेयपुर को या उसके किसी भाग को अपने नाम पर सुभिक्षपुर नाम दियाथा, अथवा कार्तिकेयपुर के पास ही किसी स्थान पर अपनी राजधानी बसाईथी [१]। जोशीमठ के पास तपोवन नामक स्थान पर बिखरीहुई स्थापत्यसामग्री से विदित होताहै कि नौवीं - दसवीं शती में वहां महत्वपूर्ण बस्ती थी। वहां अब भी तीन प्राचीन मन्दिर हैं। मन्दिरों की मूर्तियां दसवीं शती से पहले की होसकतीहैं। जोशीमठ और विष्णुप्रयाग के बीच भी प्राचीन बस्ती के अवशेष सड़क बनाते समय प्राप्तहुएहैं।

अमात्य भट्ट भवशर्मन्

कालीमठ के लक्ष्मीमन्दिर में लगे शिलालेख से विदित होताहै कि वहां भट्ट रुद्र और भोगावली के पुत्र भट्ट भवशर्मन् नामक ब्राह्मण ने, जो किसी नरेश का अमात्य था, भावेश्वरमन्दिर का निर्माण कियाथा [२]। लिपि के आधार पर इस शिलालेख को दसवीं शती ईसवी का मानागयाहै [३]। पूरा शिलालेख अभीतक प्रकाशित नहीं हुआहै। सम्भवत: भवशर्मन् सुभिक्षराज या उसके उत्तराधिकारी का अमात्य था।

नरसिंहदेव

सुभिक्षराज के उत्तराधिकारियों के अभीतक कोई अभिलेख नहीं मिलेहैं। अनुश्रुति के अनुसार नरसिंहदेव नामक नरेश के समय राजधानी कार्तिकेयपुर से हटाकर कत्यूर, गोमती-उपत्यका में स्थित बैजनाथ (वैद्यनाथ) में स्थापित करनी पड़ीथी। इस नरसिंहदेव का सुभिक्षराज के परिवार से क्या सम्बन्ध था, यह अभीतक अज्ञात है। उसका न तो कोई अभिलेख मिलाहै और न किसी वंशावली में उसका नाम मिलताहै।

अनुश्रुति के अनुसार नरसिंहदेव वासुदेव कत्यूरी का वंशज था। एक दिन, जब वह वन में आखेट खेलने गयाथा, तो उसकी अनुपस्थिति में नृसिंहावतार विष्णु ने ब्राह्मण का रूप बनाकर राजप्रासाद में रानी से भोजन मांगा। भोजन करचुकने पर ब्राह्मण राजा के पलंग पर लेटगया। आखेट से लौटकर राजा ने अपने पलंग पर एक अपरिचित व्यक्ति को सोया देखकर क्रोधित होकर उस पर खड्ग से प्रहार किया। खड्ग से ब्राह्मण की बांह कटगई। उससे रुधिर के स्थान पर दूध निकलनेलगा। ऐसी आश्चर्यजनक घटना देखकर राजा भय से कांपनेलगा [४]। देवता ने कहा – 'मैं नृसिंह हूं'। मैं तुझ पर प्रसन्न होकर तेरी राजसभा में आयाथा। किन्तु तूने यह अपराध करदिया। अब तुझे इसका फल भोगनापड़ेगा। तू इस सुन्दर ज्योतिर्धाम (जोशीमठ) को छोड़कर कत्यूर (बैजनाथ) में चलाजा। जो

१- राहुल – गढ़वाल, पृ० ७३

२, ३- ऐनुअल रिपोर्ट आन इण्डियन एपिग्राफी, १९६७ - ६८

४- राहुल – गढ़वाल, पृ० ३३५ ; हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

घाव मेरे हाथ पर दिखाईदेताहै, वही घाव तू मन्दिर में नृसिह की छोटी मूर्ति में भी देखेगा। जब यह मूर्ति गिरकर खण्ड - खण्ड होजाएगी और हाथ न रहजाएगा तब तेरा वंश उच्छिन्न होजाएगा[१]।

जोशीमठ के नृसिहमन्दिर में मैंने स्वयं उस मूर्ति को देखाहै। मूर्ति काली शालिग्राम शिला की बनी लगभग डेढ़ फीट ऊँची है। मूर्ति का एक हाथ दूसरे हाथ से पतला है। क्या मूर्ति के पतले हाथ को देखकर इस अनुश्रुति की रचना कीगईहै ?

धार्मिक विप्लव की कल्पना— कुछ विद्वानों ने इस अनुश्रुति के आधार पर धार्मिक विप्लव की कल्पना कीहै। उनका कहना है कि कत्यूरीनरेश परममाहेश्वर अर्थात् शैव थे। शंकर के जीवनकाल के कुछ ही समय पश्चात् जब अलकनन्दा - उपत्यका में वैष्णव-सम्प्रदाय प्रवल होगया तो शैव और वैष्णवों के मध्य प्रचण्ड धार्मिक विवाद आरम्भ हुआ। कत्यूरीनरेशों को वैष्णवों के प्रमुख स्थान जोशीमठ - बदरिकाश्रम से भगादियागया। उन्हें अपनी राजधानी कुमाऊँ में कत्यूर - उपत्यका में स्थापित करनीपड़ी[२]।

पादरी ओकले आदि विद्वानों की इस कल्पना का खण्डन स्वयं कत्यूरी - अभिलेखों से होजाताहै। कत्यूरीनरेश परममाहेश्वर के साथ परमब्रह्मण्य भी थे। कत्यूरीनरेश वसन्तन ने वैष्णवों को शरणेश्वर ग्राम प्रदान कियाथा। ललितशूर की रानी महादेवी सामदेवी ने गोरुन्नासा नामक ग्राम में नारायणमन्दिर की स्थापना कीथी। ललितशूर ने नारायण के दो मन्दिरों को, पद्मट[३] ने बदरिकाश्रम को तथा सुभिक्षराज ने नारायण के मन्दिर को भूमि दान में दीथी[४]। सुभिक्षराज ने परममाहेश्वर के स्थान पर परमवैष्णव विरुद धारण कियाथा। अस्तु कत्यूरीनरेशों पर वैष्णवों की कोपदृष्टि की कल्पना निराधार है।

हिमानीस्खलन — जोशीमठ के आसपास, कत्यूरीनरेशों की राजधानी प्राचीन कार्तिकेयपुर के अवशेषों को ढूंढ़करतेहुए मेरा ध्यान उन अगणित विशाल शिलाओं की ओर गया जो कई शतियों पहले वहां हिमानीस्खलन द्वारा पहुँचाईगईथीं। सम्भवतः कत्यूरीनरेशों का प्राचीन कार्तिकेयपुर हिमानीस्खलन से नष्ट हुआथा। हिमानीस्खलन से बचने केलिए सुभिक्षराज ने अपनी राजधानी कार्तिकेयपुर के पास सुभिक्षपुर में स्थापित कीथी। कार्तिकेयपुर के पास उपलब्ध अवशेषों से विदित होताहै कि तपोवन में तथा विष्णुप्रयाग के पास भी कभी नगर बसायागयाथा। किन्तु वहां हिमानियों का भय उसी-प्रकार वनारहा। तब अन्त में नरसिंहदेव को वैजनाथ में अपनी राजधानी बनानीपड़ी।

वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर— अभिलेखों में वैजनाथ का उल्लेख वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर

१- राहुल — गढ़वाल, पृ० २३५ ; हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

२- ओकले – होलि हिमालय, पृ० ६८

३- पद्मट का शासन ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८१

४- सुभिक्षराज का शासन ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८१

के नाम से मिलताहै। विदित होताहै कि वैद्यनाथ में अपनी राजधानी की स्थापना करते समय कत्यूरीनरेशों ने अपनी प्राचीन राजधानी कार्तिकेयपुर का मोह नहीं भुलायाथा।

वैद्यनाथ के प्राचीन मन्दिरों, मूर्तियों और भवनों के विध्वँसों से पता लगताहै कि ईसा की नौवीं - दसवीं शती में वह स्थान महत्वपूर्ण बनचुकाथा [१]। जोशीमठ और बैजनाथ के बीच केवल ६० मील की दूरी है। सम्भवत: उनदिनों कत्यूरीराज्य के पूर्वोत्तरीय भाग, काली - सरयू और उसकी सहायकों की उपत्यकाओं का उपरिक वहीं रहताथा [२]। अनुमान लगताहै कि सँ० १०५७ वि० (1000 ई०) के आसपास नरसिंहदेव ने जोशीमठ से वैद्यनाथ में राजधानी की स्थापना कीथी।

कत्यूरीराज्य का विस्तार— कत्यूरी - अभिलेखों से उनके राज्य की सीमाओं का ठीक - ठीक पता नहीं चलता। उनके अभिलेख उत्तराखण्ड की उत्तरी पट्टी में, केवल पांडुकेश्वर, बालेश्वर और बागेश्वर में प्राप्त हुएहैं। उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में अभीतक उनका कोई अभिलेख नहीं मिलाहै। उनकी मुदाएँ अप्राप्य हैं। उनके अभिलेखों में वर्णित विषयों (जिलों) में यमुना से पश्चिम के प्रदेश का उल्लेख नहीं मिलता।

पातीराम की कल्पना है कि जब संवत् ७५६ वि० (699 ई०) में कनकपाल मालवा से गढ़वाल में आया, तो उनदिनों सोनपाल और कत्यूरीनरेश गढ़वाल में छोटी - छोटी ठकुराइयों के स्वामी थे। सोनपाल का दामाद कनकपाल गढ़वाल के मध्यवर्ती भाग का शासक बनबैठा। गढ़वाल के दक्षिणी भाग में मोरध्वज, पाण्डुवाला तथा ब्रह्मपुर के राजे शासन करतेरहे [३]। किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर, जिसका इस ग्रन्थ के भाग २ [४], तथा भाग ३ में उल्लेख हुआहै, इस कल्पना को महत्व नहीं दियाजासकता। सोनपाल और कनकपाल की ऐतिहासिकता सँदिग्ध है। यदि वे ऐतिहासिक व्यक्ति भी रहेहों, तोभी उन्हें कत्यूरीनरेशों के समकालीन नहीं मानसकते [५]। मोरध्वज, पांण्डुवाला और ब्रह्मपुर के नरेशों के सम्बन्ध में इसी भाग में पहले विचार होचुकाहै।

कत्यूरी - अभिलेखों से विदित होताहै कि उनकी सेना में पदातिकों के अतिरिक्त ऊष्ट्रारोही तथा गजारोही गुल्म भी थे। जिनके सेनापति हस्तिवलाधिकृत तथा हस्त्य - श्वोष्ट्रवलाधिकृत कहलातेथे। यह सत्य है कि कत्यूरीनरेशों ने अपने अधिकारियों की नामावली पालनरेशों के अभिलेखों से ग्रहण कीहै। किन्तु यह मानना असंगत है कि उनके राज्य में इन अधिकारियों का सर्वथा अभाव था। कत्यूरीनरेश इष्टगणदेव ने अपनी कृपाण की धार से मत्तहस्तियों के मस्तक विदीर्ण किएथे। इससे अनुमान कियाजाताहै कि वह युद्ध, जिसमें हस्तियों का प्रयोग हुआथा, कत्यूरीराज्य की दक्षिणी मैदानी पट्टी में लड़ागयाहोगा [६]।

१- २- राहुल — कुमाऊं, पृ० ३३६

३- पातीराम — गढ़वाल एनशिएंट ऐंड मोड़र्न, पृ० १८४ - ८५

३- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ८८ - ९०

४- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ८७

५- द्र० पृ० ३४२ - ९५

६- ओकले — होलि हिमालय, पृ० ६८

सातवीं शती से लेकर दसवीं शती के अन्त तक केवल सर्ववर्मन्, हर्ष और यशोवर्मन् के राज्यकाल में, इन नरेशों द्वारा भाबरप्रदेश से उत्तर की ओर की पर्वतीयभूमि पर स्थायी अधिकार करने के प्रमाण मिलतेहैं। शेष सारी अवधि में मध्यदेश के नरेशों की राज्यसीमा भाबरप्रदेश के दक्षिण की ओर रही। परम प्रतापी प्रतिहारनरेश भी भाबर से उत्तर की ओर की पर्वतीय भूमि को हस्तगत न करसके। उनके सर्वप्रवल सामन्त भी उत्तराखण्ड के खशनरेश के बल को तोलने - मात्र की डींग मारसके [1]।

कत्यूरीनरेशों का अभीतक कोई अभिलेख कालीगङ्गा के पूर्व में नहीं मिलाहै। किन्तु कालीगङ्गा के पूर्व की ओर वर्तमान नेपाल के डोटीप्रदेश में कत्यूरी - राजवंश की एक शाखा कई शतियों तक राज्य करतीरही। इससे अनुमान कियाजाताहै कि अपने उत्कर्ष के दिनों में कत्यूरीनरेशों का अधिकार नेपाल के पश्चिमी भाग पर, गँडकीनदी के तट तक था [2]।

कत्यूरीनरेशों की राजधानी कार्तिकेयपुर, वर्तमान जोशीमठ में थी। जोशीमठ से आगे भारत - तिब्बत - सीमान्त तक बहुत थोड़े गांव हैं। यदि इन गांवों पर तिब्बत का अधिकार होता तो कत्यूरीनरेश उनकी पड़ोस में स्थित, कार्तिकेयपुर में अपनी राजधानी की स्थापना कभी नहीं करते। इससे निश्चत है कि कार्तिकेयपुर के कत्यूरीनरेशों की राज्यसीमा, कम से कम भारत और तिब्बत की मध्यवर्ती गिरिद्वारोंवाली श्रेणी तक अवश्य पहुँचीथी।

प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार जोशीमठ को राजधानी बनाकर शासन करनेवाले कत्यूरीनरेशों का राज्य पश्चिम में सतलुजनदी के तट से लेकर पूर्व में गँडकी के तट तक, तथा महाहिमालय से लेकर दक्षिण में मैदान तक फैलाथा। वर्तमान सारा रोहिलखण्ड उनके राज्य के अन्तर्गत था [3]।

यमुना से पश्चिम की ओर सतलुज तक के प्रदेश पर कत्यूरीनरेशों के अधिकार की पुष्टि अभीतक किसी अभिलेख से नहीं हुईहै। सतलुज के तट पर निरत नामक स्थान पर प्राचीन सूर्यमन्दिर है, जिसमें बूटधारी सूर्य की प्रतिमा है। राहुल के अनुसार इस मन्दिर की स्थापना आठवीं - नौवीं शती ईसवी में, कत्यूरीराज्य के आरम्भिककाल में हुईहोगी [4]। राहुल की धारणा है कि यदि ललितशूर के ताम्रलेख में अधिक अतिशयोक्ति से काम नहीं

१- यशोवर्मन् चन्देल का खजुराहो - शिलालेख, पं० १३

२- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

३- ' In fact the earliest traditions record that the possession of these Joshimath Katyuries extended from the Satluj as far as the Gandaki and from the snow to the plains, including the whole of Rohilkhand.'

— हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४६७

४- राहुल — कुमाऊं, पृ० ३३

लियागयाहै तो सम्भवतः निरत का सूर्यमन्दिर विशाल कत्यूरीराज्य का ही एक स्मृतिचिह्न है [१]।

अभिलेखों में उल्लिखित कत्यूरीनरेशों का लगभग ढाई सौ वर्षों तक उत्तराखण्ड पर अधिकार रहा। इस लम्बी अवधि में, जिसमें तीन परिवारों ने शासन किया, अवश्य उनके शासितप्रदेश में अन्तर आयाहोगा। किन्तु उसका सही अनुमान लगाने केलिए सामग्री अप्राप्य है।

कीरग्राम (बैजनाथ, कांगड़ा) के शिलालेखों से विदित होताहै कि ईसा की दसवीं शती के अन्तिम भाग में त्रिगर्त - जालन्धरनरेशों की शक्ति और शासितप्रदेश विस्तृत थे [२]। सम्भवतः यमुना की पश्चिमी - उपत्यका से कत्यूरी - अधिकार उठगयाथा। मुसलिम गाथालेखकों के लेख से विदित होताहै कि ईसा की दसवीं शती के अन्तिम भाग में यमुना की उत्तरी - उपत्यका में अम्बाला और सहारनपुर जिलों पर एक शक्तिशाली नरेश चांद राय (राजा चन्द्र) का अधिकार था [३]। उसके राज्य के अन्तर्गत ऊँचे पर्वतों पर बने कुछ दुर्ग थे [४]। अस्तु सुभिक्षराज के वंशजों के राज्यकाल में अम्बाला - सहारनपुर का भावरप्रदेश तथा सिरमौर और देहरादून जिलों के दक्षिणी पहाड़ी भाग पर कत्यूरी अधिकार नहीं था। मायापुरहाट या हरिद्वार - गढ़वाल - भाबर के सामन्त भी लगभग स्वतन्त्र बनबैठेथे [५]। लगभग इन्हींदिनों नैनीताल की तराई के दक्षिण में कटेहरिया ठकुराइयों की स्थापना होनेलगीथी। फलतः दक्षिणपूर्व में भी कत्यूरीराज्य सँकुचित होनेलगाया।

नरेश— चौदह कत्यूरी नरेशों मेंसे, त्रिभुवनराज, निम्बर और सलोणादित्य को छोड़कर, शेष कत्यूरीनरेशों का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था। सम्भवतः इन तीनों नरेशों का विरुद महाराजा था। मान्यता थी कि राजा ईश्वरीय अंश से सम्पन्न होताहै। उसके दर्शन - मात्र से पाप दूर होतेहैं [६]। अभिलेखों में कत्यूरीनरेशों को सतयुग के धर्म का अवतार, प्राचीन मर्यादाओं का रक्षक तथा आर्यवृत्त (उज्ज्वलचरित्र) वाला कहागयाहै [७]। उन्हें दया, दाक्षिण्य, सत्य, सत्व, शील, शौर्य, औदार्य, गाम्भीर्य आदि गुणों से सम्पन्न वतायागयाहै [८]। कत्यूरीनरेश आदर्श जीवन व्यतीत करतेथे। वे परम सम्मानित एवं श्रद्धाभाजन थे [९]। वे दीन-अनाथों के रक्षक तथा शरणागतवत्सल बताएगएहैं [१०]। वे स्वयँ विद्याव्यसनी थे। उनकी सभा में विद्वान् ब्राह्मण दूर - दूर से आतेथे।

१- राहुल — कुमाऊं, पृ० ३३ - ३४ २- कीरग्राम-प्रशस्ति, कांगड़ा-गजेटियर, पृ० ५०१

२- तारिख यामिनी, ईलिट तथा डौसन — हिस्टरी आव इण्डिया, जि० २, पृ० ४७

४- तारिख यामिनी, ईलिट तथा डौसन — पूर्वोक्त, पृ० ४६

५- ओकले तथा गैरोला—हिमालयन फौक लोर, पृ० १२२-२५ ६- ललितशूर का शासन (१), पं० २

७- पद्मट का ताम्रशासन, उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८०

८- ललितशूर का शासन, (१), पं० ३ - ४

९- त्रिभुवनराज का शिलालेख ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७८

१०- सुभिक्षराज का शासन ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८५

वे उनको सुवर्णादि देकर सम्मानित करतेथे [१]। अभिलेखों में उन्हें वित्त - विद्या - मान - समन्वित कहागयाहै।

राजपरिवार— अभिलेखों में केवल राजा की महादेवी (प्रधान रानी) तथा उसके उत्तराधिकारी पुत्र के ही नाम मिलतेहैं। अभिलेखों में जिस क्रम से राज्य के अधिकारियों को सम्बोधित कियागयाहै [२], उससे विदित होताहै कि राजपरिवार में उत्पन्न सुयोग्य पुरुषों को राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कियाजाताथा। ललितशूर आदि नरेशों का विरुद महाराजाधिराज था। उनके अभिलेखों में राजा शब्द का प्रयोग सम्भवतः नरेश के भ्राता, चाचा, ताऊ आदि केलिए हुआहै। राजान्यक शब्द का प्रयोग सम्भवतः युवराज के भ्राताओं केलिए होताथा। डोटीपरिवार के छोटे राजकुमार रैंका कहलातेथे, जो राजान्यक का ही दूसरा रूप है। नरेश के भ्राता आदि के पुत्र राजपुत्र कहलातेथे।

सामन्त— राज्य के अन्तर्गत शक्तिशाली ठकुराइयां थीं। इन ठकुराइयों का शासन सामन्तों के द्वारा होताथा। सामन्त का पद कुल - क्रमागत था। सम्भवतः नरेश इच्छानुसार सामन्तों की सँख्या बढ़ासकताथा। लोकगाथाओं से विदित होताहै कि सामन्तों का कार्य सँकट एवँ युद्धादि के समय राजा की सहायताकरना होताथा। शक्तिहीन नरेशों के राज्यकाल में सामन्त शक्तिशाली बनजातेथे। अशोकचल्ल और क्राचल्लदेव के आक्रमणों से पराजित कत्यूरीनरेशों के सामन्त आक्रान्ताओं के सामन्त बनबैठेथे। लोकगाथाओं से विदित होताहै कि सामन्त आपस में लड़ते - झगड़तेथे। तथा शक्ति - सँतुलन अपने हाथ में रखनेहेतु राजा भी सामन्तों को आपस में लड़ाते-रहतेथे। सामन्तों के अधिकार की जिस भूमि को नरेश किसी मन्दिर आदि को प्रदान करताथा, उससे सामन्त करग्रहण नहीं करसकतेथे [३]।

मन्त्रिपरिषद्— नरेश राज्य का सर्वोपरि शासक था। विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति उसीके द्वारा होतीथी। सम्भवतः अनेक पद परम्परागत होतेथे। फिर भी कत्यूरी नरेश निरँकुश नहीं थे। उनके अभिलेखों में अमात्य, राजामात्य - जैसे अधिकारियों का उल्लेख है, जिनसे नरेश परामर्ष लेताथा। महत्वपूर्ण कार्यों की सूचना सभी प्रमुख अधिकारियों को दीजातीथी। कत्यूरी-शासनों से ऐसे ९ बड़े अधिकारियों के नाम मिलतेहैं, जिनसे सम्भवतः राजा मँत्रणा करताथा।

१-	अमात्य या राजामात्य	– प्रधानमन्त्री
२-	महासन्धिविग्रहाधिकृत	– सन्धि - युद्ध - मन्त्री
३-	महादानाक्षपटलाधिकृत	– धर्माधिकारी
४-	दण्डनायक या महादण्डनायक	– प्रमुख पुलिस-अधिकारी

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७८

२- 'राजा, राजान्यक, राजपुत्र, राजामात्य, सामन्त, महासामन्त, ठक्कुर, महामनुष्य, महाकर्त्ता, ...' ललितशूर का शासन, (१), पं० ११

३- ललितशूर का शासन, (१) पं० ११, आदि; द्र० मित्र—गुर्जर प्रतिहार्स ऐंड देयर टाइम्स, पृ० ६३

५- उपरिक — राज्यपाल
६- आयुक्तक या तदायुक्तक — कमिश्नर
७- विषयपति — जिलाधीश
८- कोषपाल — कोषाधिकारी
९- श्रेष्ठी — नगर-सेठ

जनपद-शासन—राज्य कतिपय प्रान्तों में बँटाथा, जिनका शासन उपरिक के द्वारा होताथा। उपरिक के अधीन आयुक्तक प्रान्त के विभिन्न भागों का शासन चलातेथे। प्रान्तों को विषयों (जिलों) में बांटागयाथा, जिनका शासक विषयपति कहलाताथा। कत्यूरी शासनों से चार विषयों का तथा लोकगाथा से एक अन्य विषय का पता लगताहै :—

(१) कार्तिकेयपुर विषय [१] — सम्भवतः प्राचीन कत्यूर, जोशीमठ से लेकर गोमती - उपत्यका तक,
(२) टंकणपुर विषय [२] — अलकनन्दा-भागीरथी-सँगम से ऊपर अलकनन्दा-उपत्यका [३],
(३) अन्तराग विषय [४] — भागीरथी तथा अलकनन्दा की मध्यवर्ती उपत्यका [५],
(४) एशाल विषय [६] — सम्भवतः भागीरथी तथा यमुना की मध्यवर्ती उपत्यका,
(५) मायापुरहाट [७] — हरिद्वार और निकटवर्ती भाबरप्रदेश।

यदि कत्यूरीनरेशों का राज्य सतलुज से गँडकी तक फैलाथा तो सतलुज - यमुना - द्वाब तथा कालीगँगा - गँडकी - द्वाब पृथक विषयों के अन्तर्गत रहेहोंगे।

भुक्ति— गुप्तनरेशों के शासनकाल में राज्य कई भुक्तियों में बँटा था [८]। प्रत्येक भुक्ति के अन्तर्गत कई विषय (जिले) होतेथे। कत्यूरी - अभिलेखों में केवल एक भुक्ति का, जयकुलभुक्ति के नाम से उल्लेख मिलताहै [९]। प्रसँग से विदित होताहै कि कत्यूरी - राज्यकाल में भुक्ति नाम का प्रयोग सीमित क्षेत्र केलिए होताथा, जिसे किसी विषय का भाग मानसकतेहैं। अभिलेखों में अन्य भुक्तियों के नाम भुक्ति शब्द के साथ नहीं मिलते। सम्भवतः इन्द्रवक [१०], बदरिकाश्रम [११], जोशिका [१२] (जोशीमठ) तथा शिलादित्य [१३] भी भुक्तियों के नाम थे।

१- ललितशूर का शासन, १, पं० १०
२- पद्मट का शासन ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८१
३- राहुल — गढ़वाल, पृ० ९१ टि७
४- सुभिक्षराज का ताम्रशासन ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८४
५- राहुल—पूर्वोक्त, पृ० ९० टि० ६- देशट का ताम्रशासन
७- ओकले तथा गैरोला — हिमालयन फोक लोर, पृ० १२२ - २३
८- वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० २३
९- त्रिभुवनराज का शिलालेख; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७८
१०- ललितशूर का शासन (२) ११- १२- द्र० सुभिक्षराज का शासन

सारा राज्य छोटे - बड़े गांवों में बँटा था, जिनको व्यवस्था 'महामनुष्य'[१] या सरपँच की अध्यक्षता में ग्रामपँचायत द्वारा होतीथी।

सेना— कत्यूरीनरेश अपनी विशाल सेना केलिए प्रसिद्ध थे। अपनी सेना के बल पर वे उत्तर और दक्षिण से होनेवाले आक्रमणों को विफल करके उत्तराखण्ड पर लगभग ढ़ाई सौ वर्षो तक शासन करतेरहे। चन्देलनरेश हर्ष ने खशनरेश के बल को तोलने-मात्र में गर्व का अनुभव कियाथा[२]। यशोवर्मन् चन्देल कत्यूरीनरेश से भिड़कर उसे कुछ भी क्षति न पहुँचासकाथा[३]।

सेना चार भागों में बँटीथी :— पदातिक, अश्वारोही, गजारोही यदा ऊष्ट्रारोही। पैदल सैनिक गौल्मिक कहलातेथे। अन्तिम तीन सेनाओं के सर्वोच्च नायक क्रमशः अश्व-वलाधिकृत, हस्तिबलाधिकृत और ऊष्ट्रबलाधिकृत कहलातेथे। तीनों आरोहीसेनाओं का सर्वोच्च अधिकारी हस्त्याश्वोष्ट्रबलाधिकत कहलाताथा[४]। गजारोही और ऊष्ट्रारोही सेना का प्रयोग केवल मैदानी और भाबरप्रदेश में होसकताथा।

सेना का सँचालन सम्भवतः नरेश के द्वारा होताथा। इष्टगणदेव ने अपनी कृपाण की धार से मत्त हस्तियों को विदीर्ण कियाथा[५]। सुभिक्षराज के शासन में उसे शत्रुओं की लक्ष्मी का हरण करनेवाला, अगणित प्रचण्ड शत्रुओं के दर्प का दमन करनेवाला तथा दुर्मद शत्रुओं की पत्नियों को विधवा बनानेवाला बतायागयाहै[६]।

सीमाओं की रक्षा— चन्द्रगुप्त मौर्य के समान कत्यूरीनरेश अपने राज्य की सीमाओं की रक्षा केलिए सचेष्ट रहतेथे। सीमाओं की रक्षा का भार प्रान्तपाल नामक अधिकारी को सौंपाजाताथा। विभिन्न गिरिद्वारों पर घट्टपाल (घाटों के रक्षक) सेना लेकर सतर्क रहतेथे[७]। सीमान्त के मार्गों की रक्षा वर्त्मपाल द्वारा होतीथी[८], जो सम्भवतः आने - जानेवाले अपरिचित व्यक्तियों पर कड़ी दृष्टि रखताथा। नदी - घाटों पर आवागमन की सुविधा, कर - वसूली तथा अवांछित व्यक्तियों की गति - विधियों की छानबीन का का कार्य तरपति नामक अधिकारी करताथा।

पुलिस - व्यवस्था— राज्य में, जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा तथा शान्ति और सुव्यवस्था बनाएरखने केलिए पृथक पुलिस - विभाग था। इस विभाग के अनेक अधिकारियों के नाम कत्यूरी - शासनों में सुरक्षित हैं। दाण्डिक और खड्गिक सम्भवतः दण्ड और खड्ग धारी सिपाही थे, जो राज्य तथा जनता की सम्पत्ति की सुरक्षा का ध्यान रखतेथे।

१- ललितशूर का शासन, (१), पं० ११; तथा पद्मट और सुभिक्षराज के शासन

२- यशोवर्मन् चन्देल का खजुराहो - शिलालेख, पं० १३

३- यशोवर्मन् का खजुराहो - शिलालेख, पं० १७

४- द्र० ललितशूर, पद्मट और सुभिक्षराज के शासन　५- ललितशूर का शासन, (१), पं० ५

६- सुभिक्षराज का ताम्रशासन ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८५

७- ललितशूर का शासन, १, पं० १४

अपराधियों को पकड़नेवाला सर्वोच्च अधिकारी दोषापराधिक कहलाताथा[१]। षड़यन्त्रों का उन्मूलन गुप्तचरविभाग के सर्वोच्च अधिकारी दु:साध्यसाधनिक द्वारा होताथा[२]। चोर - डाकुओं को पकड़नेवाला विभाग चोरोद्धरणिक[३] के अधीन कार्य करताथा। दण्डपाशिक, दण्डनायक या महादण्डनायक पुलिस के बड़े अधिकारी थे[४]। शासनों में इन अधिकारियों के उल्लेख से विदित होताहै कि प्रजा को उत्पीड़ित करनेवाले तत्वों का कठोरता से दमन कियाजाताथा।

जागेश्वर और गोपेश्वर के शिलालेखों से विदित होताहै कि कत्यूरी - शासनकाल में प्रजा की धनसम्पत्ति, सम्मान एवँ जीवन की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखाजाताथा। भारत के विभिन्न भागों से आनेवाले तीर्थयात्री उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा बिना किसी सँकट के पूरी करसकतेथे।

मार्गों तथा पथिकों की सुख - सुविधा का विशेष ध्यान रखाजाताथा। मार्गों के किनारे पांथशालाओं की स्थापना कीगईथी[५]। सार्वजनिक स्थानों में प्याऊ लगाएजातेथे[६]।

नरेश की सम्पत्ति— कत्यूरी - अभिलेखों में व्यक्ति - विशेष द्वारा भूमि क्रय करने का उल्लेख मिलताहै[७]। इससे अनुमान लगताहै कि पौरव - शासनकाल के समान कत्यूरी - शासनकाल में भी जब नरेश किसी व्यक्ति को पुरस्कार या अग्रहाररूप में भूमि प्रदान करदेताथा, तो उस भूमि का स्वामित्व उस व्यक्ति को प्राप्त होजाताथा।

राजपरिवार की अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति में अनेक पशु, मुख्यत: गाय, भेंस और घोड़े - खच्चर भी होतेथे। उनकी देखरेख करनेवाले विभाग का प्रमुख अधिकारी किशोर - वडवा - गो - महिष्यधिकृत[८] कहलाताथा। दुधारु पशुओं से दुग्धादि प्राप्तकरने का कार्य आभीर का होताथा[९]।

आय के साधन— राज्य की आय के मुख्य साधन, कृषि, खनिज और वन थे। क्षेत्रपाल राज्य में कृषि की उन्नति का ध्यान रखताथा। प्रमातार का कार्य भूमि की विधिपूर्वक नापकरना था। पट्टक या भूमिसम्बन्धी विवरण सम्भवत: उसीप्रकार रखाजाताथा जैसा हम पौरवनरेशों के राज्यकाल में देखचुकेहैं। उपचरिक या पट्टकोपचरिक नामक अधिकारी भूमि के अभिलेख रखताथा। भूमि की नाप उसमें बोएजानेवाले बीज के अनुसार कीजातीथी। कत्यूरी - शासनों में 'द्रोणवापम्' के अतिरिक्त 'नालीवापम्'[१] या एक नाली

१- ४- द्र० सुभिक्षराज का शासन

५- त्रिभुवनराज का शिलालेख; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७०

६- त्रिभुवनराज का शिलालेख, -- पूर्वोक्त पृ० ३७९

७- पद्मट का शासन ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८१

८- ललितशूर का शासन (१) पं० १४

९- सुभिक्षराज का शासन ; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८६

(=१ पाथा=२ सेर) बीजवाली भूमि का भी उल्लेख है[1]। अब भी उत्तराखण्ड में द्रोण (दूण) और नाली (पाथा) का प्रयोग उसीप्रकार चलाआताहै।

खनिजों और वनों का स्वामित्व सम्भवतः राज्य को प्राप्त था। खण्डपति और खण्डरक्षास्थानाधिपति नामक अधिकारी खनिज और वनों की रक्षा तथा उपयोग का प्रबन्ध करतेथे[2]। उत्तराखण्ड के लौह, ताम्र, सुवर्णचूर्ण, भोजपत्र, बांस, रिंगाल आदि वस्तुओं की उनदिनों भी मैदानी प्रदेशों में बड़ी मांग थी। ऊन, ऊनीवस्त्र, पालतू पशु - पक्षी, मधु और वनोषधियों के विक्रय से जनता और राज्य को प्रचुर लाभ होताथा। सारे भारत में मन्दिरों की सँख्या वेग से बढ़ने के साथ उत्तराखण्ड से चमरों और गँगाजल के निर्यात में भारी वृद्धि होगईथी।

कर— कत्यूरी-अभिलेखों में विभिन्न करों के नाम नहीं मिलते। किन्तु भोगपति[3] और शौल्किक[4] नामक अधिकारियों का उल्लेख मिलताहै, जिनका कार्य 'भोग' और 'शुल्क' आदि करों को वसूल करनाथा। कृषि और पशुओं से प्राप्त पदार्थों का निश्चित अँश कर - रूप में लियाजाताथा। भट और चाट या प्रचाट नामक अधिकारी प्रजा से विष्टि या बेगार लेतेथे। जो भूमि किसी देवमन्दिर को अग्रहार - रूप में दीजातीथी, उस पर बसे लोगों से भट और चाट विष्टि नहीं लेसकतेथे[5]। न उनसे अन्य किसीप्रकार का भोग या शुल्क लियाजाताथा। वे इन करों को राजा को न देकर मन्दिर को देतेथे।

धार्मिक सहिष्णुता— कत्यूरी राज्यकाल में उत्तराखण्ड के अधिकांश निवासियों की श्रद्धा स्मार्त हिन्दुधर्म के प्रति थी। धुर दक्षिणी भाग में, भावर की पट्टी में बौद्ध और जैनमत के कुछ अनुयायी बसेथे। मोरध्वजस्तूप की रचना पौरव - शासनकाल में हुईथी। उसके पश्चात् कई शतियों तक मोरध्वजस्तूप बौद्ध मतावलम्बियों केलिए पूजास्थल बनारहा।

प्रवोधचन्द्रोदय नामक नाटक से विदित होताहै कि दसवीं शती ईसवी में समकालीन शासकों की कोपदृष्टि से बचनेकेलिए दिगम्बर जैन साधुओं को पांचाल, मालवा, आभीर और आनर्त में शरण लेनीपड़ीथी। दिगम्बर साधु उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में भी पहुँचेथे। उनके प्रचार के फलस्वरूप उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में जैन मन्दिरों की स्थापना हुईथी। बढ़ापुर के पास एक टीले की खुदाई से प्राप्त श्री वर्द्धमानस्वामिदेव की अतिसुन्दर ३ फीट ऊँची मूर्ति प्राप्त हुईहै, जिसकी स्थापना सँवत् १०६७ (1010) में गागिल के पुत्र भरथ ने कीथी[6]। इससे विदित होताहै कि कत्यूरी - शासन के अन्तर्गत बौद्ध तथा जैन मतावलम्बियों को अपने मत के प्रचार की तथा मन्दिरों की स्थापना की पूरी स्वतन्त्रता थी।

१- २- सुभिक्षराज का ताम्रशासन ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८६

३- ललितशूर का शासन, (१), पं० १३ ४- ललितशूर का शासन, (१), पं० १२

५- ललितशूर का शासन, (१), पं० १२ ६- उत्तराखंड का इतिहास, भाग २, पृ० ४५०

उपास्य— सारे राज्य में हिन्दु - देवी - देवताओं की उपासना सर्वव्यापक थी। कत्यूरीनरेश परममाहेश्वर थे। केवल सुभिक्षराज का विरुद परमवैष्णव था। इन नरेशों का विश्वास था कि उन्हें शिवजी और नन्दाभगवती के प्रसाद से राज्यप्राप्ति हुईहै। कत्यूरी नरेशों के सभी अभिलेखों में उनके इस विश्वास का सर्वप्रथम उल्लेख कियागयाहै। वे अपने को परमब्रह्मण्य (= ब्राह्मणभक्त) भी बतलातेथे तथा विद्वान् ब्राह्मणों का सत्कार करने केलिए प्रस्तुत रहतेथे। वे वर्णाश्रम - व्यवस्था के सँरक्षक थे।

उत्तराखण्ड में नन्दादेवी और शिव की पूजा सर्वमान्य थी। व्याघ्रेश्वर के शिव की, नृसिंह और नागदेवता की, दुर्गादेवी और ब्रह्मेश्वर की तथा गँवियापिण्ड, भरके (भटक् ?) एवँ चाण्डालमुण्डा - जैसे ग्रामदेवी - देवताओं की बड़ी मान्यता थी। इन सबके मन्दिरों की स्थापना होचुकीथी। कत्यूरी - अभिलेखों में सूर्यमन्दिरों का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु समकालीन दर्जनों बूटधारी सूर्य की प्रतिमाएँ मिलने से विदित होताहै कि सूर्य के उदीच्यस्वरूप की पूजा बहुप्रचलित थी।

नारायण के रूप में विष्णु की उपासना अलकनन्दा - गँगा के तटों पर विशेषरूप से प्रचलित थी। ललितशूर की रानी ने गेरुन्नासा में, श्रीपुरुषभद्र ने गरुड़ाश्रम में नारायण के मन्दिरों की स्थापना कीथी। शँकराचार्य द्वारा बदरिकाश्रम के मन्दिर का पुनरुद्धार ललितशूर के पूर्वजों के समय होचुकाथा। ललितशूर के समय बदरिकाश्रम में नारायण की पूजा सुप्रचलित थी। बदरिकाश्रम के निकट तपोवन में ब्रह्मचारियों का आश्रम था। पद्मट ने बदरिकाश्रम को भूमि प्रदान कीथी। सुभिक्षराज ने एक नारायणमन्दिर को भूमि प्रदान कीथी, जो सम्भवतः विष्णुगँगा और धौलीगँगा के सँगम पर बनाथा।

मन्दिर — सातवीं शती से दसवीं शती ईसवी तक सारे भारत में गांव - गांव में मन्दिरों की स्थापना हुईथी। मन्दिरों की स्थापना करना, उन्हें भूमि आदि अर्पित करना तथा मन्दिरों में मूर्तियों का वित्तानुसार पूजासामग्री से अर्चन करना, इस लोक और परलोक में पुण्यदायक मानाजाताथा। इनदिनों उत्तराखण्ड में भी सैकड़ों मन्दिरों की स्थापना हुईथी, जिनमेंसे अधिकांश भूचाल आदि से नष्ट होगए। कुछका जीर्णोद्धार करते समय उनकी प्राचीनता नष्ट करदीगई। किन्तु कुछका अब भी अपने मूलरूप में अस्तित्व बनाहुआहै।

इन कत्यूरीकालीन मन्दिरों में गुप्तकालीन मन्दिरों के समान कटी शिलाओं का प्रयोग कियागयाहै। गुप्तकाल के मन्दिर भारत में पत्थर के मन्दिरों के प्राचीनतम उदाहरण मानेजातेहैं [1]। उनसे पूर्व मन्दिर मुख्यतः काष्ट के बनतेथे। गुप्तकालीन मन्दिरों के समान इन मन्दिरों की स्थापना भी ऊँचे चबूतरों पर कीगईहै, जिनपर चढ़ने केलिए चारों ओर सीढ़ियां बनीहैं [2]। इनकी बाहरी और भीतरी दीवारें सादी हैं। गर्भगृह में

१- मजूमदार तथा अल्तेकर — बाकाटक - गुप्त एज, पृ० ४१६

२- द्र० वासुदेव उपाध्याय — गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० २६५

प्रवेशकरने केलिए इनमें एक ही द्वार बनाहै, जिसके द्वारस्तँभ को प्रायः अलँकृत कियागयाहै। द्वारपाल के स्थान पर प्रायः गँगा - यमुना की मूर्तियां बनाईगईहैं [1], जैसी आदिबदरी के एक मन्दिर के द्वार पर आजतक देखीजासकतीहैं।

गुप्तकालीन मन्दिरों के समान इन मन्दिरों में भी गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-मार्ग बनायागयाहै, जो छत से ढकाहै [2]। छोटे मन्दिरों के आगे, जैसे आदिबदरी और जागेश्वर में, वर्गाकार गर्भगृह और छोटा - सा गोपुर बनाहै। उनमें मूर्ति केलिए स्थान है, किन्तु अधिक दर्शनार्थी एकसाथ मन्दिर में नहीं जासकते।

मन्दिरों के द्वारपट्टों पर अलँकरण के रूप में व्याल और कीर्तिमुख का प्रयोग गुप्तकाल के तक्षण - कलाकारों को सबसे अधिक प्रिय था [3]। आदिबदरी के कुछ मन्दिरों की दीवारों पर माला उगलतेहुए कीर्तिमुखों का अति सुन्दर अँकन हैं [4]। गुप्तकालीन कुछ मन्दिरों में एक सिंह हाथी पर आक्रमण करते दिखायागयाहै, जिसको अन्धकार या अज्ञान के ऊपर ज्ञान की विजय का प्रतीक मानाजाताहै [5]। ऐसा चित्रण उत्तराखण्ड के कत्यूरी कालीन तथा पीछे के बने मन्दिरों में भी मिलताहै।

कत्यूरीकालीन मन्दिरों में लकड़ी का प्रयोग नहीं मिलता। इनकी द्वारपट्टिकाएँ भी शिलाओं से बनीहैं। इन मन्दिरों में अब जो लकड़ी के किवाड़ मिलतेहैं, वे पीछे जोड़ेगएहैं। दीवारों की शिलाओं को चौरस काटने के पश्चात् उन पर घुटाई कीगईहै। दो शिलाओं के बीच में अन्दर की ओर लोहे की कीलें लगाईगईहैं। शिलाओं को भीतर की ओर चूने से बड़ी कुशलता से जोड़ागयाहै, जिससे बाहर से देखने पर चूने के प्रयोग का तथा कीलों का पता नहीं लगता [6]।

शिखर — मन्दिरों पर शिखर बनाने की प्रथा गुप्तकाल में आरम्भ होगईथी। कत्यूरीकाल के छोटे मन्दिरों पर नागरशिखर मिलताहै। उनमें शिखर का निर्माण गर्भगृह की चपटी छत से आरम्भ हुआहै। चारों कोनों से दीवारें गोलाकार एवँ सँकीर्ण होतीहुई ऊपर जाकर एक बिन्दु पर मिलगईहैं। इसके ऊपर एक गोल शिला रखीहुई मिलतीहै, जिसकी परिधि को अनेक वृत्तों में बांटकर चक्र के ससान सजायागयाहै। शिला का निचला भाग आमलक और अन्तिम भाग कलस कहलाताहै [7]। ऐसे नागरशिखरवाले मन्दिर प्रायः १०-१५ फीट से अधिक ऊँचे नहीं हैं।

समकालीन कलाकारों ने नागरशिखर में तनिक परिवर्तन करके एक नए प्रकार के शिखर का निर्माण आरम्भ कियाथा, जो कत्यूरीशिखर कहलाताहै तथा जिसका प्रयोग आजतक चलाआताहै। कत्यूरीशिखरवाले मन्दिर २० फीट से लेकर ३० फीट तक ऊँचे

१- द्र० कनिंघम — आर्केलौजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० १० पृ० ६०

२- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० २६६-६७

३- वासुदेव उपाध्याय - पूर्वोक्त, पृ० २६४-६५

४- उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० २६४

५- वासुदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० २६३

६- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २६०

७- उत्तराखण्ड - यात्रा - दर्शन, पृ० ५३०

मिलतेहैं। उनकी दीवारें सीधी ऊपर उठकर जब शिखर की ओर ढलती हैं तो उन्हें अधिक नहीं भुकानापड़ता। उनके ऊपर एक चपटी पाषाण - छत लगतीहै। इस छत को बड़ी - बड़ी लोहे की सब्बलों के द्वारा ऐसी कुशलता से बनायाजाताहै, जिससे सब्बलें बाहर से नहीं दिखाईदेतीं। इस चपटी छत के ऊपर विशाल वृताकार पाषाण - आमलक रखकर उसे ऊपर से चपटी आयताकार पटालशिलाओं की या लकड़ी की वेष्ठिनी से ढकदेतेहैं। काष्टवेष्ठिनी के नीचे लकड़ी की छोटी - छोटी तीलियां आमलक तक लगातेहैं, जो सजावट के अतिरिक्त शिखर-वेष्ठिनी को थामेरखतीहैं [१] और हिमपात से रक्षा करतीहैं।

उत्तराखण्ड के अधिकांश प्राचीन मन्दिरों पर नागरशिखर मिलताहै। अनेक स्थानों में, जहां मन्दिरपुंज हैं, जैसे जागेश्वर, बागेश्वर, आदिबदरी और सिमली आदि में, वहां छोटे मन्दिरों पर नागरशिखर मिलताहै और प्रधान बड़े मन्दिर पर कत्यूरीशिखर। उत्तरकाशी, केदारनाथ, गोपेश्वर, गँगोत्तरी, जागेश्वर, जोशीमठ, तपोवन, त्रियुगीनारायण, तुंगनाथ, धराली, देवप्रयाग, देवलगढ, नालाचट्टी, पांडुकेश्वर, बदरीनाथ, बिनसर, बैजनाथ, बागेश्वर, राणीहाट, लाखामण्डल, श्रीनगर, सोमेश्वर आदि अनेक स्थानों पर कत्यूरी-शिखरवाले मन्दिर मिलतेहैं। इनमेंसे केवल थोड़े - से ही मन्दिर दसवीं शती ईसवी से पहले के हैं [३]। अधिकांश का समय - समय पर जीर्णोद्धार या कायाकल्प होतारहाहै।

तपोवन, सिमली, केदारनाथ, गोपेश्वर, आदिबदरी तथा जागेश्वर के कुछ मन्दिर निश्चय ही कत्यूरीकालीन हैं। जागेश्वर के एक मन्दिर की एक दीवार पर उसके सूत्रधार (शिल्पी) कल्याण ने अपना नाम अँकित कियाहै, जिसे लिपि के आधार पर आठवीं शती ईसवी का मानाजाताहै। जागेश्वर में मृत्युञ्जय आदि कुछ मन्दिरों का निर्माण आठवीं शती ईसवी तक होचुकाथा। उन मन्दिरों की दीवारों पर यात्रियों के लेखों को लिपि के आधार पर आठवीं से दसवीं शती तक का मानागयाहैं [४]। जागेश्वर में नवदुर्गामन्दिर के स्थापत्य और उड़ीसा के भुवनेश्वरादि के मन्दिरों के स्थापत्य में मिलनेवाली रोचक समानता उत्तराखण्ड का भारत के पूर्वी भाग से घनिष्ठ सम्पर्क सिद्ध करतीहै [५]।

मूर्तियां—उत्तराखण्ड में कत्यूरी - शासन से शतियों पहले से मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण होनेलगाथा। सबसे प्राचीन मूर्तियां लकुलीश शिवलिंग हैं, जिन पर लिंग को रेखाओं द्वारा शिश्नरूप देने का प्रयत्न देखाजाताहै। इसप्रकार के शिवलिंगों की स्थापना कत्यूरी-राज्यकाल में भी होतीरही। इसीप्रकार शक-कुशाण - आधिपत्य के दिनों से बूटधारी सूर्य की प्रतिमाओं की स्थापना कत्यूरीकाल तक होतीरही। उनकी पूजा आजतक चलीआतीहै।

जिस मूर्तिकला का विकास गुप्त - शासनकाल में आरम्भ हुआथा, वह कत्यूरीकाल

१- उत्तराखंड - यात्रा - दर्शन, पृ०५४२-४३ २- द्र७ उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ०२६३-२०७
३- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४१४ ४- उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ४११-१४
५- स्ट्रगल फोर एम्पायर, पृ० ५५५

तक प्रचलित रही। कुशाणकालीन मूर्तियों का प्रभामण्डल सादा रहताथा। गुप्तकाल में प्रभामण्डल को कमल, पत्र, पुष्प, लता, गन्धर्व आदि से अलंकृत करने की प्रथा चली[१]। नारायण आदि की मूर्तियों में शिर पर किरीट - मुकुट, कानों में कुण्डल, हाथों में कंकण, गले में हार और केयूर, वनमाला तथा कभी - कभी उत्तरीय या श्रीवत्सयुक्त वक्षस्थल और अधोवस्त्र दिखाएजानेलगे[२]।

देवी - देवताओं के हाथों में उनकी शक्ति प्रदर्शित करने केलिए निश्चित क्रम से उनके आयुध दिखाएजानेलगे[३]। मूर्ति के चरणों के आसपास अनेक लघुमूर्तियां एक - दूसरे के ऊपर खड़ी करके तथा प्रभामण्डल में अन्य देवताओं की लघुमूर्तियां बनाकर सजायाजानेलगा[४]। देवविग्रह के चरणों के पास उसका वाहन अंकितकरने की प्रथा चलपड़ी। अति पतले अधोवस्त्र, करधनी और केशों को जाली - जैसे वस्त्रों से ढकाहुआ दिखायाजानेलगा।

नौवीं - दसवीं शती में अधिकांश देवमूर्तियां कोर कर बनाईगईं। उनके मुखमण्डल पर योगस्थ भाव की अभिव्यक्ति का विशेष ध्यान रखागयाहै। ये मुखमण्डल सामने से देखने में उतने प्रभावोत्पादक नहीं दिखाईदेते, जितने दहिनी या बांई ओर से देखने पर विदित होतेहैं[५]। मूर्तियों में, विशेषकर वक्रतुण्ड गणेश की मूर्तियों में, बल खातीहुई देह का अतिरञ्जित प्रदर्शन कियागयाहै, फिर भी गठन में कहीं से अशक्तता या असफलता नहीं पाईजाती[६]।

उत्तराखण्ड के मन्दिरों में मिलनेवाली हर-गौरी, महिषमर्द्दिनी, वक्रतुण्ड गणेश, कार्तिकेय और दुर्गा आदि की सर्वोत्तम मूर्तियां सातवीं शती से दसवीं शती के अन्त तक की लगतीहैं। उस युग में शेषशायी विष्णु की मूर्तियां बननेलगीथीं। विष्णु के बराह और नृसिह विग्रहों का तथा बराह, विष्णु और नृसिह के त्रिमुखों से युक्त सात्वत मूर्तियों का निर्माण इसी युग में हुआ। इनमेंसे कुछ के साथ लक्ष्मी भी बनीहोतीहै। सिमली की प्रसिद्ध सात्वत मूर्ति को कत्यूरीकाल का मानाजासकताहै।

इन मूर्तियों का निर्माण मुख्यत: भूरी बालुज शिलाओं या नीली अथवा हरी झाईंवाली शिलाओं से कियागयाहै। भूरी बालुज शिलाओं से बनी अनेक मूर्तियां काले वज्रलेप के कारण काली शिला से निर्मित लगतीहैं। कलाकारों ने उन पर इतनी कुशलता से वज्रलेप कियाहै कि लगभग एक सहस्र वर्ष के दुग्ध, रुधिर या जलादि के अभिषेक से भी इनका वज्रलेप न धुला और आज भी उसीप्रकार चमकदार काला दिखाईदेताहै।

इन मूर्तियों केलिए आवश्यक शिलाएं उत्तराखण्ड में अनेक स्थानों पर मिलतीहैं, तथा निकट के मैदानी प्रदेश में कहीं नहीं मिलतीं। प्राचीनकाल में मार्गों तथा भारवाहन के साधनों के अभाव में सरलता से टूटनेयोग्य शिलाओं से बनी अगणित मूर्तियों को दूर से

१- द्र० वासुदेव उपाध्याय – गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० २७०

२- वासुदेव उपाध्याय—पूर्वोक्त, पृ० २७२ ३- राय कृष्णदास – भारतीय मूर्तिकला, पृ० १३६-३७

४- वासुदेव उपाध्याय – पूर्वोक्त, पृ० २७३ ५- ६- राय कृष्णदास—पूर्वोक्त, पृ० १३७

लाकर उत्तराखण्ड में स्थापित करना सम्भव न था। लाखामण्डल, केदारनाथ, जोशीमठ, बैजनाथ, बागेश्वर आदि स्थानों में मिलनेवाली पांच फीट से अधिक ऊँची मूर्तियों का निर्माण निश्चय ही निकटप्रदेश में हुआहोगा।

उस युग में लाखामण्डल, गँगाद्वार, बाराहाट, राणीहाट - श्रीनगर, आदिबदरी, जोशीमठ, बैजनाथ, जागेश्वर और बागेश्वर मूर्तिकारों के प्रमुख केन्द्र थे। लाखामण्डल में पुरातत्वविभाग द्वारा निर्मित कुटीर में संग्रहीत अनेक मूर्तियां इसी युग की हैं। इनमें वीरभद्र और गणपति सहित सप्तमातृकाओं की प्रतिमाओं वाली शिला [1], कार्तिकेय, हर-गौरी, विष्णु, दुर्गा, लक्ष्मी-नारायण तथा आलिगनमुद्रा में शिव - पार्वती की अति सुन्दर मूर्तियां इसी युग की हैं [2]।

गङ्गाद्वार के पास झींवरहेड़ी ग्राम में प्राप्त - समुद्रमन्थन दृश्यवाली शिला की गणना इस युग की सर्वोत्तम कृतियों में कीजातीहै [3]। यह शिला अब गुरुकुल कांगड़ी के संग्रहालय में है। देवों को जटा और दाढ़ीवाले ऋषियों - जैसा तथा दानवों को शकों के समान कुल्लाहनुमा टोपी पहने, छोटी - सी दाढ़ी तथा गाल की उभरीहुई अस्थियोंवाला अँकित कियागयाहै। प्रत्येक देवता और असुर द्वारा सर्प को अपनी ओर खींचने की मुद्रा के चित्रण में कलाकार को आश्चर्यजनक सफलता मिलीहै [4]।

कालीमठ की हर-गौरी की सुप्रसिद्ध मूर्ति, जिसे राहुल ने सारे भारत की अखण्ड हर - गौरी मूर्तियों में सर्वश्रेष्ठ मानाहै [5], इसी युग की कृति है। इसकी कोमल वँकिम रेखाओं में वही सौंदर्य भराहै, जो अजँता के चित्रों में दिखाईपड़ताहै। वल्कि शिला पर भी ऐसे तन्वँग उत्कीर्णकरना सम्भव होसकताहै, इस पर आंखें सहसा विश्वास नहीं करतीं [3]। ललितासनस्थ हर के वामांक में अनुपम सौन्दर्यराशि की मूर्ति बनकर भूधरसुता विराजमान हैं। शिव चतुर्भुज हैं, किन्तु गौरी साधारण मानवी के समान द्विभुज [7]।

कत्यूरीकाल के कलाकारों को मानव और देवी - देवताओं के अंग - प्रत्यँगों के स्वाभाविक अनुपात का समुचित बोध था। हर - गौरी की मूर्तियों में गौरी के पतले गालों, नुकीले हनु और अर्द्ध निमीलित नेत्रों की रचना देखकर पता लगताहै कि उनकी कला में सौन्दर्य - भावना कितनी सुसंस्कृत थी। मानवी के रूप में अँकित गौरी के वर्तुलस्तन को अंगुली के कोर से छूतेहुए ध्यानमग्न शिव दर्शक को भी ध्यानमग्न करदेतेहैं [8]। इस युग में जबकि खजुराहो [9], भुवनेश्वर [10], वैजनाथ (कांगड़ा) आदि के मन्दिरों में अश्लील मुद्राओं

१- वत्स तथा अग्रवाल—जौ० यू० पी० हिस्टोरिकल सो० जुलाई १९४४, पृ० ८८

२- वत्स तथा अग्रवाल — पूर्वोक्त, पृ० ८८ - ८९

३- ४- अग्रवाल — जौ० यू० पी० हिस्टोरिकल सो०, १९५१-५२, पृ० २०४

५- ७- राहुल — गढ़वाल, पृ० ४४१

७- उत्तराखंड का इतिहास, भाग २, पृ० २८९

९- राय कृष्णदास — भारतीय मूर्तिकला, पृ० १२० - ३१ १०- राय कृष्णदास—पूर्वोक्त, पृ० १२५

वाली मूर्तियों के निर्माण में अनेक कलाकार व्यस्त थे, उत्तराखण्ड के कलाकारों ने इस पावन भूमि के मन्दिरों केलिए केवल सात्विक भावनाओं को जाग्रत करनेवाली मूर्तियों का ही निर्माण किया।

साधारण शिलाओं को दिव्यशक्ति से सम्पन्न एवँ निरन्तर भुक्ति - भुक्ति-प्रदान करने में समर्थ देवमूर्तियों में परिवर्तित करदेनेवाले इन शिल्पकारों ने अपना नाम, अपना स्थान, अपना अस्तित्व कुछ भी प्रकट न होनेदिया। देवविग्रह का निर्माण करलेने पर वे उसीमें विलीन होगए [१]।

पूजा-पद्धति— कत्यूरीनरेशों ने मन्दिरों को अग्रहार रूप में भूमि प्रदान कीथी। इस भूमि की आय से मन्दिरों में देवविग्रह की गन्ध, धूप, दीप, पुष्प, अनुलेपन आदि उपचारों से पूजा कीजातीथी [२]। मन्दिर में वाद्य, गीत और नृत्य केलिए विशेष प्रबन्ध कियाजाताथा[३]। कत्यूरीनरेशों ने गोपेश्वर, केदारनाथ, तुँगनाथ, कटारमल आदि प्रसिद्ध मन्दिरों में नृत्य-गीत केलिए देवदासियों का प्रबन्ध कियाथा। उनके वँशज आजतक चलेआतेहैं। उनके परिवारों के निर्वाह केलिए मन्दिर की अग्रहारभूमि का कुछ अँश दियाजाताथा। मन्दिरों में पशु एवँ फल - अन्नादि की बलिदेने तथा चरु से हवन करने का भी प्रबन्ध कियाजाताथा [४]। मन्दिर और उससे सम्बन्धित भवनों की टूट - फूट की मरोम्मत तथा नवनिर्माण का व्यय भी अग्रहारभूमि की आय से वहन कियाजाताथा [५]।

तीर्थयात्रा— उत्तराखण्ड के तीर्थों – भृगुपँथ, केदार और बदरिकाश्रम की तीर्थ-यात्रा सुप्रचलित थी। देवपाल के राज्याधिकारियों ने निम्बर के राज्यकाल में केदारनाथ की तीर्थयात्रा कीथी [६]। इन तीर्थों में पहुँचने के दो मार्ग थे :—

(१) गङ्गाद्वार, देवप्रयाग और श्रीनगर होकर,

(२) जागेश्वर, आदिबदरी और सिमली होकर।

केदारनाथ से पूर्व गोपेश्वर तथा बदरिकाश्रम से पूर्व ज्योतिर्धाम (जोशीमठ) के तीर्थ मिलतेथे। भारत के विभिन्न भागों के वैष्णव, शैव तथा अन्य मतानुयायी उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा करतेथे। भृगुपँथ, केदार और गोपेश्वर शैवों केलिए तथा अन्य तीर्थ वैष्णवों केलिए महत्वपूर्ण थे। शाक्तों ने उत्तराखण्ड में मायावती (गँगाद्वार) [७], हृषीकेश और बदरिकाश्रम को अपने सिद्धपीठों में स्थान दियाथा [८]। सिद्धों और नाथों ने भी अपनी साधना केलिए उत्तराखण्ड की शान्त भूमि को चुनाथा [९]। गोरक्षनाथ का आश्रम केदारनाथ-मार्ग पर गौरीकुण्ड के पास था [१०]। फलत: शैव, शाक्त, वैष्णव, सिद्ध, नाथ आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों और श्रद्धालु जनता में उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा के प्रति आकर्षण बढ़गया।

१- उतराखण्ड का इतिहस, भाग १, पृ० २८७

२- ५- सुभिक्षराज का ताम्रशासन ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८०

६- देवपाल का मुंगेर - ताम्रशासन; पं १०-१२

७- डी० सी० सरकार — शाक्तपीठ, पृ० १७

८- डी० सी० सरकार — पूर्वोक्त, पृ० १६

९- उत्तराखण्ड - यात्रा - दर्शन, पृ० १६४-६५

१०- केदारखण्ड, ४२। २२ - २३

देवप्रयाग [१], जागेश्वर [२] और गोपेश्वर के मन्दिरों की दीवारों या निकट की शिलाओं पर तीर्थयात्री अपने नाम अंकित करगएहैं [३]। पूर्वदेश (पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि) से आनेवाले यात्री काशी, अयोध्या होकर जागेश्वर पहुंचतेथे। वहां से आदिबदरी, सिमली, ज्योतिर्मठ, तपोवन होकर बदरिकाश्रम का दर्शन करतेथे।

जागेश्वर के अभिलेखों से पता चलताहै कि भारत के विभिन्न भागों के निवासी उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा केलिए बड़े उत्सुक रहतेथे। जो व्यक्ति मार्ग की दुर्गमता या स्वास्थ्य ठीक न होने या अन्य परिस्थितियों के कारण स्वयँ तीर्थयात्रा करने में असमर्थ होतेथे, वे अपने प्रतिनिधि के रूप में किसी व्यक्ति को भेजदेतेथे [४]। ऐसा व्यक्ति दर्शनार्थी का 'पक्षपात' कहलाताथा। पक्षपात का व्ययभार दर्शनार्थी उठाताथा। पक्षपात विभिन्न तीर्थों में पहुंचकर दर्शनार्थी का नाम तथा उसके पक्षपात के रूप में अपना नाम मन्दिर की दीवारों पर अंकित करताथा। इससे यह पतालगाना सरल होजाताथा कि दर्शनार्थी से धन लेकर उसका पक्षपात किसी तीर्थ में पहुंचाथा या नहीं। देवता को भी इस लेख के द्वारा सूचना देदीजातीथी कि तीर्थयात्रा के पुण्य का अधिकारी दर्शनार्थी है, पक्षपात नहीं।

तीर्थयात्री अपनी आवश्यक सामग्री लेकर पैदल चलतेथे। प्रायः वे अपने साथ किसी कथावाचक को भी लेचलतेथे, जो मार्ग में, पड़ाव या चट्टी में उन्हें प्राचीन पौराणिक, धार्मिक कथाएँ सुनाताथा। कथाएँ सुनने के प्रेमी अनेक व्यक्ति आनन्द से उसके साथ चलपड़तेथे [५]। जागेश्वर के एक अभिलेख में ऐसी कथाएँ सुनानेवाले बटेश्वर तथा उसकी कथाओं के प्रेमी जेज्जट के नाम आजतक सुरक्षित हैं [६]।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ और साधु, सभी आश्रमों के व्यक्ति उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा करतेथे। जागेश्वर, देवप्रयाग तथा गोपेश्वर के अभिलेखों में यात्रा करनेवाली नारियों के नाम नहीं मिलते। मार्ग की दुर्गमता तथा सामाजिक प्रथाओं के कारण दूर - दूर से नारियों का आना कठिन था, किन्तु असम्भव न था।

भृगुपंथ से या नन्दादेवी के किसी शिखर से हिमानी पर कूदकर आत्मघात करने की प्रथा भी सुप्रचलित थी। विशेषकर शैव उपासक ऐसा कियाकरतेथे [७]।

कत्यूरी-राज्यकाल का महत्व—कत्यूरी-राज्यकाल में ढाई शती तक उत्तराखण्ड में शान्ति और सुव्यवस्था रही। कत्यूरीनरेशों ने तिब्बती लुटेरों से उत्तराखण्ड की रक्षा की। उनकी कूटनीति के कारण उनके दक्षिणी शक्तिशाली पड़ोसी उन्हें कोई हानि न पहुंचासके। उनके राज्यकाल में प्रजा सुखी थी। प्रजा की सम्पत्ति एवं जीवन की रक्षा का सुप्रबन्ध था।

१- उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० २६४ २- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३७८

३- ऐनुएल रिपोर्ट आन इण्डियन एपिग्राफी, १६६७ - ६८

४- जागेश्वर - अभिलेख; उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४१० - ११

५- ६- जागेश्वर - अभिलेख ; उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ४११

७- जागेश्वर - अभिलेख , उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४१४

चोर - डाकुओं का भय नहीं था । दूर - दूर से आनेवाले यात्री भी सकुशल उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा करसकतेथे।

उनके राज्यकाल में सैकड़ों मन्दिरों की स्थापना हुई । शिल्पकारों ने पर्वतीयप्रदेशों के उपयुक्त कत्यूरी - शिखर का आविष्कार किया । इस काल में मूर्तिकला में विशेष उन्नति हुई। भूचाल तथा मुसलमानों के प्रहार के पश्चात् अब भी अनेक अतिसुन्दर मूर्तियां उत्तराखण्ड के मन्दिरों में उस युग से चलीआरहीहैं । मूर्तियों के तस्करों ने अनेक दुर्लभ मूर्तियों को चुराकर विदेशों में पहुँचादियाहै। कत्यूरीकाल में संस्कृत के पठन - पाठन का क्रम भलीप्रकार चलतारहा। कत्यूरीनरेशों को विद्वान् ब्राह्मण उपलब्ध थे, जो संस्कृत गद्य - पद्य में अभिलेख आदि लिखने में चतुर थे।

शँकराचार्य कत्यूरी-राज्यकाल में उत्तराखण्ड में पहुँचेथे। तथा अनुश्रुति के अनुसार उन्होंने बदरिकाश्रम में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना कीथी। सम्भवत: कत्यूरीनरेशों ने बदरिकाश्रम के जीर्णोद्धार में सहायता कीथी। मनुस्मृति के सर्वश्रेष्ठ टीकाकार मेधातिथि सम्भवत: कत्यूरीनरेशों के आश्रित थे।

कत्यूरीनरेश आदर्श चरित्रवाले थे। उनके अभिलेखों में केवल आदर्श गुणों की ही चर्चा है। जबकि समकालीन अनेक अभिलेख नरेशों के चरित्र का दूसरा ही स्वरूप व्यक्त करतेहैं। स्वयँ माहेश्वर होतेहुए भी वे वैष्णव और अन्य सम्प्रदायों के मन्दिरों को उदारता पूर्वक भूमिदान देतेथे। उनके राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में बौद्ध और जैनमतों के अनुयायियों ने अपने स्तूप और मन्दिरों का निर्माण कियाथा। कत्यूरीराज्यकाल में उत्तराखण्ड का भारत के समस्त भागों से सर्वाधिक सम्पर्क स्थापित हुआ। उत्तराखण्ड के कुछ भागों में कत्यूरीनरेशों को ग्रामदेवताओं के रूप में आज भी पूजाजाताहै। उनका राज्यकाल उत्तराखण्ड के इतिहास में स्वर्णयुग के समान था।

अनुमानित तिथिक्रम

वसन्तन का परिवार–

वसन्तन, खर्पर, अधिधज, त्रिभुवनराज	सँ० ७९७-८५७ वि० (740-800 ई०)

निम्बर का परिवार–

निम्बर, इष्टगण	सँ० ८५७-८८९ वि० (800-832 ई०)
ललितशूर	सँ० ८८९-९११ वि० (832-854 ई०)
भूदेव	सँ० ९११-९३३ वि० (854-876 ई०)

सलोणादित्य का परिवार–

सलोणादित्य	सँ० ९३३-९६५ वि० (876-908 ई०)
इच्छट, देशट, पद्मट, सुभिक्षराज, वँशज, नृसिहदेव (राज्यारम्भ)	सँ० ९६५-१०५७ वि० (908-1000 ई०)

उत्तराखण्ड में शङ्कराचार्य

शिक्षा-दीक्षा — शँकराचार्य का आविर्भाव केरलप्रान्त के कलटी नामक ग्राम में संवत् ८४५ (788) में और तिरोभाव केदारनाथ धाम में संवत् ८७७ (820) में हुआ [1]। उनके पिता शिवगुरु नम्बूदरीजाति के ब्राह्मण थे। उनकी माता का नाम सती या विशिष्टा था। शँकर की वाल्यावस्था में ही उनके पिता की मृत्यु होजाने से उन्हें विरक्ति होगई। अपनी माता की अनुमति लेकर वे सन्यासी बनगए। लगभग तीन वर्ष तक उन्होंने गौड़पादाचार्य के शिष्य गोविन्दाचार्य से उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों का अध्ययन किया।

१२ वर्ष की आयु में शँकर ने काशी में जाकर अद्वैत वेदान्त का प्रचारकरना आरम्भ करदिया [2]। कहतेहैं कि वहां भगवान् विश्वनाथ ने शँकर को दर्शन दिए और बदरिकाश्रम में जाकर ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने को कहा [3]। व्यासजी ने बदरिकाश्रम के पास व्यासगुफा में वेदान्तसूत्रों का प्रणयन कियाथा। इसलिए शँकर ने व्यासगुफा में जाकर भाष्य लिखने केलिए शिष्यों के साथ प्रयाण किया [4]।

उत्तराखण्ड में आगमन— ऋषिकेश पहुँचने पर उन्हें पता चला कि चीनदेश (तिब्बत) के लुटेरों के भय से पुजारियों ने विष्णुमन्दिर की मूर्ति को गँगातट पर छिपा दियाहै। शँकर ने उस मूर्ति की मन्दिर में, पुनः प्रतिष्ठा की [5]। गढ़वाल में, श्रीनगर में श्रीयन्त्र पर नरबलि होते देखकर उन्होने इस प्रथा को बन्द करवाया [6]। बदरिकाश्रम में उन्हें विदित हुआ कि चीनदेश (तिब्बत) के लुटेरों के भय से पुजारियों ने मूर्ति को गँगातट पर स्थित नारदकुण्ड में फेंकदियाहै। शँकर नारदकुण्ड में डुबकी लगाकर एक मूर्ति को बाहर निकाललाए। उसे खण्डित देखकर उन्होंने उसे नारदकुण्ड में फेंक दिया और दूसरी

१- वलदेव उपाध्याय — श्रीशंकराचार्य, पृ० ३४

२- वलदेव उपाध्याय—पूर्वोक्त, पृ० ५०

३- ५- वलदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० ५१

६- पातीराम — गढ़वाल एनशिएंट ऐंड मौडर्न, पृ० १५७ - ४८

मूर्ति निकालने का प्रयत्न किया। दूसरी और तीसरी बार भी वही खण्डित मूर्ति उनके हाथ आई। कहाजाताहै कि इसी समय आकाशवाणी हुई कि कलियुग में इसी खण्डित मूर्ति की पूजा होगी। तब शंकर ने उसी मूर्ति को मन्दिर में प्रतिष्टा करदी [१]।

बदरिकाश्रम के पास व्यासगुफा में शंकर ने ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा प्रधान उपनिषदों पर विशद भाष्य लिखे [२]। भाष्य समाप्त करके आचार्य केदारनाथ होतेहुए गँगोत्तरी पहुँचे। उत्तरकाशी में उन्हें व्यासजी के दर्शन हुए। ब्रह्मसूत्रों का भाष्य देखकर व्यासजी बड़े प्रसन्न हुए [३]।

भारत के विभिन्न भागों में पहुँचकर उन्होंने विभिन्न मतमतान्तरों का खण्डन करके अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों की पुष्टि की। उन्होंने भारत के चारों कोनों में श्रृंगेरी, गोवर्द्धन, शारदा तथा ज्योतिर्मठ, इन चार मठों की स्थापना की। ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) में उन्होंने अपने शिष्य तोटकाचार्य को प्रतिष्ठित किया [४]। ३२ वर्ष की आयु में उन्होंने कैलास (केदारनाथ) में शरीर छोड़ा। केदारनाथ के मन्दिर के पास आज भी वह स्थान बतायाजाताहै, जहां आचार्य ने शरीर छोड़ाथा [५]। केदारनाथ और गँगोत्तरी के बीच का एक शिखर आजतक शँकराचार्य कहलाताहै।

बौद्धों का विनाश— प्राय: कहाजाताहै कि शँकराचार्य ने अपने साथ राजा सुधन्वा की सेना लेकर शास्त्रबल और शस्त्रबल, दोनों से बौद्धों का विनाश कियाथा। नेपाल की एक अनुश्रुति के अनुसार शँकराचार्य के समय में पशुपतिनाथ की पूजा बुद्धमार्गी पुजारियों द्वारा होतीथी। उस देश में चारों वर्णों के लोग बौद्ध थे। कुछ गृहस्थी थे और कुछ भिक्षु - भिक्षुणी बनकर मठों में रहतेथे [५]। बौद्धमत के इन अनुयायियों मेंसे कुछ को शंकर या उसके साथियों ने मारडाला। कुछ, जो शास्त्रार्थ में अपनी पराजय स्वीकार करने को प्रस्तुत न हुए उन्हें भी मारडाला। आतंकित होकर बहुत से बौद्धों ने, अपनी धार्मिक मान्यताओं में कोई त्रुटि न पातेहुए भी, प्राणभय से शँकर से शास्त्रार्थ में पराजित होना स्वीकार करलिया [७]। इन लोगों को शंकराचार्य ने बौद्धमत त्यागकर हिन्दु बनने तथा पशुहिंसा करने को वाध्य किया [८]। उन्होंने भिक्षु-भिक्षुणियों से बलपूर्वक बिवाह करवाए [६]। तथा बौद्धों के धार्मिक उत्सव बन्द करदिए। नेपाल में बौद्धमत के चौरासी सहस्र ग्रन्थ थे। शँकर ने उनका पता लगाकर उन्हें नष्ट करदिया [१०]।

नेपाल के समान कुमाऊँ और गढ़वाल में भी शँकर ने बौद्ध मतावलम्बियों का उत्पाटन किया। समकालीन नरेशों ने, जो स्वयँ शिव और विष्णु के उपासक थे, शँकर

१- ' तत्रो ऽहं यतिरूपेण तीर्थान्नारद संज्ञकात्।
उद्धृत्य स्थापयिष्यामि हरिं लोकहितेच्छया ॥ ' — स्कन्दपुराण, वैष्णव खण्ड, अ० ५

२- वलदेव उपाध्याय — शंकराचार्य, पृ० ५३; रामदास गौड़ — हिन्दुत्व, पृ० ६०५

३- वलदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० ५६ ४- ५- वलदेव उपाध्याय — पूर्वोक्त, पृ० ६०६

६- १०- डेनाइल राइट; उ० ओकले — होलि हिमालय, पृ० ६६ - ६७

की सहायता की [१]। बौद्धमठों के अधिकार में बहुत-सी कृषिभूमि थी, उसपर अधिकार करने केलिए पर्वतीय नरेशों ने वही कार्य किया जो रिफॉर्मेशन के युग में यूरोप के नोवल्स ने कियाथा [२]। केदार और बदरी के प्राचीन मन्दिरों से बौद्धों को भगाकर शँकर ने उनकी पूजा का भार अपने शिष्यों के हाथों में सौंप दिया [३]।

वर्तमान इतिहासलेखक शँकर द्वारा बौद्धों के विनाश की इन अतिरञ्जित गाथाओं पर विश्वास नहीं करते। शँकराचार्य के समकालीन किसी ऐसे सार्वभौमनरेश सुधन्वा के अस्तित्व की पुष्टि ऐतिहासिक स्रोतों से नहीं होती जो शँकराचार्य के साथ सारे भारत के राज्यों के अन्तर्गत अपनी सेना लेकर स्वच्छन्दता से जासकता और वहां की प्रजा पर स्वेच्छानुसार अत्याचार ढासकता। तथा उन राज्यों के नरेश अपनी प्रजा पर होनेवाले अत्याचारों को देखतेहुए भी विवश होकर चुपरहते।

शँकराचार्य के जीवनकाल में भारत के कतिपय भागों में बौद्धमत सुप्रचलित था [४]। किन्तु उत्तराखण्ड के अधिकांश से बौद्धमत शतियों पहले लुप्त होचुकाथा। शँकराचार्य-जैसे सन्यासी एवँ वेदान्ती विद्वान् द्वारा किसी पर अत्याचार किएजाने की कल्पना असँगत है। शँकराचार्य के अद्वैतवाद और मायावाद के कारण, जो बौद्धों के विज्ञानवाद से विशेष भिन्न नहीं थे, बौद्ध भी उनकी ओर आकर्षित हुएथे [५]। इसीलिए शँकर 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहलाए [६]। यदि उन्होंने बौद्धों पर सचमुच अत्याचार किएहोते तो न तो बौद्ध उनकी ओर आकर्षित होते और न वे प्रच्छन्न बौद्ध कहलाते।

वर्तमान विद्वानों ने शँकराचार्य के अत्याचार की गाथाओं को सर्वथा असत्य, कपोलकल्पित एवँ निराधार बतलायाहै [७]। वस्तुतः बौद्धमत को भारत से निकालने का श्रेय या अयश किसी शँकराचार्य को नहीं है [८]। बौद्धमत के ह्रास और लोप का प्रबल कारण तुर्कों का आक्रमण था। उन्होंने बड़े-बड़े विहार लूटकर जलादिए तथा भिक्षुओं के संघाराम नष्ट करदिए। राज्याश्रय के अभाव में बौद्ध प्रचारकों की सँख्या वेग से गिरनेलगी। तंत्रयान और वज्रयान की रहस्यपूर्ण उपासना के कारण जनता की श्रद्धा बौद्धमत से हटगई। शँकराचार्य के तिरोभाव से चार शतियों के पश्चात् बौद्धमत का वेग से लोप हुआ।

बदरिकाश्रम की पूजा-व्यवस्था— शँकराचार्य से पूर्व बदरिकाश्रम की पूजा-व्यवस्था में व्यवधान पड़गयाथा। महाभारत में, जिसका सम्पादन गुप्तकाल से पहले होचुकाथा, बदरिकाश्रम का विशद वर्णन है। देवप्रयाग के अभिलेखों से तथा हर्षचरित में उत्तराभिमुखी यात्रा के उल्लेख से विदित होताहै कि सातवीं शती तक ग्रीष्मकाल में उत्तराखण्ड की यात्रा सुप्रचलित थी। पौरव-शासनों में बदरिकाश्रम का उल्लेख नहीं

१-३- ओकले — होलि हिमालय, पृ० ९७

४- राहुल — बौद्ध संस्कृति, पृ० ३३

५-६- ओझा — मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० २९

७- रेज डेविड्स — बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ९५

८- राहुल — बौद्ध संस्कृति, पृ० ३४

मिलता, किन्तु कत्यूरीशासनों में मिलताहै। इससे अनुमान लगताहै कि यशोवर्मन् के राज्य-काल के आरम्भ में, तिब्बती लुटेरों के कारण, जो सम्भवतः मूर्ति के आभूषण और मन्दिर की सामग्री चुरालेतेथे, बदरिकाश्रम की पूजा में व्यवधान उत्पन्न होगयाथा। यशोवर्मन् ने तिब्बती लुटेरों को खदेड़कर गिरिद्वारों की रक्षा कीथी। अनुश्रुति के अनुसार कत्यूरी-नरेशों के राज्यकाल में शँकराचार्य ने बदरिकाश्रम में नारायण की वर्तमान मूर्ति की प्रतिष्टा कीथी।

शँकर ने बदरिकाश्रम की पूजा तथा ज्योतिमठ की व्यवस्था का भार अपने शिष्य त्रोटकाचार्य को सौंपाथा [1]। त्रोटकाचार्य की शिष्य-परम्परा के १६ आचार्यों ने [2] लगभग ४ शतियों तक सँ० ८७७ से १२७७ वि० (820 से 1220 ई०) तक ज्योतिमठ की व्यवस्था और बदरिकाश्रम की पूजा-अर्चा का प्रबन्ध किया। वर्तमान नम्बूदरी रावलों की परम्परा बहुत पीछे आरम्भ हुई।

अभीतक कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलाहै जिससे शँकराचार्य द्वारा बदरिकाश्रभ में नारायण-मूर्ति की प्रतिष्ठा की पुष्टि होसके। किसी समकालीन ग्रन्थ में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता। शँकर के सम्बन्ध में मिलनेवाले ग्रन्थों की रचना उनके जीवन काल से कई शतियों पश्चात् हुई। उनके द्वारा बदरिकाश्रम में मूर्ति की स्थापना की अनुश्रुति के खण्डन केलिए भी कोई अकाट्य प्रमाण अभीतक नहीं मिलाहै।

शँकराचार्य ने पँचस्मार्त अर्थात् विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश तथा शक्ति की एक साथ पूजा का समर्थन कियाथा। उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं के सम्बन्ध में अत्यन्त ललित स्तुतियों की रचना कीथी तथा हिन्दु साधुओं को सुसँगठित कियाथा। इन साधुओं ने भारत-भर में घूम-घूमकर हिन्दुजाति में नई जाग्रति उत्पन्न की [3]। देश के चारों कोनों में चार मठों की स्थापना करके उन्होंने देश और संस्कृति की एकता की पुष्टि की। उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा को उनके कारण बड़ा प्रोत्साहन मिला।

१- बलदेव उपाध्याय – शंकराचार्य, पृ० १६७

२- 'तोटको विजयः कृष्णः कुमारो गरुड़ध्वजः।
विन्ध्यो विशालो वकुलो वामनः सुन्दरोऽरुणः॥
श्री निवासः सुखानन्दो विद्यानन्दः शिवो गिरिः।
विद्याधरो गुणानन्दो नारायणः उमापतिः॥
एते ज्योतिर्मठाधीशाः आचार्याश्चिरजीविनः।' — रतूड़ी – गढ़वाल का इतिहास, पृ०

३- रामदास गौड़ – हिन्दुत्व, पृ० ६१०

उत्तरापथ में युगान्तर

सं० १०५०–१३०० वि०

सरसावाराज्य— सुभिक्षराज के दुर्बल उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में यमुना की पश्चिमी उपत्यका की ठकुराइयां त्रिगंत-जालन्धर के नरेशों के प्रभावक्षेत्र में आगईथीं [1]। दक्षिण की ओर यमुना की पूर्वी और पश्चिमी, दोनों मैदानी उपत्यकाओं पर फैलेहुए सरसावा राज्य के शक्तिशाली नरेश चन्द्र (चांद राय) ने अम्बाला और सहारनपुर के भाबरप्रदेश पर तथा उसके उत्तर में सिरमौर-देहरादून की निचली पहाड़ियों पर अधिकार करलियाथा। इस राज्य की राजधानी यमुनातट पर सरवा (सरसावा) में थी, जहां एक विशाल सुदृढ़ दुर्ग था [2]। राज्य के उत्तरी पर्वतीय भागों में कई ऊंचे एवं सुदृढ़ दुर्ग थे [3]।

शाहीनरेश जयपाल

सरसावाराज्य की पश्चिमी सीमा पर, सरहिन्द से लेकर काबुल तक शाहीनरेश जयपाल का राज्य था। उसकी एक राजधानी सिन्धुनदी के तट पर उद्भाण्ड में तथा दूसरी राबीनदी के तट पर लाहौर में थी। गजनी के मुसलमान अमीर सुबुक्तिगिन तथा उसके पुत्र महमूद ने जयपाल के राज्य के पश्चिमी भाग पर लूटमार, अग्निकांड और हत्याकांड मचाने आरम्भ करदिए। जयपाल ने विशाल सेना लेकर दो बार लमघान पहुंचकर आक्रान्ता से घोर युद्ध किए। किन्तु दुर्भाग्य से वह दोनों बार हारगया। फलतः सं० १०५८ (1001) में महमूद ने काबुल से लेकर उद्भाण्ड तक के सारे प्रदेश को अपने राज्य में मिलालिया [4]।

१- कीरग्राम - प्रशस्ति, कांगड़ा - गज़ेटियर, पृ० ४०१

२- ३- तारीख यामिनी, ईलियट तथा डौसन — हिस्टरी आव इण्डिया, जि० २, पृ० ४७

४- तारीख-यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० २६

लूट में महमूद के हाथ अपार धनराशि लगी। चार लाख सुन्दर नर-नारियों को बन्दी बनाकर गजनी की ओर हांकागया [१]। पराजित और अपमानित होकर जयपाल ने चिता में जलकर प्राण देदिए [२]।

शाहीनरेश आनन्दपाल

अगले पांच - छै वर्षों में महमूद ने सिन्धुनदी की पश्चिमी-उपत्यका पर अधिकार करलेने के पश्चात् सं० १०६५ (1008) में जयपाल के पुत्र आनन्दपाल के राज्य पर आक्रमण करदिया। देश पर आनेवाली भीषण विपत्ति का अनुमान लगाकर परमारनरेश भोज तथा उत्तरभारत के कतिपय नरेशों ने आनन्दपाल की सहायता - हेतु अपनी सेनाएं भेजीं [३]। उद्याण्ड के पास भयंकर युद्ध हुआ। तीस सहस्र खोकरों ने क्षणभर में पांच सहस्र मुसलमानों को काटडाला [४]।

हिन्दुओं की विजय होने ही वाली थी कि आनन्दपाल का हाथी नफता तीरों की बौछार से रणस्थल से भागगया। इसे देखकर हिन्दुसेना में भगदड़ मचगई। हिन्दुओं की बिखरीहुई शक्ति का लाभ उठातेहुए महमूद की सेना ने दो दिन, दो रात तक उसका पीछा किया। उसने व्यासनदी की पर्वतीय उपत्यका में स्थित नगरकोट के मन्दिर पर सहसा छापा मारकर अपार धनराशि प्राप्त की। जिसके मूल्य की गणित द्वारा कल्पना भी नहीं कीजासकती। इस सामग्री को देखने केलिए गजनी में दूर - दूर से आएहुए राजदूत आदि आश्चर्यचकित रहगए [५]। ईरान के पठार के लुटेरों में भारत में लूटमार मचाने केलिए अपार उत्साह की लहर फैलगई। तथा स्वभाव से ही लालची महमूद के हृदय में भारत के अन्य प्रमुख नगरों और मन्दिरों को लूटने की लालसा और भी प्रबल होगई [६]।

पराजित होकर आनन्दपाल ने महमूद की अधीनता स्वीकार करली। सं० १०६८ (1011) में महमूद ने थानेश्वरनगर और उसके मन्दिरों को लूटा [७]। मार्ग में डेरा (सम्भवतः डेरा गोपीपुर) नामक स्थान पर राजा राम ने महमूद को थानेश्वर की ओर जानेसे रोकने का प्रयत्न कियाथा। किन्तु उसे पराजित होनापड़ा [८]।

शाहीनरेश त्रिलोचनपाल

सं० १०६९ (1012) में आनन्दपाल की मृत्यु होने पर उसके पुत्र त्रिलोचनपाल

१- तारीख-यामिनी; ईलियट तथा डौसन— हिस्टरी आब इण्डिया, जि० २, पृ० २६

२- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० २७ ३- फरिश्ता, उ० स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ८

४- हबीव — सुलतान महमूद आव गजिनन, पृ० ३० - ३१

५- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ३५ ६- हबीब — पूर्वोक्त, पृ० ३२

७-८- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ४०

को शाहीराज्य मिला। त्रिलोचनपाल का पुत्र भीमपाल अपने दादा के समान महमूद की अधीनता स्वीकार करनेको प्रस्तुत न था [१]। महमूद शाहीराज्य को पार करके गँगा - उपत्यका के सम्पन्न नगरों और मन्दिरों को लूटनाचाहताथा। इसलिए उसकेलिए आगे बढ़नेसे पूर्व शाहीनरेश की शक्ति को नष्टकरदेना आवश्यक था [२]। महमूद ने शाहीराज्य की नई राजधानी निन्दुन को जीतकर उस राज्य के पश्चिमी और मध्यभाग को अपने राज्य में मिलालिया। अब त्रिलोचनपाल का राज्य पूर्वीपञ्जाव में सरहिन्द तक सीमित रहगया।

राजा चन्द्र (चाँद राय) से युद्ध— सरसावा - नरेश चन्द्र और शाहीनरेश त्रिलोचनपाल में सीमा-विवादों के कारण प्राय: झड़पें होतीरहतीथीं। महमूद के आक्रमणों के कारण दोनों ने अपना विनाश सन्मुख देखकर आपसमें सन्धिकरली। त्रिलोचनपाल ने अपने पुत्र भीमपाल का बिवाह राजा चन्द्र की पुत्री से करके मित्रता जोड़ने की सोची। किन्तु जब भीमपाल अपनी बधू को लेने सरसावा पहुँचा तो राजा चन्द्र ने उसे बन्दी बनालिया। फलत: पुन: शत्रुता आरम्भ होगई [३]।

गँगा - उपत्यका के मथुरा, कन्नौज आदि नगरों और उनके अगणित मन्दिरों को लूटने केलिए महमूद विशाल सेना लेकर आगे बढ़ा। अपनी थोड़ी-सी सेना से महमूद के आक्रमण को रोकना त्रिलोचनपाल केलिए सम्भव न था। वह महमूद की अधीनता स्वीकार करनेको प्रस्तुत न था। अस्तु वह मालवानरेश भोज परमार की शरण में चलागया [४]।

यमुना पार करके महमूद मार्ग में बरण (बुलन्दशहर) आदि नगरों को लूटता हुआ मथुरा की ओर बढ़ा। मथुरा की रक्षा केलिए महावन में कुलचन्द्र नामक नरेश ने, जिसकी पहिचान कोकल्ल कलचुरि से कीजातीहै [५], विशाल सेना लेकर घोर युद्ध किया। किन्तु पराजित होकर उसे आत्महत्या करनीपड़ी [६]।

मथुरा के मन्दिरों को नष्टभ्रष्ट करके महमूद के हाथ अपार धनराशि लगी [७]। कन्नौज का प्रतिहारनरेश राज्यपाल बिना युद्ध किए भागगया [८]। कन्नौज के दुर्गों को तोड़कर तथा मन्दिरों को नष्टभ्रष्ट करके महमूद ने अपार धनराशि लूटी। और नर - नारियों को बन्दी बनाया [९]।

सरसावा - नरेश चन्द्र

लूट की सामग्री लेकर महमूद यमुना - उपत्यका से होकर उत्तर की ओर बढ़ा।

१- २- हबीब — सुलतान महमूद आव गजनिन, पृ० ३६

३- तारीख यामिनी, ईलियट तथा डौसन — हिस्टरी आव इण्डिया, जि० २, पृ० ४८

४- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० १३

५- होडीवाला — स्टडीज इन इण्डो - मुसलिम हिस्टरी, पृ० १४७

६- तारीख यामिनी, ईलियट तथा डौसन, जि० २, पृ० ४३

७- तारीख-यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ४४-४५

८- तारीख-यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ४५

९- तारीख-यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ४६

हिमालय की तलहटी से होकर जानेवाला मार्ग, मथुरा-थानेश्वर से होकर जानेवाले मार्ग की अपेक्षा अधिक सुरक्षित था। इसलिए लूट की करोड़ों दीनार मूल्य की सामग्री को सुरक्षित रूप में गजनी पहुँचाने केलिए महमूद ने इसी मार्ग को पकड़ा।

सरसावा में राजा चन्द्र अपनी विशाल सेना लेकर महमूद से भिड़ने को प्रस्तुत था। किन्तु शाही राजकुमार भीमपाल के परामर्ष पर वह अपनी गजसेना और कोष को लेकर एक ऐसे ऊँचे पर्वतीय स्थान पर चलागया, जो सरसावा से १५ फरसख दूर था। तथा जिसका पत्थरों से भरा मार्ग कांटेदार झाड़ियों के घने वन से होकर जाताथा [१]।

जिस पर्वतीय स्थान पर राजा चन्द्र ने शरण लीथी, उसका निश्चित पता लगाना कठिन है। महमूद के समकालीन अलबरूनी ने भारतीय योजन केलिए फरसख शब्द का प्रयोग कियाहै [२]। फ़्लीट ने समस्त उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर सिद्ध कियाहै कि बड़ा योजन ८ १२६/१९८ मील का तथा छोटा योजन ४ ८३/१७६ मील का होताथा [३]। छोटा योजन लेने पर उस स्थान की दूरी सरसावा से ६६ मील होनीचाहिए। अस्तु उस स्थान को कालसी के आसपास मानसकतेहैं। लूट की बहुमूल्य सामग्री को लेकर पर्वतों के अँचल में दूर तक प्रवेश करना महमूद केलिए सम्भव न था। इसलिए प्रस्तुत प्रसँग में फरसख की समानता बड़े योजन से नहीं होसकती।

सरसावा दुर्ग में एकत्रित बहुत - सी भोज्यादि सामग्री और धनराशि को अपने अधिकार में लेकर महमूद ने राजा चन्द्र का पीछा किया [४]। कांटेदार झाड़ियों के वन और पथरीली भूमि को पार करके महमूद ने अपनी सेना के साथ सँ १०७६ के माघमास (6 जनवरी 1019) में अर्द्ध रात्रि से पूर्व राजा चन्द्र के शिविर के पास पहुँचकर सहसा आक्रमण करदिया। राजा चन्द्र के अधिकांश सैनिक या तो मारेगए अथवा बन्दी बना लिएगए [५]।

शवों को टटोलकर आभूषण और धन आदि एकत्रित करने में महमूद की सेना को पूरे तीन दिन लगगए [६]। राजा चन्द्र के सभी हाथियों को पकड़लियागया। लूट में प्राप्त सोना, चांदी, लाल और मोतियों का मूल्य ३०००,००० दिरहम आंकागया [७]। ७५०,००० नर - नारी बन्दी बनाएगए। बन्दियों का पांचवां भाग, जो सय्यदों को दिया गया, उसमें १५०,००० व्यक्ति थे [८]। इन बन्दियों को गजनी में दो से लेकर दस दिरहम की दर से दास - व्यापारियों के हाथ बेचागया। यवरोनहर, ईराक और खुरासान दास दासियों से भरगए। गोरे और काले, धनी और दरिद्र, सभी को एक साथ दासता में बँधनापड़ा [९]।

१- तारीख-यामिनी, ईलियट तथा डोसन, जि० २, पृ० ४९

२- होडीवाला – स्टडीज इन इण्डो - मुसलिम हिस्टरी, पृ० X

३- जौ० रा ए० सो०, १९१२, पृ० २३६ - ३७, उ० होडीवाला—पूर्वोक्त, पृ० X

४- ६- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ४९

७- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ५०

८- तारीख - इ - अल्फी, उ० पूर्वोक्त, पृ० ५० टि०

९- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ५०

इतने अधिक व्यक्तियों के बन्दी बनाएजाने से पताचलताहै कि उनदिनों उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग, भाबरप्रदेश में घनी जनसँख्या थी। सहसा घेरलिए जाने से जनता को भागकर या लड़कर अपनी रक्षा करने का अवसर नहीं मिला। मैदानी भाग से भागकर पर्वतीय प्रदेश में छिपेहुए तथा भाबरप्रदेश के गांवों में बसे व्यक्तियों को एकसाथ बन्दी बनालियागया।

उस अभागे दिन से लेकर रुहेलों और गोरखा-आक्रान्ताओं के समय तक, उत्तराखण्ड के दक्षिणी भागों के भाग्यहीन निवासियों को, निरन्तर इसीप्रकार, बन्दी बनाकर बेचाजातारहा।

शाही राजकुमार भीमपाल

महमूद के लौटजाने पर शाहीनरेश त्रिलोचनपाल और उसके पुत्र भीमपाल ने सम्भवत: भोज परमार और विद्याधर चन्देल की सहायता से अपने राज्य के पूर्वी भाग और राजा चन्द्र के राज्य पर अधिकार करलिया। सम्भवत: उत्तराखण्ड के धुर दक्षिण-पश्चिमी भाग पर, अल्पकाल केलिए शाहीनरेश का अधिकार होगयाथा।

कन्नौज के प्रतिहारनरेश राज्यपाल ने बिना युद्ध किए महमूद की अधीनता स्वीकार करलीथी। जिससे महमूद की सेना बेरोकटोक कन्नौज तक पहुँचकर चन्देल आदि राज्यों केलिए सँकट उत्पन्न करसकतीथी। राज्यपाल की इस कायरता से उत्तेजित होकर चन्देलनरेश विद्याधर ने उसका वध करवादिया [१]। अपने सामन्त की हत्या करनेवाले विद्याधर को दण्डदेने केलिए महमूद ने सँ० १०७७ (1020) में पुन: उत्तरभारत पर आक्रमण किया [२]।

हिमालय की तलहटी से होकर महमूद आगे बढ़ा। यमुना के पूर्वीतट पर त्रिलोचनपाल और उसके पुत्र भीमपाल ने अपनी सेना लेकर महमूद को रोकने का अन्तिम प्रयत्न किया [३]। यहां नदी में बड़ा वेग था। तथा उसकी तलहटी कीचड़ से भरीथी [४]। इससे अनुमान लगताहै कि इस स्थान पर यमुना भाबर से मैदान में उतरतीथी। महमूद के सैनिकों मेंसे कुछने मसकों पर, तथा कुछने तैरकर नदी को पार किया। युद्ध में त्रिलोचनपाल हारगया [५]। उसने भागकर अपने मित्र विद्याधर चन्देल के पास पहुँचनाचाहा, किन्तु मार्ग में मारडालागया [६]। सारे शाहीराज्य पर महमूद ने अधिकार करलिया [७]। त्रिलोचनपाल का राज्यहीन पुत्र भीमपाल अजमेर-नरेश की शरण में चलागया, और पांच वर्ष पश्चात् मरा [८]।

१-२- स्ट्रगल फोर एम्पायर, पृ० १७

३- तारीख-यामिनी; ईलियट तथा डौसन — जि० २, पृ० ४१

४- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ५०

५- तारीख - यामिनी, पूर्वोक्त, पृ० ५१

६- स्ट्रगल फोर एम्पायर, पृ० १७

७- हबीब — सुलतान महमूद आव गजनिन, पृ० ४७

८- हबीब — पूर्वोक्त, पृ० ४७

शाहीनरेशों ने पच्चीस वर्ष तक सुबक्तिगिन और महमूद से भिड़कर देश को मुसलिम - दासता से बचाने का प्रयत्न कियाथा। ये नरेश उच्च आदर्श और उत्तम स्वभाव वाले थे। विशाल राज्य का स्वामी होने पर भी उनमें अहँकार न था। वे सदा भले और न्यायोचित कार्यों केलिए तत्पर रहतेथे[१]। कल्हण ने शाहीराज्य के पतन का हृदयद्रावक वर्णन कियाहै[२]।

विद्याधर को बिना किसीप्रकार की हानि पहुँचाए, महमूद को लौटनापड़ा। अगले वर्ष सँ० १०७९ (1022 - 23) में महमूद ने ग्वालिथर होकर कालिंजर तक छापा मारा, किन्तु उसे विशेष सफलता न मिली[३]। सँ० १०८२ (1025-26) में महमूद ने सोमनाथ के मन्दिर को नष्टभ्रष्ट करके लूट में अपार धनराशि प्राप्तकी, जिसे वह बड़ी कठिनाई से गजनी पहुँचासका[४]।

लूट - मार की परम्परा— महमूद ने सारे शाहीराज्य को अपने राज्य में मिला लियाथा, जिसका शासन उसका सूबेदार लाहौर से करताथा। महमूद ने मध्यएशिवा के भूखे - नँगे लोगों केलिए इस सम्पन्न और उपजाऊ देश में लूट - मार मचाने का द्वार खोलदियाथा। सँ १०८७ (1030) में महमूद की मृत्यु होगई। उसके उत्तराधिकारियों ने अपने भारतीय राज्य पर अधिकार बनाएरखा। उनके राज्याधिकारी अवसर पाकर निरँतर पड़ोस के राज्यों में लूट - मार मचाते, मन्दिरों को नष्ट - भ्रष्ट करते एवँ नर - नारियों को बन्दी बनाकर पकड़लेजातेथे।

कलचुरिनरेश गाँगेयदेव

सँ० १०९१ (1034) में लाहौर का शासक नियालतिगिन सहसा बनारस पर छापा मारकर अपार सम्पत्ति लूटलेगया[५]। इस पर बनारस के कलचुरिनरेश गांगेयदेव ने उसीप्रकार सहसा बढ़कर कीरदेश (कांगड़ा) पर छापा मारा, जिस पर मुसलमानों का अधिकार चलाआताथा[६]। सँ० १०९३ (1036) में मसूद ने हांसी पर अधिकार करलिया[७]। तथा सोनपत और डेरा (डेरागोपीपुर ?) के राजा राम से कर वसूल किया[८]।

कलचुरिनरेश कर्ण

अगले वर्ष सँ० १०९४ (1037) में कलचुरिनरेश कर्ण ने अपने विजय-अभियान

१- अल वरूनी, (साचू), जि० २, पृ० १३

२- राजतरङ्गिणी,

३- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० १८

४- हबीब — सुलतान महमूद आव गजनिन, पृ० ५८

५- ६- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ९१

६- तारीख - इ - सुबक्तिगिन, ईलियट तथा डौसन — जि० २, पृ० १२९

७- ८- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ९३

में पश्चिम की ओर बढ़तेहुए कीरदेश (कांगड़ा) में मुसलमानों को परास्त किया [१]। उत्तर-भारत को मुसलमानों की दासता से मुक्तकरने केलिए उसने दिल्ली के तोमरनरेश, परमार नरेश भोज तथा चाहमाननरेश अन्नहिल्ल का साथ दियाथा [२-३]।

परमारनरेश भोज

शाहीनरेशों की सहायता—परमारनरेश भोज ने, जिसका राज्यकाल सँ० १०५७ से १११२ (1000 से 1055) तक मानाजाताहै, सँ० १०६५ (1008) में महमूद गजनी के विरुद्ध शाहीनरेश आनन्दपाल की सहायता - हेतु सेना भेजीथी [४]। सँ० १०७६ (1019) में जब महमूद से पराजित होकर त्रिलोचनपाल अपना सर्वस्व खोबैठा तो भोज ने उसे आश्रय दियाथा [५]। सम्भवतः भोज और विद्याधर चन्देल की सहायता से त्रिलोचनपाल ने अन्तिम बार अपने राज्य के पूर्वी भाग पर अधिकार कियाथा।

स्वातन्त्र्य-संघर्ष— दिल्ली के तोमरनरेश, परमार भोज, कलचुरि कर्ण और चाहमान अन्नहिल्ल ने उत्तरभारत को मुसलमानों की दासता से मुक्तकरने केलिए जो सँगठित प्रयत्न कियाथा, उसमें भोज और कर्ण का योगदान सबसे अधिक था। एक गहड़वाल - अभिलेख से विदित होताहै कि इन दोनों वीरों ने हिन्दुनरेशों से कर (तरुष्कदण्ड) वसूल करनेवाली और नगर - ग्रामों पर भीषण अत्याचार करनेवाली मुसलिमसेना से गँगा-उपत्यका का परित्राण कियाथा [६]।

यमुना पार करके भोज और उसके सहयोगियों की सेना ने हांसी, थानेश्वर, नगरकोट आदि दुर्गों में टिकी मुसलिमसेना को मार - भगाकर पँजाब के बड़े भाग को स्वतन्त्र करदिया। नगरकोट में भव्यमन्दिर का निर्माण करके देवमूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा कीथी [७]। हिन्दुसेना ने लाहौरदुर्ग को भी, जहां महमूद के उत्तराधिकारियों की राजधानी थी, घेरलिया। किन्तु कुछ समय के पश्चात् उसने घेरा उठालिया। और लाहौर से पश्चिम की ओर के प्रदेश को मुक्तकरने का कोई प्रयत्न नहीं किया [८]।

१- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ६२

२- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ९६

३- दशरथ शर्मा — अर्लि चौहान डाइनेस्टीज, पृ० १२६

४- ५- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ६७

६- 'याते श्री भोजभूपे बिबुध - वरवधू - नेत्रसीमातिथित्वम्,
श्रीकर्णे कीर्तिशेषं गतवति च नृपे क्ष्मात्यये जायमाने।
भर्तारं यं धरित्री त्रिदिवविभुनिभं प्रीतियोगादुपेता,
त्राता विश्वासपूर्वं समभवदिहा स क्ष्मापतिश्चन्द्रदेवः॥,
— बसही - ताम्रशासन, उ० त्रिपाठी—हिस्ट्री आव कन्नोज, पृ० २९४

७- ८- हबीब — सुलतान महमूद आव गजनिन, पृ० १०६

उत्तराखण्ड पर प्रभाव-विस्तार— उदययुर - प्रशस्ति के अनुसार परमार भोज के राज्य का विस्तार दक्षिण में मलयगिरि से लेकर उत्तर में कैलासपर्वत, उत्तराखण्ड में रुद्रहिमाल तक था [१]। उसी प्रशस्ति से विदित होताहै कि भोज ने केदारनाथ, रामेश्वर, सोमनाथ, कुण्डीर (कश्मीर में कपटेश्वरकुण्ड), महाकाल (उज्जैन), अनल (ज्वालामुखी, कांगड़ा) तथा रुद्रनाथ में मन्दिरों का निर्माण कियाथा [२]। उनदिनों उत्तराखण्ड के केदारनाथतीर्थ की बड़ी मान्यता थी। देवपाल के राज्याधिकारियों की केदारनाथयात्रा का उल्लेख पहले होचुकाहै। इससे विदित होताहै कि उत्तराखण्ड के समकालीन नरेश ने उत्तरभारत के इस महान् नरेश के प्रति उपायनादि देकर अपनी श्रद्धा व्यक्त कीथी।

गढ़वाल के नरेशों की धारणा है कि उनका पूर्वपुरुष एक पँवार था, जो सँ० ८४५ (788) में धारानगरी से गढवाल में आयाथा [३]। इस सम्बन्ध में इस ग्रन्थ के अगले भाग में विचार कियाजाएगा। सम्भवतः केदारनाथमन्दिर के शिलालेखों के प्रकाशन से इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश पड़सकेगा।

पांडित्य— महान् वीर होनेके साथ ही भोज महान् विद्वान् एवँ दानी था। उसने संस्कृत में विभिन्न विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना कीथी [१]। उसके द्वारा रचित प्राकृतकाव्य कूर्मशतक शिलाओं पर खुदाहुआ मिलाहै। उसने धारानगरी में सरस्वती-कण्ठाभरण नामक पाठशाला की स्थापना कीथी, जिसे तोड़कर मुसलमानों ने कमालमौला नामक मसजिद का निर्माण किया [४]। वह विद्वानों और कवियों का आश्रयदाता था।

पुनः दासता— लाहौर से पश्चिम की ओर का सारा प्रदेश मुसलमानों के अधीन रहगया। देश के शेष भाग में सारे देश की स्वतन्त्रता की सुरक्षा-हेतु कोई देशव्यापी सँगठित जाग्रति उत्पन्न न हुई। हिन्दुनरेश अपने पड़ोसियों से लड़भिड़कर अपनी और उनकी शक्ति नष्ट करतेरहे। फलतः आठ ही वर्ष पश्चात् लाहौर के शासक पुनः हिन्दुराज्यों पर छापे मारनेलगे।

सँ० ११०८ (1051) में नगरकोट पर मुसलमानों ने पुनः अधिकार करदिया [५]। आठ वर्ष के अन्दर अजुधान (पाकपट्टन), रूपाल (?), उसीके पास दरह (जि०

१- 'आ कैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयादा - भुक्त्वा पृथ्वीं पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन।'
— उदयपुर - प्रशस्ति, पं० १८ - १९

२- 'केदाररामेश्वरसोमनाथकुण्डीरकालानलरुद्रसत्कैः,
सुराश्रयैर्व्याप्य च य समन्तात् यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार।;' — उदयपुर - प्रशस्ति, पं० २१-२२

३- 'शायकाब्धि नव सम्मितवर्षे विक्रमस्य विधुवंशजपूज्यः।
श्रीनृपः कनकपाल इहाप्तः शौनकर्षिकुलजः प्रमरोऽयम्॥' — चांदपुरगढ़ी का शिलालेख

४- ओझा — राजपूताने का इतिहास, जि० १, खंड १, पृ० २१३

५- लतीफ — हिस्टरी आव पंजाब, पृ० ८९ ६- लतीफ — पूर्वोक्त, पृ० ९०

होशियारपुर ?), जालन्धर, सरहिन्द, धँगन और स्रुघ्न के पास बुडिया तक का प्रदेश मुसलमानों के हाथ में आगया [१]। सँ० ११३२ (1075) में आगरा, कन्नौज, उज्जैन और कालिंजर लूटेगए [२]।

चाहमाननरेश विग्रहराज चतुर्थ

शाकम्भरीनरेश अर्णोराज ने अजमेर के निकट मरुदेश से धावा मारनेवाले तुरुष्कों (तुर्कों) का विनाश कियाथा [१]। उसके पुत्र विग्रहराज ने, जिसका राज्यकाल सँ० १२०८ से १२२४ (1151 से 1167) तक मानाजाताहै [२], दिल्ली, हांसी और पूर्वीपँजाब के कुछ भागों पर अधिकार करके मुसलमानों के छापों को रोकदिया। यमुना की पूर्वी और पश्चिम उपत्यकाओं के तोमरनरेश ने उसकी अधीनता स्वीकार करली [३]।

पूर्वी पँजाब के, हिंसार, सरहिन्द और अम्बाला तक के अनेक क्षेत्रों को, जिन पर मुसलमानों का अधिकार था, उसने मुक्त करदिया। मुसलमानों को मार-भगाने के उसके सद्प्रयत्न में मध्यदेश के अनेक नरेशों ने धन-जन से उसकी सहायता की [४]। सँ० १२२० (1163) में अँकित उसके शिवालिक स्तम्भलेख से विदित होताहै कि उसने हिमालय और विन्ध्याञ्चल के बीच म्लेच्छों का विच्छेदन करके आर्यावर्त को पुनः यथार्थरूप में आर्यावर्त बनादियाथा [५]।

उसका राज्य दक्षिण में मालवा से लेकर उत्तर में अम्बाला, सहारनपुर के भावर-प्रदेश और शिवालिक श्रेणी तक फैलाहुआथा। शिवालिकस्तम्भ, जिस पर उसके तीन सबसे महत्वपूर्ण शिलालेख हैं, पहले शिवालिकश्रेणी के पदतल में स्थापित होनेसे निश्चित है कि उत्तराखण्ड की धुरदक्षिणी पट्टी पर उसका अधिकार था। हिमालय और विन्ध्यांचल के मध्यवर्ती प्रदेश के अनेक शक्तिशाली नरेशों के समान उत्तराखण्ड के समकालीन शासकों ने उपायनादि देकर अपने इस शक्तिशाली एवँ स्वतन्त्रता के रक्षक पड़ोसी का अभिनन्दन कियाहोगा [६]।

१- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ६५
२- दशरथ शर्मा – अर्लि चौहान डाइनेस्टीज, पृ० ४४
३- दशरथ शर्मा – पूर्वोक्त, पृ० ५६
४- ५- दशरथ शर्मा – पूर्वोक्त, पृ० ६०
६ ' आविन्ध्यादाहिमाद्रे र्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगात्
उद् ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषुविनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छविच्छेदनाभिः
देवः शाकंभरीन्द्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः ॥ ' – शिवालिक - स्तम्भलेख, पं० १
७- ' ब्रूते सम्प्रति चाहमानतिलकः शाकम्भरीभूपतिः
श्रीमद् विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मजान्।
अस्माभि करदं व्यधायि हिमवत् विन्ध्यान्तरालं भुवि,
शेषस्वीकरणायमास्तु भवतांमुद्योगशून्यं मनः ॥ '
— शिवालिक - स्तम्भलेख, इण्डियन ऐंटीक्वायरी, जि० १९, पृ० ३१८

परमार भोज के समान विग्रहराज भी स्वयँ विद्वान् था तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। भोज के समान उसने भी अजमेर में एक सँस्कृत विद्यालय की स्थापना कीथी, जिसे तोड़कर मुसलमानों ने 'ढाई दिन का झोंपड़ा' नामक मसजिद में परिवर्तित करदिया[१]।

चाहमाननरेश पृथ्वीराज तृतीय

पृथ्वीराज तृतीय को सँ० १२३४ (1177) में अजमेर का सिंहासन प्राप्त हुआ। अगले ही वर्ष मुहम्मद गोरी ने मुलतान और ऊच होकर गुजरात पर आक्रमण किया। किन्तु उसे पराजित होकर भागनापड़ा। सँ० १२३५ (1178) मुहम्मद गोरी ने अन्तिम यामिनी अमीर को पराजित करके पँजाब पर अधिकार करलिया। पृथ्वीराज के राज्य की पश्चिमी सीमा हिसार, अम्बाला और सरहिन्द तक फैलीथी[२]। उससे आगे मुहम्मद गोरी का राज्य था।

पूर्व की ओर पृथ्वीराज का राज्य मेरठ कमिश्नरी के बड़े भाग पर तथा आगे रामगँगा तक चलागयाथा[३]। गँगा - यमुना - द्वाब पर सहारनपुर - देहरादून के भाबरप्रदेश तक तोमरराज्य था[४]। तोमरनरेशों ने चौहाननरेशों की अधीनता स्वीकार करलीथी[५]। तोमरराज्य के उत्तर की ओर उत्तराखण्ड में कत्यूरीनरेश और उनके सामन्तों का अधिकार था।

मुहम्मद गौरी ने सरहिन्द के दुर्ग पर अधिकार करके सँ० १२४८ (1191) में विशाल सेना लेकर पृथ्वीराज के राज्य पर आक्रमण करदिया। थानेश्वर से १४ मील की दूरी पर तराइन के मैदान में भीषण युद्ध हुआ। पराजित होकर मुहम्मद गोरी की सेना में भगदड़ पड़गई। घायल होकर मुहम्मद गोरी को भी भागनापड़ा। पृथ्वीराज ने सरहिन्द के दुर्ग पर पुन: अधिकार करलिया। किन्तु भागतीहुई शत्रुसेना का पीछा करके लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं किया[६]।

विजय के पश्चात् पृथ्वीराज फिर अपने हिन्दू पड़ोसियों से युद्ध करके अपनी और उनकी सेना, शक्ति और जन - धन को नष्ट करने में व्यस्त होगया। किन्तु दूसरे वर्ष सँ० १२४६ (1192) में मुहम्मद गोरी ने पूरी तय्यारी करके पुन: पँजाब पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज का मन्त्री शत्रु से मिलगया[७]। उसके दो सेनापति युद्ध में न पहुँचसके[८]। मुहम्मद गोरी ने सन्धि का बहाना करके रात्रि में छिपकर अपनी सेना को पृथ्वीराज के शिविर के पीछे पहुँचादिया। पहले तो पृथ्वीराज की सेना ने शत्रु को खदेड़दिया[९]। किन्तु दूसरी बार के आक्रमण में पृथ्वीराज बन्दी बनालियागया और अन्त में मारडालागया। अजमेर और दिल्ली पर मुसलमानों का अधिकार होगया[१०]।

१- दशरथ शर्मा – अर्लि चौहान डाइनेस्टीज, पृ० ६३
२- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० १०६
३- ४- दशरथ शर्मा – मानचित्र
५- एज आव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० १११
६- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ११०
७-१०- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० १११ - १२

दासता का प्रसार— मुहम्मद गोरी अपने भारतीय राज्य की रक्षा का भार कुतुबुद्दीन को सौंपकर गजनी लौटगया। कुतुबुद्दीन ने शीघ्र ही मेरठ पर अधिकार करलिया [१]। सँ० १२५१ (1194) में कोल (अलीगढ़) तथा बनारस पर [२], सँ० १२५३ (1196) में ग्वालियर पर [३], सँ० १२५४ (1197) में नहरवाल पर [४] तथा सँ० १२५९ (1202) में कालिंजर पर मुसलमानों का अधिकार होगया [५]।

शीघ्र ही गँगाजी के पार कटेहर, बदाऊँ, चन्दावर और कन्नौज कुतुबुद्दीन के अधिकार में आगए [६]। सँ० १२५७ (1200) के लगभग बखतियार खिलजी ने अवध से पूर्व के भागों पर छापा मारकर लूटमार मचानी आरम्भ करदी। उसने ओदन्तपुरी के बौद्ध विहार को जलाकर नष्ट करदिया। और भिक्षुओं को मारडाला। उसने सहसा छापा मारकर नदिया पर अधिकार करलिया और बँगाल के बड़े भाग को जीतडाला। सँ० १२८० (1223) में नेपाली विजेता क्राचल्लदेव ने उत्तराखण्ड पर अधिकार करलिया। इस तिथि तक सारे उत्तरापथ पर, हिमालय और विन्ध्यांचल के मध्य के प्रदेश पर मुसलमानों का अधिकार होगयाथा।

पर्वतों की शरण— महमूद गजनी ने उत्तरापथ की समृद्धि, शान्ति और शासन-व्यवस्था को सर्वथा नष्ट करदियाथा। ग्रामों, नगरों, दुर्गों, प्रासादों और मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट करके वह अरबों रुपए मूल्य की सम्पत्ति लूटलेगयाथा। उसके आक्रमणों से उत्तरापथ के नरेशों की सैनिकशक्ति नष्ट होगई। अनेक राजवँशों का उच्छेदन होगया।

आक्रान्ताओं के मार्ग में पड़नेवाले प्रदेशों की जनता का अधिकांश या तो बन्दी बनाकर गजनी लेजायागया, या मारडालागया अथवा आतँकित होकर अपनी भूमि छोड़कर सुरक्षित क्षेत्रों में शरणलेने को वाध्य होगया। सर्वत्र घोर अराजकता छागई। व्यापार कला - कौशल और आर्थिक सम्पन्नता नष्ट होगई। सामाजिक ढांचा बिखरगया।

महमूद ने हिन्दुओं को धूल के कणों के समान चारों ओर बखेरदिया [६]। हिन्दु-नरेशों, विद्वानों, नगरों, मन्दिरों तथा प्रासादों की गाथा - मात्र शेष रहगई [७]। विद्वान् और कलाकार भागकर कश्मीर, बनारस और अन्य स्थानों में, जहां महमूद का विनाशकारी हाथ नहीं पहुँचाथा, शरणलेनेको वाध्य होगए [८]।

महमूद गजनी से लेकर बखतियार खिलजी तक, और उससे आगे भी, मुसलिम राज्यकाल में, अत्याचारों की निरन्तर पुनरावृत्ति होतीरही। आक्रान्ता नगर-

---

१- ताजुलमसीर—ईलियट तथा डौसन जि० २, पृ०२१७
२- ताजुलमसीर – पूर्वोक्त, पृ० २२०-२१
३- ताजुलमसीर, पूर्वोक्त, पृ० २२५
४- ५- ताजुलमसीर, पूर्वोक्त, पृ० २२६
६- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० १२१
७- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० १२३
८- अल बरूनी, (साचू), जि० १, पृ० २२

ग्रामों पर अग्नि धधकाते, लूट - मार मचाते, प्रासादों, मन्दिरों और मूर्तियों का विध्वंस करते, गायों की हत्या करते, नारियों को पकड़कर उनका बलपूर्वक सतीत्वहरण करते, बड़ी आयु के पुरुषों की हत्या करके बालकों और युवती नारियों को मुसलमान बनाते तथा अधिक से अधिक व्यक्तियों को पकड़कर दास - दासी बनाकर हांक लेजातेथे। जो अभागे आक्रान्ताओं के हाथ में पड़ते उन्हें अपनी भूमि, परिवार तथा धार्मिक मान्यताओं को त्यागकर विदेश में दासता का नारकीय जीवन बिताने केलिए वाध्य होनापड़ताथा।

जनता इतनी आतंकित होगई कि वह मुसलमानों के हाथ में पड़ने की अपेक्षा अपने परिवार के व्यक्तियों की हत्या करके, बालकों और नारियो की अग्नि में आहुति देकर स्वयं वीरतापूर्वक लड़तेहुए अथवा किसी भी प्रकार से आत्महत्या करना श्रेयस्कर समझने लगी। सैनिकों को भी मुसलमानों के हाथ में पड़कर बन्दी बनने की अपेक्षा भागकर प्राण बचाना अथवा आत्महत्या करलेना श्रेयस्कर दिखाईदेनेलगा। अनेक युद्धों में मुसलमानों की विजय का मुख्य कारण उनका यही भीषण आतंक था।

ग्यारहवीं शती ईसवी से ही उत्तरभारत में ऐसी स्थिति उत्पन्न होनेलगी जिससे विवश होकर अगणित हिन्दुओं को अपनी भूमि छोड़कर पर्वतों की शरण लेनीपड़ी। मठ - मन्दिरों में रहनेवाले शान्तिप्रिय, विद्यानुरागी एवं तपस्वी भिक्षु, सिद्ध, नाथ, साधु - महात्मा और विद्वानों को पर्वतों के अंचल में जीवन बिताने केलिए वाध्य होनापड़ा। हिमालय की श्रेणियों पर बसी अनेक जातियों में आज भी अपने शरणार्थी पूर्वजों के आगमन की धुन्धली स्मृति चलीआतीहै। हिमालय की श्रेणियों की अनेक छोटी - बड़ी ठकुराइयों की स्थापना इसी समय हुई।

उत्तराखण्ड के परवर्ती कत्यूरीनरेशों की शक्ति और शासितप्रदेश सीमित थे। फिर भी मैदान से भागकर आनेवाली जनता, सैनिक, विद्वान्, कलाकार, मूर्तिनिर्माता आदि को आश्रय देकर उन्होंने हिन्दुजाति और राष्ट्र की महान् सेवा कीथी।

वैद्यनाथ का कत्यूरी-राजवंश

सामग्री का अभाव— सँ० १०५७ (1000) के आसपास नरसिंहदेव कत्यूरी ने अपनी राजधानी कार्तिकेयपुर से हटाकर बैजनाथ में स्थापित कीथी। सँ १२४८ (1191) में अशोकचल्ल ने कत्यूरीनरेशों के सारे शासितप्रदेश पर, जो सम्भवतः नेपाल में डोटी से लेकर पश्चिम में यमुना-उपत्यका तक फैलाथा, अधिकार करलिया। अशोकचल्ल के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में वैद्यनाथ के समकालीन कत्यूरीनरेश ने पुनः अपनी भूमि पर अधिकारकरने का प्रयत्न कियाथा, जिसे सँ० १२८० (1223) में क्राचल्लदेव के आक्रमण ने विफल करदिया। किन्तु लगभग आधीशती के अन्दर कत्यूरीवंश में उत्पन्न कतिपय महत्वाकांक्षी व्यक्तियों ने पुनः अपने पूर्वजों की भूमि में डोटी और कुमाऊँ के अन्तर्गत कतिपय लगभग स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना करदी।

सँ० १०५७ से १२४८ (1000 से 1191) तक की लगभग दो शतियों के इतिहास केलिए प्रामाणिक सामग्री का सर्वथा अभाव है। इस अवधि में हुए वैद्यनाथ के कत्यूरीनरेशों के जिन अभिलेखों का पताचलाहै, वे अभिलेख अभीतक प्रकाशित नहीं हुएहैं। इन अभिलेखों के सँवतों को कुछ विद्वान् विक्रमसँवत् मानतेहैं, तथा कुछ शकसँवत्। दोनों सँवतों में १३५ वर्ष का अन्तर होनेसे घटनाक्रम के निर्णय केलिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

वैद्यनाथ के कत्यूरीनरेशों की अबतक कोई मुद्रा नहीं मिलीहै। किसी समकालीन मध्यदेश के नरेश के अभिलेखों में उनका उल्लेख नहीं मिलता। न किसी साहित्यिक स्रोत से इन नरेशों के सम्बन्ध में कोई सूचना मिलतीहै।

डोटी, असकोट और पाली की कत्यूरीशाखाओं की वंशावलियों का सँग्रह कई शतियों पश्चात् कियागया। उनकी प्रामाणिकता सँदिग्ध है। उनमें कार्तिकेयपुर के कत्यूरी-नरेशों के नाम नहीं मिलते। उनमें परवर्ती कत्यूरीनरेशों के पूर्वजों की जो लम्बी सूचियां दीगईहैं, वे एक - दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि उनके आधार पर नरेशों का वंशानुगत सम्बन्ध निश्चितकरना अतिकठिन है।

वैद्यनाथ के कत्यूरीनरेशों मेंसे कुछके नाम लोकगाथाओं और जागरों में आतेहैं। किन्तु लोकगाथा और जागर उन नरेशों की धुन्धली स्मृति - मात्र हैं। केवल उन्हींके आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं का निर्णय नहीं होसकता। अबतक उपलब्ध समस्त सामग्री इतनी अल्प और अस्पष्ट है कि उसके आधार पर नरेशों की नामावली, वँशानुगत सम्बन्ध, राज्यावधि तथा राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का सही पतालगाना अतिकठिन है। इस विषय पर उत्तराखँड का इतिहास, भाग ५, कुमाऊँ का इतिहास, में पुनः विचार कियाजाएगा।

नरसिंहदेव

वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर— नरसिंहदेव ने अपनी राजधानी कार्तिकेयपुर से हटाकर वैद्यनाथ में स्थापित कीथी [१]। यद्यपि उसका अभीतक कोई अभिलेख नहीं मिलाहै किन्तु सम्भवतः वैद्यनाथ को वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर नाम उसीने दियाथा। वैद्यनाथ, वर्तमान बैजनाथ, अलमोड़ानगर से लगभग बीस मील पश्चिम की ओर गोमतीनदी के तट पर स्थित है। यहां सोमेश्वर, बागेश्वर और नन्दप्रयाग से मार्ग आकर मिलतेहैं।

यहां गोमती और सरयू की उपत्यकाएँ अति विस्तृत और रमणीक हैं। खुला स्थान, भूमि की उर्वरता, जल की सुविधा, कुछ दूरी पर पहाड़ों और सँकरे मार्गों की स्वाभाविक दुर्गबद्धता तथा नातिशीतोष्ण जलवायुवाली ऊँचाई का ध्यान रखकर कत्यूरी-नरेशों ने इस स्थान को अपनी राजधानी केलिए चुनाथा [२]।

एक परम्परा के अनुसार यहां राजधानी की स्थापना करने में कत्यूरीनरेश को पास के करवीरपुर नामक प्राचीन नगर के अवशेषों से बड़ी सहायता मिलीथी [३]। उसने प्राचीन नगर के खण्डहरों की शिलाओं आदि से अपनी राजधानी के भवनों का निर्माण कियाथा [४]। पौरवनरेशों के शासनों में करवीरगर्ता [५] का उल्लेख मिलताहै, जिसका अर्थ होताहै, करवीरगाड या करवीरपुर के निकट की लघुनदी। सम्भवतः पौरवनरेशों के राज्य-काल में करवीरपुर की समृद्धि किसी न किसी रूप में बनीहुईथी। कार्तिकेयपुर के कत्यूरी-नरेशों के राज्यकाल में नगर उजाड़होगया।

वैद्यनाथ में राजधानी बनालेने पर भी कत्यूरीनरेशों के विपत्ति के दिन नहीं टले। इस घाटी की अपेक्षाकृत आर्द्र एवँ गरम जलवायु में जोशीमठ के शीत जलवायु से आकर बसे नरेश निष्कर्मण्य बनगए। एक शती पूर्व तक कत्यूरउपत्यका की जनसँख्या बहुत कम थी। अलमोड़ा पर शासन करनेवाले चन्दवँशी नरेशों के राज्यकाल में इस उपत्यका को कालापानी समझाजाताथा। जिन अपराधियों को यहां बसायाजाताथा, वे निश्चय ही अल्पकाल में परलोक चलेजातेथे [६]।

१- राहुल – गढ़वाल, पृ० २- राहुल – कुमाऊं, पृ० २३५
३- ४- ओकले – होलि हिमालय, पृ० ६८ ५- द्युतिवर्मन् का शासन, पं० १८
६- 'The Chanda Rajas who reigned at Almora, are said to have been in

राज्यविस्तार — वैद्यनाथ में राजधानी की स्थापना होजानेसे कत्यूरीनरेशों का शासन राज्य के पश्चिमी भाग गढ़वाल पर ढीला पड़गया। किन्तु पूर्वी भाग, कुमाऊँ और डोटी पर कई शतियों तक बनारहा।

राहुल का अनुमान है कि ग्यारहवीं शती ईसवी के प्रारम्भ में थोलिङ् गुम्बा के बनवानेवाले तथा पश्चिमी तिब्बत गूगे (शुङ्-शुङ्) के नरेश येशे - ओद (ज्ञानप्रभ) के पुत्र देवभट्टारक नागराज का बाराहाट पर अधिकार होगयाथा [1]। यहां उसने एक बड़े बुद्धमन्दिर का निर्माण कियाथा, जिसकी अतिसुन्दर बुद्धप्रतिमा आज भी वहां दत्तात्रेय के नाम से पूजीजातीहै। मूर्ति के पादपीठ पर तिब्बती भाषा और अक्षरों में 'ल्ह - ग्चन् - नगरजइ थुब् - पा (देवभट्टारक नागराज के मुनि) लेख है [2]।

केवल इस मूर्ति के लेख के आधार पर ही इस प्रदेश पर तिब्बत के अधिकार की पुष्टि नहीं मानीजासकती। मूर्ति के पीठिकालेख में नागराज के उस प्रदेश पर अधिकार की कहीं चर्चा नहीं है। भारत में बनी सहस्रों मूर्तियां विदेशों में मिलतीहैं। जिनमेंसे कुछ पर लेख भी हैं। उन्हीं के आधार पर उन देशों पर भारत के अधिकार की कल्पना करना हास्यास्पद है।

राहुल ने लिखाहै कि मूर्ति के प्रभामण्डल में दमकते पीतल को सोना समझकर कोई काटलेगया [3]। यह असम्भव नहीं कि कोई सोने के लोभ में गूगे के किसी मन्दिर से इस मूर्ति को उठालायाहो [4]। अभीतक कोई ऐसा ठोस प्रमाण नहीं मिलाहै जिससे उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग पर दसवीं - ग्यारहवीं शती ईसवी में तिब्बत के अधिकार की पुष्टि होसके।

उत्तराधिकारी— नरसिंहदेव का नाम किसी वँशावली या अभिलेख में नहीं मिलता। डोटी, असकोट और पाली की वँशावलियों में कत्यूरीवंश के बिखराव से पूर्व के अन्तिम तीन नरेशो के नामो में कुछ समानता मिलतीहै। इन नरेशों मेंसे कुछको लोक - गाथाओं और जागरों में कत्यूरगढ़ (वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर) का राजा कहागयाहै। अस्तु जबतक कोई अन्य प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलती तबतक इनका अस्तित्व अस्थायीरूप से मानाजासकताहै :—

डोटी वँशावली [5]	असकोट वँशावली [6]	पाली वँशाबली [7]
	४५- प्रीतम	
३३- पिथियराजदेव	४६- धाम	५- धामदेव
३४- धामदेव	४७- ब्रह्मदेव	६- ब्रह्मदेव
३५- ब्रह्मदेव		

the habit of offering the criminals the option of suffering punish-
ment or exiling themselves to this valley, where they were certain
to die before long.' — ओकले — होलि हिमालय, पृ० ६६

१- २- राहूल — गढ़वाल, पृ० ३४६

३- राहुल — मेरी जीवनयात्रा, भाग २, पृ० ६२६

४- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० २८१

५- ७- राहुल — कुमाऊं, पृ० ४९

प्रीतमदेव

एक लोकगाथा के अनुसार प्रीतमदेव कत्यूरगढ़ (वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर) का कत्यूरीनरेश था [१]। उसके १० पूर्वजों के जो नाम गाथा से प्राप्त होतेहैं, उनमें नरसिंहदेव और कार्तिकेयपुर के कत्यूरीनरेशों के नाम नहीं मिलते [२]। इससे अनुमान लगताहै कि उसका जन्म कत्यूरी - राजवँश के किसी अन्य परिवार में हुआथा।

उसके दस पूर्वजों को भी लोकगाथा में राजा कहागयाहै [३]। कत्यूरीनरेश परम-भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर का विरुद धारण करतेथे। उनके शासनकाल में 'राजा' विरुद का प्रयोग राजवँश में उत्पन्न व्यक्ति या सामन्त - मात्र केलिए होताथा। इससे अनुमान लगताहै कि प्रीतमदेव के पूर्वज कार्तिकेयपुर के कत्यूरीनरेशों के अधीन सामान्य सामन्त या राज्याधिकारी थे। उनका सम्बन्ध भी कत्यूरीपरिवार से था। किन परिस्थितियों में प्रीतमदेव या उसके पूर्वज ने नरसिंहदेव से वैद्यनाथ का सिंहासन प्राप्तकिया, यह अज्ञात है।

राज्यविस्तार — लोकगाथा के अनुसार प्रीतमदेव का शासितप्रदेश विस्तृत था। उसकी सम्पत्ति अपार थी। सम्भवत: उत्तराखण्ड के बड़े भाग पर उसका अधिकार बना हुआथा। उत्तराखण्ड के धुर-दक्षिणी भाग, मायापुरहाट, हरिद्वार के आसपास के भाबरप्रदेश पर एक स्वतन्त्र पुण्डीर - राज्य की स्थापना होचुकीथी। देहरादून के भाबरप्रदेश पर पहले ही सरसावाराज्य का अधिकार होचुकाथा।

ग्यारहवीं शती के आरम्भ में पुण्डीरराज्य की स्थापना के सम्बन्ध में अभीतक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलेहैं। लोकगाथा के अनुसार प्रीतमदेव के राज्यकाल में मायापुर हाट पर अमरदेव पुण्डीर का अधिकार था। लोकगाथा में उसके जिन ११ पूर्वजों के नाम मिलतेहैं, वे कत्यूरी - वैभव के दिनों में कार्तिकेयपुर के कत्यूरीनरेशों के सामन्त रहेहोंगे। सुभिक्षराज के पश्चात् जब कत्यूरी - आतँक घटनेलगा तो उन्हें स्वतन्त्र बनने का अवसर मिलगया।

मोलादेइ से बिवाह— प्रीतमदेव की अनेक रानियां थीं। किन्तु कोई पुत्र न था। बुढ़ापे में उसने मायापुरहाट के पुण्डीरनरेश अमरदेव की पुत्री मोलादेई से बिवाह करनाचाहा। स्वतन्त्र नरेश होने पर भी अमरदेव कत्यूरीनरेश प्रीतमदेव की शक्ति से आतँकित रहताथा। यद्यपि उसकी जाति कत्यूरीराजपूतों की जाति से उच्च समझीजातीथी और वह अपनी सात वर्ष की पुत्री मोलादेई का बिवाह बूढ़े प्रीतमदेव से करने को प्रस्तुत न था, फिर भी कत्यूरीनरेश से भयभीत होकर उसे अपनी पुत्री का डोला भेजना ही पड़ा [४]।

मोलादेई ने बदरीनाथ की यात्रा कीथी। जोशीमठ में नृसिंह की उपासना से उसने एक पुत्र प्राप्त कियाथा, जिसका नाम दूला धामदेव रखागया [५]।

१- ३- ओकले तथा गैरोला — हिमालयन फौकलोर, पृ० १२१

४- ओकले तथा गैरोला—पूर्वोक्त, पृ० १२२

५- ओकले यथा गैरोला — पूर्वोक्त, पृ० १२३

६- ओकले तथा गैरोला — पूर्वोक्त, पृ० १२४

धामदेव

लोकगाथा के अनुसार धामदेव बचपन से ही बड़ा पराक्रमी का। उसकी सौतेली माताओं द्वारा उकसाएजाने पर उसके पिता प्रीतमदेव ने धामदेव को पातलीदून के विद्रोही सामन्त से, जिसका नाम लोकगाथा के अनुसार जगस (यक्ष) समवा था, लड़ने भेजा। किन्तु समवा के परामर्श से धामदेव ने अपने पिता प्रीतमदेव को मारकर उसके सिंहासन पर अधिकार करलिया [१]।

धामदेव के सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। ओकले के अनुसार उसके और वीरदेव के राज्यकाल से कत्यूरीराज्य का विघटन होनेलगाथा [२]।

ब्रह्मदेव

तीनों कत्यूरी - वंशावलियों के अनुसार धामदेव का उत्तराधिकारी ब्रह्मदेव था। उसके सम्बन्ध में कुछ भी विदित नहीं है। उसने सम्भवतः पातलीदून के विद्रोही सामन्त समवा की सहायता से राज्य प्राप्त कियाथा। अनुमान लगताहै, उसके राज्यकाल में पातलीदून - भाबरप्रदेश उसके प्रभावक्षेत्र या अधिकार में था।

वीरदेव

ऐतिहासिकता— लोकगाथाओं के अनुसार वीरदेव कत्यूरीवंश का अन्तिम सार्वभौम नरेश था। उसकी मृत्यु के पश्चात् वंश का बिखराव होगया। इस नरेश का नाम किसी अभिलेख या वंशावली में नहीं मिलताहै। उसके अस्तित्व की पुष्टि किसी मुद्रा या साहित्यिक स्रोत से भी अभीतक नहीं हुईहै। उसके सम्बन्ध में अनेक अनुश्रुतियां प्रचलित हैं। क्रूर ग्रामदेवता के रूप में उसकी पूजा आजतक चलीआतीहै। इसलिए उसे ऐतिहासिक मानाजाताहै [३]। किन्तु उसके परवर्ती और पूर्ववर्ती नरेशों के नाम तथा उसकी राज्यावधि भी निश्चित रूप से नहीं बताईजासकती।

शासन — जागरों के अनुसार इस नरेश का विरुद 'महाराजन के राजा' अर्थात् महाराजाधिराज था [४]। इससे अनुमान लगताहै कि अपने पूर्वज कत्यूरीनरेशों के राज्य के पर्याप्त भाग पर अब भी उसका प्रभुत्व मानाजाताथा।

जागरों से पता चलताहै कि वीरदेव बड़ा साहसी, हटी और कर्मठ शासक था। उसे जिस कार्य को करने की धुन सवार होतीथी, उसे पूराकरके छोड़ताथा। उसने कुपित

१- ओकले तथा गैराला – हिमालयन फौकलोर, पृ० १२९

२- ओकले – होलि हिमालय, पृ०

३- ओकले – पूर्वोक्त, पृ०

४- 'महाराजन के राजा ! पेड़ों पर फल - फूल नि रहोण दिना।' — जागर

होकर अपने सामन्तों के ऊँचे गढ़ों को तुड़वाकर नीचा बनवादियाथा [१]। ऊँची-नीची पहाड़ी भूमि को खुदवाकर, तथा उसे समतल मैदान के समान बनवाकर उसने उसपर, ऊँचे गढों की स्थापना करवाईथी। और उसने अनेक गढ़ों को तोड़कर धरती पर गिरादियाथा [२]।

जागरों के अनुसार यह निरँकुश कत्यूरी महाराजाधिराज अपने मन-पसन्द की किसी भी वस्तु को प्रजा से छीनलेताथा। प्रजा द्वारा उगाएगए फल-फूलों को बिना मूल्य दिए अपने उपभोग केलिए मँगालेताथा[३]। उत्तम गायों और बकरियों को छीनलेताथा [४]। तथा किसी के भी घर में सुन्दर युवा नारी को देखकर बलपूर्वक उठालेजाताथा [५]। कहाजाताहै कि सामाजिक नियमों के विरुद्ध उसने अपनी मामी तिलोत्तमा को भी अपनी पत्नी बनालियाथा [६]।

कर-वसूली — प्रजा पर अनेक प्रकार के कर लगाएगएथे, जिन्हें राजा के कर्मचारी बड़ी कठोरता से वसूल करतेथे। वे उस घराट (पनचक्की) वाले से भी कर वसूल करतेथे, जो जल की कमी या अन्य कारणों से घराट को चालू नहीं करसकताथा [७]। दूधारू गायों पर भी कर देनापड़ताथा। राजकर्मचारी गायों के सूखजाने पर भी कर की वसूली करतेरहतेथे [८]।

बेगार—प्रजा से अनेक प्रकार की बेगार लीजातीथी। कर्मचारी प्रजा के साथ दास-दासियों के समान व्यवहार करतेथे। राजा के भोजनालय केलिए धान कूटना और आटा पीसना प्रजा का कार्य था। जिसका पारिश्रमिक कुछ नहीं दियाजाताथा। कूटने केलिए लोगों को धान देते समय नाली को उलटकर पेंदी की ओर से नापाजाता और कूटकर आने पर चावल को नापते समय नाली को सीधा करके नापाजाता। अर्थात् प्रजा के पास कूटने केलिए कम धान देकर उनके बदले अधिक चावल वसूल किएजातेथे [९]। प्रजा के पास पीसने केलिए दिएगए गेहूँ के आटे को सात चटाइयों से छानाजाता और उसकी माप भी इसीप्रकार कीजाती [१०]।

१- 'हंकारो, तुमारो बाबा ! जिस ऊंचा गढ़ नीचा बनाया !' — जागर

२- 'नीचा गढ़ ऊंचा बनाया, मार गढ़ मैदान बनाया !' — जागर

३- ५- 'हंकारो, तुमारो बाबा ! ... ...

... ... तरणी तिरिया र्‍होएए नि दिना !

बरुणी बाकरी र्‍होएए नि दिना !

महाराजन के राजा ! पेड़ों पर फल-फूल र्‍होएए नि दिना !' — जागर

६- 'मामी तिले धारी बोला' ! — लोकगीत ; राहुल – कुमाऊं, पृ० १००

७- ८- 'बांजा घट की भाग उघौनी, वांभी गै की दूध छीनी !' — जागर

९- 'हंकारो, तुमारो बाबा ! उल्टी नाली ले दिन्छा !

सुलटी नाली ले लिन्छा !' — जागर

१०- ओकले – होलि हिमालय, पृ० ९९-१००

राजा के भोजनालय केलिए जल आदि आवश्यक वस्तुएँ जुटाना भी प्रजा का कार्य समझाजाताथा। कौसानी के पास 'हथछिना' नामक एक झरना आजतक विद्यमान है। कहाजाताहै कि वीरदेव इस निर्झर से ताजा जल प्राप्त करने केलिए, निर्झर से अपने प्रासाद तक, तीन - चार मील लम्बे सारे मार्ग पर, प्रति दिन नर - नारियों को सीधी पंक्ति में खड़ा करवाताथा। ये लोग निर्झर का पानी कलसों में भरकर उसे एक हाथ से दूसरे हाथ में थमाते, राजा के प्रासाद तक पहुँचातेथे [१]।

हत्या— राजा की पालकी या डांडी ढोने का कार्य भी प्रजा का था। वीरदेव को विदित था कि प्रजा उससे रुष्ट है। उसकी पालकी ढोनेवाले उसे खड्ड में गिराकर उसकी हत्या न करदें, इस आशंका से वह पालकी ढ़ोनेवालों के कन्धों को बींधकर लोहे के कड़े पहनाताथा। तथा उन कड़ों के अन्दर पालकी के डण्डे फँसवाताथा। एक दिन पालकी ढोने की बारी ऐसे व्यक्तियों को मिली जो अपने प्राणों की चिन्ता न करके शेष प्रजा को राजा के अत्याचारों से मुक्तकरने केलिए कटिबद्ध थे। वे राजा की पालकी लेकर मार्ग में पड़नेवाले एक भेल में कूदपड़े। अपने वलिदान के द्वारा उन्होने प्रजा को कत्यूरी - अत्याचारों से मुक्तकरदिया [२]।

वीरदेव के अत्याचारों की गाथा में कितना तथ्य है, यह कहना कठिन है। यदि यह गाथा सत्य पर आधारित है तो वीरदेव की गणना इस प्रदेश के क्रूरतम नरेशों में होनी चाहिए। जोनराज के अनुसार जब डुल्च नामक मंगोल ने कश्मीर पर आक्रमण कियाथा तो उसने अगणित नर - नारियों के कन्धे और छाती के जोड़ पर बींधकर छेद में एक ही चाम की डोरी डालकर उन्हें इसप्रकार हांकना आरम्भ कियाथा कि वे अभागे एक-दूसरे का मुख भी नहीं देखसकतेथे [३]। बँगाल में लूटमार करनेवाले चाचिए, जिन लोगों को पकड़लेथे, उनके एक - एक हाथ में छेदकरके उनको एक ही रस्सी से बांधलेतेथे [४]। वीरदेव डुल्च से भी पहले जीवित मानवों को बींधकर जोतने का कार्य करचुकाथा।

परिवार का अन्त— अनुश्रुति के अनुसार वीरदेव कत्यूरीवंश का समापक था। किन्तु शिलालेखों एवं अन्य प्रमाणों से विदित होताहै कि वीरदेव के पश्चात् भी कत्यूरीनरेशों का शासन कुमाऊं और डोटी पर बनारहा। अनुमान लगताहै कि वीरदेव के पश्चात् राजसत्ता कत्यूरीवंश में उत्पन्न त्रिभुवनपालदेव के परिवार को प्राप्त होगई।

वीरदेव के वँशज पाली में जाबसे जो वहां अबतक मनुराल (मनराल) कहलातेहैं [५]। मनुराल नाम पड़ने का कारण भिकियासेन में पल्ला नया के मनिलाशिखर के पास अथवा

१- राहुल — कुमाऊं, पृ० ६७ ; ओकले होलि हिमालय, पृ० १००

२- ओकले — पूर्वोक्त, पृ० १७०

३- 'जत्र वेधेनबद्धानामेकया चर्मवध्रया। तेषां दुरापमप्यासीद् अन्योन्यमुखदर्शनम् ॥'
— उ० जयचन्द्र विद्यालंकार — भारतीय इतिहास मीमांसा, पृ० ४०४

४- जयचन्द्र विद्यालंकार — पूर्वोक्त, पृ० ४०४

५- राहुल — कुमाऊं, पृ० १५६

वल्ला साल्ट में उसी पर्वत में अवस्थित साईंमनूर गांव में बसना बतायाजाताहै [१]। बिचला कोट, तल्ला साल्ट और गिंवाड़ में उनकी थोकदारियां अबतक चलीआतीहैं [२]।

त्रिभुवनपालदेव का परिवार

नाम— त्रिभुवनपालदेव का एक अप्रकाशित शिलालेख वैद्यनाथ के सँग्रहालय में है [३]। उस शिलालेख में वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर का उल्लेख होनेसे इस नरेश को वैद्यनाथ का राजा मानाजाताहै। डोटी और असकोट की वँशावलियों में ब्रह्मदेव के उत्तराधिकारी त्रिलोकपाल का नाम आताहै [४]। सम्भवतः त्रिभुवनपाल और त्रिलोकपालदेव एक ही नरेश के नाम थे। रामदत्त त्रिपाठी और बदरीदत्त पांडे ने इस नरेश के एक अन्य नाम त्रिभुवनराज देव का उल्लेख कियाहै [५]। त्रिभुवनपाल (राज) देव ने बागेश्वरमन्दिर को दो ग्रामों की भूमि अग्रहार में दीथी [६]।

वंशज— रामदत्त त्रिपाठी के अनुसार त्रिभुवनपालदेव की छटी पीढ़ी में इन्द्रपाल देव तथा सातवीं पीढ़ी में लक्ष्मणपालदेव हुए [७]। उनके पश्चात् उदयपाल, वसन्तपाल, बलीनिकुलपाल तथा विजयपाल हुए [८]। अनुमान कियाजाताहै कि त्रिपाठीजी की सूचनाएँ शिलालेखों पर आधारित हैं [९]। किन्तु जो कुछ सूचनाएँ हम प्राप्त करसकेहैं, उनके अनुसार वीरदेव के पश्चात् वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर के निम्न नरेशों का पता चलताहै। :—

संख्या	नरेश का नाम	आधार	विदित तिथि
१-	त्रिभुवनपालदेव	अप्रकाशित शिलालेख	?
२-	?	रामदत्त त्रिपाठी की पुस्तिका	?
३-	?	,, ,, ,,	?
४-	उदयपालदेव	अप्रकाशित शिलालेख [१०] राहुल – कुमाऊँ, पृ० ६७	1152 ई०
५-	अनन्तपालदेव	अप्रकाशित शिलालेख [११]	1181 ई०
६-	इन्द्रदेव	अप्रकाशित ताम्रशासन [१२], मूर्तिलेख	1202 ई०
७-	विजयपालदेव	राहुल–कुमाऊँ, पृ० ६७	1214 ई०
८-	लक्ष्मणपालदेव	अप्रकाशित शिलालेख [१३]	?
९-	वल्लालदेव	क्राचल्लदेव का ताम्रशासन	1223 ई०

१- राहुल – कुमाऊं, पृ० १२९
२- राहुल – कुमाऊं, पृ० १६७
३- ५- राहुल – कुमाऊं, पृ० ६७
६- बदरीदत्त पांडे–कुमाऊं का इतिहास, पृ० २२४
७- ९- राहुल – कुमाऊं, पृ० ६७
१०- फ़ूरर – मोन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ४७
११- हारग्रीव्ज – ऐनुअल रिपोर्ट सुपरि० हिन्दु ऐंड बुद्धिस्ट मोन्यूमेंट्स १९१३-१४, पृ० ७
१२- १३- फ़ूरर – पूर्वोक्त, जि० २, पृ० ४७

त्रिभुवनपालदेव के पुत्र और पौत्र के नाम शिलालेखादि से नहीं मिलते। सम्भवत: वे दुर्बल शासक थे, और उनके राज्यकाल में उनके सामन्त लगभग स्वतन्त्र बनबैठेथे।

उदयपालदेव

त्रिभुवनपालदेव के प्रपौत्र उदयपाल की तिथि राहुल ने संभवत: अनुमान से सँ० १२०९ वि० (1152) निर्धारित कीहै। इस अनुमान की पुष्टि या खण्डन केलिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। ईसा की बारहवीं शती के मध्य में, सम्भवत: उदयपाल के राज्यकाल के आसपास दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। :-

(१) कमा (ऊँ) में सिंह नामान्त वाले राजवँश की स्थापना, तथा

(२) माधवाचार्य आनन्दतीर्थ का आगमन।

कमा (ऊँ) में राजवंश की स्थापना— बोधगया में प्राप्त पुरुषोत्तमसिंह के शिलालेख से [१] विदित होताहै कि ईसा की बारहवीं शती के मध्य में, सम्भवत: सँ० १२१२ वि० (1155) के आसपास जयतुंगसिंह नामक व्यक्ति ने कमा (ऊँ) में एक नए राजवँश की स्थापना कीथी [२]। उक्त शिलालेख से इस राजवँश के तीन नरेशों के नाम प्राप्त होतेहैं [३]। क्राचल्लदेव के ताम्रशासन से प्राप्त जयसिंह मांडलिक [४] का सम्बन्ध भी सम्भवत: इसी राजवँश से था। इस सम्बन्ध में अगले अध्याय में विचार कियाजाएगा।

माधवाचार्य का आगमन— वैष्णवमत के माध्वसम्प्रदाय के प्रवर्तक माधवाचार्य आनन्दतीर्थ का प्रादुर्भाव शक सँ० १०४० में तथा तिरोभाव शक सँ० ११११९ में मानाजाता है [५]। अस्तु उनकी जीवन अवधि सँ० ११७५ से १२५४ वि० (1118 से 1197) तक मानसकतेहैं। अनुश्रुति के अनुसार माधवाचार्य बदरिकाश्रम में आएथे। वहां उन्हें भगवान् वेदव्यास के दर्शन प्राप्तहुए। और आचार्य ने उन्हें अपना गीताभाष्य समर्पित किया [६]। व्यासजी ने आचार्य को शालिग्रामशिला की बनी तीन देवमूर्तियां प्रदान कीं, जिनकी प्रतिष्ठा उन्होंने सुब्रह्मण्य, उदीपि और मध्यतल के मन्दिरों कीथी [७]। वे बदरिकाश्रम से दिग्विजयी राम और वेदव्यास की मूर्तियां भी लेगएथे [८]।

यदि माधवाचार्य का आगमन ३५ वर्ष की आयु में हुआहो तो वे सँ० १२१० वि० (1153) के आसपास बदरिकाश्रम में पहुँचेहोंगे।

१- इण्डियन ऐंटीक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४१

२- कनिंघम — महाबोधि, पृ० ७९

३- बरुआ — गया ऐण्ड बोधगया, जि० २, पृ० २०३

४- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९९

५- भांडारकर — वैष्णविज्म, शैविज्म ऐंड माइनर रिलिजस सिस्टम्स, पृ० ५८

६- रामदास गौड़ -- हिन्दुत्व, पृ० ६६३

७- रामदास गौड़ — पूर्वोक्त, पृ० ६६४

८- भांडारकर — पूर्वोक्त, पृ० ५८

अनन्तपालदेव

त्रिपाठी, बदरीदत्त पांडे तथा राहुल ने इस नरेश का उल्लेख नहीं कियाहै। उसका एक शिलालेख द्वाराहाट (द्रोणागिरि) से प्राप्तहुआहै, जिसकी तिथि एटकिनसन और हारग्रीव्ज ने सं० १२३८ वि० (1181 ई०) बतलाईहै [१-२]। सम्भवतः यह नरेश त्रिभुवनपालदेव की चौथी पीढ़ी में हुआथा।

राज्य का विघटन— इस नरेश के राज्यकाल में, ईसा की बारहवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश में कत्यूरीराज्य का औरभी अधिक विघटन होगया। गढ़वाल में बाराहाट, नागपुर, पिंडार - उपत्यका तथा मायापुरहाट के सामन्त, जिनके सम्बन्ध में इस इतिहास के चौथे भाग में लिखाजाएगा, पूर्णतः स्वतन्त्र बनबैठे।

सुई और डोमकोट राज्य— कालीगङ्गा की निचली उपत्यका में कत्यूरीवंश में उत्पन्न ब्रह्मदेव नामक एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने एक छोटे - से स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करडाली। उसने सुईदुर्ग में अपनी राजधानी बनाई। उसके पड़ोस में डोमकोट (दोनकोट) में इन्हीं दिनों एक छोटे - से रावत - राज्य की स्थापना होगई।

डोमकोट के रावत राजा और ब्रह्मदेव सीमान्त के कारण निरन्तर आपस में लड़ते-झगड़ते रहतेथे [३]। कहतेहैं कि इन्हींदिनों प्रयाग के पास स्थित भूंसी नामक स्थान से एक महत्वाकांक्षी सोमवंशी राजपूत अपने साथ कतिपय सैनिकों को लेकर काली - उपत्यका में आया। सम्भवतः उसकी सहायता से ब्रह्मदेव अपने शत्रुओं से भिड़ने में सफल होगया। उसने नवागन्तुक राजपूत को अपनी पुत्री ब्याहदी और उसे चम्पावत में थोड़ी - सी भूमि प्रदान की। अनुमान कियाजाताहै कि इसी व्यक्ति के वंशजों ने आगे चलकर कुमाऊं में चन्दराज्य की स्थापना की [४]।

खश - राज्य— दानपुर में और अन्यत्र महत्वाकांक्षी कतिपय खश - ठाकुरों ने स्वतन्त्रता घोषित करदी। और अपने निकटवर्ती प्रदेशों पर स्वतन्त्र नरेशों के रूप में शासन करनेलगे। इसके अतिरिक्त कत्यूरीवंश में उत्पन्न कुछ अन्य व्यक्ति भी अपनी शक्ति बढ़ाकर लगभग स्वतन्त्र बनबैठे।

अशोकचल्ल का आक्रमण— सम्भवतः अनन्तपालदेव के राज्य के अन्तिम वर्षों में नेपाली आक्रान्ता अशोकचल्ल ने आक्रमण करके लगभग सारे उत्तराखण्ड पर अधिकार करलिया। समकालीन समस्त छोटे - बड़े नरेशों को उसकी अधीनता स्वीकार करनीपड़ी। इस सम्बन्ध में आगे लिखाजाएगा।

१- हारग्रीव्ज — ऐनुएल रिपोर्ट सुपरि० हिन्दु ऐंड बुद्धिस्ट मोन्यूमेंट्स १९१३-१४, पृ० ७

२- जोरनल आव इण्डियन हिस्टरी, जि० २९, अप्रैल १९५१

३- ४- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ०

इन्द्रपालदेव

त्रिपाठीजी के अनुसार इन्द्रदेव या इन्द्रपालदेव त्रिभुवनपालदेव की छटी पीढ़ी में हुआथा । इस नरेश का एक ताम्रशासन प्राप्तहुआहै । जिसकी तिथि सँ० १२५६ वि० (1202 ई०) बतलाईजातीहै [१] । वैजनाथ के एक मन्दिर में गणेशमूर्ति का पीठिकालेख, जिसे सँ० १२६० वि० (1203) का बतलायाजाताहै, उसीके राज्यकाल का है [२] ।

त्रिपाठीजी के अनुसार इस नरेश की रानी दमयन्ती ने चौघाड़पाटा में एक उद्यान लगायाथा जो अबतक रानीबाग के नाम से प्रसिद्ध है [३] । इसीके निकट दमयन्तीताल है [४] । सम्भवत: इन्द्रदेव ने अपने समकालीन अन्य छोटे - बड़े नरेशों के समान अशोकचल्ल की की अधीनता स्वीकार कीथी ।

विजयपालदेव

त्रिपाठीजी के अनुसार विजयपालदेव ने सँवत् ११३६ में वैद्यनाथ में एक मन्दिर का निर्माण कियाथा । उनदिनों इस पर्वतीयप्रदेश में शकसँवत् का प्रचार होनेके कारण राहुल विजयपाल की तिथि शकसँवत् ११३६ वि० (1208) मानतेहैं [५] । पर शकसँवत् ७८ ई० से आरम्भ होनेके कारण उसकी तिथि सँ० १२७१ वि० (1214) होनीचाहिए ।

त्रिपाठीजी के अनुसार इन्द्रपालदेव के पुत्र का नाम लक्ष्मणपालदेव था [६] । विजयपालदेव ने इन्द्रपालदेव के पश्चात् तथा लक्ष्मणपालदेव से पूर्व शासन कियाथा । सम्भवत: वह इन्द्रपालदेव का भ्राता, ज्येष्ठ पुत्र अथवा उसके परिवार में उत्पन्न कोई व्यक्ति था, जिसे किसी कारणवश, सम्भवत: इन्द्रपालदेव की मृत्यु के समय लक्ष्मणपालदेव की अल्पायु होनेके कारण शासनकरने का अवसर मिलाथा ।

लक्ष्मणपालदेव

परवर्ती कत्यूरीनरेशों में लक्ष्मणपालदेव को सबसे अधिक शक्तिशाली मानाजाताहै । लखनपुर की एक शिलालेख में उसका विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज मिलताहै [७] । उसने अपने वँश के नष्ट गौरव को फिर से स्थापना का श्रेय भी उसीको दियाजाताहै [८] । प्रतिष्ठिसकरने का प्रयत्न कियाथा ।

उसके पिता इन्द्रपालदेव की, और उससे पूर्ववर्ती नरेश विजयपालदेव की तिथियां क्रमश: सँ० १२५६ और १२७१ वि० (1202 और 1214) हैं। अस्तु लक्ष्मणपालदेव ने

१-२- फूरर — मौन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ४७ ३- ७- राहुल — कुमाऊं, पृ० ६७

८- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३८३

स्वतन्त्रतासूचक विरुद अशोकचल्ल की मृत्यु सँ० १२६६ वि० (1209) के पश्चात् किसी समय धारण कियाहोगा।

त्रिपाठीजी के अनुसार इन्द्रपालदेव के पुत्र लक्ष्मणपालदेव ने सँ० १०५५ में कालीशिला से बनी लक्ष्मीनारायण की मूर्ति वैद्यनाथ के मन्दिर में स्थापित कीथी, जो अब गणनाथ के शिवमन्दिर में है[१]। मैंने गणनाथमन्दिर में इस मूर्ति को देखाहै। ठीक इसी आकार - प्रकार की एक मूर्ति आदिबदरी के एक मन्दिर में है।

१०५५ को शकसँवत् मानने से लक्ष्मणपालदेव की तिथि वि० सँ० ११९० (1133) निकलतीहै। उसके पिता इन्द्रपालदेव के ताम्रशासन की तिथि वि०सँ० १२६० (1203) है[२]। इसलिए यातो लक्ष्मणपालदेव इन्द्रपालदेव का पुत्र नहीं था, अथवा १०५५ सँ० पढ़ने में कुछ भूल हुईहै।

घटनाक्रम को देखतेहुए अनुमान लगताहै कि जब लक्ष्मणपालदेव ने स्वतन्त्रता-सूचक परमभट्टारक महाराजाधिराज का विरुद धारण करलिया और अशोकचल्ल के उत्तराधिकारी क्राचल्लदेव को करदेना बन्दकरदिया तो क्राचल्लदेव ने उत्तराखण्ड पर आक्रमण करके कार्तिकेयपुर (बैजनाथ) को विध्वस्त किया। तथा कत्यूरीनरेशों को नष्ट करके उनके प्रदेश पर अधिकार करलिया। किन्तु बिना लक्ष्मणपालदेव के शिलालेख को देखे इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहाजासकता।

बल्लालदेव

क्राचल्लदेव के आक्रमण के पश्चात् भी कत्यूरीनरेशों का अस्तित्व बनारहा। क्राचल्लदेव के सामन्तों में एक नाम बल्लालदेव मिलताहै, जिसका नाम कत्यूरीनरेशों के नामों से मिलता - जुलताहै। क्या बल्लालदेव कत्यूरीवँश में उत्पन्न कोई ऐसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था, जिसने क्राचल्लदेव का सामन्त बनकर नई कत्यूरी ठकुराई की स्थापना कीथी? सामग्री के अभाव में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

संस्कृति की रक्षा— वैद्यनाथ के कत्यूरीनरेश अपने पूर्वज कार्तिकेयपुर के कत्यूरी-नरेशों के समान शक्तिशाली न थे। उनका शासितप्रदेश सीमित था। वे अपने पूर्वजों के समान ललित शब्दावली से पूर्ण अभिलेख नहीं छोड़गए। उनकी सैनिक-शक्ति सामान्य थी। महमूद गजनी के आक्रमणों से लेकर पृथ्वीराज के पतन तक उत्तरभारत के नरेशों ने अपने देश की स्वतन्त्रता और सँस्कृति की रक्षा केलिए आक्रान्ताओं से जो युद्ध लड़ेथे, उनमें उत्तराखण्ड के कत्यूरीनरेशों के योगदान का उल्लेख नहीं मिलता।

उनके राज्य के दक्षिणी भाग में ऐसे समृद्धशाली नगर या मन्दिर न थे, जिनकी लूट से मुसलमान आक्रान्ताओं को भारी धनराशि मिलने की आशा होती। मायापुर-गङ्गाद्वार

१- राहुल – कुमाऊं, पृ० ६७ २- फूरर – मोन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ४७

को तबतक वह ख्याति और समृद्धि नहीं मिलीथी, जिसने पौने दो सौ वर्ष पश्चात् तैमूर को आकर्षित कियाथा।

फिर भी, हिन्दुसंस्कृति के रक्षक के रूप में इन परवर्ती कत्यूरीनरेशों ने महत्वपूर्ण योग दियाथा। उत्तरापथ में मची भीषण उथल - पुथल के दिनों में इन नरेशों ने अनेक कलाकारों, विद्वानों और साधु - महात्माओं को, सर्वस्व खोबैठे नर-नारियों को, आक्रान्ताओं के दासता-पाश से भागकर आनेवाले अभागे व्यक्तियों को, राज्यभ्रष्ट राजपुरुषों और आश्रयहीन सैनिकों को आश्रय दियाथा।

मन्दिरों की स्थापना— उन्होंने मध्यदेश से आनेवाले मन्दिर और मूर्ति - निर्माताओं को आश्रय देकर उत्तराखण्ड में अनेक मन्दिरों और अतिसुन्दर देवमूर्तियों की रचना करवाई। उनके राज्यकाल में बैजनाथ, द्वाराहाट, बागेश्वर, जागेश्वर, आदिबदरी, सिमली, द्रोणागिरि, सोमेश्वर, केदारनाथ, नालाचट्टी आदि स्थानों में अनेक सुन्दर मन्दिरों की स्थापना हुई। परवर्ती कत्यूरीनरेशों ने द्वाराहाट में उत्तराखण्ड की द्वारिका बसाने का प्रयत्न कियाथा।

गुलण

केवल नरेशों ने ही नहीं, अनेक सम्पन्न व्यक्तियों और साधु - महात्माओं ने भी धन एकत्रित करके अतिसुन्दर मन्दिरों की रचना कीथी। गुलण नामक एक व्यक्ति ने द्वाराहाट में शिव - पार्वती के मन्दिर की स्थापना कीथी। जिसकी तिथि मूर्ति के पीठिकालेख के अनुसार सँ० १२०० या १२०२ वि० (1143 या 1145 ई०) मानीजातीहै[१]। इसी गुलण का एक दूसरा लेख द्वाराहाट के पास थलकोरकनोला में विष्णु की भग्न प्रतिमा पर मिलाहै, जिसके अनुसार गुलण ने सँ० १२०० वि० (1143 ई०) में वहां विष्णुमन्दिर की स्थापना कीथी[२]। इसी व्यक्ति का एक तीसरा लेख गोपेश्वर के शिवमन्दिर की दीवार पर मिलाहै[३]।

साधुवरदेव

बैजनाथ, जागेश्वर और द्वाराहाट में इनदिनों अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआथा, जिनमेंसे कुछ की मूर्तियों के पीठिकालेखों में स्थापनाकाल भी अंकित हैं। द्वाराहाट के बदरीनाथमन्दिर में लक्ष्मी की मूर्ति की स्थापना सँ० १२४२ वि० (1185 ई०) में कीगई[४]। बदरीनाथमन्दिर का निर्माण सँ० १२४१ वि० (1184 ई०) में साधुवरदेव ने कियाथा[५]।

१- जौरनल आव इण्डियन हिस्टरी, जि० २६, अप्रैल १६५१

२- हारग्रीव्ज — ऐनुएल रिपोर्ट सुपरि० हिन्दु ऐंड बुद्धिस्ट मोन्यूमेंट्स १६१३-१४, पृ० ७ - ६

४- हारग्रीव्ज — पूर्वोक्त, पृ० ७ - ६

३- ऐनुएल रिपोर्ट आव इण्डियन एपिग्राफी, १६६७ - ६८

५- ऐनुएल रिपोर्ट आव आर्केलोजिकल सर्वे, १६२२-२३, पृ० १४

द्वाराहाट के गोरिलमन्दिर में सँ० १२७६ वि० (1219 ई०) का तथा एक अन्य मन्दिर में सँ० १२७१ वि० (1214 ई०) का लेख मिलाहै [१]। ये लेख अभीतक प्रकाशित नहीं हुएहैं। इसलिए यह कहना कठिन है कि उनमें शकसँवत् का उल्लेख है या विक्रमसँवत् का।

मणदेव

इनदिनों मन्दाकिनी - उपत्यका में अनेक सुन्दर मन्दिरों और प्रतिमाओं का निर्माण हुआथा। केदारनाथ - मार्ग पर नालाचट्टी के एक मन्दिर के शिलालेख से विदित होताहै कि उसकी स्थापना शक ११६८ = सँ० १३०३ वि० (1246 ई०) में मणदेव ने कीथी [२]।

देवमूर्तियों का निर्माण— जिनदिनों मध्यदेश में मुसलमानों के प्रहार से अनेक देवमूर्तियों का विध्वँस होरहाथा, उन्हींदिनों उत्तराखण्ड के मूर्तिकार अतिसुन्दर देवविग्रहों का निर्माण कररहेथे। प्रतिहार-मूर्तिकला का पूर्ण विकास उत्तराखण्ड में हुआ। कुशाणकाल में मूर्तिनिर्माण में जिसप्रकार की ख्याति तक्षशिला और मथुरा को प्राप्तहुईथी, लगभग उसी प्रकार की ख्याति उत्तराखण्ड के कतिपय स्थानों को प्राप्त होगई, जिनमें मध्यदेश से आएहुए मूर्तिनिर्माताओं ने आश्रय लियाथा।

गँगा - यमुना के स्रोतप्रदेश देवभूमि उत्तराखण्ड में निर्मित देवमूर्तियों को अतिपुनीत एवं सकल कामनाओं को पूर्ण करनेवाली समझाजाताथा। इस प्रदेश में निर्मित मूर्तियां भोट (तिब्बत), कीर (कांगड़ा), कान्यकुब्ज, मध्यदेश, बुन्देलखण्ड, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र तथा दक्षिण तक पहुँचतीथीं।

यशोवर्मन् चन्देल अपने खजुराहो - शिलालेख में गर्व से घोषणा करताहै कि मैंने हिमालय के समान महोच्च मन्दिर का निर्माण करके विष्णु की जिस बैकुण्टमूर्ति की स्थापना कीहै; वह मुझे कान्यकुब्ज के देवपाल से मिलीथी। उस दुर्लभ मूर्ति को देवपाल के पिता हेरम्बपाल ने अपनी विशाल सेना के बल पर कीर (कांगड़ा) के शाही - नरेश से प्राप्त कियाथा। कीरनरेश को यह दुर्लभ मूर्ति भोट (तिब्बत) नरेश ने मित्रता के स्मारक-स्वरूप प्रदान कीथी। भोटनरेश ने इस मूर्ति को कैलास (उत्तराखण्ड में केदारनाथ के निकटवर्ती) प्रदेश के मूर्तिनिर्माण - केन्द्र से प्राप्त कियाथा [३]।

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४०७

२- जौरनल आव इण्डियन हिस्टरी, जि० २१, अप्रैल १९५१

३- 'दैत्यारातेस्तुषारक्षितिधरशिखरस्पर्द्धि वर्द्धिष्णुरागा -
दृष्टे यात्रासु यत्र त्रिदिववसतयो विस्मयन्ते समेता:।
कैलासाद् भोटनाथ: सुहृदिति च तत: कीरराज: प्रपेदे
साहिस्तस्मादवपात्र द्विपतुरगबलेनानु हेरम्बपाल:।
तत्सूनोर्देवपालात्तमय हयपते: प्राप्य निन्ये प्रतिष्ठां
वैकुण्ठं कुण्ठितारि: क्षितिधरतिलक: श्री यशोवर्मराज:॥ — खजुराहो - शिलालेख, पं० २४-२५

वैष्णवमत के माध्वसम्प्रदाय के सँस्थापक माधवाचार्य - आनन्दतीर्थ बदरिकाश्रम से शालिग्रामशिला से बनी तीन मूर्तियां तथा दिग्विजयी राम और वेदव्यास की मूर्तियां भी लेगएथे। उन्होंने सुब्रह्मण्य, उदीपि और मध्यतल क़े मन्दिरों में उन मूर्तियों की प्रतिष्ठा कीथी।

परवर्ती कत्यूरीनरेशों के राज्यकाल में भी साहसी तीर्थयात्री उत्तराखण्ड के मन्दिरों में पहँचतेरहे, जैसा कि गोपेश्वर में प्राप्त शिलालेखों से विदित होताहै [1]।

नृत्य और संगीत— कत्यूरीनरेशों के राज्यकाल में उत्तराखण्ड में नृत्य और सँगीत में विशेष उन्नति हुईथी। नदी - घाटियों और सम्पर्क से दूर स्थित पठारों पर स्थानीय नृत्यों का विकास हुआ। जिनकी परम्परा आजतक चलीआतीहै। केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार रुद्रप्रयाग में शिवजी ने नारद को राग - रागनियों और सँगीत की शिक्षा दीथी [2]। नारद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सँगीतमकरन्द का रचनाकाल ग्यारहवीं शती ईसवी मानाजाताहै [3]। यदि केदारखण्डग्रन्थ में सँग्रहीत अनुश्रुति सही है तो नारद ने सम्भवत: सँगीतमकरन्द की रचना रुद्रप्रयाग में कीथी।

संस्कृत का पठन - पाठन— जनसाधारण की भाषा सँस्कृत न थी। वर्तमान उत्तराखण्ड में सँस्कृत के पठन - पाठन की सुव्यवस्था थी। बोलियों का मूलरूप प्रचलित था। अबतक जो अभिलेख प्राप्त हुएहैं, उनमेंसे कई की रचना अतिललित छन्दों में कीगईहै। उस युग में उत्तराखण्ड में सँस्कृत के अनेक कवि हुए जिनकी रचनाएँ सम्भवत लुप्त होगईहैं। ऋाचल्लदेव के ताम्रशासन से विदित होताहै कि ज्योतिष, तन्त्र, मन्त्र, कृत्यानुष्टान, शकुनशास्त्र तथा न्याय के पारँगत विद्वान् भी इस भूमि में बसेहुएये। राज्य में शासनकार्य सँस्कृत भाषा द्वारा सम्पादित होतेथे।

लोकभाषा का विकास— उत्तराखण्ड में वर्तमान समय में जो बोलियां बोली जातीहैं, उनका मूलरूप परवर्ती कत्यूरीनरेशों के राज्यकाल तक विकसित होचुकाथा। पौरवनरेशों के ताम्रशासनों में मिलनेवाले भेल, खोल्हिका आदि शब्दों तथा ग्रामनामों से विदित होताहै कि अभिलेख जनसाधारण की बोलचाल की भाषा से अनुवादित करके सँस्कृत में लिखेजातेथे।

शुद्धिपत्र

कृपया पृ० २०४ पँक्ति ५ में ‘ चौथी ’ के स्थान पर ‘ पांचवीं ’ पढ़िए।

१- ऐनुएल रिपोर्ट आव इण्डियन एपिग्राफी, १९६७-६८
२- केदारखण्ड, अध्याय ६६ - ७७
३- स्ट्रगल फौर इम्पायर, पृ० ३२६

कमा (ऊं) का 'सिंह' राजवंश

सूचना - स्रोत— इस राजवंश का एक शिलालेख कनिंघम को बोधगया के सूर्यमन्दिर में प्राप्तहुआथा [१]। यह शिलालेख बारहवीं शती में बँगाल - बिहार में प्रचलित लिपि में लिखाहै [२]। इसमें २५ पँक्तियां हैं, जिनमें अतिललित १५ श्लोकों में कमा (ऊं)-नरेश पुरुषोत्तमसिंह की प्रशस्ति है [३]। इस प्रशस्ति से ३ नरेशों के नाम मिलतेहैं। अाचल्लदेव के ताम्रशासन में उल्लिखित जयसिंह को भी इसी वँश का मानसकतेहैं ।

सँख्या	नाम	विरुद	परवर्ती नरेश से सँबँध
१-	जयतुङ्गसिंह	नरपति	—
२-	कामदेवसिंह	धरणीपाल	तत्पुत्र
३-	पुरुषोत्तमसिंह	क्षितिपाल	तत्पुत्र
४-	जयसिंह	मांडलिक	?

कमादेश— प्रशस्ति के अनुसार पुरुषोत्तमसिंह और उसके पूर्वज कमादेश के शासक थे [४]। यह प्रदेश सपादलक्षशिखर वाले देश के स्वामी अशोकचल्ल के राज्य के पूर्वी भाग में था [५]। बोधगया में प्राप्त सहणपाल के शिलालेख में अशोकचल्ल को सपादलक्ष-शिखरि खशदेश का राजा बतायागयाहै [६]। इसी अशोकचल्ल के अभिलेख गोपेश्वर और बाराहाट के त्रिशूलों पर मिलजाने से उसे गढ़वाल - कुमाऊँ का शासक मानाजाताहै [७]। अशोकचल्ल के राज्य के पूर्वी भाग कमा, वर्तमान कुमाऊँ का सामन्त पुरुषोत्तमसिंह था [८]।

कमादेश, सम्भवत: कालीगङ्गा की उपत्यका का प्राचीन नाम था, जिसे आजतक कालीकुमाऊँ कहाजाताहै। इसी कमा शब्द से कमाऊँ शब्द बना, जिसे पीछे कुमाऊँ कहाजानेलगा। प्रशस्ति से विदित होताहै कि तेरहवीं शती में 'कमा' नाम प्रचलित होगयाथा।

१- कनिंघम – महाबोधि, पृ० ७८ २- ३- इण्डियन ऐंटीक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४१

४- ५- 'सुवेशश्च कमादेशो वसेत्पूर्वप्रदेशत: ' – पंक्ति २ ६- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४०३ ७- इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४६

८- बरुआ—गया ऐंड बोधगया, जि० २, पृ० २०४; इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४४

जयतुंगसिंह

जन्मभूमि— प्रशस्ति से विदित होताहै कि इन नरेशों की जन्मभूमि किसी चक्रवाड नामक स्थान में थी। पुरुषोत्तमसिंह को चक्रनन्दकभुजो कहागयाहै [१]। प्रशस्ति की २१ वीं पँक्ति में भी चक्रवाड शब्द आयाहै। चक्रवाड के प्राकृतरूप चकबाट, चौबाट, चौबटिया, चौखटिया, चौकोट आदि होसकतेहैं। ऐसे अनेक स्थान कुमाऊँ, गढ़वाल तथा डोटी में हैं। चक्रवाड ग्राम के जयतुङ्ग ने किसप्रकार कमाऊँ में अपने राज्य की स्थापना की, यह अज्ञात है। यह असम्भव नहीं कि कालीगंगा के पूर्व के किसी नरेश की सहायता से उसने कत्यूरीराज्य के धुरपूर्वी भाग में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करदियाहो।

जयतुङ्ग और उसके वँशजों के नामान्त में सिंह जुड़ा मिलने से विदित होताहै कि यद्यपि बारहवीं शती में उत्तराखण्ड में नरेशों के नामान्त में सिंह लगाने की प्रथा आरम्भ होगईथी, किन्तु इस प्रदेश के कत्यूरी, चन्द, पँवार आदि प्रमुख राजवँशों ने इसे नहीं अपनाया। अन्य नामों के अभाव में इस वँश को 'सिंह' राजवँश कहसकतेहैं।

प्रशस्ति— अभिलेख के अनुसार जयतुङ्गसिंह शास्त्रों के ज्ञान और अस्त्रों के प्रयोग में अतिकुशल था [२]। अपने खड्ग के प्रताप से उसने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कीथी [३]। अगणित शत्रु नरेश उससे उसीप्रकार आतंकित रहतेथे, जिसप्रकार अनेक हस्ती अकेले सिंह से घबरातेहैं [४]। वह उदारहृदय नरेश अभ्यर्थियों केलिए कल्पवृक्ष के समान था [५]।

कमा (ऊँ) देश, जिस पर वह शासन करताथा, समृद्धशाली देश था [६]। उस देश के निवासियों को सभी प्रकार के सुख उपलब्ध थे [७]। वहां के निवासी उत्तम वस्त्र धारण करतेथे [८]। उसके राज्यकाल के सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना अभिलेख से नहीं मिलती।

कामदेवसिंह

जयतुँगसिंह का पुत्र-कामदेवसिंह, कामदेव के समान रूपवान, देवताओं के समान वन्दनीय तथा सिंह के समान पराक्रमी था। याचकों को हाथी-घोड़े देदेना उसकेलिए साधारण बात थी [९]। उसके राज्यकाल की घटनाओं के सम्बन्ध में अभिलेख मौन है।

१- 'स चक्रनन्दकभुजो जगतो हितैषी, लक्ष्मीपतिः क्षितिपतिः पुरुषोत्तमश्च ॥' — पं० ८-९

२- ५- 'तत्राभवन्नरपतिर्ज्जयतुंगसिंह, श्रीमानरातिनृपहस्तिघटैकसिंहः।
अस्त्रे च शास्त्रनिचये च विचक्षणात्मा, दाक्षिण्यलक्षणगणैः परिलक्षितश्च ॥' श्लोक ३
'वांछातोपि प्रदानं समधिकखिले यस्य लोके समन्तात्,
वैलक्ष्यात् कल्पवृक्षः क्वचिदगमदिव प्रेक्ष्य पृथ्वीमुपेक्ष्य।' — श्लोक ४

६- ८- 'अगाधगुणसम्पूर्णः सर्वसौख्यैरलंकृतः।
सुवेश्च कमादेशो वसेत्पूर्वप्रदेशतः ॥' — श्लोक २

९- बोधगया - शिलालेख, श्लोक ५, ६

पुरुषोत्तमसिंह

गन्धकुटी - निर्माण— कामदेवसिंह का पुत्र पुरुषोत्तमसिह सँसार का हितैषी, धरती पर साक्षात् नारायण के समान था [१]। उसकी पुत्री रत्नश्री के पुत्र माणिक्यसिंह की असमय में मृत्यु होजानेके कारण, उसने माणिक्यसिंह की सद्गति केलिए बोधगया में भगवान् बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करतेहुए अतिसुन्दर गन्धकुटी का निर्माण कियाथा, जो मोक्ष और सुख देनेवालीथी [२]।

इस गन्धकुटी के निर्माण केलिए उसने अपने स्वामी सपादलक्षशिखर वाले (शिवालिकप्रदेश) खशदेश के राजाओं के अधिपति अशोकचल्ल से तथा इन्द्र के समान प्रतापी छिन्दवँश में उत्पन्न किसी नरेश से सहायता लीथी [३]।

इस गन्धकुटी का निर्माण कमादेश के राजगुरु धर्मरक्षित यति की देखरेख में हुआथा, जिसे अभिलेख में महान् विद्वान्, निष्ठावान् और पृथ्वीमण्डल का अलँकार (मँडन) बतलायागयाहै [४]।

धार्मिक मान्यताएं— यमुना और कालीगङ्गा के मध्यवर्ती प्रदेश उत्तराखण्ड से बौद्धमत शतियों पहले लुप्त होचुकाथा। किन्तु कालीगङ्गा से पूर्व की ओर वर्तमान पश्चिमी नेपाल में बारहवीं - तेरहवीं शती में भी महायान का प्रचार था। पुरुषोत्तमसिंह, अशोकचल्ल और छिन्दनरेश, जिसकी मूलभूमि वर्तमान बरेली के आसपास थी [५], सभी महायान के अनुयायी थे। मुसलमानों के आक्रमणों से जब उत्तरभारत के बौद्धमठों का विनाश होरहाथा, उनदिनों तीनों ने बोधगया में भगवान् बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करतेहुए देयधर्म अर्पित किएथे [६]। निश्चय ही यह महान् साहस का कार्य था [७]।

उनदिनों महायानियों के बौद्धमन्दिरों में बुद्ध की अनेक उपचारों से पूजा कीजातीथी। पुरुषोत्तमसिंह ने गन्धकुटी में स्थापित बुद्धप्रतिमा की सेवा केलिए रम्भा अप्सरा की समानता करनेवाली कतिपय भाविनी और चेटियों को नियुक्त कियाथा जो प्रातः, मध्याह्न

१- बोधगया - शिलालेख, श्लोक ७ २- बोधगया - शिलालेख, श्लोक, ६

३- ' प्रख्यातं हि सपादलक्षशिखरिक्ष्मापालचूड़ामणि
शीलैः श्रीमदशोकचल्लमयि यो नत्वा विनीय स्वयम् ।
अत्र च्छिन्दनरेन्द्रमिन्द्रसदृशं भ्रष्टे मुने शासने ,
स्थित्योद्धारमसौ चकार परमाश्चर्यं कलौ दुर्ज्जये ' ॥ १ ॥

४- बोधगया - अभिलेख, श्लोक, १० ५- इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, ३४५

६- अशोकचल्ल का बोधगया - अभिलेख, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४११ ; पुरुषोत्तमसिह का बोधगया - अभिलेख तथा छिन्दनरेशों का बोधगया में बुद्ध की विशाल प्रतिमा का पीठिकालेख, इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४५ ७- ' परमाश्चर्यं कलौ दुर्ज्जये । ' श्लोक १०

और सायँकालीन पूजा के अवसर पर पञ्चम स्वर में गातीं और आश्चर्यजनक ढंग से नृत्य करतीथीं [१]।

देवमन्दिरों में नर्तकियों का नृत्य गुप्तकाल में भी प्रचलित था। कालिदास ने महाकालमन्दिर में वेश्यानृत्य का उल्लेख कियाहै। अलबेरूनी के अनुसार ब्राह्मण पुजारी अपने मन्दिरों में वेश्याओं के प्रवेश के सर्वथा विरुद्ध थे। किन्तु समकालीन नरेश ब्राह्मण-पुजारियों के विरोध की चिन्ता न करके अपनी प्रजा के मनोरञ्जन एवँ अपनी आय की वृद्धि केलिए मन्दिरों में बलपूर्वक वेश्याओं से नृत्य - गान करवातेथे [२]।

पुरुषोत्तमसिंह ने चक्रवाड में भी बुद्धभगवान् के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्तकरने केलिए सदावर्तों की स्थापना कीथी, जिनमें उत्तम भोज्य और पेयपदार्थ वितरित किएजातेथे। अनेक धर्मशील एवँ विद्वान् पुरुष वहां की शोभा बढ़ातेथे [३]। वह वहां भी नित्य नवनिर्माण करवातारहताथा [४]।

विद्वानों का सत्कार— पुरुषोत्तमसिंह का राजगुरु धर्मरक्षित यति महान् विद्वान् था। मञ्जुनन्दी नामक सँस्कृत-कवि, जिसने क्षणभर में बोधगया - प्रशस्ति की रचना कीथी, उसका आश्रित था। मञ्जुनन्दी कवि के पिता जीवनाग और दादा वासुदेव भी विद्वान् पुरुष थे [५]। पुरुषोत्तमसिंह का लेखाध्यक्ष इन्द्रनन्दी नामक विद्वान् था, जिसने कालीशिला पर प्रशस्ति को अतिसुन्दर अक्षरों में (गेरू से) लिखाथा [६]। और राम नामक शिल्पी ने उसे अँकित कियाथा [७]।

राज्यावधि—– पुरुषोत्तमसिंह के बोधगया - अभिलेख की तिथि परिनिर्वाण संवत् १८१३, कार्तिक वदि १, बुधवार है। भगवानलाल इन्द्रजी की कल्पना है कि अभिलेख में पेगू - अनुश्रुति के अनुसार बुद्धनिर्वाण की तिथि विक्रमपूर्व ५८१ (638 B. C.) में मानीगईहै और अभिलेख सँ० १२३३ वि० (1176) में लिखागयाथा [८]। इन्द्रजी की इस कल्पना में सँशोधन की आवश्यकता है।

(१) अशोकचल्ल के गोपेश्वर-त्रिशूललेख से विदित होताहै कि उसने शक १११३ (1191) में केदारभूमि को जीता। पुरुषोत्तमसिंह के अभिलेख की अँकनतिथि के समय

१- 'पूजा पूज्यतमस्य पञ्चमगतैर्व्वाद्यै स्त्रिसन्ध्यं सदा,
रम्भासन्निभभाविनीभिरभितो चेटीभिरत्यद्भुतम्।
नृत्यन्तीभिरनङ्गलङ्गिमगतैर्ग्गीतादिरिङ्गैरिमा,
यस्मात्सन्ति हि शासने भगवतः सत्कारविस्फारिताः'॥ १२॥

२-स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ४६६

३- ४- बोधगया - शिलालेख, श्लोक १३

५- बोधगया - शिलालेख, श्लोक, १४

६- ७- 'अलिखल्लेखाध्यक्ष इन्द्रनन्दीति सुन्दरः।
रामेणशिल्पिनोत्कीर्णमभिरामेणवर्ण्णतः'॥ श्लोक, २५

८- इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४७

अशोकचल्ल खशदेश अर्थात् केदारभूमि का अधिपति था [१]। इसलिए अभिलेख की तिथि सँ० १२४८ वि० (1191) के पश्चात् होनीचाहिए।

(२) अभिलेख से विदित होताहै कि उससे पूर्व, बोधगया में मुनिशासन (बुद्ध की प्रतिष्ठा) को भ्रष्ट करदियागयाथा [२]। तब उस देवस्थान में पुरुषोत्तमसिंह ने अशोकचल्ल और छिन्दनरेश की सहायता से फिर से बौद्धमन्दिर, गन्धकुटी की स्थापना कीथी। अस्तु अभिलेख की तिथि बखतियार खिलजी के आक्रमण के पश्चात् होनीचाहिए[३]। बखतियार खिलजी ने नदिया को सँ० १२५९ वि० (1202) में हस्तगत कियाथा [४]। तथा सँ० १२६२ (1205) में वह तिब्बत की ओर बढ़ा, जहां उसकी सेना का पूर्णत: विनाश हुआ [५]। इस तिथि के पश्चात् पुरुषोत्तमसिंह को बोधगया में गन्धकुटी निर्माणकरने का साहस हुआहोगा। बाराहाट के त्रिशूललेख से विदित होताहै कि सँ० १२६६ वि० (1209) में भी उत्तराखण्ड पर अशोकचल्ल का शासन था [६]। सम्भवत: सँ० १२६२ और १२६६ वि० (1205 और 1209) के बीच बोधगया में गन्धकुटी का निर्माण हुआ। अस्तु पुरुषोत्तमसिंह की राज़्यावधि अनुमान से सँ० १२४७ से १२६७ वि० (1190 से 1210) के आसपास मानसकतेहैं।

इसमें सन्देह नहीं कि पुरुषोत्तमसिंह उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग, कुमाऊँ का शक्तिशाली नरेश था। उसके राज्यकाल में प्रजा सुखी थी। उसका शासितप्रदेश समृद्धशाली था। यद्यपि उनदिनों उत्तराखण्ड की वर्तमान बोलियों का विकास होरहाथा, और जनसाधारण की बोली सँस्कृत न थी, फिरभी उसके शासनकाल में सँस्कृत के पठन - पाठन का क्रम सुचारुरूप से चलतारहा। उत्तराखण्ड का पूर्वदेश, बिहार - बँगाल से सांस्कृतिक सम्बन्ध उसीप्रकार चलाआरहाथा, जैसा हम कत्यूरी - शासनकाल में देखचुकेहैं।

जयसिंह

जयसिंह के नाम का पता क्राचल्लदेव के ताम्रशासन से लगताहै। उनदिनों उत्तराखण्ड के अन्य राजपरिवारों में नामान्त में सिंह लगाने की प्रथा का पता नहीं चलता। इसलिए जयसिंह को पुरुषोत्तमसिंह का उत्तराधिकारी अस्थायीरूप से मानसकतेहैं। उत्तराखंड के अन्य नरेशों के समान उसे भी क्राचल्लदेव का मांडलिक बननापड़ाथा। इस वँश की शेष गाथा का वर्णन उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग ५ में कियाजाएगा।

१- बोधगया - शिलालेख, श्लोक १६ २- 'भ्रष्टे मुने शासने' — पं० १७
३- बरुआ — गया ऐंड बोधगया, जि० २, पृ० २०२ ४- ५- स्ट्रगल फौर इम्पायर, पृ० ८७५
६- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ५२३

अशोकचल्ल का अधिकार

नाम— इस नरेश के गोपेश्वर - त्रिशूललेख में उसका नाम प्रिंसेप ने अनेकमल्ल पढ़ाथा [1]। उस अभिलेख की प्रतिलिपि में भगवानमल इन्द्रजी ने शुद्ध नाम अशोकचल्ल पढ़ाहै [2]। पीछे राहुल ने भी गोपेश्वर पहुँचकर त्रिशूल पर अशोकचल्ल नाम पढ़ा [3]।

इसी नरेश के बोधगया - शिलालेख में बरुआ ने उसका नाम अशोकवल्ल पढ़ाथा [4]। किन्तु भगवानलाल इन्द्रजी [5] तथा विनोदविहारी आदि विद्वानों ने शुद्ध नाम अशोकचल्ल पढ़ाहै [6]। अस्तु अब इस नरेश का नाम अशोकचल्ल ही मानाजाताहै।

सूचना - स्रोत— अशोकचल्ल के सम्बन्ध में अबतक निम्न पुरातात्विक सामग्री मिलीहै। :—

सँख्या	सामग्री	तिथि
१-	बोधगया, अशोकचल्ल का शिलालेख [7]	लक्ष्मणसेन के अतीत राज्य में सँ० ५१
२-	बोधगया, सहणपाल का शिलालेख [8]	लक्ष्मणसेन के अतीत राज्य में सँ० ७४
३-	बोधगया, पुरुषोत्तमसिंह का शिलालेख [9]	निर्वाण सँ० १८१३
४-	गोपेश्वर, अशोकचल्ल का त्रिशूललेख [10] (१)	?

१- इण्डियन ऐंटीक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४५

२- 'कृत्वा दिग्विजयं महालयमहादेवास्त्रसस्थामिमाम्,
राज्ये श्रीमदशोकचल्लनृपतिः स्तम्भच्छलानीतवान्।
पश्चाच्च प्रतिरोप्य तत्र विजयस्तम्भं प्रतिष्ठामगात्,
उत्खातप्रतिरोपणं हि महतायुक्तं नतानां पुनः॥' —इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४५-४६

३- राहुल — गढ़वाल, पृ० १११ टि०

४- बरुआ--गया ऐंड बोधगया, जि० २, पृ० ५८ - ५९

५- इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४६

६- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १२, पृ० २७, २९

७- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १२, पृ० २७-२८

८- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १३, पृ० २९-३०

९- इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, ३४५

१०- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९७-९८

५- गोपेश्वर, अशोकचल्ल का त्रिशूललेख[१] (२) शकसँवत् गताब्द ११११ (1191)
६- बाराहाट, अशोकचल्ल का त्रिशूललेख शकसँवत् गताब्द ११३१ (?)[२] (1209)
७- नाला, अशोकचल्ल का विजयस्तम्भ[३] ?
८- जागेश्वर, अशोकचल्ल की धातुमूर्ति[४] ?

मूलभूमि—ऊपर लिखे शिलालेख सँख्या २ और ३ में अशोकचल्ल को सपादलक्ष-शिखरि खशदेश का राजाधिराज बतायागयाहै[५]। सपादलक्षशिखरि खशदेश अर्थात् सवालाख शिखरोंवाले, शिवालिक पर्वतों में स्थित, खशदेश की पहिचान गढ़वाल-कुमाऊँ से कीजातीहै[६]। किन्तु अशोकचल्ल की मूलभूमि गढ़वाल-कुमाऊँ में नहीं थी। वह अपते गोपेश्वर-त्रिशूललेख में अपनी सर्वगामिनी वाहिनी द्वारा केदारभूमि को जीतने की चर्चा करताहै[७]।

गोपेश्वर-त्रिशूललेख में उसे दानव-भूतल का स्वामी गौड़वँशोद्भव वैराथ-कुलतिलक कहागयाहै[८]। ये तीनों बातें नेपाल के लिच्छवियों या अन्य किसी राजा पर नहीं घटतीं[९]। राहुल के अनुसार दानव-भूतल नाम हूणदेश (पश्चिमी तिब्बत) पर घटसकताहै, किन्तु पश्चिमी तिब्बत के भोट-राजाओं को गौड़वँशी कहना कठिन है[१०]।

अशोकचल्ल का नाम पहले अनेकमल्ल पढ़ाजाने के कारण उसका सम्बन्ध पश्चिमी तिब्बत में गूगे (पश्चिमी मानसरोवरप्रदेश) के मल्ल नामान्तवाले राजपरिवार से, या नेपाल के मल्ल-राजपरिवार से जोड़ने का प्रयत्न कियागयाथा। राहुल के अनुसार उनदिनों गूगे में मल्ल नाम-धारी राजा होतेथे, जो बाराहाट में बुद्धमूर्ति, अतएव बिहार को स्थापित करनेवाले नागराज के वँशज थे[११]। इनमें गूगानरेश अनमल और गोपेश्वर-त्रिशूल का अनेकमल्ल, दोनों समकालीन थे[१२]। शुङ् शुङ् (थोलिङ्) प्रदेश में भी मल्ल नामधारी राजा ईसा की बारहवीं शती के अन्त में मिलतेहैं[१३]।

पश्चिमी नेपाल में पर्वत, गलकोट आदि के राजा भी मल्ल कहेजातेथे[१४]। एटकिनसन ने अनेकमल्ल का सम्बन्ध नेपाल के मल्लवँश से जोड़ाहै[१५]। नेपाल के इतिहास से विदित होताहै कि पश्चिमी नेपाल में नेपाली सँवत् ३२२ = वि० सँ० १२५८ (1201) में अरिमल्ल नामक नरेश का शासन था[१६]। इस अरिमल्ल को, जो अनेकमल्ल का समकालीन था, नेपाल में मल्लवँश का सँस्थापक मानाजाताहै[१७]।

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९७-९८ २- एटकिनसन – हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ५२३ ३- पातीराम – गढ़वाल एनशिएंट ऐंड मौडर्न, पृ० १९० ४- फूरर–मौन्यूमेंटल ऐंटिक्विटीज, जि० २, पृ० ४५ ५- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १२, पृ० २९-३० ६- इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४६ ७-८- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९७-९८ ९-११- राहुल – कुमाऊं, पृ० ६२ १२-१४- राहुल – कुमाऊं, पृ० ६३ १५- एटकिनसन – पूर्वोक्त, पृ० ५१४-१५ १६- रेगमि—नेपाल, एनशिएंट ऐंड मेडिएवल, पृ० १४८ १७- स्ट्रगल फौर एम्पायर, पृ० ४६

यदि अभिलेखों में उस विजेता का सही नाम अशोकचल्ल है, और अनेकमल्ल नाम भूल से पढ़ागयाहै, जैसा भगवामलाल इन्द्रजी मानतेहैं [1], तो मल्ल नामान्त वाले किसी राजवँश से अशोकचल्ल का सम्बन्ध ढूँढना सँगत न होगा। किन्तु यदि अनेकमल्ल और अशोकचल्ल, एक ही व्यक्ति के दो नाम थे, जैसा एटकिनसन और राहुल मानतेहैं [2], तो भी तिब्बत या नेपाल के मल्ल-राजवँशों से उत्तराखण्ड के इस विजेता का सम्बन्ध जोड़ना सरल नहीं है। उसके भ्राता का नाम दशरथ था, उसके नामान्त में मल्ल शब्द जुड़ा नहीं मिलता[3]।

अधिकांश विद्वान् अशोकचल्ल को पश्चिमी नेपाल का निवासी मानतेहैं [4]। अशोकचल्ल को गोपेश्वर - त्रिशूललेख में वैराथकुल - तिलक कहागयाहै। सम्भवतः वह नेपाल में बैतड़ीप्रदेश का शासक था। बैतड़ीप्रदेश पश्चिमी नेपाल में कालीगँगा के पूर्वी तट पर है। नित्यानन्द मिश्र के अनुसार मल्लशाही या मल्लनरेश नेपाल के पश्चिमी भाग, डोटी के शासक थे। उनके परिवार में बड़े राजकुमार को रैंका और छोटे राजकुमारों को मल्ल कहाजाताथा [5]। मल्लनरेशों ने एक बार कुमाऊँ और गढ़वाल में बाराहाट तक के प्रदेश को जीतलियाथा [6]।

शासित प्रदेश— अशोकचल्ल के गोपेश्वर - त्रिशूललेख से विदित होताहै कि उसकी सर्वगामिनी वाहिनी ने केदारभूमि को जीताथा [7]। केदारखण्डग्रन्थ के अनुसार केदारखण्ड का विस्तार गङ्गाद्वार (हरिद्वार) से लेकर श्वेतपर्वत (महाहिमालय) तक, तथा तमसा (टोंसनदी) से लेकर बौद्धाचल (बँधाण, नन्दादेवीहिमाल) तक मानाजाताथा। गोपेश्वर और बाराहाट के त्रिशूललेखों से अनुमान लगताहै कि अशोकचल्ल का सम्भवतः इस सारे प्रदेश पर अधिकार था। दक्षिण में शिवालिकश्रेणी तक का प्रदेश उसके राज्य के अन्तर्गत था। पश्चिम की ओर उसका राज्य काली की पूर्वी उपत्यका तक, जो अब पश्चिमी नेपाल में है, फैलाथा।

उसने अपनी राजधानी, अपने राज्य के मध्य में, गोपेश्वर में स्थापित कीथी। जहां उसने पद्मपाद नामक राजायतन (प्रासाद) का निर्माण कियाथा [8]। उसके राज्य के पूर्वी भाग कमा (ऊँ) का शासन उसके सामन्त पुरुषोत्तमसिह द्वारा होताथा।

राज्यावधि— अशोकचल्ल की राज्यावधि का अनुमान उसके अभिलेखों की तिथियों से लगसकताहै।

१- अशोकचल्ल का बोधगया - शिलालेख — श्रीमल्लख्खणसेनस्यातीतराज्ये सँ० ५१, भाद्रदिने २६ ;

१- इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ० ३४६
२- राहुल — गढ़वाल, पृ० ११२
३- सहणपाल का अभिलेख, एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १२, पृ० २६
४- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ५१५
५- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो०, अप्रैल १६३६, पृ० ३७
६- जौ० यू० पी० हिस्टौरिकल सो० अप्रैल १६३६, पृ० २३
७- ८- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६७

२- सहणपाल का बोधगया - शिलालेख– श्रीमल्लक्ष्मणसेनदेवपादानामतीतराज्ये सँ० ७४, वैशाख वदि १२, गुरौ ;

३- अशोकचल्ल का गोपेश्वर - त्रिशूललेख–शकसँवत् गताब्द १११३ (1191) ;

४- अशोकचल्ल का बाराहाट-त्रिशूललेख–शकसँवत् गताब्द ११३१ (1209) ? ;

५- पुरुषोत्तमसिंह का बोधगया-शिलालेख–निर्वाण सँ० १८१३, कार्तिक वदि १, बुध ।

लक्ष्मणसेन सँ० और 'अतीतराज्य' शब्द को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् पूर्वोक्त अभिलेखों की तिथियों की गणना बँगालनरेश लक्ष्मणसेन के राज्यारम्भ से, सन् 1118 - 19 से करतेहैं, कुछ लक्ष्मणसेन की मृत्युतिथि सन् 1170 से [१]। लक्ष्मणसेन की मृत्यु से गणना करने पर प्रथम दो अभिलेखों की तिथियां सन् 1221 और 1244 निकलेंगी [२]। और अशोकचल्ल का राज्यकाल गोपेश्वर - त्रिशूललेख को ध्यान में रखकर 1191 से 1244 तक माननापड़ेगा। काचल्लदेव द्वारा उत्तराखण्ड पर 1223 में अधिकार करलेने की घटना को देखतेहुए यह सर्वथा अग्राह्य है।

हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार बँगालनरेश लक्ष्मणसेन का राज्यारोहण सन् 1119 में न होकर सन् 1169 में हुआ। उसके पिता बल्लालसेन की मृत्यु सन् 1168 - 69 में हुईथी [३]। उनका कहनाहै कि जिस लक्ष्मणसेन सँवत् का प्रयोग शिलालेखों और कतिपय पुस्तकों और पँचांगों में मिलताहै, उसका प्रवर्तन बँगालनरेश लक्ष्मणसेन के राज्यारोहण की तिथि से न होकर बिहार में पीठीनरेश लक्ष्मणसेन की राज्यसमाप्ति की तिथि से हुआथा। इसलिए उसके साथ 'अतीतराज्ये' शब्द का प्रयोग होताहै [४]।

प्रो० कीलहौर्न और ओझा के अनुसार लक्ष्मणसेन सँवत् में ११७५-७६ जोड़ने से गत चैत्रादि वि० सँ० तथा १११८ - १९ जोड़ने से ईसवी सन् बनताहै [५]। इसलिए पूर्वोक्त दो शिलालेखों की तिथियां सँ० १२२७ वि० (1170) तथा १२५१ वि०(19 मई 1194) [६] निकलतीहैं। पहला शिलालेख अशोकचल्ल ने उत्तराखण्ड - विजय से पूर्व अँकित करायाथा। उसमें उसे सपादलक्षशिखरि खशदेश का स्वामी नहीं कहागयाहै। उसने सँ० १२४८ वि० (1191) में उत्तराखंड पर अधिकार किया। फलतः सहणपाल के सँ० १२५१ वि०(1194) के शिलालेख में उसके द्वारा सपादलक्षशिखरि खशदेश पर अधिकार की चर्चा मिलतीहै। हम देखचुकेहैं कि पुरुषोत्तमसिंह का बोधगया-शिलालेख सँ १२६२ और १२६६ वि० (1205 तथा 1209) के बीच का होसकताहै। एटकिनसन के अनुसार अशोकचल्ल का बाराहाट-त्रिशूललेख सँ० १२६६ वि० (1209) का है [७]। इसलिए अशोकचल्ल को अपना पैत्रिक राज्य सँ० १२२७ वि० (1170) तक प्राप्त होचुकाथा। सँ १२४८ वि० (1191) में उसका सारे

१- बरुआ -- गया ऐंड बोधगया, पृ० २०२
२- बरुआ – पूर्वोक्त, पृ० २०४
३- रायचौधरी–स्टडीज इन इण्डियन ऐंटिक्विटीज, पृ० १६१
४- रायचौधरी–पूर्वोक्त, १६४-६६
५- ओझा – प्राचीन लिपिमाला, पृ० १८६
६- एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १२, पृ० ३०
७- एटकिनसन – हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स जि० २, पृ० ५२३

उत्तराखण्ड पर अधिकार होगया। उसने कम से कम सँ० १२६६ वि० (1209) तक सारे उत्तराखण्ड और वर्तमान नेपाल के पश्चिमी भाग पर शासन कियाथा।

व्यक्तित्व — अभिलेखों में अशोकचल्ल के शौर्य और पराक्रम की बड़ी प्रशँसा कीगईहै। उसे शत्रुओं का सँहारक तथा जनकादि समस्त महीपालों के समान अपार प्रशस्ति से अलँकृत कहागयाहै [२]। वह सम्भवत: स्वयँ विद्वान् था और विद्वानों का सत्कार करताथा। कश्मीर के विद्वान् भदन्त अभय, राजगुरु पण्डित मूसल, शँकरदेव और त्रैलोक्य ब्रह्मा आदि उसके आश्रय में रहतेथे। उसके राज्यकाल में प्रजा सुखी और समृद्ध थी। इसकी पुष्टि पुरुषोत्तमसिंह के शिलालेख से भी होतीहै।

शासन— अशोकचल्ल का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज था। उसके राज्य का शासन उसके सामन्तों के द्वारा होताथा। केदारभूमि जीतने पर उसने गोपेश्वर में प्रासाद का निर्माण करके दान और भोज दिए [२], तथा पराजित नरेशों का एक सम्मेलन किया। सम्भवत: उसने पराजित नरेशों को अपना सामन्त बनाकर उनका राज्य उन्हींको सौंपदियाथा। गोपेश्वर - त्रिशूललेख के अनुसार वह पराजित हुए योग्य शत्रु को ऊपर उठाना पुनीतकार्य समझताथा [३]। उसके सामन्तों में पुरुषोत्तमसिंह सबसे अधिक शक्तिशाली था। बौद्ध महायान का अनुयायी होनेके कारण वह अशोकचल्ल का विशेष कृपापात्र बनगयाथा। जोशीमठ में अभीतक एक चबूतरा रैंका - चबूतरा के नाम से प्रसिद्ध है, जिसपर अशोकचल्ल के कर्मचारी प्रजा से कर वसूल करतेथे [४]।

धार्मिक मान्यताएं— अशोकचल्ल महायान का अनुयायी था। उसे परम उपासक [५], हेवज्र के चरण - कमल का अनुयायी [६] तथा अभिनव बोधिसत्वावतार कहा गयाहै [७]। उसने अपने राज्यकाल के आरम्भिक दिनों में बोधगया में एक मन्दिर का निर्माण करके उसमें बुद्धमूर्ति की प्रतिष्ठा कीथी [८]। उसने बोधगया में गन्धकुटी के निर्माणकार्य में भी सहायता कीथी [९]। उसकी राजसभा में बौद्ध विद्वान् रहतेथे। उसके राज्यकाल में उत्तराखण्ड का यति धर्मरक्षित बोधगया में नवनिर्माणकार्य का सँचालक था [१०]।

स्वयँ महायानी बौद्ध होने पर भी वह सम्भवत: उदारहृदय था। उसने बालेश्वर शिवमन्दिर के पुजारी को भूमि दान में दीथी। उसकी प्रजा में बौद्धमतावलम्बियों की सँख्या अतिअल्प रहीहोगी। उसके सामन्तों मेंसे सम्भवत: केवल पुरुषोत्तमसिंह ही बौद्ध था। मुसलमानों के आक्रमण से जब उत्तरभारत के अधिकांश बौद्धमन्दिर नष्ट होरहेथे, उनदिनों उसने बौद्धों की पावनभूमि बोधगया को फिरसे नवीन जीवन देने का प्रयत्न कियाथा [११]।

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४०३ २- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९८

३- - उत्खातप्रतिरोपणं हि महतायुक्तं नतानां पुन: ' — गोपेश्वर - त्रिशूललेख, इण्डियन ऐंटिक्वायरी, जि० १८, पृ० ३४५ - ४६

४- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ०

५- ८- उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९७ ९- इंडियन ऐंटिक्वायरी, जि० १०, पृ ३४४

१०- ' विख्यात: खलु धर्मरक्षित यति: कर्म्मान्तरन्निर्मये । ' — पुरुषोतमसिंह का शिलालेख, पं० १२-१६

११- बरुआ — गया ऐंड बोधगया, जि० १, पृ० २०६

क्राचल्ल का अधिकार

अशोकचल्ल के पश्चात्– सम्भवत: सँवत् १२६६ वि० (1209) के आसपास अशोकचल्ल की मृत्यु होगई। उसके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में अभीतक कोई सूचना प्राप्त नहीं हुईहै। उसके राज्यकाल में गढ़वाल और कुमाऊँ में जो सामन्त शासन करतेथे, सम्भवत: वे उसकी मृत्यु के पश्चात् पुन: स्वतन्त्र बनबैठे। इन सामन्तों मेंसे अबतक निम्न का पता लगसकाहै। :––

केदारभूमि - गढ़वाल में :–

बाराहाट – यमुना-भागीरथी-भिलँग-उपत्यका का सामन्त,
गोपेश्वर – मन्दाकिनी-अलकनन्दा-उपत्यका का सामन्त,
मध्यवर्ती पठार का सामन्त,
गङ्गाद्वार – मायापुरहाट का सामन्त।

कुमाऊँ में :–

बैजनाथ - द्वाराहाट का कत्यूरीनरेश, सम्भवत: विजयपालदेव,
सुई का कत्यूरीनरेश,
डोमकोट (दोनकोट) के रावत - राजा,
कुमा – काली की पूर्वी उपत्यका का राजा पुरुषोत्तमसिंह,
चम्पावत – काली की निचली उपत्यका के चन्द नामान्तवाले सामन्त,
दानपुर, सरयू तथा पिण्डार की उपरली उपत्यका के खश सामन्त।

क्राचल्लदेव का आक्रमण–– अशोकचल्ल का उत्तराधिकारी कौन था? क्या ये सामन्त उसके उसीप्रकार करद सामन्त बनेरहे, जिसप्रकार वे अशोकचल्ल के राज्यकाल में थे? इन प्रश्नों का उत्तरदेने केलिए अभीतक सामग्री प्राप्त नहीं हुईहै।

यदि अशोकचल्ल की मृत्यु सँ १२६६ वि० (1209) में हुई तो उसकी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व सँ० १२६४ वि० (1207) में पश्चिमी नेपाल में. अशोकचल्ल के पैत्रिक राज्य पर क्राचल्लदेव का अधिकार होगयाथा। अपने राज्य के सोलहवें वर्ष में, सँ०१२८० वि० (1223) में, क्राचल्लदेव ने उत्तराखण्ड पर आक्रमण करके कीर्तिपुर (कार्तिकेयपुर= बैजनाथ) के राजाओं को नष्ट करके वहां अपना राज्य स्थापित किया।

सूचना-स्रोत— क्राचल्लदेव के आक्रमण की सूचना कुमाऊँ के वालेश्वरमन्दिर में प्राप्त उसके एक ताम्रलेख से मिलतीहै, जिसे उसने कत्यूरीनरेश देशटदेव के ताम्रशासन पर अँकित कियाथा।

मूलभूमि— क्राचलदेव ने इस ताम्रशासन की पीठ पर अपना लेख नेपाल में दूलू नामक स्थान के समीपस्थ श्रीसम्पन्न नामक नगर में खुदवायाथा[1]। दूलू अब भी नेपाल के देलखप्रान्त के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान है। इससे अनुमान लगताहै कि क्राचल्लदेव भी अशोकचल्ल के समान डोटीराज्य का अधिपति था।

अशोकचल्ल और क्राचल्ल दोनों के नामान्त में 'चल्ल' होनेसे तथा दोनों की मूलभूमि एक ही प्रदेश में होनेसे एवँ अशोकचल्ल की मृत्युतिथि के आसपास क्राचल्ल को उसकी मूलभूमि डोटी पर अधिकार प्राप्त होनेसे अनुमान लगताहै कि सम्भवतः उन दोनों का पारिवारिक सम्बन्ध भी था। सम्भवतः क्राचल्ल अशोकचल्ल का उत्तराधिकारी होने पर भी उसका पुत्र नहीं था। अपने ताम्रशासन में उसने अपनी माता शिरादेवी का उल्लेख कियाहै, पिता का नहीं। यदि वह परम पराक्रमी अशोकचल्ल का पुत्र होता, तो इसका उल्लेख अपने ताम्रशासन में अवश्य करता।

इनदिनों वैसठाकुरों के राज्यकाल में, नेपाल में, टोलों - मुहल्लों तक में पृथक अनेक छोटे - छोटे राजा होगएथे। अकेले कान्तिपुर (काठमांडव) में बारह राजा थे, जिन्हें जिनिमथकुल कहाजाताथा। इन ठाकुरों ने बहुत - से बौद्ध बिहार बनवाएथे, तथा उनमें वृत्ति - बन्धान लगाएथे[2]। राहुल का अनुमान है कि क्राचल्लदेव का सम्बन्ध इनमें से किसी नवोदित राजवँश से था[3]।

उत्तराखण्ड पर अधिकार— डोटी का राज्य प्राप्त होने पर सम्भवतः क्राचल्ल ने अशोकचल्ल के समान उत्तराखण्ड के सामन्तों से पूर्ववत् करग्रहण किया। सँ० १२८० वि० (1223) से कुछ पहले सम्भवतः वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर के कत्यूरीनरेश ने करदेना बन्द करदिया। उनदिनों नेपाल में भूचाल और अन्नकाल के कारण जनता को बड़ा कष्ट उठाना पड़ाथा[4]। फलतः क्राचल्लदेव के नेतृत्व में उत्तराखण्ड में लूटमार मचानेहेतु भारी दल - बादल सरलता से एकत्रित होसकताथा। क्राचल्लदेव ने सँ० १२८० वि० (1223) में उत्तराखण्ड पर आक्रमण करके कीर्तिपुर (वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर) का विध्वंस किया। और स्वतन्त्र बनने के अभिलाषी उस प्रदेश के नरेशों को नष्टकरके उत्तराखण्ड पर अधिकर करलिया[5]।

व्यक्तित्व— ताम्रशासन के अनुसार क्राचल्लदेव अति सुन्दर शरीरवाला था। वह वीरता में रघुमणि के समान तथा धनुर्धरत्व में भीष्म और परशुराम के समान था। वह भाला, खड्ग और परशु द्वारा युवा हस्ती से भी जूझसकताथा। वह शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तथा आयुधशक्ति और पराक्रम में भयँकर था[6]।

१-३- राहुल — कुमाऊं, पृ० ६४
५- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३६६
४- स्ट्रगल फौर एम्पायर पृ०
६- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४००

परम पराक्रमी होनेके साथ ही वह शीलवान् तथा दानपरायण भी था[१]। वह दरिद्रों केलिए कल्पतरु, न्याय में धर्मसुत, युधिष्ठिर के समान तथा सभा में भवानीपति के समान सर्व गुणोंवाला था[२]। अशोकचल्ल के समान वह भी बौद्धमतावलम्बी था। उसे ताम्रशासन में परमसौगत तथा जिनिकुलकमलदिवाकर कहागयाहै। फिर भी वह उदारहृदय था। उसने बालेश्वर शिवमन्दिर के पुजारी भट्ट नारायण को भूमि प्रदान कीथी[३]।

शासनप्रबन्ध— क्राचल्लदेव का विरुद परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर था[४]। उसने अपने विजितप्रदेश का शासन अशोकचल्ल के समान अपने सामन्तों को सौंपा था। उसके ताम्रशासन में दस सामन्तों के नाम मिलतेहैं[५]।

(१) कत्यूरीनरेशों के समान नामवाला –
  १- श्री बल्लालदेव मांडलिक।
(२) कमा के 'सिंह' नामान्तवाले राजाओं के समान नामवाला –
  २- श्री जयसिंह मांडलिक।
(३) डोमकोट (दोनकोट) के रावत-राजाओं के समान उपाधिवाले –
  ३- श्री हरिराज राउत्त-राज,
  ४- श्री अनिलादित्य राउत्त-राज।
(४) चन्दनरेशों के समान नामवाले –
  ५- श्री चन्द्रदेव मांडलिक,
  ६- श्री विनयचन्द्र मांडलिक,
  ७- श्री विद्याचन्द्र मांडलिक।
(५) खशनरेशों के - से नामवाले –
  ८- श्री याहड़देव[६] मांडलिक,
  ९- श्री जीहलदेव मांडलिक,
  १०- श्री मूसदेव मांडलिक।

अन्तिम तीन के नाम कुमाऊँ के खशनरेशों की नामावली के जाजड़, जाहल और मूल नरेशों के नामों से मिलते - जुलते हैं। सामग्री के अभाव में इन सामन्तों के शासितप्रदेशों को निश्चयपूर्वक बताना कठिन है। यह भी अज्ञात है कि इन सामन्तों मेंसे कौन कुमाऊँ पर शासन करतेथे और कौन गढ़वाल पर। क्राचल्ल के ताम्रशासन से यह अनुमान लगाना कठिन है कि अशोकचल्ल के शासितप्रदेश मेंसे कितने भाग पर क्राचल्ल के सामन्त शासन

१- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९८ २- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ४००
३- उत्तराखंड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९९ - ४००
४- ५- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९९
६- याहड़देव=जाहड़देव। उत्तराखण्ड की बोलियों में जाहड़ (जाड़ा) = भोला, सीधा, मूर्ख - जैसा

करतेथे । अनुमान लगताहै कि लगभग सारा उत्तराखण्ड क्राचल्ल के राज्य या प्रभावक्षेत्र के अन्तर्गत था ।

उसके राज्यकाल से पूर्व कुमाऊँ के परवर्ती कत्यूरी, सिंह नामान्तवाले कमा-नरेश, डोमकोट के रावत - राजा, खश सामन्त और चन्द नामान्तवाले सामन्त अपनी छोटी - बड़ी ठकुराइयों की स्थापना करचुकेथे । क्राचल्लदेव महत्वपूर्ण कार्य करते समय अपने पारिषदों एवँ मित्रामात्यों से मँत्रणा करताथा [१] । वह विद्वानों का आदर करताथा । उसने भट्ट नारायण नामक विद्वान् कवि को अपने पारिषदों में स्थान दियाथा [२] ।

भट्ट नारायण

बालेश्वरमन्दिर का पुजारी भट्ट नारायण, जिसे क्राचल्ल ने भूमि दीथी और अपना पार्षद बनायाथा, अपनी जन्मभूमि बँगाल से आकर उत्तराखण्ड में बसाथा । उसके पिता का नाम नन्द था । भट्ट नारायण सत्पुरुष, शान्त, विवेकी और विद्वान् था । वह न्याय, तँत्र और शकुनशास्त्र में पारंगत था । वह कृत्यानुष्ठान और फलितज्योतिष में विशेष चतुर था । उसे गद्य - पद्य की रचना में प्रख्यात कवि बतायागयाहै । उसकी किसी रचना का अभीतक पता नहीं लगाहै । ऐसे सुयोग्य व्यक्ति को दान देकर क्राचल्ल द्वारा , जबतक इस पृथ्वी पर कमलिनीपति सूर्य हैं, तबतक अपनी कीर्ति की कामना करना स्वाभाविक है [३] ।

उत्तराखण्ड में युगान्तर— क्राचल्लदेव और उसके वँशजों का उत्तराखण्ड पर अधिकार अधिक वर्षों तक न रहा । अशोकचल्ल के समान उसने अपना मुख्य कार्यालय उत्तराखण्ड में स्थापित नहीं किया । अशोकचल्ल के समान उसके द्वारा निर्मित किसी चबूतरा, प्रासाद आदि की सूचना नहीं मिलती । किन्तु अशोकचल्ल और क्राचल्लदेव के अधिकार ने उत्तराखण्ड के इतिहास को सदा केलिए परिवर्तित करदिया ।

क्राचल्लदेव ने विध्वस्त वैद्यनाथ - कार्तिकेयपुर के नरेशों को नष्ट करके उत्तराखण्ड को अपने माण्डलिकों में बांटदियाथा । उत्तराखण्ड की अगली दो - तीन शतियों का इतिहास इन मांडलिकों के पारस्परिक सँघर्ष से उत्पन्न छोटी - छोटी ठकुराइयों की गाथा है ।

कुमाऊँ और डोटी में कत्यूरीवँश की कुछ शाखाएँ, लगभग दो शतियों तक शासन करतीरहीं । किन्तु उनकी शक्ति और शासितप्रदेश अतिसीमित थे । चन्दनरेशों के बढ़तेहुए प्रताप के सन्मुख वे क्षीण होगए । उनका अस्तित्व उनकी शक्ति और प्रभुता पर निर्भर न था ; अपने परिवार केलिए कत्यूरीवँशी पत्नियां प्राप्तकरने की सुविधा का ध्यान रखकर चन्दनरेशों ने कत्यूरी ठाकुरों का उत्पाटन - निष्काशन नहीं किया [३] ।

१- २- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३९९

३- ' श्रीक्राचल्लदेवस्य यावद् अम्भोजिनीपतिः ।
विहरतु भुवि तावद् कीर्तिरस्य नृपकुमुदाकरस्य ' ।। — बालेश्वर - ताम्रशासन

३- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ४१६

तेरहवीं शती विक्रमी में उत्तराखण्ड तीन भागों में बँटगया । :–

(१) यमुना की पश्चिमी उपत्यका, स्त्रुघ्न–सिरमौर प्रदेश,

(२) यमुना - भागीरथी - अलकनन्दा - उपत्यका, गढ़वाल प्रदेश,

(३) रामगङ्गा - सरयू - कालीगङ्गा - उपत्यका, कुमाऊँ प्रदेश ।

इन तीनों प्रदेशों के तेरहवीं शती से आगे के इतिहास का अध्ययन इस ग्रन्थ के अगले तीन भागों में कियाजाएगा ।

अनुमानित - तिथिक्रम

वैद्यनाथ के कत्यूरी नरेश—

नरसिंहदेव, प्रीतमदेव, धामदेव, ब्रह्मदेव, वीरदेव	सँ० १०५७ - ११५७ वि०	(1000 - 1100)
त्रिभुवनपाल, पुत्र, पौत्र	सँ० ११५७ - १२०७ वि०	(1100 - 1150)
उदयपालदेव	ज्ञाततिथि सँ० १२०९ - वि०	(1152 -)
अनन्तपालदेव	ज्ञाततिथि सँ० १२३८ - वि०	(1181 -)
इन्द्रपालदेव	ज्ञाततिथि सँ० १२५९ - वि०	(1202 -)
विजयपालदेव	ज्ञाततिथि सँ० १२७१ - वि०	(1214 -)
लक्ष्मणपालदेव	सँ० ? - १२८० वि०	(? - 1223)
बल्लालदेव	ज्ञाततिथि सँ० १२८० - ? वि०	(1223 - ?)

कमा के ' सिंह ' नरेश—

जयतुंगसिंह, कामदेवसिंह	सँ० १२१२ - १२४२ वि०	(1155 - 1185)
पुरुषोत्तमसिंह	सँ० १२४२ - १२६७ वि०	(1185 - 1210)
जयसिंह	ज्ञाततिथि सँ० १२८० - वि०	(1223 -)
सुई और डोमकोट राज्यों की स्थापना	सँ० १२५७ - वि०	(1200 -)

डोटी के ' चल्ल ' नरेश—

अशोकचल्लदेव	सँ० १२२७ - १२६६ वि०	(1170 - 1209)
क्राचल्लदेव	सँ० १२६४ - १२८० - वि०	(1207 - 1223 -)

शुद्धिपत्र

पृ० ५२० पँ० १६ पर कृपया कमा – काली की उपरली उपत्यका पढ़िए ।

कत्यूरी-वंशावलियां

डोटी[1]	असकोट[2]	डोटी[1]	असकोट[2]	थाली[3]
१- शालिवाहनदेव	१- शालिवाहन	१६- अनिजल	२७- ऋसिध्धि	–
२- शक्तिवाहनदेव	२- सँजय	१७- विद्याराज	२७- विधिराज	–
	३- कुमार	१८- पृथिवीश्वर	२९- पृथिवीश्वर	–
३- हरिवर्मदेव	४- हरिसिंह	१९- चनपाल	३०- वलाकदेव	–
४- ब्रह्मदेव	५- ब्रह्म	२०- असँति	३१- असँतिदेव	१-असँतिदेव
	६- शक	२१- वसँति	३२- वसन्तिदेव	२-वसँतिदेव
५- वज्र	७- वज्र	२२- कटारमल्ल	३३- कटारमल्ल	–
	८- धनञ्जय		३४- सोतदेव	३- सोतदेव
६- विद्यामादित्य	९- विद्यामादित्य	२३- सिंहमल्ल	३५- सिंघदेव	–
	१०- सारँगधर	२४- फनिमल्ल	३६- कीना	४- फनेव
७- धर्मपाल	११- धर्मपाल	२५- निफि	३७- रानाकीता	–
८- नीलपाल	१२- नीलैपाल	२६- निलपराय	३८- निलपराय	–
९- मुँजराज		२७- वज्रबाहु	३९- वज्रबाहु	–
१०- भोज	१३- भोजराज	२८- गौंराग	४०- गौर	–
	१४- विनयपाल	२९- सीयमल्ल	४१- सकिल	–
	१५- भुजनपाल	३०- ईलराज	४२- इतिनराज	–
११- समरसिंहदेव	१६- समरसी	३१- नीलराज	४३- तिलगराज	–
१२- असलदेव	१७- असल	३२-फटिकसिलाराज	४४-उदकसिला	–
	१८- अशोक	३३- पिथियराज	४५- प्रीतम	–
१३- सारँगदेव	१९- सारँग	३४- धाम	४६- धाम	५- धामदेव
	२०- नज	३५- ब्रह्मदेद	४७- ब्रह्मदेव	६- ब्रह्मदेव
	२१- कामजय	३६- त्रिलोकपालदेव	४८-त्रिलोकपाल	७- असनदेव
१४- नकुलदेव	२२- शालिनकुल	३७- निरँजनदेव	४९- अभयपाल	८- अभयदेव
	२३- गणपति	३८- नागमल्ल	५०- निर्भयपाल	९- निर्भयदेव
१५- जयसिंह	२४- जयसिंह	३९- अर्जुनशाही	५१-भारतीपाल	१०-भारतीपाल
	२५- सँकसर			
	२६- सनेश्वर			

१-३- एटकिनसन — हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि० २, पृ० ५३० - ३२

पुण्यभूमि

हम उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १ और २ में देखचुकेहैं कि यमुना और गङ्गाजी का स्रोतप्रदेश होने तथा गन्धमादन, कैलास, मेरु - मन्दर और नन्दादेवी - जैसे शिखरों से मण्डित होनेके कारण उत्तराखण्ड को अति प्राचीनकाल में ही पुण्यभूमि का गौरव प्राप्त होगयाथा [१-२]। इस देश से जब कोलवँशजों का प्रसार पूर्व की ओर हुआ तो वे गङ्गा, कैलास एवँ मेरु - सम्बन्धी भावनाओं को बर्मा, लँका, श्याम, हिन्दचीन, चीन, मलाया तथा बालीद्वीप तक लेगए [३]।

हमारे अध्ययनकाल में भारतीय जनता में उत्तराखण्ड के प्रति श्रद्धा की भावना निरन्तर बढ़तीगई। भारत की प्राचीनतम मुद्राओं पर भी गङ्गाजी और सुमेरु अँकित मिलतेहैं। विक्रमपूर्व दूसरी शती तक उत्तराखण्ड - सम्बन्धी गाथाएँ इतनी लोकप्रिय होचुकीथीं कि दुष्यन्त का कण्वाश्रम में प्रवेश आदि से सँबँधित मृण्मूर्तियां बननेलगीथीं[४]। पीछे मन्दिरों के द्वारपट्टों पर गंगा - यमुना, कैलास अँकित करने की प्रथा व्यापकरूप से चलपड़ी।

साहित्य में— सप्तसिन्धु का पुण्यभूमि के रूप में उल्लेख केवल वेदिक सँहिताओं में मिलताहै। यमुना पार करके मध्यदेश में बसजाने पर आर्यजन गँगाजी और गन्धमादन की छटा से इतने मुग्ध होगए कि पुण्यभूमि के रूप में वे सप्तसिन्धु को भूलगए। परवर्ती साहित्य में उसका स्थान मध्यदेश के मुकुट उत्तराखण्ड ने लेलिया।

जातकों और पाली के अन्य ग्रन्थों में गन्धमादन और गँगाजी के मोड़ (गँगाद्वार) का, जैन प्राकृत - साहित्य में अष्टापद, कैलास और गँगाजी के स्रोतप्रदेश में स्थित वैनाढ्य पर्वत तथा बदरिकाश्रम का बार - बार उल्लेख आताहै। विक्रमपूर्व दूसरी शती में पँचनद में भारी सँख्या में यवनादि विदेशी जातियों के बसजाने से वहां वर्णाश्रम - व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न होगया। धर्मशास्त्रों के अनुसार उस प्रदेश में बसनेसे धर्मच्युत होने की सम्भावनाएँ बढ़गईं। फलतः उत्तराखण्ड के प्रति आकर्षण और भी अधिक बढ़गया। महाभारत और पुराणों में उत्तराखण्ड - सम्बन्धी प्रसँग सैकड़ों पृष्ठों तक फैलेहैं। कालिदास ने अपने ७ ग्रन्थों मेंसे ५ ग्रन्थों में उत्तराखण्ड-सम्बन्धी प्रसँगों का चाव से वर्णन कियाहै।

जैनमत— आदितीर्थंकर ऋषभदेव ने बदरिकाश्रम में तपस्या कीथी। उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती ने गँगाजी के स्रोतप्रदेश के नरेश नमि की बहिन सुभद्रा से बिवाह कियाथा। जैनमत के प्रचारक आरम्भ से ही उत्तराखण्ड के प्रति आकर्षित हुएथे। चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल से जैन प्रचारकों ने अपनी तपोभूमि दक्षिण में स्थापित की। किन्तु मोरध्वजस्तूप में प्राप्त मण्मूर्तियों से विदित होताहै कि विक्रम की आठवीं शती में उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में किसी अचैल योगी की उपासना प्रचलित थी। बढ़ापुर के पास प्राप्त जैनमूर्ति का पीठिकालेख ग्यारहवीं शती विक्रमी का है। पास ही पारसनाथ के दुर्ग के अवशेषों की खुदाई

---

१ उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० ६-११३   २- वेदिक एज, पृ० १५६
३- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग २, पृ० १११-१२   ४- उत्तराखंड का इतिहास, भाग २, पृ० ४४६

से मुझे जो चमकीली पालिसलगे पात्र प्राप्त हुएहैं, वे आठवीं - नौवीं शती विक्रमी के होसकतेहैं। इससे अनुमान लगताहै कि विक्रम की आठवीं शती से उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग में जैनमत का प्रचार बढ़नेलगाथा।

बौद्धमत— भगवान् बुद्ध उत्तराखण्ड की दक्षिणी पट्टी में गोविषाण से लेकर अहोगँग तक गएथे। दिव्यावदान के अनुसार वे गंगाजी और यमुना को पार करके स्रुघ्न तक पहुँचेथे। अशोक ने बुद्ध के अवशेषों के ऊपर गोविषाण और स्रुघ्न में स्तूप बनवाएथे। अहोगँग के बौद्धस्थविरों ने बौद्धमत के प्रचार केलिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किएथे। स्रुघ्न के कुणिन्दनरेश बौद्धमतावलम्बी थे। उन्होंने भारहुत तथा मथुरा में देयधर्म अर्पित किएथे। स्रुघ्न में अर्हतों के अवशेषों पर स्तूपों का निर्माण सम्भवतः उन्हींके द्वारा हुआथा। सातवीं शती विक्रमी तक उत्तराखण्ड के अधिकांश से बौद्धमत लुप्त होचुकाथा। तेरहवीं शती विक्रमी में नेपाल के पश्चिमी तथा उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग में बौद्धमत में पुनः नया जीवन आया। कमा (ऊँ) नरेश पुरुषोत्तमसिंह ने अशोकचल्ल और छिन्दनरेश की सहायता से बोधगया में मुसलमानों द्वारा नष्ट गन्धकुटी का पुनर्निर्माण किया। विक्रम की चौदहवीं शती तक भी काराचल (=खारा= चँडी की पहाड़ी) पर एक बौद्धमन्दिर का अस्तित्व था। जिसके दर्शनार्थ चीन और तिब्बत से यात्री आतेथे, और जिसको पीछे मुहम्मद तुगलक की सेना ने नष्ट करदियाथा।

भागवत— बुद्ध के समकालीन अनेक निवृत्तिपरक मत - मतान्तरों के अनुयायियों ने उत्तराखण्ड को अपनी तपोभूमि बनायाथा। वैष्णव - भागवतों ने नर - नारायण की तपोभूमि बदरिकाश्रम को अपनी पुण्यभूमि माना। नौवीं शती विक्रमी में शँकराचार्य ने बदरिकाश्रम में मूर्ति की पुनः स्थापना की। शैव - भागवत गन्धमादन के कैलास, भृगुपन्थ और केदार शिखरों को अपनी देवभूमि के रूप में माननेलगे। उमा, कार्तिकेय और गणेश की जन्मभूमि गन्धमादन की शाखाओं पर मानीगई। और वहीं शिव, यक्षराज कुवेर और इन्द्रादि देवताओं का निवास मानागया।

शाक्त, नाथ, सिद्ध— शाक्तों के सिद्धपीठों की कल्पना सम्भवतः बुद्ध के अवशेषों वाले स्तूपों से प्रेरणा पाकर कीगई [१]। उत्तराखण्ड में शाक्तों ने मायावती (मायापुर) ऋषिकेश, बदरिकाश्रम [२] तथा भृगुपंथ, केदारनाथ में [३] अपने सिद्धपीठ स्थापित किए। ग्यारहवीं शती विक्रमी से मुसलमानों ने जब मठ - मन्दिरों को नष्ट करना आरम्भ करदिया तो तप और स्वाध्याय में लीन शान्तिप्रिय महात्माओं ने, मैदान से भागकर उत्तराखण्ड में शरण लेनी आरम्भ की। विक्रम की ग्यारहवीं शती में गोरखनाथ ने उत्तराखण्ड में त्रियुगी-नारायण के पास अपना आश्रम बनाया। धीरे - धीरे नाथ - साम्प्रदाय के साधुओं का उत्तराखण्ड के अधिकांश शिव और भैरवादि के मन्दिरों पर अधिकार होगया। मुसलमानों

१- डी० सी० सरकार—शाक्तपीठ पृ० ७ २- कुब्जिका तन्त्र

३- ज्ञानार्णवतन्त्र, उ० प्राणतोषिणी, पृ० ४४३ - ४७

के प्रहार से बचने केलिए उत्तराखंड के दक्षिणी पट्टी के बौद्ध साधकों को भाबर और सलाण - प्रदेश में आश्रय लेनापड़ा, जहां वे आज भी सिद्ध बाबा के नाम से गांव-गांव में पूजेजातेहैं ।

तीर्थयात्रा— उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा महाभारत - सँग्रहकाल, विक्रमपूर्व दूसरी शती में सुप्रचलित थी , जैसा महाभारत के वनपर्व से विदित होताहै । चौथी शती विक्रमी के देवप्रयाग के शिलालेखों में अनेक तीर्थयात्रियों के नाम सुरक्षित हैं, जो मानपर्वत (बदरिकाश्रम से आगे माणापर्वत) तक पहुँचेथे । शँकराचार्य द्वारा बदरिकाश्रम में मूर्ति की पुन: प्रतिष्ठा किएजाने पर बदरिकाश्रम की तीर्थयात्रा का और भी अधिक प्रचार हुआ । विक्रम की तेरहवीं शती में माध्वसँप्रदाय के प्रवर्तक माधवाचार्य ने बदरिकाश्रम की यात्रा की । और यहां से प्राप्त देवमूर्तियों की दक्षिण के मन्दिरों में स्थापना की ।

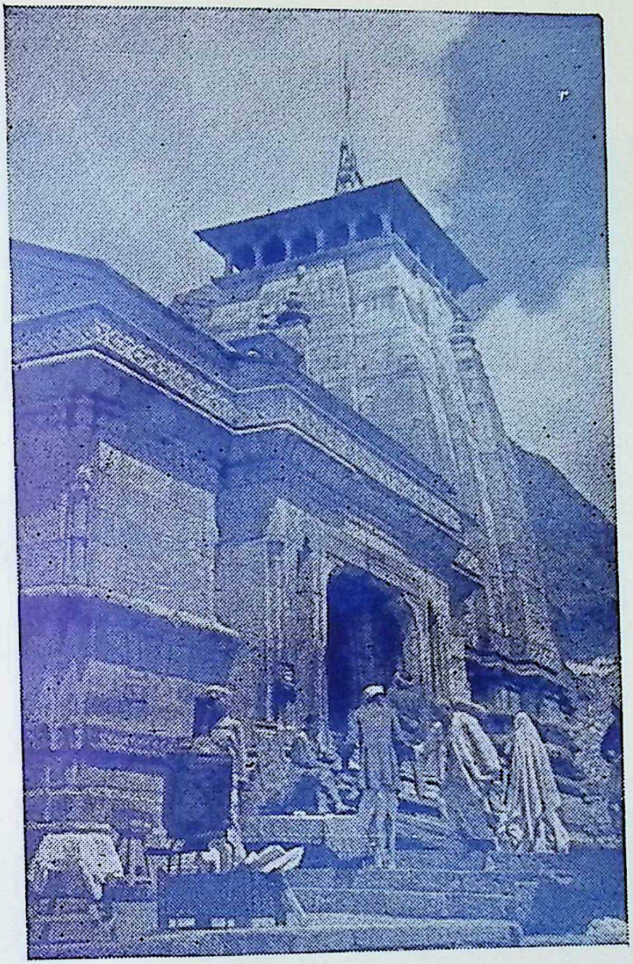
सँ० ८५७ वि० (800) के आसपास मगधसम्राट धर्मपाल के राज्याधिकारियों ने केदारतीर्थ की यात्रा की [1]। सँ० ११०७ वि० (1050) के आसपास भोज परमार ने केदारमन्दिर का जीर्णोद्धार किया [2]। सँ० १२५७ वि० (1200) के आसपास त्रिगर्तनरेश लक्ष्मणचन्द्र ने केदारतीर्थ की यात्रा की [3]।

बदरिकाश्रम और केदारनाथ के अतिरिक्त नन्दादेवी और भृगुपँथ की जात और मरणयात्राएँ प्राचीनकाल से चलीआतीथीं । सातवीं शती में बाण ने उत्तराभिमुखी जात और भृगुपँथ-यात्रा का उल्लेख कियाहै । दसवीं शती के जागेश्वर - शिलालेख में एक मरणप्रत्याक्षी का उल्लेख है ।

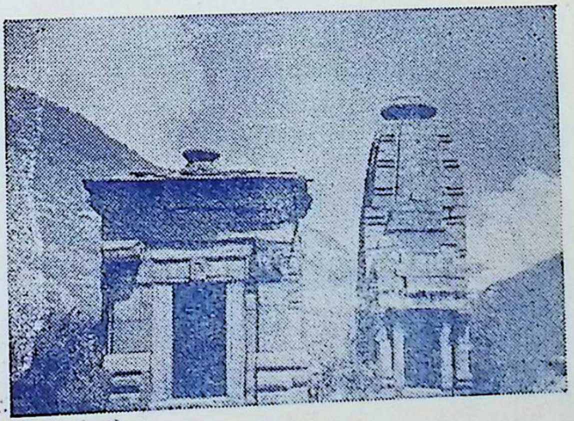
सम्पर्क— उत्तराखण्ड की पावनता के कारण अनेक विद्वान्.कवि, तन्त्रतथा ज्योतिष आदि शास्त्रों के मर्मज्ञ भी उत्तराखंड में पहुँचतेरहे । हमारे अध्ययनकाल में उत्तराखंड में अनेक सँस्कृत - कवि हुए , जिनके द्वारा सँस्कृत के ललित छन्दों में शिलालेखों की रचना हुईथी। कालिदास सम्भवत: उत्तराखँड के निवासी थे । उत्तराखँड का पूर्वदेश, विहार, बँगाल, उड़ीसा से निरन्तर सम्पर्क बनारहा । जिसका प्रभाव राजनैतिक उथलपुथल के अतिरिक्त मन्दिर - निर्माणशैली, धार्मिक एवँ सामाजिक मान्यताओं और भाषा पर भी पड़ा । लगभग इसी समय दक्षिण से भी सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित हुआ , जिसका प्रभाव उत्तराखंड के तीर्थं - स्थानों की पूजा - व्यवस्था पर आजतक चलाआरहाहै ।

नवीन प्रेरणा— उत्तरापथ में एक के पश्चात् दूसरे राजवँशों का उत्थान और पतन हुआ । एक के पश्चात् दूसरे मठ - मन्दिर मुसलमानों के प्रहार से नष्ट होतेगए और देवमूर्तियों की शक्ति के सम्बन्ध में जनमानस विचलित भी होतारहा, फिर भी पुण्यभूमि उत्तराखण्ड के सम्बन्ध में सबकी गहरी श्रद्धा बनीरही । और विभिन्न मत - मतान्तरों के प्रचारक, तपस्वी, चिन्तक और वास्तुकार एवँ साहित्यकार उत्तराखण्ड से निरन्तर नवीन प्रेरणाएँ प्राप्त करतेरहे ।

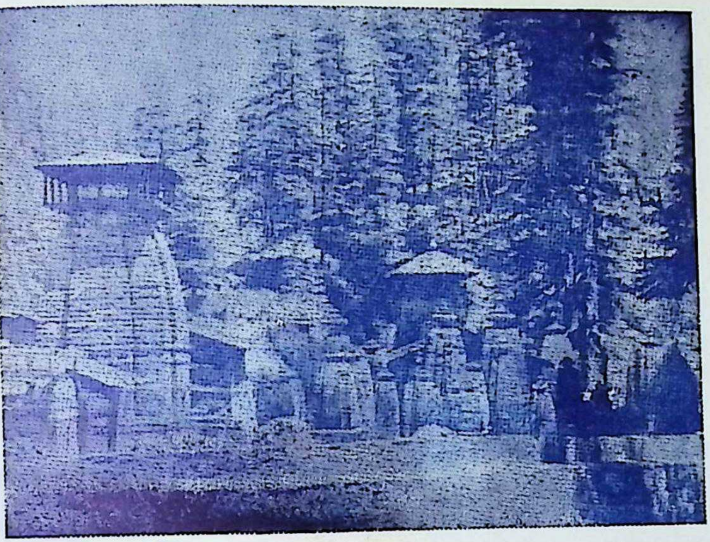
1- देवपाल का मुंगेर - ताम्रशासन, पं० १० - १२ 2- उदयपुर - प्रशस्ति, पं० २१ - २२
3- वैद्यनाथ (कीरग्राम) - प्रशस्ति, श्लोक २१ - २२



कत्यूरीशिखर वाला मन्दिर
केदारनाथ



चपटी छत तथा नागरशिखर
वाले मन्दिर तपोवन

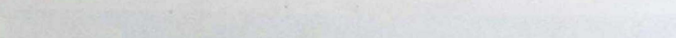


कत्यूरी और नागरशिखर वाले मन्दिर – जागेश्वर



नागरशिखर वाले मन्दिर – बागेश्वर
सर्वाधिकारी भारतीय पुरातत्वविभाग के सौजन्य से



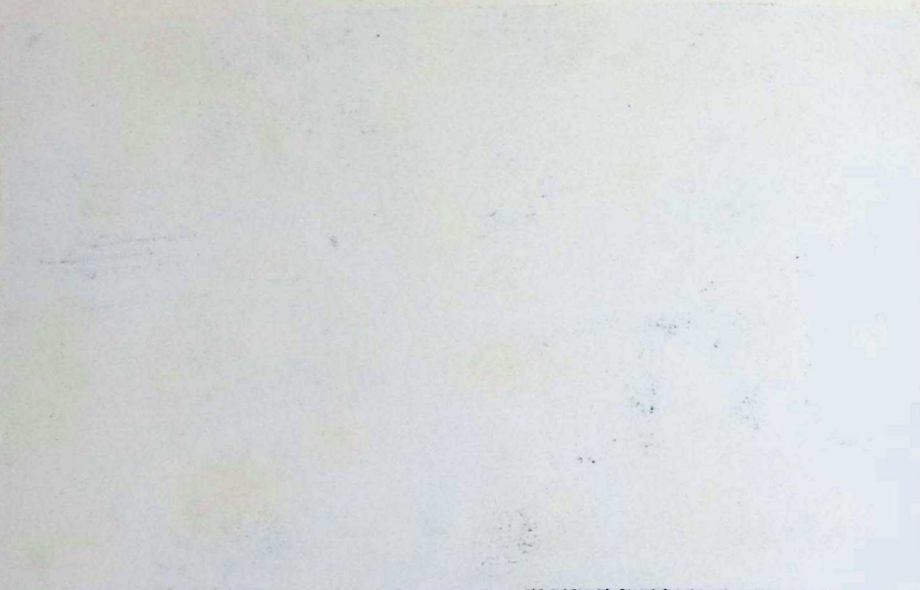


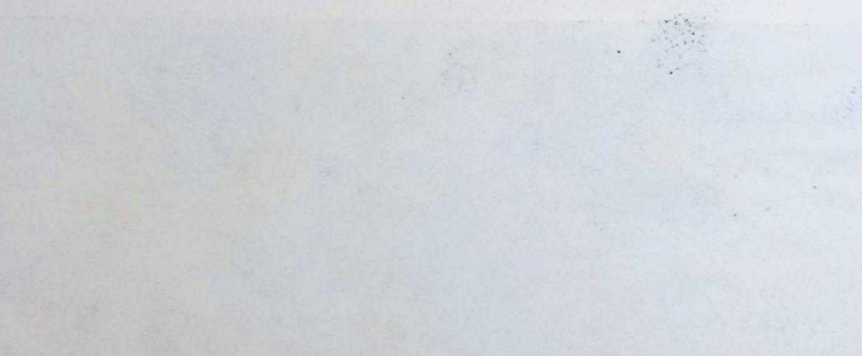


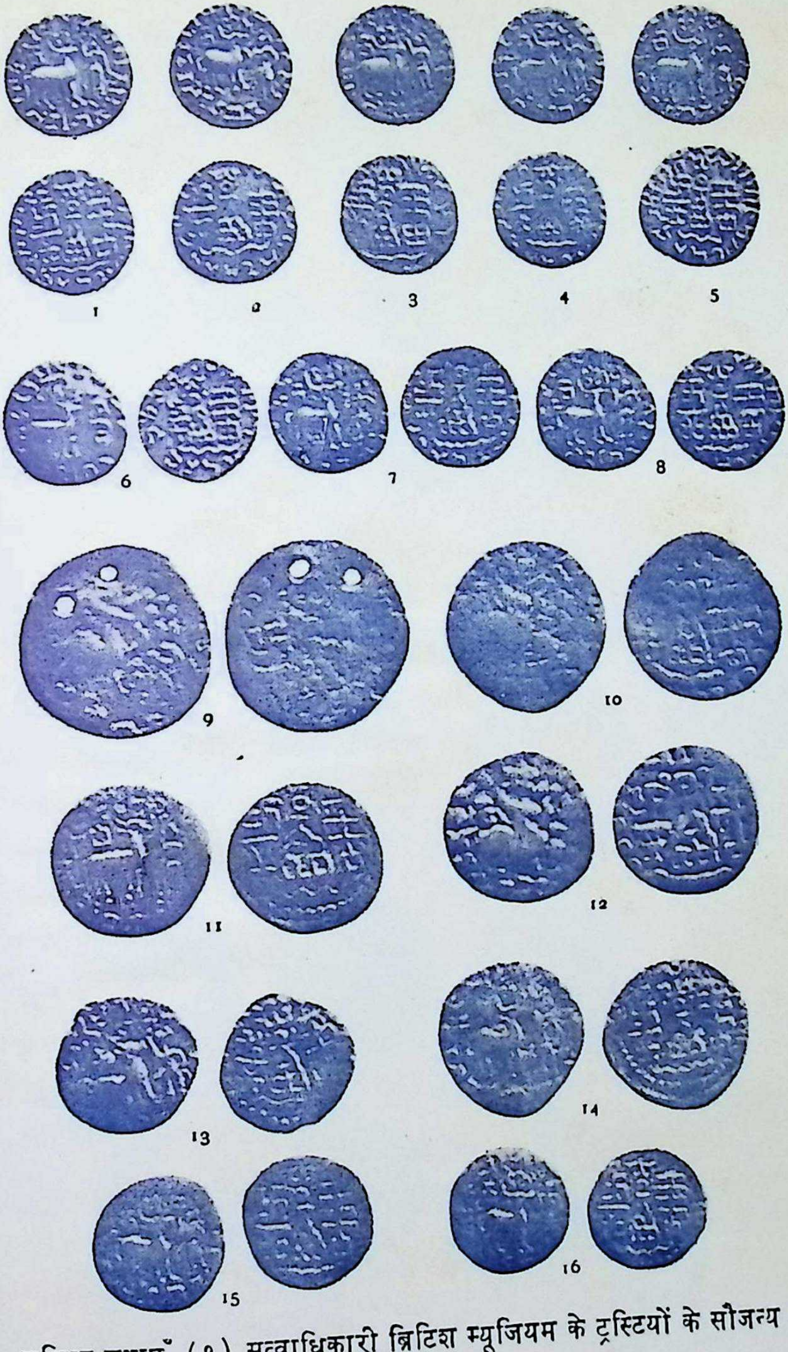
गरुड़मूर्ति – श्रीनगर



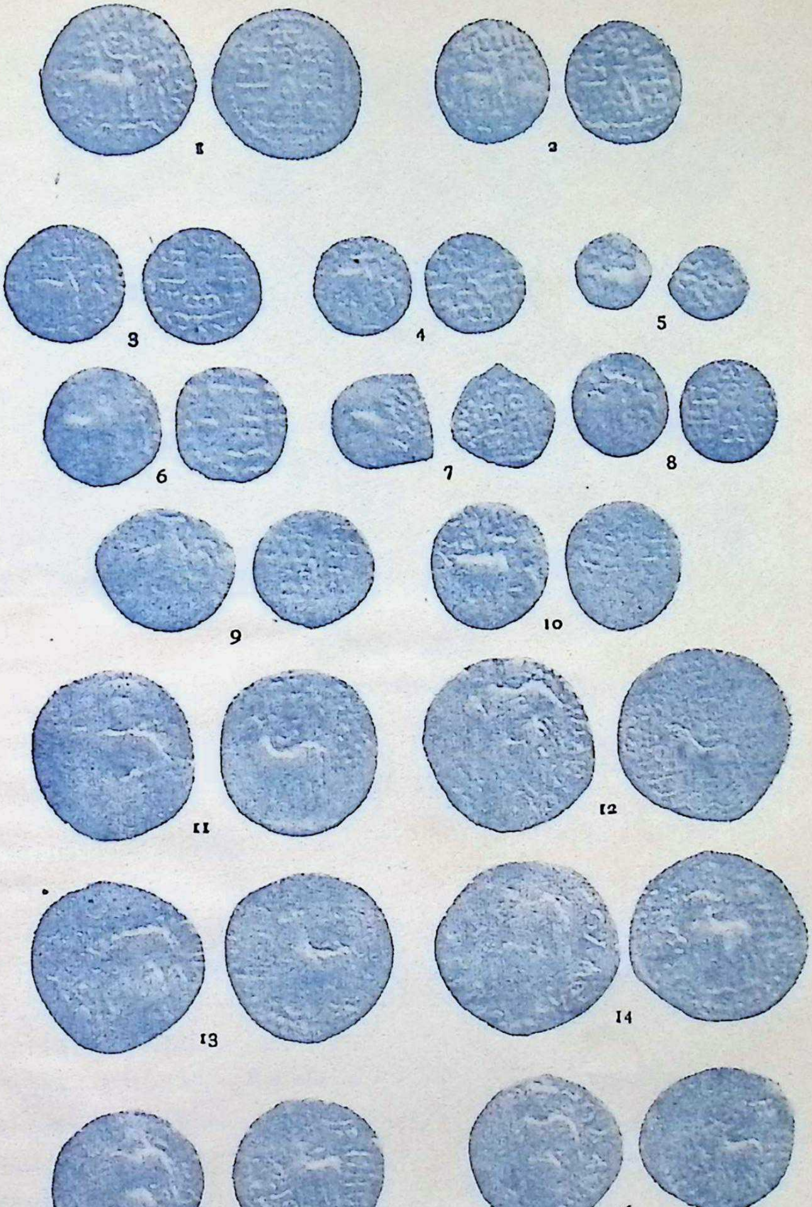
देवमूर्तियां – सिमली



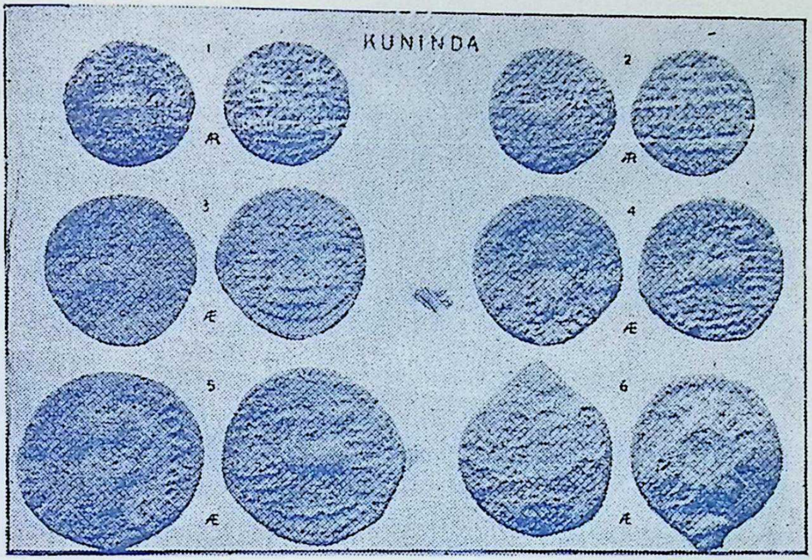




कुणिन्द-मुद्राएँ (१) सत्वाधिकारी ब्रिटिश म्यूजियम के ट्रस्टियों के सौजन्य से



कुणिन्द-मुद्राएँ (२) सत्वाधिकारी ब्रिटिश म्यूजियम के ट्रस्टियों के सौजन्य से



कुणिन्द - मुद्राएं
सत्वाधिकारी भारतीय पुरातत्वविभाग के सौजन्य से

मानचित्र एवं चित्र

उत्तराखण्ड का मानचित्र
उत्तराखण्ड के प्रमुख तीर्थ
नारायणकोटि के युगल मन्दिर
मोरध्वजस्तूप से प्राप्त मृण्मूर्ति,, चैत्य के अन्दर बुद्ध
केदारनाथमन्दिर
तपोवन के मन्दिर
जागेश्वर के मन्दिर –– सत्वाधिकारी भारतीय पुरातत्वविभाग के सौजन्य से
बागेश्वर के मन्दिर –– ,, ,, ,, ,,
गरुड़मूर्ति –– श्रीनगर
देवमूर्तियां –– सिमली
कुणिन्द-मुद्राएँ (१) सत्वाधिकारी ब्रिटिश म्यूजियम के ट्रस्टियों के सौजन्य से
कुणिन्द-मुद्राएँ (२) ,, ,, ,,
कुणिन्द-मुद्राएँ (३) सत्वाधिकारी भारतीय पुरातत्वविभाग के सौजन्य से